कलशामृत-३

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी समयसार कलश टीका के सन् १९७७-७८ के प्रवचन)

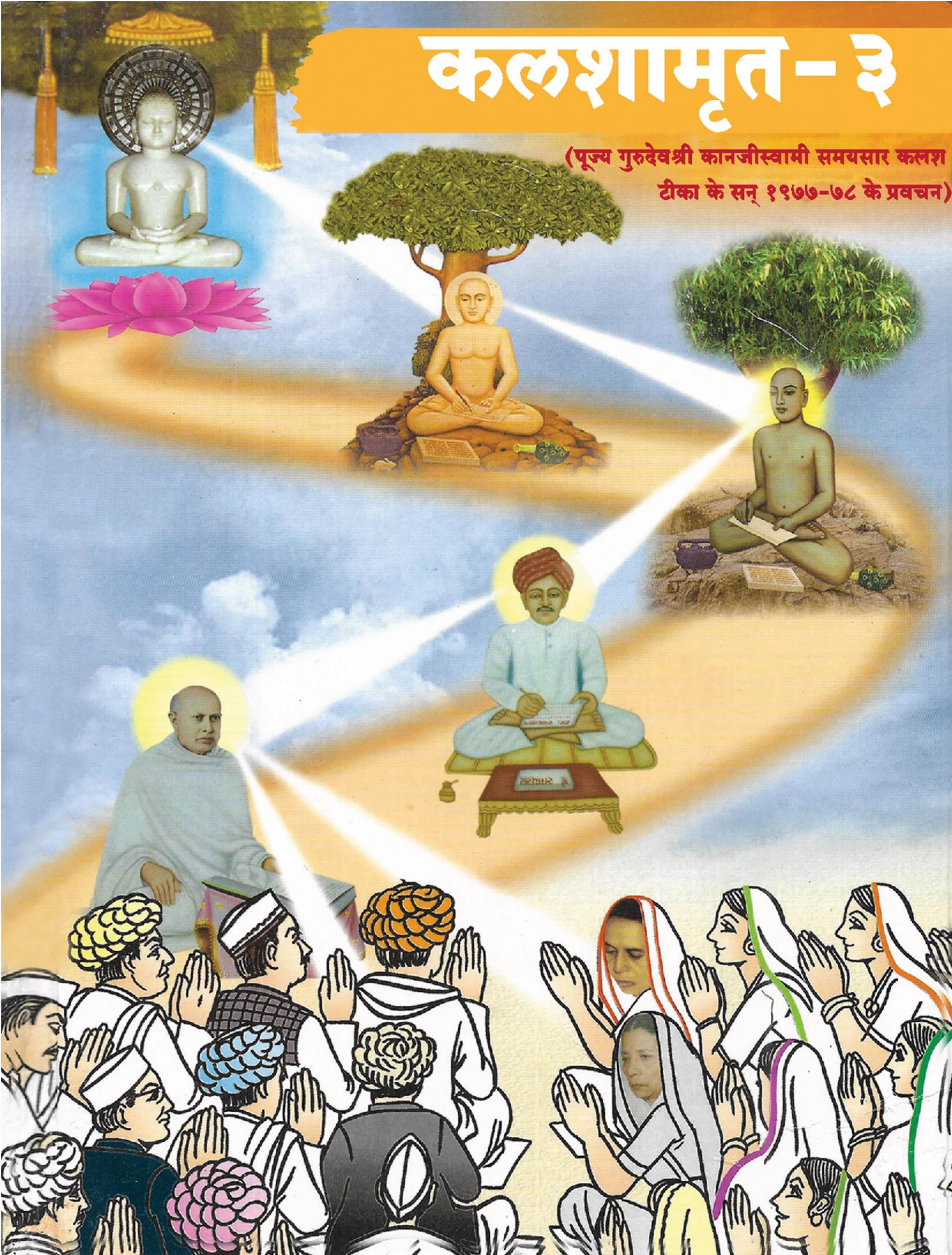

ॐ

परमात्मने नमः

कलशामृत

(समयसार कलशटीका प्रवचन)

भाग-3

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत **परमागम समयसार** की **श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव** रचित **आत्मख्याति टीका** में समागत **समयसार कलश** की **पाण्डे राजमलजी** कृत टीका पर **परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के स्वानुभव मुद्रित आध्यात्मिक शब्दशः प्रवचन

कलश 60 से 116 तक, प्रवचन नं. 75 से 114 तक

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2081	2551	2025

—: प्रकाशन :—

आषाढ़ माह अष्टाह्निका महापर्व एवं
वीर शासन जयन्ती, जुलाई 2025
के पावन प्रसंग पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

अहो! उपकार जिनवर का कुन्द का ध्वनि दिव्य का,
जिन कुन्द ध्वनि दाता अहो! श्री गुरु कहान का॥

वर्तमान चौबीसी के, मोक्षमार्ग के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव से महावीरस्वामी पर्यन्त समस्त तीर्थंकरों की अचल तीर्थधरा पर जैनदर्शन की अनमोल सम्पत्ति को प्रदान करनेवाले, द्वितीय श्रुतस्कन्ध को लिपिबद्ध कर अलभ्य जैन वाग्धारा को जयवन्त करनेवाले चारणऋद्धिधारी आचार्यवर श्री कुन्दकुन्ददेव हुए। यह जैन संस्कृति की अनाहत प्रवाह की परिपाटी में आचार्य श्री अमृतचन्द्रदेव हुए। उनके द्वारा अविच्छिन्नरूप से प्रवाहित जैनधारा की शृंखला में पण्डित श्री राजमल्लजी पाण्डे हुए। उत्तरोत्तर चली आयी अस्खलित धारा में अपने मुक्तिदूत पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी हुए। इन सर्व सन्तों की स्वानुभवरूप यात्रा के अन्तर्गत उपलब्ध परमागमों का प्रबुद्ध दर्शन मिला। इस बहुमूल्य आत्मदर्शन की चरम सौख्यधारा अक्षुण्ण बहती हुई भव्य जीवों के अन्तरांचल में स्थित होने के साथ ही अनादि से चली आयी विकृतियों का विसर्जन हुआ।

श्री अमृतचन्द्रदेव ने स्वयं रचित काव्यरूप कलशों में अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को समाविष्ट किया है। उस गम्भीर्य अर्थ को टीकाकार पण्डितश्री राजमल्लजी पाण्डे ने अपनी निज स्वानुभवमयी सूक्ष्म प्रज्ञा के बल से.... सरल भाषा में प्रकाशित किया है।

उन्होंने शुद्धात्मा की अतिशयता को तो मुखरित किया ही है परन्तु उसके साथ शुद्धात्मा को अनुभव करने की सम्यक् कला भी बतायी है। टीका में वाक्य... वाक्य में... शुद्धता को प्रत्यक्ष आस्वादो.... प्रत्यक्ष आस्वादो का नाद प्रमुखरूप से ध्वनित होता है। अनेक रहस्यों को विशदता से उद्घाटित करनेवाली उनकी टीका में शुद्ध जीव वस्तु को आत्मसात् करानेवाली प्रेरणात्मक शैली का तो सहज दर्शन होता है, तदुपरान्त प्रयोगात्मक विधि को सर्वांग हृदयंगम करानेवाली सचोट, सरल और मधुर टीका के भी स्पष्ट दर्शन होते हैं।

बालावबोध टीका के रचियता द्रव्यदृष्टिवन्त, सम्यक् प्रज्ञावन्त श्री राजमल्लजी साहेब का चित्रपट जो श्री राजकोट दिगम्बर जिन मन्दिर के स्वाध्याय भवन में अंकित है, वही फोटो इस कलशामृत में लिया गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री अर्थात् निज ध्येय के ध्यानी, आत्मज्ञानी, अध्यात्म के योगी, और अतीन्द्रिय आनन्दरस के भोगी, ऐसे आदर्श विश्व विभूति हुए। उनके द्वारा जो शुद्धात्मतत्त्व का वास्तविक विश्लेषण हुआ, वह पूर्व के सैकड़ों शताब्दियों में नहीं हुआ था, वैसा स्पष्टीकरण मिला है।

श्री कलश टीका के कर्ताकर्म अधिकार का संक्षेप में अवलोकन करें तो आचार्यदेव का, सन्तों का

अभिप्राय अत्यन्त स्पष्ट है कि चेतन, अचेतन समस्त द्रव्य के स्वयं होते परिणाम का कर्ता, हर्ता, धर्ता अन्य पदार्थ नहीं है।

विश्व के जड़-चेतन समस्त पदार्थ स्वयं से परिणमनशील हैं। इस प्रकार वस्तु व्यवस्था होने पर भी अज्ञानी जीव, कोई तो ईश्वर को कर्ता मानते हैं, कोई तो जड़कर्म को कर्ता मानते हैं और कोई तो त्रिकाली कूटस्थ आत्मा को कर्ता मानते हैं। इस प्रकार कर्तृत्व के अहंकार से ग्रसित जीवों को, कर्तृत्व के भार से निर्भार होने की विधि दर्शायी है।

कर्ताकर्म स्वरूप की सीमा रेखा अंकित करते हुए सन्त कहते हैं कि कोई भी जीव, कभी भी परद्रव्य की सत्ता में प्रवेश नहीं कर सकता। सामने ओर से कोई भी परद्रव्य जीवद्रव्य की सत्ता में प्रवेश करने के लिये असमर्थ है। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य के लिये अपनी अचलित वस्तु स्वभाव की मर्यादा का उल्लंघन करना अशक्य है।

उपरोक्त वस्तु स्वभाव की स्वतन्त्रता का यथार्थ निर्णय होने के पश्चात्, कलश नं. 69 से 99 तक आचार्यदेव ने कदम-कदम पर नयातिक्रान्त होने की अपूर्व विधि बतायी है। स्वानुभव में बाधक ऐसे अनेक नयपक्षों का उल्लेख करके उन नयपक्षों से अतिक्रान्त होने के लिये मध्यस्थ ज्ञान स्वभाव का रसायन प्रदान किया है।

मैं निश्चय से शुद्ध हूँ, अबद्ध हूँ, मुक्त हूँ — ऐसे विकल्प, वह तो अशुद्धोपयोग है, वह विषमता है, वह मोह है, वह क्षोभ है। जीव जब ऐसे अन्तर्जल्प विकल्पों की श्रेणी पार करता है, तब साक्षात् ज्ञानस्वरूप होता है। निर्विकल्प स्वानुभवरूप जो अभेदज्ञान की ध्यानाग्नि प्रगट की है, उसमें समस्त नय पक्ष के विकल्प स्वाहापने को प्राप्त हुए हैं।

चैतन्य ज्योति जाज्वल्यमान होती हुई प्रगट हुई है, वहाँ अब अज्ञानरूप कर्ताकर्म विभाव खड़ा रहता नहीं। शुद्धज्ञान प्रकाश प्रगट हुआ है, वह तो चारों ओर से विभावरूप अन्धकार को तोड़ता हुआ और वीतरागभाव में वर्धमान होता हुआ प्रगतिमान हो रहा है। इस प्रकार अमृत सरोवर में से अमृत को आस्वादता हुआ मोक्ष का अधिपति होता है।

पुण्य-पाप अधिकार

श्री कलशटीका में सबसे सुगम और सरल अधिकार यदि कोई हो तो वह है पुण्य-पाप अधिकार। जितना सरल है, उतना कठिन है। कठिन लगने का कारण यह है कि उसे पुण्य-पापतत्त्व सम्बन्धी का अज्ञान है। पुण्य और पाप दोनों समान कोटि के होने पर भी, मोह से आच्छादित जीवों को उसमें पृथक्त्व का दर्शन होता है।

अशुद्धबुद्धि जीव, पुण्य और पाप के बीच ही भेदविज्ञान करने लगा कि पुण्य उपादेय है और पाप हेय है। पुण्य-पाप के बीच उपादेय-हेय का पार्थक्य प्रतीत होना, वही मिथ्यात्व है।

जिसे पुण्य ग्रहण करनेयोग्य और पाप त्याज्य लगता है, उसे पुण्य-पाप में अविशेषता दर्शाते हुए आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव प्रवचनसार की 77 गाथा में कहते हैं कि —

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो॥

निश्चय से पुण्य और पाप दोनों पाप ही हैं। दोनों में कुछ भी विशेषता न होने पर भी, जो पुण्य को हितकारी और पाप को अहितकारी मानकर दोनों में विशेषता मानता है... ऐसे मोह से मूर्च्छित प्राणी घोर अपार संसार में परिभ्रमण प्राप्त करते हैं।

श्री जयसेनाचार्य तात्पर्यवृत्ति टीका में पुण्य-पाप अधिकार को पूर्ण करते हुए लिखते हैं कि— **'इति निश्चयनयापेक्षया पापं कृतमिति वा पापाधिकारः'** पुण्य भी निश्चय की अपेक्षा से पाप ही है, क्योंकि पवित्र स्वरूप से पतित होना, वही पाप है। पुण्य-पाप अधिकार पूर्ण होता है, ऐसा न लिखकर अब यहाँ पाप अधिकार पूर्ण होता है (ऐसा लिखते हैं)। इसी बात का समर्थन करते हुए योगीन्द्रदेव योगसार में लिखते हैं कि—

पापतत्त्व को पाप तो जानत है जग कोई।
पुण्य तत्त्व भी पाप है, कहे अनुभवी बुध कोई॥

श्री नाटक समयसार में कविवर बनारसीदास पुण्यतत्त्व की परमार्थता बतलाते हुए लिखते हैं कि—साधक हुआ, उसे सविकल्पदशा में पंच महाव्रतादि के विकल्प आते हैं, वे 'जगपंथ' हैं। निश्चय रत्नत्रय के साथ व्यवहाररत्नत्रय का जो राग है, वह 'जगपंथ' अर्थात् संसार है।

श्री पंचाध्यायीकर्ता पुण्यतत्त्व की कड़क भाषा में मीमांसा करते हुए लिखते है कि—शुभोपयोग दुष्ट पुरुष की भाँति दुष्ट है। जैसे दुष्ट पुरुष में किसी भी प्रकार से भलापन नहीं है, उसी प्रकार शुभभाव में किसी भी प्रकार से भलापन नहीं है। इसलिए सर्व प्रकार से शुभभाव त्याज्य है।

पुण्य-पाप अधिकार और कर्ताकर्म अधिकार का सारांश देखने से दोनों व्याख्या समान ही दिखाई देगी—

(1) पुण्य-पाप अधिकार में—दया-दान-व्रतादि के राग को स्थूल शुभभाव कहा है।

(2) कर्ताकर्म अधिकार में—शुद्धात्मा के चिन्तवन का विकल्प, उसे स्थूल शुभभाव कहा है। इस प्रकार शुभभाव के भी तीन प्रकार हैं।

(1) क्रियानय का शुभभाव;

(2) दया-दान-व्रतादि का शुभभाव और

(3) गुण-गुणी के भेदरूप का शुभभाव।

किसी भी प्रकार का शुभभाव हो, परन्तु वह बन्ध का ही कारण है।

पुण्य-पाप अधिकार का उद्देश्य मात्र इतना ही है कि पुण्यतत्त्व को धर्म नहीं मानना। पुण्य को संवर, निर्जरा का कारण नहीं मानना। शुभभाव करते-करते मोक्षतत्त्व की प्राप्ति होगी, ऐसी मिथ्या मान्यता को तिलांजलि देना। जो पुण्यतत्त्व को मोक्षमार्ग का और मोक्ष का निश्चयकारण मानता है, उसे संवरतत्त्व की, निर्जरातत्त्व की तथा मोक्षतत्त्व के सम्बन्ध में भ्रान्ति तो है ही, परन्तु उसे पुण्यतत्त्व के सम्बन्ध में भी नासमझ है। संक्षिप्त में कहें तो उसे सातों तत्त्वों सम्बन्धी विपरीतता है।

श्री परमात्मप्रकाश में 55 गाथा में योगीन्द्रदेव कहते हैं कि —

जो णवि मण्णइ जीउ समुपुण्णु वि पाउ वि दोइ।
सो चिरु दुक्खु सहंतु जिय मोहिं हिंडइ लोइ॥55॥

'जो जीव पुण्य और पाप इन दोनों को समान नहीं मानता, वह जीव मोह से मोहित होता हुआ बहुत काल तक दु:ख को सहता हुआ संसार में भटकता है।'

इस प्रकार पुण्य और पाप अनादि से बन्धु रूप से साथ में रहते हैं। दोनों में कुछ भी विशेषान्तर न होने पर भी; उनमें अन्तर दिखना, द्विविधता न होने पर भी उनमें द्वैत दिखना, दोनों के फल में साम्यता होने पर भी, उनमें अन्तर दिखना; दोनों के हेतु समान होने पर भी उनमें भिन्नता दिखना; दोनों में स्वभाव से अभेदता होने पर भी, उनमें जिसे भेद दिखाई देता है — ऐसे जीव शुभभाव में रंजायमान हुए बिना नहीं रहते। शुभभाव का मोक्षमार्ग में निषेध होने पर भी, वह बन्ध का कारण होने पर भी, वह आकुलता को उत्पन्न करनेवाला होने पर भी, पुण्य के प्रलोभन से जीव क्यों विमुख नहीं होते ?

'कारण अनुविधायी कार्याणि' ... इस सिद्धान्तानुसार कारण जैसा ही कार्य होता है, इस विधान की समीक्षा करते हुए पुण्य-पाप की एकरूपता का चित्रण स्पष्ट होता है।

स्वभाव—पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है क्योंकि वह पुद्गल की रचना है; इसलिए जड़ और अचेतन है।

आश्रय—पुण्य और पाप दोनों भाव कर्माश्रित होने से पराश्रित हैं, उनमें से कोई भाव स्वाश्रित नहीं है।

फल—पुण्य और पाप दोनों भावों से संसार फलता है।

हेतु—पुण्य और पाप दोनों बन्ध का ही कारण है।

स्वाद—पुण्य और पाप दोनों कलुषित परिणाम होने से उनमें मात्र आकुलता का ही वेदन होता है।

इस प्रकार दोनों के स्वभाव, आश्रय, फल, हेतु, स्वाद इत्यादि को द्रव्यदृष्टि की कसौटी पर कसने

से दोनों एक समान ही प्रतीत होते हैं। पुण्य के परिणाम आत्मा का स्वभाव तो नहीं, परन्तु वास्तव में आत्मा का विभाव भी नहीं। आत्मा का विभाव अर्थात् विशेषभाव तो आत्मिकज्ञान और आनन्द है।

जिनवाणी में शुभभाव को मोक्षमार्ग मानने का निषेध किया है परन्तु भूमिकानुसार शुभभाव आता है, उसका निषेध नहीं किया। मोक्षमार्गप्रकाशक में पण्डित टोडरमलजी साहेब लिखते हैं कि—पुण्य पाप के परिणाम गुणस्थान अनुसार होते हैं। यदि मन्दकषाय हो तो पुण्य के परिणाम तो सहज होते हैं।

साधक धर्मात्मा को अशुभ वंचनार्थ देवपूजा, स्वाध्याय, महाव्रतादि का शुभभाव आता है। परन्तु साधक उस शुभराग को जड़-अचेतन जानता है। धर्मात्मा पापाचरणरूप प्रवृत्ति को तो बुद्धिपूर्वक छोड़ता है, जबकि शुभभाव तो निर्विकल्पदशा में स्वयं छूट जाते हैं। इसलिए ज्ञानी का शुभोपयोग व्यवहार नाम पाता है परन्तु अज्ञानी के व्रत, संयम, शीलरूप शुभभाव व्यवहार नाम भी नहीं प्राप्त करते, निश्चय बिना व्यवहार होता ही नहीं। अन्त में इतना ही कहना है कि —

जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही।
वहाँ वहाँ वह वह आचरे, आत्मार्थी जन सही॥

आध्यात्मिक सन्तपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के इस कलशामृत भाग तीन में समाहित कुल ४० प्रवचन कर्ताकर्म अधिकार तथा पुण्य-पाप अधिकार के अक्षरशः प्रवचन प्रकाशित करते हुए हम धन्यता का अनुभव करते हैं।

इन समग्र प्रवचनों को सी.डी. से गुजराती में अक्षरशः कम्प्यूटराईज्ड करने का कार्य आत्मार्थी भाईश्री नीलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा तथा सुनकर चैक करने का कार्य श्री मणीभाई गाला, देवलाली द्वारा किया गया है। समग्र प्रवचनों को पढ़कर कोष्ठक भरने और चैक करने का कार्य श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर आत्महित साधे इस उद्देश्य से प्रस्तुत कलशामृत भाग - 3 का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। हम सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में कर्ताकर्म का यथार्थस्वरूप समझकर, आत्मा के अकर्ता स्वभाव को स्वीकारकर, साक्षात् अकर्ता होओ। विभावरूप पुण्य-पाप का लक्ष्य छोड़कर, पवित्र पुराण पुरुष निज परमात्मद्रव्य के लक्ष्य से पवित्र आत्मिक आनन्द का आस्वादन करो, इसी मंगल भावनापूर्वक....

प्रस्तुत ग्रन्थ www.vitragvani.com तथा vitragvani App पर उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में

कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा

पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	कलश	दिनांक	पृष्ठ सं.
७५	६०	२४-०८-१९७७	००१
७६	६०	२५-०८-१९७७	०१६
७७	६१	२६-०८-१९७७	०३१
७८	६१-६२	२७-०८-१९७७	०४७
७९	६३ से ६७	२८-०८-१९७७	०६५
८०	६७-६८	२९-०८-१९७७	०८५
८१	६९	३०-०८-१९७७	०९९
८२	६९-७०	३१-०८-१९७७	११६
८३	७० से ७७	०१-०९-१९७७	१३२
८४	७८ से ८०	०२-०९-१९७७	१४६
८५	८१ से ८४	०३-०९-१९७७	१६३
८६	८४ से ८७	०४-०९-१९७७	१८१
८७	८८ से ९०	०६-०९-१९७७	२००
८८	९०-९१	०७-०९-१९७७	२१९
८९	९१-९२	०८-०९-१९७७	२३६
९०	९३	०९-०९-१९७७	२५३
९१	९३-९४	१०-०९-१९७७	२६९
९२	९५-९६	११-०९-१९७७	२८६
९३	९६-९७	१२-०९-१९७७	३००
९४	९८	१३-०९-१९७७	३१८
९५	९९-१००	१५-०९-१९७७	३३७
९६	१००	१६-०९-१९७७	३५३

९७	१०१	१७-०९-१९७७	३६९
९८	१०२	१८-०९-१९७७	३८८
९९	१०२ से १०४	१९-०९-१९७७	४०५
१००	१०४ से १०५	२०-०९-१९७७	४२३
१०१	१०६	२१-०९-१९७७	४३८
१०२	१०६ से १०८	२२-०९-१९७७	४५६
१०३	१०८-१०९	२३-०९-१९७७	४७३
१०४	१०९	२४-०९-१९७७	४८९
१०५	११०	२५-०९-१९७७	५०४
१०६	११०	२६-०९-१९७७	५२२
१०७	११०	२८-०९-१९७७	५३८
१०८	१११-११२	२९-०९-१९७७	५५४
१०९	११२-११३	३०-०९-१९७७	५७०
११०	११३-११४	०१-१०-१९७७	५८५
१००	११५	२०-१२-१९६७	६०१
११२	११५-११६	०३-१०-१९७७	६२०
११३	११६	०४-१०-१९७७	६३४
११४	११६	०६-१०-१९७७	६५१

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

कलशामृत

अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
'श्री समयसार-कलश' पर शब्दशः प्रवचन
(भाग - 3)

श्रावण शुक्ल १०, बुधवार, दिनांक २४-०८-१९७७
कलश-६०, प्रवचन-७५

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था
ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदासः।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः
क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावम्॥१५-६०॥

'ज्ञानात् एव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः क्रोधादेः च भिदा प्रभवति' क्या कहते हैं? मूल बात है। **शुद्ध स्वरूपमात्र वस्तु को अनुभवन...** 'ज्ञानात्' की व्याख्या। शुद्ध चैतन्यस्वरूप, ऐसी वस्तु, उसका अनुभव करते ही **चेतनस्वरूप, उससे प्रकाशमान है...** शुद्ध चैतन्यस्वरूप के सन्मुख होकर, आश्रय लेकर अनुभव करते हैं, वहाँ चैतन्य प्रकाशमान होता है। आहाहा! समझ में आया? शुद्धस्वरूपमात्र, भाषा ऐसी है न? शुद्ध चैतन्य, पुण्य और पाप के विकल्प से भी भिन्न, ऐसी चैतन्य शुद्ध वस्तु का अनुभव करने पर, उसका आश्रय लेकर अनुभव करने पर, चैतन्य पर्याय में प्रकाशमान होता है, उसका नाम भेदज्ञान और सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

लाख करोड़ शब्दों का ज्ञान हो या चाहे शुक्ललेश्या की क्रिया दया, दान, व्रत की हो, उससे भगवान चैतन्यस्वरूप भिन्न अन्दर है, ऐसे शुद्ध चैतन्य का, ध्रुवस्वरूप भगवान का अनुभव, वह पर्याय है। शुद्ध चैतन्य द्रव्य ध्रुव है, उसके आश्रय से अनुभव होता है, वह पर्याय है.. ! आहा.. ! आहा.. ! अनुभव करने पर.. मुद्दे की रकम है। आहाहा!

एक बार 'आनन्दघनजी' कहते थे, अहो! मुझे स्वरूप का विरह रहा। 'विरह व्यथा कछु ऐसी व्यापी, मानो कोई वारति वेजा (छुरा)' अन्दर में चोट लगी हो, ऐसा दुःख होता है। विरह व्यथा। भगवान शुद्धचैतन्यस्वरूप, इसके विरह की व्यथा—पीड़ा मानो कोई मेरे में घाव लगाता हो। आहा.. ! 'अन्त को अन्त कहाँ ले लो प्यारे, चाहे तो जीव तुं लेजा' अब जीव का स्वरूप प्राप्त हो, अब हमें दूसरी कोई चीज़ नहीं। समझ में आया? आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं, शुद्धस्वरूपमात्र, मात्र में कुछ राग नहीं, पर्याय नहीं, शुद्धस्वरूपमात्र त्रिकाली मात्र.. आहा.. ! जिसको परमार्थ आत्मा कहते हैं। पर्याय, वह परमार्थ आत्मा नहीं, वह तो व्यवहार आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? शुद्धस्वरूप मात्र वस्तु, वस्तु कहा न? 'अनुभव करते ही...' इस ओर का – आनन्दस्वरूप की ओर का अनुभव होने पर, चैतन्यस्वरूप अनुभव से प्रकाशमान है। आहाहा! दूसरे किसी प्रकार से आत्मा प्रकाशमान नहीं होता। पर्याय में अनुभव होने पर पर्याय में चेतन प्रकाशमान होता है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : प्रकाशशक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाशशक्ति दोपहर को चलती है। यहाँ प्रकाश (ये) चेतन का प्रकाश लेना है। वेदन की अपेक्षा यहाँ नहीं। दोपहर को वेदन की अपेक्षा है। यहाँ प्रकाश होता है। चैतन्यस्वरूप का अनुभव करने पर प्रकाश होता है। समझ में आया? आहाहा!

[नित्य] अविनश्वर ऐसा जो शुद्ध जीवस्वरूप... अब भेद बताते हैं। नित्य शुद्ध चैतन्यस्वरूप ध्रुव और **[क्रोधादेश्च]** पुण्य और पाप के सभी भाव स्वरूप से विपरीत क्रोध में गिनने में आते हैं। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के भाव हों, उनको यहाँ क्रोध में गिनने में आया है। (क्योंकि) स्वभाव से विरुद्ध हैं और उसके प्रेम में भगवान के प्रति क्रोध है उसको। आहाहा! मुद्दे की रकम की बात है।

कहते हैं, अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप ध्रुव का प्रेम छोड़कर, अन्तर की धुन, लगन छोड़कर, पुण्य परिणाम में जिसकी लगन लगी है। आहाहा! उसको चेतन के प्रति अरुचिरूपी क्रोध है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? **[क्रोधादेश्च] जितने अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणाम...** व्याख्या की। क्रोधादि माने क्या? जितना अशुद्ध चेतनारूप रागादिरूप परिणाम। आहाहा! उनसे **भिन्नपना [प्रभवति]... अनुभव से इसका भिन्नपना [प्रभवति]...** आहाहा! समझ में आया? पहले इसका ज्ञान तो करे कि मार्ग तो यह है। समझ में आया?

चौरासी लाख योनियों में भ्रमते-भ्रमते, अनन्त भव करते-करते प्राणी दु:ख में पिल रहा है। तो जिसको आत्मा को दु:ख से भिन्न अनुभव, सम्यग्दर्शन करना हो उसे क्या करना? शुद्धस्वरूप जो भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में जो अशुद्ध परिणमन है, अशुद्ध तो पुण्य-पाप दोनों को कहते हैं। आहाहा! यह अशुद्ध पर्याय से भिन्नपना होता है। अब थोड़ा कहते हैं।

भावार्थ इस प्रकार है, कि साम्प्रत (-वर्तमान में) जीवद्रव्य... वर्तमान जीवद्रव्य। साम्प्रत अर्थात् वर्तमान। द्रव्य तो शुद्ध त्रिकाल है। जीवद्रव्य ये तो शुद्ध त्रिकाल है। परन्तु वर्तमान जीवद्रव्य पर्याय में **जीवद्रव्य रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणमा है,...** समझ में आया? भगवान चिदानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञायकरस, वह तो त्रिकाली शुद्ध है, परन्तु उसकी पर्याय में-अवस्था में-हालत में-दशा में, ये सब शब्द एक ही हैं, अशुद्ध चेतनारूप... हैं? चेतनारूप परिणमा है। पर्याय में मलिनतारूप परिणति है। आत्मा शुद्ध है तो पर्याय भी शुद्ध है अनादि से, ऐसा नहीं। समझ में आया? एक शुद्धद्रव्य होने पर भी वर्तमान दशा में, वर्तमान पर्याय में, अशुद्धरूप परिणमन हुआ है। आहाहा! दु:खरूप दशा का परिणमन हुआ है, ऐसा कहते हैं। है तो आनन्दमय प्रभु। आहाहा! यह चाहे तो राजा हो या चाहे तो सेठिया हो या चाहे तो देव हो, यह पर्याय मलिनरूप परिणम रहा है। समझ में आया? यह अशुद्धरूप परिणमा है।

सो ज्ञान भिन्न क्रोध भिन्न ऐसा अनुभवना अति ही कठिन है। आहाहा! क्यों कठिन कहा? कि पुण्य-पापरूप परिणमा है तो यह परिणमन इसकी पर्याय में है। परन्तु

उसका भिन्न करना महा कठिन है। यह शरीर, वाणी, मन आदि तो भिन्न हैं ही, उनको भिन्न नहीं करना। यह तो अपनी पर्याय में अशुद्ध पुण्य-पापभावरूप, इसकी अवस्था में—दशा में परिणमन हुआ है। आहाहा! पर के कारण नहीं। अपनी पर्याय में अपनी भूल से, अपने स्वभाव का अनादर करने से विकारी परिणामरूप पर्याय-अवस्था हो रही है। आहाहा! इस कारण से, इस कारण से अर्थात् अशुद्धरूप परिणमन, पुण्य-पाप का परिणमन पर्याय में है। इस कारण। समझ में आया? शरीर, वाणी, मन और कर्म तो उसमें है ही नहीं। इसलिए उनको भिन्न करना कठिन नहीं है, वे तो भिन्न ही हैं। समझ में आया? जो दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम जो हैं, यह अशुद्धपर्याय में हैं। हैं, इसलिए भिन्न करना कठिन है। समझ में आया? और करना है तो यह करना है, बाकी सब बातें फालतू हैं। आहाहा! यह परिणमा है। आहाहा! है न?

ज्ञान क्रोधरूप परिणमा है; सो ज्ञान भिन्न... आहाहा! **सो तो ऐसा प्रतिभासता है...** क्या कहते हैं? ज्ञान में ऐसा भासित होता है। प्रतिभास-ज्ञान में ऐसा भासित होता है कि **ज्ञान क्रोधरूप परिणमा है;...** आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप विकाररूप परिणमा है, उसको ऐसा भासित होता है। समझ में आया? वीतराग का मार्ग अलौकिक है, भाई! आहाहा! परमात्मा कहते हैं... सन्त कहते हैं, यह परमात्मा कहते हैं; परमात्मा कहते हैं, यह सन्त कहते हैं। सन्त कहते हैं, यह भी वस्तुस्वरूप है — ऐसा कहते हैं। भगवान! तू तो शुद्धस्वरूप आनन्दकन्द है न। ऐसा होने पर भी तेरी वर्तमान दशा-अवस्था में मलिनपने की दशा पर्याय में परिणम रही है। यह कर्म से नहीं और जो तेरी चीज़ अन्दर है, उसमें नहीं है। तेरी पर्याय में—अवस्था में विकार का परिणमन है। तो उससे भिन्न करना है। आहाहा!

पर्याय में... अवस्था समझते हो? अवस्था-हालत। उसमें पुण्य-पाप के भाव हैं। अपनी पर्याय परिणमी है। पर्याय, हों! द्रव्य नहीं। सुकौशलजी! रतनचन्दजी कहते हैं न? रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं, 'प्रवचनसार' में (ऐसा कहा है), शुभरूप परिणमें तो शुभरूप हो जाता है। यह तो पर्याय की बात है। समझ में आया? जब आत्मा शुभरूप से परिणमता है तो शुभरूप पर्याय से तन्मय होता है। पर में शुभ है और अपनी पर्याय में नहीं, ऐसा नहीं है। आहा..! अशुभरूप होती है तो पर्याय अशुभरूप से तादात्म्य है-तद्रूप है। पर्याय में, हो! द्रव्य में नहीं।

मुमुक्षु : यह तो नया अर्थ किया आपने।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उसमें है ऐसा। कहते हैं न, यह क्या कहा? साम्प्रत जीवद्रव्य। है तो जीवद्रव्य वस्तु। रागादि अशुद्ध चेतनारूप पर्याय में परिणमा है। आहाहा! बहुत गड़बड़। अभी तो सत्य का निर्णय करने में असत्य ज्ञान से किस प्रकार निर्णय हो?

भावार्थ **ऐसा प्रतिभासता है कि ज्ञान...** आत्मा विकाररूप परिणमा है। मानो विकाररूप हो गया है। यह तो पर्याय में विकार है। वस्तु ऐसी हो गयी है—ऐसा अज्ञानी को भासित होता है। शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द तो अनादि-अनन्त शुद्ध निर्मल ही है। चाहे तो एकेन्द्रिय में हो, निगोद में हो, नवमीं ग्रैवेयक में हो, द्रव्यलिंगी साधु पंच महाव्रत पालता हो तो इस अशुद्धरूप परिणमन में भगवान तो भिन्न अन्दर शुद्ध चैतन्य ही है। समझ में आया? आहाहा! है? **ऐसा प्रतिभासता है कि ज्ञान...** अर्थात् आत्मा विकाररूप परिणमा है। मानो आत्मा विकाररूप हो गया है। ऐसा अज्ञानी को भासता है। पर्याय में... समझ में आया? क्यों कि पर्याय ऊपर दृष्टि है, तो उसके (पर्याय के) अस्तित्व में विकार हुआ है तो मानो आत्मा विकाररूप हो गया, ऐसा मानता है। द्रव्य तो द्रव्य है, शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द, वह तो त्रिकाली ज्ञायकभावरूप रहा है।

मुमुक्षु : तो क्या द्रव्य से पर्याय भिन्न है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न है। क्षेत्र से अलग है, भाव से अलग है, शक्ति से अलग है, फल से अलग है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय में संसार, पर्याय में मोक्षमार्ग, पर्याय में सिद्ध, द्रव्य में द्रव्य तो त्रिकाल एकरूप है। समझ में आया? आहाहा! यह भेदज्ञान है। आहाहा! अरे! बाकी कर-करके मर गया, व्रत में, तप में, भक्ति में, पूजा में, यह सब क्लेश है, राग है, क्लेश है, दुःख है।

मुमुक्षु : आप दुःख कहते हो परन्तु हमें तो आनन्द आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में ही आनन्द नहीं आता। मानता है। कहा नहीं? बालकों को नहीं होता? विष्टा में लिपटते हैं और आनन्द मानते हैं। आहाहा!

यहाँ भगवान कहते हैं, प्रभु! यह तो मानो आत्मा विकाररूप हो गया (ऐसा लगता है) पर्याय में है परन्तु मानो वस्तु ही (ऐसी हो गयी है)। कारण कि वस्तु की खबर नहीं

है। आहाहा! **सो ज्ञान भिन्न क्रोध भिन्न...** भगवान भिन्न और विकार भिन्न। आहाहा! करना तो यह है। राग और आत्मा भिन्न हैं। उसमें राग ऊपर से लक्ष हटाकर ज्ञायक का लक्ष लगाना, तब राग और आत्मा भिन्न हो जाते हैं और ये भिन्न हुआ, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। पर्याय में। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो (ऐसा कहते हैं कि) शुभयोग ये मोक्ष का मार्ग है। अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! यहाँ तो शुभयोग अशुभ परिणति है, यह कहा। अशुद्ध परिणति कहा शुभयोग को। इससे आत्मा को भिन्न करना है, यह कठिन है। कारण कि पर्याय में अशुद्धरूप परिणमन है और दृष्टि पर्याय ऊपर, राग ऊपर है। पर्याय के पीछे पूरा भगवान चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, जिनस्वरूपी वीतरागमूर्ति विराजता है। आहाहा! 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म'। वीतराग वाणी का मर्म यह है कि तू तो जिनस्वरूप है न प्रभु! तेरी नात की जात का तू है। समझ में आया? मेरी नात की चीज़ तू है कुजात का नहीं। जड़ है ये कुजात है। तू तो मेरी जात का है न, प्रभु! परमात्मा ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा प्रतिभासता है मानो आत्मा ही विकाररूप हो गया हो, **सो ज्ञान भिन्न क्रोध भिन्न...** क्रोध शब्द से विकार। चाहे तो दया, दान का विकल्प हो। उसरूप परिणमा है तो आत्मा भिन्न और अशुद्धता भिन्न, ऐसा अनुभवना... आहाहा! **अति ही कठिन है।** अति कठिन नहीं कहा। अति ही कठिन कहा है। आहाहा! समझ में आया? **उत्तर इस प्रकार है कि साँचा ही कठिन है,...** तेरी बात सच्ची है। सच में सच ही कठिन है। **पर वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर...** आहाहा! शुद्ध चैतन्यस्वरूप विचारने पर, राग का विचार छोड़ने पर, आहाहा..! शुभराग के विचार का विकल्प छोड़ने पर, शुद्ध चेतन का विचार करने पर इस तरफ शुद्ध का ज्ञान करने पर **भिन्नपनेरूप स्वाद आता है।** आहाहा! राग और अशुद्धपने से भगवान भिन्न चैतन्यमूर्ति प्रभु विराजता है। आहाहा! चम्पालालजी आये हैं? तुम्हारा चम्पालाल यहाँ बैठा है। ठीक। कम सुनायी देता है? अच्छा। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो पर शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, लक्ष्मी से भिन्न नहीं करना, ये तो भिन्न ही हैं। वे तो जुदा ही हैं। क्योंकि आत्मा में एक ऐसी शक्ति है कि परद्रव्य के ग्रहण-त्याग

से तो वह शून्य है। कर्म, वाणी, शरीर। स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लक्ष्मी का ग्रहण और त्याग से तो शून्य है। मात्र पर्याय में अशुद्धता का परिणमन है, उसकी अस्ति है। उसकी (पर की) तो नास्ति है। आहाहा! समझ में आया? इसकी पर्याय-अवस्था-वर्तमान हालत में; त्रिकाली द्रव्य को छोड़कर वर्तमान हालत में अशुद्ध परिणमन है। इस अशुद्ध परिणमन से भगवान आत्मा को भिन्न करना कठिन है। कठिन होने पर भी शुद्धस्वरूप का विचार करने से आनन्द का स्वाद अशुद्धता से भिन्न होता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग (है) आहाहा! वीतराग सिवाय कहीं नहीं। ओहोहो!

परमात्मा की अकषाय करुणा। अकषाय करुणा। उनकी वाणी निकली और वाणी में यह भाव आया। भगवान! तेरा द्रव्य है, वह तो पवित्र है न, प्रभु! तेरी पर्याय में—अवस्था में—अंश में; अंशी में नहीं, अंशी द्रव्य में नहीं, आहाहा! एक वर्तमान अंश में अशुद्धता है, वह एक समय की है। तीनों काल में जीव की संसारदशा एक समय की है। दूसरे समय दूसरी, तीसरे समय तीसरी, उसकी मुद्दत एक समय की है। भगवान आत्मा की मुद्दत त्रिकाल है। समझ में आया? आहाहा! कठिन है परन्तु भगवान! तेरे घर की चीज़ है न, ये कहते हैं। राग से भिन्न करना कठिन है, परन्तु तू वस्तु है, ऐसे शुद्धचैतन्य का ज्ञान करने से, विचार करने से तुझे राग से भिन्न शुद्ध चेतन के आनन्द का स्वाद आता है, तब भिन्न हो जाता है। समझ में आया? आहाहा!

वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर... आहाहा! ऐसी क्रिया करने से, ऐसा यहाँ नहीं लिया। भाई! कि दया करने से (हो)। वह तो अशुद्ध परिणमन है। उससे तो भिन्नता करना है। समझ में आया? अशुद्धपने से भिन्न करने से **वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर...** आहाहा! **भिन्नपनेरूप स्वाद आता है।** आहाहा! राग से, अशुद्ध पर्याय से शुद्ध चैतन्य वस्तु का ज्ञान और विचार करने पर शुद्ध चैतन्य का अतीन्द्रिय स्वाद पर्याय में आता है। इससे राग का स्वाद भिन्न है, ऐसा भासित हो गया। समझ में आया? आहाहा! ऐसी कठिन बात है, इसलिए लोगों को... परन्तु इसका कोई साधन (है सही)? अब ऐसा कहते हैं। साधन ही है यह क्योंकि आत्मा में साधन नाम की एक शक्ति है, ये ४७ शक्ति में आती है - करणशक्ति। कर्ता, कार्य, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण ऐसी भगवान आत्मा

में ध्रुव में शक्तियाँ ध्रुवरूप पड़ी हैं। इनमें करण नाम की शक्ति आत्मा में ध्रुवरूप से विराजमान है। आहाहा! उस ओर का ज्ञान और विचार करने से करणशक्ति ही साधनरूप होकर परिणमित होती है। समझ में आया? करणशक्ति साधन होकर आनन्द का स्वाद में सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा!

झगड़ा यह है कि दूसरा लिया है? 'पंचास्तिकाय' में भिन्न साध्य-साधन भाव (लिया है)? राग, यह भिन्न साधन है और निश्चय साध्य भिन्न है। भगवान! यह तो भिन्न साधन राग है, उसमें निश्चय साधन का आरोप देकर साधन का ज्ञान कराया है। समझ में आया? आहाहा! मार्ग बहुत बापू! ऐसा... आहाहा!

कहते हैं कि (वस्तु का शुद्ध स्वरूप) विचारने पर भिन्नपने रूप स्वाद आता है.. कैसा है भिन्नपना? '**कर्तृभावं भिन्दती**' आहाहा! (कर्तृभावं) **कर्म का कर्ता जीव ऐसी भ्रान्ति, उसको [भिन्दती] मूल से दूर करता है।** कर्म का कर्ता कहो या राग का कर्ता, यह भ्रान्ति दूर हो जाती है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव का ज्ञान अन्तर्मुख होकर करने से आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द जो ध्रुवरूप था, उसका पर्याय में स्वाद आया तो राग के कर्तृत्व की भ्रान्ति का नाश हो जाता है। राग मेरा कार्य है अर्थात् राग मेरा कर्तव्य है, यह भ्रान्ति-मिथ्यात्व का नाश हो गया। आहाहा! शुभभाव मेरा कर्तव्य है और मेरा कार्य है, इस भ्रान्ति का नाश हो गया, आहाहा! ऐसा मार्ग है, भगवान! लगता है, कहा न, कठिन है। बापू! कठिन तो है न। क्योंकि इसकी पर्याय में अशुद्धता हुई है। पर में अशुद्धता हुई हो तो भिन्न करना (न पड़े)। आहाहा! वर्तमान दशा में मलिन पर्याय शुभ-अशुभरूप हुई है, परिणति है, अस्ति है। जैसे द्रव्य अस्ति शुद्ध त्रिकाली है, जैसे द्रव्य शुद्ध त्रिकाली पवित्र आनन्दघन है, ऐसी पर्याय में अशुद्धता की अस्ति है। आहाहा! अस्ति समझे? हयाती। उस अस्ति में पूर्ण अस्ति का विचार करने पर... आहाहा! एक समय की अशुद्धता के है पने का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली हैरूप, मौजूद चीज़ ध्रुवरूप आनन्दघन प्रभु विराजता है, ऐसी अस्ति का विचार-ज्ञान करने से अशुद्धता के कर्तापने की भ्रान्ति नाश को प्राप्त होती है। समझ में आया? इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। धर्म का... क्या आया? महल की पहली सीढ़ी। मोक्षमहल की पहली सीढ़ी। मोक्षमहल की पहली सीढ़ी। आहाहा! यह बात अपूर्व है, भगवान!

अपना स्वभाव चैतन्यघन ध्रुव अकृत्रिम अनकराया ऐसे परिणमन की पर्यायरहित चीज़ है। आहाहा! इस वस्तु का विचार करने पर, यह पर्याय हुई। शुद्ध ध्रुव का विचार करने पर, ज्ञान की पर्याय उस ओर झुकने से राग से भिन्न अपना स्वाद आता है, उसका नाम आत्मा का प्रकाश-आत्मज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? 'कर्म का कर्ता जीव' ऐसी भ्रान्ति, उसको मूल से दूर करता है। मूल से उखाड़ती है। '**भिन्दती**' आहाहा! गाय होती है न? गाय। वे घास खाती है, वह ऊपर से खाती है, मूल को रहने देती है। उसका स्वभाव ऐसा है और गधे का स्वभाव ऐसा है कि वह घास को मूल से ऊखाड़ कर खाता है। ऐसे सम्यग्ज्ञानरूपी गधा की उपमा, ये नहीं, यहाँ ज्ञान की उपमा, ज्ञानी धर्मात्मा राग को मूल में से उखाड़ता है। समझ में आया? ऐसा कहा, देखो न! 'मूल से दूर करता है।'

दृष्टान्त कहते हैं '**एव ज्वलनपयसोः औष्ण्यशैत्यव्यवस्था ज्ञानात् उल्लसति**' आहाहा! **[एव] जिस प्रकार [ज्वलन] अग्नि पानी, उनका उष्णपना शीतपना,...** टीकाकार ने गजब की बात की है! क्या कहते हैं? जैसे अग्नि और पानी। अग्नि का उष्णपना और पानी का शीतलपना, इसकी **[व्यवस्था]** व्यवस्था अर्थात् भेद **[ज्ञानात्]** निजस्वरूपग्राही ज्ञान से प्रगट होता है। आहाहा! क्या कहते हैं? पानी ठण्डा है और उष्णता-गर्मी अग्नि की है। ऐसा ज्ञान, जिसको स्वरूप का ज्ञान हुआ है, निज स्वरूप का ज्ञान। निजस्वरूपग्राही, है? आहाहा! अज्ञानी को ऐसे व्यवहार का ज्ञान भी अच्छा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दृष्टान्त देते हैं। समझ में आया? शाक का उदाहरण। शाक को क्या कहते हैं? तरकारी। यहाँ कहते हैं... यह तो वीतराग परमानन्द की बात है, प्रभु! आहाहा! वीतराग दरबार में तो इन्द्र सुनते हैं, बाघ, नाग सुनते हैं, यह वाणी कैसी होगी? भाई!

परमात्मा ऐसा कहते हैं, जिसने अशुद्धता के परिणाम से भिन्न होकर शुद्ध चैतन्य का विचार-ज्ञान हुआ तो राग से भिन्न आत्मा के आनन्द का स्वाद आया, यह स्वाद की स्थिति में राग के कर्तापने की भ्रान्ति नाश पाती है। आहाहा! और जैसे... दृष्टान्त **अग्नि पानी,...** अग्नि उष्ण है और पानी शीत है। उसका भेद **निजस्वरूपग्राही ज्ञान के द्वारा प्रगट होता है।** आहाहा! अग्नि उष्ण है और पानी ठण्डा है, ऐसा ज्ञान भी, जिसको

स्वरूप का ज्ञान है, उसको उसका भेद का ज्ञान है। अज्ञानी ऐसा कहता है कि ये उष्ण है और ये ठण्डा है, यह यथार्थ ज्ञान उसको है नहीं। आहाहा! बात कहाँ तक ले जाए? समझ में आया?

[**ज्ञानात्**] शब्द है न? तो [**ज्ञानात्**] का अर्थ अकेला क्षयोपशमज्ञान नहीं। निजस्वरूपग्राही ज्ञान। जिसने राग से भिन्न होकर आपने ज्ञायकस्वभाव का आत्मज्ञान, स्व का ज्ञान किया है। निजस्वरूपग्राही-निज शुद्धस्वरूप को जाननेवाला-ग्राही ज्ञान (हुआ है) उसको ये उष्ण है और ये ठण्डा है, उसका व्यवहारज्ञान सच्चा होता है।

मुमुक्षु : व्यवहार से गरम है, वैसे तो ठण्डा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ठण्डा है, परन्तु निजस्वरूपग्राही ज्ञानी को ही उसका ज्ञान सच्चा होता है। अज्ञानी को ये व्यवहार का ज्ञान सच्चा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? 'राजमलजी' ने ऐसा अर्थ किया है। [**ज्ञानात्**] है न? ज्ञानस्वरूपी भगवान। मूल पाठ में है न? '**ज्ञानात् एव ज्वलनपयसोः**' पहली कड़ी है। निजस्वरूपग्राही। जो राग से भिन्न होकर अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप स्वभाव को जाननेवाला ज्ञान जिसको हुआ, उसको ये उष्णता अग्नि की है और शीतलता पानी-जल की है — ऐसा व्यवहारज्ञान निजस्वरूपग्राही आत्मज्ञानी को होता है। आहाहा! समझ में आया? है? ऐसा नहीं कहा कि क्षयोपशमज्ञान होता है, उसको ठण्डे और गरम का ज्ञान होता है। वह तो अज्ञान है। आहाहा! क्या कहते हैं?

स्व-परप्रकाशक ज्ञान का स्वभाव है तो जिसको स्वप्रकाशक ज्ञान हुआ, उसको परप्रकाशक ज्ञान सच्चा होता है। समझ में आया? यह तो मार्ग अलौकिक है, बापू! अभी तो सुनने मिलना ही मुश्किल हो गया और सत्य बात का विरोध करते हैं। अरे! प्रभु! निज अशुद्धता का स्वाद लेने के लिये ये सत्य का विरोध करता है। शुभभाव से धर्म होता है। अरे! भगवान! यह पर्याय की अशुद्धता शुद्धता का कारण होती है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं। निजस्वरूप को जाननेवाला ज्ञान। इस ज्ञान द्वारा उष्णता और ठण्डे का ज्ञान प्रगट होता है। कहने का आशय तो आगे ले जाना है। ऐसे निजस्वरूपग्राही ज्ञान हुआ उसको अशुद्धता है, ऐसा उसका पर-प्रकाशक ज्ञान सच्चा होता है। समझ में आया?

११वीं गाथा में कहा है न ? भूतार्थ भगवान त्रिकाली आनन्दस्वरूप प्रभु के आश्रय से जो ज्ञान हुआ, वह तो निश्चय का आश्रय हुआ। फिर १२वीं गाथा में कहा, विरोधी भाषा दिखती है। व्यवहार देसिदा-व्यवहार का उपदेश करना। ऐसा अर्थ है नहीं। वहाँ तो टीका में 'अमृतचन्द्राचार्य' कहते हैं, जिस समय उसको आत्मज्ञान हुआ, उसी समय जो रागादिक भाव बाकी रहे, उनका ज्ञान करना, यह व्यवहार से प्रयोजनवान है। ज्ञान करना, यह प्रयोजनवान है। परन्तु जिसको निश्चय का ज्ञान हो, उसको व्यवहार का ज्ञान जाना हुआ प्रयोजनवान है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं। जिसको स्वरूपग्राही ज्ञान है, आहाहा! ज्ञान का ज्ञान हुआ है, ज्ञानस्वरूपी भगवान का ज्ञान अन्तर्मुख होकर हुआ है। ये स्वरूपग्राही ज्ञान, पानी ठण्डा है और अग्नि गरम है, ऐसा पर-प्रकाशक का वास्तविक ज्ञान उसको होता है। समझ में आया ? यहाँ तो ये कहा न कि भ्रान्ति का नाश होता है। बाद में राग का ज्ञाता होता है, ऐसा कहना है। राग बाकी है न ? सम्यग्दृष्टि को कहीं राग छूट गया है और वीतरागी हो गया है, ऐसा है नहीं। राग की एकता छूट गयी और आत्मा की एकता हुई। अभी स्थिरता करना बाकी है। राग आता है तो कहते हैं कि राग का ज्ञान, निज स्वरूपग्राही ज्ञानवाले को राग का व्यवहार सच्चा ज्ञान है। आहाहा! यह राग को जानता है, उसको व्यवहार कहते है। आहाहा! समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बातें हैं इसमें।

शुद्ध चैतन्यघन निज स्वरूप का जिसने ज्ञान किया, ग्रहण किया, ज्ञान किया उसको ही अग्नि की उष्णता और पानी ठण्डकता का ज्ञान होता है। ऐसे निजस्वरूप का ज्ञान हुआ उसके रागादिकभाव हैं, उसका व्यवहार ज्ञान है, यह उसको होता है। समझ में आया ? ऐसी भारी बातें हैं, भाई! आहाहा! प्रभु! तेरी बलिहारी है, नाथ! तू कौन है ? तुझे तेरी कीमत नहीं है और दूसरी चीज़ की कीमत की महत्त्वता में तेरी महत्त्वता खो बैठा। आहाहा! पुण्य और पाप और पुण्य-पाप का बन्धन और बन्धन का फल ये सब, इनकी महत्त्वता में तू तेरी महत्ता तू खो बैठा और जिसको अपनी महत्ता का भान हुआ, उसके बाद जिसे बाहर की चीज़ का ज्ञान होता है, उसको यथार्थ ज्ञान होता है। समझ में आया ? आहाहा!

लक्ष्मी पर है, स्त्री, शरीर पर हैं, उनका आत्मा पर है, राग भी पर है। ऐसा निजस्वरूपग्राही ज्ञानी को पर का ज्ञान यथार्थ होता है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है। लोगों को आकर लगता है। बापू! यह तो कहा, अति कठिन है। परन्तु अपना शुद्धस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु के अस्तित्व का ज्ञान करने जाता है तो राग से भिन्न आत्मा का स्वाद, यह इसका स्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! कहो, पण्डितजी! ऐसी बातें हैं। मार्ग तो ऐसा है, भाई!

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार अग्नि संयोग से पानी ताता (उष्ण) किया जाता है, फिर 'ताता पानी' ऐसा कहा जाता है, तथापि स्वभाव विचारने पर उष्णपना अग्नि का है,... यहाँ इसका स्वभाव नहीं है, यह बताना है, हों! उष्णपना हुआ तो अपनी पर्याय में है। यह बड़ी तकरार करता है कि अग्नि से पानी गर्म हुआ है। यहाँ ऐसी बात नहीं है। यहाँ तो उष्णपना अग्नि से हुआ है, ऐसा सिद्ध करना है। स्वभाव में उष्णपना नहीं है, उष्णता तो अग्नि के निमित्त से हुई है तो उष्णता अग्नि की है, ऐसा कहने में आया। समझ में आया? जैसे अपने में विकार हुआ, यह स्वभाव की दृष्टि से कर्म के सम्बन्ध से विकार हुआ है, ऐसा कहने में आता है। हुआ तो अपने (स्वभाव के) पुरुषार्थ की कमजोरी से। परन्तु निमित्त के आश्रय से हुआ तो निमित्त से हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

'ताता पानी' ऐसा कहा जाता है, तथापि स्वभाव विचारने पर उष्णपना अग्नि का है,... अग्नि का, देखो! किस अपेक्षा से? **स्वभाव विचारने पर...** ऐसा लिया है? पर्याय में उष्णता है, परन्तु स्वभाव का विचार करने पर उष्णता अग्नि की है। उसका स्वभाव नहीं। ऐसे भगवान आत्मा का स्वभाव विचारने पर, राग कर्म का है; आत्मा का नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह कोई बातें नहीं हैं, यह तो तत्त्व की बातें हैं। मूल मक्खन की बातें हैं। आहाहा! कल यह कहा था न?

गगनमण्डल में गौआं वियाणी वसुधा दूध जमायो,
माखण था सो विरला रे पाया, छाछे जगत भरमाया,
अबुधा सो जोगी गुरु मेरा, इन पद का करे रे निवेडा
इन पद का करे रे निवेडा, अबुध सो जोगी गुरु मेरा।

भगवान की वाणी आकाश में निकलती है, ॐध्वनि निकलती है न ? गौआ, गो शब्द मानें वाणी। गो शब्द का अर्थ भाषा भी होता है और गाय भी होता है। समझ में आया ? गो-गो शब्द है न ? तो भाषा भी होती है। यहाँ भाषा कहना है। गगनमण्डल में गौआ, भाषा निकली भगवान की। 'वसुधा दूध जमाया' वसुधा दुनिया के कान में पड़ी। आहाहा! 'माखन था सो विरला रे पाया संतो, छाछे जगत भरमाया' अज्ञानी तो पुण्य के परिणमन की भ्रमणा में घुस गया और ज्ञानी ने माखन पाया। राग से भिन्न मेरी चीज़ है, उसका स्वाद उसे आया। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा उपदेश कैसा ? सभा में बहुत मनुष्यों में (ऐसा उपदेश नहीं करना)। अरे..! मनुष्य एक होय के अनेक होय, यह भगवान हैं न ? आहाहा! और उनके समझने की लायकात है न।

यह तो एक बार नहीं कहा था ? अस्सी वर्ष का बुजुर्ग हो, उसे प्यास लगी हो। घर में दो हजार का घोड़ा-अश्व अथवा बैल हो, उससे कहे कि पानी लाओ, प्यास लगी हो। आठ वर्ष की बच्ची हो तो कहे, बेटा! पानी लाओ। बापूजी! पानी तो ऊपर है न। नहीं, नहीं। पाणियार के नीचे है वहाँ से ला। पाणियार होता है न ? पाणियार होता है न ? पाणियार क्या कहते हैं ? पानी भरते हैं। नीचे पानी रखते हैं न पोलाणमां ? छोटी लड़की हो तो ऊपर हाथ न पहुँचे। तो नीचे से लावे। यह जानता है कि मैं जो कहूँगा ये समझेगी। घोड़ा और बैल नहीं समझेगा। मींदड़ी घर में निकली हो तो मींदड़ी से नहीं कहे। मींदड़ी समझे ? बिल्ली। कुत्ता बैठा हो तो उसको नहीं कहे कि भाई! पानी लाओ। कहे ? बेटा! पानी लाओ।

उसी प्रकार यहाँ परमात्मा कहते हैं, हम शरीर को, जड़ से, राग से नहीं कहते। तू चैतन्यमूर्ति भगवान है न, इसको कहते हैं। आहाहा! समझने की योग्यतावाला प्राणी है न, उसको हम कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा! ऐसी बात है।

पानी तो स्वभाव से शीतल (ठण्डा) है... देखो! यहाँ स्वभाव लेना है न। नहीं तो गर्म हुआ, ये अपने से हुआ है, यह कहीं अग्नि से गर्म नहीं हुआ। परन्तु यहाँ स्वभाव लेना है। स्वभाव की अपेक्षा से अग्नि की उष्णता है—ऐसा कहने में आया है। पीछे आत्मा में उतारते हैं। हों! जैसे आत्मा की पर्याय में विकार है, यह अपने में है। यह तो पहले कह

दिया। पर्याय में अशुद्धता दया, दान, व्रत, भक्ति आदि की पर्याय अपने में है। कर्म से नहीं हुई। कर्म में नहीं हुई परन्तु जब स्वभाव का विचार करना हो तो त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, यह स्वभाव की अपेक्षा से विकार कर्म का है, ऐसा कहकर निकाल दिया है। छोड़ दिया है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, भाई! भाषा ऐसी कोई संस्कृत, व्याकरण ऐसी नहीं है। आहाहा! समझना तो इसका काम है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : बराबर समझ में आये ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ओहो! समझने के लिये तो कहा है। कहा है तो कैसे न समझे? आहाहा! पहले आया न? देह और आत्मा भिन्न कहा तो कौन अपनी चीज़ को भिन्न न समझे? कोई दीर्घ संसारी हो तो बात दूसरी है, ऐसा जयचन्द्र पण्डितजी ने अर्थ किया है। कलश में आता है न? 'समयसार'। दीर्घ संसारी हो, उसकी बात नहीं। दीर्घ संसारी तो इन्होंने अर्थ किया है। यहाँ तो सामने समझनेवाला भगवान आत्मा है न! आहाहा! उसका ज्ञान होना सहज है क्योंकि ज्ञानस्वरूप है। रागरूप है, ऐसी चीज़ अपनी नहीं। यहाँ तो जैसे पानी का गर्मपना अग्नि का कहा, वैसे विकार को कर्म का कहकर भिन्न पाड़ दिया। समझ में आया? कर्तापने की भ्रान्ति का नाश हुआ तो कर्म का कर्तापना मिट गया। तब राग का कर्तापना भी मिट गया... आहाहा! ऐसी बात है। कोई महिलाएँ न आयी हो और बाद में पूछे कि तुम क्या समझने गये थे? कुछ कहते थे? सूक्ष्म बापू! तेरे घर की बात है, भगवान! ये तो हमारे भागचन्दजी कहते हैं न? यहाँ तो भव के अभाव की बात है। भाई! बात तो ऐसी है। भव का अभाव न हो, वह क्या चीज़?

भव तो अनन्त बार किया। नरक में, निगोद में, स्वर्ग में। आहाहा! आठवें स्वर्ग का देव, जिसका आयुष्य ज्यादा, यह मरकर पशु गधे की कूख में जन्मे। सुना है? आठवाँ स्वर्ग है न? सहस्त्रार। अठारह सागर की स्थिति है। एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं, एक पल्योपम में असंख्यातवें भाग में असंख्य अरब वर्ष, ऐसा स्वर्ग का देव, कोई तिर्यंच में से शुभभाव से आया हो, कहा था न? बहुत भव स्वर्ग के लिये हैं। तो बहुत तो तिर्यंच में से आते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच-पशु की संख्या बहुत है। ये अठारह सागर की आयु पूरी करके... आहा..! क्या अठारह सागर की आयु और कहाँ ये सम्पदा!

भगवान! ये मरकर तिर्यंच गधा की, हिरण की कूख में, गाय की कूख में बच्चा होवे। आहाहा! यह भव! यहाँ तो भव के अभाव की बात है। भाई कहता था न? आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना भव का अभाव कभी नहीं होगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : भव का अभाव बातें करने से हो जाएगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : बातों से नहीं होगा, अन्दर भेदज्ञान करने से होगा। ऐसा कहते हैं। सुनने से भी नहीं होगा और सुनने जो परलक्ष्यी ज्ञान हुआ, उससे भी नहीं होगा। आहाहा! स्वलक्ष्यी ज्ञान से होगा भेदज्ञान होगा। ऐसी बात है। समझ में आया?

कहते हैं, पानी तो स्वभाव से लिया है न? **पानी तो स्वभाव से शीतल (ठण्डा) है, ऐसा भेदज्ञान विचारने पर उपजता है।** एक अग्नि का दृष्टान्त दिया। अब दूसरा दृष्टान्त। क्या कहते हैं शाक का? सब्जी। शाक का दृष्टान्त देते हैं। शाक कहते हैं न? तरकारी।

और दृष्टान्त—'एव लवणस्वादभेदव्युदासः ज्ञानात् उल्लसति' आहाहा! **जिस प्रकार खारा रस, उसका व्यंजन से भिन्नपने के...** लौकी.. लौकी कहते हैं न? लौकी का साग। इसमें खारास है, वह लौकी की नहीं, वह तो नमक की है-लवण की है। लवण का खारापन है, शाक का नहीं। समझ में आया? एक बार 'श्रीमद् राजचन्द्रजी' 'राणपुर' रहे थे। एग गाँव है। वहाँ मुमुक्षु इकट्ठे हुए थे। वहाँ लौकी का शाक कटोरी में आया। इन्होंने कहा, भाई! इसमें नमक बहुत है। देखकर, हों! लोगों को लगा, चाखे बगैर? देखो! पानी में जैसे लौकी पकायें और नमक ज्यादा पड़ जाए तो इसका रेशा टूट गया है। लौकी का रेशा टूट गया है। यह देखकर कहा कि नमक ज्यादा है, इसमें लवण ज्यादा है, इसका रेशा टूट गया है। बगैर खाये। समझ में आया? लौकी का टुकड़ा होता है न? ऐसा एक सा हो पानी में पकायें यदि नमक ज्यादा पड़ जाये तो ऐसा टूट जाता है। ख्याल में आ जाता है कि नमक ज्यादा है। लोगों को ऐसा लगा कि 'श्रीमद्' ऐसा कहते हैं? देखो! चाखो। खारा है। नमक ज्यादा पड़ गया है। ज्ञानी थे न!

यहाँ कहते हैं कि नमक का खारापन और साक की भिन्नता किसको ख्याल में आती है। ये विशेष कहेंगे... (**मुमुक्षु :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ११, गुरुवार, दिनांक २५-०८-१९७७
कलश-६०, प्रवचन-७६

कलश टीका, 'कर्ता-कर्म अधिकार' ६० वाँ कलश चलता है। पहले दृष्टान्त दिया। पहले तो सिद्धान्त सिद्ध किया था कि रागादि जो विकल्प हैं, उनसे भगवान आत्मा को भिन्न करना। पहला बोल तो यह लिया। दो तो दृष्टान्त हैं। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, आत्म-अनुभूति प्रगट करनी हो तो कैसे होती है? राग विकल्प है, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग हो; उस राग से ज्ञायकस्वभाव का भिन्न विचार करना। यह आया था न? **वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर...** आया था न? आहाहा!

वस्तु जो भगवान आत्मा, वह त्रिकाली शुद्ध है। उसका विचार अर्थात् ज्ञान करने से जो अनादि से पर्याय और राग-द्वेष में ज्ञान झुक गया है, वह मिथ्यादृष्टिपना है। आहाहा! उसे छोड़कर शुद्धस्वरूप का विचार करने पर... शुद्धस्वरूप का ज्ञान करने पर... उसमें सिद्धान्त तो पहले लिया था। उसके दो दृष्टान्त हैं। समझ में आया? दृष्टि वहाँ तक बदलना कि चाहे तो स्त्री-कुटुम्ब हो या चाहे तो देव-शास्त्र-गुरु हो, उस ओर से भी लक्ष्य छोड़ना है और शुभराग जो भक्ति आदि देव-शास्त्र-गुरु के प्रति होता है, उस राग का भी लक्ष्य छोड़ना है। आहाहा!

यहाँ तो **शुद्धस्वरूप विचारने पर...** ऐसा आया न? इसका अर्थ सूक्ष्म था। कल थोड़ी साधारण बात की थी। शुद्धस्वरूप जो निज द्रव्य है, शुद्ध अखण्डानन्द है, वह त्रिकाली द्रव्य है, वह चेतन वस्तु है। उसमें भेद करना कि यह आत्मा गुणी है और उसमें यह गुण है, ऐसा भेद करना, वह परद्रव्य है। समझ में आया? परद्रव्य से भी लक्ष्य हटाना है। **शुद्धस्वरूप विचारने पर...** आया न? आहाहा! अपना द्रव्य जो वस्तु है, शुद्ध ध्रुव चैतन्य है, उसमें एक द्रव्य में ऐसा विकल्प उठाना कि मैं यह द्रव्य हूँ और गुण से मैं भेदरूप हूँ-यह विकल्प भी परद्रव्य है। आहाहा! यह तो चतुर्थ बोल याद आ गया है।

असंख्यप्रदेशी एकरूप क्षेत्र है, असंख्य प्रदेशी एकरूप क्षेत्र है, वह स्वक्षेत्र है और उसमें भेद-विकल्प विचारना कि यह प्रदेश यह है और यह प्रदेश यह है, वह परक्षेत्र है। उस परक्षेत्र से भी दृष्टि हटाना। और त्रिकाली चीज़ है, वह स्वकाल है। त्रिकाली चीज़ शुद्धस्वरूप कहा न? अकेला त्रिकाली शुद्धस्वरूप, वह स्वकाल है और उसमें अवस्था / पर्याय होती है, वह परकाल है। चाहे तो निर्मल पर्याय हो तो भी वह परकाल है। आहाहा! त्रिकाली एक समय में चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्य है; उसका विचार करने में, ज्ञान करने में वर्तमान (एक) समय की पर्याय भी परकाल में जाती है। परद्रव्य की पर्याय परकाल में जाती है। वह तो परकाल है, परन्तु अपना त्रिकाली शुद्ध चैतन्यस्वरूप विचारने पर एक समय की पर्याय भी परकाल में जाती है और त्रिकाली ज्ञायकभाव, स्वकाल में आता है। यह २५२ (वें) श्लोक में आता है। कलश टीका २५२ (कलश) है न?

यह तो **शुद्धस्वरूप विचारने पर...** आया, उसके ऊपर से विचार आया। आहाहा! यह आया न? २५२ है? बीच में है। **उनका लक्षण** - उनका लक्षण। है? स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव। परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल और परभाव। उनका लक्षण क्या? आहाहा! **उनका लक्षण-स्वद्रव्य...** है? भाई! भाई को मिला? वेणीप्रसादजी! यह बहियाँ तो तुम्हारी अपेक्षा दूसरे प्रकार की है। आहाहा! **स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्प मात्र वस्तु,...** आहाहा! अभेद शुद्धस्वरूप निर्विकल्प वस्तु, वह स्वद्रव्य। आहाहा! समझ में आया? **स्वक्षेत्र अर्थात् आधारमात्र वस्तु का प्रदेश,...** असंख्य प्रदेश में भेद भी नहीं। एकरूप स्वक्षेत्र त्रिकाल। **स्वकाल अर्थात् वस्तुमात्र की मूल अवस्था, स्वभाव-वस्तु की मूल की सहज शक्ति।**

अब कहते हैं **परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना,...** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र तो परद्रव्य है, उनकी भक्ति का भाव भी परद्रव्य है परन्तु एक द्रव्य में निर्विकल्प (वस्तु में) भेदकल्पना (करना), वह भी परद्रव्य है। परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना,... है? अपने द्रव्यस्वरूप में भेदकल्पना का विचार करना, वह परद्रव्य है। आहाहा! सूक्ष्म है। राजमलजी की टीका बहुत सूक्ष्म लिया है। आहा!

सम्यग्दर्शन-अनुभूति किस प्रकार होती है ? कि अपना स्वद्रव्य निर्विकल्प चीज़ शुद्धस्वरूप है। यहाँ कहा न ? शुद्धस्वरूप को विचारने पर। तो शुद्धस्वरूप तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है, वह शुद्धस्वरूप है। उसमें भेद करना कि यह त्रिकाली है और गुण का भेद करके विकल्प करना, वह भी परद्रव्य है। आहाहा! है ?

परद्रव्य, सविकल्प भेदकल्पना, वह परद्रव्य है। आहाहा! देव-शास्त्र-गुरु, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार आदि तो परद्रव्य है ही। भक्ति का रागभाव है, वह भी परद्रव्य है ही, परन्तु यहाँ अन्दर एकरूप चीज़ में, द्रव्यस्वभाव में भेद विचारना... समझ में आया ? कि यह ज्ञायक एकरूप है, उसमें यह द्रव्य है और यह गुण है, ऐसा भेदविकल्प करना, उसका नाम परद्रव्य है। समझ में आया ? आहाहा! अन्दर है या नहीं ? भाई! यहाँ तो अपने शुद्धस्वरूप को विचारने पर, आया न ? उसमें ऐसा सूक्ष्म भरा है। आहाहा!

परक्षेत्र (क्या) ? परद्रव्य का क्षेत्र तो भिन्न है ही, परन्तु यहाँ परक्षेत्र किसे कहते हैं ? **वस्तु का आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तुमात्ररूप से कहा था, वही प्रदेश सविकल्प भेद कल्पना...** यह असंख्य प्रदेश हैं, ऐसा विकल्प उठाना, वह भी परक्षेत्र है। आहाहा! समझ में आया ? अकेले अपने स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अस्ति और परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की नास्ति। यह तो एक स्थूल बात हुई।

अब यहाँ अपना द्रव्य जो अखण्ड अभेद शुद्धस्वरूप है, वह स्वद्रव्य है और उसमें यह आत्मा और यह गुण और यह पर्याय - ऐसा भेद उठाना, वह परद्रव्य है। असंख्य प्रदेशी स्वक्षेत्र एकरूप, निर्विकल्प असंख्य प्रदेशी एकरूप निर्विकल्प, वह स्वक्षेत्र है और उसमें ऐसा विचार करना कि यह असंख्य प्रदेश हैं, उसमें यह प्रदेश है और यह प्रदेश है, उसी-उसी (प्रदेश का विचार), हों! वैसा भेद उठाना, वह परक्षेत्र है। नन्दकिशोरजी! वहाँ कभी सुना नहीं। वकील स्वीकार तो करता है। आहाहा!

यहाँ तो अभी परदेव-शास्त्र-गुरु की भक्ति से सम्यक्त्व मिल जायेगा, (ऐसा मानते हों)। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा एकरूप द्रव्य है, उसमें भेद कल्पना करना, उससे भी समकित प्राप्त नहीं होता।

मुमुक्षु : समकित प्राप्त नहीं होता तो क्या प्राप्त होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प उठता है और लाभ माने तो मिथ्यात्वभाव होता है। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग है। ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ आया न? भूतार्थ आश्रित सम्यग्दृष्टि। भूतार्थ यह। त्रिकाल एकरूप शुद्धस्वरूप, जिसमें द्रव्य का भेद नहीं, क्षेत्र का भेद नहीं। आया देखो!

बुद्धिगोचररूप से कहा जाता है। अब परकाल (क्या)? द्रव्य की मूल की निर्विकल्प अवस्था वह स्वकाल है। क्या कहते हैं? अवस्था शब्द से यहाँ पर्याय नहीं लेना। द्रव्य की मूल की अभेद अवस्थ। त्रिकालरूप जो काल है, उसका नाम स्वकाल कहने में आया है। समझ में आया? बाह्य में तो एक समय की पर्याय को स्वकाल कहते हैं और पर की पर्याय को परकाल कहते हैं। यहाँ तो अब अन्दर में भेद करते हैं कि त्रिकाली चीज़ है, वह स्वकाल है। अवस्था शब्द से पर्याय नहीं लेना। अवस्थ, ऐसा लेना। द्रव्य की मूलरूप निर्विकल्प त्रिकाली अवस्थ। **वही अवस्थान्तर भेदरूप...** उसका पर्याय में लक्ष्य करना। अवस्थान्तर (अर्थात्) त्रिकाली द्रव्य से लक्ष्य छोड़कर अवस्था का लक्ष्य करना, वह परकाल है। समझ में आया? समझ में आये ऐसा है। भाषा तो सादी है, बापू! भाषा कहीं ऐसी (कठिन) नहीं है। आहाहा!

भगवान! तू अन्दर कैसा है, उसकी बात चलती है और सम्यग्दर्शन का विषय क्या है, वह कहते हैं। समझ में आया? अनुभूति / सम्यग्दर्शन का विषय क्या है? कहते हैं कि एकरूप द्रव्य है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। यह द्रव्य है और यह भेद है, ऐसा विकल्प करना, वह परद्रव्य है। वह व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ है। आहाहा! और भगवान असंख्यप्रदेशी क्षेत्र, एकरूप निर्विकल्प क्षेत्र है, उसे स्वक्षेत्र कहते हैं। उस स्वक्षेत्र में भेद से विचार करना कि यह प्रदेश है और यह प्रदेश है, ऐसा भेद करना, वह परक्षेत्र है। परक्षेत्र भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं।

तीसरी बात। त्रिकाली ज्ञायकभाव एक समय में ध्रुव है, वह स्वकाल है और वह अवस्थ वस्तु, उसमें अवस्थान्तर-पर्याय के अवस्थान्तर पर लक्ष्य जाना, वह परकाल है। आहाहा! कहो, डालचन्दजी! ऐसी बातें हैं। है? फिर चार में से निकालकर एकरूप लेना है। समझ में आया? **अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना...** इस समय की पर्याय है, ऐसी

कल्पना उठाना, वह परकाल है। स्वकाल तो त्रिकाली वस्तु को यहाँ स्वकाल कहने में आता है। आहाहा!

परभाव अर्थात् द्रव्य की सहज शक्ति के... वस्तु की सहज शक्ति,.. दोपहर को चलता है न? उस सहज शक्ति का पिण्ड है, वह स्वभाव है। सहज अनन्त शक्ति का पिण्ड, वह स्वभाव है और **पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना,...** आहाहा! उन अनन्त शक्तियों में से एक शक्ति का भेदरूप विचार करना, वह परभाव है।

परभाव के कितने भेद? परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, परभाव! दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, परभाव! यहाँ तो अनन्त शक्ति के पिण्डरूप वस्तु है, उसमें एक शक्ति को भिन्न करके विचार करना, वह परभाव है! आहाहा! ऐसा उत्तराधिकार भगवान छोड़ गये हैं, देखो न! आहाहा! परभाव। द्रव्य की सहज शक्ति जो त्रिकाली एकरूप शक्ति है, उसमें भेदरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना। 'यह ज्ञानशक्ति है और यह दर्शनशक्ति है' ऐसी भेदकल्पना करने का नाम परभाव है।

अब (कहते हैं) जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार हैं, उनमें द्रव्य जो है, वह द्रव्य है, क्षेत्र भी वह, काल भी वह और भाव भी वह है। समझ में आया? जो अखण्ड द्रव्य है, वही अखण्ड स्वक्षेत्र है, वही अखण्ड त्रिकाल है और वही अखण्ड शक्ति का पिण्ड स्वभाव है। इन चार का भेद पहले समझाया। समझ में आया? परन्तु पीछे चार भी एक ही वस्तु है। स्वद्रव्य कहो, स्वक्षेत्र कहो, स्वकाल कहो, स्वभाव कहो। वह एकरूप चीज़ है। आहाहा! उसकी दृष्टि करना और उसका विचार करने पर, आया था न? शुद्धस्वरूप को विचारने पर। उसका ध्यान करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! कहो, वेणीप्रसादजी! कभी सुना नहीं। मजदूरी (की है)। सब संसार की मजदूरी है न। आहाहा! आया?

पर्यायरूप अनेक अंश... एक-एक शक्ति का भेदरूप विचार करना, वह परभाव है। उसे परभाव कहा जाता है। आहाहा! **'पशुः नश्यति' एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव जीवस्वरूप को नहीं साध सकता...** वह भेद को ही अपना मानता है, वह एकान्ती मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यहाँ तो उसे पशु कहा। पशु क्यों कहा? **'वध्यते इति पशु'**

संस्कृत में ऐसा आता है। भाई! पण्डितजी! वह आता है न? संस्कृत में आता है। पशु क्यों कहा? पशु अर्थात् **'पश्यति वध्यते इति पशु'** वह मिथ्यात्व से बँधता है, इसलिए उसे पशु कहा जाता है क्योंकि पशु का -मिथ्यात्व का फल तो निगोद है। आहाहा! मिथ्यात्व का फल तो निगोद है। निगोद है, वह पशु है, तिर्यंच है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, वह तिर्यंच का भेद है न?

कहते हैं कि उस भेद का विचार करने पर वहाँ ही मानकर रुक गया तो वह एकान्ती मिथ्यादृष्टि पशु है। चार का भेद भी छोड़कर—परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव का भी लक्ष्य छोड़कर... स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, वह चार एक ही वस्तु है। उसे द्रव्य से कहो तो स्वद्रव्य है, क्षेत्र से कहो तो असंख्यप्रदेशी स्वक्षेत्र, काल से कहो तो त्रिकाली, भाव से कहो तो अनन्त शक्ति का एकरूप। ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

यहाँ अपने यह चलता है। यह दृष्टान्त आया है, उससे पहले सिद्धान्त कहा, उसका यह दृष्टान्त है। सिद्धान्त यह कहा **वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है।** आहाहा! समझ में आया? थोड़ा कठिन पड़े परन्तु प्रभु! मार्ग ऐसा है। आहाहा! उसके ज्ञान में, परलक्ष्यी ज्ञान में भी ऐसे सत्य का निर्धार न हो तो उसे स्वलक्ष्यी ज्ञान नहीं होता। समझ में आया? यशपालजी! ऐसी बात है।

तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु एकरूप अभेद विराजता है। द्रव्य कहो तो वह; क्षेत्र कहो तो वह; काल कहो तो वह; भाव कहो तो वह है। आहाहा! उसका आश्रय करना, उसका विचार करने पर-उसका ज्ञान करने पर आत्मा का स्वाद आता है। उसका शब्दार्थ यह है। समझ में आया? तब अनुभूति होती है। आहाहा! यहाँ तो लोग अभी बाहर से कोई गुरु की कृपा हो जाये, गुरु से मिल जाये और शास्त्र से मिल जाये, (इसमें पड़े हैं) ऐई! बलुभाई! इसने वर्षीतप किया था... वर्षीतप किया था। वर्षीतप समझते हो श्वेताम्बर में? एक दिन भोजन करना और एक दिन उपवास करे, उसे वर्षीतप कहा जाता है। श्वेताम्बर में चलता है। ऋषभदेव भगवान को बारह महीने आहार नहीं मिलता था न? उसका वे लोग अनुकरण करते हैं। बारह महीने-वर्षीतप अर्थात्? एक दिन भोजन, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन भोजन, ऐसे बारह महीने (करना)। आहा! वह तो कदाचित् राग

की मन्दता हो तो पुण्यबन्ध का कारण है और उसे धर्म माने तो मिथ्यात्व साथ में है। आहाहा!

यहाँ तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार जो परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उन पर दृष्टि रखे तो भी वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान परद्रव्य तो कहीं रह गये। देव-शास्त्र-गुरु परद्रव्य तो कहीं रह गये। है या नहीं भाई! शिवलालभाई बोटादवाले नहीं? (संवत्) २०१० के वर्ष में उनके पिताजी ने प्रश्न किया था। २२ वर्ष हुए। प्रश्न किया कि महाराज! यह देव, गुरु और शास्त्र पर? वे तो शुद्ध हैं। वे शुद्ध पर हैं? अगास में बहुत जाते थे। उन्हें ऐसा (लगा कि) देव-गुरु-शास्त्र, सर्वज्ञदेव परमेश्वर, गुरु निर्ग्रन्थ वीतरागी सन्त, सर्वज्ञ भगवान के कथित शास्त्र पर? भाई! वह तो लाख बार पर, अनन्त बार पर है। समझ में आया?

यहाँ तो (कहते हैं) एकरूप वस्तु में भेदकल्पना करना, वह परद्रव्य है। ऐसी बात है। अपूर्व बात है न, भगवान! आहाहा! अनन्त काल में पूर्णानन्द के नाथ को दृष्टि में लिया ही नहीं। समझ में आया? परमात्मस्वरूप पूर्णानन्द अभेद एकरूप निर्विकल्प वस्तु है। आहाहा! दरबार! यह सब वहाँ कहाँ था? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार भेद किये। पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव तो भिन्न हैं ही। अनन्त द्रव्य तो सिद्ध किये। अनन्त द्रव्य हैं; एक ही द्रव्य है-ऐसा है नहीं। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है, उनकी इसमें नास्ति है। उनके परद्रव्य, क्षेत्र, काल में उनकी अस्ति है, तो अनन्त द्रव्य सिद्ध हो गये। एक ही द्रव्य है, यह बात अत्यन्त झूठ है। सर्वव्यापक एक ही आत्मा है, वेदान्त ऐसा कहता है न? बिल्कुल पाखण्डदृष्टि है। अलिंगग्रहण में आया है। अलिंगग्रहण है न? उसमें आया है। अमेहनाकार—ऐसा पाठ है। अमेहनाकार। पाखण्डियों को प्रसिद्ध साधनरूप एक ही आत्मा, उसे पाखण्डियों का साधन कहा है। अलिंगग्रहण। मेहनाकार, अमेहनाकार। मेहनाकार यह चौदहवाँ बोल है, अमेहनाकार, यह पन्द्रहवाँ बोल है। बीस बोल है न? अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं। वहाँ ऐसा कहा है। (प्रवचनसार) है यहाँ?

लिंग का अर्थात् मेहनाकार का (पुरुषादि की इन्द्रिय के आकार का) ग्रहण जिसे नहीं... पुरुष की और स्त्री की जो इन्द्रिय है, उससे तो वह (आत्मा) भिन्न है। वह

तो जड़ की पर्याय है, उस लिंग से भगवान भिन्न है। पुरुषाकार जो इन्द्रिय है, उससे भगवान भिन्न है। वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! मेहनाकार-मैथुन की इन्द्रिय से भगवान भिन्न है। ऐसी बात है, भाई! प्रवचनसार-भगवान की दिव्यध्वनि का सार। १७२ गाथा में १४वाँ बोल है। समझ में आया? आहाहा! **इस प्रकार आत्मा शुक्र और आर्तव...** वीर्य और माता का रज, उससे अनुसरणकर नहीं होता। वह तो जड़ की पर्याय है। आत्मा उससे होगा? आहाहा!

अमेहनाकार द्वारा जिसका ग्रहण अर्थात् लोक में व्यापकपना नहीं, वह अलिंगग्रहण है; इस प्रकार आत्मा पाखण्डियों के प्रसिद्ध साधनरूप आकारवाला-लोकव्याप्तिवाला नहीं है, ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है। समस्त आत्मा एक ही हैं, सर्वव्यापक हैं, यह पाखण्डियों ने साधन खड़ा किया है। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र में तो सब बात (आयी है)। यह १५वाँ बोल है। है न? 'अमेहनाकार' लोक में व्यापकपना-लोकव्यापक आत्मा पाखण्डियों के प्रसिद्ध साधन के आकारवाला लोकव्याप्तिवाला नहीं है। लोक में व्याप्त होनेवाला आत्मा नहीं है। इसका नाम अलिंगग्रहण कहने में आता है। आहाहा! अरे! शास्त्र का अभ्यास नहीं होता। क्या कहते हैं और क्या है, (उसका अभ्यास नहीं)। अनुभव तो बाद में, परन्तु शास्त्र का अभ्यास तो पहले करना चाहिए न? कि क्या कहते हैं? और क्या सत्य है?

मुमुक्षु : अकेले पढ़ें तो समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पढ़े तो सही। विद्यालय में हमारे मास्टर थे। उन्हें स्त्री नहीं थी। अभी याद नहीं। स्त्री नहीं थी, (इसलिए) स्वयं पकाते थे। रांधे, समझे? (रसोई बनावे)। उस समय जो होशियार लड़के हों, उनमें से दो-तीन को बुलावे। हम तो विद्यालय में होशियार में गिने जाते थे। दो-तीन लड़कों को बुलावे। काम करे, रोटी बनावे और लड़कों को समझावे। परन्तु इतना कहे कि भाई! तुम पढ़कर आना। यहाँ मैं जो समझाऊँगा, वह पढ़कर आना। समझ में आया? पढ़कर आना। क्योंकि तुम पढ़कर आओगे तो तुम क्या समझे और हम क्या अर्थ करते हैं, उसका भेद तुम्हें समझ में आयेगा। तुम्हारे ख्याल में आयेगा कि मैंने तो ऐसा अर्थ किया था और मास्टर तो इसका दूसरा अर्थ

करते हैं तो तुम्हें उसका भेद ख्याल में आयेगा। समझ में आया? वाँचन करे, पश्चात उसकी दृष्टि में भले उल्टा बैठे, फिर उसे समझ में आये कि ओहो! मैं तो इस शब्द का ऐसा अर्थ समझता था और तुम तो दूसरा अर्थ करते हो। समझ में आया? नरोत्तम मास्टर थे, ब्राह्मण थे। यह तो ७५ वर्ष पहले की बात है। नरोत्तम मास्टर थे, वे हमें बुलाते थे। कणवीवार है, उसमें कमरे में रहते थे। मेढ़ी समझे? ऊपर की मंजिल में रहते थे। वहाँ पकाते थे। हम दो-तीन लड़के जावें। वे पूछें, तुम पढ़कर आये? हाँ। बोलो! इसमें क्या समझे? फिर हम कहें तो वे कहें, अरे! इसका ऐसा अर्थ नहीं है। यह तो ७५ वर्ष पहले की बात है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि तुम पहले शास्त्र पढ़ो। तुम्हारी दृष्टि से उसका क्या अर्थ लगता है, बाद में गुरुगम से उसका अर्थ कैसा समझ में आता है। समझ में आया? परन्तु शास्त्र पढ़े ही नहीं तो उसे उल्टी दृष्टि क्या है और सुल्टी दृष्टि क्या है, उसकी कुछ खबर ही नहीं पड़ेगी।

यहाँ कहते हैं, अपने यहाँ आया न? **वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है।** सिद्धान्त तो यह सिद्ध करना है। फिर पीछे दृष्टान्त दिया कि पानी अग्नि से उष्ण होता है और पानी का स्वभाव ठण्डा है। उसका ज्ञान किसे होता है? कि निजस्वरूपग्राही ज्ञानी को। जिसे निजस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति अभेद का ज्ञान हुआ हो, उसे यह पानी ठण्डा है और अग्निपने से गर्म है, ऐसा उसे व्यवहार का ज्ञान सच्चा होता है। आहाहा! समझ में आया?

जिसे अभेद चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान हुआ हो... यह कहा न? निजस्वरूप -ग्राही ज्ञान... उसे ही पानी ठण्डा और उष्णता अग्नि की है, ऐसा भेद (ज्ञात होता है)। जिसे निजस्वरूप का ज्ञान हो, उसे व्यवहार का ज्ञान सच्चा होता है। अब अपने यहाँ सब्जी का दृष्टान्त आया है। तुम्हारे में तरकारी कहते हैं? '**एव लवणस्वादभेदव्युदासः ज्ञानात् उल्लसति**' है? चौथी लाईन है। कल यहाँ तक चला था। क्या कहते हैं? '**एव लवणस्वादभेदव्युदासः ज्ञानात् उल्लसति' जैसे खारा रस...** सब्जी में नमक खारा होता है न? खारा रस, **उसका व्यंजन से भिन्नपने के द्वारा...** व्यंजन अर्थात् सब्जी। व्यंजन

समझे ? लौकी की, तोरई की, घिसोड़ा की सब्जी, उसे व्यंजन कहा जाता है। उसमें खारापन है, वह नमक का-लवण का है। व्यंजन में **भिन्नपने के द्वारा खारा लवण का स्वभाव ऐसा जानपना...** यह खारापन है, वह लवण का स्वरूप है, सब्जी का स्वरूप खारा नहीं है। लौकी, घिसोड़ा, भिण्डी। यह भिण्डी की सब्जी... भिण्डो कहते हैं न ? भिण्डो आता है न ? भिण्डी। उस सब्जी का स्वाद भिन्न है और लवण का स्वाद भिन्न है। इन दोनों का स्वाद भिन्न है। सब्जी खारी नहीं, लवण खारा है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

कल श्रीमद् का कहा था न ? श्रीमद् राजचन्द्र। यहाँ राणपुर है। प्रेमचन्दभाई आते थे न ? नाराणभाई और प्रेमचन्दभाई दोनों गुजर गये। राणपुर के पास छोटा गाँव है, नाम भूल गये। छोटा गाँव है। वहाँ सब एकत्रित हुए थे। हडमताला, हडमताला नाम का एक गाँव है। वहाँ सब मुमुक्षु इकट्ठे हुए थे, श्रीमद् भी आये थे। बहुत वर्ष पहले की बात है। ५७ वर्ष हुए तो गुजर गये हैं। संवत् १९५७ के पहले की बात है।

(भोजन करने में) सब्जी जहाँ कटोरी में आयी... बाटका (कटोरी का गुजराती शब्द) समझते हो ? कटोरा। कटोरी में सब्जी आयी (तो सब्जी देखकर कहा), भाई! इसमें नमक अधिक है। देखकर कहा, खाकर नहीं। क्यों ? कि लौकी की सब्जी के टुकड़े पानी में बफते हैं और फिर नमक अधिक पड़ जाये तो उसके रेशा टूट जाते हैं। रेशा टूटे हुए देखकर कहा कि इसमें नमक अधिक है। समझ में आया ? गृद्धि मनुष्य हो, उसे कुछ ख्याल नहीं आवे कि खारापन क्या, उसका ख्याल नहीं आवे। ख्याल आया कि देखो भाई! इसमें नमक अधिक है। जहाँ चखा वहाँ... अरे! तुमने चखे बिना किस प्रकार कहा ? परन्तु देखो न! लौकी टुकड़े पानी में बफते हैं, वहाँ रेशा नहीं टूटते। रेशा समझे ? अन्दर रग (होती है वह)। नमक अधिक पड़ जाये तो रेशा टूट जाते हैं। ऐसे टुकड़े-टुकड़े जैसा लगे। नमक अधिक पड़ा है। आहाहा!

यह खारापना और सब्जी का स्वाद भिन्न है, ऐसी खबर किसे पड़ती है ? आया ? **निज स्वरूप का जानपना उसके द्वारा...** आहा! पहले उसमें निजस्वरूपग्राही कहा था। यहाँ यह लिया। बात तो एक ही करनी है। **निज स्वरूप का जानपना उसके द्वारा प्रगट**

होता है। आहाहा! यह खारापन है, वह लवण का है। सब्जी खारी नहीं है। समझ में आया? ऐसे चूरमा होता है न? चूरमे में जो मिठास है, वह तो गुड़ की है और आटा है, वह मीठा नहीं है। आटे की (मिठास) नहीं है। मिठास है, वह तो गुड़ की है। ऐसा भिन्नपने के स्वाद का ज्ञान यथार्थ निजस्वरूपी ज्ञान हो, उसे यथार्थ होता है। आहाहा! बात तो ऊँची है, परन्तु बात तो सत्य है। समझ में आया?

निज स्वरूप के... '**ज्ञानात्**' शब्द है न? '**ज्ञानात्**' ज्ञान किसे कहते हैं? कि निजस्वरूप के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। शास्त्रज्ञान और पर का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं है; वह सब तो अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानस्वरूप भगवान का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान। जो स्वरूप भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी है, उसका ज्ञान। स्व आश्रय करके स्वसन्मुख होकर अपनी ज्ञान की परिणति ज्ञानगुण में से आयी, उसे यहाँ '**ज्ञानात्**' कहने में आता है। समझ में आया? पर्याय में उसके ज्ञान का भेद हुआ, उसका नाम ज्ञान कहते हैं। वस्तु तो वस्तु है। चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा तो वस्तु है, ज्ञान का पिण्ड है, ध्रुव है। उसका आश्रय करने से, पर का लक्ष्य और पर का आश्रय छोड़कर त्रिकाली भगवान ज्ञानस्वरूप का आश्रय करने से अथवा उसके सन्मुख होने से (उसका यथार्थ ज्ञान होता है)। निमित्त, राग, पर्याय, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के चार भेद, इन सबका लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! अपनी अखण्ड चीज़ पर दृष्टि करने से जो ज्ञान होता है, उसे यहाँ '**ज्ञानात्**' कहते हैं। समझ में आया? प्रभु! मार्ग बहुत अलग है। लोगों को बाहर का मिला, उसमें पूरी जिन्दगी चली जाती है।

अरे! मनुष्यपने का एक-एक समय, श्रीमद् कहते हैं... आहाहा! स्फटिकमणि.. क्या कहा यह? कौस्तुभमणि, कौस्तुभमणि होती है न? बहुत ऊँची चीज़ होती है। श्रीकृष्ण का जब जंगल में देह छूट गया न? क्या नाम कहा? वन का नाम भूल जाते हैं। वन का नाम। कौशाम्बी वन। कौशाम्बी वन में श्रीकृष्ण को बहुत प्यास लगी थी, क्योंकि द्वारिका सुलगी। सोने के गढ़ और रत्न के कंगूरों से बनी हुई। देव सहायता करते थे, वे सब चले गये। द्वारिका सुलगी, सोने के गढ़ सुलगे। लकड़ियाँ जले वैसे सोने के गढ़ सुलगे। आहाहा! बलभद्र बड़े भाई और श्रीकृष्ण छोटे भाई। भाई! हम कहाँ जायेंगे? माता-पिता

को तो निकाल (सके नहीं)। बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी द्वारिका सुलगती है। माता-पिता अन्दर हैं। दोनों ने माता-पिता को रथ में बैठाया और दोनों भाई रथ में जुत गये। बाहर जहाँ निकलते हैं, वहाँ गढ़ के दरवाजे गिरे। देव का हुक्म हुआ, निकल जाओ, छोड़ दो। तुम्हारे माता-पिता नहीं बचेंगे। छोड़ दो। आहाहा! पीछे दोनों भाई बाहर निकले। माता-पिता मर गये।

अरे! कृष्ण, बलदेव को कहते हैं, भाई! हम अब कहाँ जायेंगे? स्थान जल गया, कुटुम्ब जल गया, लाखों लोग, कुँवर, कुँवरों की स्त्रियाँ सब जल गये, मकान जल गये। जाना कहाँ? बलदेव कहते हैं, भाई! हम पाण्डवों के पास जायेंगे। भाई! पाण्डवों को तो हमने देश निष्कासन किया है। श्रीकृष्ण कहते हैं, पाण्डवों को तो हमने देश निष्कासित किया है न! भाई! पाण्डव खानदानी हैं, अपने को मदद करेंगे। भले हमने निकाल दिये हैं, चलो! आहाहा! चलते-चलते कौशाम्बी वन आया। ऐसी प्यास ऐसी लगी, प्यास ऐसी लगी... 'तरसे तडफड़े त्रिकमो,' एक सज्झाय आती है। पहले सज्झाय बहुत की थी न! 'तरसे तडफड़े त्रिकमो,' तीनों त। 'तरसे तडफड़े त्रिकमो,' तीन खण्ड का वासुदेव 'तरसे तडफडे।' भाई! मुझे प्यास लगी है। मैं एक कदम नहीं चल सकता। आहाहा! बलदेव कहते हैं, भाई! आहाहा! भाई! तुम यहाँ बैठो, मैं पानी लेकर आता हूँ। पानी या पानी का लोटा कुछ साथ नहीं था, वृक्ष के पत्ते थे, उनका लोटा बनाया। बलदेव बुद्धिवाले होते हैं। लोटा जैसा बनाया और पानी लेने गये।

वहाँ पीछे से जरतकुमार (आया), उसे खबर नहीं कि यह कृष्ण है। कृष्ण तो महापुण्यवन्त प्राणी थे। वासुदेव थे न! तो उनके पैर में पद्ममणि थी। पद्म.. पद्म.. ऐसे पैर ऊँचा रखकर सो रहे थे। जरतकुमार को लगा कि यह हिरण है। पैर पर पैर रखकर सो रहे थे। पैर में पद्म था, उसमें आँख जैसा लगता था। जरतकुमार को उसे देखकर हिरण जैसा लगा। बाण चलाया। बाण चलाकर जहाँ नजदीक आते हैं, वहाँ कृष्ण ने पुकार किया कि निरपराधी को मारनेवाला कौन है? देह छूटने से पहले इतनी आवाज आयी। आहाहा! वहाँ जरतकुमार आया। अरे रे! प्रभु! तुम यहाँ? मैं बारह-बारह वर्ष से आपके कारण (जंगल में रहा)। भगवान ने कहा था, इसलिए मैं बारह वर्ष से जंगल में रहता हूँ और प्रभु! तुम

यहाँ कहाँ आये ? आँसू की धारा बहती जाती है। अभी जीवित हैं, मरने की-देह छूटने की तैयारी है।

जरतकुमार को कहते हैं, भाई! तू यहाँ से चला जा। पाण्डवों के पास जा। मुझे तो उस कौस्तुभमणि का कहना है। कृष्ण के पास कौस्तुभमणि था। वह वासुदेव को होती है, दूसरे के पास नहीं होती। अरबों रुपये की कीमत होती है। कौस्तुभमणि होती है। वह जरतकुमार को दिया और कहा, जा भाई! पाण्डवों को बताना कि यह वासुदेव का कौस्तुभमणि है तो तेरी रक्षा करेंगे। उन्हें पहिचान होगी। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ मनुष्य देह का कौस्तुभमणि जैसा एक-एक समय है। आहाहा! आत्मा का धर्म करने के लिये कौस्तुभमणि है। पाण्डवों के पास वह कौस्तुभमणि लेकर जाने का है। इसी प्रकार इस मनुष्यपने में अपने आनन्दकन्द प्रभु के पास जाना हो तो यह कौस्तुभमणि कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **निजस्वरूप का जानपना उसके द्वारा प्रगट होता है।** क्या प्रगट होता है ? सब्जी और खारापन - दो की भिन्नता। जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ है, उसे इन दो की भिन्नता का भास होता है। जिसे राग की एकताबुद्धि-मिथ्यात्व है, उसे तो लवण खारा है और सब्जी भिन्न है, ऐसा भेद यथार्थ भासित नहीं हो सकता। आहाहा! देखो! परमात्मा का पन्थ तो देखो! ओहोहो! है ? राजमलजी ने यह टीका की, '**ज्ञानात्**' का अर्थ किया। गृहस्थ थे। कमाल किया है! आहाहा!

मुमुक्षु : अभी तो (रहस्य) आप खोल रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है न, भगवान! आहाहा!

निजस्वरूप का जानपना। यह निजस्वरूप शब्द (अर्थात्) अभेद त्रिकाली। यह चार भेद भी निकाल दिये। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भेद नहीं। अभेद निजस्वरूप भगवान आत्मा का जिसे ज्ञान है, उस निजस्वरूप के जानपनेवाले को... क्या कहा ? साग; सब्जी को क्या कहते हैं ? तरकारी। तरकारी और खारेपन की भिन्नता का उसे भान होता है। गृद्धि है, उसे भान नहीं होता। समझ में आया ? यह सब्जी की खिचड़ी करते हैं न ? खिचड़ी में नमक डालते हैं। दूसरे देश (प्रदेश) में तो चावल में भी नमक डालते हैं। चोखा

समझे ? चावल में भी नमक डालते हैं। अपने यहाँ खिचड़ी में डालते हैं, वहाँ चावल में भी नमक डालते हैं। सुना है, अपन ने कहाँ (देखा है) ? मुसलमान भी चावल में नमक डालते हैं। आहाहा!

एक बार ऐसा बना कि थाली में खिचड़ी आयी। ऐसा देखा तो बहुत खारी लगी और सत्ता प्रिय मेहमान आये थे। लड़की के ससुर आये थे। सत्ता प्रिय समझे ? सेठ ने खिचड़ी में जहाँ खारापन देखा वहाँ... अरे रे! अभी इस सेठ को बहुत खराब लगेगा। इसलिए पूछा, किसने इसमें नमक डाला है ? तो दो-चार महिलाएँ कहें, अभी बोलना नहीं। ख्याल आ गया कि मैंने एक बार नमक डाला था, पीछे दूसरी बहिन ने बाद में नमक डाला। दो की खिचड़ी पकाते हों, उसमें एक बार तो डाला हो, दूसरी बहिन आयी, उसे लगा कि नहीं डाला होगा, ऐसा सोचकर डाला। इसलिए महिलाएँ तो बेचारी कहे, बोलना नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जो खारापन है, वह खिचड़ी का नहीं, वह तो नमक का है। उस नमक के और खिचड़ी के भेद का ज्ञान, निजस्वरूप का ज्ञान होता है, उसे परप्रकाशक ज्ञान यथार्थ होता है, ऐसा कहते हैं। बलुभाई! यह सब तुम्हारी दवा में नहीं आता। सब व्यर्थ। आहाहा! है ?

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार लवण के संयोग से व्यंजन संभारते हैं... संभारते हैं न नमक डालकर ? संभारते हैं। **तो खारा व्यंजन ऐसा कहा जाता है,...** बोलने में ऐसा आता है कि सब्जी खारी, खिचड़ी खारी, रोटी खारी। रोटी में भी नमक डालते हैं। बाजरे की रोटियाँ बनावे न ? उसमें नमक डालते हैं, तो वह नमक खारा है, वह भिन्न चीज़ है और बाजरे का आटा है, वह भिन्न चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं कि **लवण के संयोग से व्यंजन...** व्यंजन अर्थात् सब्जी। संभारते हैं न ? सब्जी में तेल डालकर संभार* करते हैं। क्या कहा ? हमारे काठियावाड़ में संभार कहते हैं। वह संभार शब्द लिया है, हिन्दी में लिया है। **तो खारा व्यंजन ऐसा कहा जाता है, जाना भी जाता है,...** आहाहा! **स्वरूप विचारने पर खारा लवण, व्यंजन जैसा है वैसा**

* बघार

ही है। सब्जी खारी हुई ही नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप के भाव के भेदभावरूप आत्मा हुआ ही नहीं। समझ में आया? जैसे वह सब्जी खारी हुई नहीं; आहाहा! वैसे भगवान आत्मा दया, दान, व्रतादि के विकल्प अथवा भेद, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भेदरूप अभेद आत्मा हुआ ही नहीं। अज्ञानी को भेद और रागरूप भासित होता है, वह दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! धर्मी को तो आत्मा अभेद भासित होता है। आहाहा!

विचारने पर... कहा न? ज्ञान करने पर, द्रव्य का ज्ञान करने पर, वस्तु का ज्ञान करने पर, अखण्डानन्द नाथ प्रभु का ज्ञान करने पर... आहाहा! आनन्द का स्वाद (आता है)। अनादि से राग का स्वाद था, वह छूटकर आनन्द का स्वाद आता है, उसका नाम अनुभूति और उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? यह कोई गुरु की कृपा या भगवान की कृपा से मिल जाये, ऐसी वह चीज़ नहीं है।

श्रोता : गुरु की कृपा से क्या मिले?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनकी कृपा होती नहीं, वह तो अन्दर में प्रगट हुआ हो, तब कृपा कहने में आती है। आहाहा! यह ६० श्लोक हुआ। ६० में बहुत सरस बात की! निजस्वरूपग्राही। ऐसा अर्थ तो... आहाहा! राजमलजी ने किया है। जिसे निजस्वरूप का ज्ञान नहीं, उसे शास्त्र का ज्ञान भी यथार्थ नहीं। समझ में आया? वह शास्त्र का अर्थ भी विपरीत करेगा। व्यवहार से निश्चय होता है, निमित्त से उपादान में होता है, (ऐसा अर्थ करेगा)। क्या हो?

श्रोता : बहुत प्रयोजनभूत बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयोजनभूत आयी, हमारा सेठ प्रसन्न हुआ, लो! सत्य बात है, भाई! आहाहा! परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को पर में डाल दिया। आहाहा! निजस्वरूप का अर्थ अभेद। आहाहा! अभेद का ज्ञान होने से पर का यथार्थ ज्ञान उसे होता है, बाकी पर का यथार्थ ज्ञान भी नहीं होता। शास्त्र के अर्थ भी वह तो उल्टे करेगा। अज्ञानी को स्वरूप का ज्ञान नहीं तो शास्त्र का अर्थ भी उल्टा करेगा। व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है, क्रमबद्ध नहीं है, (ऐसे अर्थ करेगा)। आहाहा! समझ में आया? यह निजस्वरूप के ज्ञान के अभाव में विपरीतता है। विशेष कहेंगे...　　(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-६१

(अनुष्टुप्)

अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमञ्जसा।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित्।।16-61।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'एवं आत्मा आत्मभावस्य कर्ता स्यात्' [एवं] सर्वथा प्रकार [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मभावस्य कर्ता स्यात्] अपने परिणाम का कर्ता होता है। 'परभावस्य कर्ता न क्वचित् स्यात्' [परभावस्य] कर्मरूप अचेतन पुद्गलद्रव्य का [कर्ता न क्वचित् न स्यात्] कभी तीनों काल में कर्ता नहीं होता। कैसा है आत्मा? 'ज्ञानं अपि आत्मानं कुर्वन्' [ज्ञानं] शुद्ध चेतनमात्र प्रगटरूप सिद्धअवस्था [अपि] उस रूप भी [आत्मानं कुर्वन्] आप तद्रूप परिणमता है। और कैसा है? 'अज्ञानं अपि आत्मानं कुर्वन्' [अज्ञानं] अशुद्ध चेतनारूप विभाव परिणाम [अपि] उसरूप भी [आत्मानं कुर्वन्] आप तद्रूप परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है - जीवद्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है, शुद्ध चेतनारूप परिणमता है, इसलिए जिस काल में जिस चेतनारूप परिणमता है, उस काल में उसी चेतना के साथ व्याप्य-व्यापकरूप है, इसलिए उस काल में उसी चेतना का कर्ता है। तो भी पुद्गलपिण्डरूप जो ज्ञानावरणादि कर्म है, उसके साथ तो व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है, इसलिए उसका कर्ता नहीं है। 'अञ्जसा' समस्तरूप से ऐसा अर्थ है।।16-61।।

श्रावण शुक्ल १३, शुक्रवार, दिनांक २६-०८-१९७७
कलश-६१, प्रवचन-७७

कलश टीका, श्लोक-६१।

अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमञ्जसा।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित्।।१६-६१।।

'एवं' सर्वथा प्रकार... ऐसा वापस। कर्म के बन्ध के सर्वथा प्रकार से आत्मा नहीं करता। इसी प्रकार शरीर के हलन-चलन की क्रिया को आत्मा सर्वथा प्रकार से नहीं

करता। कोई ऐसा कहे कि निश्चय से तो नहीं परन्तु व्यवहार से तो है न? इसके लिये **'एवं'** शब्द प्रयोग किया है अर्थात् कि निश्चय है। निश्चय से सर्वथा प्रकार से। **जीवद्रव्य 'आत्मभावस्य कर्ता स्यात्' अपने परिणाम का कर्ता होता है।** आहाहा! पर परिणाम का कर्ता तो तीन काल में कदाचित् व्यवहार से भी कर्ता नहीं। आहाहा! यह स्त्री, लड़के का धन्धा इनका कुछ कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। (कर्ता हो ऐसा मानें तो) अज्ञान मिथ्या भ्रम है। सबको, बच्चों को धन्धे में रास्ते लगा दूँ, बाद में निवृत्ति मिलेगी। भ्रम है, अज्ञान है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ क्या? निमित्त कर्ता होता है। जिस समय पर्याय हुई तो अज्ञानी राग और योग का कर्ता है, यह पर की पर्याय में निमित्तकर्ता कहने में आता है। इतनी शर्त है। यह (समयसार) १०० वीं गाथा में है। १००वीं गाथा। परद्रव्य की तो जिस समय जो पर्याय होनी है, वही होगी, होगी वही होगी, आहाहा! इसमें परद्रव्य भी फेरफार नहीं कर सकता। यह आत्मा भी उसमें फेरफार नहीं कर सकता; मात्र अज्ञानी राग और योग का कर्ता होता है। यह पर्याय के समय अज्ञानी जीव को निमित्त कर्ता कहने में आता है। आहाहा!

ज्ञानी धर्मी, जिस समय जो पर्याय पर में होती है, उसमें निमित्तमात्र कहने में आता है। निमित्त (मात्र) निमित्तकर्ता नहीं। समझ में आया? निमित्तमात्र कहने में आता है।

मुमुक्षु : निमित्त तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका क्या अर्थ? पर में कुछ नहीं करता। वह तो निमित्त है, ऐसा कहा। है, दूसरी चीज़ है। निमित्त दूसरी चीज़ और निमित्तकर्ता दूसरी चीज़ है। दो में बड़ा अन्तर है। पर शरीर जैसे चलता है, इसकी क्रिया... कल तो यह आ गया न? ज्ञान में यह तो ज्ञेय है। यह हुआ ऐसा जाना। पर ऐसा हुआ इसमें मैं निमित्तकर्ता (हूँ)। उपादान कर्ता तो उस समय वो है। परन्तु मैं निमित्तकर्ता हूँ, यह भी अज्ञानी इसके राग और योग का कर्ता होता है। यह पर की पर्याय होने के समय। पर की पर्याय के समय वहाँ तो पर्याय हुई। अज्ञानी निमित्तकर्ता कहने में आता है। आहाहा! ज्ञानी निमित्त (मात्र) कहने में आता

है, निमित्त-कर्ता नहीं। समझ में आया? यहाँ **सर्वथा प्रकार...** शब्द लिया है। कथंचित् पर का कर्ता होता है और कथंचित् नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जैनधर्म में तो कथंचित् होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। जैनधर्म में कथंचित् कहाँ लागू पड़ता है? तेरी पर्याय अज्ञानरूप से कथंचित् कर्ता है और ज्ञानरूप से राग की कर्ता नहीं है, इसमें कथंचित् लागू पड़ता है। समझ में आया? राग-द्वेष का कर्ता कथंचित् अज्ञानभाव से तू है। पर का कर्ता तो है ही नहीं। आहाहा! अज्ञानभाव से राग-द्वेष का कर्ता कथंचित् अर्थात् जब तक अज्ञान है, तब तक कर्ता है। और जैसे ही ज्ञान हुआ कि मैं तो राग से भिन्न आत्मा हूँ... आहाहा! यह राग का कर्ता भी नहीं। आहाहा! ये तो राग... दोपहर को परिणम्य-पारिणामकत्व (शक्ति) चली न? राग ज्ञेय है, इसका ज्ञान करता है परन्तु उसका—पर का कर्ता होता है (ऐसा नहीं)। ऐसी सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

'परभावस्य कर्ता न क्वचित् स्यात्' जीवद्रव्य अपने परिणाम का कर्ता होता है। 'परभावस्य कर्ता न क्वचित् स्यात्' यहाँ परभाव शब्द शरीर, कर्म को परभाव कहते हैं। यहाँ विकारी परिणाम की बात नहीं है। विकारी परिणाम का तो कर्ता जीव अज्ञान भाव से है। समझ में आया? ये **'परभावस्य'** का अर्थ जड़ शरीर, कर्मबन्धन, वाणी, परद्रव्य की क्रिया को यहाँ परभाव कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **'परभावस्य कर्ता न क्वचित् स्यात्'** भाषा देखो। परभाव का **कर्मरूप अचेतन पुद्गलद्रव्य का...** यहाँ तो नजदीक में नजदीक जो कर्म परिणमते हैं, जितने प्रमाण में राग-द्वेष करे इतने प्रमाण में कर्म परिणमता है, इसका भी कर्ता नहीं तो फिर शरीर की क्रिया और वाणी की क्रिया, कुटुम्ब की क्रिया, धन्धे की क्रिया आत्मा कर सके — ऐसा तीन काल में नहीं। आहाहा! ये तुम सब व्यापारी हो, करते हो न?

मुमुक्षु : रोज करें और तीन काल में नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो कहा न, अपने आ गया न? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है परन्तु बलजवरी से राग का कर्ता होता है, पर का तो है ही नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी चैतन्यबिम्ब राग का कर्ता तो है नहीं। पर का कर्ता है, यह तो बात ही नहीं पर

राग का कर्ता भी बलजोरी से, कर्ता होता है, बलजोरी से (होता है), इसके स्वभाव में नहीं है। आहाहा! उल्टी दृष्टि से शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का बलजोरी से कर्ता होता है, इसके स्वभाव में ये नहीं। और पर का कर्ता तो बलजोरी से भी नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा!

सर्वथा प्रकार से आत्मा अर्थात् जीवद्रव्य अपने परिणाम का कर्ता होता है। 'परभावस्य' पुद्गलद्रव्य का कर्ता **'क्वचित्'** (होता है)। **'क्वचित्'** अर्थात् तीनों काल में। आहाहा! शरीर की अवस्था जवान हो तो आत्मा जवान अवस्था को ऐसे चलाता है और ऐसे (करता है)। यह तीन काल में नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो इतनी बात लेना है। **'परभावस्य कर्ता न क्वचित् स्यात्'** तीनों काल में कर्ता नहीं। **'क्वचित्'** की व्याख्या की। **'क्वचित्'** अर्थात् कोई काल, ऐसा लिया है। समझ में आया? शरीर की क्रिया, वाणी की क्रिया, धन्धे में पैसा लेना-देना, तोलकर देना। तीन काल में आत्मा कर्ता नहीं। समझ में आया? आहाहा! 'कभी भी तीनों काल में कर्ता होता नहीं।'

कैसा है आत्मा? 'ज्ञानं अपि आत्मानं कुर्वन्' शुद्ध चेतनमात्र प्रगटरूप सिद्ध अवस्था... को करे। इस रूप से परिणमे। सिद्ध अवस्थारूप आत्मा परिणमता है। इसकी भी भाषा विशेष है। **शुद्ध चेतनमात्र प्रगटरूप सिद्ध अवस्था...** शक्ति में तो सिद्धरूप है ही, परन्तु प्रगटरूप सिद्ध अवस्था, **उस रूप भी आप तद्रूप परिणमता है।** सिद्ध की अवस्था आत्मा करता है, यह तद्रूप परिणम होके करता है, पर का नहीं। आहाहा! कर्म का नाश करना कि यह आत्मा कर्ता नहीं। समझ में आया? ऐसा अभिमान जहाँ होता है, वहाँ (करता है) **तद्रूप परिणमता है।**

और कैसा है? चाहे तो शुद्ध चैतन्यमात्र प्रगट सिद्ध अवस्थारूप हो अथवा अज्ञान से **'आत्मानं कुर्वन्'** अशुद्ध चेतनारूप विभाव परिणाम उसरूप भी हो। पुण्य और पाप के विकाररूप अज्ञानपने परिणमे या सिद्ध अवस्थारूप परिणमे। परन्तु पर की अवस्था का कर्ता तो तीन काल में परमार्थ से सर्वथा प्रकार नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी भारी कठोर बात है।

मुमुक्षु : इससे विरुद्ध ही चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब ऐसा ही चलता है। इसमें तुम्हारे सब गरासिया तो... ए अपने से कहते हैं, हम गरासिया आये थे। दरबार! जहाँ हो तहाँ हमने ऐसा किया, हमारा गरास...

मुमुक्षु : हमारे बाप-दादाओं ने सर देकर जमीन दी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में। हमारी जमीन है और हम उसके गरासदार (जमींदार) हैं। अज्ञानियों की भ्रमणा है। आहाहा! देखो न! ये मनसुखभाई गुजर गय बेचारे। ५८ वर्ष के मुखिया पोरबन्दर में नेमचन्दभाई प्रमुख थे, वे गुजर गये। आगे यह गुजर गया। ५८ वर्ष की उम्र। ऐसा है। करोड़पति। चार भाईयों को पच्चीस-पच्चीस लाख दिये। चार भाई हैं। वहाँ अपने मुमुक्षु मण्डल में मुखिया है। लो, ५८ वर्ष में देह छूट गया। यह तो देह की स्थिति, जिस समय छूटने की होगी, उस समय छूटेगी। लाख डाक्टर आयें, दवा करें, मर जाये। समझ में आया? मनसुखभाई, पोरबन्दर। भूराभाई का बड़ा लड़का। इसके मकान में रुका था। चार लड़के हैं न। करोड़पति। चारों को पच्चीस-पच्चीस लाख बाँट दिये, इसमें यह मर गया। एक लड़का है, इसकी करता था। यह ध्यान रखता। ठिकाने लगाऊँ, लड़का बड़ा हो जाए बाद में मेरा अनुभव दूँगा, जिससे बराबर काम करे, ऐसा बनाऊँगा। बना सकता है? आहाहा!

मुमुक्षु : आपके पास दूसरा तो क्या कहें?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, बाहर कर सकते हैं, यहाँ न बोलते हैं। आहाहा! यहाँ तो यह बात इतनी ली है। आहाहा!

रात में किसी भाई का प्रश्न था? अव्यक्त के छह बोल। ४९ गाथा। वहाँ तो ऐसा कहा है, छह द्रव्यस्वरूप जो लोक है, छह द्रव्यस्वरूप लोक से अपना आत्मा भिन्न है, सप्तम (द्रव्य) भिन्न है। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है। कल आया था न? ज्ञेय है, व्यक्त है। बाह्य है, उससे भगवान आत्मा भिन्न अव्यक्त है। आहाहा! सप्तम (द्रव्य) हो जाता है। एक तरफ छह द्रव्य ज्ञेय, एक तरफ ज्ञायक आत्मा भगवान ज्ञाता। आहा! समझ में आया? ये आत्मा को अव्यक्त कहने में आता है। अव्यक्त अर्थात् पर्याय में आया नहीं, वस्तुरूप से व्यक्त है। परन्तु द्रव्य पर्याय में आया नहीं। इससे छह द्रव्यस्वरूप लोक व्यक्त है, ज्ञेय है, व्यक्त है, इससे भिन्न भगवान, वह अव्यक्त है। आहाहा!

पर का कर्ता तो नहीं, परन्तु अपनी पर्याय का भी कर्ता नहीं। आहाहा! अथवा वहाँ तो जीव का अधिकार है। कर्ता-कर्म अधिकार नहीं। ४९ (गाथा) अजीव का अधिकार है। कहते हैं कि जीव तो वास्तव में जीव तो इसे कहते हैं कि पर्याय जो व्यक्त है अथवा लोकालोक व्यक्त और ज्ञेय है, इससे भिन्न स्वरूप भगवान आत्मा को, ये अव्यक्त को हम भगवान आत्मा कहते हैं। आहाहा!

पर्याय में अव्यक्त द्रव्य जो है, वह ज्ञान में आया, परन्तु द्रव्य जो है, वह व्यक्त पर्याय को नहीं छूता। आहाहा! समझ में आया? जीव अधिकार है, अजीव अधिकार है। जीव इसको कहते हैं कि त्रिकाली ज्ञायकभाव, जो पर का तो कर्ता नहीं परन्तु जिसमें पर्याय भी नहीं है। क्योंकि पर्याय तो इसको विषय करती है। विषय करती है, उस चीज़ में पर्याय नहीं है। सूक्ष्म बात है। कल रात्रि में किसी का अव्यक्त का प्रश्न था। समझ में आया?

छह द्रव्यस्वरूप लोक एक ओर, यह ज्ञेय और व्यक्त है। इससे भगवान आत्मा सप्तम भिन्न है। 'सम्यक्ज्ञान दीपिका' में ऐसा लिया है। धर्मदास क्षुल्लक। आत्मा सप्तम हो जाता है। इसमें से, इस बोल में से निकाला है। क्या कहा? है तो छह द्रव्य में ही। छह द्रव्य से भिन्न। आहाहा! सूक्ष्म बात है। ४९ गाथा का विषय बहुत सूक्ष्म विषय है। छह बोल का। छह द्रव्यस्वरूप लोक। इसमें सिद्ध भी आ गये। अनन्त पंच परमेष्ठी भी आये, अनन्त निगोदिया जीव आये, असंख्य सम्यग्दृष्टि तिर्यंच हैं, वे भी आये, पंचम गुणस्थानवाले श्रावक भी असंख्य हैं, ये भी आये। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय, व्यक्त है, भगवान इससे भिन्न अव्यक्त है। समझ में आया? स्त्री-कुटुम्ब परिवार तो ज्ञेय हैं, परन्तु यहाँ तो पंच परमेष्ठी, अनन्त सिद्ध और केवली। लाखों केवली विराजते हैं। अनन्त सिद्ध हुए इन सबको यहाँ छह द्रव्यस्वरूप लोक में ज्ञेयरूप से शामिल किये हैं। आहाहा! अपना स्वरूप ये व्यक्त से भिन्न अव्यक्त है। आहाहा! पंच परमेष्ठी ज्ञेय हैं, व्यक्त हैं; उनसे आत्मा अव्यक्त भिन्न है। समझ में आया? मस्तक घूम जाये ऐसा है। आहाहा!

कल रात में थोड़ा कहा था न? आनन्दघनजी का शब्द है। 'अनुभव तूं है तू हमारो, आप उपाय करी चतुराई पर को संग निवारो, अनुभव तुं है हमारो...' आत्मा को ज्ञेय, पर से भिन्न अव्यक्त का अनुभव करना, यह अनुभव धर्म है। आहाहा! अव्यक्त जो चीज़ है,

इसका अनुभव करना पर्याय में, दृष्टि का विषय तो अव्यक्त है, परन्तु पर्याय में उसका अनुभव करना... आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन है, ज्ञान और धर्म है। समझ में आया? यह एक बोल हुआ। अव्यक्त का एक बोल हुआ। दूसरा बोल। यह तो हमारा हमेशा का स्वाध्याय का (विषय) है। हमेशा सुबह-शाम नियमित स्वाध्याय चलता है। (समयसार की) १६ गाथा, अव्यक्त के दस बोल, बीस बोल अलिंगग्रहण के, दस बोल श्रीमद्जी के, स्वद्रव्य आदि परद्रव्य होते नहीं ऐसा। (ऐसे दस बोल आते हैं)। इनका स्वाध्याय होता है।

दूसरे बोल में ऐसा कहा कि कषायभावरूप भावकभाव—दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव हैं, ये कषाय भाव हैं, ये भावक भाव हैं। वास्तव में तो ये कर्मरूपी भावक के भाव हैं, अपने भाव नहीं। आहाहा! कषायरूप पुण्य-पापरूप भाव, भावकभावु उससे भगवान आत्मा भिन्न है। यह भावकभाव व्यक्त है, प्रभु आत्मा उससे भिन्न अव्यक्त है। समझ में आया? आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहा! अरे! तत्त्व की वस्तु की दृष्टि न करे तो जन्म-मरण से कैसे छूटेगा? देखो न! हम तो कैसे सुनते हैं। क्षण में हार्टफेल हो गया, ऐसा हो गया। यह तो स्थिति पूरी होने का समय था ऐसा ही होता है। समझ में आया? इसमें यदि अपना काम नहीं किया... आहाहा! कषायभाव जितना दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध आदि शुभ-अशुभभाव, मिथ्यात्व आदि व्यक्त, बाह्य हैं। भगवान इनसे भिन्न अव्यक्त है। आहाहा! समझ में आया? दो बोल हुए।

तीसरा (बोल)। चैतन्यसामान्य में चैतन्य की समस्त व्यक्तियाँ अन्तर्लीन हैं। इसलिए अव्यक्त है। क्या कहा? अर्थ करेंगे, हों ऐसे के ऐसे नहीं (जाने देंगे)। चैतन्यसामान्य जो त्रिकाली वस्तु है, इसमें जितनी पर्याय व्यक्त है, वह चैतन्य सामान्य में अन्तर्लीन हैं। भूत और भविष्य की जितनी पर्याय हैं अव्यक्त वस्तु चैतन्यसामान्य में भूत और भविष्य की पर्याय अन्तर्लीन है, वर्तमान पर्याय प्रगट है, यह तो ज्ञान करती है। समझ में आया? क्या कहते हैं? ये तीसरा बोल है। चैतन्य सामान्य वस्तु जो एकरूप ध्रुव सदृश चैतन्य, उसमें भूत और भविष्य की जितनी पर्याय हैं, वे सभी अन्तर्मग्न हैं, अन्तर में पड़ी हैं, शक्तिरूप पड़ी हैं, ध्रुव में पड़ी हैं। इसलिए वे अव्यक्त कहलाती हैं, जितनी पर्याय व्यक्त हैं भूत-

भविष्य की अन्तरमग्न हो गयी हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो... आहाहा!

चैतन्यसामान्य एकरूप त्रिकाल, उसमें भूत और भविष्य की अनन्त पर्याय सामान्य चैतन्य में अन्तर्मग्न हैं, अन्तर्लीन हैं, बाहर नहीं। समझ में आया? आहाहा! एक वर्तमान अव्यक्त को जाननेवाली है अव्यक्त, वह भिन्न रही। बाकी भूत और भविष्य की पर्याय सामान्य चैतन्य में अन्तर्मग्न है, यह जो व्यक्त पर्याय जो है, वह अन्तर्मग्न है। इससे आत्मा को अव्यक्त कहने में आता है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात!

भविष्य में होनेवाली अनन्त पर्याय और भूत की पर्याय जो हो गयी है। यह अन्दर है न? यह बाह्य में नहीं। अशुद्ध पर्याय हैं, ये अनन्त गयी, यह भी अन्तर में मग्न हैं। अन्तर में मग्न कहने पर भी अशुद्धता अन्तर में नहीं है, परन्तु इनकी योग्यता अन्तर में मग्न है। क्या कहा? अशुद्ध अनन्त पर्याय हो गयी हैं न? यह अशुद्ध पर्याय भी अन्तर्मग्न हैं, इसका अर्थ क्या? अशुद्धता अन्तर में नहीं है परन्तु अशुद्धता की योग्यता अन्तर्मग्न में हो गयी। ऐसी भविष्य में भी अशुद्ध पर्याय और शुद्धपर्याय होंगी। यह सब पर्याय अन्तर्मग्न हैं पर्याय। आहाहा! इस कारण व्यक्त—अव्यक्त अन्दर में मग्न हैं, इससे वे अव्यक्त कहलाती हैं। आहाहा! अरे! समझना कठिन पड़ता है मनुष्यों को। तीन बोल हो गये?

चौथा बोल। क्षणिक व्यक्ति मात्र नहीं, इसलिए अव्यक्त है। वर्तमान पर्याय व्यक्त है, वह क्षणिक है। इतना मात्र नहीं, इसलिए चौथे बोल में इसको अव्यक्त कहते हैं। फिर से, एक समय की पर्याय जो व्यक्त है, प्रगट पर्याय वर्तमान है, यह क्षणिक व्यक्तिमात्र वस्तु नहीं, इससे उसे अव्यक्त कहते हैं, क्षणिक व्यक्ति वर्तमान पर्याय है, इतना मात्र ही वह पदार्थ नहीं। पण्डितजी! आहाहा! भगवान आत्मा... वह पंचम काल के प्राणी के लिए तो कहा है। पंचम काल के साधु थे। कोई कहे यह बात तो चौथे काल वालों की है (ऐसा नहीं)। आहाहा!

कहते हैं, क्षणिक व्यक्ति अनन्त गुण की अनन्त पर्याय एक क्षण में हैं, यह तो क्षणिक व्यक्तिमात्र हैं, क्षणिक हैं, इससे भिन्न हैं। इससे आत्मा को, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसको अव्यक्त कहने में आता है। आहाहा! चार बोल हुए।

पाँचवाँ (बोल)। व्यक्त पर्याय और अव्यक्त द्रव्य, दोनों का एकसाथ मिश्रित ज्ञान

होने पर भी... क्या कहते हैं ? व्यक्त पर्याय और अव्यक्त द्रव्य, दोनों का एकसाथ ज्ञान मिश्रित होने पर भी वह व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। प्रगट पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता, उसको अव्यक्त कहते हैं।

फिर से, भगवान आत्मा, उसमें त्रिकाली द्रव्य अव्यक्त, पर्याय व्यक्त, पर्याय और अव्यक्त द्रव्य, दोनों का एकसाथ ज्ञान होता है। ज्ञान एकसाथ होता है। फिर भी यह अव्यक्त व्यक्त को स्पर्शता नहीं। द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। आहाहा! चाहे तो निर्मल पर्याय हो, तो उसका और त्रिकाली का ज्ञान एकसाथ होता है, फिर भी व्यक्त को अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। प्रगट पर्याय को द्रव्य स्पर्शित नहीं करता।

मुमुक्षु : जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना अलग बात है। दोनों को जानता है। समझ में आया ? आहाहा! पर्याय और द्रव्य को ज्ञान जानता है, फिर भी यह पर्याय जो व्यक्त है, उसका ज्ञान होता है फिर भी व्यक्त को अव्यक्त छूता नहीं। आहाहा! इस अव्यक्त को सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? रात्रि में किसी ने प्रश्न किया था न ? कहा, यह तो अभी आ गया। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन का विषय अव्यक्त ?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली वस्तु विषय है, पर्याय विषय नहीं। पर्याय तो विषय करनेवाली है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन का विषय अव्यक्त है तो क्या देखकर श्रद्धा की ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देखकर श्रद्धा की। पर्याय में यह देखा, पर्याय में द्रव्य श्रद्धा में आया, ज्ञान में आया, परन्तु द्रव्य पर्याय में आया नहीं और पर्याय ने द्रव्य को नहीं छुआ। ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! अरे रे! ऐसा परमसत्य... समझ में आया ? अरे! अशरण है।

अनादि से स्वयं स्वरूप वस्तु का शरण नहीं लिया। इससे चार गति में परिभ्रमण करता है। आहा! एक क्षण में उड़ जाये। जाओ... आहाहा! जाओ चौरासी की भवाब्धि-भवरूपी समुद्र में डूब जाता है। आहाहा! वह तरने का रास्ता यह है।

एक समय की पर्याय त्रिकाली द्रव्य अव्यक्त, पर्याय व्यक्त, दोनों का ज्ञान एक समय में मिश्रित एक साथ होता है। ऐसा होने पर भी यह ज्ञान पर्याय को जानता है, द्रव्य को जानता है, फिर भी द्रव्य पर्याय को छूता नहीं है। आहाहा! पर्याय,पर्यायरूप है; द्रव्य, द्रव्यरूप है। आहाहा! पहले बोल में कहा था न? धर्मदास क्षुल्लक ने ऐसा लिया है। धर्मदास क्षुल्लक संवत् १९४८ के वर्ष में धर्मदास क्षुल्लक हो गये हैं। स्वात्मानुभवमनन, सम्यग्ज्ञानदीपिका बनायी है। यह सम्यग्ज्ञानदीपिका का विरोध फलटन में हुआ है न? अरे! भगवान! ये.. सोनगढ़वालों ने ऐसा किया। अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! यह तो क्षुल्लक की वाणी है। धर्मदास क्षुल्लक सम्यग्ज्ञानदीपिका में कहते हैं, जिसके सिर पर पति है, उसे पति के कारण किसी का ऐसा संग हो गया हो तो बाहर में प्रसिद्धि में नहीं आता। बस, इतनी बात है। दोष नहीं, ये बात नहीं। आहाहा! ऐसे जिसके मस्तक पर आत्मा भगवान आनन्दकन्द है, सिरछत्र भगवान पर्याय में सिरछत्र आत्मा है। बालकों को नहीं कहते? हमारा सिरछत्र (गार्जियन) पिताजी हैं। ऐसे पर्याय का पिता द्रव्य सिरछत्र है। समझ में आया? अर्थात् कि जिसकी दृष्टि सिरछत्र द्रव्य है, तो उसकी पर्याय में कोई रागादि या अशुभादि हो जाये तो भी वह बाह्य प्रसिद्धि में नहीं आता, इतना। दोष नहीं ऐसा नहीं, दोष तो दोष ही है। उसको ऐसा लगा दिया। देखो! व्यभिचार करो तो भी दोष नहीं। अरे! भगवान! यह क्षुल्लक का आशय ऐसा है नहीं और यह तो क्षुल्लक का कथन है। इसकी जगह सोनगढ़ का लगा दिया। क्या डर है? आहाहा!

सम्यग्ज्ञानदीपिका में ऐसा लिया है या स्वात्मानुभवमनन में कहीं है। छह द्रव्य से भगवान भिन्न है तो यह सप्तम द्रव्य हो जाता है, यह कहाँ से लिया? (अव्यक्त के) पहले बोल में से। पहला बोल लिया है न? इसमें से इसने निकाला है। छह द्रव्य हैं, यह व्यक्त है, ज्ञेय है। उनसे भिन्न है यह भगवान अव्यक्त है तो इसको सप्तम कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा! इसमें तो नींद उड़ जाए, ऐसा है। आत्मा है, यह तो छह द्रव्य में है, कुछ छह द्रव्य से भिन्न नहीं है। ऐसा है कि एक ओर राम और एक ओर गाम अर्थात् एक ओर आतमराम और एक ओर छह द्रव्य। वे ज्ञेय है और यह ज्ञायक है। इससे छह द्रव्यों से भिन्न सप्तम द्रव्य हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! पाँचवाँ बोल हुआ। छठवाँ बोल जरा सूक्ष्म है।

अपने बाह्य-अभ्यन्तर अनुभव में आनेवाला परिणाम है, तथापि उस परिणामी से उदासीन है। अर्थात् एक समय के परिणाम में नहीं टिकता (नहीं आता)। समझ में आया? नहीं आया? छठा बोल है न? 'स्वयं अपने से ही बाह्य-अभ्यन्तर स्पष्ट अनुभव में आ रहा है। बाह्य-अभ्यन्तर पर्याय में अनुभव में आ रहा है। **तथापि व्यक्तपने के प्रति उदासीनरूप से...** पर्याय का वेदन है, फिर भी पर्याय से उदासीन है। पर्याय में टिकता नहीं है, द्रव्य पर चला जाता है। समझ में आया? **स्वयं अपने से ही बाह्य-अभ्यन्तर स्पष्ट अनुभव में आ रहा है...** आनन्द का वेदन स्पष्ट आता है। **फिर भी व्यक्तपने के प्रति...** व्यक्त जो पर्याय है, उसके प्रति उदासीनरूप से प्रकाशमान है। वहाँ नहीं रहता, अन्दर द्रव्य में चला जाता है। समझ में आया? सूक्ष्म बोल है, भाई! पर्याय में नहीं टिकता। एक समय की पर्याय है न। उदास (है)। कहा न? **उदासीनरूप से प्रकाशमान है, इसलिए व्यक्त है...** इसलिए उसको अव्यक्त कहने में आता है भगवान को। थोड़ा सूक्ष्म है। रात्रि को प्रश्न हुआ था।

मुमुक्षु : पर्याय का वेदन होने पर भी पर्याय से उदास है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय से उदास है। पर्याय में टिकता नहीं। समय-समय में अन्दर में जाते हैं। बाह्य-अभ्यन्तर स्वयं अपना परिणाम वेदन में आने पर भी, एक समय की पर्याय से उदास है, वहाँ टिकता नहीं है। समझ में आया? यह तो अगम्यगम्य की बातें हैं, भाई! आहाहा! सन्तों की बातें, इसमें कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य की तो गजब की बातें हैं। वृन्दावनदास ने तो कहा है, वृन्दावनदास के गायन आते हैं न? 'कुन्दकुन्द जैसे हुए न होहिगें' ऐसे हुए नहीं और ऐसा कोई होगा भी नहीं, ऐसा है। ऐसी जाति का। दूसरा होगा... परन्तु इन जैसा नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य ... आहाहा! आता है न स्तुति में? 'हुए न हैं न होंगे, हुए न हैं न होंगे।' आहाहा! गजब बातें हैं। साक्षात् भगवान के पास गये... आहाहा! पवित्रता तो कितनी और साक्षात् सदेह भगवान की यात्रा की। समझ में आया? भरतक्षेत्र का मानवी, परमात्मा त्रिलोकनाथ विराजते हैं, उनकी सदेह यात्रा की। आहाहा! आहाहा!

मुमुक्षु : वे यहाँ से गये और आप वहाँ से आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! समझ में आया? आठ दिन रहे थे। यहाँ आये और आकर यह शास्त्र बनाया। आहाहा! ऐसी वाणी, ऐसा सिद्धान्त कहीं है नहीं। समझ में आया? **परन्तु इसे समझने के लिये बहुत तैयारी होना चाहिए।** बहुत प्रयत्न चाहिए, भाई! आहाहा!

अन्दर ज्ञायकभाव भगवान विराजता है, तो कहते हैं कि एक ओर गाँव अर्थात् छह द्रव्य, एक ओर राम अर्थात् आत्मा। अपनी ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्यों का ज्ञान होता है परन्तु छह द्रव्य से भिन्न है। अनन्त सिद्धों का ज्ञान पर्याय में होता है परन्तु अनन्त सिद्धों से भगवान भिन्न है। अथवा पंच परमेष्ठी से भिन्न है, परन्तु स्वरूप पंच परमेष्ठीस्वरूप ही है। आता है न? अरिहन्तस्वरूप है, सिद्धस्वरूप है। स्वरूप ऐसा है। 'तत्त्वानुशासन' में ऐसा प्रश्न चला है। प्रभु! तुम कहते हो अरिहन्त का ध्यान करो। तो अरिहन्त तो पर हैं और तुम्हारा ध्यान करता हूँ तो तुम अरिहन्त हो नहीं। यह तो खोटा ध्यान हुआ। तत्त्वानुशासन में भी लिया है। (तो कहते हैं) नहीं, नहीं। एक बार सुन तो सही। भगवान अरिहन्त का ध्यान अपना करते हैं। यह स्वयं अरिहन्तस्वरूप हैं, यह अरिहन्तस्वरूप ही है। इसका ध्यान करते हैं, यह निष्फल नहीं। इसके परिणाम में आनन्द आता है। आहाहा! समझ में आया? तुम कहते हो, अरिहन्त है, अरिहन्त है परन्तु पर्याय में तो अरिहन्त नहीं है। और तुम अरिहन्त का ध्यान करने का कहते हो तो झूठा होगा। अरे! सुन तो सही, प्रभु! एक बार सुन तो सही। तेरी चीज़ अरिहन्तस्वरूप है। विकार के अभाव स्वभावस्वरूप तेरी वस्तु है, यह अरिहन्तस्वरूप ही है। उसका ध्यान करने से आनन्द आता है तो अरिहन्तस्वरूप का ध्यान करना निष्फल नहीं गया, सफल हुआ। आहाहा! पोपटभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा!

स्तवन में—स्तुति में कहा है। योगीन्दुदेव में, स्वामी कार्तिकेय ने लिया है, पंच परमेष्ठीस्वरूप ही आत्मा है। अरिहन्तस्वरूप है, सिद्धस्वरूप है, आचार्यस्वरूप है, उपाध्यायस्वरूप है, साधुस्वरूप है। यह तो पाँचों वीतरागस्वरूप हैं न? पाँचों पद वीतरागस्वरूप हैं न? तो आत्मा अन्दर वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात पड़ती है, बापू! भाई! मार्ग ऐसा है। जिसमें अनन्त जन्म-मरण का अन्त आ

जाये और जिसके फलस्वरूप अनन्त आनन्द आये, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य चतुष्टय व्यक्त-प्रगट होता है। यहाँ आया न?

चेतनमात्र प्रगटरूप सिद्ध अवस्था... आज आया न? सिद्ध शक्तिरूप तो है। समझ में आया? परन्तु शक्तिरूप का ध्यान करने से प्रगट अवस्थारूप सिद्ध अवस्था हो जाती है। समझ में आया? ऐसी बात है। अरे! भगवान! क्या हो? भाई! आहाहा! यह छठा बोल हुआ। ऐसे छहों बोल में अव्यक्त कहा। अर्थात् पर्याय में नहीं आता। पर्याय व्यक्त है। पर्याय में नहीं आता तो अव्यक्त कहा।

उसे ऐसा कहा कि व्यक्त और अव्यक्त का ज्ञान होने पर भी व्यक्त को स्पर्शता नहीं; इसलिए अव्यक्त कहने में आया है। पर्याय इसको श्रद्धा में ले। समयसार १७-१८ गाथा में आया है। ज्ञान की पर्याय में पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से अज्ञानी को भी ज्ञान की पर्याय में स्वज्ञेय का ही ज्ञान होता है। परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ नहीं है। अज्ञानी का लक्ष्य पर्याय और राग पर होने से, पर्याय में ज्ञेय जानने में आता है फिर भी उसको जानने में नहीं आया। क्या कहा? ज्ञान की जो वर्तमान पर्याय है, वह अज्ञानी की पर्याय में भी स्व का ही ज्ञान होता है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। तो यह परप्रकाशक को जानता है, यह एक ओर रखो, परन्तु इस पर्याय में स्व का ज्ञान होता है। फिर भी अज्ञानी की दृष्टि इसके ऊपर नहीं, इससे ज्ञेय का उसको ज्ञान हुआ नहीं। स्वज्ञेय, हों! आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है विशेष हो तो रात्रि को प्रश्न करना। रात्रि को रखा है या नहीं? रात्रि को प्रश्न करना। आहाहा! यह तो अगम्यगम्य की बातें हैं। आहाहा! आतमराम अकेला बाग में रमता है। आहाहा! जिसमें राग और निमित्त का स्पर्श नहीं, ऐसी चीज़ है।

राग से लगाकर सब वस्तुयें ज्ञान के ज्ञेयरूप हैं। यह ज्ञान कितना बड़ा! राग का ज्ञान, पंच परमेष्ठी का ज्ञान, अनन्त निगोदिया जीवों का ज्ञान, यह सबका ज्ञान करता है। ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय का ज्ञान है। ज्ञेयरूप नहीं होता और ज्ञेय के कारण ज्ञान का ज्ञान नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! अनन्त संसार का छेद करके अनन्त आननद की प्राप्ति जिस कारण से होती है, वह सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज है। समझ में आया? यह तो होता नहीं और व्रत करो, तप करो, उपवास करो। बापू! भाई! तुझे नुकसान है कि...

आहाहा! जन्म-मरण के सिर पर वज्र का घन पड़ा है। जन्म-मरण का डर सिर पड़ा है भव। तेरी दृष्टि की विरुद्धता में भवाब्धि पड़ी है। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूपी पर्याय में छह द्रव्य को जानता है, परमेश्वर को जानता है। आहाहा! यह पर्याय में जानता है, फिर भी पर्यायमात्र आत्मा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अनन्त सिद्ध को, समयसार की पहली गाथा में आया है न? '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' इसका अर्थ क्या किया है? वन्दन करता हूँ ऐसा अर्थ न निकालते हुए, अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसा अर्थ निकाला... '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' समयसार का पहला शब्द। आहाहा! आचार्य ऐसा कहते हैं कि मेरी पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहा! हे श्रोताजनों! आहाहा! तुम्हारी ज्ञान की पर्याय में भी मैं अनन्त सिद्धों की स्थापना करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? मनुष्य देश-परदेश जाते हैं न? यदि वार ठीक न हो तो जाने का प्रस्थान आगे रख आते हैं। प्रस्थान। रास्ते में प्रस्थान रख आते हैं। बाद में जाना हो तो जाते हैं। ऐसा यहाँ कहते हैं, एक बार अनन्त सिद्धों का प्रस्थान लाये हैं। '**वंदित्तु**' का अर्थ ऐसा किया है कि अपनी पर्याय में सिद्ध की पर्याय की स्थापना की, यह वन्दन है। इसका नाम सिद्धों का आदर किया। आहाहा! और जिसकी पर्याय में अनन्त सिद्धों की स्थापना हुई, उसकी दृष्टि गुलाँट खाकर द्रव्य पर जाती है। समयसार का एक-एक शब्द..! आहाहा! जगत का भाग्य समयसार रह गया। ओहोहो! केवली का विरह है, मन:पर्यय, अवधिज्ञानी का विरह पड़ा। परन्तु समयसार, प्रवचनसार, नियमसार जैसी पुस्तकें (रह गयीं)। आहाहा! केवलज्ञानी का विरह भुलाये ऐसी चीज़ हैं।

एक शब्द लो। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' गजब काम किया है न। आहाहा! वन्दन करता हूँ, ऐसा नहीं लिया। इसका अर्थ है कि मैं आदर करता हूँ। आदर करता हूँ का अर्थ है कि मेरी पर्याय में और तुम्हारी पर्याय में अनन्त सिद्धों की स्थापना करता हूँ। आहाहा! आहाहा! अब तेरा लक्ष्य बदल जाना चाहिए। अनन्त सिद्ध मैं तेरी पर्याय में स्थापन करता हूँ। श्रोताओं! मैं समयसार कहता हूँ परन्तु तेरी पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापन कर। बाद में तेरा लक्ष्य करके सुन। आहाहा! तू सिद्ध हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया? यह धूल में पाँच-पच्चीस लाख मिलता है, वहाँ खुश-खुश हो जाता है। आहाहा! बनाओ लापसी।

तुम्हारे क्या कहते हैं ? लापसी कहते हैं न ? आज सट्टा में एक घण्टा में पचास हजार पैदा किये हैं, लापसी बनाओ। धूल में ही है नहीं, लापसी। यह लापसी बनी। अनन्त सिद्धों को पर्याय में स्थापित किया, अब हम अल्प काल में सिद्ध होनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया ? श्रोताओं को भी यही कहते हैं, मैं तुम्हारी पर्याय में अनन्त सिद्धों की स्थापना करता हूँ। यदि सही स्थापित करोगे तो तुम्हारी भी अल्प काल में सिद्धगति हो जायेगी। आहाहा!

यहाँ छह बोल में बहुत कहा। अव्यक्त के छह बोल आये हैं न ? अब यहाँ (चलता विषय) आत्मा **तद्रूप परिणमता है।** किस रूप ? सिद्ध की अवस्था। आत्मा सिद्ध की अवस्था परिणमता है। सिद्ध की अवस्था का कर्ता है, परन्तु पर के कर्ता-कर्म का नाश करे या कुछ करे तो कर्ता है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

और कैसा है ? 'अज्ञानं अपि आत्मानं कुर्वन्' अशुद्ध चेतनारूप विभाव परिणाम... उसरूप भी आप तद्रूप परिणमता है। अज्ञानी आत्मा विकाररूप स्वयं परिणमता है। तद्रूप, पर्याय में तद्रूप परिणमता है। भाई ने एक प्रश्न किया था न ? शुभ-अशुभ, प्रवचनसार में है न ? तुम्हारा... क्या कहलाता है ? रतनचन्दजी। भाई ने कहा था। अरे! प्रभु! भाई! यह तद्रूप तो पर्याय की बात है। यह कहा न ? देखो! अशुद्ध चेतना विभाव परिणामरूप **आप तद्रूप परिणमता है।** पर्याय में तद्रूप है, द्रव्य तो शुद्ध त्रिकाल है। आहाहा! अरे! भगवान! अरे रे! लक्ष्मी जाए, पिताजी गुजर जाएँ, लड़के बाद में झगड़ा करें। यह मकान मेरा है, मैं बड़ा हूँ, पहले से मेरा मकान यहाँ है। अब पाँच लाख का है, दूसरे का दो लाख का है परन्तु मैं तो यहाँ पहले से हूँ और पिताजी ने मकान मुझे दिया है। ऐसे केवलज्ञानी रहे नहीं, केवलज्ञान की पर्याय का विरह है। बाद में तकरार करें। पहला कहता है, शुभभाव से धर्म होता है, यह कहे, शुभभाव से नहीं होता। अरे! आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, आत्मा **तद्रूप परिणमता है।** सिद्धरूप परिणमो, चाहे अशुद्धरूप परिणमो, यह तद्रूप परिणमता है। पर्याय में तद्रूप, हों! द्रव्य नहीं। आहाहा! द्रव्य तो त्रिकाल शुद्धरूप है, त्रिकाल शुद्धरूप। एकेन्द्रियरूप हो, तब भी द्रव्य तो शुद्धरूप ही है। सिद्धपर्यायरूप हो, तब भी द्रव्य तो शुद्ध ही है। आहाहा! पूर्ण सिद्ध की पर्याय प्रगटी तो शुद्धता में कमी हो गयी, (ऐसा नहीं)। क्या कहा ? पूरी शुद्ध निर्मल पर्याय व्यक्त हो गयी तो अन्दर शुद्धता

में कमी हो गयी, ऐसा नहीं। शुद्धता है यह है। यह क्या कहा ? निगोद के जीव को अक्षर के अनन्तवें भाग विकास है। इसमें अल्पता है, तो द्रव्य में शुद्धता अधिक है, ऐसा नहीं। द्रव्य तो शुद्ध है, यह एकरूप त्रिकाल है और सिद्ध की पर्याय हुई, पूर्ण शुद्धता प्रगटी है तो अन्दर शुद्धता में कमी हो गयी ऐसा नहीं। यह तो त्रिकाली आनन्द का नाथ ज्ञायकभावरूप से त्रिकाली विराजमान है। आहाहा! तेरे नजर की आलस से तुझे निधान नहीं दिखता। समझ में आया ? यह धूल का खजाना पिता छोड़ जाये तो एकदम निकालता है। समझ में आया ? एक ठिकाने एक गृहस्थ था। यह कूंची-चाबी यहाँ रखता है। यहाँ रखे (कमर में खोंसकर रखता है) दे नहीं। मरा तब चाबी यहाँ थी। बड़ा लड़का एकदम गया और ले ली। दूसरे लड़कों को बाद में पता पड़े, ऐसा बनता है।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! चाहे तू सिद्धरूप परिणमे, चाहे अशुद्धरूप परिणमे, पर पर का परिणमन तू करे, यह तो तीन काल में नहीं।

मुमुक्षु : चाबी का दृष्टान्त अधूरा रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैसे यह चाबी वारसौ लेने खोलता है, ऐसे भगवान का वारिसों चैतन्य है, उसका ज्ञान करके पूरा खजाना खोलना है। भगवान यह वारिस रख गये हैं। समझ में आया ? यह पैसा है यह... यह... जाओ! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब बदल जाता है। आहाहा! पशु में जाये तो वहाँ द्रव्य भी भिन्न, क्षेत्र भिन्न, काल भिन्न, भाव भिन्न। यहाँ सेठिया कहलाता है। आहाहा! अरे! पर्दा जहाँ पड़ा है... यह तद्रूप परिणमता है, परन्तु पर की शरीर की वाणी की क्रिया तीन काल में करे ऐसा नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १४, गुरुवार, दिनांक २७-०८-१९७७
कलश-६१-६२, प्रवचन-७८

कलश-टीका, कर्ता-कर्म अधिकार। ६१वाँ कलश चलता है न? भावार्थ है? भावार्थ है न? **जीवद्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है,...** ६१। और **शुद्ध चेतनारूप परिणमता है,...** क्या कहते हैं? चाहे तो जीव-आत्मा शुद्ध सिद्धरूप, मोक्षमार्गरूप परिणमे या चाहे अशुद्धरूप परिणमे, परन्तु पर का कर्ता तो है नहीं। समझ में आया? कर्ता-कर्म अधिकार है न? अपने शुद्धचैतन्य परिणाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप हो, यहाँ तो सिद्धरूप हो ऐसा लिया है, अपनी पर्याय में सिद्धपर्यायरूप परिणमे तो यह सिद्धपर्याय का कर्ता और सिद्धपर्याय कर्म है। यह कर्ताकर्म है। यह भी उपचार से है। आहाहा! वैसे आत्मा कर्ता और शुद्धपरिणति कार्य, यह उपचार व्यवहार है। आहाहा! परमार्थ से तो शुद्धपरिणति वही कर्ता और वही कर्म है। आहाहा! समझ में आया? अपना आत्मा अपने स्वभाव के आश्रय से शुद्धचेतनारूप परिणमन करता है।

यह क्रमबद्ध का बड़ा झगड़ा है न? प्रियंकरजी कहते हैं कि उन्हें क्रमबद्ध तो स्वीकार है। क्रमबद्ध है न...

मुमुक्षु : अन्तर में स्वीकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बाह्य... अर्थात् कि बात तो इनकी सत्य है, इतना तो कहा, बाद में प्रियंकरजी को बुलाया है, व्याख्यान बाद। हमें किसी व्यक्ति का काम नहीं। क्रमबद्ध का जो निर्णय हो जाये तो बात तो चारों अनुयोग का सार वीतरागता है। समझ में आया? चारों अनुयोग का सार पंचास्तिकाय की १७२ गाथा में (कहा है) कि चारों अनुयोगों का सार वीतरागता है। यह वीतरागता की प्राप्ति होना, इसका अर्थ ये हुआ कि स्वद्रव्य का आश्रय करते हैं तो वीतरागता प्राप्त होती है। अर्थात् क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में भी स्वद्रव्य का आश्रय करना, ये इसका निर्णय है। धन्नालालजी! आहाहा!

तीस वर्ष पहले यहाँ विद्वतपरिषद भरी थी। प्रवचनमण्डप में। लालबहादुर ने स्वीकार किया था कि क्रमबद्ध है। तब उस समय जगन्मोहनलालजी ने ना किया था। इनको व्यवहार की बात थी न। लालबहादुर ने कहा क्रमबद्ध बराबर है। भाई! यह कहे यदि अपने क्रमबद्ध की बात स्वीकार करेंगे तो सोनगढ़ की बात सच हो जायेगी और अपनी बात गलत ठहरेगी, अरे! भगवान! यहाँ तो सत्य क्या है, यह बात है। किसी की (बात) रहे और किसी की (बात) न रहे, इसका यहाँ क्या काम है? प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा जो शुद्ध परिणमन करता है.. आहाहा! इसका कर्ता आत्मा है और शुद्ध परिणमन कार्य है। कर्म का अभाव हुआ, वह शुद्धपरिणति का कार्य है, ऐसा नहीं। कर्म का अभाव हुआ, कर्म का नाश तो यहाँ शुद्धपरिणति प्रगट हुई, ऐसा नहीं है, शुद्धपरिणति का कर्ता आत्मा है और जो शुद्ध परिणमन-धर्म की परिणति हुई है, वो उसका कार्य है। यह भी उपचार से। क्योंकि द्रव्य और पर्याय दो के बीच कर्ता-कर्म कहना ये उपचार से है। आहाहा! शरीर, वाणी, परज्ञेय का तो कर्ता है ही नहीं। समझ में आया?

यह तो अपने परिणम्य-परिणामकत्व शक्ति में दोपहर को आ गया। परिणम्य पारिणामिकत्व शक्ति। इसका अर्थ यह कि आत्मा परज्ञेय को जानने के स्वभाववाला है, ग्रहण करनेवाला है। परद्रव्य चाहे तो अरिहन्त हो, पंच परमेष्ठी हो या अनन्त निगोद के जीव हों, इसका अपने प्रमाणज्ञान में ग्रहण करने का स्वभाव है, जानने का स्वभाव है। आहाहा! परद्रव्य के कर्तापने का स्वभाव नहीं, परद्रव्य से अपने में ज्ञान होता है इसका कर्ता परद्रव्य है, यह भी नहीं... आहाहा! अपना स्वभाव परज्ञेय को जानने का है, ये प्रमाण है। परिणम्य-परिणामकत्व शक्ति दोपहर को (चलती है) न? परिणम्य का अर्थ प्रमाण और परिणमकत्व का अर्थ प्रमेय। अपना स्वभाव परज्ञेय को ग्रहण करने का— जानने का है और अपना स्वभाव पर के ज्ञान में ग्रहण कराने का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानी, परमात्मा अथवा श्रुतज्ञानी के मतिज्ञान में अपना आत्मा प्रमेय होकर इसके प्रमान ज्ञान में जानने योग्य है। पर को प्रमेयरूप ग्रहण करने योग्य है और पर को ग्रहण होने योग्य है। आहाहा! समझ में आया? इसमें तो शुद्धपरिणति अपना कार्य है और अपना

आत्मा कर्ता है, यह भी उपचार व्यवहार हो गया। पर का कर्ता तो नहीं, पर से अपने में केवलज्ञान या शुद्धपरिणति होती है ऐसा नहीं। आहाहा!

क्रमबद्ध के निर्णय का फल तो वीतरागता है। क्रमबद्ध कहने में भी वीतरागता कहना है। वीतरागता कैसे प्रगट हो? स्वद्रव्य के आश्रय से, जिन की आज्ञा तो यह है भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। ११वीं गाथा। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' जो सत्यार्थ भगवान भूतार्थ पूर्णाननद प्रभु है, इसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान की आज्ञा क्रमबद्ध का निर्णय कराने की है, इसमें वीतरागता बतायी है। यह वीतरागता स्वद्रव्य के आश्रय से प्रगट होती है। परद्रव्य के आश्रय से प्रगट नहीं होती। परद्रव्य तो व्यवहार पराश्रित है। पराश्रितता में तो राग प्रगट होता है। आहाहा!

निश्चय स्वाश्रित है, व्यवहार पराश्रित है। व्यवहार तो पंच परमेष्ठी हों या अनन्त निगोद के जीव हों, ऐसा जो बताया कि निगोद के जीवों की दया पालनेयोग्य है, इस कारण नहीं बताया। यह अनन्त निगोद का जीव है, वो तो तेरे ज्ञान में ग्रहण करने का तेरा स्वभाव है। यह बताना है। आहाहा! समझ में आया? पर की दया पालने के लिये बताया है, ऐसा नहीं। समझ में आया? मात्र अपने ज्ञान में—प्रमाणज्ञान में पर अनन्त ज्ञेय, परमेष्ठी आदि पदार्थों के ज्ञान करने का स्वभाव है। ग्रहण अर्थात् ज्ञान करने का और अपना स्वभाव पर के ज्ञान में ग्रहण (ज्ञान) कराने का स्वभाव है अर्थात् प्रमाणरूप भी आत्मा है और प्रमेयरूप भी आत्मा है। अपने यह शक्ति चल गयी है। यहाँ तो यह कहना है कि शुद्धपरिणति का कर्ता भी आत्मा नहीं ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो यह सिद्ध किया कि शुद्धपरिणति रूप आत्मा परिणमे या अशुद्धरूप परिणमे, यह तो अपनी परिणति का कर्ता है, पर का तो कर्ता है ही नहीं। इतना सिद्ध करना है। आहाहा! और अशुद्ध परिणतिरूप परिणता है तो इतने प्रमाण में सामने कर्म का बन्धन होता है। उतने ही प्रमाण में। जितना राग-द्वेष के अज्ञान है, उतने ही प्रमाण में सामने (बन्धन होता है)। तथापि उस बन्धन की पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं। आहाहा! तो फिर शरीर के वाणी, देश और पर की क्रिया आत्मा कर ही नहीं सकता। पर को ग्रहण करने

के—ज्ञान करने का स्वभाव है। पर के कर्तापने का अथवा पर से अपने में कुछ होता है। ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहा, भावार्थ। **जीवद्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है,...** विकाररूप परिणमे तो भी विकार का कर्ता और विकार उसका कर्म है। यह भी पर्याय में है। द्रव्य अशुद्धता का कर्ता और अशुद्धता द्रव्य का कार्य है, ऐसा भी नहीं। यह क्या कहा? अशुद्ध परिणति जो है, उसका कर्ता द्रव्य और द्रव्य का यह कर्म है, ऐसा नहीं। क्यों? कि द्रव्य में ऐसी कोई शक्ति नहीं कि विकाररूप परिणमे। अनन्त शक्तियाँ हैं, यह सभी शुद्ध हैं और शुद्धरूप परिणमना, वह शक्तियों का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

अशुद्धता का परिणमन होता है, यह भी पर्याय में षट्कारक से परिणमता है। यह बात तो वर्णीजी के साथ बीस वर्ष पहले हुई थी। पंचास्तिकाय ६२ गाथा। अशुद्ध परिणमन, एक समय में षट्कारक का परिणमन पर्याय में पर्याय से है। द्रव्य-गुण से नहीं, पर से तो है ही नहीं। समझ में आया? यह कहते हैं, चाहे तो अशुद्धरूप परिणमे या चाहे तो शुद्धचेतनारूप परिणमो। आहाहा! है? बहुत गम्भीर बात है। आहाहा! इतनी बात यहाँ की है कि आत्मा परिणमो, परन्तु वह भी व्यवहार से है। द्रव्य नहीं परिणमता; पर्याय परिणमती है। समझ में आया? नन्दकिशोरजी! सूक्ष्म बात है, भगवान!

अशुद्ध परिणति का पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, करण-साधन भी यह स्वयं, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय अपादान, पर्याय अधिकरण पर्याय, एक समय की पर्याय में षट्कारक का परिणमन है। जिसको द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं तो पर की अपेक्षा तो है ही नहीं। यह झगड़ा बहुत है। रतनचन्दजी गये। दो जनें गये। सहारनपुर। रतनचन्दजी कहते हैं, कर्मसे विकार होता है, कर्म से विकार होता है। आहाहा! यहाँ न करते हैं। अशुद्ध परिणति अपने से होती है। समझ में आया? पर से नहीं। यह भी अपने द्रव्य से होती है, यह भी व्यवहार है। अशुद्ध परिणति पर्याय में षट्कारक से परिणमती है, यह वस्तु का स्वतन्त्र स्वभाव है। समझ में आया?

शुद्ध चेतनारूप परिणमता है,... मोक्षमार्गरूप परिणमता है, यह ज्ञानचेतना। यह

अशुद्ध चेतना अशुद्धरूप परिणमना, यह कर्म (चेतना) और कर्मफलचेतना, समझ में आया ? और यह शुद्ध चेतनारूप परिणमन, वह ज्ञानचेतना। अर्थात् ज्ञान शब्द से भगवान आत्मा शुद्ध शक्ति अर्थात् शुद्धद्रव्य, उसका जो शुद्ध परिणमन होता है, वह तो शक्ति शुद्ध है तो परिणमन शुद्ध है। ऐसा मानना यह भी व्यवहार है। आहाहा! बाकी शुद्ध परिणति की पर्याय में षट्कारक के कारण शुद्ध परिणति कर्ता, शुद्ध परिणति कार्य, शुद्ध परिणति करण, शुद्ध परिणति अपादान, शुद्ध परिणति रखी यह सम्प्रदान, शुद्ध परिणति आधार। आहाहा! एक पर्याय में षट्कारक के शुद्ध परिणमन में आत्मा का कर्ता है। आत्मा भिन्न है। आहाहा! धन्नालालजी!

मुमुक्षु : यहाँ तो... कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहा परन्तु व्यवहार से। मात्र पर से भिन्न करने के लिये।

मुमुक्षु : पहला मानना या यह मानना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों सत्य (मानना)। यह मानने का फल क्या ? अशुद्ध परिणति अपने से होती है, पर से नहीं। (ऐसा मानने का) फल क्या ? तात्पर्य क्या ? अशुद्ध परिणति तेरे से होती है, ऐसा वाक्य आया। वीतराग तो ऐसा कहते हैं कि हमारे चारों अनुयोगों का सार तो वीतरागता है। अशुद्ध परिणति तुझसे हुई, इसका मतलब क्या ? कि अशुद्ध परिणति की दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! और शुद्ध चेतनस्वरूप की दृष्टि कर। यह अशुद्ध परिणति का परिणमन तेरे से है, इसका तात्पर्य यह है। समझ में आया ? क्योंकि यह तो (पंचास्तिकाय) १७२ गाथा में आ गया कि सर्व शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है। चाहे तो करणानुयोग हो, चरणानुयोग हो, कथानुयोग हो या द्रव्यानुयोग हो। इनका सार, तात्पर्य, रहस्य वीतरागता है। यह वीतरागता किस प्रकार है ? क्या परलक्ष्य से होती है ? व्यवहार पराश्रय से तो राग होता है। आहाहा!

वीतरागता स्वाश्रय से होती है। फिर भी लेता है ऐसे यहाँ नहीं लेना। मात्र स्व के ऊपर लक्ष्य जाता है। समझ में आया ? इससे उसको आश्रय कहा। यह प्रश्न बहुत चला था। निहालचन्दभाई सोगानी। द्रव्यदृष्टिप्रकाश में यह प्रश्न बहुत चला था। पर्याय को द्रव्य का आश्रय हो तो यह तो आधीन हो गयी। समझ में आया ? लालचन्दभाई खबर है ? इन्होंने

छापा है न लालचन्दभाई और शशीभाई ने। इसके अन्दरखाने यह चर्चा हुई थी कि द्रव्य का आश्रय ? पर्याय, पर्याय स्वतन्त्र है इसको आश्रय ? इसका अर्थ इतना कि लक्ष्य ऐसा है, यह लक्ष्य ऐसे जाता है मात्र। समझ में आया ? पर्याय का लक्ष्य पर के ऊपर है, यह पर्याय तो वहाँ रही। यह पर्याय अन्दर लक्ष्य नहीं कर सकती। जो पर्याय परलक्ष्य में है, यह अशुद्धता है, यह तो वहाँ रही। अब इसका तात्पर्य (क्या) ? अशुद्ध परिणमन करने स्वतन्त्र है, इसका तात्पर्य क्या ? बाद की पर्याय द्रव्य का आश्रय ले और वीतरागता प्रगट करे यह इसका तात्पर्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : कल तो आपने कहा था द्रव्य पर्याय को छूता ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा था, अभी भी कहते हैं। कल अव्यक्त के छह बोल चले थे। ४९ गाथा। पाँचवें बोल में तो ऐसा कहा कि व्यक्त-अव्यक्त, अव्यक्त अर्थात् पर्याय और अव्यक्त अर्थात् द्रव्य। दोनों का एकसाथ मिश्रित ज्ञान होने पर भी व्यक्त को अव्यक्त स्पर्शता नहीं है। समझ में आया ? तुम्हारा रात्रि में प्रश्न था न कि अलिंगग्रहण में से कुछ कहना। इसके सामने यह है। पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं। यहाँ आया, द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। छह बोल में पाँचवाँ बोल। भगवान! सूक्ष्म बात आती तो है परन्तु सादी भाषा में। भाव भले गम्भीर हो परन्तु भाषा कोई संस्कृत या ऐसी नहीं, कठिन नहीं। आहाहा!

कहते हैं, एक समय में व्यक्त अर्थात् पर्याय और अव्यक्त अर्थात् द्रव्य, दोनों एक समय में जानने पर भी व्यक्त को अव्यक्त स्पर्शता नहीं। द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। यह आये तो वीतरागता हो गयी। स्वतन्त्र। अब अलिंगग्रहण का १८-१९-२० बोल। अलिंगग्रहण के बीस बोल में (से) १८वाँ बोल ऐसा है कि गुणविशेष को ग्रहण नहीं करनेवाला। अर्थावबोध गुण... अर्थावबोध गुण विशेष को आश्रय नहीं करनेवाला, ऐसा द्रव्य स्वभाव है। ऐसा द्रव्य है। समझ में आया ? क्या कहा ? गुणविशेष-भेद को स्पर्श नहीं करनेवाला ऐसा द्रव्य है। आहाहा! सेठ ने कल रात्रि में पूछा था। नहीं ? थोड़ा यह कहना। अच्छा पूछा। समझ में आया ?

अर्थावबोधरूप गुणविशेष। सुनो! अर्थावबोध शब्द पड़ा है। अवबोध अर्थावबोध

अर्थ अर्थात् पदार्थ का अवबोध, ज्ञान अवबोध पड़ा है तो ज्ञान अकेला नहीं अर्थावबोध गुण विशेष लेना अर्थावबोध गुण विशेष यह लेना अर्थ पदार्थ को पाठ तो इतना लिया है अवबोध, यह द्रव्य में जितना गुण वह गुण विशेष अर्थाबोधरूप विशेष को नहीं स्पर्शनेवाला, ऐसा द्रव्य है। यह द्रव्य ऐसा है कि भेद गुणभेद को स्पर्शता नहीं। समझ में आया? उसको अलिंगग्रहण कहने में आता है। बीस बोल में १८वाँ बोल। आहाहा! समझ में आया? धीरे-धीरे कहते हैं। विचार भी करने अवकाश रहे। अर्थाबोधरूप गुण विशेष जिसको स्पर्शते नहीं, ऐसा द्रव्य स्वभाव द्रव्य है। इसका अर्थ यह हुआ कि गुणी और गुण का भेद भी नहीं। आहाहा! यह गुण गुणी द्रव्य और गुण—शक्ति, ऐसे भेद की भी दृष्टि नहीं। आहाहा! गुणी गुण को ग्रहण करता है, ऐसा नहीं। गुणी तो द्रव्यस्वभाव है। आहा! भेद को—अर्थावबोध को ग्रहण नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

उन्नीसवाँ बोल। पर्यायविशेष, अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष को नहीं स्पर्शनेवाला द्रव्य है। क्या कहा? सूक्ष्म बात है, भाई! प्रवचनसार। प्र—दिव्य, वचन—दिव्यध्वनि। दिव्यध्वनि कहो या प्रवचन कहो। आहाहा! इसका सार, दिव्यध्वनि का सार प्रवचनसार में है। त्रिलोकनाथ परमात्मा की ओमध्वनि का सार। आहाहा! ज्ञेय अधिकार है न? १७२ गाथा ज्ञेय अधिकार है। आहाहा! ९३ से २०० गाथा तक ज्ञेय अधिकार है।

ज्ञेय का स्वभाव यहाँ यह कहते हैं, वास्तविक आत्मज्ञेय का यह स्वभाव है। ज्ञेय अधिकार समकित का अधिकार है। पहला अधिकार ज्ञान का है। दूसरा ज्ञेय का अधिकार समकित का अधिकार है। तीसरा चरणानुयोग चारित्र—क्रिया का अधिकार है। यहाँ ज्ञेय अधिकार में ज्ञेय ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पहले कहा था कि ज्ञेय अधिकार की १०२ गाथा में ऐसा लिया है कि ज्ञेय ऐसा है कि अपना जन्मक्षण है। जो पर्याय होने का काल है, उस समय उत्पन्न होती है। ऐसा ज्ञेय का स्वभाव है। क्या कहा? ज्ञेय जो छह द्रव्य हैं, हो! ज्ञेय जो छह द्रव्य, यह ज्ञेय का ऐसा स्वभाव है कि जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनी है, वह इसका जन्मक्षण है। वह पर्याय उत्पन्न होने का काल है। समझ में आया? एक बात। यह ज्ञेयस्वरूप। दूसरी बात (प्रवचनसार) ९९ गाथा। अपने-अपने अवसर में पर्याय होती है, यह ज्ञेय का अधिकार—ज्ञेय का स्वभाव है। आहाहा!

पाटनीजी! सूक्ष्म आया। आहाहा! कल सेठ ने प्रश्न किया था। छह अव्यक्त के बोल चलते हैं। आज थोड़े अलिंगग्रहण के (बोल) लिये। आहाहा! क्या कहा?

ज्ञेय—छह द्रव्य का स्वभाव अपनी पर्याय के स्वकाल में ही पर्याय होती है, यह ज्ञेय का स्वभाव है। दूसरी बात। ज्ञेय का स्वभाव अपने-अपने अवसर में पर्याय होती है, आगे-पीछे नहीं होती, यह ज्ञेय का स्वभाव है। समझ में आया? तीसरी बात। ज्ञेय का स्वभाव उत्पाद उत्पाद से है, व्यय से नहीं, उत्पाद ध्रुव से नहीं, ध्रुव उत्पाद से नहीं—ऐसा ज्ञेय का स्वभाव है। समझ में आया? इसको समकित का अधिकार कहा है। जयसेनाचार्य ने प्रवचनसार के दूसरे ज्ञेय अधिकार को समकित का अधिकार कहा है। पण्डितजी! आहाहा! इसमें क्रमबद्ध आ गया। अपने-अपने अवसर में होती हैं। वह उत्पत्ति का जन्मक्षण है अर्थात् उत्पाद उत्पाद से है। उस उस समय का। जैसे त्रिकाली वस्तु त्रिकालरूप है, वैसे वर्तमान पर्याय का समय, एक समय का जो समय का काल है, उसी समय वो उत्पन्न होता है। आहाहा! सूक्ष्म है परन्तु वस्तु ऐसी गम्भीर है। अलिंगग्रहण में द्रव्य, गुण दो की बात की। यहाँ समकित के अधिकार में यह लिया। अपने-अपने अवसर में होता है, जन्मक्षण है, उत्पाद उत्पाद से है। एक बात। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में काललब्धि में ऐसा लिया कि छहों द्रव्यों की काललब्धि है। अपनी-अपनी पर्याय के काल में पर्याय उत्पन्न होती है, यह काललब्धि है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ भी क्रमबद्ध हुआ। परन्तु इसका तात्पर्य क्या? समझ में आया? यह अलिंगग्रहण में कहा। अर्थावबोधरूप पर्याय विशेष को नहीं ग्रहण करता, ऐसा द्रव्य है। पर्याय को स्पर्शता नहीं। द्रव्य, पर्याय को स्पर्शता नहीं। आहाहा!

अब तीसरा बोल (थोड़ा कड़क) आकरा है। पर्याय द्रव्य को नहीं छूती, यह बीसवाँ बोल है। समझ में आया? क्या कहते हैं? प्रत्यभिज्ञान। प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो ध्रुव द्रव्य, इसको पर्याय नहीं स्पर्शती। सामान्य है, वह पर्याय को नहीं स्पर्शता। आहाहा! और पर्याय द्रव्य को नहीं स्पर्शती। आहाहा! ऐसा अहेतुक और सत् है। तीनों ही सत् हैं न? उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीनों सत् हैं और ज्ञेय अधिकार में इन तीनों को स्वतन्त्र सिद्ध किया, तीनों को स्वतन्त्र सिद्ध किया है और यह श्रद्धा-समकित का अधिकार है,

ऐसा कहा। पण्डितजी! समकित का अधिकार कहा। आहाहा!

ऐसे सम्यक्त्व में तो द्रव्यस्वभाव का आश्रय हो, वह समकित है। परन्तु यहाँ तो ज्ञानप्रधान अधिकार है और चरणानुयोग सूचक चूलिका में तो ऐसा लिया है कि ज्ञेय और ज्ञायक की श्रद्धा सम्यग्दर्शन है, ऐसा लिया है। अकेला ज्ञायक लेना, यह तो द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा है। पर ज्ञान प्रधान सम्यग्दर्शन की यह व्याख्या है... आहाहा! वहाँ चरणानुयोग सूचक चूलिका में लिया है। कौन सी गाथा है? आहाहा! २४२? २४२ गाथा है। देखना है? है यहाँ प्रवचनसार? २४२ गाथा है। **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञानतत्त्व की तथा प्रकार से (जैसी है वैसी, यथार्थ) प्रतीति जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शन पर्याय है,...** और ११वीं गाथा में ऐसा कहा है कि भूतार्थ का आश्रय, अकेला स्वद्रव्य भूतार्थ का आश्रय सम्यग्दर्शन है। यह दृष्टि प्रधान कथन है। और ज्ञान प्रधान सम्यग्दर्शन के कथन में... आहाहा! **ज्ञेयतत्त्व...** जितना ज्ञेय है, वह ज्ञेय तत्त्व और **ज्ञातृत्व...** अपना आत्मा, दोनों की तथा प्रकार से प्रतीति वह सम्यग्दर्शनपर्याय है, ऐसा लिया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग देखो तो सही। यह प्रवचनसार में ज्ञान प्रधान कथन है और समयसार में दृष्टि प्रधान कथन है। समझ में आया? इससे समयसार में ४७ शक्तियाँ लीं। क्योंकि दृष्टि प्रधान कथन में शक्ति और शक्तिवान (आता है), पर्याय नहीं आती। समझ में आया? और ज्ञान प्रधान कथन में ज्ञेय और ज्ञायक की प्रतीति सम्यग्दर्शन की पर्याय है। समझ में आया? और तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन (कहा) यह भी ज्ञान प्रधान सम्यग्दर्शन है। इसमें दोनों आ गये न? इसमें संवर, निर्जरा सब आ गया। इस दर्शनप्रधान में तो अकेला '**भूदत्थम**' अकेला भूतार्थ भगवान आत्मा त्रिकाल, आहाहा! उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जो शुद्ध परिणमन होता है या अशुद्ध परिणमन होता है, यहाँ तो इतना सिद्ध करना है कि वह अपना कार्य है। पर का कार्य कर सकता ही नहीं। कर्म बन्धन होता है, जितने प्रमाण में अज्ञान और राग-द्वेष करता है, उतने प्रमाण में वहाँ ज्ञानावरणीय, मोहनीय आदि बँधते हैं। फिर भी उस पर्याय का कर्ता यह पर्याय नहीं। अशुद्ध परिणमन द्रव्यकर्म की बन्ध की पर्याय का कर्ता नहीं। आहाहा! शुद्ध परिणति का कर्ता आत्मा और

वह उसका कर्म, इतना सिद्ध करके शुद्ध परिणति में कर्म का अभाव है, इतनी अपेक्षा इसको नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जैसे विकार का अपना षट्कारक से स्वतन्त्र परिणमन है, ऐसे मोक्षमार्ग की पर्याय का भी उसका षट्कारक का स्वतन्त्र परिणमन है। आहाहा! समझ में आया? कर्म ने मार्ग प्रगटा या दर्शनमोह का अभाव हुआ तो यहाँ सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी अपेक्षा यहाँ नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : तत्त्वार्थसूत्र में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा न, तत्त्वार्थसूत्र में ज्ञानप्रधान कथन है। इसलिए वहाँ ऐसा कहा ही नहीं। तत्त्वार्थसूत्र में कहा है कि चार घातिकर्म का नाश होने पर केवलज्ञान होता है। ऐसा कहा।

मुमुक्षु : उत्तराध्ययन में तो अलग हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया है उत्तराध्ययन में। यह किस अपेक्षा से कहा है? चार कर्म की जो कर्मरूप अवस्था है, उसका नाश होके तो अकर्मरूप अवस्था होती है। उनका नाश होकर केवलज्ञान उत्पन्न होता है? यहाँ तो मिथ्यात्व का नाश होकर सम्यक् उत्पन्न होता है, इतनी अपेक्षा लें तो भी व्यवहार है। कर्म का नाश होकर समकित हुआ, ऐसा नहीं। पर मिथ्यात्व का नाश होकर सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ, यह भी पर की अपेक्षा का कथन है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय मिथ्यात्व का नाश हुआ तो हुई, ऐसा नहीं है। जिसके व्यय को उत्पाद की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? किस नय से कहाँ कैसा अर्थ है ऐसे नय लगाना। अकेला नहीं पकड़ लेना। किस नय का कथन है (यह जानना चाहिए)।

यहाँ कहते हैं, **जीवद्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है,...** आहाहा! **शुद्ध चेतनारूप परिणमता है, इसलिए जिस काल में जिस चेतनारूप परिणमता है, उस काल में उसी चेतना के साथ व्याप्य-व्यापकरूप है,...** ऐसी भाषा है। शुद्धरूप परिणमे तो यह व्याप्य और आत्मा व्यापक है। पर से भिन्न इतना सिद्ध करना है। शुद्ध चैतन्यरूप परिणमे, सम्यग्दर्शनरूप परिणमे, यह व्याप्य-पर्याय और आत्मा व्यापक। अशुद्धरूप

परिणमे तो आत्मा व्यापक है। आत्मा शब्द वहाँ पर्याय लेना। द्रव्य व्यापक होकर अशुद्धरूप परिणमता है, यह व्यवहार का कथन है। द्रव्य व्यापक नहीं, ऐसा कहते हैं। द्रव्य तो शुद्ध है, शक्ति शुद्ध है, यह अशुद्धरूप व्याप्य है? समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! मार्ग बहुत सूक्ष्म। आहाहा!

अशुद्ध परिणमन की सत्ता जो षट्कारक से है, वह पर्याय के हैं। कारक द्रव्य के नहीं। द्रव्य के कारक, गुण के कारक तो ध्रुव हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, (अधिकरण आदि) द्रव्य की शक्तियाँ ध्रुव हैं। इनका परिणमन नहीं। यहाँ तो परिणमन की बात लेना है। ध्रुव सदृश है, यह परिणमन में नहीं आता। आहाहा! परिणमन में तो पर्याय परिणमती है। पर्याय का कर्ता पर्याय का षट्कारक है। विकार का हो या अविकार का हो। पर्याय अपने षट्कारक से स्वतन्त्र परिणमती है। आहाहा! नन्दकिशोरजी! कभी दरकार नहीं की। ऐसा का ऐसा (चला है)। भगवान तो वारसा रख गये हैं। आहाहा!

यह तो मोक्ष का मार्ग वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर (द्वारा प्ररूपित) आहाहा! ऐसी बात कहाँ प्रभु? अरे! समझ में आया? अरे, वीतरागता का तो विरह है अभी, परन्तु शास्त्र वीतरागता के प्राप्ति का निमित्त, केवलज्ञान को शास्त्र कहते हैं। आहाहा! जो समझे उसको। आहाहा!

यह कहते हैं, **चेतना के साथ व्याप्य-व्यापकरूप है,...** इसमें विकार के साथ भी व्याप्य-व्यापक कहा। पर से भिन्न करना है, इस अपेक्षा से और कर्ता-कर्म अधिकार की ७५-७६ गाथा में ऐसा कहा विकार व्याप्य और कर्म व्यापक है। क्योंकि वहाँ स्वभाव की सिद्धि करना है। यहाँ तो इसकी परिणति की सिद्धि करना है। ७५-७६ गाथा में ऐसा कहा कि भगवान आत्मा शुद्धचैतन्य शक्ति और शुद्धद्रव्य का व्याप्य तो शुद्ध होता है। व्यापक द्रव्य और पर्याय शुद्ध, यह उसका व्याप्य है। विकार है न? विकार व्याप्य और कर्म व्यापक है। आहाहा! कहाँ कथन यह और कहाँ कथन यह? किस नय से कथन है? शास्त्र में पाठ है या नहीं?

मुमुक्षु : एक खूँटे बाँध दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खूँटे बाँधा न। जिस नय का जो कथन है, वहाँ वह समझना।

यह इसका खूँटा है। कहो, धन्नालालजी!

मुमुक्षु : इसकी क्या जरूरत है, हमें तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्यग्दर्शन की बात चलती है न, भगवान! आहाहा!

अशुद्ध परिणति भी तेरे से है, स्वतन्त्र परिणति होती है ऐसा कहा। इसका तात्पर्य तो वीतरागता लाना है। अशुद्ध परिणमन का लक्ष्य छोड़कर शुद्ध चैतन्यद्रव्य का आश्रय करने से वीतरागता उत्पन्न होती है। सर्व शास्त्रों का तात्पर्य स्व का आश्रय करना है।

मुमुक्षु : हमको वीतरागता नहीं चाहिए, सम्यग्दर्शन चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन कहो या वीतरागता कहो। सराग सम्यग्दर्शन यह सम्यग्दर्शन है ही नहीं है। हमारे यहाँ बड़ी चर्चा चली कि सराग समकित है। अरे! वह तो राग के दोष के साथ बताया। समकित तो वीतराग ही होता है। एक अनन्तानुबन्धी का अभाव और मिथ्यात्व के अभाव से होता है, यह तो वीतराग पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन तो वीतरागी है। पंचाध्यायी में बहुत लिया है। शिष्य ने प्रश्न किया, सराग समकित है न? नहीं... नहीं, समकित सराग है ही नहीं। पंचाध्यायी, राजमल्ल, बिल्कुल नहीं, सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। क्यों? 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' जिन आत्मा जो वीतरागस्वरूप है, उसका आश्रय करने से वीतरागता उत्पन्न होती है। वीतरागता कहो या सम्यग्दर्शन कहो। समझ में आया? जघन्य आश्रय हो तो दर्शन, ज्ञानादि उत्पन्न होते हैं। विशेष आश्रय हो तो चारित्र उत्पन्न होता है। विशेष आश्रय हो तो केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

मुमुक्षु : फिर से।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से। ऐसा कहा कि भगवान पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध ध्रुव परमात्मस्वरूप, जिनस्वरूप का थोड़ा आश्रय करने से, जघन्य आश्रय करने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वरूपाचरणादि होता है। विशेष आश्रय करने से चारित्र होता है। इससे भी उग्र आश्रय करने से केवलज्ञान होता है। बात तो यह है। समझ में आया? प्रियंकरजी! यह प्रिय है। यह प्रिय करना है। प्रियंकर है न? प्रिय अर्थात् भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द का आश्रय करना, वह प्रियंकर है। आहाहा! यह तो रात्रि में थोड़ी बात की

थी। बाद में मुझे विचार आया कि थोड़ा सुनो, भाई आये हैं। रामजीभाई व्याख्यान के बाद दस मिनिट बोलेंगे। टेपरिकार्डिंग उतार लेना, हों! यह तो यहाँ दलाल होकर आये हैं न। आहाहा!

जिस काल में जिस चेतनारूप परिणमता है, उस काल में उसी चेतना के साथ व्याप्य-व्यापकरूप है,... भाषा देखो! यहाँ तो विकारी परिणाम-मिथ्यात्व के और राग-द्वेष के परिणाम को व्याप्य कहा, अवस्था कही और आत्मा व्यापक अवस्थायी कहा। इतना यहाँ सिद्ध करना है। परन्तु जहाँ अन्तर की दृष्टि, स्वभाव सिद्ध करना हो... आहाहा! तो स्वभाव की कोई शक्ति विकार करे, ऐसी कोई शक्ति अनन्त शक्ति में नहीं। अपने दोपहर में चलता है। अनन्त शक्तियों में से ४७ ली हैं। कोई शक्ति ऐसी नहीं कि विकार करे। शक्ति तो शुद्धचिदानन्द आत्मा है। आहाहा! अशुद्धता करे, ऐसी कोई शक्ति नहीं। परन्तु पर्याय के लक्ष्य से अशुद्धता उत्पन्न होती है। यह शक्ति और शक्तिवान के आश्रय नहीं। समझ में आया? आहाहा! थोड़ा लिखा बहुत करके जानना। तुम्हारे लगन (विवाह) में लिखते हैं न? थोड़ा लिखा बहुत करके जानना। ऐसे यहाँ थोड़ा लिखा ज्यादा करके जानना। आहाहा!

यहाँ व्यापक-व्याप्य ऐसा कहा कि शुद्धचेतना भी व्याप्य और अशुद्ध चेतना भी व्याप्य। दोनों का व्यापक आत्मा। दूसरी जगह ७५-७६-७७ में ऐसा कहा। आहाहा! अब आयेगा। कलश आयेगा कि कर्ता कौन है? आत्मा कर्ता नहीं तो कर्ता कौन है? तेरह गुणस्थान के भाव विकारी हैं वह कर्ता कर्म हैं। आत्मा नहीं। आहाहा! इसमें जरा सूक्ष्म बात है। समझ में आया? जो नया कर्म बँधता है, उसको यहाँ व्याप्य कहा और विकारी पर्याय को व्यापक कहा। तेरह गुणस्थान। गुणस्थान आत्मा के नहीं, आत्मा में गुणस्थान नहीं। आत्मा तो गुणस्थान से रहित है। तेरह गुणस्थान हैं, वह कर्म के, नये कर्म के कर्ता हैं। वास्तव में तो नया कर्म का परमाणु भिन्न है और यह तेरह गुणस्थान की पर्याय भिन्न हैं। तो भी नया कर्म का आवरण होने में निमित्त तेरह गुणस्थान की विकारी पर्यायों को व्यापक-कर्ता कहकर नये कर्म की पर्यायों उनका कर्म (कार्य) है, ऐसा कहा है। नहीं तो कर्म भिन्न है, यह वस्तु भिन्न है। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : बहुत सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वकील जैसा बुद्धिवाला मनुष्य... इस जाति का अभ्यास नहीं।

परम सत्य तत्त्वज्ञान का अभ्यास होना चाहिए। यह तो तत्त्वज्ञान की बात है। समझ में आया? यह तो कॉलेज है तो इसको थोड़ा जानना तो होना चाहिए। इसको यह लागू पड़ता है। कॉलेज के प्रोफेसर कहीं पहली पुस्तक की बात करेगा? समझ में आया? यह तो वीतराग सर्वज्ञ भगवान प्रोफेसर है। उनकी बात कहने के बीच में आढ़तिया रूप सन्त हैं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा अभ्यास तो होना चाहिए। अरे! दुनिया में एल.एल.बी. और एम.ए. के लिये (कितने वर्ष लगाता है)। यह वकील है एल.एल.बी तक पढ़ा है तो दस वर्ष नहीं लगे होंगे? अपने यह वकील देखो। वकील एल.एल.बी. होने में कितनेक वर्ष तो लगे होंगे न। समझ में आया? बाद में वकीलात पास होते हैं।

मुमुक्षु : लगभग बाईस वर्ष लगे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, भाई कहते हैं कि बाईस वर्ष तो वकीलात पढ़ने में लगते हैं और यह समझने में कितने वर्ष? पाप की वकीलात और पाप के अभ्यास में बाईस वर्ष (लगाये)।

मुमुक्षु : न्याय की कोर्ट में मदद करने के लिये...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं वकील कोर्ट में मदद करने को जाता है। पैसे के लोभ से जाता है। आहाहा! यह बड़े वकील थे, प्रियंकरजी! रामजीभाई तीस साल पहले दो सौ रुपया लेते थे। पाँच घण्टे कोर्ट में जाते थे। एक घण्टे सलाह लेने आये तो सौ रुपया लेते थे। एक घण्टा सलाह लेने आये तो। तीस वर्ष से छोड़ दिया। इसमें क्या है? एक वकील तो ऐसा कहता था... वह वढ़वाण ओहो! रामजीभाई! इनके समय तो रामजीभाई एक ही वकील थे। ऐसी रामजीभाई की प्रसिद्धि थी। वकील का नाम क्या? मंगलभाई वकील, वहाँ वढ़वाण व्याख्यान में आते थे। रामजीभाई का नाम आये तो ऐसा हो जाये... रामजीभाई तो उस समय यह एक ही थे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। आहाहा! अपनी वकालात करते हैं।

तो भी पुद्गलपिण्डरूप जो ज्ञानावरणादि कर्म है, उसके साथ तो व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है,... आहाहा! अपनी शुद्ध या अशुद्ध पर्याय के साथ व्याप्य-व्यापकपना है। व्याप्य अर्थात् अवस्था और व्यापक अर्थात् द्रव्य, ऐसा व्याप्य-व्यापक है, परन्तु पुद्गल बन्ध करे या आत्मा कर्म बाँधे, यह बिल्कुल नहीं। उस समय कर्मवर्गणा की पर्याय कर्मरूप होने की योग्यता से जन्मक्षण है तो कर्म उत्पन्न होता है। यह परमाणु में भी कर्मरूप होने का जन्मक्षण है। आहाहा! यहाँ विकार हुआ तो वहाँ कर्मरूप परिणमन हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! इसलिए उनका कर्ता नहीं, समझे? सार समस्तरूप से हम तो कहते हैं। परमार्थ से कहते हैं, यथार्थ से कहते हैं, परमार्थ से कहते हैं। समस्तरूप से कहते हैं कि पर का तो कर्ता नहीं।

कलश-६२

(अनुष्टुप्)

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्।।17-62।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'आत्मा ज्ञानं करोति' [आत्मा] चेतनद्रव्य [ज्ञानं] चेतनामात्र परिणाम को [करोति] करता है। कैसा होता हुआ? 'स्वयं ज्ञानं' जिस कारण से आत्मा स्वयं चेतना परिणाममात्र स्वरूप है। 'ज्ञानात् अन्यत् करोति किं' [ज्ञानात् अन्यत्] चेतन परिणाम से भिन्न जो अचेतन पुद्गल परिणामरूप कर्म उसका [किं करोति] करता है क्या? अपि तु न करोति-सर्वथा नहीं करता है। 'आत्मा परभावस्य कर्ता अयं व्यवहारिणां मोहः' [आत्मा] चेतनद्रव्य [परभावस्य कर्ता] ज्ञानावरणादि कर्म को करता है [अयं] ऐसा जानपना, ऐसा कहना [व्यवहारिणां मोहः] मिथ्यादृष्टि जीवों का अज्ञान है। भावार्थ इस प्रकार है कि कहने में ऐसा आता है कि ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता जीव है, सो कहना भी झूठा है।।17-62।।

कलश - ६२ पर प्रवचन

अब, यह श्लोक कहते हैं। कक्षा में चलता है न पहले बोलते हैं।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥१७-६२॥

यहाँ परभाव शब्द विकार नहीं लेना। यहाँ परभाव शब्द परद्रव्य लेना। यहाँ यह अपेक्षा है। **'आत्मा ज्ञानं' चेतनद्रव्य चेतनामात्र परिणाम को करता है।** चेतनमात्र परिणाम। कर्मचेतना कहो, ज्ञानचेतना कहो, यह सब चेतना के परिणाम हैं। कर्मचेतना—राग आदि कर्मचेतना और अरागादि सम्यग्दर्शन, यह ज्ञानचेतना। यह चेतनामात्र परिणाम का कर्ता को करता है, ऐसा लेना। चेतना अर्थात् मात्र ज्ञान परिणाम, ऐसा नहीं लेना। चेतना अर्थात् राग का परिणाम और सम्यग्दर्शन, ज्ञान का परिणाम। यह दोनों चेतनामात्र परिणाम को करते हैं।

कैसा होता हुआ ? 'स्वयं ज्ञानं' जिस कारण से आत्मा स्वयं चेतना परिणाममात्र स्वरूप है। 'ज्ञानात् अन्यत् करोति किं' चेतन परिणाम से भिन्न जो अचेतन पुद्गल परिणामरूप कर्म, उसका करता है क्या ? आहाहा! तो यह तुम्हारी टाईल्स-बाईल्स कहाँ गये ?

मुमुक्षु : टाईल्स में।

पूज्य गुरुदेवश्री : टाईल्स में ? यह हमारे वलुभाई का बड़ा सत्तर लाख का दवाखाना था। बेच दिया। रोज दवा बनाते थे।

मुमुक्षु : एक तरफ आप कहते हो कि कुछ नहीं बनाते, दूसरी तरफ कहो दवा बनाते थे, हमें क्या समझना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मानता था कि मैं बनाता हूँ। हम तो वहाँ रह आये हैं। रामजीभाई, नानुभाई थे। वहाँ भोजन किया था। वहाँ दवा देखी। घूमे, वहाँ अन्दर गोली बनती... विदेशी दवा, यहाँ देशी बनती। बड़ा दवाखाना था। अब बेच दिया। सत्तर लाख

का। यहाँ तो कहते हैं, कौन बनाये ? प्रभु ! यह गोली ऐसे हिले, यह क्रिया क्या आत्मा कर सकती है ? आहाहा !

मुमुक्षु : बड़ी मोटर थी, सारे गाँव में फिरती थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि रोटी का टुकड़ा होता है, क्या यह आत्मा कर सकता है ? आहाहा ! आत्मा अशुद्धरूप भी परिणमे परन्तु रोटी का टुकड़ा भी करे ऐसा आत्मा नहीं है। आहाहा ! दाल, भात बनावे, ऐसा करे या नहीं, स्त्री का हाथ हल्का हो तो बहुत अच्छा बनावे। कहो। पापड़, वड़ी, सेव.. सेव... लकड़ी रखते हैं न ? लकड़ी, पाटिया। इस समय तो जाने क्या बैठे हैं... अभिमान का पार नहीं। मणिभाई ! खटोला होता है न ? खटोला पर बैठे। बड़ा पाटिया रखे। सेव बनावे सेव। सेव को क्या कहते हैं ? सेव कहते हैं ? गेहूँ की। यह हाथ की क्रिया भी आत्मा नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! बड़ी चतुर बाई हो तो पापड़ और वड़ी बहुत अच्छी बना सकती है। ऐसा कहते हैं। लोग पागल हैं। सुनो तो सही। चतुर कहाँ से आयी ?

मुमुक्षु : पूरी दुनिया पागल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सारी दुनिया पागल है। पागलों के गाँव भरे हैं। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं, देखो ! **अचेतन पुद्गल परिणामरूप कर्म, उसका करता है क्या ? अपि तु न करोति—सर्वथा नहीं करता है।** देखो ! कथंचित् तो नहीं, परन्तु सर्वथा नहीं। वीतराग का मार्ग तो कथंचित् है न ? यह तो नित्य-अनित्य में कथंचित् (लागू पड़ता है)। कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है। पर के लिये सर्वथा कर्ता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? '**आत्मा परभावस्य कर्ता अयं व्यवहारिणां मोहः**' चेतन द्रव्य ज्ञानावरणादि कर्म को कर्ता है, ऐसा जानपना, ऐसा कहना '**व्यवहारिणां मोहः**' मिथ्यादृष्टि जीवों का अज्ञान है। आहाहा !

मुमुक्षु : व्यवहार का अर्थ ही मिथ्यादृष्टि किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! मिथ्यादृष्टि किया, व्यवहार का अर्थ ही मिथ्यादृष्टि किया। आहाहा ! मिथ्यादृष्टि परद्रव्य का कर्ता होता है। आहाहा ! मैं अपने लड़के को शिक्षित कर सकता हूँ, बड़ा करता हूँ, माँ-बाप बालक को बड़ा करते हैं न ? कौन करे ?

आहाहा! सब भ्रमणा है। आहाहा! परद्रव्य की पर्याय पर करे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : झूठी वस्तु सच्ची हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठी बात लोगों को घर कर गयी है। झूठा की भूतनी घर कर गयी है। जहाँ हो तहाँ मैंने किया... मैंने किया... अनाज का बराबर बोवे। बोवे न ऐसे बाजरा क्या कहते हैं, ज्वार बोता है। ऐसा करता है, बाजरा को... क्या कहते हैं? ज्वार गेहूँ को तलते हैं... ओहोहो! लड़के ने पानी सही दिया हो तो कहे, बहुत अच्छा किया। धूल भी नहीं किया। दरबार! यह तो वस्तु ऐसी है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि जीवों का अज्ञान है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि कहने में ऐसा आता है कि ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता जीव है, सो कहना भी झूठा है। आहाहा! आत्मा ने कर्म बाँधा और आत्मा ने कर्म को भोगा, यह कहने मात्र है, कहते हैं।

मुमुक्षु : आठ कर्म का नाश किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब व्यवहारमात्र, निमित्तमात्र। पण्डितजी ने बहुत लिया है। तत्त्वार्थसूत्र में तो ऐसा आता है कि चार कर्म का नाश होता है तो केवलज्ञान होता है। तो कहते हैं, चार कर्म का नाश होता है तो क्या यह पर्याय होती है? आत्मा की पर्याय से होती है? कर्म की पर्याय का नाश हो तो अकर्म की पर्याय होती है? कर्म की पर्याय थी, इसका नाश हुआ, व्यय हुआ तो अकर्मरूप पर्याय उत्पन्न हुई। केवलज्ञान उत्पन्न हुआ उससे? आहाहा! फूलचन्दजी खानियाचर्चा में, जैनतत्त्व मीमांसा में लिखा है। पण्डितजी फूलचन्दजी थे। इससे भी विशेष यह हुकमचन्दजी पके (तैयार हुए)। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहने में ऐसा आता है कि ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता जीव है, सो कहना भी झूठा है। तब कहते हैं, कर्ता नहीं, कर्ता नहीं तो कर्म का कर्ता कौन है कौन कर्म का, यह विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १५, शुक्रवार, दिनांक २८-०८-१९७७
कलश-६३-६७, प्रवचन-७९

मुनियों को रहने की काल की स्थिति थी तो विष्णुकुमार मिल गये। मन्त्री से आज्ञा ली न? वचन (लिया)। बाद में रक्षा हुई, वह तो व्यवहार है। विष्णुकुमार ने ७०० मुनियों को बचाने के लिये भेष बदल लिया। वह उनकी योग्यता नहीं थी। परन्तु ऐसा प्रसंग बन गया, इससे उन्हें ऐसा भाव आया तो प्रशंसा की। नहीं तो मुनि की दशा में पर का ऐसा करना, भेष बदलना (ऐसा होता नहीं)। समझ में आया? यह मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है। विष्णुकुमार ने ऐसा (कार्य) किया कि उनकी प्रशंसा हुई परन्तु वास्तव में यह मुनि के योग्य काम नहीं। आहाहा! वास्तव में तो अपने जीव की रक्षा करने की चीज़ है, यह तो है। पुण्य और पाप भाव से अपनी आत्मा को बचाना, शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द को दृष्टि में लेकर अपना स्वभाव जितना जैसा है, उसकी श्रद्धा करना, यह अपने जीव की रक्षा है। समझ में आया? पर की रक्षा तो कर सकता नहीं। भाव होता है, परन्तु पर की रक्षा नहीं कर सकता। इस अधिकार में तो यह है। वास्तव में यह व्यवहार है।

कलश-६३-६४

(वसन्ततिलका)

जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव
कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव।
एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय
संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्म कर्तृ।।18-63।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'पुद्गलकर्म कर्तृ संकीर्त्यते' [पुद्गलकर्म] द्रव्य-पिण्डरूप आठ कर्म उसका [कर्तृ] कर्ता [संकीर्त्यते] जैसा है वैसा कहते हैं। 'शृणुत' सावधान होकर

तुम सुनो। प्रयोजन कहते हैं–'एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय' [एतर्हि] इस समय [तीव्ररय] दुर्निवार उदय है जिसका ऐसा जो [मोह] विपरीत ज्ञान, उसको [निवर्हणाय] मूल से दूर करने के निमित्त। विपरीतपना कैसा करके जाना जाता है। 'इति अभिशंकया एव' [इति] जैसी करते हैं [अभिशंकया] आशंका उसके द्वारा [एव] ही। वह आशंका कैसी है? 'यदि जीव एक पुद्गलकर्म न करोति तर्हि कः तत् कुरुते' [यदि] जो [जीव एव] चेतन द्रव्य [पुद्गलकर्म] पिण्डरूप आठ कर्म को [न करोति] नहीं करता है [तर्हि] तो [कः तत् कुरुते] उसे कौन करता है। भावार्थ इस प्रकार है–जो जीव के करने पर ज्ञानावरणादि कर्म होता है, ऐसी भ्रान्ति उपजती है, उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि पुद्गलद्रव्य परिणामी है, स्वयं सहज ही कर्मरूप परिणमता है।।18–63।।

(उपजाति)

स्थितत्यविघ्ना खलु पुद्गलस्य
स्वभावभूता परिणामशक्तिः।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं
यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता।।19–64।।

खण्डान्वय सहित अर्थ–'इति खलु पुद्गलसय परिणामशक्तिः स्थिता' [इति] इस प्रकार [खलु] निश्चय से [पुद्गलस्य] मूर्त द्रव्य का [परिणामशक्तिः] परिणमनस्वरूप स्वभाव [स्थिता] अनादिनिधन विद्यमान हैं। कैसा है? 'स्वभावभूता' सहजरूप है। और कैसा है? 'अविघ्ना' निर्विघ्नरूप है। 'तस्यां स्थितायां सः आत्मनः यं भावं करोति स तस्य कर्ता भवेतू' [तस्यां स्थितायां] उस परिणामशक्ति के रहते हुए [सः] पुद्गलद्रव्य [आत्मनः] अपने अचेतन द्रव्य सम्बन्धी [यं भावं करोति] जिस परिणाम को करता है [सः] पुद्गलद्रव्य [तस्य कर्ता भवेत्] उस परिणाम का कर्ता होता है। भावार्थ इस प्रकार है – ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलद्रव्य परिणमता है, उस भाव का कर्ता फिर पुद्गलद्रव्य होता है।।19–64।।

कलश - ६३-६४ पर प्रवचन

अब यहाँ अपने ६३ (कलश)। ६४ और ६५ का अर्थ करते हैं। ६३ में ऐसा प्रश्न किया है कि प्रभु! आप कहते हो कि पुद्गलकर्म आत्मा नहीं करता तो कौन करता है? ऐसी आशंका ६३ में है। पुद्गलकर्म का बन्धन होता है न? आत्मा राग करता है परन्तु कर्मबन्धन की पर्याय नहीं करता। ऐसा क्यों? ऐसा प्रश्न ६३ में था। ६४ में उसका जवाब है।

पुद्गल अपनी परिणाम शक्ति से परिणमता है। गाथा में इसका खुलासा बहुत किया है। यह तो इसका कलश है। पुद्गल परिणाम। पुद्गल अपना परिणाम से परिणमता है। यदि परिणमन न हो और दूसरा परिणमा सके, ऐसी कोई शक्ति पर में नहीं। और परिणमता है तो इसको दूसरा परिणमावे, ऐसी जरूरत नहीं है। यह पुद्गल की बात की।

कलश-६५

(उपजाति)

स्थितेति जीवस्य निरन्तराया
स्वभावभूता परिणामशक्तिः।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं
यं स्वस्य तस्यैव भवेत् स कर्ता।।20-65।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'जीवस्य परिणामशक्तिः स्थिता इति' [जीवस्य] चेतनद्रव्य की [परिणामशक्तिः] परिणमनरूप सामर्थ्य [स्थिता] अनादि से विद्यमान है। [इति] ऐसा द्रव्य का सहज है। 'स्वभावभूता' जो शक्ति [स्वभावभूता] सहजरूप है। और कैसी है। 'निरन्तराया' प्रवाहरूप है, एक समयमात्र खण्ड नहीं है। 'तस्यां स्थितायां' उस परिणामशक्ति के हेतु हुए 'स स्वस्य यं भावं करोति' [सः] जीववस्तु [स्वस्य] आप सम्बन्धी [यं भावं] जिस किसी शुद्ध चेतनारूप अशुद्ध चेतनारूप परिणाम को [करोति] करता है 'तस्य एव स कर्ता भवेत्' [तस्य] उस परिणाम का [एव] निश्चय से [सः] जीववस्तु [कर्ता]

करणशील [भवेत्] होता है। भावार्थ इस प्रकार है – जीवद्रव्य की अनादिनिधन परिणमनशक्ति है।।20–65।।

कलश - ६५ पर प्रवचन

ऐसे जीव। ६५ में जीव की बात की। जीव विकार रूप परिणमन करता है। वह अपनी परिणमन शक्ति से करता है कि दूसरे से कराता है ? यदि अपनी परिणमन शक्ति न हो तो दूसरा परिणमन कराये ऐसा तीन काल में नहीं होता। विकार भी अपने परिणमन से होता है तो पर की कोई अपेक्षा है नहीं। समझ में आया ? गाथाओं में बहुत स्पष्ट किया है। यदि अपने में राग और विकार होने के परिणमन की योग्यता न हो तो कर्म परिणमन करावे ऐसा तीन काल में नहीं और अपने में राग, विकार कराने की परिणमन शक्ति है तो पर की कोई अपेक्षा नहीं। ऐसा दो गाथा में आया है। यह तो ऊपर से लिया। अब ६६।

कलश–६६

(आर्या)

ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः।।21–66।।

खण्डान्वय सहित अर्थ–यहाँ पर कोई प्रश्न करता है– 'ज्ञानिनः ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेत् पुनः न अन्यः' [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि के [ज्ञानमय एव भावः] भेद–विज्ञानस्वरूप परिणाम [कुतो भवेत्] किस कारण से होता है [न पुनः अन्यः] अज्ञानरूप नहीं होता। भावार्थ इस प्रकार है–सम्यग्दृष्टि जीव कर्म के उदय को भोगने पर विचित्र रागादिरूप परिणमता है, सो ज्ञानभाव का कर्ता और [उसके] ज्ञानभाव है, अज्ञानभाव नहीं है, सो कैसे है – ऐसा कोई पूछता है। 'अयं सर्वः अज्ञानिनः अज्ञानमयः कुतः न अन्यः' [अयं] परिणाम [सर्वः] सबका सब परिणमन [अज्ञानिनः] मिथ्यादृष्टि के [अज्ञानमयः] अशुद्ध चेतनारूप बन्ध का कारण होता है। [कुतः] कोई प्रश्न करता है ऐसा है सो कैसे है, [न

अन्यः] ज्ञानजाति का कैसे नहीं होता। भावार्थ इस प्रकार है–मिथ्यादृष्टि के जो कुछ परिणाम होता है, वह बन्ध का कारण है।।21–66।।

कलश - ६६ पर प्रवचन

ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ॥२१-६६॥

यह समझने की बात है। परमाणु का परिणमन अपने से परिणम कर कर्मरूप होता है। इसमें राग का भाव है तो कर्मरूप परिणाम है, ऐसा नहीं। और अपने में विकार करता है तो अपनी योग्यता से विकार करता है। इसमें कर्म के उदय की अपेक्षा नहीं और परिणमन न करे तब दूसरा कोई करा सके ऐसी कोई शक्ति है नहीं। समझ में आया? अब यहाँ यह प्रश्न आया।

यहाँ पर कोई प्रश्न करता है - 'ज्ञानिनः ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेत् पुनः न अन्यः' सम्यग्दृष्टि के... जो आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञायकस्वभावभाव के सन्मुख हुआ, आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन। ऐसा परमस्वरूप, परमस्वरूप सत्य है, ऐसा ही दर्शन हुआ, इसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। दर्शन हुआ का अर्थ? यहाँ दर्शन हुआ का अर्थ देखना नहीं, श्रद्धा (है)। समझ में आया? जैसी वस्तु एक समय में पूर्णानन्द जिनस्वरूपी है ऐसा परमस्वभावभाव, परमपारिणामिकभाव, परमज्ञायकभाव की जिसकी दृष्टि हुई। आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि को **'ज्ञानमय' भेद-विज्ञानस्वरूप परिणाम किस कारण से होता है...** उसको तो रागरहित ही ज्ञानपरिणाम होता है। यह किस प्रकार? साधक है, राग होता है और तुम कहते हो कि ज्ञानी को ज्ञानमय भाव होते हैं, राग नहीं। समझ में आया? **सम्यग्दृष्टि के भेद-विज्ञानस्वरूप परिणाम किस कारण से होता है, अज्ञानरूप नहीं होता।** आहाहा! जिसको आत्मा ज्ञायकस्वभाव की ध्रुवता की प्रतीति हुई।

ध्रुव को लिया है न? पण्डितजी! हमारे हिन्दी में आया है न? ध्रुव के ध्येय को ध्यान करते हैं... पहले आ गया है, गुजराती में पहले आ गया।

मुमुक्षु : गुजराती में तो पहले आता ही है, हिन्दी में बाद में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले आ गया था। फाल्गुन माह में भावनगर में कहा था न? हीरालालजी आये या नहीं? नहीं आये? कोटा गये हैं, बात सच्ची। इनके मकान में उतरे थे। बुखार आया था इसलिए व्याख्यान बन्द रहा। बाद में (बनाया)। है यहाँ? पहले हिन्दी में आया है, भाई! पण्डितजी ने लिखा है। ध्रुव के ध्यान में धेय बनाके... आहाहा! आया है न? लालचन्दभाई! तेरह बोल आये हैं। धधगती धीखती पेढी। धीरज से धखती। अपना चिदानन्दस्वरूप धीरज से ध्येय को, ध्यान में ध्रुव को ध्येय बनाकर। आहाहा!

ध्रुवधाम के ध्येय की... यह सम्यग्दृष्टि कैसा होता है, यह बात है। समझ में आया? ध्रुवधाम। भगवान ध्रुव स्थान, धाम अर्थात् स्थल, ध्रुव स्थल। आहाहा! एक समय की पर्याय से रहित। क्योंकि पर्याय तो विषय करती है। विषय है ध्रुवधाम है। समझ में आया? ध्रुवधाम को ध्येय बनाकर... यह रचना है... क्या कहते हैं? परमाध्यात्म तरंगिणी, उसमें संस्कृत में बहुत बार आया है। ध्यानविषय कुरु, ध्यान को विषय बनाया ऐसा संस्कृत शब्द है। ध्यान विषय कुरु, ध्यान को विषय बनाओ। यह संस्कृत टीका में है। परमाध्यात्म तरंगिणी है न? इसमें है। तीन बार है यह देखा है।

ध्रुवधाम के ध्येय के ध्यान की धधकती धुनी... आहाहा! अपने ज्ञायकस्वभाव में एकाग्रता की धधकती धुनी। प्रियंकरजी! धैर्य से... यह हिन्दी है, इससे शब्दों में थोड़ा अन्तर पड़ा... धैर्य से... आपने कौन सा शब्द है? धखाववी। धैय से धखाववी। धीरज से अन्दर एकाग्रता से ध्यान धखाना। ... यह रूप धर्म का धारक—ऐसा धर्म को धरनेवाला धर्मी धन्य है। सबमें ध-ध आये हैं। यह हमने फाल्गुन मास में भावनगर बनाया था। एक में ग्यारह बोल थे, एक में बारह बोल थे। यह तो शब्द बनाया अभी फाल्गुन मास में।

यहाँ यह कहते हैं, सम्यग्दृष्टि... आहाहा! प्रश्न करते हैं न? जीव **कर्म के उदय को भोगने पर...** सम्यग्दृष्टि को अभी राग तो है तो राग को भोगता है, ऐसा भी कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? भोगने पर भी, ऐसा प्रश्न है न? **विचित्र रागादिरूप परिणमता है, सो ज्ञानभाव का कर्ता...** आहाहा! ऐसा होने पर भी ज्ञानभाव का कर्ता है। राग का ज्ञाता होकर ज्ञायक को जानता है। ऐसा मार्ग है, भाई! है? **ज्ञानभाव का कर्ता और**

(उसके) ज्ञानभाव है, अज्ञानभाव नहीं है... आहाहा! धर्मी जीव को राग आता है, फिर भी राग का कर्ता और भोगता नहीं। दृष्टिप्रधान कथन है न?

ज्ञानप्रधान कथन हो तो ऐसा कहने में आता है कि जितना राग का परिणमन है, उतना कर्ता है। परिणमे वह कर्ता, इस अर्थ में। और भोगे वह भोक्ता, इतना भोक्ता है। ज्ञानी को बिल्कुल दु:ख है ही नहीं। ज्ञान की अपेक्षा, ऐसा नहीं। दृष्टि और दृष्टि की अपेक्षा से ज्ञानी को राग और द्वेष का दु:ख है ही नहीं। समझ में आया? परन्तु ज्ञान की अपेक्षा लें तो ज्ञानी को जितना राग है उतना दु:ख है। मुनि को छठ्ठे स्थान में.. समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य तीसरे श्लोक में कहते हैं न? मेरी परिणति कलमषित है। आहाहा! मुनि हैं। मैं हूँ, द्रव्य स्वभाव से तो चैतन्यमय हूँ परन्तु मेरी परिणति अनादि से कलुषित है। मुनि हुए तो भी कहते हैं कि यह परिणति तो अनादि से है, यह कोई नयी नहीं। आहाहा! समझ में आया? मेरी पर्याय में राग आता है। आहाहा! मुनि को पंच महाव्रतादि का विकल्प कलुषितभाव (आता है)। आहाहा! 'कलुषितायाम।' मैं टीका करता हूँ तो टीका करने की कलुषिता का भाव नाश होओ। इसका अर्थ क्या? टीका के कारण (शुद्धि नहीं होगी)। टीका का तो विकल्प है, परन्तु इसका अर्थ (यह कि) टीका के काल में मेरी दृष्टि में ज्ञायक के ऊपर के जोर से उसमें अधिक एकाग्र होगी तो मेरी कलुषित भाव का नाश होगा। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह पूछते हैं। इनको राग हे और भोगते नहीं? **ज्ञानभाव का कर्ता और (उसके) ज्ञानभाव है, अज्ञानभाव नहीं है, सो कैसे है ऐसा कोई पूछता है।** इतना प्रश्न करते हैं। '**अयं सर्वः अज्ञानिनः अज्ञानमयः कुतः न अन्यः**' सब का सब परिणमन मिथ्यादृष्टि के अशुद्ध चेतनारूप बन्ध का कारण प्रभु! अज्ञानी का तो सब परिणमन आप बन्ध का कारण कहते हो और ज्ञानी को बन्ध का परिणाम है ही नहीं, ऐसा कहते हो, इसका क्या कारण है? इतना बड़ा अन्तर? दसवें गुणस्थान तक छह कर्म बँधते हैं, छठे में आठ कर्म बँधते हैं। आयुष हो तो, नहीं तो सात। तुम कहते हो ज्ञानी को राग ही नहीं, बन्ध ही नहीं और अज्ञानी को पूरा बन्ध है। यह अबन्ध बिल्कुल है ही नहीं। आहाहा! यह क्या? **कोई प्रश्न करता है ऐसा है सो कैसे है, ज्ञानजाति का कैसे नहीं होता।** अज्ञानी को ज्ञान

जाति का (परिणाम) क्यों नहीं होता ? ज्ञानी को अज्ञान जाति का क्यों नहीं होता। यह प्रश्न है। समझ में आया ? आहाहा !

आत्मा चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द का जहाँ भान हुआ तो कहते हैं कि ज्ञानी को अज्ञानभाव, रागभाव क्यों नहीं होता ? और अज्ञानी इतना पंच महाव्रत पालता है, ग्यारह अंग का ज्ञान करता है, नव पूर्व की लब्धि होती है तो भी उसको ज्ञान जाति का भाव नहीं ? समझ में आया ? तो भी उसको ज्ञान जाति का ज्ञान भाव नहीं ? आहाहा !

भावार्थ इस प्रकार है - मिथ्यादृष्टि के जो कुछ परिणाम होता है, वह बन्ध का कारण है। अब उसका उत्तर ६७वें कलश में देते हैं। इसका उत्तर।

कलश-६७

(अनुष्टुप्)

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ता सर्वे भावा भवन्ति हि।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते।।22-67।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'हि ज्ञानिनः सर्वे भावाः ज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति' [हि] निश्चय से [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि के [सर्वे भावाः] जितने परिणाम हैं [ज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति] ज्ञानस्वरूप होते हैं। भावार्थ इस प्रकार के हैं-सम्यग्दृष्टि का द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणमा है, इसलिए सम्यग्दृष्टि का जो कोई परिणाम होता है, वह ज्ञानमय शुद्धत्व जातिरूप होता है, कर्म का अबन्धक होता है। 'तू ते सर्वे अपि अज्ञानिनः अज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति' [तु] यों भी है कि [ते] जितने परिणाम [सर्वे अपि] शुभोपयोगरूप अथवा अशुभोपयोगरूप हैं, वे सब [अज्ञानिनः] मिथ्यादृष्टि के [अज्ञाननिर्वृत्ताः] अशुद्धत्व से निपजे हैं। [भवन्ति] विद्यमान हैं। भावार्थ इस प्रकार है - सम्यग्दृष्टि जीव की और मिथ्यादृष्टि जीव की क्रिया तो एक सी है, क्रियासम्बन्धी विषय कषाय भी एक सी है; परन्तु द्रव्य का परिणमन भेद है। विवरण-सम्यग्दृष्टि का द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणमा है, इसलिए जो कोई परिणाम बुद्धिपूर्वक अनुभवरूप है अथवा विचाररूप हैं अथवा व्रत-

क्रियारूप है अथवा भोगाभिलाषरूप है अथवा चारित्रमोह के उदय क्रोध, मान, माया, लोभरूप है, वह सभी परिणाम ज्ञानजाति में घटता है। कारण कि जो कोई परिणाम है, वह संवर-निर्जरा का कारण है, ऐसा ही कोई द्रव्य-परिणमन का विशेष है। मिथ्यादृष्टि का द्रव्य अशुद्धरूप परिणमा है, इसलिए जो कोई मिथ्यादृष्टि का परिणाम अनुभवरूप तो होता ही नहीं। इस कारण सूत्रसिद्धान्त के पाठरूप है अथवा व्रत-तपश्चरणरूप है अथवा दान, पूजा, दया, शीलरूप है अथवा भोगाभिलाषरूप है अथवा क्रोध, मान, माया, लोभरूप है - ऐसा समस्त परिणाम अज्ञानजाति का है, क्योंकि बन्ध का कारण है, संवर-निर्जरा का कारण नहीं है। द्रव्य का ऐसा ही परिणमन-विशेष है।।22-67।।

कलश - ६७ पर प्रवचन

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ता सर्वे भावा भवन्ति हि।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते।।२२-६७।।

आहाहा! '**हि ज्ञानिनः सर्वे भावा ज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति**' **निश्चय से सम्यग्दृष्टि के जितने परिणाम हैं, वे सब ज्ञानस्वरूप ही होते हैं।** समयसार नाटक में इसका अर्थ ऐसा लिया है कि ज्ञानी को भोग निर्जरा के हेतु हैं। आहाहा! ज्ञानी को भोग निर्जरा के हेतु हैं, इसका क्या आशय है? उसकी टीका की कि ज्ञानी को भोग निर्जरा के हेतु? भोग तो पाप है, निर्जरा का कारण, इसे तो स्वीकार करता नहीं। सम्यग्ज्ञानदीपिका की टीका... यह तो पण्डितजी! इसके साथ किया है। सम्यग्ज्ञानदीपिका ऐसा कहा तो सोनगढ़ के नाम पर डाला। परन्तु यह तो क्षुल्लक धर्मदासजी का कथन है और इसमें उनका आशय क्या है, यह समझना चाहिए। समझ में आया? फलटन और ललितपुर में बहुत जोर (करते हैं)। यह तो व्यभिचार की बात करते हैं। अरे! भगवान! सुन तो सही, नाथ! यहाँ तो पुण्य का परिणाम होता है, यह भी पाप है, दुःखरूप है। आहाहा! यह भोग का परिणाम सुखरूप और हितकर कैसे हो सकता है? पर स्त्री और पर पुरुष के भोग तो पाप है, परन्तु स्व स्त्री का भोग भी पाप है और तुमने यहाँ लगा दिया... वहाँ किस अपेक्षा से कथन है?

सम्यग्ज्ञानदीपिका में तो ऐसा कहा है सिर पर पति हो और कोई भूल जाये तो वह

बाहर में प्रसिद्धि में नहीं आती। बाहर लोग नहीं जान पाते। ऐसे ज्ञानी के सिर पर पति— ज्ञायकभाव—धणी अन्दर है। 'ढींग धणी माथे कियो, कुण गंजे नरखेट' आहाहा! यह आनन्दघनजी में आता है। 'ढींग धणी माथे कियो, कुण गंजे नरखेट, विमल जिन दीठा लोयण आज,' मेरा नाथ विमल, उसके नाथ को आज मैंने देखा, ऐसा कहते हैं। 'दीठा लोयण आज' आज मैंने विमलनाथ लोयण दीठा। आहाहा! कहते हैं अब इसका कौन नाश कर सकता है? कौन अन्दर विरोध कर सकता है? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। विमलनाथ भगवान चैतन्यस्वरूप का जहाँ ज्ञान हुआ तो रागादिक होते हैं, यह राग, भोग निर्जरा के कारण कैसे कहे? भोग तो राग है, यह तो बन्धन है। परन्तु ज्ञान की दृष्टि के जोर के कारण, दृष्टि ज्ञायक के ऊपर पड़ी है, इसके जोर के कारण इसकी निर्जरा होती है, ऐसा कहने में आया है। प्रियंकरजी! अभी यह बात वहाँ उल्टी लेकर करते हैं। अरे! भगवान! बापू!

यहाँ पाप पाप को तो सब कहते हैं, पर अनुभवी जन पुण्य को पाप कहते हैं। आता है न? भाई! योगसार! आहाहा! और समयसार पुण्य-पाप अधिकार में आखिर में आता है। जयसेनाचार्यदेव की टीका में। यहाँ अधिकार तो प्रभु! पाप का चलता है यहाँ व्यवहार रत्नत्रय की बात कहाँ लगायी? शिष्य ने प्रश्न किया। तो कहते हैं सुन तो सही, भगवान! एक तरह से पुण्य वह पवित्रता का कारण है, अशुभ का नाश होता है इस अपेक्षा से। बाकी तो स्वरूप से पतित होता है, राग आता है तो पतित होता है, इससे हम उसको पाप कहते हैं। ऐसा पाठ है। पुण्य-पाप अधिकार में आखिरी संस्कृत में है। आहाहा! इसकी टीका करते हो तुम ऐसा कैसे कहते हो?

यहाँ यह कहते हैं, ज्ञानी को **निश्चय से सम्यग्दृष्टि को... 'सर्वे भावाः'** सर्वभाव में क्या आया? भोग का भाव हो, विषय का हो... आहाहा! क्यों कि वहाँ ज्ञान की रचना होती है। भगवान ऐसा कहते हैं... अपने वीर्यशक्ति आ गयी है, वीर्यशक्ति। वीर्यशक्ति का कार्य क्या? स्वरूप की रचना करना, वह वीर्यशक्ति का कार्य है। जब आत्मा ज्ञानमय, वीर्यमय, पूर्णानन्दमय दृष्टि में आया तो वह वीर्य तो निर्मलता की ही रचना करता है, मलिनता की रचना नहीं करता। समझ में आया? वीर्यशक्ति आ गयी है न? जीवत्व,

चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य छठा बोल है, छठी शक्ति। इसमें ऐसा लिया है... यह तो परमात्मा के अन्दर की बातें हैं, भगवान! बाहर के साथ मेल करें तो मिले नहीं। आहाहा!

ज्ञानी को राग का भाव आता है परन्तु दुःख लगता है। जैसे काला नाग आता हो और देखे, ऐसे धर्मी को राग आता है परन्तु काला नाग जैसा जहर दिखता है। समझ में आया? आहाहा! विषय का भाव आता है, चक्रवर्ती छह खण्ड का धणी भरत, इसे छियानवें हजार स्त्री। विकल्प आता है, विकल्प आया और छूट गया, यह मैं नहीं, मेरी भोग्य चीज़ यह नहीं। मेरी कर्ता की रचना की यह चीज़ नहीं। आहाहा! मेरी कर्ता की रचना तो निर्मल की रचना करे, इसको वीर्य कहने में आता है। आहाहा! और पुण्य-पाप की रचना... थोड़ा कड़क शब्द है, नपुंसकता है। यह पुण्य-पाप अधिकार में कहा है— क्लीव। संस्कृत में क्लीव है, दो जगह है। क्लीव। परमात्मा! तेरी चीज़ तो... आहाहा!

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया, आप क्या कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं **स्वरूप की (आत्मस्वरूप की) रचना के सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति।** आत्मा में वीर्य अर्थात् बल। यह वीर्य रेत यह जड़ की मिट्टी-धूल है। आत्मा में एक बल नाम की अनन्त अपार अपरिमित शक्ति है। एक शक्ति में भी अनन्त शक्ति है। वीर्यशक्ति का अनन्तशक्ति में रूप है। वीर्यशक्ति का कार्य क्या? कि स्वरूप की रचना करे वह वीर्य। पाठ है, देखो! पाठ में है। छठवीं है न? '**स्वरूप निवर्तन सामर्थ्यरूपा वीर्यशक्ति**' आहाहा! थोड़े में कितना कहा? प्रभु! तेरा बल तो ऐसा है कि यह बल तो शुद्धता की रवना करे। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीतराग आनन्द की रचना करे, इसको वीर्य कहते हैं। जो वीर्य पुण्य-पाप की रचना करे, उसे नपुंसकवीर्य कहते हैं। जैसे नपुंसक के पुत्र नहीं होता, वैसे शुभभाव में धर्म की प्रजा नहीं होती। समझ में आया? नपुंसक को वीर्य नहीं होता, इसलिए पुत्र नहीं होता। हीजड़ा... हीजड़ा कहते हैं न? यहाँ तो हीजड़ा कहा है। सुनो तो सही। आहाहा!

पुरुष तो उसको कहते हैं कि जिसका वीर्य शुद्धता की रचना करे। आत्मस्वरूप की रचना करे, उसको पुरुष कहते हैं। विकार की रचना करे, वह क्लीव है, नपुंसक है, हीजड़ा है, पावैया है। पण्डितजी! कड़क है, भगवान!

मुमुक्षु : सच है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच है ?

मुमुक्षु : सातवें गुणस्थानवाले के लिये सच है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ चौथे की बात है। ऐसा कहते हैं, यह तो ऊपर की बात है। आहाहा! यह वीर्यशक्ति चौथे समकिती में नहीं आयी ? सम्यग्दर्शन में वीर्य शक्तिवान आत्मा है, ऐसा प्रतीति में—दृष्टि में आया या नहीं ? यह तो वीर्य का कार्य है ? ऐसा कहते हैं। चौथे गुणस्थान में वीर्य का कार्य क्या ? स्वरूप की रचना। शुद्धस्वरूप आनन्दकन्द प्रभु... आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और आनन्द की परिणति की रचना करे, उसको यहाँ वीर्य कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया ?

और मुनि को भी पाँच महाव्रत का विकल्प उत्पन्न होता है तो संसार है, जगपंथ है। समयसार नाटक मोक्ष अधिकार का ४०वाँ श्लोक है। जगपन्थ है। आहाहा! शुभराग, वह संसार है। जगपन्थ है। और भगवान आत्मा स्वरूप की रचना करता है सम्यग्दृष्टि, यह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! हमसे चर्चा चली थी न ? मक्खनलालजी कहते हैं, शुभजोग वो मोक्ष का मार्ग है। बाहर आया है। शुभजोग मोक्ष का मार्ग है। तब कैलाशचन्द्रजी ने लिखा है कि शुभजोग तो... (मक्खनलालजी) ने ऐसा लिखा है कि शुभजोग को हेय मानें वो मिथ्यादृष्टि है। तब कैलाशचन्द्रजी ने जवाब दिया कि, शुभजोग को हेय कुन्दकुन्दाचार्य मानते हैं। प्रवचनसार की गाथा में। तो यह मिथ्यादृष्टि हुए। दोनों की चर्चा हुई। अरे! भगवान! शान्त हो न, भाई! तेरी क्या चीज़ है ? भाई! तेरा स्वरूप भगवन्तस्वरूप है, नाथ! आहाहा! इसकी दृष्टि हुई तो कहते हैं कि इसका वीर्य तो निर्मल परिणति की ही रचना करता है। आहाहा! चौथे गुणस्थान से ही, हो! यह यहाँ कहते हैं।

निश्चय से सम्यग्दृष्टि को सर्वभाव... सर्वभाव में क्या आया ? चाहे तो पुण्यभाव हो या चाहे तो पाप भाव हो। आहाहा! विकल्प आता है। भरत चक्रवर्ती को छियानवे हजार स्त्रियाँ हैं। आहाहा! परन्तु वह (भोग के) विकल्प के तुरन्त बाद ध्यान में बैठ जाते हैं और निर्विकल्पध्यान हो जाता है। भरतेश वैभव में पाठ है। भरतेश वैभव है न ? इसमें यह है कि विकल्प तो आया और इसका ज्ञान करने में इसका ज्ञाता हो गया। बाद में तुरन्त ही दूसरे

क्षण में ध्यान लगाया और निर्विकल्प हो गये। समझ में आया? आहाहा! इतना सामर्थ्य सम्यग्दर्शन में है। यह बात लोगों को कठिन पड़ती है।

अब यहाँ यह कहना है। समयसार नाटक में ऐसा लिया है, यह गाथा, ज्ञानी को भोग निर्जरा हेतु हैं। इसकी टीका नहीं करते? अरे! ज्ञानी के भोग निर्जरा के (हेतु)? यह भी वहाँ कहते थे न? फलटन में। बनारसीदासजी और टोडरमलजी अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे हैं। यह लोगों ने कहा या नहीं? ललितपुर में कहा था। अरे! भगवान! भाई! तुझे यह कैसी सूझ पड़ी? टोडरमल और बनारसीदास अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे हैं। अर र र! बनारसीदास ने तो इसमें से कलश-टीका में से समयसार नाटक बनाया है। समयसार नाटक इसमें से बनाया है। आहाहा!

बनारसीदास का आखिरी मृत्यु समय बोल बन्द हो गया और जीव को निकलने में देर लगी। लोग देखते थे, पास में बैठे थे, वह कहते हैं, पण्डितजी जीव कहाँ रुक गया, अटक गया है, निकलता नहीं। पीछे स्लेट... स्लेट कहते हैं न? स्लेट मँगाई। लिखा 'ज्ञान कुतक्का... मार अरि मोहना, चले बनारसीदास फेर नहीं आवना।' ऐसा देह अब फिर हमें नहीं मिलेगा। 'ज्ञान कुतक्का...' ज्ञानरूपी तलवार हमारे हाथ में है। कुतक्का है न? भाला। 'ज्ञान कुतक्का हाथ मारि अरि मोहना...' मोह को मार दिया और मेरी चीज़ को जागृत कर दिया। आहाहा! लोगों को ऐसा लगता है कि पण्डितजी को जीव नहीं अर्थात् इनका जीव कहीं अटक गया है। 'चले बनारसीदास...' ऐसा शरीर अब फिर नहीं मिलेगा, दूसरी जाति का मिलेगा और ऐसा संयोग भी फिर नहीं मिलेगा। आहाहा! समझ में आया?

एक बार श्रीमद् ने कहा, कि वर्तमान में हमको जो शरीर मिला है... थोड़ा रोग था न? क्या कहलाता है वह? संग्रहणी... संग्रहणी। तो लोगों को यह लगा कि यह क्या? एक पत्र ऐसा लिखा है कि यह शरीर मिला, ऐसा शरीर अब भविष्य में नहीं मिलेगा। क्योंकि आराधना करके जाते हैं तो पुण्य के कारण शरीर भी दूसरे जाति का मिलेगा, ऐसा नहीं मिलेगा। आहाहा! प्रियंकरजी! ऐसा मार्ग है। और यहाँ तक कहा... स्त्री थी, पुत्र था, गृहस्थाश्रम में (थे)।

अशेष कर्मनों भोग छे, भोगववो अवशेष रे...

अन्दर राग है बाकी दिखता है। अशेष कर्म का भोग है, थोड़ा राग, कर्म बाकी है।

भोगववो अवशेष रे, तेथी देह एक धारी ने,
जशुं स्वरूप स्वदेश रे...

एकाध देह बाकी है, देह धारण करके हम हमारे स्वरूप में चले जायेंगे। आहाहा! मोक्ष होगा, ऐसा नहीं कहा, स्वरूप में चला जाऊँगा, समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, '**सर्वे भावाः**' ऊपर वजन है। ज्ञानी के सभी भाव-पुण्य का भाव हो या भोग का हो... आहाहा! **जितने परिणाम...** जितने परिणाम—ऐसा लिया न? '**सर्वे भावाः**' की व्याख्या (की) **जितने परिणाम ज्ञान निवृत्ताः भवन्ति ज्ञानस्वरूप होता है।** आहाहा! यह तो ज्ञान स्वरूप होता है। आहाहा! ज्ञायकस्वभाव ऊपर दृष्टि होने से यह राग का भी ज्ञान होता है, '**ज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति**' है। राग से उत्पन्न हुआ भाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भाई! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? इसकी महिमा कितनी है? आहाहा!

सम्यग्दर्शन पर्याय है। यह पर्याय में त्रिलोकनाथ आत्मा, इसकी पूर्ण जितनी शक्ति है, इतनी शक्ति श्रद्धा में आ जाती है। यह वस्तु श्रद्धा में नहीं आती। सम्यग्दर्शन की पर्याय में वस्तु नहीं आती, परन्तु वस्तु की जितनी ताकत है, सामर्थ्य है, इतनी श्रद्धा और ज्ञान हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? और यह तो कल कहा था न कि पर्याय को द्रव्य छूता नहीं और पर्याय द्रव्य को नहीं छूती। आहाहा! ऐसी बात!

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी के सभी भाव (ज्ञानमय हैं)। क्योंकि इसकी दृष्टि आनन्द में है। राग आता है परन्तु दुःखरूप, ज्ञेयरूप (अनुभवता है)। राग में से ज्ञानी की सुखबुद्धि उड़ गयी है। चाहे तो इन्द्र के करोड़ों इन्द्रासन और करोड़ों इन्द्राणी हों, शकेन्द्र अभी एकावतारी है। सौधर्म देवलोक का इन्द्र, शकेन्द्र और उसकी पत्नी दोनों एक भवावतारी हैं, दोनों एकभवावतारी हैं। एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! इसके ३२ लाख विमान हैं, छियानवे हजार (रानी) तो चक्रवर्ती के होती हैं, यहाँ तो करोड़ों अप्सरा होती हैं। क्योंकि अप्सरा की स्थिति थोड़ी होती है, एक जाती है और दूसरी आती है। दो सागर में तो कितनी अप्सरायें बदल जाती हैं, करोड़ों। आहाहा! यह दोनों कहते हैं कि यह देह

देव का आखिरी है। अब मनुष्यपना धारण करके मोक्ष जाना है। क्योंकि ज्ञानी के सब भाव '**ज्ञाननिवृत्ताः**' ज्ञान से पैदा हुए हैं, राग से नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! मार्ग प्रभु! आहाहा! है?

ज्ञानस्वरूप होता है। 'ज्ञाननिवृत्ताः' है न? ज्ञानस्वरूपी होता है। आहाहा! **भावार्थ ऐसा है कि सम्यग्दृष्टि का द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणमा है...** आहाहा! अशुद्ध परिणमन है ही नहीं, यहाँ ऐसा कहना है। आहाहा! दृष्टि के जोर की बात है न! सम्यग्दृष्टि का द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणमा है। आहाहा! पर्याय, हों! आहाहा! **इससे सम्यग्दृष्टि का जो कोई परिणाम होता है...** आहाहा! **वो ज्ञानमय शुद्धत्व जातिरूप होता है...** ज्ञानमय... ज्ञानमय... आत्ममय। आहाहा! देखो! सम्यग्दृष्टि की बलिहारी! जिसके विषय में पूरा आत्मा प्रतीति में आया, प्रतीति में आया, आत्मा अन्दर नहीं आया। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि की ऐसी प्रतीति में इतना जोर है... आहाहा! **ज्ञानमय शुद्धत्व जातिरूप होता है...** शुद्ध ज्ञानरूप ही जिसका परिणमन है। आहाहा! अशुद्धता तो है परन्तु यहाँ तो कहा न..? मुनि को भी कलुषितता (परिणति है)। कलुषित परिणति मुझे भी है, यह चारित्र की अपेक्षा और ज्ञान की अपेक्षा से कथन किया है। जब यहाँ दृष्टि और दृष्टि के विषय की अपेक्षा है इसके आगे अशुद्ध परिणाम है ही नहीं। परन्तु एकान्त ले जाए कि है ही नहीं, तो ऐसा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : शास्त्र सम्यग्दृष्टियों ने बनाये हैं तो अपने लिये सुविधा रखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। प्रश्न ठीक। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है तो लिखा है। आहाहा! राग तो जहर है, जहर दुःख, दुःख, दुःख है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि की, भले इन्द्र-इन्द्राणी के विषय हों तो भी सुखबुद्धि नष्ट हो गयी है। आसक्ति का राग आता है, परन्तु सुखबुद्धि, सुख की रुचि उड़ गयी है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों बातें कैसे बनेंगी? सुखबुद्धि नहीं और आता भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है, कमजोरी है न। कमजोरी है तो आता है। साधक है न? तो बाधक (भाव) आता है। साध्य पूर्ण हो गया क्या? साधक है या नहीं? साधक किसको कहते हैं? पूर्ण नहीं हुआ। तो साधक है तो बाधक तो आता है। आहाहा! देखो सन्तों की

बलिहारी! आहाहा! कितना स्पष्ट लिखा है तो भी लोग पढ़ते नहीं, विचारते नहीं और अपनी बात छोड़ते नहीं।

मुमुक्षु : फुरसत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई कहते हैं, फुरसत नहीं। दूसरे काम के लिये बहुत फुरसत है। व्यापार, धन्धा, माया, कपट, कुटिलता करना, पर को प्रसन्न करना, स्त्री, कुटुम्ब को प्रसन्न रखना, पूरे दिन तो काम करता है, प्रसन्न रहे... प्रसन्न रहे... तू प्रसन्न रहे या नहीं यह तो खबर नहीं। आहाहा! पर को प्रसन्न करने में तेरा समय जाता है। प्रभु! आहाहा! स्त्री कैसे खुश रहें, लड़का-लड़की कैसे खुश रहें... आहाहा! प्रभु! तेरा समय पर को प्रसन्न रखने में जाता है, नाथ! आहाहा! यह उपदेश को भी (यह चलता है) लोगों को ठीक लगता है, यह उपदेश करते हैं। पर प्रसन्न होते हैं तो स्वयं प्रसन्न होता है, यह भी पर को प्रसन्न करने में जाता है। आहाहा! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, धर्मीजीव को ज्ञानमय (परिणमन है)। ज्ञान शब्द आत्मा। आत्मामय अर्थात् पूरा आत्मा जो शुद्धचैतन्य है, वह ज्ञानमय-आत्मामय शुद्धत्व जातिरूप होता है। आत्मा की शुद्ध जातिरूप परिणाम उसको होता है। आहाहा! **कर्म का अबन्धक होता है।** देखो! क्यों? कि आत्मा अबद्धस्पृष्ट है। (समयसार) १४-१५ गाथा में आया? अबद्धस्पृष्ट-अबद्ध अर्थात् राग के बन्ध से रहित है। यह नास्ति से बात की अबद्ध। अस्ति से कहो तो मुक्तस्वरूप है। भगवन मुक्तस्वरूप ही अनादि से है। हो! द्रव्य मुक्तस्वरूप है। आहाहा! पर्याय में राग का सम्बन्ध है तो पर्याय तो द्रव्य में है नहीं। आहाहा! चैतन्यद्रव्य है, वह अबद्ध है। १४वीं गाथा में लिया है न? पण्डितजी! समयसार १५वीं गाथा।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥१५॥

जिसने आत्मा अबद्धस्पृष्ट देखा, माना, अनुभवा... आहाहा! उसने जैन शासन देखा। भाषा तो देखो! आहाहा! भगवान आत्मा अबद्ध और अस्पृष्ट। दूसरा परमाणु भी नहीं छूता और अनन्य—अन्य-अन्य गति उसमें नहीं। यह तो सदृश्य सामान्य त्रिकाल भाव है और निश्चय-नियत है, अनियत नहीं। पर्याय में जो हीनाधिकता है वह वस्तु में नहीं। वह

तो एकरूप है। अर्थात् असंयुक्त। पुण्य-पाप के मलिनभाव से संयुक्त नहीं। इनसे तो रहित है। ऐसे आत्मा को जो कोई '**पस्सदि**' सम्यग्दर्शन से, सम्यग्ज्ञान से '**पस्सदि**' शुद्धोपयोग से, '**पस्सदि**' यह शुद्धोपयोग जैनशासन को देखता है। वीतरागभाव जैनशासन है। आत्मा अबद्धस्पृष्ट देखा, उसको वीतरागभाव हुआ। आहाहा! क्योंकि अबद्धस्वरूप है तो इसका परिणाम अबद्ध परिणाम हुआ। न्याय समझ में आया? न्याय नि धातु। न्याय में नि धातु है। न्याय में नि धातु है। जैसा स्वरूप है, वैसा ज्ञान में ले जाना उसका नाम न्याय है। भगवान का मार्ग न्याय है। समझ में आया? आहाहा!

जिसने अबद्धस्पृष्ट आत्मा को देखा... वहाँ दो बोल लिये हैं। '**अपदेससंतमज्झं**' ऐसा लिया है। '**अपदेस**' अर्थात् शास्त्र में भी यह कहा है। द्रव्य शास्त्र में जो पुस्तक है, वाणी है, उसमें भी अबद्धस्पृष्ट कहा और अबद्धस्पृष्ट कहा, ऐसा जिसने जाना उसको भाव में अबद्धस्पृष्ट आया। और अबद्धस्पृष्टपना आया वह शुद्धोपयोग हुआ, वह शुद्धोपयोग हुआ वह जैनशासन है। आहाहा! बीच में राग व्यवहाररत्नत्रय वह कोई जैनशासन नहीं है, वह तो रागशासन है। आहाहा! उसको व्यवहार कहने में आता है। निश्चय के कारण व्यवहार असत्यार्थ है, झूठा है। आहाहा!

छहढाला में आता है न? निश्चय सत्यार्थ और नियत का कारण... हेतु नियत को होई। परन्तु सत्यार्थ तो निश्चय ही सत्यार्थ है। हेतु नियत को होई, यह तो असत्यार्थ है। सत्यार्थ की अपेक्षा असत्यार्थ है। छहढाला ज्ञानचन्दजी छहढाला बहुत पढ़ते हैं। कहो, समझ में आया? ऐसा सुना है यहाँ तो कोई बात करता था। मीठी भाषा से बहुत बात करते हैं, लोग प्रसन्न हो जाते हैं। आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग है, भाई! जबलपुर गये थे, वहाँ सभा में दस हजार मनुष्य थे। इनका पण्डित गाँव में था और यह बाहर के थे। वहाँ दस हजार (मनुष्य) और गाँव में दो सौ-ढाई सो मनुष्य, दो पण्डित थे। लालबहादुर और सुमेरु। ऐसा पत्रिका में आया था। आहाहा! अरे! आत्मा है, प्रभु! यह तो... आहाहा! ऐसी चीज़ की पहले दृष्टि तो कर। आहाहा! और उसके बिना धर्म के शुरुआत नहीं होती। 'मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी', आता है न? छहढाला में आता है। मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी। पहला सोपान। आहाहा!

इससे सम्यग्दृष्टि का जो कोई परिणाम होता है, वह ज्ञानमय शुद्ध जातिरूप होता है... आहाहा! यह एकान्त पकड़ लेता है और कहता है अशुद्धता है ही नहीं, ऐसा तो नहीं है। यह तो अपेक्षा से दृष्टि का विषय और दृष्टि निर्विकल्प और उसका विषय निर्विकल्प है तो इसका परिणाम भी निर्विकल्प अबन्ध होता है, ऐसा लिया है। समझ में आया? एकान्त पकड़ के राग है ही नहीं, बन्धन है ही नहीं तो दसवें गुणस्थान तक बन्धन है। दसवें छह कर्म बँधते हैं। आयुष्य और मोह दो नहीं। समझ में आया? दसवें.. आहाहा! यहाँ तो निषेध किया, **कर्म का अबन्धक होता है।** सम्यग्दृष्टि। समझ में आया? बन्धभाव का स्वामी नहीं और बन्धरूप दु:खरूप लगता है। इससे स्वस्वामी अंश नहीं।

इसमें एक स्वस्वामीसम्बन्ध नाम की शक्ति है। ४७ शक्ति हैं न? ४७ समझे? चार और सात। सैंतालीस। खानियाचर्चा में सामने पक्षवालों ने ४८ शक्ति हैं। खानियाचर्चा है न? इसमें ४८ लिखा है, बाद में फूलचन्दजी ने सुधार के कहा ४८ नहीं ४७ हैं। चार और सात। इसमें यह शक्ति आखिरी ली है। स्व-स्वामीसम्बन्ध। स्व कौन? अपना द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और पर्याय शुद्ध यह स्व, और उसका स्वामी। धर्मी राग का स्वामी नहीं और राग उसका स्व नहीं। समझ में आया? ४७ शक्ति हैं। आखिरी है न?

बहुत गजब! दिगम्बर सन्तों ने तो थोड़े शब्दों में बहुत गम्भीरता... बहुत गम्भीरता (भर दी है)। आहाहा! मोक्षगामी जीव एकाध भव वैमानिक का करके मोक्ष जायेंगे। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य। समझ में आया? पंचम काल के थे, कमजोरी के कारण राग था, तो आयुष बँध गयी और वैमानिक स्वर्ग में गये हैं। यह स्वर्ग में भी वैमानिक में जाते हैं। समझे न? कोई साधारण विराधना हो जाये। इसके लिये प्रवचनसार में है, सम्यग्दृष्टि भी कोई भवनपति में भी जाते हैं। ऐसा पाठ में, श्लोक है। यह कोई अन्दर में सहज फेर पड़ जाये और आयुष बन्ध जाये तो जाये। नहीं तो सम्यग्दृष्टि वैमानिक में ही जाता है। गाथा है न? भाई! असुर... नाम कहीं ज्यादा आता है। इतनी ज्यादा यादशक्ति (नहीं)। कौन सी गाथा?

प्रवचनसार '**संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं।**' असुर के वैभव में भी जाये। मूल गाथा है, हों! छठी गाथा है। ऐसा कोई विकल्प आ गया और आयुष बँध

गयी हो तो असुर में जाते हैं। नहीं तो यहाँ तो बात चलती है आराधक जीव की, फिर भी छठी गाथा में ऐसा लिया है। '**संपज्जदि णिव्वाणं**' धर्मात्मा सन्त तो निर्वाण को प्राप्त होते हैं। परन्तु कोई देव असुर में भी जाते हैं। नहीं तो सम्यग्दृष्टि असुर में जाये नहीं। परन्तु कोई अपवाद से ऐसा शब्द लिया है। इसको ऐसा भाव आ गया। '**देवासुरमणुयरायविहवेहिं।**' राजा का, असुर के देव का वैभव भोगकर वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा। समझ में आया? यहाँ पाठ में असुर लिया है। यहाँ न पाड़ते हैं। इसको अशुद्धता है ही नहीं। ज्ञान प्रधान कथन है और थोड़ी कोई भूल हो गयी हो ऐसा जीव लिया है। असुर में जाये ये तो मिथ्यादृष्टि जाये और वहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात की है। समझ में आया? परन्तु ऐसा कोई परिणाम हो गया और बन्ध पड़ गया तो वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर निर्वाण प्राप्त करेंगे। लालचन्दभाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **कर्म का अबन्धक होता है।** आहाहा! कौन? ज्ञानी। जिसको कर्म बन्धन है ही नहीं। आहाहा! ऐसे दसवें गुणस्थान तक छह कर्म (बँधते हैं)। यहाँ कहते हैं नहीं। यह किस अपेक्षा से? दृष्टि और दृष्टि के विषय में बन्ध परिणाम है ही नहीं। अबन्धस्वरूपी भगवान आत्मा का परिणाम है, यह अबन्ध है। अबन्धस्वरूपी प्रभु की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र हुए, ये अबन्ध परिणाम है। अबन्ध परिणाम में बन्धन नहीं होता, यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? एकान्त मान ले तो इसमें असुर का उदाहरण दिया। मुनि की बात है। निर्वाण जायेंगे। '**संपज्जदि णिव्वाणं**' बाद में निर्वाण प्राप्त करेंगे। परन्तु वर्तमान में यहाँ से देव और असुर का वैभव प्राप्त करेंगे। थोड़ा गुजराती हो जाता है। समझ में आया?

'**तु ते सर्वे अपि अज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति**' आहाहा! ऐसा भी है कि जितना परिणाम शुभोपयोगरूप अथवा अशुभोपयोगरूप है, वो सब मिथ्यादृष्टि का अशुद्धत्वरूप उत्पन्न हुआ है। आहाहा! देखो! चाहे तो पंच महाव्रतधारी द्रव्यलिंगी हो, मिथ्यादृष्टि पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, नग्नपना हो, हजारों रानियों का त्याग किया हो, परन्तु दृष्टि में मिथ्यात्व है राग से धर्म होगा, पुण्य से धर्म होगा, शुभयोग धर्म का कारण है, एक कषाय के कण में धर्म मान लिया या यह शरीर की क्रिया मेरे से होती है, ऐसा मान लिया है वो

मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह मिथ्यादृष्टि जितना परिणाम करता है शुभ के अशुभ सब '**अज्ञाननिवृत्ताः**' है। आहाहा! समझ में आया? है? दोनों लिये हैं, देखो! '**सर्वे अपि**' '**सर्वे अपि**' अर्थात् शुभ या अशुभ, दोनों, **मिथ्यादृष्टि के अशुद्ध से उपजा है...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को शुद्धता का ही परिणाम है, मिथ्यादृष्टि को शुभभाव भी अशुद्धता के ही परिणाम हैं। आहाहा! विद्यमान हैं।

भावार्थ ऐसा है कि सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव की क्रिया तो एक सी है.... किया तो एक सी होती है। आहाहा! **क्रिया सम्बन्धी विषय-कषाय एक से हैं....** आहाहा! क्रिया सम्बन्धी विषय कषाय के परिणाम भी दोनों के एक से हैं। **परन्तु द्रव्य का परिणमन भेद है।** आहाहा! द्रव्य का परिणमन भेद है। धर्मी का द्रव्य परिणमन शुद्ध है, अज्ञानी का द्रव्य परिणमन अशुद्ध है। यह दृष्टि के कारण दोनों में इतना फेर हो गया है। आहाहा! देखो! किया एक सी, एक सी क्या? सम्यग्दृष्टि को तो अशुभभाव की क्रिया छियानवें हजार स्त्रियों की हो और मिथ्यादृष्टि सर्व स्त्रियों का त्यागी हो और ब्रह्मचर्य हो, समझ में आया? फिर भी अज्ञानी को अज्ञानभाव से अशुद्धता उत्पन्न हुई है। आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन की हलकाई और सम्यग्दृष्टि की महत्त्वता, ऐसा वर्णन किया है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १, सोमवार, दिनांक २९-०८-१९७७
कलश-६७-६८, प्रवचन-८०

कलश-टीका ६७ श्लोक है। बीच में आया है। विवरण। भावार्थ हो गया है **सम्यग्दृष्टि का...** आत्मा ज्ञायक चैतन्य शुद्ध ध्रुव जिसको अन्दर में पता लग गया है, सम्यक् पर्याय में ध्येय बनाकर शुद्ध चैतन्य का सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ और इसमें प्रतीति हुई इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि सत्यस्वरूप त्रिकाल परमात्मा, एक समय की पर्याय से रहित, एक चैतन्यमूर्ति नित्यानन्द प्रभु, ध्रुव स्वभाव जिसको अनुभव में आया। अनुभव पर्याय है, सम्यग्दर्शन भी पर्याय है, पर उसका ध्येय ध्रुव है। दृष्टि का विषय द्रव्य है। यह त्रिकाली द्रव्य को जब अन्तर में ज्ञेय बनाकर पर्याय में ज्ञान हुआ अर्थात् उसमें प्रतीति हुई, निर्विकल्प आनन्द सहित। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के साथ प्रतीति हुई इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपने पहले ज्ञान लिया बाद में प्रतीति ली।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान को पहले लिया इसका कारण कि ज्ञान में जाने बिना प्रतीति किसकी? समझ में आया? १७-१८ गाथा में पहले ज्ञान लिया है। यह चीज़ है, यह ज्ञान की पर्याय में आये बिना प्रतीति किसकी?

मुमुक्षु : प्रतीति तो है इसकी।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। आत्मा है ऐसी। सूक्ष्म बात है, अनन्त काल में किया नहीं। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयरूप जानने में आता है, तब प्रतीति हुई, ऐसा १७-१८ गाथा में है। जाने बिना प्रतीति किसकी? जो चीज ज्ञान में ज्ञेयरूप, अपनी पर्याय में ज्ञेयरूप हुई नहीं तो प्रतीति किसकी? समझ में आया? आहाहा! जिस पर्याय में अनादि से पुण्य और पाप और पर्याय का विषय ध्येय था, वह तो मिथ्याबुद्धि थी।

....उछलता है, दोपहर को आया न? भाई! ज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त

गुण की पर्याय उछलती है—उत्पन्न होती है। शक्ति के वर्णन के शुरुआत में आया था। शक्ति की शुरुआत में। आहाहा! आहाहा! कहते हैं **शुद्धत्वरूप परिणमा है...** आहाहा! धर्मी का तो शुद्धत्वरूप परिणमन है। यहाँ दृष्टि और दृष्टि के विषय की अपेक्षा के कथन हैं। परन्तु इसमें एकान्त ले जाये कि इसमें अशुद्धता है ही नहीं, ऐसा नहीं। इसकी दृष्टि और दृष्टि के विषय में नहीं। परन्तु परिणमन में अशुद्धता ही नहीं, सब शुद्धत्व ही है अकेली, यह तो दृष्टि की प्रधानता से दृष्टि का विषय शुद्ध है तो शुद्ध का परिणमन शुद्ध हुआ ऐसा कहने में आया। कोई द्रव्य और द्रव्य की शक्ति में अशुद्धता हुई, ऐसा कोई द्रव्य में और शक्ति में स्वभाव नहीं। आहाहा! इससे यहाँ द्रव्य और उसकी शक्ति का पिण्ड प्रभु, इसकी अन्तर्दृष्टि हुई, यह सब शक्तियाँ शुद्ध हैं, आहाहा! इसकी पर्याय में व्यक्त अंश प्रगट हुआ, यह शुद्धत्व परिणमन है। समझ में आया? आहाहा!

इससे जो कोई परिणाम... इससे जो कोई परिणाम। इस कारण, इस कारण अर्थात् सम्यग्दृष्टि का द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणमा है इस कारण से, समझ में आया? यह तो सिद्धान्त है, बापू! अध्यात्म है। यह कोई कथा-वार्ता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आप कई बार फरमाते हो, भागवत कथा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भागवत कथा है। नियमसार की अन्तिम गाथा में लिया है न? यह शास्त्र भागवत है। यह शास्त्र भागवत शास्त्र है। यह लोगों का भागवत अलग (और) यह भागवत अलग। आहाहा! अर्थात् भगवान भागवत की भगवती शक्ति का यहाँ वर्णन है। भागवत कथा—भगवन्त की कथा। आहाहा!

कहते हैं, सम्यग्दृष्टि को इस कारण। इसका कारण क्या? उसका द्रव्य शुद्धत्वरूप द्रव्यदृष्टि में शुद्धरूप परिणमन होता है। **इससे जो कोई परिणाम बुद्धिपूर्वक अनुभवरूप...** ज्ञानपूर्वक अनुभव होता है। ऐसी बात है। अब कोई ऐसा लगा दे कि देखो! ज्ञानी की भोगाभिलाषा भी ज्ञान जाति की है। अरे! भाई! किस अपेक्षा क्या कहते हैं? बापू! समझ में आया? वृत्ति में कमजोरी से आता है, परन्तु हेयबुद्धि है, जहरबुद्धि है। आहाहा! समझ में आया?

कमलो (पीलिया रोग) होता है न? कामलो, रोग। कामलो नहीं समझे? पीलिया।

पीलिया में एक ऐसी दवा आती है कि कुत्ता की विष्टा की गन्ध आती है। ऐसी एक दवा आती है। पीलिया ऊपर। कुत्ता की विष्टा जैसी गन्ध आती है। पीता है सही। प्रेम है? ऐसा आता है। मुझे पता है। एक बार हुआ था। (संवत्) १९८७ की साल में थोड़ा पीलिया हुआ था। एक वैद्य ने ऐसी दवा दी। दवा औषध। लकड़ी की काष्ट की भी गन्ध काफी देती है, कुत्ता की विष्टा की गन्ध हो ऐसी। पीये तो प्रेम है? पीनी पड़े।

उसी प्रकार धर्मी को भोग का विकल्प, राग आता है, परन्तु इसको अपने से पृथक् रखकर ज्ञान जाति में मिलाता है। समझ में आया? विकार जाति को ज्ञान जाति करके ज्ञात जाति में मिलाता है। आहाहा! ऐसी वस्तु है। कारण... पहले कहा था न? शुद्धत्वरूप परिणमन है। इस कारण से यह बुद्धिपूर्वक आदि है, वह सब ज्ञान जाति में घटता है, **क्योंकि...** अब पीछे कारण लिया। **कि जो कोई परिणाम है, वह संवर-निर्जरा का कारण है...** आहाहा! यह गाथा में वहाँ समयसार नाटक में है, भाई! ज्ञानी के भोग निर्जरा के कारण हैं, ऐसा कहा। बापू! इसमें भोग को निर्जरा का कारण कहा, परन्तु भोग का परिणाम तो राग ही है पर ज्ञान जाति में इसका ज्ञान करता है, ज्ञाता-दृष्टा (रहता है)। स्वभावजाति की जो चीज़ प्रगट हुई है, इसमें इसका ज्ञान करता है, यह मेरा है—ऐसा नहीं मानता और ठीक है—ऐसा भी नहीं मानता। मेरा है, ऐसा भी नहीं मानता और ठीक है, ऐसा भी नहीं मानता। हेयबुद्धि से आता है, उसका ज्ञाता रहकर ज्ञान करता है। यह धर्म। यह सम्यग्दृष्टि का भाव। आहाहा! समझ में आया?

संवर-निर्जरा का कारण है... भाषा देखो! अशुभभाव और व्रत क्रिया का शुभभाव दोनों को यहाँ संवर, निर्जरा का कारण (कहा)। क्योंकि अन्दर में दृष्टि का जोर द्रव्य पर है। चिदानन्द ध्रुव में (जोर है)। एकरूप सदृश्य सामान्य जो आत्मा, उसके ऊपर दृष्टि के जोर के कारण भेदविकल्प की रुचि उड़ गयी है। आहाहा! इस कारण से उस परिणाम को संवर, निर्जरा का कारण कहा। क्या कहा? भोग अभिलाषारूप परिणाम संवर, निर्जरा का कारण? हेयबुद्धि है। उपादेयबुद्धि नहीं और दृष्टि का जोर ध्रुव पर है, राग पर नहीं। इसलिए भोग के परिणाम को और व्रत, क्रिया के शुभभाव को संवर, निर्जरा का कारण कहा। यह परिणाम तो बन्ध का ही कारण है परन्तु यहाँ ज्ञाता-दृष्टा रहकर

अबन्धस्वभावी भगवान की दृष्टि होने से, अबन्धस्वभावी भगवान की दृष्टि और ज्ञान होने से परिणाम में अबन्ध परिणाम ही होता है। बन्ध के परिणाम का ज्ञान करता है, यह ज्ञान अबन्ध परिणाम है। इससे संवर-निर्जरा होती है। समझ में आया? ऐसे कठिन लगता है लोगों को।

सम्यग्ज्ञान दीपिका में पहला शब्द देखा तो एकदम उछला। सम्यग्ज्ञान दीपिका। जिसके सिर पर पति होता है, उसको कोई दोष लगा जाये तो बाहर में प्रसिद्धि में नहीं आता। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि के सिर पर स्वामी आत्मा है। आहाहा! 'ढिग धणी माथे किया रे, कोण गंजे नर खेत' जिसने पर्याय में ध्रुव धणी आत्मा धारण किया... आहाहा! जिसकी प्रजा-पर्याय में ढिंगधणी ध्रुव को धारण किया, 'कोण गंजे नरखेत' आनन्दघनजी कहते हैं कि यह गधे से और घोड़े से कैसे पीछे रहेगा। आहाहा!

जो कोई परिणाम है, वह संवर-निर्जरा का कारण है, ऐसा ही कोई द्रव्य परिणमन का विशेष है। आहाहा! भगवान आनन्दघनस्वरूप प्रभु और इसकी अनन्त शुद्ध शक्तियाँ और शुद्धता का एकतारूप द्रव्य, यह द्रव्य पर दृष्टि है तो द्रव्य का परिणाम विशेष प्रकार का शुद्ध होता है। समझ में आया? यह द्रव्य परिणाम का विशेष है। भोग का परिणाम संवर, निर्जरा का कारण, यह द्रव्यपरिणाम का विशेष है। यह भोग का परिणाम विशेष का नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे! भाई! जहाँ व्यवहाररत्नत्रय के (परिणाम) को भी पाप कहते हैं, वहाँ भोग के परिणाम से लाभ मानें, ऐसा है क्या?

मुमुक्षु : इसलिए लोग कहते हैं कि पाप को धर्म मानते हैं और पुण्य को पाप कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो यहाँ कहते हैं कि ऐसा है ही नहीं। पाप तो पाप ही है, परन्तु यहाँ द्रव्य के परिणमन विशेष के कारण संवर, निर्जरा कहने में आया है। पाटनीजी! आहाहा! वाद-विवाद करे सो अन्धा। 'सद्गुरु कहें सहज का धन्धा' समयसार नाटक में आता है। यह हमने (संवत्) १९८३ के वर्ष में कहा था। दामोदरसेठ था, वह बहुत वाद-विवाद, चर्चा करता था। दृष्टि विपरीत थी और बहुत वाद-विवाद करता था। बाद में कहा था। १९८३ के वर्ष की बात है। पचास वर्ष पहले की। बनारसीदास में है न? नाटक

समयसार में। वाद-विवाद करे सो अन्धा, यह समयसार नाटक में है। उस समय बनारसी विलास नहीं देखा था। समयसार नाटक देखा था। बनारसी विलास तो यहाँ (संवत्) १९९१ में देखा। समझ में आया? समयसार नाटक में है। 'सद्गुरु कहें सहज का धन्धा...' इसमें है। निकालो न, भाई! दो वस्तु छापो, एक परमार्थवचनिका और निमित्त उपादान की चिट्ठी। यह दो में से निकाला। बनारसी विलास में यह है। और रहस्यपूर्ण चिट्ठी टोडरमलजी की है। तीनों मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे छपाई है। 'सद्गुरु कहें सहज का धन्धा' है कहीं, कितना बड़ा समुद्र है।

मुमुक्षु : खोजी जीवे वादी मरे....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो हमने उस दिन (संवत्) १९८३ में कहा था, 'खोजी जीवे वादी मरे', सच्ची कहावत है। सेठ! ऐसा कहा था, हों! पचास वर्ष पहले की बात है। समयसार नाटक की बात है। खोजी जीवे, सोधक जीव सच्चा जीवन जीता है। वादी मरे, वाद करने जाता है कि ऐसा है वैसा है, तो शास्त्र में व्यवहार का कथन तो बहुत आया है। ग्यारहवीं गाथा में कहा न? शास्त्र में हस्तावलम्ब जानकर व्यवहार कथन बहुत किया है, परन्तु उसका फल संसार है। ११वीं गाथा के भावार्थ में पण्डित जयचन्दजी ने ऐसा अर्थ किया है।

मुमुक्षु : वाद-विवाद न करे परन्तु चर्चा तो करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चर्चा भी कैसी करे? चर्चा तो यहाँ रात्रि में होती है, नहीं होती? रोज चर्चा होती है। आहाहा! उन्हें तो तुम्हारी बात झूठी है और हमारी बात सच्ची है, इसके लिये चर्चा करना है। कहा था न? श्वेताम्बर में एक जीव करोड़पति है। कैसा कहलाता है? 'जीवा प्रताप' इसके भतीजे ने दीक्षा ली है। चन्द्रशेखर। हमारे पास लींबड़ी आया। बहुत वर्ष हो गये, हों! पाँच-सात वर्ष हुए। आया, आकर कहा, अपन चर्चा करते हैं। मैं समझता था इसको कुछ (समझना नहीं) है। श्वेताम्बर है, इसकी दृष्टि तो विपरीत है, यह चर्चा तो इसके साथ ठीक है ही नहीं। मैंने कहा, मैं तो किसी के पास चर्चा करता नहीं। अरे! तुम्हारा नाम इतना प्रसिद्ध है, तुम नहीं करोगे तो बाहर में कैसा लगेगा? दुनिया मानें, न मानें हमें क्या? बाद में दो-चार व्यक्ति बैठे थे, इनका सेठिया था। कहे, देखो यह चश्मा

बिना दिखता है ? ऐसे बोला। मैंने कहा, हो गयी चर्चा। चर्चा हो गयी। अरे! भगवान! चश्मा जड़ है, जानने की पर्याय तो अपनी है। आहाहा! नहीं जानता तो भी अपने से नहीं जानता और जानता तो भी अपने से जानता है। चश्मा से जानता है ? आहाहा! अरे! आँख से जानता है, ऐसा भी नहीं। इन्द्रिय का ज्ञान वह आत्मा का ज्ञान ही नहीं। आहाहा! समझ में आया ? यह अलिंगग्रहण में आया है।

इन्द्रिय से जानना, यह आत्मा का स्वभाव ही नहीं। इन्द्रिय से जानना और इन्द्रिय से दूसरा जाने इसको, ऐसा स्वभाव ही नहीं। इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय ही नहीं आत्मा। आहाहा! भगवान आत्मा अनुमान से दूसरे के द्वारा जानने में आये ऐसा आत्मा नहीं। जिसको प्रत्यक्ष हुआ नहीं और अकेले अनुमान से जानें, यह बात ही नहीं, यह अनुमान व्यवहार हो गया। आहाहा! आत्मा भी मात्र अनुमान से पर को जाने, ऐसा आत्मा नहीं। समझ में आया ? तो अपने ज्ञानस्वभाव से जानने में आता है, राग से, विकल्प से, व्यवहार से नहीं। यह ज्ञान की पर्याय से जानता है, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। यह छठा बोल है। अलिंगग्रहण के बीस बोल। समझ में आया ? ऐसा मार्ग है न, भगवान! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **ऐसा जो कोई द्रव्य परिणमन का विशेष है।** भोग की अभिलाषा का विकल्प, व्रत क्रिया के विकल्प को हम संवर, निर्जरा कहते हैं। यह द्रव्यपरिणमन की विशेषता के कारण कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : मैंने बहुत खोजा बनारसी विलास में मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनारसी विलास में है ही नहीं। हमने तो बनारसी विलास देखा है। यह देखने के पहले हमने तो चर्चा की थी। यह नहीं। सहज का धन्धा, ऐसा है। खोजी जीवे वादी मरे। परन्तु यह नहीं। सहज का धन्धा, यह नहीं। यह तो कहा था खोजी जीवे वादी मरे। उसमें है। यह तो (संवत्) १९८३ के वर्ष में बहुत चर्चा हो गयी थी। क्या कहा ? 'सद्गुरु करे सहज का धन्धा।' अन्दर है कुछ... इसमें है। यह तो (संवत्) १९८३ के वर्ष में बहुत चर्चा हो गयी। उस समय तो बनारसी विलास देखा ही नहीं था। बनारसी विलास तो यहाँ (संवत्) १९९१ में देखा। परिवर्तन किया न (उसके बाद)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, व्रत क्रिया... है न ? भोगाभिलाष और **चारित्रमोह के उदय से**

क्रोध, मान, माया, लोभरूप है, वे सब ही परिणाम ज्ञान जाति में घटता है... आहाहा!

मुमुक्षु : घटता है, अर्थात् छोटा होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। घटे अर्थात् मेल खाता है। बराबर मेल खाता है। समझ में आया? यथार्थ मिलान होता है, ऐसा। आहाहा! **ऐसा ही कोई द्रव्य परिणाम का विशेष है।** आहाहा!

मिथ्यादृष्टि का द्रव्य... अब मिथ्यादृष्टि का लिया। **अशुद्ध परिणमा है,...** आहाहा! सभी शक्तियाँ पर्याय में अशुद्धरूप परिणमी हैं। आहाहा! क्योंकि दृष्टि राग और पर्याय पर है। त्रिकाली ज्ञायकरूप अनन्त शक्तियों का पिण्ड प्रभु है ऐसी दृष्टि का तो मिथ्यादृष्टि को अभाव है। तब एक समय की पर्याय, अंश और राग पर दृष्टि होने से मिथ्यादृष्टि का द्रव्य अशुद्धरूप परिणमा है। यह सब अशुद्ध परिणमन है। चाहे तो व्रत क्रिया करे, सब कुछ करे परन्तु इसका परिणमन अशुद्ध है। समझ में आया? **इससे मिथ्यादृष्टि का जो भी परिणाम है, वह अनुभवरूप तो होता ही नहीं...** उसमें पहले कहा था न? बुद्धिपूर्वक अनुभव, ऐसा कहा था। समकिती को बुद्धिपूर्वक अनुभव कहा था, यह यहाँ लिया था। उसको अनुभव तो है ही नहीं। पहला बोल लिया था न? यह यहाँ लिया। मिथ्यादृष्टि को अनुभव तो है ही नहीं। **इसलिए सूत्र-सिद्धान्त के पाठरूप...** शास्त्र वाँचे, सुने, बोले, समझाये, कहे — यह सब विकल्प हैं। आहाहा! **सूत्र-सिद्धान्त के पाठरूप...** भाषा क्या है? दूसरे के नहीं परन्तु जैन के सिद्धान्तों का पठन-पाठन सूत्र सिद्धान्त यह लिये हैं। अन्यमति के पठन-पाठन नहीं, परन्तु यह तो जैन सिद्धान्तों का पठन-पाठन। आहाहा! यह सब मिथ्याजाति में जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : महीने के उपवास करे यह सब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवास-वपवास की बात ही कहाँ है? यह तो स्थूल है, बाद में कहेंगे। यह तो भगवान का सिद्धान्त जो जैन दर्शन है, परमेश्वर का, इसका पठन-पाठन यह भी राग है, यह भी मिथ्यादृष्टि का अशुद्ध परिणमन है। आहाहा! समझ में आया? अपना चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध है, उसका तो आश्रय और दृष्टि है नहीं। उसकी आश्रय और दृष्टि तो राग पर और पर्याय पर है। अर्थात् यह सब व्रतादि के विकल्प

(मिथ्यादृष्टि की जाति के हैं)। आहाहा! सूत्र सिद्धान्त का पढ़ना **अथवा व्रत तपश्चरणरूप हैं...** यह व्रत करता है, बारह व्रत, पंच महाव्रत, तपश्चरण करता है, महीना-महीना के उपवास करता है। यह सब बन्ध के कारण हैं, मिथ्या हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि की बात है। सम्यग्दृष्टि को निर्जरा का कारण कहा। यह द्रव्य विशेष के कारण। द्रव्य की शुद्धता की विशेषता के कारण। द्रव्य की शुद्धता की पर्याय में विशेषता के कारण। शुभ-अशुभभाव हैं, इनको ज्ञान की जाति में डाला, ज्ञातादृष्टा में और यह अज्ञानी के व्रत और तप हैं, वह सब अज्ञान जाति में गये। आहाहा! श्रद्धा ही जहाँ झूठी है... आहाहा! समझ में आया ?

व्रत तपश्चरण, सिद्धान्त का पाठ। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा कहा, अज्ञानी का कोई भी जानपना, स्वरूपविपरीतता या भेदभेदविपरीतता या कारणविपरीतता (होती है) और कदाचित् यह न हो पर शास्त्रज्ञान से प्रयोजन मान का साधा तो भी यह अज्ञान है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। समझ में आया ? मोक्षमार्गप्रकाशक चौथे अधिकार में है। इस ओर के पृष्ठ पर नीचे है। स्वरूपविपर्यास, कारणविपर्यास, भेदभेदविपर्यास, मेरे पृष्ठ में लिखा है। यहाँ बार-बार कौन पढ़े, वाँच लो, इसमें से... यह कहा।

व्रत, तपश्चरणरूप है अथवा दान, पूजा, दया, शीलरूप... आहाहा! मिथ्यादृष्टि की दृष्टि में विपरीतता है। इसका दान... आहाहा! है ? आया न ? है न ? यह रहा, देखो! अन्तर होगा, पुराने में अन्तर है। भेदाभेद विपर्यास। यह नहीं, मेरे तो यह निकालना है। अथवा सत्य भी जाने। शास्त्र को सत्य भी जानें, परन्तु उसका अपना प्रयोजन अयथार्थ साधता है। आहाहा! इससे वो सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता। आहाहा! अपने जानपने द्वारा मान लेना चाहता है। मुझे जानपना है, इसकी आश्चर्यता दूसरे को बताना, यह प्रयोजन सच्चा नहीं। पहले तो तीन कारण कहे। कारणविपर्यास, भेदाभेदविपर्यास, मिथ्यादृष्टि है न ? सच-झूठा निर्धार करने में प्रयोजन कोई नहीं। (मोक्षमार्गप्रकाशक, अधिकार-४, पृष्ठ-८८)।

प्रश्न - मिथ्यादृष्टि के जीवादि तत्त्वों के अयथार्थ जानने को मिथ्याज्ञान भले

कहो, परन्तु डोरी और सर्पादि के यथार्थ जानने को तो सम्यग्ज्ञान कहो। ऐसा प्रश्न है ?

समाधान - मिथ्यादृष्टि जानता है, वहाँ उसको सत्ता-असत्ता का विशेष (भेद) नहीं। इससे उसे स्वरूपविपरीतता, भेदभेदविपरीतता, कारणविपरीतता उत्पन्न होती है। या इनका कर्ता है, या कोई पर्याय पर से होती है, ऐसे कारण में विपर्यास भेद है, इससे उसका पर का जानना भी मिथ्या है। समझ में आया ? बाद में कहा, **अथवा सत्य जाने...** यह कहना था। आहाहा! आहाहा! **परन्तु यह इससे अपना विपरीत प्रयोजन साधता है...** मान बढ़ाने, मुझे आता है, मैं पण्डित हूँ। आहाहा! गजब बात, बापू!

मुमुक्षु : ...पैसा देना हो तो बाधा नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब विपरीतता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है। पैसा लेने के लिए वाँचता है, कार्य करता है, यह तो विपरीत है। यहाँ तो आया, पहले दूसरी जगह है। यहाँ तो सत्य भी जानें, शास्त्र का ज्ञान धारणा में सत्य भी हो, समझ में आया ? आहाहा! परन्तु अपना प्रयोजन अयथार्थ साधता है। अपने मान के लिये, आबरू के लिये, कीर्ति के लिये, बाहर बताने के लिये, दुनिया में मेरी प्रसिद्धि हो, ऐसे प्रयोजन के लिये, तो यह ज्ञान मिथ्या है। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है, प्रभु! पाटनीजी! यह कहना है।

मुमुक्षु : सत्य जाने तो भी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहा न। सत्य भी जाने। **परन्तु इससे अपना विपरीत प्रयोजन साधता है...** आहाहा!

प्रश्न : सत्य जाननेवाला अयथार्थ प्रयोजन कैसे साधेगा ?

उत्तर : साधे। बात धारणा में आ गयी... समझ में आया ? परन्तु प्रयोजन विपरीत है। मान के लिये, आबरू के लिये या प्रसिद्धि के लिये (करता है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मिथ्यादृष्टि जिसकी दृष्टि में पुण्य से धर्म होता है, पर्याय जितना आत्मा है और मैं पर की क्रिया कर सकता हूँ, पर से मुझे लाभ होता है — ऐसी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! इसका सिद्धान्त पाठ, व्रत, तप, दान, पूजा, दया, शील, ब्रह्मचर्य अथवा भोगाभिलाषा अथवा क्रोध, मान, माया, लोभ यह सब ऊपर लिये, **ऐसे समस्त परिणाम अज्ञान जाति के हैं...** आहाहा! क्योंकि इन परिणामों में अपनापना मानकर वहाँ रुक गया है। यह परिणाम

से मेरी चीज़ भिन्न है, यह मैं हूँ और उससे मुझे लाभ होता है, ऐसा नहीं मानता, राग से मुझे लाभ होता है, शास्त्र पढ़ा है, दुनिया बहुत मानती है... ओहोहो! यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है। दुनिया में श्रोताओं की संख्या बहुत दिखे तो प्रसन्न होता है, यह ज्ञान मिथ्या है। आहाहा! अरे! यह तो वीतराग मार्ग है, भाई! समझ में आया?

(ऐसे सभी परिणाम) **अज्ञान जाति के हैं, क्योंकि बन्ध के कारण हैं...** मिथ्यादृष्टि की श्रद्धा मिथ्या है, प्ररूपणा ही मिथ्या है, झूठी है कि व्रत करने से कल्याण होगा, तप करने से कल्याण होगा, दान या ब्रह्मचर्य से, तप करने से, उपवास आदि करने से यह सब तो राग है। इससे कल्याण होगा, यह दृष्टि मिथ्या है। आहाहा! इससे इसके सब परिणाम अज्ञानजनित हैं। बन्ध के कारण हैं। **संवर-निर्जरा के कारण बिल्कुल नहीं...** यह व्रत पाले, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाले, यह तो सब आस्रव हैं, बन्ध के कारण हैं। समझ में आया? यह कठिन पड़ता है लोगों को। यह लोग व्रत, तप करते हैं, यह साधन हैं। साधन से साध्य है। पंचास्तिकाय में लिखा है। भेद साध्य-साधन। पंचास्तिकाय में पीछे है। भिन्न साध्य-साधन। यह तो दूसरी अपेक्षा से कहा है। साध्य तो निश्चय है। साधन का राग में आरोप करके भिन्न-साधन कहा। साधन है नहीं, इसका आरोप देकर साधन कहा। आहाहा! अरे! इसमें कहाँ पहुँचे?

द्रव्य का ऐसा ही परिणमनविशेष है। पहले में भी ऐसा आया था कि भोगाभिलाषा, व्रतादि के परिणाम ज्ञानजाति के हैं। क्योंकि द्रव्य के परिणमन विशेष के कारण। द्रव्य के विशेष शुद्ध परिणमन के कारण। यहाँ भी द्रव्य का ऐसा ही परिणाम विशेष है। अशुद्ध परिणाम है, दृष्टि की खबर नहीं, वस्तु की खबर नहीं और अकेला दान और तप और व्रत को (धर्म मानता है)। कहो प्रियंकरजी! यह बड़ी शास्त्र परिषद भरकर क्या करते हो? यह शास्त्री है।.... माया करके उनका हृदय ले लिया। अरे! भगवान! प्रभु! यह तो प्रभु हित की बातें हैं। इसमें कोई प्रसन्न हो या न हो, ऐसी बातें हैं। आहाहा! आत्मा कैसे प्रसन्न हो? या आत्मा की शुद्ध दृष्टि करे तो प्रसन्न-आनन्द होता है। पर को प्रसन्न करना, इसमें तुझे क्या मिला? आहाहा! समझ में आया? यह ६७ श्लोक पूरा हुआ। ६८ (कलश)

कलश-६८

(अनुष्टुप्)

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिका:।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम्।।23-68।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि जीव, मिथ्यादृष्टि जीव की बाह्य क्रिया तो एक सी है परन्तु द्रव्य परिणमनविशेष है, सो विशेष के अनुसार दिखलाते हैं। सर्वथा तो प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर है। 'अज्ञानी द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानां हेतुतां एति' [अज्ञानी] मिथ्यादृष्टि जीव [द्रव्यकर्म] धाराप्रवाहरूप निरन्तर बँधते हैं-पुद्गलद्रव्य की पर्यायरूप कार्मणवर्गणा ज्ञानावरणादि कर्म पिण्डरूप बँधते हैं जीव के प्रदेश के साथ एक क्षेत्रावगाही हैं, परस्पर बन्ध्यबन्धकभाव भी है। उनके [निमित्तानां] बाह्य कारणरूप हैं [भावानां] मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप अशुद्ध परिणाम। भावार्थ इस प्रकार है-जैसे कलशरूप मृत्तिका परिणमती है, जैसे कुम्भकार का परिणाम उसका बाह्य निमित्तकारण है, व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है; उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप पुद्गलद्रव्य स्वयं व्याप्य-व्यापकरूप है। तथापि जीव का अशुद्ध चेतनारूप मोह, राग, द्वेषादि परिणाम बाह्य निमित्तकारण है, व्याप्य-व्यापकरूप तो नहीं है। उस परिणाम के [हेतुतां] कारणरूप [एति] आप परिणमा है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि जीवद्रव्य तो शुद्ध है, उपचारमात्र कर्मबन्ध का कारण होता है, सो ऐसा तो नहीं है। आप स्वयं मोह, राग, द्वेष अशुद्ध चेतना परिणामरूप परिणमता है उसी प्रकार कहते हैं- 'अज्ञानमयभावानां भूमिका: प्राप्य' [अज्ञानमय] मिथ्यात्व जाति ऐसी है [भावानां] कर्म के उदय की अवस्था उनकी [भूमिका:] जिसके पाने पर अशुद्ध परिणाम होते हैं, ऐसी संगति को [प्राप्य] प्राप्त कर मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्ध परिणामरूप परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है - द्रव्यकर्म अनेक प्रकार का है, उसका उदय अनेक प्रकार का है। एक कर्म ऐसा है, जिसके उदय शरीर होता है, एक कर्म ऐसा है कि जिसके उदय मन, वचन, काय होता है, एक कर्म ऐसा है जिसके उदय सुख, दु:ख होता है। ऐसे अनेक प्रकार के कर्म का उदय होने पर मिथ्यादृष्टि जीव कर्म के उदय को आपरूप अनुभवता है, इससे राग, द्वेष, मोह परिणाम होते हैं, उनके द्वारा नूतन कर्मबन्ध होता है। इस कारण मिथ्यादृष्टि जीव

अशुद्ध चेतन परिणाम का कर्ता है। क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव के शुद्धस्वरूप का अनुभव नहीं है, इसलिए कर्म के उदय कार्य को आपरूप अनुभवता है। जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि के कर्म का उदय है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि के भी है, परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव को शुद्धस्वरूप का अनुभव है, इस कारण कर्म के उदय को कर्मजातिरूप अनुभवता है, आपको शुद्धस्वरूप अनुभवता है। इसलिए कर्म के उदय में नहीं रंजायमान होता है, इसलिए मोह, राग, द्वेषरूप नहीं परिणमता है, इसलिए कर्मबन्ध नहीं होता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि अशुद्ध परिणाम का कर्ता नहीं है। ऐसा विशेष है।।23-68।।

कलश - ६८ पर प्रवचन

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकाः।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम्॥२३-६८॥

श्लोक है छोटा, पेज है बड़ा। पूरा पेज भरा है। **ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टि जीव की बाह्य क्रिया तो एक सी है परन्तु द्रव्य परिणमनविशेष है...** कहा था न? दोनों में। **सो विशेष के अनुसार दिखलाते हैं।** विशेष के अनुसार दिखता है। विशेष क्या? कैसे विशेष है? यह दिखाता है। **सर्वथा तो प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर है।** सर्वज्ञ प्रत्यक्ष जानते हैं।

'अज्ञानी द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानां हेतुतां एति' (अज्ञानी) मिथ्यादृष्टि जीव (द्रव्यकर्म) धाराप्रवाहरूप निरन्तर बँधते हैं... आहाहा! क्योंकि इसकी शुभ परिणाम पर रुचि है तो निरन्तर मिथ्यात्व का बन्धन करता है। व्रत, तप, भक्ति, दान, शील आदि भाव शुभ हैं और इनको यह धर्म मानता है, धर्म का कारण मानता है। आहाहा! समझ में आया? तो कर्म का बन्धन मिथ्यादृष्टि को निरन्तर होता है। आहाहा! **पुद्गलद्रव्य की पर्यायरूप कार्मणवर्गणा ज्ञानावरणादि कर्म पिण्डरूप बँधते हैं...** निरन्तर क्या बँधता है? **पुद्गलद्रव्य की पर्यायरूप कार्मणवर्गणा ज्ञानावरणादि कर्म पिण्डरूप बँधते हैं, जीव के प्रदेश के साथ एक क्षेत्रावगाही हैं, परस्पर बन्ध्यबन्धकभाव भी है।** बन्ध यह है और बन्ध करने की योग्यता पर्याय में है। मिथ्यात्वादि। **उनके बाह्य कारणरूप हैं**

मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप अशुद्ध परिणाम। वे बाह्य कारणरूप कर्म है। समझ में आया ? निमित्त।

भावार्थ इस प्रकार है - जैसे कलशरूप मृत्तिका परिणमती है,... दृष्टान्त देते हैं। मिट्टी कलशरूप, घड़ेरूप परिणमती है, यह तो मिट्टी का ही परिणाम है। **जैसे कुम्भकार का परिणाम उसका बाह्य निमित्तकारण है,...** निमित्तकारण से हुआ नहीं। यह तो समयसार २७२ गाथा में आ गया। हम तो (ऐसा) देखते नहीं। कुम्हार घड़ा बनाता है, ऐसा हम नहीं देखते। मिट्टी घड़ा को बनाती है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! रोटी स्त्री बनाती है, हम तो मानते नहीं।

यहाँ कहते हैं, **जैसे कुम्भकार का परिणाम उसका बाह्य निमित्तकारण है, व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है...** क्या कहते हैं ? अज्ञानी का विकार परिणाम जो है, इसमें व्याप्य अवस्था है और व्यापक जीव है। वैसे ही कर्म बन्धन की अवस्था व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसा नहीं। व्याप्य-व्यापक तो कर्म होता है। कर्म की पर्याय व्याप्य और पुद्गल उसका व्यापक। कर्म की पर्याय व्याप्य और आत्मा उसका व्यापक, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? भाषा व्याप्य और व्यापक, किसी दिन निर्णय करने का ठिकाना न मिले। ऐसे का ऐसा धर्म करो... धर्म करो। देवदर्शन करो, व्रत पालो और भक्ति करो और पूजा करो और दान करो, शरीर से ब्रह्मचर्य पालो। बस हो गया धर्म। ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह कहा न ?

जैसे कुम्भकार का परिणाम उसका बाह्य निमित्तकारण है, व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है... क्या कहते हैं ? मिट्टी में से घड़ा हुआ है, यह घड़ा व्याप्य है, अवस्था है, मिट्टी व्यापक है। कुम्हार व्यापक है और घड़ा व्याप्य है, ऐसा नहीं। व्याप्य अर्थात् अवस्था और व्यापक अर्थात् द्रव्य। कायम रहनेवाली चीज़ व्यापक और क्षणिक पर्याय उत्पन्न होती है, वह व्याप्य। आहाहा! घड़ा की व्यापक मिट्टी है और घड़ा उसकी व्याप्य-अवस्था है। कुम्भकार व्यापक है और घड़ा उसका व्याप्य-अवस्था है, ऐसा है नहीं। उसी प्रकार आत्मा राग-द्वेष करता है और कर्म बाँधता है, यह कर्म बन्धन होता है, व्याप्य-व्यापक कर्म में है। आत्मा ने राग किया, यह व्यापक है और कर्म की बन्ध पर्याय व्याप्य

है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु जानना पड़ेगा या नहीं लोगों को? आहाहा!

उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप पुद्गलद्रव्य स्वयं व्याप्य-व्यापकरूप है। लो। कर्म व्याप्य-व्यापक है। कर्म की अवस्था व्याप्य है और यह कर्म में पुद्गल है, वह व्यापक है। परन्तु आत्मा कर्म की बन्ध की पर्याय में व्याप्य-व्यापक है, ऐसा नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-६९

(उपेन्द्रवज्रा)

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता-
स्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति।।24-69।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'ये एव नित्यं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति ते एव साक्षात् अमृतं पिबन्ति'-[ये एव] जो कोई जीव [नित्यं] निरन्तर [स्वरूप] शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु में [गुप्ता:] तन्मय हुए हैं [निवसन्ति] तिष्ठते हैं [ते एव] वे ही जीव [साक्षात् अमृतं] अतीन्द्रिय सुख का [पिवन्ति] आस्वाद करते हैं। क्या करके? 'नयपक्षपातं मुक्त्वा'-[नय] द्रव्यपर्यायरूप विकल्पबुद्धि, उसके [पक्षपातं] एक पक्षरूप अंगीकार, उसको [मुक्त्वा] छोड़कर। कैसे हैं वे जीव? 'विकल्पजालच्युतशांतचित्ता:' [विकल्पजाल] एक सत्त्व का अनेकरूप विचार, उससे [च्युत] रहित हुआ है, [शान्तचित्ता:] निर्विकल्प समाधान मन जिनका, ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है-जो एक सत्त्वरूप वस्तु है, उसका द्रव्य-गुण-पर्यायरूप, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप विचार करने पर विकल्प होता है, उस विकल्प के होने पर मन आकुल होता है, आकुलता दु:ख है, इसलिए वस्तुमात्र के अनुभवने पर विकल्प मिटता है, विकल्प के मिटने पर आकुलता मिटती है, आकुलता के मिटने पर दु:ख मिटता है, इससे अनुभवशीली जीव परम सुखी है।।24-69।।

श्रावण कृष्ण २, मंगलवार, दिनांक ३०-०८-१९७७

कलश-६९, प्रवचन-८१

यह कलश-टीका, कर्ता-कर्म अधिकार। ६९ श्लोक है। ६८ में थोड़ा चला है। ६९। ६९ कहते हैं न?

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्।

विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता-
स्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति॥२४-६९॥

आहाहा! **'ये एव नित्यं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति ते एव साक्षात् अमृतं पिबन्ति'** - **जो कोई जीव निरन्तर शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु में तन्मय हुए हैं...** आहाहा! शुद्ध चैतन्य ज्ञायकघन भगवान में जो कोई जीव तन्मयस्वरूप में एकाग्र हुआ है। आहाहा! तन्मय का अर्थ पर्याय और द्रव्य एक नहीं हो जाते। तन्मय का अर्थ (यह कि) पर्याय इस ओर ढल गयी है, इस अपेक्षा से तन्मय कहा है। समझ में आया? यह सूक्ष्म बात है। समझ में आया? कर्ता-कर्म के बीस बोल हैं। इसका पहला श्लोक है।

भगवान आत्मा, जिसको सम्यग्दर्शन होता है, वो कब होता है? और किस प्रकार होता है? अपना स्वरूप जो शुद्धचैतन्यघन उसमें **'निवसन्ति'** वास करता है। आहाहा! जो अनादि काल से पुण्य-पाप आदि राग में वास-निवास था, यह पर्यायबुद्धि में पुण्य और पाप और एक समय की पर्याय में तन्मय था, यह पर्यायबुद्धि है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? अपने स्वरूप के सन्मुख होकर, आश्रय लेकर चैतन्यघन आनन्दकन्द ऐसे चैतन्य में, **जो कोई जीव निरन्तर शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु में...** स्वरूप की व्याख्या की शुद्ध चैतन्य पवित्र पिण्ड प्रभु है। एक समय की दशा में अपवित्रता अर्थात् संसार है। वस्तु में संसार नहीं और अल्पज्ञता भी नहीं। समझ में आया? वस्तु जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप, स्वरूप की व्याख्या की। —शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु। अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु है। इसमें **'गुप्ताः'** तन्मय हुए हैं। आहाहा! विकल्प को छोड़कर अपनी चीज में जो कोई आश्रय लेकर तन्मय हुआ... आहाहा! वह तिष्टता है—वह वस्तु में रहता है। आनन्दकन्द प्रभु में रहता है। निरन्तर रहता है, ऐसा तो यहाँ कहा। जैसे ही विकल्प छूटकर स्वरूप में निवास हुआ, तब निरन्तर दृष्टि वहाँ ही पड़ी है और निरन्तर आनन्दमय है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझ में आया?

'निवसन्ति' वे ही जीव... 'साक्षात् अमृतं पिबन्ति' साक्षात् क्यों कहा? स्वरूप तो अमृत है ही। कभी जिसकी मृत्यु नहीं, कभी जिसका अभाव नहीं, कभी जिसका नाश नहीं, ऐसी चीज़ को अमृतस्वरूप कहते हैं। समझ में आया? ऐसा अमृतस्वरूप भगवान

आत्मा अमृत का भोजन करता है। आहाहा! दृष्टि वहाँ लगी और पर्याय और राग के ऊपर से दृष्टि उठा ली। यह नास्ति से कथन है। बाकी अन्तर में गया तो उठा ली, ऐसा हो जाता है। समझ में आया? बात सूक्ष्म है परन्तु वास्तविक तत्त्व यह है। बाकी लाख दान, शील, तप चाहे तो करे। समझ में आया? आहाहा! बाहर में अनेक प्रकार के महोत्सव मनाये, वह तो सब विकल्प जाल—राग है।

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि एक बार प्रभु! तेरे ध्रुवस्वभाव में बस, निवास तो कर। तेरा नि—वास (अर्थात्) विशेष वास। नि उत्सर्ग है न? आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का जो कोई शुभराग है, उसमें तेरा वास है, यह तो मिथ्या भूमिका में वास हुआ। तेरी चैतन्य भूमिका में वास नहीं हुआ। आहाहा! शुभ और अशुभभाव। शुभ की मुख्यता अनादि से है। शुभ की मुख्यता से धर्म मानकर वहाँ रुचि करके वहाँ वास किया है। एक बार प्रभु! तेरा अमृतधाम, अमृत स्थल चीज़ है। कभी मृत्यु नहीं पायेगा, नाश नहीं पायेगा, पलटेगा नहीं। आहाहा! ऐसी अमृत चीज़ है।

अतीन्द्रिय सुख... अमृत की व्याख्या की। अतीन्द्रिय सुख '**साक्षात् अमृतं पिबन्ति**' की व्याख्या की। साक्षात् अर्थात् अतीन्द्रिय और अमृत (अर्थात्) सुख। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु (विराजता है)। सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। आहाहा! कहा था न? सर्व शक्तियों का संग्रहालय है। आहाहा! जैसे गोदाम में अनेक प्रकार का माल पड़ा हो, वैसे भगवान के गोदाम में अनेक प्रकार की शक्तियाँ शुद्ध पड़ी हैं। इसमें यहाँ अमृत नाम की—सुख नाम की एक शक्ति है। यह अपने व्याख्यान में चल गयी है। समझ में आया? अनाकुल आनन्द सुखस्वरूप है, प्रभु! पर्याय में राग और द्वेष का जो दुःख दिखता है, वह तेरी चीज़ नहीं। उसकी रुचि से तेरी मृत्यु होती है। पुण्य और पाप, रागादि की रुचि से अपने स्वभाव के प्रति इसको क्रोध-द्वेष होता है। आहाहा! 'द्वेष अरोचक भाव'। भगवान आनन्दस्वरूप की रुचि नहीं, यही आत्मा के प्रति द्वेष अर्थात् क्रोध कहने में आता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, साक्षात् अतीन्द्रिय सुख '**पिबन्ति**' धर्मी जीव अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता है। आहाहा! गन्ना... गन्ने का रस। गन्ना है? गन्ने का रस गट-गट पीवे।

आहाहा! ऐसे धर्मी अपने चैतन्य अमृतसागर में एकाग्र होकर अमृत का घूंट-घूंट पीता है। '**पिबन्ति**' शब्द लिया है न? भोगता है, ऐसा नहीं लिया। '**पिबन्ति**' क्यों '**पिबन्ति**' (कहा)? ऐसी सब आनन्द की पर्याय पीता है तो भी इसमें तृप्ति नहीं। पूर्णानन्द के नाथ को पूर्णानन्द की तृप्ति जब पर्याय में होती है, तब पूर्ण होता है। चन्दुभाई!

मुमुक्षु : गटागटी।

पूज्य गुरुदेवश्री : गटागटी। भाई लिखा है न? न्यालचन्दभाई ने। न्यालचन्दभाई हैं न? 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश' में लिखा है। गन्ना का रस जैसे गटक-गटक पीते हैं, वैसे धर्मी जीव अपने अमृत सागर के सन्मुख होकर अन्तर में निवास करते हैं, तब अमृत को पीते हैं। आहाहा! इसका नाम धर्म है। समझ में आया? ६८ श्लोक में अशुद्ध चैतन्य का परिणाम नये बन्धन में निमित्त है, नया बन्धन अपने से होता है, यह सिद्ध करना है और अशुद्ध परिणाम में निमित्त कर्म है परन्तु अशुद्ध परिणाम का कर्ता अपना आत्मा अपने से है, यह सिद्ध करना था। बाद में सार यह लिया। समझ में आया?

आज तो बहिन का जन्मदिन है न! यह आया। यह तो धर्मरत्न है। बाहर से मर गयी है। आहाहा! इनको कुछ नहीं होता। इसको हीरों से बधाई दें, तब भी कुछ नहीं होता। मुर्दा की तरह खड़ी रहती है। ऐसे। आहाहा! आत्मा के आनन्द का जहाँ स्वाद आया, उसको पर में उत्साह और वीर्य की उल्लसित दशा चली जाती है। जहाँ आत्मा के आनन्द का स्वाद आया, वहाँ परतरफ का उत्साह, वीर्य छूट जाता है। अशक्ति आती है परन्तु उल्लसित वीर्य जिसमें सुखबुद्धि थी, वह बात उड़ जाती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अतीन्द्रिय सुख को आस्वादते हैं। आहाहा! पीते हैं। देखो! इसका नाम सम्यग्दर्शन, इसका नाम अनुभूति, इसका नाम अतीन्द्रिय आनन्द का पान, स्वाद, इसका (नाम) धर्म—मोक्ष का मार्ग, इसका नाम सुखसागर का पर्याय में उछलना। दोपहर आता है न? शक्ति। ज्ञान की जब सम्यक् पर्याय उत्पन्न हुई तो इसके साथ अनन्त पर्याय उछलती हैं। उछलती हैं अर्थात् उदय होती हैं अर्थात् प्रगट होती हैं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है। लोगों को ऐसा लगता है, विरोध लगता है। ऐसा कि यह व्यवहार करते-करते होता है, ऐसा कहो, नहीं तो एकान्त है। ऐसा कहते हैं। बाबूभाई को वहाँ भेजा

था न? बाद में तो सब बन्दोवस्त हो गया था। भाई ने कहा, यह पण्डितजी ने कहा था, बन्दोवस्त हो (गया था)। अरे! प्रभु! विवाद का काम नहीं, नाथ! तेरे घर की चीज़ है न, प्रभु!

वास्तु करते हैं तो कोई मकान होता है तो वास्तु करते हैं न? या वृक्ष पर करते हैं? जंगल में करते हैं? ऐसे तेरी वस्तु में बसना, आहाहा! वास्तु लेना, वास्तु करना। निवास आया न? वस्तु इसको कहते हैं जिसमें अनन्त शक्तियाँ बसती हैं। गोम्मटसार में यह शब्द है। गोम्मटसार। आत्मवस्तु इसको कहते हैं कि जिसमें अनन्त गुण यानि अनन्त शक्तियाँ रहती हैं, बसती हैं, इसलिए वस्तु कहते हैं। यह वस्तु में वास... क्या कहा तुम्हारा मकान? वास्तु। ऐसे यह वास्तु है। आहाहा! तेरी चीज़ में वास्तु कर न, नाथ! तेरी चीज़ आनन्द का नाथ पड़ी है न। तेरी दृष्टि पलटा मारे इतनी बात है। एक समयान्तर, एक समय में जो दृष्टि पर ऊपर है, वह गुलांट खाकर अन्दर जाये, इतना एक समय में देखो। क्योंकि भूल एक समय की है, पर्याय की एक समय की भूल है। भगवान त्रिकाली अमृत का सागर तो पवित्र पिण्ड प्रभु है। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं, पीता है, आस्वादता है। आहाहा! पहले सार लिया। **क्या करके?** क्या करके? शु करके, यह हमारी गुजराती भाषा है। **'नयपक्षपातं मुक्त्वा' द्रव्यपर्यायरूप विकल्पबुद्धि, उसके एक पक्षरूप अंगीकार, उसको छोड़कर।** क्या कहते हैं? दो बात की। द्रव्य और पर्याय। मैं बद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं अनेक हूँ, मैं वेदनेयोग्य नहीं, जाननेयोग्य नहीं—ऐसी पर्यायबुद्धि (छोड़कर)। इसके विकल्प को छोड़कर, व्यवहार का तो निषेध करते आये ही हैं। भाई! आता है न? यहाँ तो मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, अबद्ध हूँ, प्रत्यक्ष होनेयोग्य हूँ, मेरी चीज़ प्रत्यक्ष होनेयोग्य है, प्रत्यक्ष होनेयोग्य नहीं, यह तो पर्यायबुद्धि अर्थात् विकल्प अज्ञान का व्यवहार था। इसका तो निषेध करते आये ही हैं। परन्तु यहाँ तो मैं शुद्ध हूँ, प्रत्यक्ष होनेयोग्य हूँ, मैं अबद्ध हूँ, मैं शुद्ध चिद्घन हूँ, मैं एकरूप हूँ, मैं जाननेयोग्य हूँ, मैं देखनेयोग्य हूँ, मैं वेदनेयोग्य हूँ, मैं प्रत्यक्ष होनेयोग्य हूँ — ऐसा विकल्प भी अब छोड़ दे, कहते हैं। धन्नालालजी! आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा में अन्दर निवास करना हो अर्थात् वस्तु की प्राप्ति करना हो तो

वस्तु... व्यवहारनय का जितना कथन है, इसका तो हम पहले से निषेध करते आये हैं, परन्तु अब तो व्यवहार के साथ निश्चय के बोल आये। मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, अभेद हूँ, एक हूँ, प्रत्यक्ष होनेयोग्य हूँ, आनन्द का वेदन करनेयोग्य हूँ — ऐसे विकल्प की जो वृत्ति उठती है, वह पक्ष है। आहाहा! यह पक्ष का आँगन छोड़कर अन्दर में जा।

मुमुक्षु : अन्दर जाने की विधि बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न। आहाहा! यह पक्ष के विकल्प को छोड़कर। आया, देखो! '**नयपक्षपातं मुक्त्वा**' द्रव्य-पर्याय दो क्यों लिये? निश्चय और व्यवहार। पर्याय, वह व्यवहार और द्रव्य, (वह) निश्चय ऐसा लिया है। नय-द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। दोनों का पक्षपात छोड़कर। यहाँ तो पर्यायनय का, व्यवहारनय का पक्षपात तो पहले से ही छुड़ाते आये हैं। आये हैं न? चन्दुभाई! आहाहा! यहाँ तो अब द्रव्यनय (कहते हैं) बात तो दोनों साथ ली हैं। द्रव्य और पर्याय, बद्ध-अबद्ध, एक-अनेक। परन्तु इसमें मूल निश्चय की चीज़ तो अबद्ध, शुद्ध और एक हूँ, यह द्रव्य के विकल्प हैं। यह विकल्प छुड़ाना है, समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : पर हमें तो धर्म करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म की बात तो चलती है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : यह कैसा धर्म?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा अन्दर धर्म अर्थात् धर्मी अर्थात् आत्मा और धर्म अर्थात् आनन्द और ज्ञान और शान्ति, इसका धर्म अर्थात् स्वभाव है। उस स्वभाव में विकल्प छोड़कर एकाग्रता होना, इसका नाम धर्म है। धर्मी द्रव्य और धर्म-शक्ति। यह शक्ति और शक्तिवान के भेद का लक्ष्य भी छोड़कर और अभेद का भी लक्ष्य छोड़कर। यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : भेद-अभेद सब छोड़ देंगे तो क्या रहेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा जैसा है, वैसा रहेगा। अभेद का विकल्प छुड़ाना है, अभेद वस्तु तो रह गयी। समझ में आया? मैं अभेद हूँ, मैं सामान्य हूँ, मैं एक हूँ, शुद्ध—

ऐसा विकल्प छुड़ाना है। वस्तु तो रहेगी। वस्तु तो अभेद और शुद्ध है, वह रहेगी। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प तो साधन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन-फाधन है नहीं। बाधक है। विकल्प, वह दुःख है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। मैं शुद्ध हूँ, मैं एक हूँ, मैं वेदनेयोग्य हूँ—ऐसा विकल्प दुःख है। यह दुःख कहीं सुख का साधन हो सकता है? समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

द्रव्यपर्यायरूप विकल्पबुद्धि,... ऐसा कैसे कहा? पर्यायबुद्धि का, व्यवहारबुद्धि का तो निषेध करते आये हैं, परन्तु इसके साथ-साथ द्रव्य के पक्ष का विकल्प छोड़ने के लिये दोनों की बात करते हैं। नहीं तो द्रव्य का विकल्प छुड़ाना है। परन्तु दोनों का साथ लेकर पक्ष छुड़ाते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। भाई ने कहा न कि विकल्प साधन है। साधन क्या?

अपने स्वरूप में साधन नाम की—करण नाम की शक्ति पड़ी है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—ऐसी छह शक्तियाँ अन्दर ध्रुव में पड़ी है। उसकी ओर लक्ष्य करते हैं तो साधन नाम की शक्ति साधनरूप होती है। स्वरूप की निर्मलता का साधन यह शक्ति है, राग नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को परम निरपेक्ष कहा है। भाई! नियमसार दूसरी गाथा। परम निरपेक्ष। कोई अपेक्षा नहीं विकल्प की व्यवहार की.. आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा परम निरपेक्ष रत्नत्रय को सेवन करनेवाला भगवान आत्मा, वह मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष के मार्ग में पर की कोई अपेक्षा है नहीं, ऐसा निरपेक्ष है। ऐसा पाठ है। दूसरी गाथा नियमसार। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो निश्चय से द्रव्य का आश्रय (द्रव्य सम्बन्धी का विकल्प) है, वह छुड़ाना है, पर साथ में दोनों लिये। द्रव्य और पर्याय। निश्चय और व्यवहार। द्रव्य अर्थात् निश्चय और पर्याय अर्थात् व्यवहार। समझ में आया? आहाहा! तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि, जिसको इन्द्र सुनते हैं, इन्द्र एकावतारी, एक भवावतारी। पति-पत्नी दोनों एक भवतारी हैं। सौधर्म देवलोक। तीन ज्ञान का धनी है। असंख्य देव हैं। एक-एक विमान में ऐसे असंख्य। बत्तीस लाख तो विमान हैं। किसी विमान में असंख्यात होते हैं। बहुत से तो

असंख्यात देव रहें, ऐसे विमान हैं। इनका स्वामी ऐसा कहता है कि मैं इनका स्वामी नहीं। मेरे में थोड़ा राग आया, उसका भी मैं स्वामी नहीं। आहाहा! मैं तो द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और निर्मल आनन्द की पर्याय शुद्ध, वह मेरा स्व है और इसका मैं स्वामी हूँ। आहाहा! इन्द्र, शकेन्द्र, सौधर्म देवलोक। मेरुपर्वत के ऊपर सौधर्म देवलोक है। तीन तो ज्ञान हैं—मति, श्रुत, अवधि। भगवान के पास महाविदेह में सुनने जाते हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि एक भवावतारी, दोनों एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। उनको भी निश्चय हो गया है, भगवान ने कहा है। वे सुनने जाते हैं, धर्म कथा कैसी होगी? आहाहा!

मुमुक्षु : पृथ्वी लोक की यह दिव्यध्वनि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : देव दिव्यध्वनि सुनने आते हैं। मृत्युलोक तो मनुष्यों की अपेक्षा से, बाकी तो यह अमृतलोक है। भगवान तो अमृतलोक में विराजते हैं। वह अमृतलोक के पास में आते हैं। आहाहा! यहाँ देह के नाश की बात तो पर में गयी, परन्तु राग का नाश करना, यह भी आत्मा के स्वभाव में नहीं। यह तो अपने में आ गया। त्यागोपादान-शून्यत्वशक्ति। भाई! परद्रव्य का ग्रहण और त्याग तो स्वभाव में है ही नहीं। निश्चय से तो राग का ग्रहण भी नहीं और राग का त्याग भी स्वरूप में नहीं। यह ३४ गाथा में कहा है। समयसार। राग का त्यागकर्ता आत्मा है, यह नाममात्र कथन है। आहाहा! यहाँ तो बाह्य का त्याग करता है, वहाँ अभिमान हो जाता है। मैंने इतना छोड़ दिया, स्त्री छोड़ी, दुकान छोड़ी... परन्तु यह क्या है? प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तेरी चीज़ में एक त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति है। त्याग अर्थात् छोड़ना और उपादान अर्थात् ग्रहण करना, यह त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति तेरा स्वभाव ही है। राग का ग्रहण करना और राग का त्याग करना, वह तेरा स्वभाव नही। आहाहा! तो पर का त्याग-ग्रहण किया और हम त्यागी हो गये, अरे! प्रभु! यह मिथ्या अभिमान है। आहाहा! भगवान अन्दर विराजते हैं। उसमें शक्ति तो ऐसी है कि राग का त्याग-ग्रहण भी उसमें नहीं। पर चीज़ का त्याग किया और हम त्यागी हो गये। समझ में आया? (यह बात कहाँ रही)?

अलिंगग्रहण में एक शक्ति (बोल) ऐसी है। समझ में आया? यति का यह बाह्य

त्यागग्रहण, यति का बाह्यत्याग पंच महाव्रतादि है न ? यति का बाह्य आचरण स्वरूप में है ही नहीं। बाह्य आचरण क्या ? पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण आदि। यति के बाह्य आचरण का जिसमें अभाव है, ऐसी वस्तु है। अलिंगग्रहण। समझ में आया ? यह सत्रहवाँ बोल है। बीस बोल हैं न ? अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं, इसमें यह सत्रहवाँ बोल है। सत्रह समझे ? एक और सात। बाद में अठारहवाँ बोल तो यह है, अर्थावबोधरूप गुणविशेष का जिसमें ग्रहण नहीं। आहाहा! गुणभेद भी जिसमें नहीं। आहाहा! यहाँ कहा कि विकल्प का त्याग करना। गुणभेद का त्याग करना, इसमें विकल्प का त्याग है। समझ में आया ? आहाहा!

कल दोपहर में कहा था न ? नहीं ? गुण परिणति जो परिणति उत्पन्न होती है, वह गुण में से नहीं होती। द्रव्य में से होती है। द्रव्यदृष्टि कराना है तो द्रव्य की परिणति होती है। गुण की परिणति तो ज्ञान की परिणति, दर्शन की परिणति भिन्न होती है ऐसा नहीं। द्रव्य परिणमता है तो गुण परिणमते हैं। समझ में आया ? यह चिद्विलास में है। चिद्विलास में। वस्तु में परिणमन शक्ति, कल बताया था। जहाँ आत्मा में गुणभेद भी ग्रहण करनेयोग्य नहीं (तब राग की बात ही कहाँ रही)। आहाहा! यह गुणी है और यह इसके गुण हैं, यह अर्थावबोधरूप गुणविशेष जिसमें है नहीं। अर्थात् जिसमें यह भेद है ही नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अभेदस्वरूप है परन्तु अभेदस्वरूप के विकल्प का पक्ष दुःखरूप है, आहाहा! यह शुभराग दया, दान और व्रत, वह तो स्थूलराग दुःखरूप है। परन्तु अपना आत्मा गुणी जो अनन्त गुणों का पिण्ड है। अरे! इसके अस्तित्व के मौजूदगी की प्रतीति, यह प्रतीति ज्ञान की पर्याय में मौजूद चीज़ है, वह ज्ञेयरूप हो तो प्रतीति होती है। जाने बिना प्रतीति किसकी ? आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि जब पर्याय में गुणभेद की प्रतीति भी छूट जाती है। आहाहा! तब आत्मा अकेला अखण्ड अभेद स्वरूप का अनुभव होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, अनुभूति और धर्म है। ऐसा मार्ग है। आवो मार्ग, हमारी गुजराती भाषा। ऐसा मार्ग है। समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, नय। नय शब्द पड़ा है न ? द्रव्य और पर्याय ऐसा अर्थ किया। राजमल

की टीका भी बहुत... पूरे शास्त्र में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, निश्चय और व्यवहार, नय के अर्थ यह दो लगा दिये। निश्चयनय के विषय का विकल्प और व्यवहारनय का विकल्प छुड़ाते ही हैं। परन्तु यहाँ तो द्रव्य का (विकल्प), द्रव्यार्थिकनय से शुद्ध अभेद, अखण्ड आदि, उनका पक्ष है। पक्षातिक्रान्त वस्तु है, यह पक्ष में वस्तु नहीं। समझ में आया? तब इसका ऐसा अर्थ नहीं कि अभेद और अखण्ड के विकल्प त्याग करें तो वह वस्तु कहीं दूसरी होगी, ऐसा नहीं। (कोई) ऐसा कहते हैं कि अभेद के विकल्प का त्याग कराते हैं, तो वस्तु कोई दूसरी होगी। भभूतमलजी! सूक्ष्म बात है। यह तुम्हारे पैसा के मुकाबले अलग सूक्ष्म बात है। आहाहा! रतनलालजी के लड़के को कुछ हुआ है। तबीयत खराब है। सुना था। रतनलालजी कलकत्ता... ओहोहो! पैसा वहाँ क्या करे? धूल। भभूतमल को भी अनुभव हुआ है। इसके लड़के को... यह भी गृहस्थ है और वो भी गृहस्थ है। गृहस्थ अर्थात् पैसेवाले की अपेक्षा से गृहस्थ, हों! गृहस्थ तो इसको कहते हैं, गृह अर्थात् वस्तु में स्थ—रहे, उसको गृहस्थ कहते हैं। यह लिया है, परमात्मपुराण में है। शास्त्र में सब शब्द हैं।

मुमुक्षु : शास्त्र की सब भाषा बदल जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, ऐसा हो जाता है। भाई! प्रियंकरजी! उसमें—अध्यात्मपंचसंग्रह में आया है। समझ में आया? इसमें उतारा है। यह है न? गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और योगी। यह चार को आत्मा में उतारा है। गृहस्थ किसको कहते हैं? गृह अर्थात् अपना स्वरूप, गृह अर्थात् अपना घर, इसमें स्थ रहनेवाला, इसको गृहस्थ कहते हैं। यह तुम्हारे बँगले में रहनेवाली बात नहीं है। समझ में आया? भभूतमलजी को जानते हो न? भाई! बैंगलोर में रहते हैं। आठ लाख दिया है। बारह लाख का मन्दिर बनाया है। आठ लाख इन्होंने दिया है और चार लाख जुगराजजी ने दिया है। जुगराजजी स्थानकवासी हैं, परन्तु यहाँ पर, यह श्वेताम्बर, परन्तु यहाँ का, दोनों ने बनाया दिगम्बर (मन्दिर)।

मुमुक्षु : कन्नड़ में आत्मधर्म प्रकाशित करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह प्रकाशित करते हैं, सुना है। कन्नड़ भाषा में। इनको यहाँ का बहुत प्रेम है। आहाहा! अरे! ऐसा काल, कब समय मिले? बापू! अरे! भवभ्रमण से

निकलने का यह समय है। यह भव, भवभ्रमण अभाव करने का समय है। समझ में आया? कैसे हो? यह बात तो चलती है। आहाहा!

कहते हैं, **द्रव्यपर्यायरूप विकल्पबुद्धि,...** आहाहा! अर्थात् निश्चयनय का पक्ष और व्यवहारनय का पक्ष, इसको यहाँ नय कहते हैं। इसको यहाँ नय कहते हैं। समझ में आया? ऐसे तो (ऐसा आता है कि) 'निश्चय नयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करें निर्वाण की।' वहाँ विकल्प नहीं। वहाँ निश्चयनयाश्रित मुनिवर—अभेद के आश्रय से मुनि मुक्ति प्राप्त करते हैं। परन्तु यहाँ नय है, यह विकल्पवाले नय लेना है। अभेद हूँ, एक हूँ, शुद्ध हूँ, यह विकल्पवाले नय यहाँ है। और जब २७२ में कहा कि 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करें निर्वाण की' वहाँ विकल्प नहीं लेना, वहाँ वस्तु विषय (लेना)। अभेद अखण्ड का आश्रय करने से मुक्ति होती है।

मुमुक्षु : निश्चय के विषयभूत वस्तु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु है, वस्तु ही ऐसी है। ११वीं गाथा में कहा न? भाई! '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' वहाँ नय और नय के विषय में भेद नहीं किया। सुनो! ११वीं गाथा जैनशासन का प्राण है! आहाहा! पर्यायमात्र असत्य है। गौण करके असत्य कही है। पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं है। पर्याय न हो तो वेदान्त हो जाता है। पर्यायमात्र अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ है। क्यों? कि पर्याय को गौण करके, व्यवहार कहकर, नहीं है—ऐसा कहा है। पर्याय का अभाव करके नहीं है—ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? वहाँ तो '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' ऐसा कहा। सत्यार्थ वस्तु है, यह ही शुद्धनय है। नहीं तो नय और नय का विषय, यह दो हैं। नय तो ज्ञान का विषय है और इसका विषय अभेद पूर्ण है। परन्तु यहाँ तो कहा कि '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' सत्यार्थ वस्तु त्रिकाल है, इसको ही हम शुद्धनय कहते हैं। विषयी और विषय का भेद भी वहाँ नहीं। समझ में आया? आहाहा! बाद में लिया। पर्यायमात्र असत्यार्थ है। गौण करके, व्यवहार करके असत्य कहा है। और त्रिकाल को मुख्य करके (सत्यार्थ कहा)। निश्चय करके, मुख्य करके निश्चय करके भूतार्थ को सत्यार्थ कहा। समझ में आया? वहाँ तो भूतार्थ को ही नय कहा। वस्तु यही शुद्धनय है। आहाहा!

निर्विकल्पनय निश्चय। इसका विषय त्रिकाली, ऐसा भेद नहीं करते भूतार्थ सत्यार्थ वस्तु त्रिकाली भगवान आत्मा अमृत का सागर पूर्ण, उसको ही हम शुद्धनय कहते हैं। ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा। बाद में तीसरे पद में लिया, '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' सत्यार्थ वस्तु है, त्रिकाली है, इसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? आहाहा! यह तो धर्म की पहली सीढ़ी। आता है न? मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी। अरे! मूल बात की खबर नहीं और ऊपरी बात करे बड़ी। व्रत और तप और... किसका तप और व्रत? बापू! आहाहा! यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, तेरी चीज़ जो अभेद शुद्ध एकरूप है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, उसके उग्र आश्रय से चारित्र होता है, उसके उग्र आश्रय से केवलज्ञान होता है। कोई व्यवहार से होता है, ऐसी बात कहीं नहीं।

यहाँ कहते हैं, जहाँ निश्चय के आश्रय मुक्ति कही... यहाँ तो निश्चय के पक्ष में रुक जाता है, मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ, ऐसे विकल्प की भूमिका में राग की भूमि में रुक जाता है, वह दुःखरूप है। वहाँ तो ऐसा कहा कि यहाँ तक तू आया इससे क्या? ऐसा पाठ है। समझ में आया? इससे क्या? यह श्लोक पहला ही है। यही पेज निकला। उससे क्या? क्या, उससे क्या? पेज निकलते, वही निकला। आहाहा! यह क्या कहा? आत्मा व्यवहार से बँधा है और निश्चय से अबद्ध है, ऐसा विकल्प हुआ, उससे क्या? ऐसा कहते हैं। तेथी शु को, तुम्हारे क्या कहते हैं? संस्कृत में है, हों! '**तत् किम**' संस्कृत है। क्या कहते हैं? आहाहा! प्रभु! तू अभेद और शुद्ध और एक और... वहाँ तक आया, विकल्प में इससे क्या? इससे तुझे क्या लाभ है? आहाहा! धन्नालालजी!

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया? अच्छा। सेठिया स्पष्ट कराते हैं। ऐसा कहा कि भगवान आत्मा पर्यायवन्त है, रागवाला है, ऐसे व्यवहार का तो निषेध ही करते आये हैं, परन्तु निश्चय में तो आत्मा अभेद है, एकरूप है, शुद्ध है। है तो, सही परन्तु इसका विकल्प करता है कि मैं ऐसा हूँ, ऐसा हूँ इससे तुझे क्या लाभ है? डालचन्दजी! ऐसी बात है, भाई! पैसा से लाभ नहीं, पाप से लाभ नहीं, पुण्य से लाभ नहीं, गुणभेद के विकल्प से भी लाभ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : लाभ है ही नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ नहीं, दु:ख है। लाभ है, दु:ख का। भगवान दु:खस्वरूप तो है नहीं। आहाहा! सुनने में भी विकल्प तो है, भाई! भगवान! कहने में भी विकल्प तो है। आहाहा! वाणी तो वाणी के कारण निकलती है। कहने में भी विकल्प तो है, परन्तु यह विकल्प से भगवान भिन्न है। इसका भान हुआ बाद में विकल्प आया तो भी उसका ज्ञाता-दृष्टा रहता है। उस समय आया था। नहीं ? ज्ञाता-दृष्टा आया था न ? अकर्ता में आया था। अकर्ताशक्ति आयी थी न ? धर्मीजीव राग का अकर्ता है। क्योंकि ज्ञायकस्वभाव के ऊपर की दृष्टि के कारण वह ज्ञाता-दृष्टा हुआ है। आहाहा! ज्ञानी को राग आता है, परन्तु राग सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने से उत्पन्न होता है, ऐसा ज्ञाता-दृष्टा है। यह क्या कहा ? राग आया तो राग का ज्ञान यहाँ उस समय हुआ, ऐसा भी नहीं। उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है। अपनी पर्याय में अपने कारण से स्व-परप्रकाशक पर्याय उत्पन्न होती है, इसमें राग जाना, ऐसा व्यवहार से कहते हैं। आहाहा! राग का कर्ता तो नहीं, परन्तु राग को जानता है, यह भी सद्भूत उपचारनय है। इसको छोड़कर अपनी पर्याय को जानना, वह भी एक भेद है। यह अपने आस्रव अधिकार में आ गया है। अपना आत्मा अपने को जानता है। यह भी भेद है। आहाहा! आत्मा आत्मा ज्ञायकरूप है, बस। आहाहा!

मुमुक्षु : इससे क्या, वह कौन सी गाथा है ?

उत्तर : गाथा-१४१। १४१ पूरी हुई बाद में १४२ शुरु करने में यह लिया। १४१ पूरी हुई। '**तत् किम**' अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, यहाँ तक आया उससे क्या ? पाटनीजी! आहाहा! बाद में १४२ गाथा शुरु करते हैं। समझे न ? और अपने यहाँ यह गाथा है। १४२ का यह श्लोक है। 'स एव मुक्त्वा नयपक्षपातं' यह १४२ का कलश है। १४२ पहले यह कहा। तुझे अशुभ तो छूट गया, दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम व्यवहार छूट गया। और यहाँ तक आया कि मैं अभेद हूँ, शुद्ध हूँ, एक हूँ, ऐसा विकल्प आया। इससे क्या ? भाई! तेरे आत्मा का इससे क्या लाभ हुआ ? आहाहा! ऐसी बात है। सहज यह पेज निकला, खोलते ही यह निकला। '**तत् किम**' संस्कृत है। आहाहा! यह क्या कहा ?

यहाँ यह चलता है न ? कि नय के पक्षपात से रहित है। पक्ष में आया कि मैं शुद्ध

हूँ, अबद्ध हूँ, एकरूप हूँ — ऐसे निश्चय के पक्ष में आया तो भी क्या हुआ ? वस्तु तो पक्षातिक्रान्त है। समझ में आया ? मक्खन चीज़ है यह तो। आहाहा ! भभूतमलजी ! बहुत परिचय करे, तब समझ में आये, ऐसा है। ऐसी बात है। पैसावाला है।

मुमुक्षु : परिचय करने का क्या उपाय है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्ति लेना। क्यों भाई !

मुमुक्षु : कब लेना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी लेना। मृत्यु आती है, तब कब लेना है, यह मरण कहता है कि अब मैं आता हूँ। मरण एक बार आता है कि दो बार ? पहले कहा जाता है कि मैं आता हूँ ? ऐसे यह समय इसे एक बार ही लेना है। और शास्त्र तो यहाँ तक कहते हैं, समझ में आया ? प्रवचनसार में अन्तिम श्लोक में (ऐसा कहा), आज ही कर, ऐसा पाठ है। दो श्लोक हैं। प्रवचनसार में अन्तिम श्लोक है। अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं), आज ही कर। वायदा वाफळ करता है। वाफळ अर्थात् अज्ञानी वायदा करता है अभी नहीं... अभी नहीं... अभी नहीं... अभी नहीं... अभी लड़के का लग्न करना है, लड़की को बुलाना है, व्यापार की व्यवस्था सही करना है इसलिए अभी नहीं, अभी नहीं तो अभी कब आयेगा ? बात नहीं सुनी ?

बनिया के यहाँ भोजन था। भोजन था तो इसने लिखा, आज बनिया खायेगा, कल सबको खिलायेंगे (बारोट)। (दूसरे दिन) बारोट आया। (इसने कहा), यह क्या लिखा है ? बारोट कल होगा। दूसरे दिन आया, यह क्या लिखा है ? तेरा कल कभी आयेगा नहीं बारोट कभी जीमेगा नहीं। भाई ! ऐसे अभी नहीं... अभी नहीं... अभी नहीं... कभी आयेगा नहीं और कार्य इसका कभी होगा नहीं। आहाहा ! यहाँ कहते हैं...

मुमुक्षु : बहुत मुश्किल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुश्किल धूल में। मरे तब मुश्किल पड़ेगी। कितनेक व्यापारी बनिया ऐसा भी कहते हैं, व्यापारी... वणिया अर्थात् बनिया ही ऐसा कुछ नहीं। खोजा हो, मुसलमान व्यापारी ऐसा कहता है, अभी तो मरने की भी फुरसत नहीं है। ऐसा कहते हैं

न, भाई। मरने की फुरसत नहीं। अरे! मरने के समय पैर पड़े रहेंगे वहाँ। फुरसत नहीं क्या। मरने की फुरसत नहीं — ऐसा कहते हैं। आहाहा! पागलों के कहीं अलग गाँव होते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! आहाहा! तुझे घर में जाना हो तो अबद्धस्पृष्ट का पक्ष छोड़ना पड़ेगा, भाई! आहाहा! व्यवहार तो ठीक, छोड़ना पड़ेगा, निमित्त तो छोड़ना ही नहीं, यह निमित्त तो पर में रह गया, यह विकल्प जो है मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, मन के साथ जो सम्बन्ध किया, असंग का मन के साथ संग कर विकल्प उठाये, वह भी तुझे छोड़ने पड़ेंगे। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानचन्दजी!

नय **द्रव्यपर्यायरूप विकल्पबुद्धि,...** दोनों की विकल्प बुद्धि। निश्चय की विकल्प बुद्धि और पर्याय की विकल्प बुद्धि, ऐसा लेना। **उसके एक पक्षरूप अंगीकार,...** दो में से एक पक्ष को अंगीकार करके। चाहे तो व्यवहार का, चाहे तो निश्चय का। आहाहा! उसको छोड़कर, आहाहा! भाई यह तो। विकल्प जो वृत्ति उठती है, वह दुःखरूप है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव तो दुःखरूप है ही, परन्तु अपना आत्मा अबद्ध और स्पृष्ट और प्रत्यक्ष होनेयोग्य है,... है तो ऐसा, यह तो अपने आ गया। प्रकाशशक्ति, ४७वीं शक्ति में बारहवीं शक्ति। प्रकाशशक्ति। प्रकाशशक्ति का अर्थ यह है कि अपना स्वरूप स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष होता है, यह प्रकाशशक्ति का कार्य है। प्रत्यक्ष हो जाता है। मति-श्रुतज्ञान में भी आत्मा प्रत्यक्ष हो जाता है, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? परोक्ष रहे, ऐसा इसका स्वभाव नहीं। स्वभाव की खबर नहीं इसलिए परोक्ष रहा है। आहाहा! समझ में आया?

जहाँ स्वभाव प्रकाशशक्ति नाम का गुण है तो प्रकाशरूप स्वसंवेदनरूप हो जाता है। अपनी पर्याय में प्रत्यक्ष मति-श्रुतज्ञान द्वारा स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष वेदन होता है, यह इसका स्वभाव है। आहाहा! यह इसका गुण है। द्रव्य में—आत्मद्रव्य में यह गुण है, यह शक्ति है। आहाहा! इसमें भी अन्तिम में आया है। भात अभात, एक कहता है कि प्रत्यक्ष होनेयोग्य है, यह कहता है कि प्रत्यक्ष होनेयोग्य नहीं है। प्रत्यक्ष होने योग्य नहीं, यह व्यवहार का पक्ष है। प्रत्यक्ष होनेयोग्य है, यह निश्चय का पक्ष है। अन्तिम बोल है न?

बीसवाँ बोल। इसमें अन्तिम है। भावार्थ में है। भात-अभात, भात अर्थात् प्रत्यक्ष होनेयोग्य है, अभात अर्थात् प्रत्यक्ष होनेयोग्य नहीं। होनेयोग्य नहीं, यह व्यवहार का पक्ष छुड़ाया, परन्तु प्रत्यक्ष होनेयोग्य है, ऐसा निश्चय का विकल्प यहाँ छुड़ाते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है। सुनने नहीं मिले तो प्रयोग कब करे, अरे रे! और यह सब (पुकार करते हैं), व्यवहार से होता है... व्यवहार से होता है। व्यवहार कैसा होता है, यह भी अब तुझे समझने जैसा है। बापू! आहाहा! साधु के लिये चौका लगाकर भोजन बनाये, यह अखबार में आता है कि चौका लगाने आओ। अर र र! यह कैसा मार्ग है? भाई!

मुमुक्षु : इसकी कमेटी बनी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमेटी बनी है। पता है न। पैसा इकट्ठा होता है। अरे! प्रभु! एक व्यक्ति के लिये बात नहीं है, हों! परन्तु वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! मुनिराज को ख्याल आ जाता है कि पानी की बिन्दु आयी कहाँ से? दो मनुष्य हैं, घर में पति-पत्नी दो हैं और पानी दस सेर है। ऐसा कैसे? बिल्कुल नहीं ले। प्राण जाए तो भी न ले। आहाहा! समझ में आया? पानी... पानी। गर्म करते हैं? घर में मनुष्य दो हों और पानी आधा मण बनाया, बीस सेर। वह पानी कहाँ से आया?

हमारे भी ऐसा हुआ था। हम तो पहले ऐसा पालते थे। पन्द्रह वर्ष पाला। भिक्षा के लिये जाते थे, पानी देखकर कि इतना अधिक पानी क्यों? तो कहे महाराज! हमने स्नान करने के लिये बनाया था। तो दस सेर क्यों बढ़ा? स्नान करने के बाद इतना न बढ़े। हम नहीं लेते थे। उस समय यह बहुत मानते थे न। समझ में आया? कितने दिन तो पानी बिना निकाले हैं। मट्ठा, मट्ठा समझे? छाछ। काठी लोग, गरासिया होते हैं, वहाँ जायें तो वह लोग बेचारे बहुत खुश होते थे। ओहोहो! महाराज! वहाँ छाछ रखी हो। अध मण। दरबार! गरासिया में हम गये हैं, काठी में (गये हैं)। पलियाद में काठी बहुत थे। काठी में जायें और स्त्रियाँ बेचारी खड़ी होकर कहें, महाराज! पधारो... पधारो... पधारो हमारे घर महाराज। छाछ दस सेर, पाँच सेर जितनी चाहिए उतनी मिले। निर्दोष पानी बिना चलाते। यहाँ तो इनके लिये चौका बनाकर लेते हैं। भगवान! यह तो मार्ग है? भाई! व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। यहाँ तो व्यवहार पर्याय का भी पक्ष करे तो भी छुड़ाते हैं तो यह बात आ गयी। आहाहा!

कैसे हैं वे जीव ? 'विकल्पजालच्युतशांतचित्ताः' [विकल्पजाल] एक सत्त्व का अनेकरूप विचार,... यह क्या कहते हैं ? एक सत्त्व अर्थात् भगवान आत्मा। एकरूप वस्तु है, इसमें अनेक विचार। मैं व्यवहार से ऐसा हूँ, निश्चय से ऐसा हूँ, यह अनेक विचार। वस्तु अन्दर एकरूप सत्त्व है, भगवान ! समझ में आया ? ऐसी बात है। आहाहा ! एक सत्त्व। सत्त्व अर्थात् वस्तु। वस्तु एक है, अभेद है, निश्चय है। इसमें अनेकरूप विचार उठाना कि पर्याय है, द्रव्य है, अभेद है, भेद है। मैं व्यवहार से बँधा हूँ, निश्चय से मैं अबद्ध हूँ ऐसे एकरूप सत्त्व में अनेक विचार उठाना, विकल्प उठाना। ऐसा मार्ग है। आहाहा ! बाद में बेचारे विरोध करते हैं। हमारे ज्ञानचन्दजी और पाटनीजी ऐसा कहते थे, लोग अब सुनना चाहते हैं। दोनों लोग ऐसा कहते थे। लोग सुनना चाहते हैं। ज्ञानचन्दजी जबलपुर गये थे न ? दस-दस हजार मनुष्य। वहाँ दो बड़े पण्डित थे। लालबहादुर और सुमेरचन्द इसमें दो सौ आदमी, ढाई सौ आदमी। बाबूभाई जहाँ जाये वहाँ पाँच-पाँच हजार आदमी, दस-दस हजार आयें। यह तो ऐसा कि अब लोग सुनना चाहते हैं, बात इतनी है। लोगों को ऐसा लगता है कि सत्य क्या है ? ४३-४३ वर्ष से एकधारा बात चलती है। आहाहा ! पहले ही देखें या अभी देखते हैं, सबमें एक ही बात है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, **अनेकरूप विचार, उससे रहित हुआ है,...** वह विकल्प से रहित होते क्या होता है ? यह विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण कृष्ण ३, बुधवार, दिनांक ३१-०८-१९७७
कलश-६९-७०, प्रवचन-८२

६९ कलश है। कलश टीका, कर्ता-कर्म अधिकार। यहाँ आया है। **कैसे हैं वे जीव ?** थोड़ा फिर से लेते हैं। **जो कोई जीव निरन्तर शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु में तन्मय हुए हैं...** आहाहा! आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप आत्मा में जो कोई जीव तन्मय हुआ है। स्वरूप सन्मुख होकर, स्वरूप में तन्मय—उस मय (हुआ है)। जो आनन्दस्वरूप है तो अन्दर आनन्दमय पर्याय में तन्मय हुआ है। इसमें '**निवसन्ति**' तिष्ठता है। आहाहा! निज घर में रहता है। बाहर गया जैसे व्यभिचार में जाता है, ऐसे आत्मा का घर छोड़कर पुण्य-पाप के विकल्प में जाता है, वह व्यभिचार है, उसको छोड़कर निजघर में जाते हैं। '**निवसन्ति**' आहाहा! चैतन्यघन आनन्दकन्द ध्रुव एक समय की पर्याय से भी पार, इस चीज में पर्याय तन्मय करते हैं। वह अपने में बसते हैं। आहाहा!

वे ही जीव अतीन्द्रिय सुख का आस्वाद करते हैं। आहाहा! यहाँ तो सार में सार बात है। अतीन्द्रिय भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की ओर के झुकाव से अपना अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता है। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण है। स्वरूपाचरण—अपने स्वरूप का आचरण है। दया, दान, व्रतादि का विकल्प, वह स्वरूप आचरण नहीं। वह विभाव आचरण है। आहाहा! स्वरूप ज्ञान और आनन्द है, इसका आचरण। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित आचरण होता है, वह मोक्ष का मार्ग है। ऐसा मार्ग है। है ?

क्या करके ? निवास करता है, स्वाद लेता है। '**नयपक्षपातं मुक्त्वा**' - **द्रव्यपर्यायरूप विकल्पबुद्धि,...** आहाहा! अन्तिम बात है अन्तिम। द्रव्यार्थिकनय का विषय जो शुद्ध चैतन्य अखण्ड अभेद है, उसका विकल्प, यह द्रव्यार्थिकनय का पक्षपात है।

मुमुक्षु : उसका विकल्प ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प। समझ में आया? यह द्रव्य लिया।

अब पर्याय। एक समय की पर्याय अथवा राग बुद्धि, वह भी विकल्प है, व्यवहारनय का विकल्प है। पहले द्रव्यार्थिक द्रव्य का विकल्प था। मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, अभेद हूँ, यहाँ तक आया तो भी विकल्प का पक्ष है। कल कहा था, पण्डितजी! '**तत किम**' '**तत किम**' आहाहा! इससे क्या? भाई! आहाहा! यहाँ तक आया और अखण्ड, अभेद, शुद्ध हूँ — ऐसा विकल्प का, द्रव्यार्थिकनय का पक्ष आया तो इससे क्या लाभ हुआ? आहाहा! इस विकल्प में तो दुःख का लाभ है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, इसके निर्धार में निर्णय में भी ठिकाना नहीं, यह अन्तर में अनुभव किस प्रकार करेगा? समझ में आया? और इसके अनुभव के बिना धर्म नहीं।

आता है न? 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का', कल तो एक लड़का बोलता था। वजुभाई की लड़की का लड़का। अपना वजुभाई बांकानेरवाला, उनकी लड़की का लड़का छोटा। दो वर्ष का या ढाई वर्ष का होगा। वह बोलता था। 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप', बालक आया है या नहीं? नहीं आया होगा। वजुभाई बांकानेरवाला। गया? लड़की का लड़का है। चंचल है और बोलता ऐसा है... आदमी जैसा धीरा हो, इस प्रकार बोलता है। कल बोला था। 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप', दो वर्ष का होगा। 'अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्ष स्वरूप' वाह, भाई! आहाहा!

द्रव्य पक्ष का विकल्प; पर्याय पक्ष के विकल्प को तो छोड़ते आये हैं। पहले से छोड़ता आया है। व्यवहार अभूतार्थ है। परन्तु यहाँ तो भूतार्थ जो वस्तु त्रिकाली है, इसका भी विकल्प का पक्ष (छुड़ाया है)। वह विकल्प दुःखरूप है। आगे कहेंगे। इसका पक्ष छोड़कर। आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद ले, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-धर्म की पहली सीढ़ी है। 'मोक्षमहल की पहली सीढ़ी' छहढाला में आता है। प्रथम सीढ़ी। आहाहा! इस चीज़ की तो खबर नहीं और व्रत और तप और नियम और यह ले और वह। आहाहा! यह सब क्लेश है। निर्जरा अधिकार में कहते हैं, क्लेश करो तो करो। आता है न? आहाहा! निर्जरा अधिकार में है। यह व्रत और तप और भक्ति और पूजा और...

वह भाव क्लेश हैं, राग हैं, दु:ख है। क्लेश करो तो करो, परन्तु अपने ज्ञान के आनन्द के बिना तुझे धर्म नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? अपनी श्रद्धा में पहले निर्णय तो कर। आहाहा! समझ में आया? बाद में अनुभव (होगा)।

ऐसी चीज़ है, इसका अनु—अनुसरण करके भवना-होना। निमित्त के अनुसार होना, वह तो विकार है। आहाहा! भगवान आत्मा के अनुसार के अनु—भव होना, वह आनन्द के आस्वाद का कारण है। आहाहा! 'शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धता में केलि करे, शुद्धता में मग्न रहे, अमृत धारा वर्षे' आहाहा! शुद्धता का विचार और ध्यान। पूर्णानन्द का विचार और ध्यान। शुद्धता का विचार, ध्यान 'शुद्धता में केलि करे' अपने शुद्ध स्वभाव में रमण करे। अन्दर में आनन्द की रमत करे। आहाहा! और 'शुद्धता में मगन रहे' यह शुद्ध चैतन्यघन में लीन रहे। 'अमृत धारा वर्षे' अमृत की धारा, पर्याय में अमृत का वेदन आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। भव का अभाव करने की चीज़ तो यह है। समझ में आया? लोगों को एकान्त लगे। निश्चयाभाष लगे पर बात तो यह है। मानो, न मानो, परन्तु प्रभु का मार्ग तो यह है। प्रभु तू, हों! आहाहा!

कैसा है वो जीव? **'विकल्पजालच्युतशांतचित्ताः' एक सत्त्व का अनेकरूप विचार,...** क्या कहते हैं? वस्तु तो एकरूप सत्त्व सत्ता है। आनन्द और चैतन्य की सत्ता एकरूप वस्तु है। **उससे रहित हुआ है,...** अनेकरूप विचार। द्रव्य, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय और ध्रुव। आहाहा! एकरूप वस्तु में भी तीन प्रकार का विचार (करना)। यह द्रव्य और यह गुण है और यह पर्याय है। यह उत्पाद, व्यय पर्याय है और ध्रुव गुण है। ऐसा विकल्प जो उठाना, वह क्लेश और दु:ख है। आहाहा! अपनी आत्मा में द्रव्य, गुण, पर्याय का भेद विचारना, इससे भी प्राप्ति नहीं। यह तो व्यवहार की क्रिया करते-करते प्राप्त होगा, (ऐसा मानते हैं)। समझ में आया? बहुत अन्तर है।

यहाँ तो एक सत्त्व वस्तु है, इनमें अनेक रूपा। **उससे रहित हुआ है, निर्विकल्प समाधान मन जिनका,... 'शान्तचित्ताः' 'शान्तचित्ताः'** की व्याख्या की। शान्त... शान्त। निर्विकल्प समाधानरूप मन। उसमें विकल्प छूट गया। इतना मन का संग छूट गया, मन का संग छूट गया और असंग तत्त्व का संग हुआ। आहाहा! समझ में आया? मन का

विकल्प जो द्रव्य मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ — ऐसा मन के साथ विकल्प था, वह छोड़कर असंग भगवान आत्मा का संग हुआ। विकल्प का संग था, इसको छोड़कर निर्विकल्प भगवान का संग हुआ। आहाहा! इसमें लीन होना, वह तो अपना संग है। समझ में आया? निर्विकल्प '**शान्तचित्ताः**'।

इस प्रकार है - जो एक सत्त्वरूप वस्तु है... भगवान तो एकरूप सत्ता है। आनन्द और शान्तरूप एकरूप है, अनेकरूप नहीं। गुण अनेक हैं, फिर भी वस्तु तो एकरूप है। समझ में आया? शक्ति भले अनन्त हों, परन्तु वस्तु तो एकरूप है। गुण की संख्या अनन्त कहलाती है। द्रव्य तो एक है, शक्ति अनन्त हैं। परन्तु अनन्त शक्ति का रूप द्रव्य एक है। एक सत्त्वरूप है। एक मालरूप, एक कसरूप। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, उसमें **द्रव्य-गुण-पर्यायरूप...** विचार। आहाहा! गजब बात है। दया, दान और व्रत और भक्ति तो कहाँ रह गयी। यह तो बन्ध के कारण हैं, परन्तु एकरूप वस्तु में द्रव्य, गुण और पर्याय के (विचार)। 'नियमसार' में आता है, एकरूप में द्रव्य, गुण, पर्याय का विचार आना, वह भी परवशता है। चन्दुभाई! क्या कहा?

एकरूप वस्तु चिदानन्द भगवान, उसमें द्रव्य, गुण, पर्याय का विकल्प आना, यह परवशता है, यह आवश्यक नहीं। आवश्यक अधिकार में (आता है)। समझ में आया? यह आवश्यक कहते हैं न? सामायिक में यह आवश्यक। कहते हैं कि द्रव्य, गुण, पर्याय का विचार आवश्यक नहीं। वह तो पराधीन है। आहाहा! समझ में आया? आवश्यक तो अवश्य स्वरूप भगवान एक सत्त्व का निर्विकल्परूप से अनुभव करना, यह आवश्यक है। अवश्य करनेयोग्य हो तो यह है। आहाहा! समझ में आया? एक में तीन रूप विचार करना, सत्त्व एक, विचार तीन लेना दुःखरूप है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात है, भाई!

अभी तो बाहर का शुभयोग वो मोक्षमार्ग, (ऐसा) मक्खनलालजी ने लिखा है न? शुभयोग मोक्षमार्ग है। तब कैलाशचन्दजी कहते हैं, शुभयोग हेय है, वे भाई कहते हैं, शुभयोग हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। अरे! विवाद कहाँ प्रभु! शुभयोग का हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। कैलाशचन्दजी कहते हैं, शुभयोग को कुन्दकुन्दाचार्य हेय मानते हैं, तो यह मिथ्यादृष्टि हुए? यह चर्चा हमारी चलती है, सोनगढ़ के कारण। आहाहा! नहीं तो सब ऐसा

का ऐसा पढ़ा हुआ था। आहाहा! चैलेंज देते हैं। मक्खनलालजी ने यह कैलाशचन्दजी को चैलेंज दिया है। शुभभाव मोक्ष का मार्ग है, ऐसा हम चैलेंज देते हैं। आओ चर्चा करें। अरे! भगवान!

मुमुक्षु : इनने लिखा है, सोनगढ़वाले तो पढ़े-लिखे नहीं, इसलिए चर्चा नहीं करते, तुम तो पढ़े-लिखे हो, करो चर्चा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ व्याख्यान करते हैं... ऐसा कि संस्कृत और व्याकरण तो कुछ पढ़े नहीं। आत्मा की बातें करते हैं, लो। भाई! यहाँ संस्कृत-व्याकरण का क्या काम है। आहाहा! तिर्यंच समकित प्राप्त करते हैं। वे तो भाषा भी नहीं जानते। नौ तत्त्व के नाम भी नहीं जानते। इसके साथ क्या सम्बन्ध है?

भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, यह आनन्द तरफ ढलना, वह पण्डित है। बाकी पंडया... पंडया... पंडया... फोतरा खंडया, फोतरा समझे? मोक्षमार्गप्रकाश पहले भाग में आता है। यह शब्द आता है। पंडया.. पंडया... पंडया, फोतरा-तुष, छिलका, तूने छिलका कूटा, भाई! अनन्त आनन्द के नाथ को तूने स्पर्श नहीं किया, तूने उससे भेंट नहीं की और राग की भेंट में प्रभु! तूने सुख माना। वह छिलका कूटा। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! अन्दर घर की चीज़ जै। भजन में नहीं आता? 'अब हम कबहुँ न निज घर आये, पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये' हम व्रतधारी, हम पुण्य को करनेवाले, हम दया पालनेवाले— ऐसे पुद्गल के साथ अनेक नाम धारण किये। 'अब हम कबहुँ न निज घर आये, पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये।' आहाहा!

गृहस्थ मनुष्य करोड़पति हो, इसका लड़का व्यभिचार में चढ़ गया हो। कोई बाघरण के बावन हो, उसे घर से पैसा ला लाकर दे। तिजोरी (पिटारा) में से पैसा लाकर दे। पिताजी को पता पड़ा कि यह बालक तो व्यभिचार में चढ़ गया है। तो इससे कहे, बेटा! घर में खानदानी लड़की है। तेरी बहू। खानदानी लड़की पर के ऊपर नजर न करे, ऐसी खानदानी। अरे! इसको छोड़कर तू यह वावण, वावण में... वावण समझे भाई कोरण के साथ व्यभिचार करता है, भाई! यह घर में नहीं खपे। यह घर में नहीं रह सकता। ऐसे तीन लोक के नाथ धर्मपिता पुकार करते हैं, प्रभु! तेरे आनन्दकन्द के घर को छोड़कर खानदानी

लड़की है, उसे छोड़ तू यह व्यभिचार में कहाँ चला गया है ? भाई ! आहाहा ! भगवान खानदान—आनन्दकन्द प्रभु का घर छोड़कर तू पुण्य-पाप के व्यभिचार में कैसे चला गया। तेरा घर सहन नहीं करेगा। धर्मपिता पुकार करते हैं। आहाहा ! वह यहाँ कहते हैं, देखो !

भगवान ! तू एकरूप में द्रव्य, गुण, पर्याय... आहाहा ! और उत्पाद, व्यय और ध्रुव का **विचार करने पर विकल्प होता है,...** आहाहा ! यहाँ तक तो इसका ठिकाना ही नहीं है और व्रत, तप (करके मानता है) कि हम मोक्षमार्ग में हैं, भाई ! इसका फल आयेगा, तब तू दुःखी होगा, भाई ! वर्तमान दुःख का ख्याल नहीं आता। परन्तु यह पुण्य और पाप का फल स्वर्ग और नरक दुःख है। चारों गति पराधीन हैं। पंचास्तिकाय पहली गाथा। स्वर्ग की गति पराधीन है, प्रभु ! वह दुःखरूप है। आहाहा ! आनन्द के नाथ को भूलकर पर में सुख मानकर व्यभिचारी हो गया है, नाथ ! आहाहा ! व्यभिचार का अर्थ संयोग और परस्त्री आदि का संयोग, वह व्यभिचार। ऐसे विभाव के साथ संयोग करना, वह व्यभिचार है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो एकरूप वस्तु में तीन प्रकार का विचार करना, वह व्यभिचार है। गजब बात है। एक को तीनरूप विचारना। द्रव्य, गुण, पर्याय और उत्पाद, व्यय, ध्रुव। आहाहा ! प्रभु ! यह विकल्प है। है ? **विचार करने पर विकल्प होता है,...** आहाहा ! मक्खन बात है। सम्यग्दर्शन इससे नहीं होता। आहाहा ! इससे तो विकल्प होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! एक वस्तु को तीन प्रकार विचारने से तुझे विकल्प होता है। राग होता है, यह कहते हैं, **उस विकल्प के होने पर मन आकुल होता है,...** आहाहा ! **आकुल होता है, आकुलता दुःख है,...** आहाहा ! ऐसी बात है, प्रभु !

मुमुक्षु : द्रव्य, गुण, पर्याय का विचार न करें।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आता है तो दुःख है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : तो पहले क्या करें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य के स्वभाव की दृष्टि करना। एकरूप सत्त्व का अनुभव करना। तीन प्रकार से विचार करने में भी विकल्प आकुलता है। आहाहा ! ऐसा इसमें है

न ? यह तो दो सौ वर्ष पहले की राजमल की टीका है। मूल श्लोक तो अमृतचन्द्राचार्य का हजार वर्ष पहले का है। यह अभिप्राय तो अनन्त काल का है, अभिप्राय अनन्त काल का शास्त्र हजार साल का अर्थ दो सौ वर्ष पहले का है। आहाहा!

मुमुक्षु : अभिप्राय अनादि का है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि का है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पन्थ' तीन काल काल में परमारथ का पन्थ तो एक है।

एक स्वरूप सत्य... आहाहा! गजब बात है। यहाँ तो अभी दया पालना और व्रत करना और भक्ति और पूजा... वह धर्म हैं और धर्म के कारण हैं (ऐसा अज्ञानी मानता है)। दु:ख है और धर्म का कारण है। यहाँ तो कहते हैं, एकरूप सत्त्व में तीन प्रकार का विचार करना वह विकल्प है, आकुलता है, दु:ख है, दु:ख यह आत्मा में आनन्द का कारण किस प्रकार हो ? आहाहा! समझ में आया ? आखिरी बात खोली है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत चल गया, समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से, आहाहा! शब्द लिया न ? देखो **एक सत्त्वरूप वस्तु...** ऐसे लिया न ? वस्तु है वो एकरूप सत्ता है। इसमें कोई भेद है नहीं। आहाहा! एकरूप सत्त्व वस्तु जीव भगवान आत्मा, सामान्य एकरूप अभेद सदृश ध्रुव, ऐसे एकरूप सत्त्व में तीन प्रकार का विचार करना। आहाहा! गजब बात है! इससे विकल्प होता है। आहाहा! **विकल्प के होने पर मन आकुल होता है, आकुलता दु:ख (रूप) है,...** है ? एक सत्त्व को तीन प्रकार विचार करना, वह दु:खरूप है। आहाहा! पण्डितजी! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : आप ऐसा अमृत पिलाते हो कि सारा दु:ख निकल जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग तो ऐसा है, भगवान! आहाहा! अब इसमें वादविवाद और झगड़ा करना। 'सदगुरु कहें सहज का धन्धा, वाद विवाद करै सो अन्धा' इस वाद विवाद में क्या समझना। शास्त्र में भिन्न साध्य साधन कहा हो तो वह पकड़ता है। यहाँ विकल्प को दु:खरूप कहा है। एक को तीन रूप विचार करना, यह भेद है, राग है, आकुलता है और दु:ख है। आहाहा!

मुमुक्षु : वहाँ ऐसा नहीं लिखना कि भिन्न साध्य साधन हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ निमित्त का ज्ञान कराया है। अपने स्वरूप का साधन निर्विकल्पता से किया तब उस समय राग की मन्दता निमित्तरूप कैसी है, इसका ज्ञान कराके साधन का आरोप किया है। साधन है नहीं। आहाहा! समझ में आया? सभी न्याय यह पंचास्तिकाय के देते हैं। भिन्न साध्य-साधन कहा है। १७२ (गाथा)। आहाहा! भाई! तेरे हित की बात है।

यहाँ तो परमात्मा सन्त ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतरागी मुनि सिद्धों के साथ बातें करनेवाले। आहाहा! जंगल में (रहकर ऐसा कहते हैं)। प्रभु! तुम सिद्ध हो तो हम भी सिद्ध हैं। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आता है? 'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो, मोह महातम आतम अंग कियो पर संग महातम घेरो' परन्तु पर के मोह को लेकर महातम-अन्धकार खड़ा किया। 'ज्ञान कला उपजी अब मोहे, ज्ञान कला उपजी अब मोहे, कहुं गुण नाटक आगम केरो, तासु प्रसाद सधे शिव मारग, वेग मिटे घट बास बसेरो।' यह चमड़ी, माँस और हड्डी... आहाहा! गधे के सड़े चमड़े मे मैसूर रखना। मैसूर समझते हो? एक सेर आटे में चार सेर घी डालकर चने के आटे में, इसको मैसूर कहते हैं और एक सेर गेहूँ के आटे में चार सेर घी डालकर बनायें, उसे शक्करपारा कहते हैं। हमने सब देखा है और खाया भी है। अब तो बीस वर्ष से बन्द है। पहले की बात है। अब तो चार फुलका रोटी। आहाहा!

कहते हैं, मैसूर छोड़कर आत्मा के दुःख क्लेश को (भोगते हैं)। आत्मा मैसूर समान शक्करपारा है। शक्कर की मिठास का पिण्ड... कहा था न? शक्करकन्द। शक्करकन्द है, उसकी छाल मत देखो तो शक्कर, शक्कर अर्थात् शकर का पिण्ड है। इससे उसको शक्करकन्द कहते हैं। अपने शक्करिया कहते हैं। लाल छाल की नजर छोड़ दे तो अन्दर में शक्करकन्द-सकर की मिठास का पिण्ड है। ऐसे पुण्य और पाप का विकल्प, यह तीन गुण और यह उत्पाद, व्यय और ध्रुव ऐसे विकल्प छोड़ दे तो अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञान कला किसको कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान कला, अपने स्वरूप का अनुभव होना, वह ज्ञान कला है।

मुमुक्षु : कला अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कला पर्याय है। केवलज्ञान पूर्ण कला है। यह अल्प कला है। केवलज्ञान को कला कहा है। केवलज्ञान के साथ मति-श्रुतज्ञान की कला खेल करती है, क्रीड़ा करती है। आहाहा! मति-श्रुतज्ञान जो अन्दर सम्यग्ज्ञान हुआ, वह केवलज्ञान कला के साथ खेल करता है और यह मति श्रुतज्ञान की कला केवलज्ञान की कला को बुलाती है। आओ... आओ... आओ... अल्पकाल में मेरे पास आओ। धवल में है, धवल में है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : जल्दी बुलाने से जल्दी आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जल्दी आता है। थोड़े दिन हैं, थोड़ा समय है। केवलज्ञान प्राप्त करने का समय थोड़ा है। एक-दो भव, चार भव आदि। केवलज्ञान लेने की तैयारी है। आहाहा! दूज उगी है (पूर्णिमा होने में) तेरह दिन का अन्तर है कि महीना-महीना का, वर्ष का अन्तर है ? दूज से पूर्णिमा तक का अन्तर तेरह दिन का है। वास्तव में तो बारह दिन हैं, तेरहवें दिन तो केवलज्ञान (पूर्ण) है।

यह यहाँ कहते हैं, अपना द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों का विकल्प छोड़कर अपने आत्मा का अनुभव करना, यह दूज उगी, सम्यक्रूप दूज उगी। आहाहा! और मति-श्रुतज्ञान की कला जगी, यह कला केवलज्ञान को बुलाती है, अल्प काल में केवलज्ञान आओ। आहाहा!

मुमुक्षु : आज जमी गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेवश्री : जमी... आहाहा! समकिती... कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहते हैं, दूज उगी, सम्यग्ज्ञान हुआ, परन्तु वह केवलज्ञान की अपेक्षा अपने को पामर मानता है। पर्याय में, हों! द्रव्य तो प्रभु है ही। आहाहा! यह पामर पर्याय पूर्ण प्रभु पर्याय को पुकार करती है कि भाई! आओ... आओ... मुझे यहाँ से निकलना है। मार्ग पूछते हैं न ? मार्ग। मुझे यहाँ

से सिद्धपुर जाना है तो इस बाढ़ में से जाना है कि खेत में से जाना है ? सिद्धपुर, हों!

मुमुक्षु : सिद्धपुर आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है ? सिद्धपुर जाने का रास्ता इस ओर थोर की बाढ़ है, इसके बीच से जाता है या खेत में से मार्ग निकलता है ? ऐसे मति और श्रुतज्ञान पुकार करते हैं, केवलज्ञान का रास्ता अल्पकाल में मेरे पास आवे। आहाहा! यह अपने समयसार में आता है, मति-श्रुत केवलज्ञान की कला के साथ कला करता है, खेल करता है। आता है सब शास्त्रों में भरा है। समयसार में आता है।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरी चीज तो अन्दर एकरूप सत्त्व पूरा पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान अतीन्द्रिय श्रद्धा, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता की एकरूप तेरी वस्तु है। अनन्त, ऐसा भेद भी लक्ष्य में लेने जैसा नहीं। आहाहा! अभेद अखण्ड आनन्द प्रभु के आश्रय सिवाय तीन प्रकार का विचार करना वह तो विकल्प है। है ?

विकल्प के होने पर मन आकुल होता है,... मन में आकुलता होती है। आहाहा! गजब बात है, भाई! अपने एकरूप घर में तीनरूप का विचार करना, प्रभु! तुझे दुःख होगा। यह दुःख, वह स्वरूप का साधन नहीं। आहाहा! व्रत, तप, भक्ति और पूजा, प्रभु! साधन नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कष्ट सहन करे बिना साध्य की सिद्धि (होगी) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कष्ट तो दुःख है, भगवान! कष्ट तो क्लेश है, आर्तध्यान है, कष्ट तो आर्तध्यान है। आर्तध्यान से आत्मा का ध्यान होगा ? आहाहा!

मुमुक्षु : कष्ट सहन किये बिना साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : कष्ट अर्थात् अन्दर आनन्द में पुरुषार्थ की एकाग्रता होना। इसको एक अपेक्षा से कष्ट कहा है। यहाँ तो सुख शीतल, सुखशिलिया में जो आत्मज्ञान हुआ, परीषह सहन करने की ताकत प्रगट न की तो परीषह आयेंगे तो तू च्युत हो जाएगा। तो कष्ट करो। कष्ट अर्थात् परीषह सहन करने की ताकत प्रगट करो। ऐसा आया है। समाधिशतक,

समझ में आया ? समाधिशतक, पूज्यपादस्वामी। यहाँ तो दिगम्बर शास्त्रों के भण्डार भरे हैं। आहाहा! अरे! यह मार्ग की बात कहीं नहीं। ऐसी बात बाहर आयी तो लोग भ्रमा गये। अरे! यह तो एकान्त है, एकान्त है। प्रभु! एकान्त ही है। सम्यग्दर्शन अपने द्रव्य के आश्रय एकान्त प्रगट होता है। श्रीमद् भी ऐसा कहते हैं, अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसा निजपद की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य हेतु से उपकारी नहीं। सम्यक् एकान्त। स्वभाव सन्मुख दृष्टि करना, वह सम्यक् एकान्त है। और सम्यक् एकान्त हुआ, उसको एकान्त का ज्ञान सच्चा होता है। पर्याय में मन्दता है, पर्याय में अशुद्धता है, इसका ज्ञान उसे होता है। एकान्तदृष्टि से जिसको अपना ज्ञान हुआ, उसको एकान्त का यथार्थज्ञान होता है। समझ में आया ? ऐसी बात है।

यहाँ तो **मन आकुल होता है, आकुलता दुःख है,...** आहाहा! यह आकुलता दुःख है। आहाहा! छहढाला में भी कहा है न ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' मुनिव्रत धार ग्रीवक उपजायो, यह तो ठीक। 'पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' यह पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण दुःख हैं। इसमें आया या नहीं ? पण्डितजी! छहढाला में आया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' इसमें आत्मा का आनन्द नहीं आया, वह तो दुःख है। आहाहा! यह दुःख कहा न ? एक में तीन का विचार करना, वह आकुलता, दुःख है। पंच महाव्रत का परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण, व्यवहार समिति, गुप्ति, सब राग वह दुःख है। आहाहा! समझ में आया ? कोटा गये थे ? पीछे आये ? ठीक।

इसलिए वस्तुमात्र के अनुभवने पर विकल्प मिटता है,... है ? तीन प्रकार का विकल्प मिटना। अन्तर स्वरूप का अनुभव करते यह विकल्प मिटते हैं। दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! यह प्रश्न हुआ था। राग कैसे घटे ? वर्णीजी के साथ। राग कैसे घटे ? (इन्होंने कहा), कर्म प्रतिबद्ध कारण घटे तो घटे। यहाँ तो कहते हैं अनुभव करने पर विकल्प मिटते हैं। समझ में आया ? एक भाई तो ऐसी बात लाया था। उत्तर प्रदेश से। राग कैसे घटे ऐसा अधिकार शास्त्र में है ही नहीं। ऐसा एक आया था। राजकोट कोई दिगम्बर आया था। राग कैसे घटे, यह शास्त्र में है ही नहीं। अरे रे! प्रभु! ये क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : यह तो हमारे सोनगढ़ से छपा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दो सौ वर्ष पहले का छपा है। हिन्दी में... कैसी हिन्दी कहलाती है यह? ढूंढ़ारी। ढूंढारी हिन्दी में यह पुस्तक थी। हमारे पास है। ढूंढ़ारी हिन्दी में हमारे पास है पुस्तक। एक बार विचार हुआ नवनीतभाई को। नवनीतभाई प्रमुख गुजर गये न? हम जंगल गये थे। महाराज! यह ढूंढ़ारी भाषा में से हिन्दी हुई है। फूलचन्दजी ने की है? ढूंढ़ारी भाषा कड़क है, ढूंढ़ारी भाषा बहुत कड़क है। उसने हिन्दी बनायी। समझ में आया? नवनीतभाई को पूरी छहढाला कण्ठस्थ थी। छहढाला कण्ठस्थ थी। बहुत फेरते थे। छहढाला पर इनको बहुत प्रेम था। और छहढाला के व्याख्यान इनकी तरफ से फ्री छपाये थे। छहढाला। इनको छहढाला पर बहुत प्रेम था।

छहढाला में यह आया है। समझ में आया? क्या आया छहढाला में? पंच महाव्रत पालकर भी तुझे सुख नहीं मिला तेरे को। इसका अर्थ यह हुआ। समझ में आया? कि पंच महाव्रत का परिणाम, यह सब विकल्प है, राग है, यह तो दुःख है। अब दुःख से आत्मा को आनन्द कैसे प्राप्त होगा? व्यवहार करते-करते, दुःख करते-करते सुख होता है? लहसुन खाने से कस्तूरी की डकार आती है? फिर कहाँ से आयेगी? बापू! यह तो लहसुन की डकार आये। इसी प्रकार दुःख का वेदन करने से अन्दर सम्यग्दर्शन का आनन्द आता है? ऐसा है? आहाहा!

मुमुक्षु : अर्थ कठिन करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें लिखा है या नहीं? तुम तो सर्राफ हो, नजर करो, देखो! यह हमारा सर्राफ सेठ है। ज्ञानचन्दजी सर्राफ की नजर चलाओ। आहाहा!

वस्तुमात्र के अनुभवने पर विकल्प मिटता है,... दूसरे कोई क्रियाकाण्ड से विकल्प मिटता है, ऐसा नहीं। आहाहा! **विकल्प के मिटने पर आकुलता मिटती है,...** आहाहा! ऊपर कहा था न? **विकल्प के होने पर मन आकुल होता है, आकुलता दुःख है,...** अब गुलाँट खाकर बात की। अनुभव होते ही विकल्प मिटता है। **विकल्प के मिटने पर आकुलता मिटती है, आकुलता के मिटने पर दुःख मिटता है,...** आहाहा! **इससे अनुभवशीली जीव परम सुखी है।** आहाहा! 'सुखिया जगत में सन्त, दुरीजन दुखिया

रे... ' सुखिया जगत में सन्त, दुरीजन दुखिया। भगवान आत्मा का अनुभवशील स्वभाव, वह जगत में सुखी है। बाकी यह राजा, महाराजा, करोड़पति सब दुःखी हैं। भिखारी वरांका शब्द शास्त्र में है। वरांका ऐसा शब्द है। व्यभिचारी है, रंक है, रंक। स्वरूप लक्ष्मी की खबर नहीं और यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... लाव... लाव... लावा... अग्नि का लावा (है)। आहाहा!

अन्दर भण्डार खजाना भरा है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता आदि शक्ति है, वह तो अपरिमित है। शक्तियों की परिमितता—मर्यादा नहीं होती। ऐसी शक्तियों का भण्डार भगवान, इसका अनुभव करते विकल्प मिटता है। विकल्प मिटाने का कोई दूसरा उपाय है नहीं। आहाहा! **इससे अनुभवशीली...** अनुभवशीली शब्द बापरा है। अर्थात् अनुभव जिसका स्वभाव हो गया है। आहाहा! अनुभवशीली। आहाहा! अपने आनन्द का अनुभवशीली **जीव परम सुखी है।** वह परम सुखी है। आहाहा! बाकी सभी दुःखी प्राणी हैं। एक सत्त्व के तीन प्रकार का विचार करना यह भी दुःख है, तो फिर शरीर मेरा, पैसा मेरा, धूल स्त्री मेरी, मकान मेरा, आबरू मेरी... महादुःखी है, महादुःखी है। महादुःखी है, मधुभाई! यह मधुभाई है, शान्तिभाई का भाई। यह पैसा बहुत पैदा करता है, वहाँ हांगकांग। अपने यहाँ उसने पैसा दिया है न। साहित्य में। हीरालालजी आया है? नहीं। सत् साहित्य (प्रकाशन में) लाख रुपया दिया। अपनी ३२० गाथा चलती थी, तब था। ३२० गाथा के प्रवचन छपवाने के लिये उसने बीस हजार रुपया दिया। नया वहाँ बहुत पैसा पैदा होता है। पाप।

मुमुक्षु : रुपया तो आपके पास भी बहुत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा का रुपया है। आहाहा! ६९ कलश पूरा हुआ। ७०।

कलश-७०

(उपजाति)

एकस्य बद्धो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।25-70।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'चिति द्वयोः इति द्वौ पक्षपातौ'-[चिति] चैतन्यमात्र वस्तु में [द्वयोः] द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो नयों के [इति] इस प्रकार [द्वौ पक्षपातौ] दो ही पक्षपात हैं। 'एकस्य बद्धः तथा अपरस्य न'-[एकस्य] अशुद्ध पर्यायमात्र ग्राहक ज्ञान का पक्ष करने पर [बद्धः] जीवद्रव्य बँधा है। भावार्थ इस प्रकार है-जीवद्रव्य अनादि से कर्मसंयोग के साथ एक पर्यायरूप चला आया है, विभावरूप परिणमा है। इस प्रकार एक बन्धपर्याय को अंगीकार करिये, द्रव्यस्वरूप का पक्ष न करिये, तब जीव बँधा है; एक पक्ष इस प्रकार है। [तथा] दूसरा पक्ष-[अपरस्य] द्रव्यार्थिक नय का पक्ष करने पर [न] नहीं बँधा है। भावार्थ इस प्रकार है-जीवद्रव्य अनादिनिधन चेतनालक्षण है, इस प्रकार द्रव्यमात्र का पक्ष करने पर जीवद्रव्य बँधा तो नहीं है, सदा अपने स्वरूप है, क्योंकि कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य-गुण-पर्यायरूप नहीं परिणमता है, सभी द्रव्य अपने स्वरूपरूप परिणमते हैं। 'यः तत्त्ववेदी' जो कोई शुद्ध चेतनामात्र जीव के स्वरूप का अनुभवनशील है जीव 'च्युतपक्षपातः'-वह जीव पक्षपात से रहित है। भावार्थ इस प्रकार है-एक वस्तु की अनेकरूप कल्पना की जाती है, उसका नाम पक्षपात कहा जाता है, इसलिए वस्तुमात्र स्वाद आने पर कल्पनाबुद्धि सहज ही मिटती है। 'तस्य चित् चित् एव अस्ति'-[तस्य] शुद्धस्वरूप को अनुभवता है, उसको [चित्] चैतन्य वस्तु [चित् एव अस्ति] चेतनामात्र वस्तु है, ऐसा प्रत्यक्षपने स्वाद आता है।।25-70।।*

---

* आगे 26 से 44 तक के श्लोक 25 वें श्लोक के साथ मिलते-जुलते हैं। इसलिए पण्डित श्री राजमलजी ने उन श्लोकों का 'खण्डान्वय सहित अर्थ' नहीं किया है। मूल श्लोक, उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी समयसार में से यहाँ दिया गया है।

कलश - ७० पर प्रवचन

एकस्य बद्धो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वावितिपक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव॥२५-७०॥

'चिति' चैतन्यमात्र वस्तु में द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक... देखो! आया ऊपर था न? द्रव्य और पर्याय। नहीं था? द्रव्य और पर्यायनय। नय में द्रव्य और पर्याय था न? यह द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक है उसमें। चन्दुभाई! नय शब्द में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक की बात थी। इसका यहाँ स्पष्टीकरण किया। **चैतन्यमात्र वस्तु में द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो नयों के...** आहाहा! **इस प्रकार दो ही पक्षपात हैं। 'एकस्य बद्धः तथा अपरस्य न'** क्या कहते हैं? **अशुद्ध पर्यायमात्र ग्राहक ज्ञान का पक्ष करने पर...** अशुद्ध पर्यायमात्र ग्रहण करने का ज्ञान का पक्ष करने पर **जीवद्रव्य बँधा है।** व्यवहारनय का पक्ष करने पर जीव बँधा है। समझ में आया? कर्म का सम्बन्ध निमित्त है। व्यवहारनय से ऐसा कहा कि अशुद्ध पर्यायमात्र जानना, ज्ञान का पक्ष करने पर जीव व्यवहारनय से बँधा है।

इस प्रकार है - जीवद्रव्य अनादि से कर्मसंयोग के साथ एक पर्यायरूप चला आया है,... आहाहा! विभाव की पर्याय, निमित्त के सम्बन्ध से चली आ रही है। **विभावरूप परिणमा है।** देखो! है? विकाररूप परिणमा है। विकाररूप नहीं है—ऐसा नहीं। पर्याय, हों! द्रव्य नहीं। पर्याय में विकाररूप है। पर्याय में विकार है तो द्रव्य विकाररूप हो जाता है, ऐसा नहीं।

हमारे यह प्रश्न भी चला है न। मक्खनलालजी का। रतनचन्दजी का था कि पर्याय अशुद्ध है तो द्रव्य भी अशुद्ध हो जाता है। प्रवचनसार की गाथा नौ। शुभ और अशुभ तो तन्मय होता है। तन्मय तो पर्याय की अपेक्षा से है। द्रव्य तन्मय, द्रव्य तो त्रिकाल आनन्द का कन्द प्रभु शुद्ध चिदानन्द है। इसमें कभी आँच नहीं आती। आहाहा! त्रिकाल में विकार तो नहीं, परन्तु अल्पज्ञनता नहीं, ऐसा भगवान तो त्रिकाल (शुद्ध है)। निगोद की पर्याय

में भी भगवान तो वहाँ त्रिकाल शुद्ध ही है। आहाहा! और एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय यह सब आत्मा का स्वभाव नहीं। यह तो भेद है। अन्तर में जो चैतन्य है, वह तो अकेला ज्ञान के पूर्ण स्वभाव से भरा है। ऐसा नहीं देखो की इतना छोटा शरीर है और एकेन्द्रिय और एक शरीर में अनन्त जीव, एक-एक जीव का कार्मण, तैजस दो (शरीर) और विकार, अल्पज्ञ रहा अक्षर के अनन्तवें भाग निगोद (में विकास रहा), यह तो पर्याय की बात है। द्रव्य तो पूर्ण भगवान स्वरूप पूर्णानन्द से भरा है। सभी जीव, सर्व स्वरूप, सर्व काल सर्व क्षेत्र में परिपूर्णता से भरे हैं। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार एक बन्धपर्याय को अंगीकार करिये, द्रव्यस्वरूप का पक्ष न करिये तब जीव बँधा है;... द्रव्य का पक्ष न करें तो पर्याय की अपेक्षा से बँधा है। यह व्यवहारनय से। परन्तु इसका तो हम निषेध करते आये हैं, ऐसा कहते हैं। पहले अबद्धस्पृष्ट आया न? **एक पक्ष इस प्रकार है।**

दूसरा पक्ष — (अपरस्य) द्रव्यार्थिक नय का पक्ष करने पर नहीं बँधा है। द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से... यहाँ विकल्प है, हों! त्रिकाली द्रव्य जो भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वह तो मुक्तस्वरूप ही है। बँधा है और पर्याय में मुक्त होगा, यह इसको नहीं। पर्याय में राग का बन्ध और पर्याय में राग का अभाव—मुक्ति यह तो पर्याय में है। वस्तु तो त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! परन्तु ये द्रव्यार्थिकनय का पक्ष करने पर भी विकल्प होता है, पक्ष करने पर। आश्रय करने पर अनुभव होता है, पक्ष करने पर विकल्प होता है। ऐसा मार्ग। कितनों ने तो सुना भी नहीं होगा और बाहर में यह कढ़ाकूट (सिरपच्ची) में पड़ा है। आहाहा! जिन्दगी चली जाती है, भाई! इसका भावार्थ। भावार्थ कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ४, शुक्रवार, दिनांक ०१-०९-१९७७
कलश-७० से ७७, प्रवचन-८३

कलश ७० है, इसका भावार्थ। **जीवद्रव्य अनादिनिधन चेतनालक्षण है,...** क्या कहते हैं ? ७०। तुम्हारे सत्तर कहते हैं ? कलश, इसके बीच भावार्थ है। यह भगवान आत्मा जीवद्रव्य अनादि-अनन्त अन-आदि, अ-निधन। आदि नहीं, अन्त नहीं। दोनों जगह यह 'अ' शब्द लगाना। अनादि अनिधन। आदि नहीं और अन्त नहीं। ऐसा चेतना लक्षण है। चेतना में दर्शन, ज्ञान दोनों आये। चेतना लक्षण से लक्षित होता है। चेतना लक्षण से उसका अनुभव होता है। आहाहा! कर्ता-कर्म अधिकार है न ?

इस प्रकार द्रव्यमात्र का पक्ष करने पर... चेतना लक्षण मैं हूँ, ऐसे विकल्प का पक्ष करने पर भी, **जीवद्रव्य बँधा तो नहीं है,...** उस अपेक्षा से बन्धन है नहीं। है ? **सदा अपने स्वरूप है,...** सदा चैतन्यस्वरूप अनादि अनन्त पवित्र है। **क्योंकि कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य-गुण-पर्यायरूप नहीं परिणमता है,...** कोई भी पदार्थ अन्य की पर्यायरूप, अन्य के द्रव्य-गुणरूप तो नहीं (परिणमता), परन्तु अन्य की पर्यायरूप— वर्तमान की अवस्थारूप भी नहीं परिणमता। कोई द्रव्य पर की पर्यायरूप तो नहीं परिणमता। **सभी द्रव्य अपने स्वरूपरूप परिणमते हैं।**

जो कोई शुद्ध चेतनामात्र जीव के स्वरूप का अनुभवनशील है जीव... पहला बोल आ गया है कि आत्मा कर्म के सम्बन्ध से बन्ध पर्यायरूप है, ऐसा एक व्यवहारनय का पक्ष है, उसका तो हम निषेध करते आये हैं। आहाहा! कर्म के सम्बन्ध से राग की पर्याय का सम्बन्ध-बन्ध है। यह व्यवहारनय का विषय है। इसका तो हम निषेध करते आये हैं, आचार्य कहते हैं। अब तो जीव चेतना लक्षण अबन्ध है... आहाहा! है ? यह भी विकल्प का एक पक्ष है। आहाहा! मैं अबद्ध हूँ। है अबद्ध परन्तु अबद्ध हूँ—ऐसा नय का पक्ष, विकल्प का पक्ष करके मैं अबद्ध हूँ, यहाँ तक आया, उससे क्या ? इससे लाभ क्या

है ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? मैं पर्याय में राग के सम्बन्ध से बँधा हूँ, ऐसे व्यवहार का पक्ष तो हम प्रथम से ही निषेध करते आये हैं। परन्तु यहाँ दो नयों के साथ लिया है। निश्चय से मैं अबद्ध हूँ। आता है न ? **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं'** १४-१५ गाथा। अबद्ध हूँ, **'अबद्धपुट्ठं'** है सही ऐसा। परन्तु अबद्ध के विकल्प में खड़ा हो, इससे तुझे क्या लाभ है ? आहाहा ! समझ में आया ? निमित्त से तेरे में लाभ होता है, ऐसा तो है ही नहीं और व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो है, इससे तुझे लाभ होता है, ऐसा तो है ही नहीं। बन्ध का विकल्प व्यवहार है, इसका तो निषेध है परन्तु भगवान अबद्धस्वरूप है— ऐसे पक्ष में, नयपक्ष में खड़ा हो तो यह भी राग है। आहाहा ! समझ में आया ? कल कहा था न ? 'तत् किम।' उससे क्या ? यहाँ तक आया, इससे तुझे क्या लाभ है ? आहाहा ! समझ में आया ?

'तत्त्ववेदी' जो कोई शुद्ध चेतनामात्र जीव के स्वरूप का अनुभवनशील है जीव, वह जीव पक्षपात से रहित है। आहाहा ! ऐसी चीज़ है। मैं अबद्ध हूँ, ऐसा जो विकल्प है, वह नय पक्ष है, जो कोई तत्त्ववेदी-तत्त्व का वेदन करनेवाला, चैतन्य का अनुभव करनेवाला, चैतन्य का पर्याय में आनन्द का वेदन करनेवाला, इस जीव को अबद्धस्पृष्ट के पक्ष का विकल्प छूट जाता है... आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है। अपूर्व बात अनन्त काल में कभी की नहीं। शास्त्र भी सुनें, व्रत, नियम ऐसे किये कि चमड़ी उतारकर नमक डाले तो भी क्रोध न करे, ऐसी क्रिया अनन्त बार की। आहाहा !

यहाँ तो आचार्य महाराज ऐसा फरमाते हैं, प्रभु ! तू आँगन में आकर मैं अबद्ध हूँ, आँगन में आकर मैं अबद्ध हूँ, ऐसे पक्ष में रहकर, आँगन को छोड़कर अन्दर गया नहीं तो भी लाभ नहीं। आहाहा ! जिनेश्वरदासजी ! ऐसी बात है। आहाहा ! चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द स्वरूप के आँगन में आकर, मैं अबद्ध हूँ, ऐसे आँगन में आया परन्तु आँगन में आये बाद अन्दर प्रवेश नहीं किया। समझ में आया ? अभी तक तो बाहर का झगड़ा करता है। शुभयोग से धर्म होता है, शुभयोग मोक्ष का मार्ग है। आहाहा ! प्रभु ! यह बात तो बहुत-बहुत दूर रह गयी। समझ में आया ? दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि शुभभाव मोक्षमार्ग हैं, ऐसा कहनेवाला तो बहुत दूर रह गया।

यहाँ तो मैं अबद्ध हूँ, बद्ध नहीं और अबद्ध हूँ। है अबद्ध परन्तु अबद्ध के अन्दर में नहीं जाता, आँगन में पर्याय में खड़ा रहकर, मैं अबद्ध हूँ, ऐसे नय के विकल्प में खड़ा है, इससे प्रभु! तुझे क्या लाभ है? आहाहा! ऐसा अनन्त बार हुआ, प्रभु! आहाहा! ऐसा मार्ग, प्रियंकरजी! लोग विरोध करते हैं। क्या करें? सुनो तो सही प्रभु! आहाहा! प्रभु! तेरा मार्ग ही ऐसा है न, नाथ! तेरे हित की बात चलती है, इसमें तू विरोध करता है। तेरा हित तो इसमें है कि शुभभाव दया, दान, व्रत ये तो दूर रहे, मैं अबद्ध हूँ ऐसे विकल्प के पक्ष में खड़े रहने से भी तुझे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है... यह कहते हैं न, देखो!

'तत्त्ववेदी' तत्त्ववेदी-चैतन्य का अनुभव करनेवाला। बस। आहाहा! **जो कोई शुद्ध चेतनामात्र जीव के स्वरूप का अनुभवनशील है जीव 'च्युतपक्षपातः'-वह जीव पक्षपात से रहित है।** आहाहा! यहाँ तो शान्ति का मार्ग है, भगवान! तत्त्ववेदी भगवान चैतन्यतत्त्व है, उसको वेदन करनेवाला अनुभवशील जीव जिसका अनुभवशील स्वभाव हो गया है। आहाहा! ऐसा तत्त्ववेदी जीव, मैं अबद्ध हूँ — ऐसे पक्ष से च्युत हो गया है। धन्नालालजी! आहाहा! अरे! इसमें विवाद कहाँ? वाद-विवाद कहाँ? प्रभु! तेरी सम्पदा, निर्विकल्प सम्पदा अन्दर पड़ी है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द चैतन्य रत्नाकर है न, भगवान! तेरे में तो चैतन्य रत्नों का सागर तू है। इसमें मैं अबद्ध हूँ, ऐसे विकल्प का भी वहाँ अवकाश नहीं है। आहाहा! यहाँ तो अभी यह चलता है, शुभजोग मोक्ष का मार्ग है ऐसा अभी आया है। मक्खनलालजी की तरफ से समाचार-पत्र में आया है। शुभयोग मोक्ष का मार्ग है। प्रभु! यह क्या करता है तू? चैतन्यस्वभाव अमृत का सागर भगवान इसमें शुभयोग तो जहर है। आहाहा! इस जहर से मोक्षमार्ग कहना प्रभु! कलंक है, कलंक है। चैतन्य में कलंक लगाता है। समझ में आया? क्या है?

तत्त्ववेदी **पक्षपात से रहित है। 'च्युतपक्षपातः' 'च्युतपक्षपातः'** विकल्प से भ्रष्ट हुआ है। आहाहा! भगवान अनन्त आनन्दस्वरूप प्रभु है। यह तत्त्व का वेदन करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! अपने चैतन्य के आनन्द का वेदन करनेवाला, मैं अबद्ध हूँ — ऐसे पक्ष से यह भ्रष्ट हो गया है। भभूतमलजी! आहाहा! च्युत शब्द है न! आहाहा! सन्तों

की वाणी, दिगम्बर सन्तों की वाणी रामबाण है। आहाहा! एक-एक शब्द के अन्दर परमात्मा भरा है। शब्द तो वाचक है परन्तु वाच्य आत्मा तो बताता है। आहाहा! अरे! भगवान तू परमात्मस्वरूप है न, नाथ! मैं परमात्मा हूँ — ऐसा विकल्प तुझे तेरे स्वभाव में प्रवेश करने से रोकता है। आहाहा! समझ में आया?

'च्युतपक्षपातः' आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है-एक वस्तु की अनेकरूप कल्पना की जाती है, उसका नाम पक्षपात कहा जाता है,...** पक्षपात की व्याख्या की। भगवान तो चैतन्यस्वरूप एकरूप आनन्दरूप ध्रुवस्वरूप, एकरूप चीज़ में अनेकपने की कल्पना करना, इसका नाम पक्षपता है। मैं बद्ध हूँ या अबद्ध हूँ एकरूप में ऐसा विकल्प उठाना... आहाहा! ऐसा मार्ग। भगवान एकरूप अन्दर चैतन्यस्वभाव विराजमान है। उसमें अनेक कल्पना खड़ी करना, यह पक्षपात है। वस्तु पक्षपात से रहित है। आहाहा! है? **पक्षपात कहा जाता है,...** है न?

इसलिए वस्तुमात्र स्वाद आने पर... आहाहा! वस्तु जिसमें अनन्त गुण बसते हैं, रहा हुआ है। वस्तु है न? इसमें बसते हैं, अनन्त गुण वस्तु में बसते हैं। इसमें से आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! है? **वस्तुमात्र स्वाद आने पर...** अपनी चीज़ में प्रवेश करने पर। प्रवेश का अर्थ पर्याय को उसके सन्मुख झुकाने पर। प्रवेश का अर्थ ऐसा नहीं कि पर्याय द्रव्य में करती है। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य में पर्याय प्रवेश नहीं करती परन्तु पर्याय में द्रव्य की पूर्ण शक्ति का सामर्थ्य पर्याय में वेदन में, श्रद्धा में, ज्ञान की पर्याय में पूरी चीज़ आती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उसका स्वाद आने से **कल्पनाबुद्धि सहज ही मिटती है।** सहज मिटती है, मिटानी नहीं पड़ती, ऐसा कहते हैं। अन्तर्मुख जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ अबद्ध आदि पक्ष की कल्पना थी, वह सहज ही छूट जाती है। आहाहा! सहज का धन्धा। 'सद्गुरु कहें सहज का धन्धा, वाद विवाद करे सो अन्धा।' डालचन्दजी! यह वाद विवाद करते हैं न। चर्चा करो, चर्चा करो... अरे! प्रभु! क्या चर्चा करें? नाथ! प्रभु! तू तो भगवान है न, नाथ! आहाहा!

एक समय की पर्याय में भूल है। एक समय की पर्याय में मिथ्यात्व की भूल है। त्रिकाली स्वरूप तो भगवान पूर्णानन्द का नाथ भूल रहित है। उसकी चीज़ है वह तो

त्रिकाली भूल रहित है। एक समय की पर्याय में भूल है। प्रभु! तू भगवान होकर इस भूल को दूर कर दे, छोड़ दे।

मुमुक्षु : अपने विरोधियों को आप भगवान कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भगवान हैं, विरोधी वह भगवान हैं। विरोधी कौन है?

मुमुक्षु : एक समय की भूल है, वह चर्चा करके निकाल दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : चर्चा.. ? पण्डितजी ठीक कहते हैं। किसकी चर्चा करें? भाई! जब चर्चा करनेवाला पहले ही तुम झूठे हो और हम सच्चे हैं, यह साबित करने के लिये चर्चा करती है उसको। आहाहा! कहा था न कल, परसों कहा था न?

एक श्वेताम्बर साधु आया था। जीव प्रताप एक करोड़पति है। इसके भतीजे ने श्वेताम्बर दीक्षा ली है। वह हमारे पास लींबडी आया था। दो-चार सेठिया लेकर आया था। दो-चार सेठिया बेचारा नरम है। क्योंकि हमारा नाम बाहर में प्रसिद्ध तो बहुत है। वह लोग बेचारे नरम साथ में खड़े थे। हम चर्चा करने आये हैं। अपन चर्चा करें। मैंने कहा, भाई! हम तो किसी से चर्चा नहीं करते, मैंने ऐसा कहा, तो उन्होंने कहा, आपकी इज्जत इतनी है, आप चर्चा की न करते हो तो क्या होगा? जो होना हो वो हो, हमें क्या? दुनिया मानें की इन्हें चर्चा करना नहीं आती, तो यह तो सही है। समझ में आया? ऐसा कहा, तुम सिंह हो तो मैं सिंह का बच्चा हूँ, भाई! हम तो सिंह नहीं कहते। हम तो सिंह भी नहीं और मनुष्य भी नहीं। ऐसा उसने कहा कि तुम सिंह हो तो मैं सिंह का बच्चा हूँ... एक साधु है।

मुमुक्षु : हम भी कुछ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हम भी कुछ हैं। पीछे बाद में कहा, हम तो किसी के साथ चर्चा नहीं करते, वाद-विवाद हमको पसन्द नहीं। बाद में इसने ऐसा कहा, इस चश्मे से दिखता है न? देखो! कहा, चर्चा हो गयी, भाई! चश्मा जड़ है, इससे दिखता है? कि अपनी ज्ञान की पर्याय से दिखता है? आहाहा! चश्मा तो जड़ अजीव है, उसका अपनी पर्याय में अभाव है। ज्ञान की पर्याय में चश्मा का अभाव है। चश्मा से ज्ञान होता है? कहा, चर्चा हो गयी। आहाहा! हम तो करते नहीं। पश्चात् चला गया। आहाहा! भाई!

यहाँ तो यहाँ तक कहते हैं कि मैं अबद्ध हूँ, है अबद्धस्वरूप।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं।।15।।

जिसने भगवान आत्मा को अबद्ध देखा, सामान्यरूप देखा, कषाय के विकल्प से, दु:ख से भिन्न देखा। उसने जैनशासन देखा। यह १५वीं गाथा है। '**अपदेससंतमज्झं**' और चारों अनुयोग में '**अपदेस**' नाम शास्त्र में भी अबद्ध है, ऐसा कहा है। और भाव में भी अबद्ध है और द्रव्य सूत्र में भी अबद्ध कहा है और भावश्रुत अबद्ध जानने में आता है। आहाहा! समझ में आया? यह अबद्ध जानने में आया, वह वस्तु की स्थिति है। परन्तु अबद्ध है, ऐसा नय का पक्ष करके वहाँ रुक जाए तो तत्त्व का वेदन नहीं हो सकता। आहाहा! चैतन्य के आनन्द का आस्वाद आना चाहिए, यह आस्वाद नहीं आयेगा। प्रभु! क्योंकि विकल्प है, वह आकुलता है। आहाहा! गजब (बात) है। देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत, शास्त्रादि पढ़ने आदि का राग वह तो आकुलता और दु:ख है। आहाहा!

यहाँ तो मैं अबद्ध हूँ, अबद्ध मुक्त, अबद्ध नास्ति से कहा। अस्ति से कहें तो आत्मा मुक्तस्वरूप है। द्रव्य तो मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! परन्तु ऐसे विकल्प का पक्ष करना, वह दु:खरूप है। आहाहा! वहाँ दु:ख का वेदन है। तत्त्ववेदी इस दु:ख के वेदन से छूट गया है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ वीतरागदेव का तो तीनों काल में एकरूप मार्ग है। इसमें कोई फेरफार नहीं। यहाँ यह कहते हैं।

स्वाद आने पर कल्पनाबुद्धि सहज ही मिटती है। आहाहा! वस्तु भगवान ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द, अनन्त चैतन्य रत्नाकर, अनन्त-अनन्त गुण का गोदाम प्रभु, अनन्त शक्ति का गोदाम प्रभु है। आहाहा! अनन्त शक्तियों का संग्रहालय, अनन्त शक्ति के संग्रह का आलय—स्थान है और अनन्त स्वभाव का यह सागर प्रभु है। आहाहा! इसके ऊपर जब दृष्टि पड़ी तो तत्त्व का वेदन करनेवाला कल्पना से छूट जाता है। ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

शुद्धस्वरूप को अनुभवता है,... है ? शुद्धस्वरूप को तत्त्ववेदी अनुभवता है। **'तस्य चित् चित् एव'** धर्मी को तो ज्ञानस्वरूप, वह ज्ञानस्वरूप ही है। ज्ञान की असाधारण शक्ति से वर्णन किया है। यह चिद्रूप तो चिद्रूप है। मैं चिद्रूप हूँ — ऐसा विकल्प भी जिसमें नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प है, वह तो आत्मा का घातक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घातक है। जहर है, दु:ख है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। विकल्प उठाना, वह अमृत सागर से तो विरुद्ध है। जिसको मोक्ष अधिकार में विषकुम्भ कहा है, जहर का घड़ा है। आहाहा! भगवान अमृत का समुद्र है। राग का विकल्प वह जहर का घड़ा है। घड़ा समझे ? घट। आहाहा! मोक्ष अधिकार में है। इस तकरार में आत्मा क्या चीज़ है, इसको शोधने नहीं जाता और झगड़े में उतरता है। अन्तर शोधन में जा, नाथ! अन्दर प्रभु पड़ा है। आहाहा!

कहते हैं, **शुद्धस्वरूप को अनुभवता है, उसको चैतन्य वस्तु चेतनामात्र वस्तु है, ऐसा प्रत्यक्षपने स्वाद आता है।** आहाहा! आनन्द परोक्ष रहे, ऐसा नहीं — ऐसा कहते हैं। अलिंगग्रहण में ऐसा कहा है। बीस बोल हैं न ? इसमें छठवें बोल में। भगवान आत्मा अपने स्वभाव से जानने में आता है, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। अलिंगग्रहण के बीस बोल। प्रवचनसार १७२ गाथा। अलिंगग्रहण, इसमें बीस बोल उतारे हैं। एक अलिंगग्रहण में बीस बोल। इसमें छठवें बोल में ऐसा लिया है।

पहले में ऐसा लिया है कि प्रभु इन्द्रिय से नहीं जानता। इन्द्रिय से जानता भी नहीं आत्मा। जनाता तो नहीं परन्तु इन्द्रिय से जानता भी नहीं। और भगवान आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय नहीं। आहाहा! और दूसरे के अनुमान से जानने में आये, ऐसा आत्मा नहीं। आहाहा! आत्मा मात्र अनुमान करे, ऐसा भी आत्मा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अपने शुद्ध आनन्द और ज्ञानस्वभाव से जानने में आता है। आहाहा! राग से और विकल्प के पक्ष से और व्यवहार से तो जनाता ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। एकान्त लगता है, क्या करें ? एकान्त है। एकान्त है। व्रत, तप, कायक्लेश करता है, वह तो तुम्हें करना नहीं और उनको तुम्हें उड़ाना है। ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! सुनो तो सही, प्रभु! इस चीज

में विकल्प ही नहीं है न। विकल्प नहीं है तो इसके विकल्प से लाभ होगा? विकल्प से लाभ हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि विकल्प इसका स्वरूप है। अपने स्वरूप से लाभ हुआ तो विकल्प से लाभ हुआ तो विकल्प इसका स्वरूप हो गया। आहाहा! समझ में आया? पहले अपनी श्रद्धा में निर्धार निश्चित तो करे कि आत्मा तो विकल्प से रहित होता है, तब आनन्द का वेदन आता है। तब सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! चारित्र तो कहाँ रहा, प्रभु! यह तो अलौकिक बातें हैं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन तत्त्ववेदी की बात चलती है। आहाहा! प्रत्यक्षरूप स्वाद आता है।

विकल्प आया कि मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ — ऐसा। इसको छोड़कर बाद में निर्विकल्प होता है। यह सविकल्प द्वारा निर्विकल्प हुआ, ऐसा इसका अर्थ है। है, खबर है, सबकी खबर है। मोक्षमार्गप्रकाशक में रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आया है। समझ में आया? सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होता है। इसका अर्थ सम्यग्दृष्टि जीव जब ध्यान करने में स्थित होता है, तब पहले ऐसा विकल्प आता है कि मैं शुद्ध हूँ, पूर्ण हूँ, अबद्ध हूँ, बस इतना। बाद में सोहम् मैं, परमात्मा हूँ, यह भी विकल्प है। ऐसे विकल्प से छूटकर अपने निर्विकल्प स्वरूप का अनुभव करता है तो विकल्प छोड़कर अनुभव किया, उसको विकल्प द्वारा निर्विकल्प हुआ, ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पता है, सब पता है। यह तो बहुत बार बताया है। यहाँ तो ४३ वर्ष से चलता है। चालीस और तीन। समझ में आया? एक-एक शब्द का अर्थ हो गया है।

मुमुक्षु : द्वार का अर्थ दरवाजा होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दरवाजा छोड़कर जाता है, तो दरवाजा कहलाता है। दरवाजे में खड़ा रहे... दरवाजा छोड़कर अन्दर जाता है। ऐसे विकल्प छोड़कर निर्विकल्प भगवान आत्मा में जाता है, तब इसको तत्त्ववेदी सम्यग्दृष्टि कहने में आता है। आहाहा! पैसेवालों को तो इसमें कुछ आता नहीं। नहीं? तीनों जोड़े से बैठे हैं। तीनों करोड़पति बैठे हैं। पोपटभाई, शोभालाल और भभूतमल। तीनों करोड़पति हैं। धूल में करोड़, यह तो जड़ मिट्टी-धूल है।

यहाँ तो मैं मूढ़ नहीं, अमूढ़ ऐसा विकल्प भी अपना नहीं। आहाहा! अनन्त जन्म-मरण के छेद करने का उपाय तो यह है, नाथ! आहाहा! भव छेद के बिना भव मिटता नहीं। और भवछेद कब होता है? कि जिसमें भव और भव के भाव का अभाव है, ऐसे स्वभाव का अनुभव करने पर भवछेद होता है। बाकी सब बातें हैं। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ कहा।

रागी। व्यवहारनय का पक्ष है कि मैं रागी हूँ। निश्चयनय का पक्ष है कि मैं रागी नहीं। यह भी विकल्प है, कल्पना है। आहाहा! इसको छोड़कर तत्त्ववेदी विकल्प से च्युत होता है। आहाहा! और निजस्वरूप का वेदन करता है, इसमें विकल्प को अवकाश नहीं। विकल्प की इसमें सहारा नहीं। विकल्प की जिसमें मदद नहीं। आहाहा! उसको यहाँ पक्षपात रहित चिदानन्दस्वरूप का वेदन कहने में आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग।

७३। **'एकस्य दुष्टो'** एक का पक्ष है कि मैं दुष्ट हूँ, यह व्यवहारनय का पक्ष है। एक कहता है कि मैं द्वेषी नहीं, यह निश्चयनय का पक्ष है। आहाहा! यह भी विकल्प है। द्वेषी नहीं, वह भी एक विकल्प है, पक्ष है, पक्षपात है। एकरूप चीज में अनेक कल्पना खड़ी करना यह पक्षपात है। आहाहा! इसको छोड़कर तत्त्ववेदी, दुष्ट नहीं, ऐसे विकल्प से भी च्युत हो जाता है और अपने में तल्लीन हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

'एकस्य कर्ता' है? ७४। व्यवहारनयवाला एक जीव ऐसा मानता है कि मैं राग का कर्ता हूँ। व्यवहारनय वाला ऐसा मानता है कि मैं राग, विकल्प है, इसका कर्ता हूँ। **'न तथा परस्य'** निश्चयनय का पक्ष है कि मैं राग का कर्ता नहीं, राग का कर्ता नहीं, यह बात सच्ची है, परन्तु राग का कर्ता नहीं, ऐसा विकल्प उठाना, यह पक्षपात है। आहाहा! वस्तु पक्षातिक्रान्त है। पक्ष से अतिक्रान्त वस्तु अन्दर भिन्न पड़ी है। आहाहा! अरे! ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं, यह कब विचार करे, कब प्रयोग करे और कब अनुभव करे? आहाहा! करना तो यह है। बाकी तो सब बातें हैं। आहाहा! अकर्ता है, यह सब में ले लेना।

'एकस्य भोक्ता' ७५। मैं राग का भोक्ता हूँ, ऐसा व्यवहारनय का पक्ष है। यह तो अपनी अभोक्तृत्व शक्ति चल गयी। आत्मा राग का भोक्ता नहीं, ऐसी अभोक्ता शक्ति है।

आत्मा में अकर्ता शक्ति आ गयी। आत्मा राग का कर्ता है, ऐसा कभी है ही नहीं। इसमें तो कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुई रागादि से उपरम-निवृत्तस्वरूप अकर्ता अपने आत्मा का स्वभाव है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, उसका भी कर्ता आत्मा नहीं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग अर्थात्... समझ में आया? शास्त्र पढ़ने का... शास्त्र की ओर बुद्धि जाती है, यह व्यभिचारनी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसकी तो कक्षा चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प ही परन्तु है व्यभिचार। इसमें यह सिखाते हैं, सिखना यह है। समझ में आया? वह तो गये, केशुभाई आये थे न। गये? बढ़वानवाले केशुभाई एक जनें से पूछा, केशुभाई कल औरतें, बच्चों को लेकर आये थे। किसी ने पूछा कि तुम निमित्त तो मानते नहीं तो सोनगढ़ किसलिए जाते हो? बारम्बार निमित्त के पास जाते हो और कहते निमित्त कुछ नहीं करता। ऐसा प्रश्न किया। केशुभाई कल थे। तो उन्होंने यह जवाब दिया कि हम वहाँ जाते हैं, यह निमित्त से नहीं होता, वह दृढ़ करने को जाते हैं। समझ में आया? पुरानी का पुत्र है, नई परणी है।

मुमुक्षु : शास्त्र में बुद्धि जाती है, वह व्यभिचारिणी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल बताया था। उज्जैन से आये थे। है न सेठी? सत्येन्द्रकुमार सेठी। इनका तो बाहर में बहुत है न। यह कहते हैं, देखो! पद्मनन्दिपंचविंशति में, शास्त्र में जानेवाली बुद्धि को व्यभिचारिणी कहा है। पाठ बताया था। पद्मनन्दिपंचविंशति। आचार्य पद्मनन्दि कृत पद्मनन्दिपंचविंशति, है २६ अधिकार, पर नाम रखा है, पद्मनन्दिपंचविंशति। ५-५! लागू पड़ते हैं अर्थात् पद्मनन्दिपंचविंशति, हैं तो छब्बीस अधिकार। इसमें ऐसा लिया है कि शास्त्र में जानेवाली बुद्धि व्यभिचारिणी है। आहाहा! क्योंकि परद्रव्य है और परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाने से राग उत्पन्न होता है। और राग, वह व्यभिचार है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह भी शास्त्र में लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पद्मनन्दिपंचविंशति कहा न। बताया था और मोक्षमार्गप्रकाशक में भी है।

मुमुक्षु : बहुत कड़क है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी ही है। कड़क हो या न हो। समझ में आया? आहाहा! और भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है न, मोक्षपाहुड़ १६वीं गाथा। मोक्षपाहुड़ १६वीं गाथा। **'परदव्वाओ दुग्गइ'** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, हम तेरे से परद्रव्य हैं और परद्रव्य ऊपर तेरा लक्ष्य जाएगा तो तेरी दुर्गति है। दुर्गति अर्थात् चैतन्य की गति नहीं। राग होगा और राग से तुझे स्वर्गादि मिलेंगे। यह तो दुर्गति है। सिद्ध सिवाय चारों गति दुर्गति हैं। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य मोक्षपाहुड़ (में कहते हैं)। आठ पाहुड़ हैं न? मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा। **'परदव्वाओ दुग्गइ सदव्वय हु सुग्गइ'** आहाहा!

अपना भगवान, जिसकी तल में, जिसके अन्तर में अनन्त रत्न पड़े हैं। ऐसे स्वद्रव्य का आश्रय ले और अनुभव करे तो इसको सुगति होगी—मोक्ष होगा। समझ में आया? अर्थकार जयचन्द पण्डित ने ऐसा लिया है, सुगति के दो अर्थ लिये हैं। मोक्ष भी है और थोड़ा विकल्प रह जाये तो इसको स्वर्ग मिलेगा। सुगति के ऐसे दो अर्थ किये हैं। मोक्षपाहुड़ १६ गाथा में दो अर्थ किये हैं। खबर है। समझ में आया?

कहते हैं न?

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्ये ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओम्कारा‌य नमो नमः।।

सम्यग्दर्शनसहित अनुभव से मुक्ति होती है, परन्तु बीच में राग आता है, यह काम का देनेवाला है, स्वर्ग देनेवाला है। आता है न? **'कामदं मोक्षदं चैव'** पुण्यानुबन्धी पुण्य के राग से स्वर्गादि मिलते हैं।

मुमुक्षु : बहुत अच्छा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग सारा-बुरा कुछ नहीं। यह तो राग का फल क्या आता है, वह बताया। आहाहा! पंचास्तिकाय में चारों गतियों को पराधीन कहा है। दूसरी गाथा, तीसरी गाथा। पराधीन, चारों गति पराधीन हैं। स्वर्ग के देव दुःखी हैं। अशुभराग में रंग गया है। दुःखी है। आहाहा! यह पैसेवाले सेठिया करोड़पति और अरबोंपति, राजा और देव

दु:खी हैं। आहाहा! क्योंकि आत्मा आनन्दस्वरूप है, इसमें बाहर के विकल्प उठाना, वह सब दु:ख है। कोई कहता है कि यह करोड़पति और अरबोंपति सुखी हैं। यहाँ कहते हैं कि दु:खी हैं। डाह्याभाई! आहाहा!

डाह्याभाई ढोलसा है न? नाटक चलाता था। डाह्याभाई ढोलसा, वांकानेर वाला। (संवत्) १९६४ के वर्ष की बात है। तब हमारी आयु १८ साल की थी। हमारी दुकान पालेज में थी, वहाँ हम बैठते थे। साधु आते, कारण कि हम स्थानकवासी थे, श्वेताम्बर थे। पिताजी उसमें थे, उसमें हमारा जन्म हुआ था। स्थानकवासी साधु आते आस-पास में से तो हम ध्यान रखते। तीस मनुष्य थे, दुकान चलती थी। वहाँ जाते। साधु आते हों, तब हम लेने जाते। उनका ध्यान रखते थे। समझे? वह तो राग था। समझ में आया? विकार है। क्या कहते थे? डाह्याभाई ढोलसा, यह कहना था।

डाह्याभाई ढोलसा का नाटक था। हम देखने गये। १९६४ की बात है। बड़ा नाटक था आठ दिन में दो बार करता था। पन्द्रह सौ रुपया लेता था। उस समय, १९६४ की साल एक रात के पन्द्रह सौ लेता। वह जब मरने लगा, शरीर छूटने का समय था तो ऐसा बोला, डाह्या तेरा डहापण... कब काम आवे? तूने इतने नाटक बनाये, वह बनाये... डाह्याभाई 'डाह्या तेरा डहापण...' डहापण समझे? होशियारी तब काम की है कि अब शान्ति से मरण करे तब। नाटक बनाये। (संवत्) १९६४ की साल। आठ दिन में दो नाटक करता। एक-एक रात के १५००-२००० रुपया, उस समय। १९६४ की साल। कितने वर्ष हुए। समझ में आया?

हम नाटक देखने गये थे। मीराबाई का नाटक था। निवृत्ति थी। साधु के लिये गये थे, साधु मिल गया। मीराबाई नाटक में मीराबाई... थी। इसका राव के साथ शादी... कह दे मेरा! तू मेरे घर में आ। तुझे पटरानी बनाऊँगा। आहाहा! वह तो उस समय। अब तो फिल्म आने... हो गयी है। अनीति का आचरण सब। उस समय मीरा कहती है। समझ में आया? आहाहा! 'परणी मेरे पीयूजी के साथ दूसरा लगन रे नहीं करूँ।' मैंने मेरे परमेश्वर के साथ लगन कर लिया है। आहाहा! ऐसा चलता था नाटक में। चन्दुभाई! आहाहा! उस समय तो वैराग्य था। धुन बड़ी थी। नींद नहीं आती। उत्तराध्ययन पढ़ते। ६४

की साल। १८ वर्ष की उम्र थी। ७० वर्ष पहले की बात है। ७० वर्ष पहले की बात, अब तो ८८ हो गये।

अन्दर से ऐसी आवाज आती थी... 'परणी मारा पीयूजी के साथ रे दूसरा मींढोल नहीं रे बांधूं। ' यह मीढोल नहीं होता ? ... यह कंकण, कंकण। यह तो ७० वर्ष पहले की बात है... परणी मेरा पीयूजी के साथ रे दूसरा मींढोल (कंकण) नहीं रे बांधूं।' ऐसे समकिती कहता है 'लगनी लागी समकित के साथ यह राग का मींढोल अब नहीं बांधूं।' समझ में आया ? यह राग का मींढूल नहीं बाँधू। राग का स्वामी नहीं। स्वामी होता है न ? आहाहा ! उस समय नाटक में बहुत लोग इकट्ठे होते थे। पर वह मरते बेचारा लिख गया कि मैं। अरे ! डाह्या ! तूने डहापना बहुत किया। नाटक बनाये। पर वह मरते शान्ति से देह छूटे तो तेरा डाह्या का डाहापना है ? नहीं तो डाह्या के डाहापने के ऊपर पानी फिर जाएगा। आहाहा ! पण्डितजी !

ऐसा यहाँ कहते हैं। यहाँ आया न ? भोक्ता नहीं। आहाहा ! मैं तो मेरे आनन्द का भोक्ता हूँ। ऐसे भी विकल्प का पक्ष छोड़ दे, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? रानी वह मीराबाई है न चित्तौड़गढ़ में। चित्तौड़गढ़ हम गये थे। वहाँ देखा। मीराबाई का वहाँ स्थान है। आहाहा ! गयी नहीं धनी के पास। मैं तो मेरे परमेश्वर के साथ... वह तो परमेश्वर को मानते हैं न ? उसके साथ मेरा प्रेम है। यहाँ कहते हैं। आहाहा ! मेरा प्रेम चैतन्य का आनन्द में लगा है, अब मैं राग से प्रेम नहीं करूँगी। मेरे आत्मा के आनन्द मैं तो भोक्ता हो गया। यह राग का भोक्ता मैं नहीं होऊँगा। आहाहा ! यह आत्मा में रमणता आयी है। समझ में आया ? समकिती गृहस्थ आश्रम में हो, छियानवे हजार स्त्रियाँ हों, परन्तु सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा !

इन्द्र एकावतारी, करोड़ों अप्सराओं, सौधर्म देवलोक, सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा ! आसक्ति का राग होता है तो काला नाग जैसा जहर जैसा दिखता है। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ कहते हैं कि मैं भोक्ता नहीं। यह भी एक विकल्प है। छोड़ दे यह विकल्प, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? कठिन बात है, भाई ! आहाहा ! इसमें आया है। **'एकस्य जीवो न तथा परस्य'** एक कहता है कि जीव है, वह निश्चय है। दूसरा कहता

है जीव नहीं। यह व्यवहारनय का नास्ति का पक्ष है। नहीं तो छोड़ दे। पर मैं आनन्दकन्द प्रभु जीव हूँ, ऐसा विकल्प भी छूट जाएगा। आहाहा! तुझे घर में वास करना हो, वास्तु लेना हो तो अन्दर में नहीं रह सकता। विकल्प अन्दर में है। मैं जीव हूँ, मैं प्रभू हूँ, मैं परमात्मा हूँ... आहाहा! यह विकल्प भी छोड़ दे। यह विकल्प दुःखदायक है। आहाहा! गजब बात है। डाह्याभाई! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! एक कहता है मैं जीव हूँ और दूसरा कहता है मैं जीव नहीं। नहीं है तो छोड़ दे। है, इसका भी विकल्प छोड़ दे। है वह है। समझ में आया?

जीव आया। **'एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य'** एक कहता है कि मैं सूक्ष्म हूँ। आया था न भाई, कल नहीं आया? ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, चारित्र सूक्ष्म, सूक्ष्म गुण है वह सब गुण की पर्याय सूक्ष्म हैं। ज्ञान-दर्शन सब सूक्ष्म कहे हैं। चिद्विलास में से बताया था। है तो सूक्ष्म। स्थूल शुभराग से भिन्न भगवान दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव स्थूल शुभ हैं। इससे भगवान आत्मा सूक्ष्म भिन्न है। तो सूक्ष्म भिन्न हूँ। सूक्ष्म नहीं, इन्द्रियग्राह्य हूँ, यह बात तो छोड़ दे। पर मैं अतीन्द्रियग्राह्य सूक्ष्म हूँ। आहाहा! ऐसे विकल्प की माला जपना छोड़ दे। आहाहा!

तब तत्त्व का वेदन होगा। तब तत्त्व का अनुभव होगा। जब तक मैं ऐसा हूँ, सूक्ष्म हूँ, तब तक तत्त्व का वेदन नहीं होगा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-७८

(उपजाति)

एकस्य हेतुर्न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।33-78।।

अर्थ—जीव, हेतु (कारण) है—ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव, हेतु (कारण) नहीं है—ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव, चित्स्वरूप ही है।।33-78।।

श्रावण कृष्ण ५, शुक्रवार, दिनांक ०२-०९-१९७७
कलश-७८ से ८०, प्रवचन-८४

---

७७ कलश हो गया है। ७८ कलश है।

एकस्य हेतुर्न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।33-78।।

एक पक्ष यह है कि जीव कारण है। परद्रव्य की पर्याय का जीव कारण है अथवा राग का कारण है। ऐसा एक व्यवहारनय के पक्ष का कथन है। उसका तो निषेध करते आये ही हैं। परन्तु जीव हेतु नहिं, यह निश्चय है। भगवान आत्मा परद्रव्य की पर्याय का कारण नहीं ऐसे व्यवहाररत्नत्रय के कारण से अपने कार्य होता है, यह कार्य में आयेगा। व्यवहाररत्नत्रय का भी वास्तव में भगवान आत्मा कारण नहीं। समझ में आया?

ऐसा तो 'छहढाला' में कहा न? नियत को हेतु। हेतु नियत को होई। यह व्यवहार

से है। आता है न छहढाला में ? हेतु नियत को, निश्चय का हेतु तो व्यवहार से कहा है। यथार्थ में यह हेतु व्यवहार हेतु नियत को होई। परन्तु यह शब्द आया न ? हेतु यह व्यवहार है। नियत को हेतु, यह हेतु व्यवहार है। सत्यार्थ का हेतु व्यवहार है। निश्चय सत्यार्थ है। इसका व्यवहार हेतु कहने में आया। यह व्यवहार कथन शैली है। वस्तुस्थिति तो... यह पहले ७२ गाथा में आ गया है। यह तो १४२ गाथा का श्लोक है।

आत्मा जो शुभभाव आदि भाव हैं, यह दुःखरूप हैं। उस दुःख का कारण आत्मा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान परमानन्दस्वरूप प्रभु, यह दुःख अर्थात् आस्रव पुण्य और पाप के भाव, व्यवहाररत्नत्रय का भाव, वह दुःखरूप हैं। दुःख का कारण भगवान नहीं। आहाहा! वैसे दुःख का कार्य नहीं। यह बाद के श्लोक में आयेगा। आस्रव है तो स्व-आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्रगट हुआ, ऐसा नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल में चैतन्य स्वयंसिद्ध प्रभु अनन्त चैतन्य रत्नाकर है, ऐसी अभेद की दृष्टि कभी की नहीं। अभेद का पक्ष विकल्प भी... यह तो दोपहर को चलता है न ? मैं अभेद हूँ — ऐसे विकल्प का पक्ष भी दुःखरूप है। आहाहा! आहाहा! अभेद के पक्ष का विकल्प दुःखरूप है तो दुःख कारण और अभेद दृष्टि कार्य, ऐसा है नहीं। और आत्मा उस दुःख का कारण भी नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा तो शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप; दुःख अर्थात् आस्रव, दुःख अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, यह आस्रव के कारण भगवान आत्मा नहीं। धन्नालालजी! तूफान तो अभी यह चलता है। व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है। निश्चय सत्यार्थ है... आता है न ? व्यवहार हेतु कहा परन्तु यह तो असत्यार्थ है। समझ में आया ? वह तो जिसको अपना कार्य करना हो, उसके लिये बात है। दुनिया में पण्डिताई बताकर व्यवहार को सिद्ध करना, व्यवहार से होता है। हो! व्यवहार से कथन है, परन्तु उससे होता है, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार के अभाव से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका तो अभाव है। यहाँ तो भाव जो है कारणपरमात्मा त्रिकाली भगवान पूर्णानन्दस्वरूप कारणपरमात्मा है। यह पर्याय का कारण है और पर्याय कार्य है, यह भी व्यवहार है। समझ में आया ? क्योंकि निर्मल पर्याय जो है, वह स्वयं कारण

और स्वयं कार्य है। चन्दुभाई! निर्मल सम्यग्दर्शन की पर्याय अभेद के आश्रय से, अभेद के लक्ष्य से (उत्पन्न) होती है। फिर भी यह पर्याय का कारण अभेद को लक्ष्य में किया, यह कारण नहीं। आहाहा! निर्मल सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह स्वयं अपने कारण से है और स्वयं अपना कार्य है। आहाहा! समझ में आया?

ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा, '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' भगवान सत्यार्थ भूतार्थ परमार्थ पारिणामिक ज्ञायकभाव त्रिकाल, इसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। आया न? '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' यह अपेक्षित बात है। बाकी निश्चय से तो सम्यग्दर्शन की पर्याय तो स्वयं कारण और स्वयं कार्य है। पर्याय में करण, कार्य, सम्प्रदान, अधिकरण सब पर्याय में है। आहाहा!

मुमुक्षु : आश्रय का क्या हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय हुआ। पर में लक्ष्य जाता है इतना आश्रय। वह आश्रय देते नहीं। चन्दुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : आश्रय अर्थात् सन्मुखता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर ऐसा लक्ष्य गया, बस इतना। इस अपेक्षा से आश्रय कहा। बाकी यह भी पर्याय के सामर्थ्य से लक्ष्य गया है। द्रव्य का सामर्थ्य है तो पर्याय का लक्ष्य इस तरफ गया (ऐसा नहीं) समझ में आया? क्या कहा? पर्याय अपनी स्वतन्त्र सामर्थ्य रखती है। पूरे द्रव्य का ज्ञान होने में अपनी पर्याय की ताकत है। यह द्रव्य है तो द्रव्य का ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! पर्याय की स्वतन्त्रता इतनी है।

जैसे लोकालोक है तो केवलज्ञान है — ऐसा है नहीं। इसी तरह द्रव्य है तो पर्याय में द्रव्य का ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! पर्याय की सामर्थ्य इतनी है कि पूरा द्रव्य पूर्णानन्द के नाथ का ज्ञान और श्रद्धा कर लेती है। फिर भी वह द्रव्य में प्रवेश नहीं करती और द्रव्य पर्याय में प्रवेश करता नहीं। समझ में आया? ऐसा मार्ग है परन्तु लोगों को सत्य बाहर आने पर भी समझ में नहीं आता, इससे इसका विरोध करते हैं। निश्चय से तो अपना विरोध करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं कि जो कारणपरमात्मा पर्याय के कार्य का कहा, वह

नहीं, कहते हैं। हेतु पर हेतु तो नहीं परन्तु कारणपरमात्मा (भी हेतु नहीं)। वास्तव में पर्याय का हेतु स्वतन्त्र सत् पर्याय है। सत् है, वह अहेतुक है। उसमें कोई हेतु है, हेतु आया न? हेतु न। व्यवहार हेतु कहने में आया परन्तु निश्चय से हेतु नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। एक समय की पर्याय में द्रव्य का पूरा ज्ञान होता है, फिर भी पर्याय में द्रव्य नहीं आता। द्रव्य को पर्याय स्पर्श करती नहीं, पर्याय द्रव्य को छूती नहीं। फिर भी पर्याय में द्रव्य हेतु है तो पर्याय हुई, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : तो फिर लक्ष्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस पर्याय का सामर्थ्य इतना है कि इसमें झुक जाती है, बस! इतना। यह अपने सामर्थ्य से झुकती है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वहाँ समयसार ७२ गाथा में कहा न? आत्मा दुःख का कारण नहीं और दुःख का कार्य नहीं। ऐसा छठवें बोल में आया है। छह बोल हैं न? आस्रव जो विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव कारण नहीं, अपने की मोक्ष मार्ग की पर्याय में वह कारण नहीं। क्योंकि वह दुःख है। आत्मा के आनन्द का परिणमन स्व के आश्रय से होता है, यह आनन्द के परिणमन का कारण, यह दुःख, यह आस्रव नहीं। और दुःख आस्रव का कार्य आत्मा की पर्याय नहीं। समझ में आया? आहाहा! निर्मल सम्यक् पर्याय ने द्रव्यस्वभाव का आश्रय लिया। आश्रय का अर्थ इस तरफ झुकी, बस। समझ में आया? निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय और स्वरूपाचरण आनन्द की पर्याय उत्पन्न हुई, इस पर्याय में आस्रव कारण नहीं और वह पर्याय का कार्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? और इस पर्याय में कारणपरमात्मा (कारण है, ऐसा) कहना, यह भी भेद अपेक्षा से कथन है। है?

जीव हेतु है, वह व्यवहार। वह व्यवहार पक्ष है। और जीव हेतु नहीं। यह बात सच्ची है परन्तु हेतु नहीं, ऐसा विकल्प का पक्ष करना, वह भी दुःखदायक है। पक्ष की बात है। यहाँ पक्ष की बात चलती है न? समझ में आया? पक्ष अर्थात् शुद्धचिदानन्द भगवान परमात्मस्वरूप, उसकी पर्याय में कोई कारण नहीं और वह पर्याय किसी का कार्य नहीं, ऐसा विकल्प उठाना, (वह भी पक्ष है)। मैं कोई हेतु नहीं। हेतु है, वह तो व्यवहार में गया, इसका तो निषेध करते आए हैं परन्तु में राग का, व्यवहार का हेतु नहीं, ऐसा भी विकल्प का पक्ष है। भगवान आत्मा पक्षातिक्रान्त है। आहाहा! समझ में आया? पक्ष में

तो विकल्प उठता है, वह राग है, आस्रव है, दुःख है, जहर है। यह कठिन बात है ? और उसके कारण आत्मा में धर्म की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, बापू ! लोगों को कहाँ अन्दर गरज पड़ी है, अन्दर ? अरे रे ! मैं कहाँ जाऊँगा आँख बन्द करके ? देह तो छूट जाएगा, बापू ! देह तो परमाणु है। एक क्षेत्र में आये हैं। एक क्षेत्र अर्थात् आकाश के एक क्षेत्र में। अपने क्षेत्र में शरीर का क्षेत्र नहीं और शरीर के क्षेत्र में आत्मा का क्षेत्र नहीं। एक आकाश की अपेक्षा से आत्मा वहाँ शरीर, ऐसा कहने में आता है। वह भी आकाश के प्रदेश में भी आत्मा का शरीर का क्षेत्र है, ऐसा भी नहीं। आत्मा का क्षेत्र आकाश के प्रदेश में है, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! भगवान स्वतन्त्र निरालम्बी पर को जिसका आलम्बन नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

समवसरण (स्तुति में) आया है न ! पण्डितजी ने समवसरण स्तुति की है न ! जैसा आत्मा निरालम्ब ऐसे सर्वज्ञ भगवान का शरीर अन्तरिक्ष में निरालम्ब रहता है। समवसरण स्तुति बनायी है न पण्डिजी ने ! ऐसा निरालम्ब आत्मा, ऐसा निरालम्ब भगवान। शरीर परम औदारिक पाँच हजार धनुष ऊँचे कमल के ऊपर भी शरीर नहीं। आहाहा ! अरे ! सिंहासन ऊपर भी शरीर नहीं। शरीर अन्तरिक्ष (रहता है)। अन्तरिक्ष में वह झगड़ा था न ? अन्तरिक्ष किसका है ? परन्तु अन्तरिक्ष तो दिगम्बर में ही है, दूसरे है ही नहीं। श्वेताम्बर में अन्तरिक्षपना तो है ही नहीं। वह तो नीचे उतरते हैं, प्रतिशिला ऊपर। ऐसा पाठ है।

यहाँ तो भगवान को जब सर्वज्ञपद प्राप्त हुआ तो पाँच हजार धनुष ऊपर शरीर और उसके भी नीचे सिंहासन और कमल ऊपर, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, शरीर को भी नीचे आलम्बन नहीं। आहाहा ! इनको परमात्मा सर्वज्ञ कहते हैं। शरीर को भी आलम्बन नहीं तो आत्मा तो कहाँ रहा ? अध्धर रहते हैं... आहाहा ! भगवान आत्मा तो राग के आलम्बन बिना की चीज़ है। आहाहा ! एक भाव भी यथार्थ बैठे तो सब भाव यथार्थ बैठें। एक भाव का भी जहाँ ठिकाना नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, एक हेतुनय का पक्ष है और जीव हेतु नहीं, ऐसे दूसरे नय का पक्ष है। पक्ष की बात चलती है। उसका भी यहाँ निषेध करते हैं। आहाहा ! व्यवहार से निश्चय होता है। यह बात तो कहाँ रह गयी। परन्तु मैं दूसरे का कारण नहीं, मेरा कारण पर में नहीं,

ऐसे पक्ष के विकल्प को भी छोड़ देना है। वह पक्ष में रहता है, उसको आकुलता रहता है। आहाहा! मार्ग बहु, बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर आत्मा ही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी परमेश्वर शक्ति से भरा है। भगवान सर्वज्ञ और सर्वदर्शी से भरित अवस्थ (है)। आता है? आहाहा! अवस्थ अर्थात् वहाँ अवस्था नहीं लेना। अब अर्थात् नीचे स्थ।

सर्वज्ञ-सर्वदर्शीस्वभाव। वह सर्व को देखता है, इसलिए सर्वदर्शी ऐसा नहीं। अपना आत्मज्ञ स्वभाव ही अपना है। आहाहा! अपने में रहकर पर को छुए बिना और पर की सत्ता है तो सर्वज्ञपना प्रगट हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा किसी का कारण नहीं। कारण नहीं, ऐसा पक्ष भी पक्षातिक्रान्त होने से छूट जाता है। आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! है?

इस प्रकार **चित्स्वरूप जीव के विषय दो नयों के दो पक्षपात है।** आहाहा! व्यवहारनय का पक्ष तो हमें छुड़ाते आये हैं, परन्तु निश्चय कारण नहीं — ऐसे निश्चय का पक्ष भी छुड़ाते हैं। आहाहा! भगवान ज्ञाता-दृष्टा आनन्दस्वरूप प्रभु, उसमें हेतु नहीं, ऐसा पक्ष भी विकल्प है, वह भी खटकता है। आँख में जैसे कणिका खटकती है, छोटा कण हो वो भी आँख में खटक-खटक (होती है)। ऐसे मैं हेतु नहीं, ऐसा विकल्प भी खटकता है। धन्नालालजी! तकरार (करे)। इसमें वाद-विवाद कैसे करना? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा देवाधिदेव ऐसा वर्णन करते हैं। यह सन्त आडतिया होकर सर्वज्ञ का माल जगत को बताते हैं। प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरी चीज़ दूसरे को कारण नहीं, ऐसा विकल्प भी खटकता है, दुःख है। आहाहा! धर्मी को... है? **जो तत्त्ववेदी....** देखो! पक्षपात छोड़कर तत्त्ववेदी। अपने चैतन्यतत्त्व का वेत्ता जाननेवाला, अनुभवनेवाला। आहाहा! तत्त्ववेदी पक्षपातरहित है। तत्त्ववेदी, पहले पक्षपात कहा था, अब, यह तत्त्ववेदी। चैतन्यस्वरूप भगवान आनन्दस्वरूप का वेदन करनेवाला तत्त्ववेदी समकिती जीव। आहाहा! समझ में आया?

छहढाला में भी आता है न? ध्याता, ध्यान और ध्येय। जहाँ वचन का विकल्प भी नहीं। वह छहढाला में आता है। विकल्प जरा भी नहीं। आहाहा! मैं ध्यान करनेवाला हूँ,

मैं ध्येय हूँ और मैं ध्याता हूँ। यह भी एक विकल्प है। आहाहा! तत्त्ववेदी, ऐसा कहा न? पक्षपात छोड़ दिया। तत्त्व चैतन्यमूर्ति भगवान, आनन्द तत्त्व का वेदनेवाला, वीतरागभाव का वेदन करनेवाला पक्षातिक्रान्त हो गया। आहाहा!

तत्त्ववेदी, है? पक्षपातरहित है, उसको निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है। '**च्युत पक्षपात**' है न? अर्थात् रहित कहा। पक्षपात से च्युत हो गया, भ्रष्ट हुआ। पाठ में है न? पाठ में है। '**च्युत पक्षपात**' आहाहा! अपना भगवान आनन्दस्वरूप, उसके अनन्त गुण की अनन्त पर्याय व्यक्त पर्याय को वेदनेवाला। तत्त्ववेदी अर्थात् यह। तत्त्व अर्थात् भगवान आत्मा, उसकी अनन्त शक्तियाँ। अमाप शक्ति, अमाप शक्ति और एक-एक शक्ति का अमाप सामर्थ्य। पर्याय में अनन्त शक्तियों का अंश व्यक्तरूप प्रगटरूप से वेदनेवाला। आहाहा! समझ में आया? पर्याय में वेदनेवाला। द्रव्य और गुण तो वेदन में आते नहीं। आहाहा! तत्त्ववेदी पक्षपातरहित है, पक्षपात से च्युत है। इसको निरन्तर... आहाहा! अन्तर बिना चित्स्वरूप जीव भगवान आनन्द का वेदन निरन्तर—अन्तर पड़े बिना (वेदता है)। आहाहा! बीच में विकल्प का विघ्न आये बिना। निरन्तर है न? आहाहा! निरन्तर चित्स्वरूप जीव। वह तो ज्ञानस्वरूपी, वह ज्ञानस्वरूप ही है। आहाहा! ज्ञान, ज्ञान को जानता है — ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। आहाहा! वह तो चित्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप (है)। ज्ञानप्रधानता से कथन है, बाकी तो सर्व गुण सम्पन्न स्वरूप ही है, गुण सम्पन्न तो गुण सम्पन्न है बस। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय और सम्यग्दर्शन की पर्याय का वेदन। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन की पर्याय का विषय पूर्णानन्द का नाथ है और वेदन में पर्याय है। वेदन में द्रव्य-गुण नहीं आते। द्रव्य-गुण का ज्ञान होता है, परन्तु वेदन में तो एक समय की पर्याय का वेदन है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय को वेदता है। वेदता है अर्थात क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय अनुभवता है। वेदता है अर्थात् पर्याय का अनुभव है। आहाहा! अलिंगग्रहण में बीसवें बोल में आया है। बीस बोल हैं, उनमें बीसवें बोल में आया है। आहाहा! प्रत्याभिज्ञान का कारण ऐसा जो द्रव्य, उसको छुए बिना आत्मा

शुद्धपर्यायस्वरूप है। आहाहा! क्योंकि वेदना में पर्याय आती है। वह मेरा स्वरूप। बस। ध्रुव वेदन में नहीं आता। भले उसका लक्ष्य किया पर वेदन तो पर्याय का है। यह क्या कहा? प्रत्याभिज्ञान का कारण जो त्रिकाली द्रव्य सामान्य। वह सामान्य को स्पर्शे बिना वर्तमान अपनी निर्मल पर्याय वेदती है तो वह आत्मा शुद्धपर्यायस्वरूप ही है। ऐसा वहाँ कहा है। हमारे तो वेदन में आया, वह आत्मा... आहाहा! बीसवाँ बोल है। अलिंगग्रहण का बीसवाँ बोल है न?

अठारहवाँ बोल यह है कि गुणी और गुण का विशेष जिसमें नहीं। अर्थावबोधरूप गुणविशेष का जिसमें ग्रहण नहीं। यह अठारहवाँ बोल है। क्या कहा? भगवान अनन्त गुणी है और इसमें अनन्त आनन्द गुण है, ऐसा अर्थावबोधरूप पदार्थ का ज्ञान और पदार्थ का गुण, ऐसा गुणभेद जिसमें नहीं। अर्थावबोधरूप गुण विशेष जिसमें नहीं, ऐसी एकरूप वस्तु को द्रव्य कहते हैं। समझ में आया? दृष्टि का विषय द्रव्य, गुणभेद बिना बनाया।

और फिर उन्नीसवें बोल में ऐसा कहा, अर्थावबोधरूप पर्याय विशेष जिसका ग्रहण नहीं ऐसा द्रव्य। उन्नीसवाँ बोल है। पर्यायविशेष का जिसमें ग्रहण नहीं। अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष का जिसमें (ग्रहण नहीं)। शब्द तो अर्थावबोध लिया है, पदार्थ का ज्ञान परन्तु वहाँ अकेला ज्ञान नहीं लेना। वहाँ ज्ञान शब्द कहकर अनन्त गुण लेना। समझ में आया? पाठ तो ऐसा है। १८-१९ दोनों में पाठ ऐसा है। अर्थावबोधरूप गुण विशेष जिसको नहीं, ऐसा द्रव्य है। अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष जिसको नहीं ऐसा द्रव्य है। अर्थावबोध की प्रधानता से कथन है। परन्तु पदार्थ का जितना गुण वह गुण और गुणी के भेदरहित भगवान आत्मा है, वह दृष्टि का विषय है। ऐसे पर्याय में भी शब्द ऐसा लिया है। गम्भीर शब्द, शास्त्र के (शब्द) गम्भीर बहुत। सन्त वीतरागी मुनि दिगम्बर... ओहोहो! परमात्मा का पद इन्होंने खोल दिया। क्या कहते हैं? आहाहा!

अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष जिसमें नहीं। आहाहा! पर्याय का भेद नहीं — ऐसा द्रव्यस्वरूप, इसको सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं। यह तो ठीक, परन्तु बाद में बीसवें बोल में तो... आहाहा! जो द्रव्य को स्पर्शती नहीं, ऐसी पर्याय अपना वेदन करती है तो इस पर्याय को ही आत्मा कहा बस! क्योंकि वेदन में मुझे आनन्द आया, अनन्त गुण की शक्ति

की व्यक्तता का अंश प्रगट में वेदन में आया, बस, वह आत्मा। अलिंगग्रहण के बीसवें बोल में ऐसा लिया है। समझ में आया?

यहाँ तो यह कहा, हेतु नहीं, ऐसा भी पक्षपात भी छोड़ दे। आहाहा! यहाँ तो कारण पर है न... यह व्यवहार का कथन आता है। दो कारण का कार्य, ऐसा 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' में आता है न? पण्डितजी! तत्त्वार्थराजवार्तिक में बहुत आता है। दो कारण का कार्य। बाह्य और अभ्यन्तर, दोनों। यह तो बाह्य का ज्ञान कराया है। यह प्रमाण का ज्ञान कराया है। प्रमाणज्ञान भी सच्चा कब होता है? इसमें निश्चय तो रखा ही है। इसके उपरान्त निमित्त का ज्ञान कराने के लिए बाह्य, अभ्यन्तर कारण कहा है। प्रमाण निश्चय का निषेध करके निमित्त का ज्ञान कराता है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। नहीं तो वह प्रमाण नहीं रहता। निश्चय से तो आत्मा किसी का वेदक है नहीं, अपनी पर्याय का ही वेदक है, बस। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से तो पर का कारण आत्मा बिल्कुल नहीं। राग का कारण नहीं। अरे! पर्याय का निश्चय द्रव्य कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी पर्याय वेदनरूप है, वह आत्मा है, ऐसा वहाँ कहा। वह आत्मा है। हमारे तो वेदन में आया, वह आत्मा। ध्रुव वेदन में नहीं आता, भले ही लक्ष्य वहाँ था। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो वीतराग मार्ग! सन्त... बात तो वह अलौकिक है। समझ में आया? दिगम्बर सन्त और परमेश्वर ऐसी व्याख्या करें, वह तो अलौकिक है! साधारण जीव की यह हैसियत नहीं।

मुमुक्षु : ...किबाड़ खुल जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : खुल जायें ऐसी ही चीज़ है, भगवान! यह श्लोक पूरा हुआ। दूसरा श्लोक।

कलश-७९

(उपजाति)

एकस्य कार्यं न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।34-79।।

अर्थ-जीव कार्य है, ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव कार्य नहीं है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।34-79।।

कलश - ७९ पर प्रवचन

एकस्य कार्यं न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।34-79।।

'**पातः**' लेना। '**स**' इस ओर है न? '**स**' है न? '**स**' का विसर्ग है। '**च्युतपक्षपातः**' ऐसे लेना। इस तरफ किसका विसर्ग लेना। हम कोई संस्कृत नहीं जानते, हों! यह तो शब्दार्थ करने में इनका प्रमाण खुल जाता है। समझ में आया? संस्कृत तो हम थोड़ा पढ़े हैं संसार में। क्या कहते हैं? पाँच सन्धि। पाँच सन्धि पढ़े हैं। वह क्या नाम है? व्याकरण। सारस्वत व्याकरण। सारस्वत व्याकरण आती है। इसमें पाँच सन्धि एक ब्राह्मण को महीना-डेढ़ महीना रखकर पैसा देकर पढ़ा था, उससे पढ़े थे, दुकान छोड़कर। पाँच सन्धि। बाद में मैंने उससे — संस्कृतवाले को एक प्रश्न किया। यह संस्कृत पढ़-पढ़कर सही अर्थ कर सकते हैं या नहीं? (संवत्) १९६९ की बात है। संवत् १९७० में दीक्षा ली। १९६९ की बात है। ६९ समझे? सत्तर में एक कम। मैंने प्रश्न किया, पण्डितजी! दस

अट्ठय ठाणा... ऐसा एक शब्द 'दशवैकालिक' में है। वह दस अट्ठय ठाणा... वह अठारह बोल साधु के हैं। वहाँ दस अट्ठय अर्थात् दस और आठ = अठारह ऐसे लेना है.... जो अज्ञानी अठारह में से एक बोल छोड़ दे, वह साधु नहीं। मैंने प्रश्न किया कि, यह दस और आठ का क्या अर्थ करना ? दस में आठ मिलाना या दस में से आठ... क्या करना ? संस्कृत पढ़ानेवाले को भी शास्त्र का अर्थ बराबर नहीं बैठता। दस और आठ, ऐसा शब्द है। तो दस और आठ अठारह के दस गुणा आठ अस्सी, क्या लेना ? १९६९ की बात है। जो संस्कृत पढ़ाता था, उससे मैंने पूछा। यह हमको सही नहीं बैठता। यह तो गुरुगम से सिद्धान्त की पद्धति का ख्याल हो... समझ में आया ?

एक बार एक प्रश्न किया। यह १९६९ के वर्ष की बात है। दीक्षा लेने के बाद एक व्याकरणवाला 'बनारस' का आया। वहाँ का पढ़ा-बढ़ा पण्डित। बेचारा सुनने आया। मैंने कहा, पण्डितजी ! इसका अर्थ करो। मैं कहता हूँ इसका अर्थ करो। संजोगी केवली, इसका अर्थ करो। संजोगी, ऐसा शब्द लिया। ... कहा, संजोगी केवली। इसने कहा, सं-जोगी, जोगवाला संजोगी, वह केवली। मैंने कहा, सं शब्द ही झूठा है। सजोगी केवली ऐसा है। हमारे तो बहुत परिचय में आ गया। संजोगी नहीं, संजोगी होता ही नहीं। सजोगी केवली। ऊपर बिन्दी है वह गलत है। जोगसहित केवली, इसका अर्थ सजोगी केवली है। संजोगी केवली नहीं। यह (संवत्) १९८० की बात है। बनारस से बड़ा पण्डित आया था। माणेकचन्दजी थे, इनका भानेज था। इसको पूछा, यह व्याकरण बहुत जानता है तो शब्दार्थ में जोगसहित केवली ले के संजोगी केवली लेते हैं ? इसने कहा पता नहीं। हम तो संजोगी ऐसे लेते हैं। मैंने कहा, भाई ! ऐसा नहीं। सजोगी केवली। जोगसहित केवली को सजोगी कहते हैं और चौदहवें गुणस्थान में अजोगी केवली। यह तो (संवत्) १९८० की बात है, भाई ! तुम्हारे जन्म से पहले की बात है। कितने वर्ष हुए ? ५३ वर्ष हुए। कहा, माल आता है या नहीं ? अकेला व्याकरण और शब्दार्थ करे, इसमें क्या है ? समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, देखो ! **जीव कार्य है, ऐसा एक नय का पक्ष है....** पर का कार्य है। राग है तो धर्म का कार्य हुआ, ऐसा एक नय का पक्ष है। व्यवहार है, राग धर्म का हेतु है तो कार्य हुआ, ऐसा एक नय का पक्ष है। इसका तो हम निषेध करते ही आये हैं। व्यवहार

का तो निषेध करते आये हैं। **और जीव कार्य नहीं...** यह किसी का कार्य है ही नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय है तो निश्चय कार्य सम्यक् हुआ ऐसा है ही नहीं। है नहीं, यह बात सत्य है, परन्तु इसका पक्ष विकल्प है, यह असत्य है। आहाहा! कहो, कपूरचन्दजी! समझ में आया? है?

जीव कार्य नहीं... भगवान किसका कार्य? आहाहा! कार्य शब्द अकेला द्रव्य-गुण नहीं। इसका द्रव्य, गुण और पर्याय किसी का कार्य नहीं। समझ में आया? अपना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का कार्य व्यवहार से कारणपरमात्मा है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? परन्तु व्यवहाररत्नत्रय का यह कार्य है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, डाह्याभाई! लोगों को बाद में ऐसा लगता है कि ऐ बापू! मार्ग तो यह है, भगवान! अरे! जन्म-मरण का छेद करके... समझ में आया? आत्मा दृष्टि में लेना, यह कोई अलौकिक बातें हैं। चारित्र की तो बात क्या करना, यह तो अलौकिक बातें हैं। यह चारित्र तो परमेश्वरपद में मिल गया। चारित्र अर्थात् क्या? यह व्रत, तप, वह चारित्र नहीं। आहाहा

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का वेदन हुआ, यह वेदन किसी का कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं। बाद में इस आनन्द में लीन होना, अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होकर, अतीन्द्रिय आनन्द की वृद्धि होना, इसका नाम चारित्र है। ऐसी व्याख्या। यहाँ तो पंच महाव्रत को (चारित्र मानते हैं), इसका भी कहीं ठिकाना है। पंच महाव्रत (पालकर) नौवीं ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो', यह चीज़ तो अभी है भी नहीं। शुक्ललेश्या। नवमीं ग्रैवेयक जाये। अभव्य और भव्य। अनन्त पुद्गलपरावर्तन किए। नवमी ग्रैवेयक के भी अनन्त पुद्गलपरावर्तन भव किए। इतनी बार अनन्त बार द्रव्यलिंग धारण किये। पंच महाव्रत आदि द्रव्यलिंग। आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा अन्दर राग से भिन्न है। अपने सम्यग्दर्शन में किसी की अपेक्षा नहीं। अपेक्षा कहनी हो तो भगवान कारणपरमात्मा की व्यवहार अपेक्षा कहने में आती है। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं, **जीव कार्य नहीं है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है;...** ऐसा लिया न? कार्य नहीं, ऐसा पक्ष। यह भी दुःखरूप है, प्रभु! छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? जामनगर दरबार गुजर गये न? जामनगर दरबार। रणवीरसिंह। उसकी शादी हुई थी तो उसको

ज्योतिषी ने कहा था कि तुझे स्त्री से मिलना होगा तो तेरी मृत्यु हो जायेगी। इसलिए स्त्री से शादी नहीं की। इसको पुत्र नहीं था, भतीजा था। इसने पहले कह दिया था कि मेरी मृत्यु हो जाये तो इसे राज्य दे देना। क्या नाम कहा ? दिग्विजय। दिग्विजय, इसका भतीजा था। दिग्विजय मुम्बई था, यहाँ उसका काका गुजर गया। तार किया, आओ। क्योंकि उसको राज देना था न ? राज देना था। तब तक उसे राजा होनेवाला हूँ, राजा होना है, राजा होना है, ऐसा विकल्प रहता था। राजा हो गया, फिर राजा होना है, ऐसा विकल्प आयेगा ? समझ में आया ? ऐसे यहाँ क्या लेना है ? वह दिग्विजय था। उसके पास मैं गया था। इसके बँगला के पास जंगल जाता था। दिग्विजय। जामनगर बाहर बँगला है। आधे मील दूर हम दिशा जाते थे। इसका बँगले से थोड़ा दूर था। उसको खबर पड़ी कि महाराज यहाँ जंगल आते हैं। इसको आँख की तकलीफ थी। उसने कहा, महाराज! हमें दर्शन करना है। आप मेरे बँगले के पास आते हो तो मेरे बँगले में मुझे दर्शन देने आओ। उसकी रानी बहुत होशियार थी। बहुत करोड़ों रुपया, करोड़ों की आमदनी करता था। वह और रानी दो थे। मैं गया। बड़ा बँगला था। वहाँ रंगोली की थी। रंगोली समझे न ? मकान तक पूरी। स्त्री बाहर खड़ी रही और दरबार भी वहाँ खड़ा था। मैं गया और सुनाया। कहा, यह राज नहीं। अनन्त आनन्द स्वरूप भगवान आत्मा राजते शोभते, वह राजा। इसको साम्राज्य कहते हैं, वह धूल का राजा नहीं। हमें कहाँ कुछ लेना था। सुना बेचारे ने, हों! रानी तो बोली। रानी राजा से बहुत होशियार थी। महाराज! सच्ची बात है। एक हजार रुपया दिये। दस मिनिट बैठे थे मात्र दस मिनिट। हम तो जंगल गये थे न ?

मुमुक्षु : दस मिनिट के एक हजार।

पूज्य गुरुदेवश्री : हजार न गिनो तो... हम तो जंगल गये थे। बाद में व्याख्यान का समय हो गया था। इसलिए पाव घण्टा वहाँ मुश्किल से रुका होऊँगा। बाद में वहाँ से तंबोली के घर गया था। तंबोली है न अपना ? छवलबेन। फूलचन्द भाई की बहिन, इसके घर गया। बाद में व्याख्यान का समय हो गया। इसने एक हजार रुपया दिया। हमने 'मोक्षशास्त्र' में लगा दिए न। मोक्षशास्त्र में अपने सामने। दरबार ने एक हजार रुपया दिया है... पुस्तक में दिया। इसमें क्या ? हजार, लाख, करोड़ की कीमत क्या ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मैं राजा हूँ, मैं राजा हूँ, मैं राजा हूँ, ऐसा विकल्प होता था। तब तक राजा न हुआ (सिंहासन) पर बैठ गया, बाद में राजा हूँ, ऐसा विकल्प है ? ऐसे मैं अभेद हूँ, मैं किसी का कार्य नहीं, ऐसा विकल्प था। परन्तु गद्दी पर बैठ गया, अन्दर वेदन में आ गया तो विकल्प छूट गया। प्रियंकरजी ! अपने तो यह दृष्टान्त का काम है न ? आहाहा ! ऐसा हुआ था।

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट उदाहरण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसका काका गुजर गया, तब वह यहाँ नहीं था। काका कह गया था, इसको राज देना। लड़का तो उसके था नहीं। वह मुम्बई में था, और अकस्मात हो गया। ऐसा अन्दर हुआ था। किसी ने जहर दिया था। इसमें देह छूट गया। ऐसी बात थी, लम्बी है। कोई डॉक्टर ने जहर का इंजेक्शन दिया। देह छूट गया। भतीजा मुम्बई था। बाद में अहमदाबाद आया। वहाँ तार दिया कि जल्दी आओ। देह छूट गया है। राजगद्दी बैठायें बाद में मुर्दा को बाहर निकालें।

ऐसे यहाँ आत्मा आनन्दनाथ प्रभु। आहाहा ! मैं कोई का कार्य नहीं, कोई का कारण नहीं। यह यथार्थ बात है। परन्तु यह भी जहाँ तक विकल्प के पक्ष में रहता है, तब तक राजगद्दी नहीं मिलती। राज्यते शोभते इति राजा। भगवान आनन्द और शान्ति से शोभे, वह आत्मराजा। आहाहा !

मुमुक्षु : राज के लिए जहर का इंजैक्शन दिया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राज शब्द का अर्थ ऐसा है, राज्यते शोभते इति राजा। हमारे पण्डितजी समझ गये। राजते आता है न ? १७-१८ गाथा में आता है। १७-१८ गाथा में राजा को जाने कि यह चिह्न है, पुण्यवन्त है। ऐसे देखते हैं न ? कि यह राजा है। बाद में राजा की सेवा करते हैं। राजा है बराबर निश्चय करते हैं। १७-१८ (गाथा)। यह राजा है। पुण्यवन्त दिखता है। राजा कहीं साधारण दिखनेवाला होता है ? वह तो पुण्यवन्त दिखता है, अन्दर तेज दिखता है, इसके कपड़े देखो। वह तो राजा है (ऐसा निश्चित करे)। बाद में उसकी सेवा करे। श्रद्धा करे और फिर सेवा करे। ऐसा भगवान आत्मा वह १७-१८ गाथा में दृष्टान्त आया है। ऐसे जीवराज।

ऐसे भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण से राजते शोभते (राजा है)। प्रभु! आहाहा! यह आया राज्यते पहले प्रतीति करे, अनुभव करके प्रतीति करे, बाद में इसकी सेवा में जुड़ जाए। भगवान आत्मा की सेवा, हों! राज्यते इति। यह चारित्र। उसका मोक्ष होगा। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।** आहाहा! विकल्प से पार होकर वेदन आया। वह वेदन में बाद में फिर भेदज्ञान करना नहीं पड़ता, ऐसा कहते हैं। क्या कहा, यह निरन्तर शब्द का अर्थ है। विकल्प से भिन्न पड़कर भेदज्ञान में आत्मा का वेदन हुआ, बाद में भेदज्ञान नहीं करना पड़ता कि यह विकल्प है और यह मैं हूँ। यह तो भेदज्ञान हुआ, यह हुआ, यह निरन्तर रहता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है वह दुनिया में बाहर में रचापचा है। धन्धा, व्यापार और धर्म के बहाने क्रियाकाण्ड में रचापचा रहता है और यह बात कठिन लगती है। क्या करें बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! जन्म-मरण कर-करके फोक निकल गया है, बापू! एक श्वास में अठारह भव निगोद के। ऐसे अनन्त बार किये हैं और माता के पेट में, एक बार कहा था न? एक बार (माता के पेट में) रहे तो बारह वर्ष रहे। ऐसा पाठ है। सवा नव महीना साधारण नियम है। हमारी काठियावाड़ी भाषा में इसको छोड कहते हैं। पेट में बालक रहे तो उत्कृष्ट बारह वर्ष रहे। इसको कितना दुःख होगा? उल्टे माथे लटकता है। आहाहा! श्वास लेने का स्थान नहीं। आहाहा! माता खाती है इसको ऐंठुं (उल्टी खाता है)। ऐंठने क्या कहते हैं? जूठा। ऐंठ अन्दर। आहाहा! प्रभु तो ऐसा कहते हैं, एक बार ऐसा हो और दूसरी बार भी ऐसा हो कि शरीर छूटे बाद में वहीं का वहीं दूसरी बार आये। दूसरी बारह वर्ष अथवा दूसरी स्त्री की कूख में। चौबीस वर्ष की कायस्थिति गर्भ में रहने की है। ऐसा तो अनन्त बार किया है। एक बार नहीं, अनन्त बार। आहाहा! उसमें से निकलने का उपाय तो यह एक ही है। आहाहा! समझ में आया?

मैं शुद्ध चिदानन्द प्रभु किसी का कार्य नहीं और किसी से मेरा कार्य नहीं होता। आहाहा! यह कितने में हुआ? ७९? ७९। अब ८०।

कलश-८०

(उपजाति)

एकस्य भावो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।35-80।।

अर्थ-जीव भाव है (अर्थात् भावरूप है), ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव भाव नहीं है (अर्थात् अभावरूप है), ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।35-80।।

कलश - ८० पर प्रवचन

एकस्य भावो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।35-80।।

आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य! यह तो आत्मा तो आत्मा ही है। आनन्द वो आनन्द है, ज्ञान वह ज्ञान ही है। आहाहा! एक का पक्ष है कि भावरूप आत्मा है। भाव... भाव। बात सत्य है कि भावरूप है सही। परन्तु वह पक्ष का विकल्प है, वह झूठा है। भावरूप है, दूसरे नय का पक्ष है कि भावरूप नहीं, अभावरूप है। पर की अपेक्षा से अभावरूप है, स्व की अपेक्षा से भावरूप है। परन्तु यह अभावरूप है, वह व्यवहारनय का पक्ष है। भावरूप है, यह निश्चयनय का पक्ष है। समझ में आया? परन्तु भाव... भाव... भाव... भवन... भाव — ऐसा विकल्प है, वह पक्ष है। आहाहा! यह आया न?

जीव भाव नहीं (अर्थात् अभावरूप है) ऐसा दूसरे नय का पक्ष है, ऐसा चित्स्वरूप जीव के बारे में... ज्ञानस्वरूप भगवान तो आत्मा है। वह जाननेवाला देखनेवाला

है। विकल्प-फिकल्प इसमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **ऐसे चित्स्वरूप जीव के विषय में दो नयों के दो पक्षपात हैं।** दो नयों के दो विकल्प हैं, पक्षपात हैं। **जो तत्त्ववेदी....** आहाहा! वह भी एक मत है, हों! (संवत्) १९८९ का चौमासा था न? राजकोट में। एक राणपुरवाला बीसाश्रीमाली मन्दिरमार्गी आया था। मुझे ऐसा हुआ है कि अनुभव है। वस्तु है या नहीं? तो कहे, वस्तु नहीं। कहीं कुछ खबर नहीं और चढ़ा दिया। वस्तु नहीं तो भाव है या नहीं? तो कहे भाव-वाव नहीं। आहाहा!

दो महीने पहले एक आया था। कहा था न? मैं तीर्थंकर हूँ। अच्छा! चाँदमलजी प्रतापगढ़वाला आया था। नहीं सुना? एक महीने पहले पत्र आया था कि मैं तीर्थंकर हूँ। शलाका पुरुष के साथ जन्मा हूँ। चौबीस तीर्थंकर की चौबीसी हमारे से हो गयी है। मैं वहाँ आनेवाला हूँ। तो मेरी सुविधा (रहने की व्यवस्था) करके रखना। यहाँ तो सुविधा नहीं है। उसने कहा कि आश्रम बनाओ। मैं तीर्थंकर हूँ। चार घातिकर्म का नाश हुआ है। मैं सच कहता हूँ। अरे! भगवान! यह कहाँ आ पड़ा, ऐसा आदमी है। ऐसी स्थिति बाहर आयी। इतना-इतना तत्त्व (बाहर आया)....

मुमुक्षु : पैसा नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के पास कहाँ पैसा था? भगवान को अघाति कर्म था तो पैसा नहीं था। मेरे अघातिकर्म बाकी हैं तो पैसा नहीं... चन्दुभाई! सुना था या नहीं?

मुमुक्षु : डॉक्टर के पास भेज देना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाद में पीछे दाँत निकाले। मैंने कहा, भाई! तू मिथ्यादृष्टि है तो भी बाद में खड़ा होकर पाँव लगे, स्पर्श करे। मैंने कहा, बापू! ऐसा होता है? अरे! बापू! सम्यग्दर्शन किसको कहना, इसकी भी खबर नहीं और केवली हो गया। पात्रसहित केवली! वस्त्र का टुकड़ा हो तो भी मुनि न हो सके। है दिगम्बर, परन्तु कुछ भान नहीं। दिमाग फिर गया। आहाहा! ऐसी यह जगत में चीज़ है।

यहाँ कहते हैं, भाव। यह राणपुर में आया था। फिर भाव क्या? वस्तु कैसी? अरे! जीव वस्तु? नहीं। यहाँ तो कहते हैं, भाव वस्तु है। अनन्त भाव सम्पन्न प्रभु है, परन्तु विकल्प करना, वह पक्ष नहीं। इसको छोड़कर तत्त्ववेदी तो अपने आनन्द का अनुभव करते हैं, पक्ष में नहीं रहते। विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ६, शनिवार, दिनांक ०३-०९-१९७७
कलश-८१ से ८४, प्रवचन-८५

कलश टीका ८० चला न? एक भाई का प्रश्न था कि यह बोल सूक्ष्म है। सूक्ष्म आ गया न? '**एकस्य सूक्ष्मा**' ७७। सूक्ष्म, यह आत्मा का स्वभाव है। एक सूक्ष्म कहता है, दूसरा कहता है, सूक्ष्म नहीं ऐसा कहता है। यह तो स्थूल व्यवहारनय के विषयवाला (कहते हैं)। इसका तो निषेध करते आये हैं। यहाँ तो आत्मा में सूक्ष्म नाम का गुण है। इसकी पर्याय कहने में आयें तो अनन्त पर्याय हैं। ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, आनन्द सूक्ष्म, अनन्त गुण सूक्ष्म हैं। हिन्दी भाई आये थे। भानुभाई। सूक्ष्म यह।

'चिद्विलास' में लिया है और 'अध्यात्म पंच संग्रह' में सवैया में सूक्ष्म लिया है। इसमें बहुत सूक्ष्म बात ली है। सूक्ष्म गुण है। ज्ञान, दर्शन में सूक्ष्मता है, वह सूक्ष्मता है, वह सूक्ष्म गुण की पर्याय है, ऐसा लिया है। भेद है। समझ में आया? वहाँ शब्द तो पर्याय लिया है। सूक्ष्मगुण की पर्याय। परन्तु इसका अर्थ यह। समझ में आया? सूक्ष्म गुण है। ज्ञान में सूक्ष्मता, दर्शन में सूक्ष्मता, अनन्त गुण में सूक्ष्मता है। ऐसा होने पर भी मैं सूक्ष्म हूँ और अनन्त गुण सूक्ष्म हैं, ऐसा विकल्प उठाना, यह बन्ध का कारण है। आहाहा! स्थूल हूँ, सूक्ष्म नहीं, यह बात तो यहाँ है ही नहीं। यह तो निकाल दी। परन्तु सूक्ष्म वस्तु है और अनन्त गुण की सूक्ष्मता सूक्ष्म अनन्त गुण की पर्याय है, भेद है, ऐसा पाठ है। सवैया में, चिद्विलास में पाठ है। पढ़ा है? भाई! तुमने पढ़ा न? नहीं पढ़ा? इनने तो... बहुत पढ़ा है, यह नहीं पढ़ा होगा, सवैया में लिया है।

गुण सूक्ष्म के अनन्त पर्याय। पर्याय का अर्थ भेद। दीपचन्दजी ने लिया है। ऐसी ही बात चिद्विलास में ली है। एक सूक्ष्म गुण की अनन्त पर्याय। ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, वीर्य सूक्ष्म, सुख सूक्ष्म, सर्व गुण सूक्ष्म। तो सूक्ष्म गुण की पर्याय अनन्त ठहरी। आहाहा! अनन्त गुण में सूक्ष्मता का विस्तार हुआ है।

मुमुक्षु : सूक्ष्म गुण में अनुजीवी और प्रतिजीवी गुण...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ख्याल में है। यह ख्याल तो आ गया है। हमको पहले ही आ गया है। नामकर्म का अभाव, यह सूक्ष्म प्रतिजीवी (गुण) है। वह प्रश्न आ गया है, परन्तु कहा बाहर बहुत नहीं कहना। नामकर्म के अभाव में अमूर्त को सूक्ष्म में डाला है, यह प्रतिजीवी है और यह जीव तो मुख्य वस्तु है। समझ में आया? भाई का प्रश्न अपनी जगह सही है। मेरे दिमाग में पहले आया था। भाई ने प्रश्न किया, तब आया था। भानुभाई! ये।

सूक्ष्म नामकर्म का अभाव, यह अभावस्वरूप प्रतिजीवी सूक्ष्मगुण है और वह... जैसे अगुरुलघु गोत्रकर्म के नाश होने से अगुरुलघु (प्रगट होता है) वह प्रतिजीवी गुण है और अस्तित्व, वस्तुत्व आदि छह सामान्य गुण में अगुरुलघुत्व है, वह अनुजीवी गुण है। समझे, समझ में आया? जितना समझो... यह तो अगाध समुद्र है। आहाहा! भगवान आत्मा... जिनेश्वरदासजी कहाँ बैठा है? ठीक। सहारनपुर के मुख्य हैं। रस है। आहाहा! कितने में आया?

'**एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य**' यह सूक्ष्म गुण लेना। जैसे ज्ञानगुण है, ऐसा सूक्ष्म गुण है। समझ में आया? और यह सूक्ष्म गुण की पर्याय गिनने में आई है। यहाँ और चिद्विलास दोनों जगह। हाँ! यहाँ भी कहा न? यहाँ भी कहा न, गुण सूक्ष्म के अनन्त पर्याय। ज्ञानसूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, वीर्य सूक्ष्म, सुख सूक्ष्म, सर्व गुण सूक्ष्म। सूक्ष्मगुण की पर्याय सूक्ष्म अनन्त फैला। ऐसा विस्तार दीपचंदजी के अलावा किसी ने नहीं किया। शक्ति और गुणों का वर्णन। बहुत क्षयोपशम, बहुत क्षयोपशम। कितनी ही बात तो पकड़ने में नहीं आती। इतना कम क्षयोपशम है। उनका क्षयोपशम तो बहुत था। वहाँ भी यह कहा है। यह चिद्विलास भी इनका है। यह देखो, यह आया, हों! मैंने कहा, कहाँ होगा?

एक सूक्ष्मगुण की अनन्त पर्याय हैं। चिद्विलास में पृष्ठ ८ है। एक सूक्ष्मगुण की अनन्त पर्याय होती हैं। ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म है और इसी प्रकार सभी गुणों की ऐसे ही सूक्ष्म जानना। सूक्ष्म की पर्याय (भी सूक्ष्म है)। आहाहा! सूक्ष्म गुण का ज्ञान सूक्ष्म पर्याय... आहाहा! ऐसी बात दूसरी कहीं नहीं ली। इसका भेद। यहाँ तो यह कहते हैं कि मैं सूक्ष्म हूँ... है सूक्ष्म परन्तु मैं... सूक्ष्म हूँ — ऐसा विकल्प भी उठाना यह पक्ष है। यह

सूक्ष्म का पक्ष है। वस्तु पक्षातिक्रान्त है। आहाहा! समझ में आया? यह क्या कहते हैं?

मैं सूक्ष्म हूँ, ऐसी जो विकल्प की वृत्ति उठती है... यह तो पहले कहा था। पण्डितजी को बताया था, इससे क्या? तत् किम्? मैं सूक्ष्म हूँ, ऐसा विकल्प आया, दूसरी बात तो कहाँ रह गयी, इन्द्रिय, शरीर और वाणी यह पर, तो राग पर में रह गया, यह तो पहले आ गया है। परन्तु मैं सूक्ष्म हूँ और अनन्त गुण सूक्ष्म हैं। हैं वह बराबर है, परन्तु इसमें वृत्ति उठाना कि मैं सूक्ष्म हूँ इससे क्या लाभ है? आहाहा! समझ में आया? दोनों ग्रन्थों में है। 'चिद्विलास' और 'अध्यात्म पंचसंग्रह'। सब देखा है न तो यहाँ तो धन्धा ही एक है। आहाहा!

परन्तु इसका निचोड़ क्या है? सब जाने, ज्ञान में आये हो भी मैं सूक्ष्म हूँ ऐसे विकल्प का भी पक्ष छोड़ दे। आहाहा! भगवान आनन्द रस का वेदन कर तो यह सूक्ष्म का फल आया। समझ में आया? और करनेयोग्य हो तो यह करनेयोग्य है, बस। आहाहा! यह एक ही है। लाख जानपना हो, दूसरे अनेक प्रकार हो, क्षयोपशम बहुत हो... 'प्रवचनसार' में अमृतचन्द्राचार्य ने कहा न? '**अलम**' आता है? विशेष ज्ञान के क्षयोपशम से अलम— बस होओ। हमें तो पूर्णानन्द के नाथ की दृष्टि और अनुभव में रहे, यह हमारी चीज़ है। करनेयोग्य हो तो यह है। आहाहा! लाख बात की बात आती है न छहढाला में? 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ, तोडि जगत द्वंद्व फंद निज आतम...' निज आतम, भगवान भी नहीं। आहाहा! भगवान अनन्त आनन्दकन्द प्रभु, उसका विकल्प का पक्ष छोड़कर निज आतम ध्याओ, आहाहा! वस्तु तो यह है। लाख शास्त्र पढ़े और सुने और दुनिया को समझाने के विकल्प उठे और समझाये परन्तु करना तो यह है, जिसमें जन्म-मरण का अन्त आ जाए और जिसमें अनन्त-अनन्त आनन्द की प्राप्ति हो, जिसके फल में; यह निर्विकल्प वेदन करना, यह चीज़ है। समझ में आया? यह सूक्ष्म का बोल है, भाई! यह पूछा था। यह सूक्ष्म है, यह है।

अब, अपने यहाँ ८१। ८१ आया न?

कलश-८१

(उपजाति)

एकस्य चैको न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वावितिं पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।36-81।।

अर्थ - जीव एक है, ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव एक नहीं है (अनेक है), ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।36-81।।

कलश - ८१ पर प्रवचन

एकस्य चैको न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वावितिं पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।36-81।।

जीव एक है... सर्व जीव रूप से एक है — ऐसा नहीं। जीव में अनन्त गुण हैं, अनन्त पर्याय हैं परन्तु वस्तु रूप से एक है। यह अस्ति निश्चयनय का विषय (हुआ)। जीव एक है। आहाहा! सर्व जीवरूप से एक हैं, ऐसा नहीं। वेदान्त सर्व व्यापक कहता है, ऐसा है ही नहीं। यहाँ तो आत्मा एक भगवान आत्मा गुण और पर्याय के भेद बिना अभेद सत्तास्वरूप प्रभु एक है, वहाँ तक आया और विकल्प उठाये, यहाँ तक आया कि मैं एक हूँ। शरीर, वाणी, मन तो नहीं; स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो मेरा नहीं परन्तु निश्चय में गुण की अनन्त शक्ति और अनन्त पर्याय का भेद भी मैं नहीं। मैं तो एक हूँ। आहाहा! समझ में आया?

एक हूँ — ऐसा जो विकल्प। आगे श्लोक में कहेंगे, स्वेच्छा बिना विकल्प उठते हैं, स्वभाव में नहीं। बाद में आयेगा, यह पूरा होगा न। श्लोक है। ९०। ९० श्लोक है न? यह सब श्लोक पूरे होने के बाद ९० श्लोक आयेगा। स्वेच्छा। स्वेच्छा यह शब्द पड़ा है। ९० श्लोक। ९० नहीं समझते? ९०। यह तो पक्षपात की बात है। बाद में सबका सार लेते हैं। '**स्वेच्छासमुच्छल-दनल्पविकल्पजालम**' कल्पना से विकल्प उठते हैं, स्वभाव में नहीं। आहाहा! समझ में आया? मैं एक हूँ — ऐसे विकल्प की वृत्ति से आँगन में आया परन्तु आँगन को छोड़े बिना अन्दर में प्रवेश नहीं होगा। समय में आया? 'यह झबेरी की दुकान है' ऐसे आँगन में खड़ा-खड़ा बोले, परन्तु अन्दर प्रवेश किये बिना झबेरी की दुकान का ख्याल नहीं आयेगा। आहाहा! ऐसे विकल्प के आँगन में ऐसा आया कि मैं एक हूँ, ऐसा एक नय का पक्ष है। आहाहा! है? एक 'एक है — ऐसा नय का पक्ष है....'

और जीव एक नहीं.... अनन्त गुण और अनन्ती पर्याय तो अनेक हैं। यह व्यवहारनय का पक्ष है। आहाहा! इसको व्यवहार कहते हैं। समझ में आया? गुण अनन्त हैं और पर्याय अनन्त हैं। इस अपेक्षा से जीव अनेक हैं। यह तो व्यवहार हुआ। इसे तो हम पहले से छुड़ाते आये हैं, परन्तु जीव एक है, ऐसा जो विकल्प उठता है... आहाहा! यह विकल्प भी छोड़ दे। मैं एक हूँ, ऐसा विकल्प में आया, इससे क्या? इससे तेरे आत्मा में क्या लाभ है। आहाहा! यह तो पैसा मिला और स्त्री अनुकूल मिली, इज्जत बड़ी है... धूल में भी नहीं, सुन तो सही। पागल हो गया है।

यहाँ तो परमात्मा वहाँ तक बात करते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। मैं अनन्त गुण का पिण्डरूप एक हूँ। गुण अनेक हैं, द्रव्य एक है, द्रव्य अनेक नहीं। गुण अनेक हैं। पर्याय अनन्त हैं, द्रव्य तो एक ही है। ऐसे द्रव्य के ऊपर दृष्टि देते मैं एक हूँ, इसमें भी राग की वृत्ति उठी, विकल्प उठे, इससे तुझे क्या लाभ है? आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय से तो तुझे क्या लाभ है? यह तो राग है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, पूजा का भाव आता है, हों! परन्तु वो हेय है। उससे आत्मा को क्या लाभ हुआ? ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय में आया, इसमें आत्मा को क्या लाभ हुआ? यह तो एक ओर रह गया। परन्तु निश्चय के पक्ष में विकल्प आया, इससे तुझे क्या लाभ हुआ? आहाहा! धन्नालालजी! ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहाहा!

जीव (अनेक है) ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; ऐसे चित्स्वरूप जीव के विषय में दो नयों के दो पक्षपात हैं। आहाहा! अब '**तत्त्ववेदी**' तत्त्व अर्थात् चिदानन्द भगवान का वेदनेवाला, अनुभव करनेवाला सम्यग्दृष्टि। आहाहा!

बेन की पुस्तक पढ़ी, भाई! बहुत सरस। बहुत सरस! आहाहा! यह तो सब पुस्तकों से भी 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश' से भी चढ़ती हुई, ऐसी बहिन की पुस्तक है। १४४ पृष्ठ पढ़े हैं, अभी थोड़ी बाकी है। मैंने तो रामजीभाई को कहा, बहुत सरस पुस्तक। यह पुस्तक तो बहुत छप जायेगी और इसका प्रचार जैसे बने वैसे करने जैसा है। हिन्दी भाषा में (हो)। यह कहा था, भाई से कहा था। पद्मचन्दजी! हिन्दी में बनाना। बात तो ऐसी है। हिन्दी में पूरी पुस्तक बनाना। कल पढ़कर ऐसा लगा। अकेला मक्खन है। अतीन्द्रिय आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द वस्तु तो यह है। आहाहा! भाषा सादी। रामजीभाई से कहा था, भाषा एकदम चलती सादी भाषा और माल ऊँचा!

यहाँ तो कहते हैं, '**तत्त्ववेदी**' पहला पक्ष कहा। अब तत्त्ववेदी का पक्ष छोड़ दे। हें! इसको तत्त्ववेदी कहा। चैतन्यतत्त्व भगवान आत्मा अनाकुल आनन्दस्वरूप, ऐसे तत्त्व का वेदनेवाला, अनुभव करनेवाला, आस्वाद लेनेवाला पक्ष से अतिक्रान्त है। आहाहा! यह बात ऐसी लोगों को ऐसी लगती है... लोग विरोध करते हैं। अरे! प्रभु! विरोध न करो, नाथ! तेरी चीज़ ऐसी है। भगवान! तेरे में विकल्प उठते हैं, उसको कलश में स्वेच्छा कहते हैं। स्वेच्दा बिना स्वभाव में ऐसी वृत्ति उठती है, यह सब विकल्प हैं। आहाहा! यह भी तुझे लाभदायक नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : तत्त्ववेदी सम्यग्दृष्टि है या सम्यक्ज्ञानी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी, दोनों हैं। वेदनेवाला लेना है न? तो सम्यग्दृष्टि भी है और सम्यग्ज्ञानी भी है, वेदनेवाला—चारित्र में स्थिरतावान भी है। प्रश्न ठीक किया। तीनों आये। तत्त्व चैतन्य भगवान अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु, आहाहा! तत्त्ववेदी शब्द अन्दर पड़ा है। तत्त्व को वेदनेवाला, तत्त्व की प्रतीति करनेवाला, तत्त्व का ज्ञान करनेवाला और तत्त्व को वेदनेवाला। तीनों एक समय में हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग। आहाहा!

तत्त्ववेदी पक्षपातरहित है.... है शब्द ? मैं एक हूँ, ऐसा विकल्प के पक्षपात से भी रहित है। आहाहा! यहाँ जाना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और वेदन है। आहाहा! चाहे जितना क्षयोपशम हो। अमृतचन्द्राचार्य प्रवचनसार में कहते हैं, हमारी चीज़ ऐसी पूर्णानन्द की नाथ, ऐसी हमारी दृष्टि हुई है। आहाहा! सन्त तो चारित्रवन्त थे। तो रमणता भी हमें हुई है, अब विशेष क्षयोपशम से अलम। आहाहा! विशेष ज्ञान का विकास हो न हो, बस होओ। आहाहा! डाह्याभाई! विशेष जानना हो न हो, समझाना आता हो या न आता हो, बस होओ। हमारी चीज़ पूर्णानन्द का नाथ दृष्टि में आया है और इसमें स्थिरता है, बस। हमें विशेष क्षयोपशम ज्ञान की जरूरत नहीं।

मुमुक्षु : आनन्द चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अतीन्द्रिय आनन्द बस एक है। आहाहा! भगवान में रसकस हुआ, रसबोल (हुआ)। जैसे पूरणपोली करते हैं न ? क्या कहते हैं ? पूरणपोली नहीं होती है ? इनको गरम-गरम करके घी में डालते हैं। घी की तपेली में डालते हैं। ऊँची करते हैं तो धी नितरता है।

हमारे घर में (संवत्) १९५७ में हमारे बड़े भाई गुजर गये थे। १९५७ के वर्ष। छोटी उम्र में गुजर गये थे, इससे पकवान तो कर नहीं सकते। मेहमान आते, अत: रोटी करते। परन्तु रोटी ऐसी दें... उस समय घी १९-२० रुपये मण का भाव था। उतरे, वह उसमें डालें, वह रोटी परोसे। गोल परसें इसमें कितना घी जाए। कारण कि मरण हुआ था तो पकवान नहीं दें। रोटी घी में (वोरें)। गर्म-गर्म हों... क्या कहते हैं पहले ? पकड़ने की। पकड़ने की सँडासी। सँडासी से पकड़कर ऊँची करें तो घी टपके। वह डालें। यहाँ तो आनन्द का रस टपकता है, उसका अनुभव करे। आहाहा!

भगवान आनन्द से भरा है। इसमें विकल्पातीत होकर तत्त्ववेदी हो। आहाहा! करना तो यह है। और उसमें कृतकृत्यता है द्रव्य तो कृतकृत्य है ही, परन्तु वेदन आया। मैं कृतकृत्य हो गया। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, भगवान!

मुमुक्षु : सूखड़ी (मिष्ठान्न) में जैसा आता है, वैसा ही आनन्द तत्त्ववेदन में आता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे तो अनन्त गुणा। यह तो धूल में आनन्द नहीं, यहाँ तो मानते हैं। वह तो मैंने देखा है। छोटी उम्र थी, ग्यारह वर्ष की उम्र थे। बड़ेभाई गुजर गये थे। आठ वर्ष का विवाह था। एक ही लड़का था। मेहमान आये। जवान लड़का मर गया तो हलवा (सूखड़ी) नहीं दें। पर इसके मुकाबले खर्च बढ़ जाता है... परन्तु लोक की रीति सब ऐसी है। पोपटभाई! तुम्हारी सब बनियों की रीति ऐसी है कि पकवान नहीं दें। और रोटी घी में बोर दें, इससे खर्च बढ़ जाता है और घर साधारण हो।

मुमुक्षु : आपको बहुत याद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : १९५७ के वर्ष की बात है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार आत्मा में रसबोर हो जाए। आहाहा! इसका नाम वीतराग शासन है, वीतराग धर्म है, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? जिसको पर्याय में रसबोर वेदन हो गया है। आहाहा! स्वसंवेदन आ गया है न? स्वसंवेदन— स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन हुआ, इसको तत्त्ववेदी कहने में आता है। पक्ष में राग का वेदन होता है तो दुःख का वेदन करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? भाषा! गाथा तो देखो! आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य अमृत बहाया है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपका स्पष्टीकरण आया, इससे मालूम पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर है न। कहा था न? ९६ गाथा में। मृतक कलेवर में अमृतसागर मूर्च्छित हो गया है। आहाहा! अमृत का सागर भगवान, वह मृतक कलेवर- मुर्दा में, वह परमाणु तो मुर्दा है, वह मुर्दा में अमृत सागर मृतक कलेवर में मूर्च्छित (हो गया है)। तीनों में म... म... आया। यह अमृतसागर। मृतक कलेवर और मूर्च्छा। ऐसे राग में मूर्च्छित हो गया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मैं एक हूँ, ऐसे विकल्प में मूर्च्छित हो गया है। वास्तव में विकल्प, वह मुर्दा है। क्योंकि चैतन्य प्रकाश का उसमें अभाव है। आहाहा!

मैं एक हूँ — ऐसा विकल्प, राग अचेतन है। यह चेतन नहीं वह अजीव है, जीव नहीं। वह जड़ है, भगवान आत्मा नहीं। आहाहा! 'पक्षपातरहित है, उसको निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।' आहाहा! ज्ञानस्वरूपी ज्ञान के वेदन में ज्ञान ही है, उसमें कोई रागादि है नहीं। ८१ हुआ न? ८२।

कलश-८२

(उपजाति)

एकस्य सांतो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वावितिं पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।37-82।।

अर्थ-जीव सान्त है, ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव सान्त नहीं है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।37-82।।

कलश - ८२ पर प्रवचन

एकस्य सांतो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वावितिं पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।37-82।।

जीव सांत (जीव अन्त सहित) है ऐसा एक नय का पक्ष है... पर्याय है न? पर्याय सान्त है तो जीव सान्त है, ऐसा एक व्यवहारनय का पक्ष है। समझ में आया? इसके चार प्रकार हैं। एक तो वस्तु अनादि-अनन्त है, एक बात। अनादि है और पर्याय का अन्त आता है, इससे अनादि सान्त है और सादि-अनन्त है। निर्मल पर्याय की सादि-उत्पत्ति हुई, अनन्त काल द्रव्य में रहती है, इससे सादि-अनन्त है। एक भंग अनादि-अनन्त हुआ, एक भेग अनादि-सान्त हुआ, एक भंग सादि-अनन्त हुआ। एक भंग (यह है कि) एक समय की पर्याय उत्पन्न हुई और सान्त है। एक समय की पर्याय उत्पन्नध्वंसी है, इससे वह सान्त है। अकेली सान्त है। पर्याय अकेली सान्त है। सादि-सान्त और एकली सान्त है। एक ही समय की पर्याय, बस। आदि भी यह और अन्त भी यह, दूसरा कोई समय नहीं इसमें। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : चार में से एक ली।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक लेना, बस। इससे क्या? एक समय की पर्याय लेना। अनादि-सान्त यहाँ नहीं लेना। अनादि-अनन्त भी नहीं लेना, अनादि-अनन्त नहीं लेना एक समय की पर्याय सान्त, यह लेना। यह व्यवहार का पक्ष है। इसका निषेध तो करते आये ही हैं, कहते हैं। आहाहा! अपने चिद्विलास में आता है। चिद्विलास में चार बोल लिये हैं। चिद्विलास है न? दीपचन्दजी ने बहुत स्पष्ट किया है। इतना स्पष्ट किया है कि सवैया में गुण के बोल इतने स्पष्ट किए हैं, यह समझाये नहीं जा सकते, पकड़े नहीं जा सकते। बहुत... बहुत दीपचन्दजी ने बहुत काम किया है। गृहस्थाश्रम में थे, इससे क्या? सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तो जैसा केवली को है, वैसा सम्यग्दर्शन यह है। दर्शन में कुछ अन्तर है? स्थिरता में अन्तर है, यह तो होता है। समझ में आया? आहाहा! स्थिरता में अल्पपना है, इससे सम्यग्दृष्टि अपनी पर्याय में पामर मानता है। वस्तु से (भगवान मानता है), पर्याय में पामर मानता है। अरे! मेरी पर्याय कहाँ और चारित्र की और अनन्त केवलज्ञान की पर्याय कहाँ...! मैं बहुत पामर हूँ। पर्याय में, हों! द्रव्य में तो पूर्ण प्रभुता है। यह कहते हैं। देखो!

जीव सान्त नहीं.... दूसरा नय। यह निश्चयनय है। सान्त नहीं, अनादि-अनन्त है। जिसकी शुरुआत भी नहीं और जिसका अन्त भी नहीं। अनादि-निधन, अनादि-निधन। अण आदि अ निधन। आदि नहीं और अनिधन-अन्त नहीं। ऐसा शब्द आता है न? अनादि-निधन। यह मैं अनादिनिधन हूँ। सान्त नहीं। ऐसा विकल्प आया... आहाहा! अब यहाँ तो (ऐसी प्ररूपणा करते हैं) शुभयोग वह मोक्ष का मार्ग है। अरेरे! प्रभु! क्या करें? भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : कोई नय लगा दें...

पूज्य गुरुदेवश्री : (क्या) नय लगा दें? व्यवहारनय हेय है। व्यवहारनय है। नय लगाया न। हेय है। अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप उपादेय है तो राग हेय है और राग जब उपादेय है तो आत्मा हेय है। अज्ञानी को राग उपादेय है, वस्तु भगवान आत्मा हेय है। यह परमात्मप्रकाश में (आता है)। समझ में आया? और जिसको भगवान आत्मा

शुद्धचैतन्यस्वरूप अनन्त सम्पदा, अनन्त सम्पदा से भरा प्रभु उपादेय है अथवा उसके सन्मुख होकर उसका आश्रय करना, यह उपादेय है तो राग हेय है। वह विकल्प भी हेय है। मैं अनादि-अनन्त हूँ, ऐसा विकल्प भी हेय है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह ८२ हुआ न?

जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। वह तत्त्ववेदी.... है? पहले तत्त्ववेत्ता कहा था न? तत्त्ववेत्ता-तत्त्व का जाननेवाला। वेत्ता अर्थात्। वेत्ता। वास्तविक ज्ञायकतत्त्व का जाननेवाला विकल्प से रहित है। आहाहा! पाठ में तो यह है न? तत्त्ववेदी। इसका अर्थ तत्त्ववेत्ता किया है। समझ में आया? प्रत्येक पाठ में तो तत्त्ववेदी शब्द है। उसका अर्थ तत्त्ववेत्ता किया। तत्त्व का जाननेवाला, तत्त्व को जाननेवाला। इसको ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ, वह तत्त्व को जाननेवाला है। राग को और पर्याय को ज्ञेय बनाये, वह तत्त्व का जाननेवाला नहीं। आहाहा! तत्त्व भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनन्त-अनन्त आनन्द और शान्ति की सम्पदा का सरोवर, समुद्र, सागर...! उसका वेदी-वेत्ता पक्षपात से रहित है। आहाहा! बाद में ऐसा नहीं, हों! कि ... क्या कहा? सान्त है। सान्त नहीं, ऐसा विकल्प खोटा है। सान्त नहीं, यह चीज़ खोटी नहीं। यह फिर बाद में दूसरा कुछ होगा, दूसरी चीज़ तो हेय है। अनादि-अनन्त भगवान पूर्णानन्द का नाथ ध्रुवस्वरूप तो भगवान ही है। परन्तु इसका विकल्प छोड़नेयोग्य है। विकल्प छूटा, इसलिए अन्दर कोई दूसरी चीज़ होगी, ऐसा नहीं। समझ में आया? कितने कहते हैं, वह तो एक पक्ष है, इसलिए सर्व व्यापक एक चीज़ है। आहाहा! ऐसा नहीं। आहाहा!

श्रीमद् में एक वाक्य आता है, इसका अर्थ करते हैं। गोण्डल में एक था। क्या नाम था भाई? गोण्डल में एक भगत था, इसकी लड़की के पास रहता था। बनारसीभाई था। इसकी लड़की बाबूभाई के मकान के नीचे रहती थी। इसकी लड़की। इसका बाप था। यह समझे नहीं कुछ ऐसा अर्थ किया, 'दर्शनमोह व्यतीत थई उपज्यो बोध जे' अपूर्व अवसर में यह शब्द आया है। इसका अर्थ ऐसा किया कि दर्शनमोह अर्थात् चाहे वह दर्शन हो, इसका मोह छोड़ दे। जैनदर्शन भी छोड़ दे। ऐसा अर्थ करे। **दर्शन मोह व्यतीत थई उपज्यो बोध जे...** कोई भी दर्शन का पक्षपात नहीं। पक्षपात नहीं... यह तो विकल्प नहीं, (ऐसा कहना है)। समझ में आया? परन्तु जैनदर्शन यह तो वस्तु का स्वरूप है। वह कोई

पक्ष नहीं, कोई कल्पना नहीं, कोई एक समय की दशा नहीं... आहाहा! त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु... नित्य बाद में आयेगा, कर्ता आयेगा। वह तो त्रिकाली ज्ञायकभाव अनादि-अनन्त प्रभु है। अनादि अनन्त यह तो काल की अपेक्षा कहा। बाकी वस्तु एक समय में पूरी पूर्ण है। समझ में आया? इसको वेदनेवाला, इसका आश्रय लेकर सन्मुख होनेवाला तत्त्ववेत्ता... वह तत्त्ववेत्ता (है)। आहाहा! ऐसे शास्त्रवेत्ता यह नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : तत्त्ववेदी...

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्त्ववेदी कहा न। तत्त्ववेदी का अर्थ तत्त्ववेत्ता कहा। आहाहा! जाननेवाला, तत्त्व को जाननेवाला, पक्ष छोड़ दे। वस्तु चिदानन्द भगवान है, उसका ज्ञान हुआ, बस पक्षपातरहित है। मैं एक हूँ, अनादि-अनन्त हूँ, सान्त नहीं — ऐसा विकल्प भी वहाँ नहीं। आहाहा! वहाँ जाना, इसका नाम धर्म है। ऐसी बात है, भाई! पहले श्रद्धा में तो ऐसा निर्णय करना पड़ेगा कि भगवान आत्मा विकल्पातीत है। ऐसा अनुभव होता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। यह ८२ (कलश पूरा हुआ)। ८३।

कलश-८३

(उपजाति)

एकस्य नित्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।38-83।।

अर्थ-जीव नित्य है, ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव नित्य नहीं है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।38-83।।

कलश - ८३ पर प्रवचन

एकस्य नित्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वावितिं पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।38-83।।

जीव नित्य है ऐसा एक नय का पक्ष है... नित्य है, यह यथार्थ है। त्रिकाली की अपेक्षा से। परन्तु इसका विकल्प पक्ष है... वस्तु पक्षातिक्रान्त है। पक्ष छोड़ देना, ऐसा कहते हैं। **और जीव नित्य नहीं ऐसा दूसरे नय का पक्ष है...** अनित्य है, पर्याय अनित्य है। परन्तु पर्याय अनित्य है, यह व्यवहारनय का विषय है। त्रिकाली नित्य है, यह निश्चयनय का विषय है। समझ में आया?

एक बार कहा था। (संवत्) १९९९ के वर्ष में राजकोट चौमासा था। यहाँ की अध्यात्म की बात चलती थी। एक वेदान्ती साधु आया। जैन की छाप तो बाहर में ऐसी हो गयी है न कि व्रत और तप और उपवास और क्रिया करे, वह जैन। इसने सुना कि एक महाराज हैं वह आत्मा की, धर्म की, अध्यात्म की बात करते हैं। अरे! जैन में ऐसा कहाँ से आया? सुनने में आया, चर्चा में आया। बांकानेर उतारे में, १९९९ के वर्ष। चर्चा करते ऐसा आया कि देखो! भाई! भगवान आत्मा नित्य भी है और अनित्य भी है। अनित्य? (इतना सुना तो) चला गया।

पर्यायें अनित्य हैं। अनित्य न हो तो निर्णय किसमें किया? ध्रुव में निर्णय करना है? समझ में आया? अनित्य न हो और नित्य ही हो तो क्या निर्णय नित्य में करना है? निर्णय जो मिथ्या है, उसका सम्यक् निर्णय करना, वह यह तो पर्याय में होता है, अनित्य में होता है। अनित्य से नित्य का निर्णय होता है। अनित्य से नित्य जानने में आता है। नित्य से नित्य नहीं जानने में आता। यह भी चिद्विलास में है। समझ में आया? चिद्विलास में है। कहाँ होगा? क्या खबर पड़ती है। गुण में जानने में आता है? गुण में जानने में आता है? पर्याय में जानने में जानने में आता है। यह कहा न? इस तरफ पृष्ठ है।

एक मोतीलालजी करके वैष्णव था। दशाश्रीमाली रेल का अधिकारी था। सुनने आता था, परन्तु बैठता नहीं था। वेदान्त बैठ गया था। परम हंस हो गया। बाद में हमारे पास आया। चर्चा हुई। आत्मा एक ही होता है, पर्याय न हो तो निर्णय कौन करे ? निर्णय ध्रुव करे ? और भूल न हो तो भूल दूर करने का उपदेश कहाँ रहा ? भूल क्या है ? भूल नित्य है ? वेदान्त यह तो कहता है कि अत्यन्तिक दुःख से मुक्त होओ। इसका अर्थ क्या है ? आत्यन्तिक दुःख। दुःख है, वह अनित्य है, क्षणिक है। इससे मुक्त होओ। वह तो पर्याय में मुक्त होना है, वस्तु तो वस्तु है। परन्तु यह है नहीं, वस्तु की चर्चा ही नहीं। आत्मा अनित्य ? व्यवहार से अनित्य पर्याय है। अनित्य से नित्य जानने में आता है और अनित्य में आनन्द का वेदन है। ध्रुव में कहाँ वेदन है। समझ में आया ? ऐसी बात वेदान्त में नहीं। आखिर में बेचारे ने कबूल किया। परमहंस होकर यहाँ आया था। राजकोट में था। स्वीकार तो किया, है कुछ अन्तर है। भूल न हो तो सुधारना, निर्णय करना कि यह एक आत्मा है, वह कहाँ से आया ? तो भूल है। वह तो पर्याय में भूल है, त्रिकाली में कहाँ भूल है। और भूल स्वीकार करे तो पर्याय है, ऐसा निश्चित होता है। समझ में आया ? परन्तु यह पर्याय अनित्य है और क्षणिक है, यह व्यवहारनय का विषय है।

यहाँ कहते हैं, जीव... है ? नित्य है। **और जीव नित्य नहीं ऐसा दूसरे नय का पक्ष है...** अनित्य है ऐसा। ऐसा दूसरे नय का पक्ष है, अनित्य है, यह व्यवहारनय का पक्ष है। पर है अनित्य। अनित्य है नहीं, ऐसा नहीं। पर इसका विकल्प है और अनित्यपने की दृष्टि छुड़ाना है। इस ओर पृष्ठ है। अनित्य से नित्य जानने में आता है। ऐसा पाठ है। अनित्य से नित्य जानने में आता है। निकले तब निकले। उस दिन एकदम पृष्ठ निकला। एक प्रदेशी, पंचास्तिकाय में। असंख्यप्रदेशी एकप्रदेशी। ऐसे असंख्यप्रदेशी यह तो प्रदेश का निश्चय करने के लिए है। बाकी एक अभेद वस्तु है। असंख्य प्रदेश एक अभेद है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेदी... तत्त्व का जाननेवाला मैं नित्य हूँ, ऐसा विकल्प भी छोड़ देता है। अनित्य हूँ, ऐसा पर्याय का आश्रय तो छोड़ देता है। पर्याय से अनित्य हूँ, ऐसा आश्रय तो छोड़ देता है,

परन्तु नित्य हूँ — ऐसा विकल्प भी छोड़ देता है। आहाहा! ऐसा मार्ग। विकल्प है, वह दुःख है, आकुलता है। स्वरूप में कहाँ है? स्वरूप में विकल्प हो तो विकल्प का नाश कैसे हो? समझ में आया? जिसका नाश होता है, वो स्वरूप में हो तो कैसे नाश पाये? तब तो स्वरूप का ही नाश हो जाए। आहाहा! विकल्प है, परन्तु विकल्प के स्थान में है, दुःख है। आहाहा! तत्त्ववेदी वह विकल्प से पार **पक्षपात रहित है...** उसमें पक्षपात नहीं।

निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है। आहाहा! यह क्या कहते हैं? विकल्प से भिन्न पड़ा और निर्विकल्प अनुभव हुआ, बाद में भेद करना नहीं पड़ता। वह निरन्तर भेद वर्तता ही है, ऐसा कहते हैं। निरन्तर शब्द का (यह अर्थ है)। समझ में आया? पहले भेद किया विकल्प से रहित होकर, परन्तु बाद में अन्दर विकल्प है ही नहीं। बाद में भेद करना (ऐसा नहीं होता), यह तो भेद चालू ही है।

मुमुक्षु : बहिनश्री कहती हैं कि घोकना नहीं पड़ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : घोकना नहीं पड़ता। समझ में आया? बाद में भेद नहीं करना पड़ता। भेद पड़ गया, वह चलता ही रहता है। यह कहते हैं, देखो!

(तत्त्ववेत्ता, तत्त्ववेदी) **निरन्तर चित्स्वरूप जीव...** निरन्तर। आहाहा! ज्ञान के आनन्द का वेदन निरन्तर रहता है। आहाहा! समझ में आया? बाद में मैं राग का कर्ता नहीं, अकर्ता हूँ — ऐसा वहाँ घोकना नहीं पड़ता। यह शब्द लिया है। निरन्तर। आहाहा! ज्ञायकभाव भगवान आत्मा पक्ष से अतिक्रान्त हो गया तो निरन्तर ऐसा रहता है। आहाहा!

उसमें तो ऐसा भी लिया है कि जो भेदज्ञान हुआ, अब कभी भी राग की एकता नहीं होगी, ऐसा कहते हैं। छद्मस्थ है परन्तु अपनी दशा में भेदज्ञान हुआ, यह निरन्तर ऐसा ही रहेगा। अब कभी राग की एकता होगी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : भेदज्ञान का अभ्यास चालू ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद हो ही गया है। ऐसा का ऐसा प्रयास अन्तर में ही झुका है, अन्तर में झुका है, अन्तर में झुका है, अन्तर में ही झुका है। ऐसे करते-करते चारित्र हो जाएगा। अन्तर में ढलते-ढलते केवलज्ञान हो जाएगा। समझ में आया? आहाहा! कोई

क्रिया करते-करते चारित्र होगा और कोई क्रिया करते-करते केवलज्ञान होगा — ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : अध्यात्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं कुछ खबर नहीं मिलती। आहाहा! '**भेदज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।**' संवर (अधिकार) में आया है न, अभी तक जितने मुक्ति को प्राप्त हुए, अनन्त सिद्ध (हुए हैं) भेदविज्ञान से प्राप्त हुए हैं। राग से भिन्न होकर अपने आनन्द में भेदज्ञान हुआ, इससे सिद्ध हुए। जो कोई बँधा, यह कर्म के उदय के कारण बँधे हैं — ऐसा वहाँ नहीं लिया। '**अस्यैवाभावतो बद्धा**' भेदज्ञान के अभाव से अर्थात् एकताबुद्धि से बंधे हैं। आहाहा! समझ में आया? यह संवर अधिकार का श्लोक है।

यह यहाँ कहते हैं। आहाहा! निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है। आहाहा! टीका भी कैसी! क्या कलश! समयसार... समयसार... धन्नालालजी यह नहीं कहते? बात तो ऐसी है। आहाहा! भाव में समयसार, वाणी में समयसार, मन में समयसार, विकल्प में समयसार... आहाहा! भगवान तीन लोक का नाथ परमात्मा पूर्ण सम्पदा और पूर्ण रत्नाकर भगवान... आहाहा! स्वयंभूरमण समुद्र असंख्ययोजन में है, तल में रत्न पड़े हैं। रेती... रेती नहीं। रत्न। यह भगवान असंख्य योजन में नहीं, चौड़ा तो अपने असंख्य प्रदेश प्रमाण है पर अन्दर तल-असंख्य प्रदेश में अनन्त चैतन्यरत्नाकर समुद्र भरा है। आहाहा! वहाँ पुण्य और पाप के विकल्प की रेत नहीं। आहाहा! डाह्याभाई! ऐसी बातें हैं। लोगों ने सुना नहीं, इससे उन्हें एकान्त लगती हैं। एकान्त लगे, एकान्त है। व्यवहार से होता है और निमित्त से होता है। अरे! प्रभु! तू एक बार क्रमबद्ध का निर्णय तो कर तेरी सब बातें उड़ जायेंगी।

क्रमबद्ध का निर्णय तो अभी कैलाशचन्द्रजी ने (स्वीकार) किया है। पहले नहीं था। वर्णीजी के साथ चर्चा हुई तब, परन्तु अब तो स्वीकार किया है। दो बोल लिए हैं। क्रमबद्ध है और निमित्त है परन्तु निमित्त से कुछ नहीं होता, ऐसा सोनगढ़वाले कहते हैं। क्रमबद्ध है तो जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनी (वह होनी) परन्तु इसकी दृष्टि कहाँ होती है? दृष्टि ज्ञायक ऊपर होती है। तो क्रमबद्ध का निर्णय (सच्चा)। क्रमबद्ध है तो व्यवहार

से निश्चय हुआ, ऐसी बात भी रही नहीं और निमित्त से उपादान में हुआ (ऐसा कोई कहता हो तो) क्रमबद्ध पर्याय अपने से होती है वहाँ निमितत से हुआ यह व्यवहार से हुआ यह सवाल है ही कहाँ? समझ में आया? अरे! परन्तु फुरसत कहाँ है? फुरसत कहाँ है फुरसत। अपना हित करने की फुरसत नहीं। यह जगत के जंजाल। आहाहा! यह ८३ (कलश पूरा हुआ)। ८४।

कलश-८४

(उपजाति)

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वावितिपक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।39-84।।

अर्थ-जीव वाच्य (अर्थात् वचन से कहा जा सके ऐसा) है, ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव वाच्य (वचनगोचर) नहीं है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।39-84।।

कलश - ८४ पर प्रवचन

ज्ञान तो ज्ञानस्वरूप ही है, आनन्द तो आनन्दस्वरूप ही है। आहाहा! तत्त्ववेदी ने ऐसा जाना है, ऐसा कहते हैं। एक कहते हैं वचन से है भाई (चिद्विलास में) मिला? ६८ पृष्ठ पर है। **पर्याय अनित्य है जो नित्य को कारण है...** चिद्विलास पृष्ठ ६८, पर्याय अनित्य है। **नित्य का कारण है और नित्यानित्य वस्तु है। पर्यायरूपी चंचल तरंगें**

द्रव्यरूपी ध्रुव समुद्र को दर्शाती हैं। पर्याय द्रव्य को दर्शावे है द्रव्य को द्रव्य समुद्र, ऐसा लिया न? द्रव्य ध्रुव समुद्र, और पर्याय चंचल तरंग द्रव्य ध्रुव समुद्र को दर्शाती हैं। आहाहा! चिद्विलास, अध्यात्म पंच संग्रह सब में बहुत है। दीपचन्दजी ने बहुत काम किया है। अनित्य नित्य को जानती है। नित्य नित्य को जाने?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु नित्य तो ध्रुव है। ध्रुव में जानना या पलटना, ऐसा कुछ है नहीं। वेदान्त की यह बड़ी भूल की है। श्रीमद् कहते हैं, वेदान्त निश्चयाभासी है। उसने पर्याय नहीं मानी, ऐसा श्रीमद् में पाठ है। सर्व व्यापक है और एक है और ऐसा है और वैसा है... परन्तु सर्व व्यापक है, यह तू नहीं मानता, यह अब माना, यह किसमें माना तूने? यह तो पर्याय हो गयी। अनित्य में नित्य जानकर निश्चय किया। अनित्य नहीं मानता तो तेरे नित्य के निर्णय का ठिकाना नहीं। समझ में आया?

जीव वाच्य (अर्थात् वचन से कहा जाए ऐसा) है... ४७ नय हैं न? इसमें नामनिक्षेप, स्थापना निक्षेप आता है। नामनिक्षेप-वचन से कहने में आये ऐसी योग्यता। नामनिक्षेप। ४७ नय में नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव से चार नय लिये हैं। ज्ञानप्रधान कथन है न? नामनिक्षेप और वचन से कहा जाए, ऐसी योग्यता है, परन्तु यह व्यवहार। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ७, रविवार, दिनांक ०४-०९-१९७७
कलश-८४ से ८७, प्रवचन-८६

कलशटीका, कर्ता-कर्म अधिकार। ८४ है न ८४? जीव वाच्य है। नयपक्ष की बात चलती है। पक्षातिक्रान्त उसका स्वरूप है। समझ में आया? यह कहते हैं, **जीव वाच्य (अर्थात् वचन से कहा जाए ऐसा) है, ऐसा एक नय का पक्ष है।** क्या कहते हैं? प्रवचनसार ४७ नय में आया है। नाम। नाम। नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप। ऐसे नाम द्वारा कहा जा सके, ऐसा उसका व्यवहार कथन है। नामनिक्षेप। नाम द्वारा कहा जा सके ऐसा वाच्य। वाचक। इतना एक व्यवहार है।

पहली गाथा में लिया है न? भाई! अभिधेय—जिसको कहा वाच्य आत्मा। अभिधान-वाचक शब्द। अभिधेय-अभिधान। पहली गाथा में आता है। अभिधेय वाचक शब्द है। यह व्यवहार है... और उसका अभिधेय आत्मा कहना है, यह परमार्थ है। शक्कर शब्द है, यह वाचक है। शक्कर पदार्थ है, यह इसका वाच्य है। इतना निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। शब्द और भगवान आत्मा को वाच्य-वाचक सम्बन्ध है। आत्मा आनन्द स्वरूप (है), ऐसा वाचक शब्द आया। इसका वाच्य आत्मा आनन्दस्वरूप। वाच्य में वाचक नहीं, वाचक में वाच्य नहीं। सूक्ष्म बात है। फिर भी नामनिक्षेप से वाच्य कहने में आता है। समझ में आया?

आत्मा। आत्मा शब्द है, यह कोई आत्मपदार्थ है? यह तो निर्लेप चिदानन्दस्वरूप है, इसमें आत्मा शब्द ही नहीं। यह बात तो चलती है। वाच्य शब्द से कहते हैं, ऐसा एक व्यवहार है। निश्चय से जीव वाच्य नहीं। वचनातीत है, यह वचन से कहा जा सके, ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो विकल्प से भी जानने में नहीं आती, ऐसी चीज़ यह अवाच्य है। समझ में आया?

आचार्य भी कहते हैं न? अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं) मैं कहनेवाला हूँ, तुम

सुननेवाले हो, ऐसा मोह छोड़ दो। अन्तिम श्लोक है। मोह में मत नाचो। आहाहा! अथवा वाचक शब्द तुझे ज्ञान करा देता है, ऐसे मत नाचो। प्रभु! तेरी चीज़ भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

कल एक शब्द में, बहिन का पढ़ता था, इसमें एक शब्द आया है। सोने को जंग नहीं, अग्नि को दीमक नहीं। उधई समझते हो? जीव होता है। पोचा, पोचा, बहुत पोचा। ऐसे तो एक बार सामने देखा है। (संवत्) १९७५ में। बहुत वर्ष हुए। ५८ (वर्ष हुए) पालियाद चौमासा था। जंगल गया था। वहाँ दीमक देखी। बहुत कोमल पोची, पोची। धूल में से निकली, निकली जैसे ही सूर्य की गर्मी लगी तुरन्त ही खत्म हो गयी। सडसडाट समझे? तुरन्त ही।

मुमुक्षु : हिन्दी में उधई, दीमक को कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दीमक तो बहुत तरह की होती है। बहुत सूक्ष्म, सफेद, बारीक, मुलायम। सूर्य की किरण पड़े तो खत्म हो जाए। आँखों से देखा है। १९७५ की वर्ष में बाहर (जंगल के लिए) बैठा था। ऐसे नीचे निकली धूप और समाप्त हो गयी। आहाहा! तड़को समझे, धूप... धूप। इतनी कोमल होती है। समझ में आया?

बेन के शब्द में यह एक शब्द आया है। अग्नि में दीमक नहीं। ऐसे भगवान आत्मा में... आहाहा! दीमक समझे न? बहुत दीमक सफेद-सफेद होती है। बस, एक सूर्य जरा किरण पड़ी वहाँ (मर जाती है)। मैंने आँखों से देखा है। आँखों को (देखने की) मुझे आदत पड़ गयी है। ऐसे भगवान आत्मा... आहाहा! अग्नि में दीमक नहीं, ऐसे भगवान आत्मा में विकल्प नहीं। बहिन ने तो तीन शब्द लिये हैं। सब अ, आ। अग्नि में उ नहीं। उ आया न? अ, आ, इ, ई, उ। ऐसे भगवान आत्मा में उणप नहीं, आवरण नहीं, अशुद्धता नहीं। हिम्मतभाई! अपने यहाँ तो... कल पढ़ा इसमें (विचार आया)... ऐसे तो नजर से बहुत बार देखा, परन्तु यहाँ अग्नि के साथ दीमक का मेल किया। बहुत सरस किया है, बहुत सरस! आहाहा!

भगवान आनन्द का नाथ प्रभु! कहते हैं, शुद्ध चिदानन्द के पास राग अर्थात् अशुद्धता। और कमी इसमें है ही नहीं। यह सब अ, आ आया। अग्नि में दीपक नहीं...

ऐसे आत्मा में उणप नहीं। उणप समझे ? कमी। उणप माने कमी नहीं होती, आवरण नहीं। तो इसमें 'आ' अक्षर आया। आवरण नहीं, उणप नहीं। मुझे तो पहले अ, आ, ई, ना शब्द (मिलाया) और अशुद्धता नहीं। बहिन ने तीन शब्द इसमें लिखे हैं। यह तो छपाई में नहीं आया। छपाई को क्या कहते हैं ? बाईंडिंग। बाईंडिंग होकर नहीं आये। खत्म हो गये हैं। बहिन का तो बहुत प्रचार है। हिन्दी हो रही है। अब हिन्दी भी होगी। यह पुस्तक बहुत अच्छी निकली है। बहिन को बाहर प्रसिद्धि नहीं चाहिए और बहिन की यह पुस्तक बाहर आ गयी। ऐसी चीज़ है, आहाहा!

इसमें यह जब पड़ा, अग्नि को दीमक नहीं। ऐसे तीन लोक के नाथ आनन्दकन्द प्रभु, इसमें आवरण नहीं, कमी नहीं। कमी शब्द में उणप शब्द लिया है। अपनी गुजराती भाषा सादी है। उणप अर्थात् अशुद्धता नहीं। पूर्णानन्द का नाथ, एक वाचक शब्द से कैसे कहने में आये ? व्यवहार से नाम कहा। निश्चय से तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता। यह तो वेदन में आये, तब खबर पड़े। आहाहा! समझ में आया ?

यह यहाँ कहते हैं। अभिधेय कहा। भाई! चन्दुभाई! अभिधेय पहली गाथा में है न ? अभिधेय-अभिधान। और यहाँ (प्रवचनसार में) नामवाला (कहा)। नाम से कहने में आता है इतना। आत्मा। परन्तु आत्मा शब्द कहीं इसमें नहीं। आत्मा तो एक '**अतति गच्छति इति आत्मा।**' इतना शब्द लागू पढ़ता है। मात्र '**अतति गच्छति**'। अपने स्वरूप में परिणमन करता है। '**अतति गच्छति इति आत्मा।**' द्रव्यसंग्रह में यह शब्दार्थ है। द्रव्यसंग्रह में है। तो इतना शब्द का अर्थ है, इतना ही आत्मा नहीं है। '**गच्छति इति आत्मा**' आहाहा! समझ में आया ? द्रव्यसंग्रह में है। '**अतति गच्छति इति आत्मा।**'

अथवा आठवीं गाथा में आया है न ? शिष्य से ब्राह्मण ने कहा—स्वस्ति। स्वस्ति शब्द सुनकर टक-टक देखने लगा। यह कहते हैं, इसकी उकताहट नहीं लगती। ब्राह्मण ने स्वस्ति कहा अनार्य मनुष्य को (कहा), स्वस्ति। यह क्या कहते हैं ? टक-टक देखने लगा। इसने अर्थ किया, इसने किया कि दूसरे ने किया, ऐसा पाठ है। इसने कहा अथवा दूसरे को कहा कि स्वस्ति। स्व—तेरे आत्मा की अस्ति है, ऐसा कल्याण हो! समयसार—८वीं गाथा है। स्वस्ति—स्व—जिसका अस्तिरूप है, ऐसा तुझे भान हो, यह तेरा कल्याण

है। समझ में आया ? यह टक... टक देखता था। खेद नहीं करता था। यह क्या कहते हैं ? यह क्या कहते हैं ?

ऐसे आचार्य ने 'आत्मा' — ऐसा शब्द कहा। आता है न ? भाई ! चन्दुभाई ! आठवीं गाथा। समयसार आठवीं गाथा। बहुत गम्भीरता एक-एक गाथा में भरी है। आत्मा, ऐसा कहा। तो सुननेवाले को उकताहट नहीं आती कि यह क्या कहते हैं ? ऐसा नहीं। यह क्या कहते हैं ? यह मुझसे समझाया नहीं। मुझे समझना है। ऐसा आत्मा शब्द कान में पड़ा, बाद में अर्थ किया। भगवान ! आत्मा अचति। अर्थात् अपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। मात्र इतना कहा। आत्मा सदा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो। यह व्यवहार हुआ। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, यह तीन भेद पड़े, यह व्यवहार हुआ। भेद से समझाया। समझ में आया ? तो समझनेवाला और कहनेवाला, यह व्यवहार कहते हैं परन्तु अनुसरण करनेयोग्य नहीं। आहाहा ! यह क्या कहा ? समझाने में व्यवहार आता है कि आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को सदा प्राप्त हो, वह आत्मा। आहाहा ! राग और पुण्य को प्राप्त हो वह आत्मा — ऐसे यहाँ व्यवहार से भी अर्थ नहीं किया। समझ में आया ? यह व्यवहार हुआ न ? भेद करके कहा। परन्तु व्यवहार इतना।

भगवान आत्मा, अपना दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्मल अविकारी पर्याय को सदा प्राप्त हो, वह आत्मा। बाद में कहा कि, मैं भेद से कहता हूँ। यह मुझे अनुसरनेयोग्य नहीं और सुननेवाले को भी भेद अनुसरनेयोग्य नहीं। समझ में आया ? भगवान अभेद चिदानन्द स्वरूप... आहाहा !

सैंतालीस नय में एक नय लिया है न ? भाई ! अशुद्ध और शुद्ध। अन्तिम। जरा सूक्ष्म बात आ गयी है। मिट्टी है न ? मिट्टी। इसमें घड़ा, कुण्डा... कुण्डा... कुण्डा। समझते हो ? कुंडु होता है, वह मिट्टी की अशुद्धता है। यह अशुद्धनय का विषय हुआ। सैंतालीस नय में आता है। भेद पड़ा, यह अशुद्ध हो गया, व्यवहार हो गया, मेचक हो गया। १६वीं गाथा में मेचक कहा। बाद में कहा, अकेली मिट्टी है, यह शुद्धनय का विषय है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा में तीन प्रकार कहना... आहाहा ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र को प्राप्त हो, ऐसे तीन प्रकार कहना, यह भी अशुद्ध व्यवहार हो गया। समझ में आया ?

सूक्ष्म बात है, भगवान! यह महा मणिरत्न, अनन्त चैतन्य रत्नाकर दरिया-समुद्र, प्रभु, इसको क्या विकल्प से, क्या वचन से कहिये? यह तो अवाच्य है। निश्चय से तो अवाच्य है, कहने में आये, ऐसी चीज़ नहीं। यह तो अनुभव में आये, ऐसी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

लोगों को आत्मा क्या है (इसकी खबर नहीं)। धर्म... धर्म तो करते हैं परन्तु धर्म कैसे होता है, इसकी खबर नहीं। यहाँ तो धर्मरूप परिणमना, यह भी व्यवहार है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमना। आहाहा! इसको १६वीं गाथा में मेचक कहा है, मैल कहा है। मेचक शब्द पड़ा है न... भेद करना, यह मेचक है, मैल है। आहाहा! समझ में आया? इसको मेचक, मैल कहने का व्यवहार है। ऐसा अर्थकार पण्डित जयचन्दजी ने कहा है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा वचन से कैसे कहा जाये? वचन तो एक अर्थ को कहता है। और अन्दर में तो अनन्त गुणों का रत्नाकर सागर पूरा पड़ा है। इसमें दृष्टि करने से वेदन में आये, तब खबर पड़ती है कि चीज़ ऐसी है। जिनेश्वरदासजी! यह तो वस्तु ऐसी है। आहाहा! अभी तो लोगों को बाहर में व्यवहार क्रियाकाण्ड में ठिकाना नहीं, इसमें घुस गये हैं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा यहाँ तक कहते हैं कि भगवान! तू एकरूप है। इसमें तीनरूप परिणमन करना, वह भी व्यवहार और मैल है। आहाहा! क्योंकि इसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग ही उत्पन्न होगा। धन्नालालजी! यहाँ कहते हैं कि वाचक। व्यवहार से है। नामनिक्षेप की अपेक्षा से। अभिधेय की अपेक्षा से। अभिधेय और अभिधान द्वारा, शब्द द्वारा। अभिधान अर्थात् शब्द। अभिधेय अर्थात् शब्द से कहने में आता हुआ वाच्य पदार्थ। इस अपेक्षा से अभिधन-अभिधेय सम्बन्ध है। व्यवहार, यह व्यवहार है। निश्चय में वाच्य-वाचक कुछ है नहीं। आहाहा! ऐसा वचनातीत भगवान आत्मा है। है?

ऐसा दूसरे नय का पक्ष है। ऐसे चित्स्वरूप जीव दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेदी... पाठ में '**तत्त्ववेदी**' है। अर्थ में तत्त्ववेत्ता कहा है। तत्त्व को जाननेवाला, इसमें तो यह मैं अवाच्य हूँ, ऐसा विकल्प का पक्ष भी वहाँ नहीं। वाच्य हूँ, यह तो है नहीं, इसका

तो निषेध करते आये हैं। परन्तु अवाच्य हूँ, वचनातीत हूँ, वचन से कहने में नहीं आता, ऐसे विकल्प का भी पक्ष, अन्तर में विकल्प को छोड़कर चैतन्य का स्पर्श करने जाता है, तत्त्ववेदी चैतन्य का स्पर्श करने जाता है, वह तत्त्व का वेत्ता है, वह तत्त्व का वेत्ता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। गम्भीर बात है, प्रभु! तेरी बातें बहुत गम्भीर। अनन्त काल से बाहर की प्रवृत्ति और बहुत तो अन्दर में विकल्प की प्रवृत्ति (की) है।

कल किसी ने—चन्दुभाई यह प्रश्न किया था। नहीं? प्रवृत्ति-निवृत्ति। खबर है। एक न्याय से आत्मा विकल्प से निवृत्तिस्वरूप है, परन्तु निर्विकल्प परिणति से प्रवृत्तिस्वरूप है। परिणति है न। आहाहा! और यह भी तीनों को १६वीं गाथा में ऐसा कहा। '**दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।**' साधु को दर्शन, ज्ञान, (चारित्र) की तीन प्रकार की सेवा करना।

अप्पाणं चेव णिच्छएदो... यह तीनों भी एक आत्मा ही है। १६वीं गाथा।

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥१६॥

यह व्यवहार हो गया। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन प्रकार की सेवा पर्याय से (करना), यह व्यवहार हो गया। आहाहा! '**ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो**' एकरूप आत्मा का अनुभव करना, वह निश्चय है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! अभी तो बहुत बिखर गया है। लोगों को कुछ का कुछ रास्ते चढ़ा दिया।

यह जिन्दगी भव के अभाव के लिये मिला भव है। आहाहा! भव के अभाव के लिये मिला भव (इसमें) भव का अभाव न करे... अरे...! तो इसने क्या किया? भवाब्धि- बड़ा समुद्र परिभ्रमण करने को पड़ा है। आहाहा! एकेन्द्रिय निगोद, दो इन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, चोरासी लाख योनि हैं। एक-एक योनि भवाब्धि है। भवरूपी समुद्र। जिसमें डुबकी मारकर अनादिकाल से दुःखी है। यह सब पैसावाले सुखी है। इनको मूर्ख सुखी कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : कहनेवाले मूर्ख हैं, वे तो नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सुख मानते हैं तो स्वयं मूर्ख हैं। यह पैसेवाले हैं। यह पाँच

करोड़ और दस करोड़ और धूल करोड़। धूल में नहीं। यह तो जड़ मिट्टी हैं। तेरे कहाँ हुए? और यह तो... आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, इसको छोड़कर। रात्रि में थोड़ा कहा था न? बाहर में भीख माँगते हैं। शरीर से सुख मिलेगा, स्त्री से सुख मिलेगा, पैसा से सुख मिलेगा। अरे! सुख कहाँ है? प्रभु! परन्तु सुख तो यहाँ है न। सुख का सागर अन्दर छलाछल भरा है। छलाछल कहते हैं न? लवालव।

मुमुक्षु : छलाछल भी बोलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : छलाछल भी कहते हैं? आनन्दस्वरूप भगवान लवालव भरा है। यह आनन्द वहाँ नहीं जानकर भिखारी बाहर में खोजता है। पैसा में मिलेगा, स्त्री में मिलेगा, कुटुम्ब में मिलता है, आबरू में मिलता है, भिखारी, बड़ा भिखारी। भीख माँगता है। सेठ! यहाँ तो यह बात है।

मुमुक्षु : करने का क्या रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का यह रहा। यह करना, स्त्री का, स्त्री को पैसा का। यह जानने के लिये पूछता है। यह कर सकता है क्या? वास्तव में तो विकल्प है, यह अपने में-वस्तु में नहीं। विकल्प को करना, ऐसा मानना यह भी मिथ्यादृष्टि का भाव है। आहाहा! पर का करना-फरना है क्या तुम्हारी बीड़ा का, पैसे का। कहाँ गया सेठ? करना क्या, ऐसा भाई पूछते हैं। सारे दिन यह नहीं करना तो करना क्या? यह कर सकता है किस दिन? धूल में भी कुछ नहीं कर सकता। एक अँगुली हिला सके या यह पलक हिला सके, तीन काल में आत्मा कर सके नहीं। मूढ़ मान लेता है। शरीर-बरीर ऐसे ठीक हो। ऐसे चले। लड्डू-बड्डू खाये, पतरवेलिया क्या कहते हैं? अरबी के पान नहीं आते? अरबी के पत्ते होते हैं न? चने का आटा लगाकर, टुकड़ा करके (बनाये)। हमारे तो पतरवेलिया कहते हैं। तुम्हारे क्या कहते हैं? अरबी के पत्ता। मोटा आता है न। इसमें चना का आटा लगाकर बनाते हैं। ऐसे टुकड़ा करके तेल में तलते और यह खाये। आहाहा! अरे! मूढ़! क्या है? शरीर और शरीर की खुराक, यह जड़ की क्रिया है। इसको अपनी मानता है, यह मूढ़ है बड़ा।

मुमुक्षु : आप कहते हो परन्तु खाते समय आनन्द आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी आनन्द नहीं। यह तो मानता है। आहाहा! यह नहीं कहा था? बालक का नहीं कहा था? एक बालक था। साल-डेढ़ साल का बालक था। दूध ज्यादा पी लिया तो पतले दस्त हो गये। नग्न शरीर। बालक को पतले दस्त हो गये। शेरणु समझे? पतला (दस्त)। गर्मी बहुत थी। वहाँ हाथ लगाये तो ठण्डा लगे। ठण्डा लगे तो चाटे। ऐसे अज्ञानी राग को बालक की तरह चाटता है। आहाहा! पर को भोग ही नहीं सकता। स्त्री के शरीर का भोग आतमा को है ही नहीं। यह तो जड़ है। इस तरफ का लक्ष्य करके, ठीक है, ऐसा विकल्प-राग उठाते हैं। विष्टा समान, जहर समान है। यह राग का वेदन करते हैं। और मानता है कि मैं शरीर का भोग लेता हूँ और सुखी हूँ। अरे! मूढ! सुन तो सही। आहाहा! पोपटभाई! यह सब सुखी कहलाते हैं। यह करोड़पति। धूल के पति। जानते हो? भाई! दो करोड़ रुपया है, इसके पास। छह लड़के हैं। बड़ा धन्धे के आरम्भ का पाप का। उसका लड़का लाया था। यह मशीन लाया है क्या? इससे लिखा जाता है। स्वीट्जरलैण्ड से। यह तो क्रिया होनेवाली होती है। लानेवाला ऐसा मानता है कि मैं लाया, यह बात भी सच्ची नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आप फरमा रहे हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का ज्ञान कराते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान अवाच्य है। आहाहा! यह वाणी द्वारा क्या वस्तु है, यह किस प्रकार कही जाये? शक्कर का स्वाद गूँगा लेता है। गूँगा होता है न? गूँगा। वह बोल नहीं सकता। (कोई पूछता है) कैसा स्वाद है? भाई! ऐसे (इशारा) करता है। बोल नहीं सकता।

इसी प्रकार अवाच्य भगवान आत्मा वाणी द्वारा कैसे कहा जाये? ओहोहो! यह तो सम्यग्दर्शन में शुद्धोपयोग में, मति और श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होता है, उसका प्रत्यक्ष स्वाद आता है तो जानता है। समझ में आया? आहाहा! यह कहा।

कलश-८५

(उपजाति)

एकस्य नाना न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।40-85।।

अर्थ-जीव नानारूप है, ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव नानारूप नहीं है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।40-85।।

कलश - ८५ पर प्रवचन

एकस्य नाना न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।40-85।।

आहाहा! एक का मत है जीव नानारूप है (अर्थात्) अनेकरूप है... यह व्यवहार है। गुण-पर्याय से भेद तो अनेकरूप से आ गये हैं, परन्तु नानारूप को लेकर दूसरी बात समझानी है। भगवान अनेकरूप है। गुणरूप है। ज्ञानरूप है, दर्शनरूप है, पर्यायरूप है। ऐसा व्यवहारनय का पक्ष है। यह तो छुड़ाते आये हैं।

दूसरा कहता है नानारूप नहीं-अनेकरूप नहीं। यह तो एकरूप चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! यह निश्चय का पक्ष है। परन्तु है पक्ष। मैं अभेद एकरूप चिदानन्द अनाकुल आनन्दकन्द हूँ। आहाहा! समझ में आया? पहले वह दृष्टान्त अनेक देते हैं न अनेक बार? शक्करकन्द होता है न? शक्करकन्द। शक्करिया कहते हैं न? शक्करकन्द। उसकी लाल छाल होती है, ऐसा न देखें तो पूरा शक्करकन्द है। शक्कर अर्थात् शकर की मिठास का

पिण्ड है। इससे उसको शक्कर कहा है। यह शकर है। पूरा शकर की मिठास का पिण्ड है। यह लाल छाल रहित।

ऐसे आत्मा विकल्प की छाल बिना आनन्द का कन्द है, प्रभु! पूर्ण आनन्द का दल है। आहाहा! खबर नहीं। अपनी नजर निधान के ऊपर जाये बिना निधान का पता नहीं लगता। बाहर में नजर फैरता रहता है। शास्त्र में बाहर में और ऐसे न वैसे। इसमें आत्मा नहीं कि जिसमें से पता लगे। आहाहा! जब भगवान आत्मा एकरूप है। यह एकरूप है न? आहाहा! एकरूप ध्रुव चिदानन्द अन्दर सामान्यस्वरूप है। आहाहा! उसका पक्ष (होता है) मैं एकरूप हूँ, सामान्य हूँ — ऐसा विकल्प भी दु:खरूप है। आहाहा! यह पक्षातिक्रान्त **चित्स्वरूप जीव में दो नयों के दो पक्षपात हैं, जो तत्त्ववेदी पक्षपात रहित है...** आहाहा! **उसको निरन्तर...** कल भाषा आ गयी है। निरन्तर चेतन... चेतन... चेतन... आहाहा! पक्षपातरहित तत्त्व को जाननेवाला तत्त्व को निरन्तर जानता है। आहाहा! एकरूपता है। ऐसे विकल्प को छोड़कर एकरूपता का वेदन निरन्तर है, निरन्तर है। आहाहा! इसके बाद मैं ऐसा तत्त्व हूँ, राग से भिन्न हूँ, ऐसा करना पड़ता नहीं। निरन्तर (वेदन है)। आहाहा!

विकल्प से भिन्न पड़ा, निर्विकल्प भगवान का जहाँ पता लगा, इसका तलिया लिया तो निरन्तर तत्त्ववेदी तत्त्वस्वरूप ही है। बस! आहाहा! धर्मी तो तत्त्व का वेदन करनेवाला अकेला तत्त्ववेत्ता ही है। शास्त्रवेत्ता या ऐसा कुछ यहाँ कहा नहीं। आहाहा! यह तत्त्वेत्ता है। तत्त्व भगवान आनन्दकन्द ज्ञायकभाव, इसका यह वेत्ता अर्थात् जाननहार है। आहाहा! उसको पक्षपात नहीं। ऐसी बात है अभी तो यह है। अभी तो यहाँ व्यवहार से धर्म-मोक्षमार्ग होता है, (ऐसा कहते हैं)। गजब बातें, क्या होगा?

अभी आया है न? मक्खनलालजी का। शुभयोग, यह मोक्ष का मार्ग है। शुभयोग को जो हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। फिर कैलाशचन्द्रजी ने लिखा कि शुभयोग को हेय कुन्दकुन्दाचार्य मानते हैं तो कुन्दकुन्दाचार्य मिथ्यादृष्टि हैं? यह जैनसन्देश में आया है। अरे! परन्तु यह चर्चा कहाँ से निकली? यह सोनगढ़ में निकाली, वहाँ से यह चर्चा चली है नहीं सब पड़ी थी। आहाहा! यह कहते हैं कि शुभयोग मोक्ष का मार्ग है। यहाँ कहते हैं कि शुभयोग तो कहाँ रह गया, परन्तु मैं एकरूप हूँ। ऐसा विकल्प जहर और दु:खरूप है।

आहाहा! समझ में आया? दया-दान, व्रत, तप, उपवास आदि के विकल्प शुभयोग हैं, वह तो दुःखरूप है। यह तो दोपहर में चलता है। यह आत्मा में नहीं, यह तो अनेकान्त है। आहाहा! समझ में आया?

यह एकरूपता का वेदन निरन्तर चलता है, उसको यहाँ सम्यग्दृष्टि और धर्मी कहते हैं। समझ में आया? बहुत बारीक बात, बापू! यहाँ तो अभी बाहर में सामायिक करके, प्रौषध करके, प्रतिक्रमण करके, भक्ति करके, पूजा करके और दान करके, हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। सुन तो सही। धूल में अर्थात् पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं।

मुमुक्षु : अजमेर में महासभा भरी थी....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आया था। बात हुई थी। अरे! बापू! भाई! भगवान! यह कोई पक्ष नहीं, यह कोई वाड़ा नहीं। यह तो वस्तु का स्वरूप है, नाथ!

तेरी चीज़ आनन्दकन्द विकल्पातीत है। इसके अनुभव के पहले श्रद्धा तो कर कि यह वस्तु है, उसका अनुभव करना, यह धर्म है। समझ में आया? बाकी सब थोथा है। सब मर जायेंगे, चले जायेंगे। सब करोड़पति और अरबपति, यह पति... पति... सब जड़ के पति हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि भगवान तो एकरूप है न, नाथ! ऐसा विकल्प भी छोड़ दे। यह आया न? यह दो हुए। ८६ (कलश)

कलश-८६

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।41-86।।

अर्थ-जीव चेत्य (जाननेयोग्य) है, ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव चेत्य नहीं है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।41-86।।

कलश - ८६ पर प्रवचन

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।41-86।।

एक जीव जाननेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। यह यथार्थ है, परन्तु विकल्प है। जाननेयोग्य है, ऐसा एक विकल्प है। यह निश्चय का पक्ष है। दूसरा कहता है, जाननेयोग्य नहीं। यह तो व्यवहार का पक्ष है। अपना स्वरूप जाननेयोग्य नहीं। यह अज्ञानी का व्यवहार का पक्ष है। यह तो छोड़नेयोग्य है ही। परन्तु मैं जाननेयोग्य हूँ, जाननेयोग्य हूँ। अपना मति-श्रुत सम्यग्ज्ञान से पृथक्-जाननेयोग्य हूँ, ऐसा जो विकल्प उठता है, यह भी पक्ष है, कहते हैं। आहाहा! पक्षातिक्रान्त है, यह तो सीधा प्रत्यक्ष होता है। विकल्प की अपेक्षा छोड़कर अपने मति-श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष होता है। इसमें मैं प्रत्यक्ष जाननेयोग्य हूँ, ऐसे विकल्प का भी वहाँ अवकाश नहीं। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! आज प्रश्न आया था। यह ब्रह्मचारी नहीं? आया था न? हमको लाया था न? मति-श्रुत प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! हमारे यहाँ एक प्रश्न लाया था। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रकाशशक्ति है न इसमें ? ४७ शक्ति में अपनी प्रकाशशक्ति चल गयी। यह तो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होनेयोग्य ही है। इसमें यह गुण है। इसमें प्रकाश नाम का एक गुण है, इसका कार्य अपना स्वसंवेदन, अपने से प्रत्यक्ष वेदन होना, यह इसका गुण है। आहाहा! बारहवीं शक्ति आई थी न ? बारहवीं। जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व, प्रकाशत्व, बारहवीं। ४७ शक्ति हैं। प्रकाशशक्ति आत्मा में है। भगवान कहते हैं, प्रभु! तेरे में ऐसा एक गुण है... आहाहा! तेरे में एक ऐसी शक्ति है कि पर्याय में तुम प्रत्यक्ष हो ऐसी तेरी शक्ति है। परोक्ष रहना तेरा स्वभाव ही नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष, मति-श्रुतज्ञान से प्रत्यक्ष (होता है)। मति-श्रुतज्ञान स्वयं को जानता है, यह प्रत्यक्ष हो जाता है। कर्ता-कर्म (अधिकार) की १४३ (गाथा) में आया है न ? यह इसका श्लोक है। मति-श्रुत जो परसन्मुख है, इसको विकल्पातीत करके स्वसन्मुख (करना)। १४३। यह १४२ का श्लोक है। क्या कहा ? जो मतिज्ञान है, इसको पर के जानने में झुकाव है, यह मति की-बुद्धि को अन्तर्मुख कर। आहाहा! तेरी चीज़ वहाँ प्रत्यक्ष जाननेयोग्य पड़ी है। आहाहा! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! लोगों को धर्म के नाम पर सथूल कर रखा है, विपरीत कर रखा है।

भगवान आत्मा ज्ञान में प्रत्यक्ष जाननेयोग्य है, ऐसा विकल्प भी छोड़नेयोग्य है। आहाहा! अरे! जिन्दगी चली जाती है। जो-जो क्षण जाता है, वह मृत्यु के समीप जाता है। देह की स्थिति जब छूटने की है, यह तो निर्णय निश्चय है। समझ में आया ? हमने गाया न ? 'जो जो देखी वीतराग ने, ते ते होसी वीरा रे'। उस ही समय वह होगा। जिस समय देह छूटना है, वो क्षेत्र, वो संयोग, वो निमित्त (उस समय ही) छूटेगी। स्वामी कार्तिकेय। यह निश्चय है और जितना पल-क्षण निकलता है, वह मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा! यह जानता है कि मैं बढ़ता जाता हूँ। तब भगवान कहते हैं कि मृत्यु के समीप जाता है। तू तो अन्दर है वह है। अन्दर अमृत का सागर पड़ा है।

यह यहाँ कहते हैं कि अपने में अपने से जाननेयोग्य है। ऐसे पक्ष का विकल्प छोड़ दे। जाननेयोग्य तो अपने से जाननेयोग्य है। समझ में आया ? पक्ष छोड़ दे तो अपने से

जाननेयोग्य का पक्ष छोड़ दे तो कोई दूसरे से जाननेयोग्य है, ऐसा इसका अर्थ है ? ऐसा नहीं। आहाहा ! जाननेयोग्य नहीं। यह प्रश्न तो छोड़ दे। भगवान चिदानन्द मूर्ति जाननेयोग्य है। नहीं जाननेयोग्य, यह बात तो छोड़ दे तेरे ज्ञान में से, परन्तु मैं मेरे ज्ञानस्वभाव से (जाननेयोग्य हूँ)। अलिंगग्रहण में छठा बोल आया है। अलिंगग्रहण में। अपने स्वभाव से जाननेयोग्य प्रत्यक्ष ज्ञाता हूँ। यह अलिंगग्रहण है। पर से नहीं जानता। अपने स्वभाव से शुद्ध चिदानन्द प्रभु। आहाहा ! उससे जानने में आता है, ऐसा यह प्रत्यक्ष ज्ञाता है। प्रत्यक्ष ज्ञाता ही इसका स्वरूप है। आहाहा ! ऐसी बातें मनुष्य को (कठिन लगती हैं)। समझ में आया ? मार्ग ऐसा है, भाई ! इसका पहले पक्ष तो करे। विकल्प से पक्ष तो करे कि यह चीज़ ऐसी है। बाद में विकल्पातीत होना, यह तो अन्दर की चीज़ की चीज़ है। यहाँ तो अभी विकल्प के पक्ष में भी व्यवहार से होता है, उससे होता है और इससे होता है। विपरीत दृष्टि है, भाई ! अरेरे !

यह शरीर और वाणी, और कर्म और यह सब भव का दिखता है, यह सब श्मशान के हड्डी का फासफूस है। यह श्मशान में हड्डी होते हैं न ? श्मशान में बालक जाते हैं न तो वहाँ चमक-चमक होती है। इसलिए लोग कहते हैं न ? श्मशान में बालक जाते हैं न तो वहाँ चमक-दमक होती है। अर्थात् लोग कहते हैं कि यह भूत है। भूत कहाँ था ? मनुष्य को श्मशान में जलाते हैं, बाद में हड्डी पड़े होते हैं न ? तो हड्डी में चमक होती है। फासफोरस क्या कहते हैं ? फासफोरस। फासफोरस होता है बालक को ऐसा समझाते हैं कि वहाँ भूत है। भूत कुछ नहीं, यह हड्डी का फासफोरस (चमक) दिखता है। बाहर की वस्तुएँ श्मशान की फासफोरस हैं। आहाहा !

भगवान अमृत का सागर अन्दर जाननेयोग्य पड़ा है। आहाहा ! इसके ऊपर नजर नहीं, इस तरफ झुकाव नहीं, इस तरफ झुकाव नहीं। और मति-श्रुतज्ञान का झुकाव पर के ऊपर है। कहते हैं कि जाननेयोग्य है। यह निश्चय से लिया। यह पहला बोल लिया। परन्तु यह नय का पक्ष है। विकल्प का एक पक्ष है।

इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के विषय में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेदी... यह जाननेयोग्य है, ऐसो विकल्प भी छोड़कर। आहाहा ! यह क्रिया तो देखो !

यह विकल्प का पक्ष भी छोड़कर। तत्त्व जो चेतनस्वरूप ज्ञायक है, उसका वेदी, उसका जाननेवाला होता है। समझ में आया? इसका नाम सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन और धर्म कहने में आता है। बाकी सब फोक है। आहाहा! कोई खबर नहीं। यह सामायिक की, प्रौषध किया, प्रतिक्रमण (किया)। धूल भी नहीं सामायिक। सुन तो सही! वस्तु क्या है, इसकी दृष्टि की तो खबर नहीं। तुझे सामायिक कहाँ से आयी तेरे? डाह्याभाई! स्थानकवासी में तो सामायिक बहुत करते हैं। सामायिक करें, प्रौषध करें, प्रतिक्रमण (करें)। धूल में भी कुछ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रौषध माने क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रौषध, प्रौषध। चौबीस घण्टे आहार-पानी छोड़ देना। सुबह से दूसरे सुबह तक (आहार-पानी नहीं लेना)। जैसे चना होता है न? चना... चना। पानी में डालें तो फूलता है न? ऐसे आत्मा को गुणों के द्वारा पोषण करना। बात तो ऐसी है। परन्तु यह तो भान नहीं और चौबीस घण्टे खाना न खाये, पानी न पीये, ये प्रौषध। धूल में ही प्रौषध नहीं नहीं है। प्रौषध तो अपना...

मुमुक्षु : लोक में...

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक में सब ऐसा होता है। पागल, गधा जैसा। इसके पास क्या बातें होंगी? सेठ! गधा भोंकते हैं न? ऐसे भोंकें। और सामायिक कहलाती है और इसे प्रतिक्रमण कहते हैं, तत्त्व की तो कुछ खबर नहीं। यह वस्तु कहाँ से आयी? आहाहा!

सामायिक में तो सम-आय। वीतरागता का लाभ होता है। सामायिक का अर्थ यह है। परन्तु वीतरागता का लाभ तुझे कैसे हो? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं करेमि भंते करके बैठ गया (अर्थात्) हो गयी सामायिक? धूल में भी नहीं। शुभराग को कदाचित् हो तो पुण्य है - अधर्म है।

कहा था न? सम्प्रदाय में कहा था। (संवत्) १९८५ में सम्प्रदाय में (कहा था)। बोटाद में बड़ी सभा। वहाँ तो ३०० घर हैं न! बड़ी सभा। १९८५ की बात कल कही थी न? वहाँ कहा, महाव्रत का भाव, यह आस्रव है और जो तीर्थंकर गोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं; अधर्म है। परन्तु उसमें था न। लोगों को विश्वास। ऐ...! बोटाद... बोटाद। ३००

घर। अब तो घर बढ़ गये। ३५० घर हैं। बहुत मनुष्य आते हैं। हम जब व्याख्यान करने बैठते थे (और खबर पड़े कि) कानजीस्वामी बैठे हैं, इनते लोग कि पूरा उपाश्रय भर जाता था और बाहर गली भर जाती थी, इतने लोग। १९८० के वर्ष की बात है। ५३ वर्ष हुए। इससे पहले भी हम तो (संवत्) १९७४ के वर्ष व्याख्यान करते थे। १९७४ के वर्ष। हजारों लोग। हजारों लोग। कितने वर्ष हुए? ५९। साठ में एक कम। तब तो हमारा नाम बहुत प्रसिद्ध था न! पुण्य भी दिखता था। दुकान भी अच्छी चलती थी, परन्तु छोड़ दी, ब्रह्मचारी हैं। इससे लोक में प्रसिद्धि बहुत थी। और जानपने की बात करें और लोग सुनें, एकधारा सुनें। यह हमारा गाँधी रहा। हसमुख और इसका पिता और यह सब वहाँ थे... आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिस भाव से तीर्थंकर का बन्ध होता है, प्रभु! यह भाव धर्म नहीं। धर्म से बन्ध होता नहीं और जिस भाव से बन्ध होता है, वह धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि को तो यह शुभभाव आता है, परन्तु हेय है। 'षोडशकारण भावना भाय...' आता है या नहीं? 'सोलह तीर्थंकर पद पाय..' हमारे यहाँ श्रीचन्दजी हैं, वह बहुत बोलते थे। पूजा करते थे तब। पहले पुजारी थे न? पहले पुजारी थे। श्रीचन्दजी है न? 'षोडशकारण भावना भाये, तीर्थंकर पद पाय' मानों बढ़ा तीर्थंकर पद अर्थात् क्या होगा जानें?

यहाँ तो आत्म पद पाये, उसकी बात है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव भी अधर्म है, राग है। निश्चय से तो पाप है।

मुमुक्षु : ऐसा माननेवाले को तीर्थंकरगोत्र बँधता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा विकल्प उसको आता है। दृष्टि में निषेध है अर्थात् दृष्टि शुद्ध चैतन्य के ऊपर है। इसको ऐसा विकल्प आता है। अज्ञानी को ऐसा विकल्प नहीं होता। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, जाननेयोग्य है। आहाहा! जाननेयोग्य और जाननेयोग्य तो एक आत्मा ही है। दूसरा जाननेयोग्य है, इस बात को तो यहाँ छोड़ दिया है। समझ में आया? परन्तु यह आत्मा जाननेयोग्य है, ऐसा जो विकल्प है, वृत्ति उठती है, इससे क्या? ऐसा कहते हैं। यहाँ तक आया तो भी क्या? आहाहा! सन्तों की वाणी तो देखो! दिगम्बर सन्तों की। यहाँ तक आया कि यही जाननेयोग्य है, दूसरा जाननेयोग्य नहीं। ऐसे विकल्प में आया, वृत्ति

उठी तो इससे क्या ? तुझे इससे क्या लाभ होगा ? भगवान ! आहाहा ! विकल्पातीत होकर... है ? **तत्त्ववेदी पक्षपात रहित हैं, उसको निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।** आहाहा ! जाननेयोग्य है, यह जाननेयोग्य हो गया। समझ में आया ? अपना स्वरूप ही जाननेयोग्य है। आहाहा ! देव, गुरु और शास्त्र यह पर को जानना, यह तो सब व्यवहार है। यह पर सत्तावलम्बी ज्ञान है। आहाहा ! अपनी निज सत्ता ज्ञायक ज्योति आनन्दरूप, यही जाननेयोग्य है ऐसा वेदन में आना, उसका यहाँ तत्त्ववेदी, तत्त्ववेत्ता कहने में आता है। उसको यहाँ सम्यग्दृष्टि और धर्म की पहली सीढ़ीवाला कहने में आता है। आहाहा ! पश्चात् ८७ (कलश)।

कलश-८७

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।42-87।।

अर्थ-जीव दृश्य (देखनेयोग्य) है, ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव दृश्य नहीं है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।42-87।।

कलश - ८७ पर प्रवचन

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।42-87।।

आहाहा! यह सर्वविशुद्धि अधिकार में आता है न? माता से आज्ञा माँगता है। (प्रवचनसार) चरणानुयोग सूचक चूलिका। आत्मा में आनन्द का अनुभव हुआ, बाद में आनन्द में विशेष रमणता करने के लिये साधुपद लेता है। जंगल में जाता है। आहाहा! माता को कहता है, जनेता! माता! मेरी आनन्दरूपी माता तो मेरे पास है। तू तो शरीर की जनेता है। शरीर को उत्पन्न करनेवाली है, मेरे आत्मा की जनेता तू नहीं। आहाहा! मेरे देखनेयोग्य चीज़ तो मेरे में है। मैंने देखी है और अब उसमें लीन होने के लिये मैं जाता हूँ। माता! आहाहा! माता रोती है। जनेता! एक बार रो ले। परन्तु मैं वादा करता हूँ, माँ! अब फिर माँ नहीं बनाऊँगा। फिर माँ नहीं बनाऊँगा। मैं अशरीर होऊँगा।

मुमुक्षु : यह तो गुजराती में हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजराती में हुआ? अब फिर अवतार नहीं लूँगा। माता को ऐसा कहता है। तू मुझे आज्ञा दे। हमारी आनन्दरूपी माता के पास हम जाते हैं। आनन्द जो हमारी जनेता है। आहाहा! आनन्द की उत्पत्ति देनेवाला मेरा आत्मा है, वहाँ मैं जाता हूँ। वहाँ मेरा आनन्द है। माता एक बार सहमति दे न! रोना हो तो रो ले। फिर मैं जनेता-माता नहीं करूँगा। बाद में (सहमति) देती है... यह समय (संवत) १९८० में बोलते थे, तब तो लोग ऐसे...

उत्तराध्ययन की यह गाथा है। 'अजैव धम्मम पडिवज्ज्यामो, जहिं पवन्नपण पुनः भवामो, अणगयं अेव यतकिंची,... विणाहि तुरागं' यह गाथा जब सम्प्रदाय में आती थी, (तब) लोग... क्या कहते थे? माता को ऐसा कहते हैं। 'अजैव धम्मम पडिवज्ज्यामो', हे माता! मैं यह जो मेरे आनन्द की दशा-चारित्र अंगीकार करने जाता हूँ। 'जहिं पवन्नपण पुनः भवामो', माता! मेरे आनन्दस्वरूप को ग्रहण करने मैं जाता हूँ। और उसको ग्रहण करने से माता! 'न पुनः भवामो' दूसरा भव नहीं करूँगा। आहाहा!

'अजैव धम्मम पडिवज्ज्यामो' शब्द पहला है। आज ही धर्म 'पडिवज्ज्यामो' अंगीकार करने जाता हूँ। 'पडिवज्ज' अर्थात् अंगीकार। 'जहिं पवन्नपण पुनः भवामो', मेरे आनन्द की रमणता अंगीकार करने से माता! फिर मैं भव धारण नहीं करूँगा। मैं तो अशरीरी सिद्ध होनेयोग्य हो गया हूँ। आहाहा! 'अणागयं येव यतकिंचि' माता! जगत में

प्राप्त नहीं हुई ऐसी कौनसी चीज़ रह गयी है ? सब चीज़, आत्मा के अतिरिक्त सब चीज़ अनन्त बार मिल गयी हैं। यह पैसा और स्त्री और लड़के के धूलधाणी तेरी। 'अणागयं अेव यतकिंचि' अणागयं अर्थात् ? नहीं प्राप्त हुई कौन सी चीज़ माता! रह गयी कि मुझे अपूर्व लगे ? 'श्रद्धा... विणाहि तुरागं...' माता! श्रद्धा करके मेरे प्रति का राग छोड़कर आज्ञा दे दे। मैं अकेला जंगल में चला जाऊँगा। आहाहा! देखो! आत्मसाधन। बापू! मुनिपना इसको होता है। बाहर की क्रिया यह मुनिपना नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। आनन्द के धाम में रहना। आहाहा! यह आनन्द के धाम में ध्रुवधाम में रहना। इसका नाम मुनिपना है। यह दशा तो अलौकिक है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा देखनेयोग्य है। बात सच्ची है, परन्तु देखनेयोग्य है। यह पक्ष का त्याग करना पड़ेगा। दूसरा पक्ष है कि देखने योग्य नहीं। ये तो नहीं... दूसरा देखनेयोग्य दूसरा देखा-देखा, आत्मा देखनेयोग्य नहीं। ये देखा और ये देखा धूल और धाणी बाहर का पदार्थ, ये देखनेयोग्य है, ऐसा अज्ञानी कहता है, उसका तो निषेध कर दिया। परन्तु अपना आत्मा देखनेयोग्य है, ऐसे विकल्प के पक्ष भी छोड़ दे, नाथ! आहाहा! समझ में आया ?

यह कहते हैं, **एक नय का पक्ष है जीव द्रव्य नहीं दूसरा नय का पक्ष है। ऐसे चित्स्वरूप जीव में दो नयों के पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेदी पक्षपात रहित है...** आहाहा! मैं देखनेयोग्य हूँ, ऐसा घोखन (घोखना) की वृत्ति-विकल्प है, इससे रहित तत्त्ववेत्ता है। उसको ज्ञान, दर्शन और चारित्र कहते हैं। यह **निरन्तर चित्स्वरूप...** आहाहा! अपनी दर्शन पर्याय से निरन्तर अपने को देखता है। निरन्तर देखता है। आहाहा! समझ में आया ? इसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। बाकी सब बातें हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-८८

(उपजाति)

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।43-88।।

अर्थ-जीव वेद्य (वेदनेयोग्य-ज्ञात होनेयोग्य) है, ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव वेद्य नहीं है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।43-88।।

श्रावण कृष्ण ९, शनिवार, दिनांक ०६-०९-१९७७
कलश-८८ से ९०, प्रवचन-८७

समयसार कलश, कर्ता-कर्म अधिकार, कलश ८८। ८८

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।43-88।।

भगवान आत्मा में दो पक्ष हैं। शुभाशुभभाव तो दूर रहो, यह तो आत्मा में है ही नहीं, परन्तु यहाँ वस्तुस्वरूप जैसा है, ऐसे का पक्ष करना, वह भी एक विकल्प है। आहाहा! यहाँ आया न? **जीव वेद्य (-वेदनेयोग्य, जाननेयोग्य) है...** जाननेयोग्य है। जाननेयोग्य है और जाननेयोग्य नहीं, यह तो पहले आ गया। ८६ में पहले (आ गया)। जाननेयोग्य है और जाननेयोग्य नहीं। जाननेयोग्य नहीं, यह व्यवहारपक्ष है। जाननेयोग्य है, यह निश्चय पक्ष है। पर यह दोनों विकल्पों के पक्ष हैं। जहाँ तक यह जाननेयोग्य है अथवा जनानेयोग्य हैं,

ऐसे विकल्प में आते हैं तो भी इससे आत्मा को क्या लाभ ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो विकल्प, राग है। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति के राग की बात तो यहाँ की ही नहीं।

भगवान चैतन्यस्वरूप जाननेयोग्य है या जनानेयोग्य है, यह जनानेयोग्य का प्रश्न चलता है। वेद्य में। समझ में आया ? जाननेयोग्य है, यह पहले ८६ कलश में आ गया। ८६। इसमें क्या अन्तर है ? पहले यह आया कि जाननेयोग्य है। तो दूसरा (पक्ष) कहता है कि जाननेयोग्य नहीं। तो यह दो विकल्प पक्ष हैं। व्यवहार का पक्ष तो छुड़ाते आये हैं परन्तु जाननेयोग्य है, ऐसे विकल्प का पक्ष भी छुड़ाते हैं। आहाहा ! तब आत्मा का समरसीभाव वेदन में आता है। आत्मा का समरसीभाव वीतरागभाव नयपक्ष छोड़ देने से वीतरागभाव वेदन में आता है। आहाहा ! इसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और मोक्ष का कहते हैं।

कर्ता-कर्म अधिकार है न ? मैं जनानेयोग्य हूँ अथवा जनानेयोग्य नहीं हूँ, दोनों राग हैं। जनानेयोग्य है, यह व्यवहार पक्ष है। जनानेयोग्य नहीं। यह चीज़ तो अलौकिक है। आहाहा ! समझ में आया ? चैतन्यबिम्ब प्रभु को पकड़ने में ये मैं जनानेयोग्य हूँ कि जाननेयोग्य हूँ, ऐसा विकल्प भी वहाँ काम नहीं करता। आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म मार्ग है इसलिए लोगों को कठिन लगता है। क्या करें ? भाई !

यह तो इसमें आया न ? अपने आ गया है। पहले कहाँ आ गया है ? कठिन है। कितने में आया ? ६०... ६०। ६० कलश। **इससे ज्ञान भिन्न, क्रोध भिन्न—ऐसा अनुभवना बहुत ही कठिन है।**' है ? पण्डितजी ! ६०... ६०। अन्दर टीका में। पाँच-छह लाईन बाद। इससे ज्ञान भिन्न, क्रोध शब्द विकल्प भिन्न, (ऐसा अनुभवना अत्यन्त ही कठिन है)। यह तो जवाब देते हैं।

उत्तर ऐसा है कि सच ही कठिन है। अपने-स्वयं प्रश्न उठाया कि कठिन है न। ओहोहो ! विकल्प से भिन्न करना, नयपक्ष से पक्षातिक्रान्त होना। आहाहा ! और यह धर्म की शुरुआत है। आहाहा ! दूसरी बात तो कहाँ रह गयी। परन्तु इसका पक्ष (करें कि) मैं यह जनानेयोग्य हूँ अथवा जाननेयोग्य हूँ। तो कहते हैं कि राग से भिन्न करना अति ही कठिन है। शिष्य का प्रश्न है। **उत्तर ऐसा है कि सच ही कठिन है।** है ? सच ही कठिन

है। **परन्तु वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है।** आहाहा! सूक्ष्म है, भगवान! तेरी चीज़ तो भगवत्स्वरूप वीतरागस्वरूप विराजमान है। आहाहा! अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरा प्रभु विराजता है। यह शुद्ध स्वरूप का...क्या कहा? **वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने...** विचारने का अर्थ शुद्धस्वरूप का ज्ञान करते। भगवान शुद्धस्वरूप है, उस तरफ झुकने से, उसका ज्ञान करते। आहाहा! राग अर्थात् विकल्प और पर का ज्ञान तो अनादि से करता है। यह परप्रकाशक ज्ञान यह मिथ्याज्ञान है। आहाहा! जिसमें स्व-प्रकाशक आत्मा न मिले, अकेला पर का जानना, वह तो मिथ्याज्ञान है। आहाहा!

अपना स्वरूप शुद्ध विचारने पर अर्थात् शुद्धता का ज्ञान करने पर। विचारने का अर्थ विकल्प एक जगह किया है। इसमें आगे कहते हैं। नहीं? विचारादि विकल्प। आगे विचार को विकल्प में लिया है। कहाँ सब याद रहता है? ख्याल हो कि इस जगह है। इस तरफ कहीं है। विचार भी विकल्प है। यह तो विकल्पवाला विचार। यहाँ तो विचारने का अर्थ ज्ञान करने पर। है न? भाई! कहाँ? कहीं इस तरफ है। क्या कहा? शुद्धस्वरूप का विचार भी हेय है। ऐसा आया है। इतना बड़ा कुछ क्षय उपशम है नहीं। इतना याद नहीं रहता। भाव याद रहता है। कहाँ है, इस ओर है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा जनानेयोग्य है, यह भी एक विकल्प है, राग है। और जनानेयोग्य नहीं, यह भी एक विकल्प है। जनानेयोग्य नहीं, यह तो विकल्पातीत वस्तु है, वचनातीत है। ऐसा विकल्प भी छोड़नेयोग्य है। यहाँ कहते हैं न? **वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारते भिन्नपनेरूप स्वाद आता है।** ६०। आहाहा! वस्तु जो शुद्धस्वरूप पिण्ड प्रभु, उसका ज्ञान करने पर, पर्याय में उसका ज्ञान करने पर, वस्तु है। यह पर्याय में नहीं आती। परन्तु पर्याय में इसका ज्ञान आता है। यह जितनी ताकतवाला आत्मपदार्थ है, पर्याय में इसका ज्ञान आता है। वस्तु पर्याय में नहीं आती। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं, **विचार करने पर भिन्नपने रूप स्वाद आता है।** ६० कलश। यहाँ भी यह लेना।

जनानेयोग्य है और एक नय का पक्ष है कि जीव जनानेयोग्य नहीं। **ऐसे चित्स्वरूप जीव में दो नयों के दो पक्षपात हैं।** आहाहा! तत्त्ववेत्ता। पाठ में तत्त्ववेदी है। मूलपाठ।

तत्त्ववेत्ता। आहाहा! चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभाव को जाननेवाला, यह विकल्प से रहित। आहाहा! पक्षपातरहित है। यह समरसीभाव में लीन है। आहाहा! विकल्प है (वह) विषमभाव है। मैं जनानेयोग्य हूँ या जनानेयोग्य नहीं, ऐसा जाननेयोग्य हूँ, यह भी एक विकल्प विषमभाव है। आहाहा! दुःखरूप भाव है। धर्मी जीव यह विकल्प को छोड़कर। आहाहा! समरसीभाव का वेदन करे तो उसको निर्विकल्पदशा कहते हैं। ऐसी बात है। समझ में आया? यह झगड़ा तो अभी बाहर का। यह झगड़ा। शुभयोग, यह मोक्ष का मार्ग (है)। यह तुम्हारे पण्डित में से कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरे जाति का पण्डित है। परन्तु यह पण्डित... मैंने तो मात्र पण्डित की जाति की बात की। क्योंकि वह तो तुम्हारा गुरु है। यह पण्डित दूसरी जाति का है। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या करें?

भाई! धर्म तो वीतरागभाव से होता है या रागभाव से? प्रभु! वीतराग का मार्ग तो वीतरागभाव से होता है या रागभाव से? तब तो वह वीतरागमार्ग ही नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा वेदनेयोग्य का अर्थ यहाँ जनानेयोग्य किया। पर दूसरी भाषा में कहें तो आनन्द का वेदन करनेयोग्य है और वेदन करनेयोग्य नहीं, ऐसे दो पक्ष हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात। यह तो धीर का काम है, बापू! '**निभ्रत**' शब्द आता है न अपने? भाई! '**निभ्रत**' शब्द कलश में आता है। चिन्तारहित जीव का काम है, प्रभु! निभ्रत, आहाहा!

यहाँ कहा कि तत्त्ववेत्ता तो पक्षपात रहित है। आहाहा! '**उसको निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।**' निरन्तर। आहाहा! राग और विकल्प से रहित प्रभु है। ऐसे सम्यग्दर्शन में, शुद्धोपयोग में भान हुआ। यह विकल्प का पक्ष है, यह अशुद्ध उपयोग है। समझ में आया? विकल्प का पक्ष है, यह अशुद्ध उपयोग है। और यह विकल्पातीत है, शुद्धोपयोग है... आहाहा! अब कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि अभी तो शुद्धोपयोग होता ही नहीं। शुद्धोपयोग तो सातवें-आठवें (गुणस्थान) में होता है। अरे! प्रभु! पहले चीज़ ही शुद्धोपयोग में प्राप्त होती है। आहाहा! यह क्या कहा? तत्त्ववेत्ता। यह तत्त्ववेत्ता, यह शुद्धोपयोग है। तत्त्व को जाननेवाला, यह शुद्धोपयोग से तत्त्व को जानता है। विकल्प को

छोड़कर... आहाहा! ऐसे एक ओर कहते हैं कि बात तो इनकी सच है, परन्तु अपने से नहीं छोड़ा जाता है। अरे! प्रभु! ऐसा मार्ग है।

यहाँ कहते हैं, बापू! मार्ग तो यह है, भाई! वीतरास्वरूपी... चारों अनुयोगों का तात्पर्य तो वीतरागता है। १७२ गाथा, पंचास्तिकाय चारों अनुयोगों का तात्पर्य तो वीतरागता है। तो चारों अनुयोगों में दूसरे अनुयोगों में दूसरा कहा हो और तीन अनुयोगों में दूसरा कहा हो, ऐसी बात नहीं। यह वीतरागता तो कब होती है ? आहाहा! कि विकल्प तो छोड़कर वीतराग समभाव में जब आत्मा को जानता है, तब वीतरागता होती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! तेरी प्रभुता की बलिहारी है, नाथ! आहाहा! यह वीतरागभाव से भरा है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म'। सारा चार अनुयोग का मर्म तो यह है, भगवान! आहाहा! तेरी वस्तु आनन्द को वेदनेयोग्य है। यह बात बराबर है। परन्तु विकल्प का पक्ष है, यह विषमभाव है। और आनन्द वेदनेयोग्य नहीं, दु:ख वेदनेयोग्य है, यह पक्ष तो एकदम झूठा है। आहाहा!

भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु है। वह अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय से ही जानने में आता है। यह समरस है–वीतरागभाव है। सम्यग्दर्शन, वह वीतरागभाव है। कोई कहे कि चौथे गुणस्थान में तो सराग समकित ही होता है। यह चर्चा भी बहुत चलती है। ऐसा नहीं, भगवान! सराग समकित कहा, यह तो चारित्र के दोषवाली समकित दशा का वर्णन है। समकित तो सराग है ही नहीं। सम्यग्दर्शन तो वीतराग ही है, भाई! आहाहा! क्योंकि सम्यक् सत्य पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति जब अन्दर अनुभव में हुई तो वहाँ समरस वीतरागभाव ही आता है। यह शुद्धोपयोग है, यह वीतरागभाव है। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! धर्म यह चीज़ ऐसी है कि जिससे भव का अन्त आ जाता है। आहाहा! यह भवाब्धि में भटकता है। चौरासी के अवतार में दु:खी... दु:खी है। घाणी में जैसे तिल पिलते हैं, वैसे यह दु:ख में पिलता है। आहाहा! इसको पता नहीं।

मुमुक्षु : जिसके भव का अन्त आ गया है, उसको समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भव के अन्त की बात यहाँ है। आहाहा!

मुमुक्षु : जो समझेगा उसके भव का अन्त आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्त आयेगा। यह दृष्टि हुई तो अन्त आयेगा ही। जिसको यह दृष्टि हुई, उसके भव का अन्त का समय आ गया। काललब्धि पक गयी। आहाहा! यह भव जिसके लक्ष्य में आया, उसको तो पाँचों समवाय एक समय में साथ में आ गये। आहाहा! समझ में आया?

यह तो हमारे (संवत्) १९७२ (के वर्ष) में बड़ी चर्चा हुई थी। हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे, वे तो भद्रिक थे। कषाय मन्द थी। बहुत सही ब्रह्मचारी थे, परन्तु इस वस्तु का पता नहीं था। चर्चा हुई कि भगवान ने देखा ऐसा होगा, ऐसा हमारे सम्प्रदाय के दूसरे गुरुभाई थे, ये बहुत कहते हैं। तब कहा, देखा ऐसा होगा, यह बात बाद में, परन्तु यह भगवान है, केवलज्ञानी है। यह केवलज्ञानी की एक पर्याय में तीन काल-तीन लोक जानने में आते हैं, ऐसी पर्याय की सत्ता का स्वीकार करे, तब केवलज्ञानी ने देखा ऐसा होगा, ऐसा इसको प्रतीति में आये। १९७२ के वर्ष। ६१ वर्ष हुए। ६१ वर्ष पहले की बात है। बाद में हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे न, दूसरे दिन इन्होंने ऐसा कहा, पहले मेरा पक्ष लिया कि कानजी बात करता है, यह ठीक करता है। यह तो १९७२ के वर्ष की बात है। फिर दूसरे दिन बोले, मूलचन्द के सामने। मेरा तो पक्ष करते थे, परन्तु मूलचन्द के सामने कहा कि मूलचन्दजी! तुम ऐसा कहते हो तो पाँच समवाय सिद्ध होंगे। ऐसा बोले। पाँच समवाय समझे न? काल, स्वभाव, भवितव्य, पुरुषार्थ और निमित्त का अभाव। ऐसे बोले। तो यह पाँच समवाय नहीं मानते थे। समझ में आया?

पाँच समवाय साथ में होते हैं। जब विकल्प से रहित अपना अनुभव हुआ तो स्वभाव आया, पुरुषार्थ आया, कर्म का अर्थात् निमित्त का अभाव भी आया। काललब्धि भी आयी और भवितव्य का भाव होनेवाला था, यह भव भी आया। आहाहा! परन्तु यह ऐसा नहीं था, भाई! हीराजी महाराज को रामजीभाई ने नहीं देखा होगा? भाई! देखा था?

मुमुक्षु : राजकोट में देखे थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। राजकोट, १९७१। ७१। भाई थे। चौमासे की माँग की थी। चौमासे की माँग। सच्ची बात। १९७१ के वर्ष। १९७१। कितने वर्ष हुए?

मुमुक्षु : ठाकरसीभाई ने की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ठाकरसीभाई, यह की। तब ठाकरसीभाई थे... क्या कहते हैं? प्रमुख... प्रमुख... ठाकरसीभाई प्रमुख था। ठाकरसीभाई का लड़का यहाँ भावनगर है न? क्या नाम? नौतमभाई। भावनगर रहता है न? नौतमभाई यहाँ आता है न, यह तो बहुत वर्षों की बात है। उस समय वहाँ हीराजी महाराज आये थे। उनके साथ मैं भी था। वहाँ यह प्रश्न तो नहीं था। परन्तु ऐसे ही (बात) चलती थी। इन्होंने विनती की कि... हमसे तो यहाँ नहीं रहा जा सकता। चौमासे में यहाँ नहीं रहा जा सकता। क्योंकि दो शिष्यों में गड़बड़ होती थी। कषाय होती थी। स्वयं की कषाय मन्द थी, परन्तु शिष्यों में कषाय थी। तो कहा, यहाँ नहीं रहा जा सकता। तब कितनों ने तो ऐसा कहा। जैसा होना होगा, वैसा होगा। परन्तु जैसा होना होगा, वैसा होगा यह पुरुषार्थ से होगा कि ऐसे के ऐसे होगा। समझ में आया? होना होगा वह होगा, यह तो ऐसा ही है। उसमें फेरफार नहीं। परन्तु होनेवाला है, ऐसा निर्णय किसने किया? और किसके सन्मुख होकर निर्णय होता है? समझ में आया? स्वसन्मुख भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञायक, इस तरफ मुख करने से, बहिर्मुख जो है, वह अन्तर्मुख (होता है)। जो राग और पर्याय पर तो दृष्टि है, वह बहिर्मुख है। आहाहा! समझ में आया? बहिर्मुख है, यह बहिरात्मा है। और अन्तर्मुख दृष्टि करनेवाला अन्तरात्मा है।

भगवान आत्मा... यहाँ कहा न? वेदनेयोग्य है। अनुभव करनेयोग्य आत्मा है। आहाहा! इतनी बात वहाँ रखो। अब यहाँ अन्तिम। ८९।

कलश-८९

(उपजाति)

एकस्य भातो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।44-89।।

अर्थ-जीव भात (प्रकाशमान अर्थात् वर्तमान प्रत्यक्ष) है, ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव भात नहीं है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है।।44-89।।

भावार्थ-बद्ध-अबद्ध, मूढ़-अमूढ़, रागी-अरागी, द्वेषी-अद्वेषी, कर्ता-अकर्ता, भोक्ता-अभोक्ता, जीव-अजीव, सूक्ष्म-स्थूल, कारण-अकारण, कार्य-अकार्य, भाव-अभाव, एक-अनेक, सान्त-अनन्त, नित्य-अनित्य, वाच्य-अवाच्य, नाना-अनाना, चेत्य-अचेत्य, दृश्य-अदृश्य, वेद्य-अवेद्य, भात-अभात इत्यादि नयों के पक्षपात हैं। जो पुरुष नयों के कथनानुसार यथायोग्य विवक्षापूर्वक तत्त्व का-वस्तुस्वरूप का निर्णय करके नयों के पक्षपात को छोड़ता है, उसे चित्स्वरूप जीव का चित्स्वरूप अनुभव होता है।

जीव में अनेक साधारण धर्म हैं, परन्तु चित्स्वभाव उसका प्रगट अनुभवगोचर असाधारण धर्म है; इसलिए उसे मुख्य करके यहाँ जीव को चित्स्वरूप कहा है।।44-89।।

कलश - ८९ पर प्रवचन

एकस्य भातो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।44-89।।

आहाहा! अन्तिम कलश तो गजब है! एक कहता है कि वर्तमान में प्रत्यक्ष है। क्या कहते हैं? आत्मा प्रत्यक्ष होनेयोग्य नहीं, प्रत्यक्ष ही है। आहाहा! बारहवीं प्रकाशशक्ति आयी न? प्रकाशशक्ति। यह प्रकाशशक्ति का कार्य यह है कि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होना। आहाहा! समझ में आया? ४७ शक्ति हैं न? डाह्याभाई! अपने दोपहर को चलती है न? उसकी बारहवीं शक्ति है। पहले से आयी न? जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शित्व, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व, प्रकाशशक्ति। यह प्रकाश का गुण-शक्ति गुण स्वभाव का कार्य क्या? आत्मा प्रत्यक्ष आनन्द के वेदन में आता है, यह प्रकाश का स्वभाव है। यहाँ तो कहते हैं कि वर्तमान प्रत्यक्ष वेदन में आता है, ऐसा विकल्प है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह भी नयपक्ष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नयपक्ष है। आहाहा! प्रत्यक्ष होनेयोग्य तो है ही। वर्तमान प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष है। आहाहा! अलिंगग्रहण के छट्ठे बोल में कहा न? बीस बोल में। अलिंगग्रहण। आत्मा अपने स्वभाव से जानने में आता है, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। यह बीस बोल में छठवाँ बोल है। अलिंगग्रहण, १७२ गाथा, प्रवचनसार, उसमें बीस बोल में छठवाँ बोल है। समझ में आया? भगवान आत्मा इन्द्रिय से जानने में नहीं आता, यह पहला बोल है। इन्द्रिय से नहीं जानता, यह दूसरा बोल है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय भगवान आत्मा नहीं, यह तीसरा बोल है। पर द्वारा अनुमान से जानने में आये, ऐसा आत्मा नहीं। अपने मात्र अनुमान से पर को जाने, यह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? छठवें बोल में आया, छठी का लेख। अपने छठवीं गाथा-ज्ञायक। छठी का लेख नहीं कहते? जन्म हुए पीछे। छठी का लेख तो लिख के आया है। छठी का लेख क्या लिखे? आहाहा! भगवान आत्मा प्रत्यक्ष स्वभाव से जाननेयोग्य है। यह विकल्प से नयपक्ष से जाननेयोग्य नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वर्तमान में प्रत्यक्ष है, यह छठी का लेख है?

पूज्य गुरुदेवश्री : छठी का लेख है। अपने भी छठी गाथा है न? भगवान! **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो'** भगवान ज्ञायकस्वरूप शुभाशुभभावरूप नहीं हुआ। शुभाशुभभाव

जड़ है, अचेतन है। आहाहा! चेतन भगवान त्रिकाली ज्ञायकभाव। रात्रि में छठवीं गाथा में बताया न? जड़रूप नहीं हुआ। कोष्ठक में था, कोष्ठक में था। समझ में आया? आहाहा! प्रभु ने तो अमृत प्रवाहित किया है।

तेरा अमृत का सागर भगवान। आहाहा! मैं अमृत का सागर भगवान वेदन में प्रत्यक्ष होनेयोग्य हूँ। यहाँ तो होनेयोग्य भी नहीं लिखा। यह तो प्रत्यक्ष है, ऐसा लिखा है। प्रगट वस्तु प्रत्यक्ष अन्दर है। आहाहा! एक नय का पक्ष है। आहाहा! अन्यमति में कहा है, 'मारी नयन ने आलसे रे, मैं निरख्या न नयने हरि।' हरि अर्थात् आत्मा, हों! पंचाध्यायी में आता है, पण्डितजी! पंचाध्यायी में हरि आता है। हरि क्यों कहा? अज्ञान और राग-द्वेष को हरे, वह हरि। तो भगवान हरि है। आहाहा! तो निज नयनने आलसे रे, अपने ज्ञान के आँखों के आलस से मैं निरखा न आँखों ने हरि। मेरी ज्ञान की पर्याय में भगवान को देखा नहीं। समझ में आया? रतनलालजी! ऐसी बातें हैं यहाँ। आहाहा! धर्म की बातें, बापू!

भगवान तू कौन है? क्या है? यहाँ तो कहते हैं, प्रत्यक्ष है। यह बात सच है, परन्तु प्रत्यक्ष है, ऐसा विकल्प है, यह छोड़नेयोग्य है। आहाहा! यह विकल्प है, यह विषमता है और भगवान प्रत्यक्ष है, यह समता है। वीतरागभाव से प्रत्यक्ष होता है। समझ में आया? यह विकल्प से प्रत्यक्ष नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग इसलिए मनुष्य को फुरसत नहीं, खाली नहीं... घण्टा, दो घण्टा फुरसत हो तो देवदर्शन करे या दो-चार पृष्ठ पढ़ जाये। यहाँ बहुत मनुष्य आते हैं। बापू! स्त्रियाँ आती हैं, उन्हें प्रतिज्ञा होती है। पुस्तक लेकर दो लाइन पढ़े हो गयी स्वाध्याय। अरे.. बापू! स्वाध्याय तो स्व का—अपना अध्याय, वह स्वाध्याय है। आहाहा!

कहते हैं, देखो! देखो आचार्यों ने क्या काम किया है? आहाहा! प्रभु! तू तो प्रत्यक्ष है न नाथ! यह वस्तु परोक्ष कैसे होगी? समझ में आया? आहाहा! परन्तु यह पक्ष का विकल्प है, यह विषमभाव है। आहाहा! **भात (प्रकाशमान अर्थात् वर्तमान प्रत्यक्ष) है, ऐसा एक नय का पक्ष है...** निश्चय का। **जीव भात नहीं...** प्रत्यक्ष होनेयोग्य है ही नहीं। किसी दिन प्रत्यक्ष होता है? ऐसा अज्ञानी का पक्ष है। यह तो दूर करनेयोग्य है। व्यवहार तो छोड़नेयोग्य है, ऐसा कहते आये हैं। यहाँ तो निश्चय का पक्ष भी छोड़ना। आहाहा! है?

ऐसा दूसरे नय का पक्ष है...

इस प्रकार चित्स्वरूप... भगवान। भगवान तो चित्स्वरूप, प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप है। अकेला प्रज्ञा-ज्ञान का पुंज प्रभु। आहाहा! जैसे रुई का ढ़ेर होता है न? क्या कहते हैं? बोरी। पच्चीस मण रुई की बोरी। बोरी। रुई की बोरी। हमारे यहाँ धोकड़ा कहते हैं। ऐसे यह भगवान ज्ञान का धोकड़ा है-ज्ञान की बोरी है। आहाहा!

मुमुक्षु : शब्द नहीं मिलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द नहीं मिलता। यह चीज़ का शब्द...

यह यहाँ कहते हैं न, देखो! **चित्स्वरूप जीव...** ऐसा लिया न? यह विकल्पस्वरूप जीव है नहीं। आहाहा! यह तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा चैतन्यज्योति चैतन्यचमत्कार के भण्डार से भरा परमात्मा (है)। इसका वेदन करनेवाला, विकल्प को छोड़कर इसका वेदन करनेवाला, शुद्धोपयोग में आत्मा का वेदन करनेवाला। आहाहा! वेदन तो पर्याय का होता है, ध्रुव का वेदन नहीं होता। परन्तु ध्रुव के ऊपर दृष्टि पड़ने से पर्याय में आनन्द का वेदन होता है, तो यह ध्रुव का वेदन हुआ, ऐसा कहने में आता है। ध्रुव तो वेदन में आता नहीं। वेदन में तो पर्याय आती है। ध्रुव का वेदन होता ही नहीं। समझ में आया?

यह कहते हैं, **दो नयों का पक्षपात है। जो तत्त्ववेदी पक्षपात रहित है...** चित्स्वरूप में दो पक्ष हैं। आहाहा! यहाँ तक आया। आँगन में आया, परन्तु अन्दर नहीं गया। जवाहरात की दुकान में आँगन तक आया। वहाँ खड़ा रहकर (विचार करता है कि) यह जवाहरात की दुकान है, यहाँ से माल लेना है, ऐसा लेना है। परन्तु अन्दर प्रवेश नहीं करता। समझ में आया? यह तो जवाहरात लेने गया था। यह बात ऐसी बनी (सच्च में) बनी थी। जवाहरात की दुकान में। दसेक हजार रुपया लेकर गया था। दुकान ने जवाहरात बताये, बताते... बताते... इसकी नजर हट गयी तो एक जवाहरात लेकर, मीण साथ लाया था, मीण... मीण... मीण... समझते हो? (मीण अर्थात् मोम) यह साथ लाया था। वहाँ लकड़ी की पटिया थी। बताता था, इसमें से एक हीरा ले लिया। लाख-सवालाख रुपया का हीरा मीण ऊपर लकड़ियों की पटिया के नीचे चिपका दिया। ले न गया, वहाँ दबा दिया हीरा लेकर मोम में दबा दिया। दुकानदार ढूंढ़ता है कि हीरा कहाँ गया? दुकानदान ने देखा तो

इसके पास हीरा नहीं था। कारण कि दुकानदार की नजर फिरी तब मीणा में पाट के नीचे दबा दिया। हीरा गया। बाद में थोड़ा बहुत माल लिया। बाद में फिर माल लेने आया। भाई! तुम्हारा हीरा उस दिन गया। मुझे दस हजार का माल लेना है। ऐसा करके पहला हीरा चिपकाया था, वह ले गया। दस हजार का माल लिया परन्तु लाख रुपये का हीरा ले गया। आहाहा!

ऐसे यह जवाहरात अन्दर पड़ा है, भगवान! आहाहा! थोड़ी निकाल तो सही। समझ में आया? वहाँ उसने चोरी की। यहाँ निकाली, यह साहूकारी है। आहाहा! चैतन्य हीरा अनन्त हीरा के पासे से भरा है, अनन्त शक्तियों का पासा है, पासा। हीरा में पासा (पील) होते हैं न? पहेल... पहेल ऐसे आत्मा में अनन्त पासा हैं। आहाहा! यह चित्स्वरूप जीव, एक ही शब्द कहा है। बाकी तो अनन्त गुणस्वरूप है। परन्तु ज्ञान की प्रधानता से कथन है।

निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है... आहाहा! समकिती को तो निरन्तर ज्ञानस्वरूपी आत्मा ज्ञानस्वरूपी ही रहता है। विकल्प आता है तो भी इसका ज्ञाता-दृष्टा रहकर ज्ञानस्वरूप में ही रहता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझ में आया? निरन्तर शब्द लिया है न? एक बार जो भान हुआ, फिर यहाँ तो आचार्य ने यह ही लिया है कि निरन्तर रहेगा... आहाहा! गिरने की बात यहाँ है ही नहीं। अप्रतिहत की बात है। निरन्तर शब्द इसलिए कहते हैं। एक बार विकल्प से भिन्न होकर भगवान प्रत्यक्ष हुआ, वेदन में निरन्तर ऐसा ही रहेगा। क्षायिक समकित होकर केवलज्ञान होगा, तब तक निरन्तर रहेगा। समझ में आया? पड़ जाएगा, फिर जाएगा, ऐसी बात यहाँ नहीं है। आहाहा!

भावार्थ - यह बीस बोल आये हैं न, इन्हें कहते हैं। **बद्ध अबद्ध...** एक व्यवहारनयवाला कहता है कि बद्ध है, निश्चय कहता है अबद्ध है। दोनों पक्षपात छोड़ना है। **मूढ़-अमूढ़, रागी-अरागी, द्वेषी-अद्वेषी, कर्ता-अकर्ता, भोक्ता-अभोक्ता, जीव-अजीव...** एक कहता है जीव है। एक कहता है जीव नहीं है। **सूक्ष्म स्थूल...** कोई सूक्ष्म कहता है, कोई सूक्ष्म नहीं ऐसा कहता है। **कारण-अकारण, कार्य-अकार्य, भाव-अभाव, एक-अनेक, सान्त-असान्त...** देखो! एक—अनेक आ गया, हों! **नित्य-अनित्य, वाच्य-**

अवाच्य, नाना-अनाना... एक है, दूसरा कहता है एक नहीं है। यहाँ नानारूप है, दूसरा कहता है नानारूप नहीं है। **चैत्य-अचैत्य, दृश्य-अदृश्य, वेद्य-अवेद्या, भात-अभात आदि नयों के पक्षपात हैं। जो पुरुष नयों के कथनानुसार... नय के कथनानुसार यथायोग्य विवक्षापूर्वक...** योग्य कथन की अपेक्षा से। जिस अपेक्षा से कथन किया हो, उस अपेक्षा से।

यथायोग्य विवक्षापूर्वक तत्त्व का-वस्तुस्वरूप का निर्णय करके नयों के पक्षपात को छोड़ता है... आहाहा! पहले निर्णय तो करना पड़ेगा, कहते हैं। निश्चयनय से ऐसा है, व्यवहारनय से ऐसा है, पर्याय से ऐसा है, द्रव्य से ऐसा है (निर्णय करना पड़ेगा)। परन्तु निर्णय करने के बाद पक्षपात छोड़ता है। है न? **निर्णय करके नयों के पक्षपात को छोड़ता है, वह पुरुष चित्स्वरूप जीव का (वीतराग) चित्स्वरूप का अनुभव करता है।** आहाहा! समतारस का प्रेम, समतारस झरता है। विकल्प छोड़कर समतारस झरता है। विकल्प में विषमभाव होता है। आहाहा! मैं शुद्ध प्रत्यक्ष हूँ, ऐसा विकल्प भी विषमभाव है। आहाहा! यह वीतराग मार्ग नहीं।

यहाँ तो शुद्धचैतन्य का, वीतरागस्वरूप का विकल्प से रहित होकर वेदन करता है... आहाहा! वह चित्स्वरूप जीव का अनुभव करता है। ज्ञान का वेदन करता है, आनन्द का वेदन करता है। वीतरागभाव में आकर वीतरागीस्वरूप का जानना करता है। आहाहा! भारी बातें ऐसी कठिन हैं। जिनेश्वरदासजी! ऐसा तो मार्ग, बापू! भव के अभाव की बातें हैं, नाथ! आहाहा! अरे! श्रीमद् ने कहा न? तो भी अरे! 'भवचक्र का फेरा न एक टला'। श्रीमद् १६ वर्ष की उम्र में कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र। 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला, तो भी अरे! भवचक्र का फेरा न एक ही टला।' एक भव टले तो सब टल जायें। क्या (कहा)? मनुष्य फेरफुदर से फिरता है न? (फुदक के फिरता है) ऐसे खड़ा हो तो खड़ा नहीं रह सकता। समझ में आया? ऐसे चक्कर मारता है, २५-५० चक्कर मारे कि खड़ा नहीं रह सकता, गिर जाता है। फिर ऐसे चक्कर मारते... मारते... मारते... एक उल्टा चक्कर लगाता है तो खड़ा रह जाता है। ऐसे मिथ्यात्व के परिणाम में चक्कर मारते-मारते अनादि काल से परिभ्रमण करता है। एक बार उल्टा चक्कर मार के सम्यग्दर्शन

प्रगट किया... आहाहा! (तो) भव का अन्त आ जाता है। समझ में आया? १६वें वर्ष में राजचन्द्र भव के अभाव की बात करते थे। इनको बहुत क्षयोपशम था। उस समय इनके क्षयोपशम के सामने ऐसा कोई नहीं था। इतना क्षयोपशम।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! पक्षपात को छोड़कर जीव अनुभव करता है। आहाहा! यह राग का लक्ष्य छोड़कर पूर्णानन्द के लक्ष्य में जब गया, तो आनन्द का वेदन रहा (और) विकल्प छूट गया। इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? १४४ गाथा में यह लिया है। १४४ गाथा है न? भाई! इसको सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान (हुआ)। अभी चारित्र की बात यहाँ नहीं। समझ में आया? यह १४२ की चलती है। समझे? क्या कहा? **जो वास्तव में समस्त नय पक्षों से खण्डित नहीं होने से जिसका समस्त विकल्पों का व्यापार रुक गया है। ऐसा है, वह समयसार है; वास्तव में एक ही केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नाम मिलता है।** व्यपदेश शब्द पड़ा है। '**लहदि त्ति णवरि ववदेसं**' तब इसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नाम मिलता है। समझ में आया? क्या कहा? यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान की बात है, यहाँ चारित्र की बात नहीं है। है? **सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नाम मिलता है। (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान समयसार से अलग नहीं)।** प्रतीति और अनुभव यह स्वरूप से कोई भिन्न चीज़ नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग इसलिए लोगों को पसन्द नहीं और चढ़ा दिया, व्रत करो, उपवास करो और मन्दिर बनाओ और पूजा, भक्ति (करो) और रथयात्रा निकालो। यह...! और यह सेठिया बड़ा गजरथ निकालने की कहते हैं। सेठ! रतनलालजी गजरथ, गजरथ। हाथी का रथ निकालो बढ़ा और (पैसा खर्च करनेवालों को) जिससे बढ़ी संघवी की पदवी मिले। आहाहा!

मुमुक्षु : पदवी तो मिलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल की पदवी है। आत्मा की पदवी नहीं।

यहाँ तो आत्मा की पदवी है न। विकल्प को छोड़कर भगवान आत्मा की प्रतीति और ज्ञान जब अनुभव में होता है, उसको यहाँ आत्मा कहते हैं। उसको सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यह तो बाहर से देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा यह सम्यग्दर्शन, अब व्रत ले लो। यहाँ तो कहते हैं, विकल्प को छोड़कर स्वरूप के

अनुभव में जो प्रतीति और ज्ञान हुआ, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? अभी तो यह पहली भूमिका की बात चलती है। आहाहा! सेठ! क्या कहते हैं? मार्ग तो यह है। आहाहा! तुम्हारा तो नाम भी भगवान है। और वस्तु भगवान अन्दर है। भगवान कहा न ७२ गाथा में? भगवान आत्मा। संस्कृत में अमृतचन्द्राचार्य ने लिया—भगवान आत्मा। आहाहा! अरे! जाग रे जाग, नाथ! तुझे भगवान कहकर बुलाते हैं, आचार्य तुझे भगवान कहकर बुलाते हैं और तू जानता नहीं, नाथ! अमृतचन्द्राचार्य वीतरागी सन्त आनन्द के झूले में झूलनेवाले (वे) टीका में भगवान आत्मा, ऐसा कहते हैं। तीन बार, तीन बार आया। ७२ गाथा में। आहाहा! यह भगवान आत्मा का अनुभव (हुआ), इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। लो! आहाहा!

जीव में अनेक साधारण धर्म हैं परन्तु चित्स्वभाव उसका प्रगट अनुभवगोचर... चित्स्वभाव कहा न? चित्स्वभाव क्यों कहा? जीव चित्स्वभाव है, ऐसा कैसे कहा? कि प्रगट अनुभवगोचर असाधारण धर्म है। ज्ञान वह असाधारण धर्म है। अस्तित्व, वस्तुत्व यह सब साधारण धर्म है। अपने में भी है और पर में भी है। इससे उनको मुख्य करके यहाँ जीव को चित्स्वरूप कहा है। अब ९० कलश। अब बहुत दिन से २० (बोल) चलते थे।

कलश-९०

(वसन्ततिलका)

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला-
मेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम्।
अन्तर्बहिः समरसैकरसस्वभावं
स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रम्।।45-90।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'एवं स तत्त्ववेदी एकं स्वं भावं उपयाति' [एवं] पूर्वोक्त प्रकार [सः] सम्यग्दृष्टि जीव-[तत्त्ववेदी] शुद्धस्वरूप का अनुभवशील, [एकं स्वं भावं उपयाति] एक शुद्धस्वरूप चिद्रूप आत्मा को आस्वादता है। कैसा है आत्मा। 'अन्तर्बहिः-

समरसैकरसस्वभावं' [अन्तः] भीतर [बहिः] बाहर [समरस] तुल्यरूप ऐसी [एकरस] चेतनशक्ति ऐसा है [स्वभावं] सहजरूप जिसका ऐसा है। किं कृत्वा–क्या करके शुद्धस्वरूप पाता है। 'नयपक्षकक्षां व्यतीत्य' [नय] द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेद, उनका [पक्ष] अंगीकार, उसकी [कक्षां] समूह है–अनन्त नयविकल्प हैं, उनको [व्यतीत्य] दूर से ही छोड़कर। भावार्थ इस प्रकार है–अनुभव निर्विकल्प है। उस अनुभव के काल में समस्त विकल्प छूट जाते हैं। (नयपक्ष कक्षा) कैसी है? 'महतीं' जितने बाह्य–अभ्यन्तर बुद्धि के विकल्प, उतने ही नयभेद ऐसी है। और कैसी है? 'स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजालां' [स्वेच्छा] बिना ही उपजाए गये [समुच्छलत्] उपजते हैं, ऐसे जो [अनल्प] अति बहु [विकल्प] निर्भेद वस्तु में भेदकल्पना, उसका [जालां] समूह है जिसमें ऐसी है। कैसा है आत्मस्वरूप? 'अनुभूतिमात्रं' अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है।।45–90।।

कलश - ९० पर प्रवचन

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला–
मेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम्।
अन्तर्बहिः समरसैकरसस्वभावं
स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रम्।।45–90।।

देखा! आहाहा! नयपक्ष छोड़कर समरस एक रस स्वभाव। '**समभावः एकमं उपयंति अनुभूति मात्रं**' आहाहा!

खण्डान्वयसहित अर्थ - 'एवं (सः तत्त्ववेदी) एकम् स्व भावम् उपयाति' (एव) पूर्वोक्त प्रकार से (सः) सम्यग्दृष्टि जीव... धर्मी जीव—धर्म के महल के सोपान का (दरवाजे का) पहला सोपान (सीढ़ी) है। मोक्षमहल की पहली सीढ़ी। छहढाला में आता है न? छहढाला में आता है। ज्ञानचन्दजी यह छहढाला बहुत पढ़ते हैं। सुना है। लोग बातें करते हैं। समझ में आया? मोक्षमहल की पहली सीढ़ी। मोक्षमहल में जाने की सीढ़ी। पगथिया समझे। सीढ़ी। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूप का अनुभवशील... आहाहा! तत्त्ववेदी की व्याख्या

की। वहाँ तत्त्ववेदी की व्याख्या तत्त्ववेत्ता अन्दर अर्थ में कहा था। यहाँ अब तत्त्ववेदी (कहा) आहाहा! समझ में आया? अर्थ करते हैं न? शुद्धस्वरूप का अनुभव। आहाहा! **शुद्धस्वरूप का अनुभवशील...** आहाहा! जिसका स्वभाव ही शुद्ध अनुभूति का स्वभाव हो गया है। आनन्द का वेदन और अनुभवशील। अनुभव का शील अर्थात् स्वभाव हो गया है। जो अनादि का राग और पुण्य-पाप के भाव का, विकार का शील अर्थात् स्वभाव था वह सम्यग्दृष्टि अनुभवशील हो गया। आहाहा! धन्नालालजी! सूक्ष्म बातें हैं। थोड़े समय में मिले, ऐसा नहीं है। निवृत्ति लेना चाहिए। यह कोई दो-चार दिन सुने और हो जाये, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : अन्तर्मुहूर्त में हो ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुहूर्त में होता है, कौन मना करता है? इसका प्रयत्न तो चाहिए न। आहाहा! शीतल पानी भरा है। अग्नि से गर्म हुआ और यह गर्म पानी से भरा घड़ा... घड़ा समझे? बर्तन। घड़ा कहते हैं? गर्म पानी से भरा घड़ा हो यह पानी के ऊपर गिरे तो अग्नि को ठण्डी कर दे—कीचड़ कर दे। गर्म पानी में भी शीतलता पड़ी है तो गर्म पानी तो ठण्डा हो जाये, परन्तु अग्नि भी ठण्डी हो जाती है। इसी प्रकार भगवान में वीतरागता, शीतलता परिपूर्ण भरी है। ऐसी दृष्टि करने से विकार की अग्नि का यह नाश कर देती है। समझ में आया? आहाहा!

यह 'अध्यात्म पंचसंग्रह' है न? इसमें पुराण है न? इसमें यति लिया है, यति। यति किसको कहते हैं कि अपने स्वरूप की यत्ना में अयत्ना न आने दे। विकारादि भाव न आने दे, उसको यति कहते हैं। अपने स्वरूप आनन्दकन्द की यत्ना करनेवाला, अयत्ना विकार परिणाम आने न दे, इसको यति कहते हैं। समझ में आया? साधु-साधे। आनन्द के स्वभाव को साधे, उसको साधु कहते हैं। आहाहा! मुनि... प्रत्येक में उतारा है वहाँ। एक-एक गुण के ऊपर (उतारा है)। ज्ञान साधु, ज्ञान मुनि, ज्ञान यति, ज्ञान ऋषि, यह चार बोल में उतारे हैं। और पहले गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ में उतारे हैं। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है। यह ज्ञानस्वरूप क्या है? यह गृहस्थ है। गृहस्थ है अर्थात् गृह अर्थात् अपने घर में स्थिर रहनेवाला है; इसलिए यह गृहस्थ है। यह राग में, धूल में रहनेवाला नहीं।

आहाहा! अपने ज्ञान और आनन्दघन में स्थ, गृह-स्थ। अपने आनन्द घर में स्थ। गृह-स्थ। अपने आनन्दघर में स्थ-रहनेवाले को गृहस्थ कहते हैं। जिनेश्वरदासजी!

इसे ब्रह्मचारी कहते हैं। ब्रह्म अर्थात् आनन्द में चरनेवाला-अनुभव करनेवाला, इसको ब्रह्मचारी कहते हैं। शरीर से ब्रह्मचर्य पालते हैं। यह ब्रह्मचर्य तो विकल्प, राग है। आहाहा! ब्रह्म अर्थात् आनन्द का नाथ प्रभु, इसका ब्रह्म अर्थात् आचरण करे। अतीन्द्रिय आनन्द का चरना, इसमें रमना, उसको यहाँ ब्रह्मचारी समकिती को, ज्ञान को, समकित को, चारित्र को, प्रमेय को, प्रमाण को, इस प्रकार इन्हें गृहस्थ कहते हैं। समझ में आया? इस प्रकार ब्रह्मचारी (कहते हैं)।

वानप्रस्थ। अपने स्वरूप में रहनेवाला, दूसरे का स्वरूप नहीं आने दे, इसका नाम वानप्रस्थ है। आता है न अन्यमति में? गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, चौथा बोल संन्यास। संन्यास के चार बोल। साधु, मुनि, यति और ऋषि। चार बोल लिये हैं। कुल सात बोल लिये हैं। आहाहा! भाई दीपचन्दजी ने बहुत काम किया है। 'अध्यात्म पंचसंग्रह' में बहुत काम किया है। एक-एक शब्द में उतारा है। एक-एक गुण में एक-एक ऋषि, मुनि, यति (उतारे हैं) ऋद्धि। अपनी ऋद्धि में रहे, उसे ऋषि कहते हैं। ऋषि यह बड़ा बाबा लगता है, मोटी जटा लगाये, (यह ऋषि नहीं)। ऋषि तो उसको कहते हैं कि अपनी सम्पदा ऋद्धि, जो आनन्द की ऋद्धि, ज्ञान की ऋद्धि, ऐसी समृद्धि पर्याय में बसावे, उसका नाम ऋषि कहलाता है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूप का अनुभवशील...** आहाहा! **एक शुद्धस्वरूप चिद्रूप आत्मा को आस्वादता है।** '**उपयाति**' की व्याख्या की। '**एकम् स्वं भावम् उपयाति**' एक स्वभाव अर्थात् शुद्धस्वरूप चिद्रूप '**उपयाति**' ऐसा **आत्मा को आस्वादता है।** आहाहा! '**उपयाति**' का अर्थ किया। आत्मा को प्राप्त करता है अर्थात् आत्मा के आनन्द का आस्वाद लेता है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में, हो! आहाहा! सम्यग्दृष्टि। पाँचवें गुणस्थान में तो शान्ति बहुत बढ़ जाती है। मुनिदशा तो प्रचूर स्वसंवेदन। आनन्द का प्रचूर-प्रचूर स्वसंवेदन, उसको मुनि कहते हैं। बापू! कोई बाहर की क्रिया करे और नग्न हो जाये, इसलिए मुनि है (ऐसा नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। '**शुद्धस्वरूप चिद्रूप**' यह स्पष्ट किया। **आत्मा को...** आत्मा कैसा है। '**शुद्धस्वरूप चिद्रूप**' एक आस्वदता है, एक को आस्वादता है। विकल्प जो अनेक थे, उनको छोड़कर। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप को ध्येय बनाकर अपनी पर्याय में आनन्द का आस्वाद लेता है। समझ में लिया? **कैसा है आत्मा? 'अन्तः बहिः समरसैकरसस्वभावं'** आहाहा! अन्दर शक्ति भी आनन्द की है, शुद्ध है, समरस है। पर्याय में भी समरस है। आहाहा! शक्ति और आनन्दस्वरूप भगवान अन्तर में शुद्ध समरस है और अनुभव करते पर्याय में भी समरसपना आया। यह '**बहिः**' पर्याय '**बहिः**' है और वस्तु अन्दर ध्रुव है। समझ में आया? ऐसा मार्ग। अरे! ऐसा मार्ग इसके कान में न पड़े, सुनने न मिले, यह कब प्रयोग होगा? आहाहा!

मुमुक्षु : बाहर में पर्याय है? भीतर में ध्रुव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है। अन्दर में ध्रुव है।

मुमुक्षु : बाहर में है, तब तो छूट ही नहीं सकती।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाह्य की अपेक्षा है। पर्याय को ही बाह्य कहते हैं। राग की बात यहाँ है ही नहीं। अन्दर में ध्रुव और बाहर में पर्याय, दोनों वीतराग समभाव से हैं। समझ में आया? हैं?

अन्दर और बाहर तुल्यरूप ऐसी... समरस। तुल्य अर्थात् पहला विकल्प विषम था न? इसके सामने तुल्य कहा। तुल्य अर्थात् समरस। विकल्प में था, यह विषम रस था। और यह तुल्य रस। जैसा स्वभाव है, वैसा समरस आया। विकल्परहित अनुभव करने पर समरस आया। यह समरस का वेदन, यह वीतरागता का वेदन है। है? एक **चेतनशक्ति है... 'एकरस'** का अर्थ किया। '**एकरस**' चैतन्यशक्ति ऐसी '**स्वभाव**' **सहजरूप जिसका ऐसा है।** आहाहा! चैतन्यशक्ति इसका स्वभाव। स्वभाव का भान हुआ। इसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी। पहली सीढ़ी। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १०, बुधवार, दिनांक ०७-०९-१९७७
कलश-९० से ९१, प्रवचन-८८

'कलशटीका'। 'कर्ता-कर्म अधिकार'। ९० कलश चलता है। फिर से।

'**एवं (सः तत्त्ववेदी) एकम् स्वं भावम् उपयाति**' है? **पूर्वोक्त प्रकार से...** अर्थात् मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, एक हूँ, ऐसे विकल्प का जहाँ तक कर्ता होता है, वहाँ तक तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? व्यवहार का पक्ष तो पहले छुड़ाया है। अब यहाँ निश्चय ज्ञायक परमात्मस्वरूप चिद्रूप आनन्दघन, ऐसी स्थिति में जो विकल्प उठते हैं, इन विकल्पों का जहाँ तक कर्तव्य है, वहाँ तक यह विकल्प कार्य हैं। और कर्ता जीव की पर्याय है, वहाँ तक मिथ्यात्व है। आहाहा! कर्ता-कर्म अधिकार है न? जब यह विकल्प छोड़कर निर्विकल्प चैतन्यस्वरूप के अनुभव के काल में, **पूर्वोक्त प्रकार से...** यह कहा इस प्रकार। समझ में आया?

वस्तु का स्वरूप जो शुद्ध चिद् आनन्द, उस तरफ के झुकाव से विकल्प का नाश होने से, विकल्प मेरा कार्य और मैं करूँ, यह बुद्धि का नाश होता है। आहाहा! तब चिदानन्दस्वभाव का अनुभव होता है, इसका नाम सम्यग्दृष्टि है। ऐसी बात है। यह सम्यग्दृष्टि जीव है। **पूर्वोक्त प्रकार से सम्यग्दृष्टि जीव...** अनन्त काल में यह कभी किया नहीं। धर्म के नाम से भी विकल्प और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम किये। संसार के नाम से तो पाप, प्रपंच किये। यह तो पाप के परिणाम। इनका कर्ता और यह मेरे कार्य — यह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

यहाँ तो अन्दर में दया, दान, व्रत के परिणाम आते हैं, यह भी मेरे कार्य और मैं इनका कर्ता, यह भी मिथ्यात्वभाव है। आगे तो मैं शुद्ध हूँ, एक अभेद हूँ, ऐसा विकल्प उठते हैं, यह विकल्प उठते हैं वहाँ तक विकल्प का कर्ता (होता है)। आगे आयेगा, यह विकल्प का कर्ता और विकल्प इसका कार्य, यह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! **पूर्वोक्त प्रकार से**

सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूप का अनुभवशील... धर्म चीज़ बहुत अलौकिक है। यह कोई बाह्य शास्त्रज्ञान से, क्रियाकाण्ड से मिल जाये, ऐसी यह चीज़ नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव अनुभवशील, **शुद्धस्वरूप का अनुभवशील...** अनादि अज्ञानी अशुद्धता का अनुभव (करता है) पुण्य और पाप मलिन भाव का अनुभवशील था। यहाँ तो अनुभवशील (हुआ), शुद्धस्वरूप का अनुभवशील (हुआ)। आहाहा! अन्तर आनन्द के नाथ प्रभु का अनुभव, उसका अनुसरण करके आनन्द की पर्याय का वेदन करना, यह अनुभवशील सम्यग्दृष्टि कहने में आता है। आहाहा! यह तो अभी धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा!

एक शुद्ध चिद्रूप आत्मा को आस्वादता है। है? **'एकम् स्वं भावम् उपयाति।'** एक शुद्धस्वरूप का **'स्व' चिद्रूप आत्मा को आस्वादता है।** आहाहा! बहुत धीर का काम है। बापू! अन्तर में आनन्द के स्वाद में आया, तब अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन—स्वाद आया। जब तक विकल्प का कर्ता था, तब तक दु:ख का स्वाद था। समझ में आया? यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, खेलना, खाना, कमाना यह सब पर तरफ का लक्ष्य तो पापभाव, महादु:ख का वेदन है। और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी शुभभाव दु:ख का वेदन है। परन्तु यहाँ तो नयपक्ष का विकल्प भी दु:ख का वेदन है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! धर्म बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! जिससे जन्म-मरण मिटे, भव का छेद हो और अभव भाव का भाव प्रगट हो, यह बहुत सूक्ष्म चीज़ है, भाई!

कहते हैं, अपना **एक शुद्धस्वरूप चिद्रूप...** क्या? चिद् ज्ञानरूप। ज्ञान के प्रकाशरूप आत्मा, उसको आस्वादता है। निर्विकल्प अनुभव के काल में अतीन्द्रिय शुद्धस्वरूप आनन्द का अकेला स्वाद आता है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? तब कितने ही कहते हैं कि शुद्ध उपयोग तो अभी है नहीं, इसलिए शुभ करो। तो धर्म है ही नहीं, इसका अर्थ यह हुआ। पुण्य करो अर्थात् अधर्म करो।

मुमुक्षु : पुण्य अधर्म है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य, यह अधर्म है। आहाहा! यहाँ मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड, अभेद (हूँ), इस तरफ का झुकाव का विकल्प भी जहाँ अधर्म है। आहाहा! समझ में आया? अरे!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारधर्म तो तब होता है कि जब निश्चयधर्म होता है, तब राग आता है, उसको व्यवहारधर्म का आरोप कहने में आता है। यह शर्त। निश्चय आत्मा के आनन्द का स्वाद आता है, यह निश्चयधर्म। और इसके साथ राग की मन्दता बाकी रह जाती है, उसको व्यवहारधर्म का आरोप देने में आता है। धर्म नहीं, है अधर्म। समझ में आया? परन्तु इसको निश्चय का आरोप करके (धर्म कहने में आता है)। जैसे निश्चय सम्यग्दर्शन है, अपने शुद्ध चैतन्य की दृष्टि, अनुभव में प्रतीति हुई, यह निश्चय सम्यग्दर्शन है और साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, नव तत्त्व की श्रद्धा का राग, शास्त्र सुनने का राग (आता है), यह राग है तो विकार, चारित्र का दोष है, परन्तु उसको यहाँ निश्चय समकित है तो इसको (राग को) व्यवहार समकित का आरोप किया। आहाहा! यह समकिती की व्यवहार पर्याय नहीं, है तो यह राग की पर्याय। ऐसी बारीक बातें हैं, बापू!

सम्यग्दर्शन है, यह आत्मा की अरागी पर्याय (है)। साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र पढ़ना आदि। महाव्रत का भाव है, यह तो राग, चारित्र का दोष और बन्ध का कारण है। परन्तु यहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन अर्थात् मोक्षमार्ग अपने आश्रय से हुआ, इसमें व्यवहार का आरोप करके व्यवहार मोक्षमार्ग कहा, है तो बन्ध का मार्ग।

मुमुक्षु : करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना-फरना नहीं, बीच में आता है। जब तक (पूर्ण) वीतराग न हो तब तक शुद्धस्वरूप के अनुभव की दृष्टि होने पर भी, पर्याय में कमजोरी से शुभभाव आता है। परन्तु है, बन्ध का कारण। ज्ञानी-धर्मी को भी शुभभाव हेयबुद्धि से आता है। हेयबुद्धि से ज्ञेय है। भगवान उपादेयबुद्धि से ज्ञेय है। आहाहा!

वस्तु चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु उपादेय बुद्धि से ज्ञेय है और राग हेयबुद्धि से ज्ञेय है। बात ऐसी है, बापू! पहले इसके ज्ञान में सत्य ऐसा है — ऐसा निर्धार-निश्चय करना पड़ता है न! आहाहा! बाकी तो भटककर मर गया है। अवतार करके भूल गया। जन्म-मरण कर-करके फोक निकल गया, बापू! इसको पता नहीं, भाई! घाणी में जैसे तेल पिलता है, वैसे दुःख में अनादि से पिल गया है। आनन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द का

सागर प्रभु, अपनी दृष्टि के बिना राग की रुचि के प्रेम में दु:ख में पिल गया है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कर्ता-कर्म यहाँ तक ले गया। पर का कर्ता तो नहीं, व्रतादि के कर्ता-फर्ता की बात तो छोड़ दी, परन्तु मैं अभेद शुद्ध चैतन्य हूँ, आनन्द हूँ, चिद्रूप हूँ, ऐसा जो विकल्प उठता है यह भी कर्ता-कर्म है। अज्ञानी कर्ता और विकल्प उसका कार्य है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

अरे! इसने किसी दिन दरकार नहीं की। अपनी दया नहीं की, हों! अपनी दया नहीं की कि मेरा क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा और मेरी क्या दशा होगी? देह छोड़कर कहाँ जाऊँगा? प्रभु! आहाहा! अकेली राग और द्वेष की पर्याय में एकाकार हुआ। दु:खी होकर यहाँ से निकलेगा और जायेगा वहाँ भी राग, द्वेष दु:ख में पिलेगा। आहाहा! अपनी दया कब की कहलाये कि मैं तो विकल्प से रहित शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसी चीज़ की प्रतीति (होना), ज्ञान में वेदन होना, तब इसने जीव आत्मा की दया की। स्वदया की। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, शुद्धस्वरूप आत्मा का आस्वाद करता है। **कैसा है आत्मा? अन्दर और बाहर चेतनाशक्ति ऐसा है।** आहाहा! शक्ति ध्रुव भी चैतन्य है और इसकी पर्याय भी चैतन्य हुई। जो राग के विकल्प छोड़कर आत्मा के आनन्द के स्वाद की निर्विकल्प दृष्टि में आया, तब उसको पर्याय में भी आनन्द आया। स्वभाव में तो आनन्द है ही, यह तो पर्याय में आनन्द आया। अन्तर-बाह्य दोनों आनन्द वीतराग हो गये। अन्तर स्वरूप वस्तु तो वीतरागस्वरूप है ही, परन्तु विकल्प का कर्तृत्व छोड़कर जब आनन्द के वेदन में आया, तब वीतरागी पर्याय (हुई)। '**बहिः**' पर्याय में वीतरागता आ गयी। यह पर्याय और द्रव्य कभी (सुनी ही नहीं)। धन्नालालजी! कभी ध्यान किया नहीं। यह खेलना कि यह मेरा लड़का ऐसा है और अमुक ऐसा है और विलायत में रहता है और महीने के दस हजार पैदा करता है। मर गया। किस दिन तेरा लड़का कैसा? आत्मा को लड़का कैसा? आत्मा का पिता कौन? विकल्प भी जहाँ आत्मा का नहीं, तब बाहर की चीज़ कहाँ रह गयी। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तक तो कल आया था। आया था न?

सहजरूप जिसका ऐसा है। चैतन्यशक्ति। अकेली चैतन्य सामर्थ्य। जानने-देखनेरूप सामर्थ्य। यह जिसका भाव सहजरूप है। ऐसी दशा प्रगट हुई। सम्यग्दर्शन में विकल्प का कर्तृत्व छोड़कर स्वभाव का स्वाद आया, तब यह सम्यग्दृष्टि, सहजरूप जिसकी दशा हुई। जो विकार की दशा थी, उसको छोड़कर स्वभाव की दृष्टि की तो सहज दशा (हुई)। वस्तु में वीतरागता और पर्याय में वीतरागता आयी। अन्तर-बाह्य दोनों समरस हैं। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! यह अध्यात्म का अधिकार सूक्ष्म है।

'नयपक्षकक्षाम् व्यतीत्य' है? **क्या करके शुद्धस्वरूप प्राप्त करता है? द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेद...** यह २० बोल आये हैं न? द्रव्यार्थिक में मैं शुद्ध हूँ और अभेद हूँ। पर्यायार्थिक में अशुद्ध हूँ और अनेक हूँ। आदि। यह दोनों के—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। बीस भेद द्रव्यार्थिक के और बीस भेद पर्यायार्थिक के। यह आ गये। **उनका (पक्ष) अंगीकार, उनका समूह है अनन्तनय विकल्प हैं...** आहाहा! मैं ज्ञान हूँ, मैं दर्शन हूँ, मैं चारित्र हूँ, और अस्ति हूँ और वस्तुत्व हूँ और... ऐसे एक-एक गुण के विकल्प, ऐसे अनन्त विकल्प उठते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह अनन्त विकल्पों के समूह, **उनको दूर से ही छोड़कर।** दूर से छोड़कर। करके नहीं, दूर से छोड़कर। यह उपदेश की शैली है। बाकी अन्तर में अनुभव में गया तो विकल्प नहीं उठता, इसने दूर से छोड़ा, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अरेरे! कहाँ जाना इसको? बाहर का भपका श्मशान का, मशान... श्मशान होता है न? श्मशान।

आत्मा के सम्यग्दर्शन में जो अनुभव होता है, यह रागरहित होता है। निर्विकल्प है। आहाहा! है? **अनुभव निर्विकल्प है, उस निर्विकल्प अनुभव के समय समस्त विकल्प छूट जाते हैं।** राग का विकल्पमात्र बुद्धिपूर्वक से छूट जाता है और अन्तर अनुभव में आता है, तब सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। आहाहा! ऐसी बात है। कितने ही लोग ऐसा कहते हैं, सोनगढ़वालों ने सम्यग्दर्शन महँगा कर दिया। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : महँगा किया या सस्ता किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प छोड़े, तब निर्विकल्पदृष्टि होती है। यह महँगा कर दिया और हमारे तो सोंधा समकित था। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम

की श्रद्धा करना, यह समकित। आहाहा! अरे...! भाई! यह तो मिथ्यात्वभाव है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धाभाव, यह तो राग है। यह मिथ्यात्व नहीं, परन्तु राग को धर्म मानना, यह मिथ्यात्व है। यह चर्चा भी मक्खनलालजी की चली। मक्खनलालजी ऐसा कहते हैं कि यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को सोनगढ़वाले मिथ्यात्व कहते हैं। ऐसा आया है, ऐसा नहीं। देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य हैं। इनकी श्रद्धा तो राग है, परन्तु राग में सम्यग्दर्शन हुआ, इसको धर्म मानना, यह मिथ्यात्व है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, यह मिथ्यात्व नहीं। समझ में आया? यह प्रश्न चला है, मक्खनलालजी ने चलाया है। खानियाचर्चा में। भाई रतनचन्द ने चलाया है। तुम्हारे गाँव में। यह जिनेश्वरदास का गाँव है। रतनचन्द। उसने यह चलाया है।

मुमुक्षु : क्या प्रश्न चलाया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रश्न यह था कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को सोनगढ़वाले मिथ्यात्व कहते हैं... ऐसा हमने कहा ही नहीं। कभी कहते ही नहीं।

मुमुक्षु : तो क्या कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य हैं, उनकी श्रद्धा का नाम राग है। राग को धर्म मानना, यह मिथ्यात्व है। इनकी श्रद्धा यह राग, यह मिथ्यात्व नहीं। खानियाचर्चा में यह चर्चा हुई थी। आहाहा! अरे! भाई! कुछ का कुछ कर देते हैं। बेचारा क्या करे? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अनुभव के काल में समस्त विकल्प छूट जाते हैं। आहाहा! विकल्प हैं, यह मिथ्यात्व नहीं। विकल्प मेरा है, ऐसी मान्यता, यह मिथ्यात्व है। समझ में आया? राग आता है, यह राग मिथ्यात्व नहीं, परन्तु राग मेरा है और राग से मुझे धर्म होगा — यह मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

(नयपक्षपकक्षा) कैसी है? 'महतीं' जितना बाह्य-अभ्यन्तर बुद्धि का विकल्प उतने ही नयभेद... है न? यहाँ बुद्धिपूर्वक की बात है, हों! है न बुद्धि? **बुद्धि के विकल्प उतने ही नयपक्ष...** है। बुद्धि है न? भाई! क्या कहा? बुद्धिपूर्वक जितने विकल्प उठते हैं, वे सब छूट जाते हैं। अबुद्धिपूर्वक विकल्प रहते हैं। अनुभव में अबुद्धिपूर्वक के विकल्प

रहते हैं। परन्तु बुद्धिपूर्वक, मैं यह कर्ता हूँ, यह मेरा कर्तव्य है — ऐसा बुद्धिपूर्वक का विकल्प उठता है। **उतने ही नय भेद...** हैं, यह सब छूट जाते हैं। आहाहा! अरे! अभी तो क्या कहते हैं यह भी समझ में (नहीं आता)। भाई! जन्म-मरण का अन्त... बापू! आहाहा!

एक निगोद में एक श्वास में अठारह भव। कल कहा था न? ब्रह्मदत्त का नहीं कहा था? आहाहा! भाई! इसने विचार किस दिन किया है (कि) अपना क्या होगा? ब्रह्मदत्त ७०० वर्ष रहा। जितने श्वास हुए इतने कि एक श्वास में इतने लाख पल्योपम का (दुःख) एक श्वास में इतने पल्योपम। कितने? ग्यारह लाख छप्पन हजार पल्योपम। आहाहा!

मुमुक्षु : एक श्वास का फल?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक श्वास का फल। आहाहा! ७०० वर्ष कहीं चक्रवर्तीपद नहीं रहता। आयुष्य की स्थिति ७०० वर्ष थी। तो यह ७०० वर्ष के जितने श्वास होते हैं, यह श्वास में इसने संसार की कल्पना का सुख माना कि हम सुखी हैं, देव सेवा करते हैं। हजार तो देव हैं। एक स्त्री की हजार देव सेवा करते हैं, ऐसी तो एक स्त्री थी। ऐसी छियानवें हजार दूसरी स्त्रियाँ। उनकी देव सेवा न करें। एक स्त्री रत्न है, यह पटरानी है। आहाहा! इतनी सुख की कल्पना में ७०० वर्ष तो गये तो एक श्वास के फल में इतना हुआ। आहाहा! ग्यारह लाख छप्पन हजार पल्योपम। प्रभु! यह विचार तो कर... आहाहा! ग्यारह लाख छप्पन हजार पल्योपम... एक श्वास का इतना फल। कोई कहे कि यह तो कुछ... समझ में आया? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : ककड़ी के चोर को कटार मारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। क्या कहा यह? ककड़ी के चोर को फाँसी? ऐसा नहीं, भगवान! तेरी चीज़ आनन्द का नाथ है। आहाहा! तूने पुण्य के पाप के भाव किये, इसमें अपनापना माना। ब्रह्मदत्त को तो वहाँ अकेला पाप ही था। समझ में आया? चक्रवर्तीपद। सोलह हजार देव सेवा करते। छियानवें हजार स्त्री, बहत्तर हजार नगर, अड़तालीस हजार पाटण और छियानवें करोड़ गाँव, छियानवें करोड़ गाँव। आहाहा! इसकी एक श्वास की कल्पना की मैं सुखी हूँ। मुझे ठीक है। आहाहा! इसके फल में ग्यारह लाख छप्पन हजार पल्योपम का दुःख। पल्योपम किसको कहते हैं? भाई! एक पल्य के असंख्यातवें भाग

में असंख्यात अरब वर्ष। एक पल्योपम काल का माप है। काल का माप पल्योपम है। इसके असंख्यातवें भाग में असंख्यात अरब वर्ष जाते हैं। ऐसा एक पल्योपम और ऐसे ग्यारह लाख पल्योपम एक श्वास के फल में (जाते हैं)। बापू! आहाहा! समझ में आया? अरे! डाह्याभाई! आहाहा! अरे रे! इसने विचार कहाँ किया है? प्रसन्न-प्रसन्न हो गया बाहर में। बाहर से प्रसन्न... प्रसन्न.. हो गया। बस, ऐसे... अरे! प्रभु क्या है? भाई! तेरे आनन्द के नाथ का अनादर करके बाहर से प्रसन्नता होती है, यह महा मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इस दुःख से बचने का क्या उपाय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपाय कहते हैं न? यह उपाय की तो बात चलती है। विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प दृष्टि और अनुभव करना, यह छूटने का उपाय है।

मुमुक्षु : एक तो यह उपाय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही उपाय है। दूसरा इसमें ठहरना, यह उपाय है। दूसरा कोई उपाय है नहीं। निश्चय यह है और व्यवहार दूसरा कोई उपाय है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो एकान्त हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त, सम्यक् एकान्त है। सम्यक् एकान्त और मिथ्या एकान्त। सम्यक् अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त। उसमें यह सम्यक् एकान्त है। अरे! सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! अरे! जगत में यह बात नहीं मिले और जिन्दगी निकल जाये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, विकल्प, इतने नय भेद है। यह विकल्प कैसा है? बाह्य-अभ्यन्तर बुद्धि के विकल्प। यह कहा न? यह क्या कहा? बुद्धिपूर्वक के विकल्प की यहाँ बात है। जितना बुद्धिपूर्वक का (विकल्प है कि) यह मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ, अभेद हूँ, शुद्ध हूँ, एक हूँ — ऐसे बुद्धिपूर्वक के जितने राग, विकल्प थे, वह सब छूट जाते हैं। समझ में आया? अनुभव के काल में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के काल में बुद्धिपूर्वक जो विकल्प छूट जाते हैं, अबुद्धिपूर्वक विकल्प रह जाते हैं। यदि यह न रहे तो वीतराग हो जाये। सर्वथा पूर्ण वीतराग (हो जाये)। सम्यग्दृष्टि वीतराग तो हुआ है, परन्तु पूर्ण वीतराग नहीं इतना

अबुद्धिपूर्वक राग अन्दर है, परन्तु बुद्धिपूर्वक के विकल्प छूट जाते हैं। एक-एक शब्द को समझना कठिन। दुनिया ने मार दिया है। आहाहा! साधु भी यह प्ररूपणा करते हैं (कि) व्रत करो और उपवास करो और तप करो, जिससे तुम्हारा कल्याण होगा। यह प्ररूपणा ही मिथ्यात्व है। आहाहा!

यहाँ तो विकल्प (आता है) मैं ऐसा हूँ, अभेद अखण्डानन्द हूँ। ऐसा विकल्प भी अपना मानना, यह मिथ्यात्व है। आहाहा! क्योंकि स्वरूप में नहीं। यह कहते हैं, देखो! **नयभेद, ऐसा है। फिर कैसा है? बिना उपजावे ही...** आहाहा! यह स्वरूप में है नहीं। मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, एक हूँ, अखण्ड हूँ — ऐसे विकल्प भी स्वरूप में है ही नहीं। बाहर से बिना उपजाये उपजते हैं। अन्दर स्वभाव में तो है नहीं। आहाहा! आखिरी बात, बापू! यह तो कहा न? बताया न? पण्डितजी! कठिन मार्ग है, कठिन तो है भाई! पर अपना ज्ञान करने से स्वरूप का ज्ञान करने से पता लग जाता है। यह आया था न? शुद्धस्वरूप का विचार करते। यह आया था। समझ में आया? एक-एक श्लोक में तो अलौकिक अमृत का सागर उछलता है। आहाहा! क्या कहते हैं?

बिना उपजाये ही... इसका अर्थ स्वभाव में नहीं। परन्तु विकल्प में एकदम उत्पन्न हो जाता है। ऐसा विकल्प है, यह **अति घणी...** आहाहा! '**अनल्प**' शब्द है न? '**अनल्प**' अर्थात् अल्प नहीं, परन्तु '**अनल्प**' बहुत विकल्प। **निर्भेद वस्तु में भेद कल्पना...** यह विकल्प की व्याख्या। क्या कहा यह? वस्तु तो निर्भेद अभेद अखण्डानन्द प्रभु है, उसमें भेद कल्पना (करना कि) मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ, ऐसी भेदकल्पना यह विकल्प राग है। आहाहा! लोग राग इसे कहते हैं कि यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार के भोग और विषय, आबरू, कीर्ति, धन्धा बड़ा यह राग है। परन्तु इस राग को राग जानते नहीं। आहाहा! अभेद में भेद उठाना यह राग है। आहाहा! समझ में आया? है शब्द? विकल्प की व्याख्या—निर्भेद वस्तु में भेद कल्पना। आहाहा! भगवान शुद्ध चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा एकरूप अखण्ड स्वरूप, इसमें ऐसा विकल्प भेदरूप उठाना। आहाहा! उसका जो समूह, यह विकल्प का—राग का समूह। है? **है इसमें ऐसा है। कैसा है?** निर्भेद वस्तु में उसका समूह है, ऐसा कहते हैं। विकल्प का समूह उत्पन्न किया।

कैसा है आत्मस्वरूप ? 'अनुभूतिमात्रम्'। आहाहा ! **अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है।** प्रभु तो अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है। आहाहा ! इन्द्रिय सुख की कल्पना, यह तो जहर है। पाँच इन्द्रिय सुख की कल्पना, भोग में स्त्री के भोग में राग, यह तो जहर है, काला नाग है। समझ में आया ? समकिती को राग आता है, परन्तु काला नाग जैसा दुःख लगता है। समझ में आया ? यहाँ तो यह कहा कि आत्मा अतीन्द्रिय सुखस्वरूप हो गया। विकल्प छोड़ा तो; विकल्प दुःखरूप था, इसको छोड़कर अन्दर निर्विकल्प में आया तो अतीन्द्रिय सुखरूप हुआ। आहाहा ! इसका नाम आत्मज्ञान और इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? है या नहीं अन्दर ? पाठ तो पड़ा है। यह सोनगढ़ का पाठ नहीं।

एक व्यक्ति ने बहुत वर्ष पहले ऐसा कहा, कि सोनगढ़ ने समकित बहुत महँगा कर दिया। मैं मानता था कि यह सरल था। परन्तु तुम मानते थे, वह समकित ही नहीं था, वह तो मिथ्यात्व था। आहाहा ! हमें देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा है, हम मुनियों को मानते हैं, तीर्थंकर को मानते हैं, प्रतिमा को मानते हैं, बस ! हमारी श्रद्धा सच्ची है। अब हम व्रतादि करेंगे, यह हमारी संवर और निर्जरा है। आहा ! व्रत करना, यह संवर है और उपवास करना, यह निर्जरा है। रतनलालजी !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ ही यथार्थ तप है। उसे तप कहते हैं। '**प्रतपंते इति तपः।**' जिसमें आनन्द का नाथ पर्याय में तपे और आनन्द की दशा प्रकाशित हो, इसका नाम तप है। आहाहा ! यह उपवास आदि का विकल्प तो आकुलता है। आहाहा ! नियमसार में लिया है। '**प्रतपंते ईति तपः।**' आत्मा अपनी पर्याय में, जैसे सोना-स्वर्ण गेरु लगाने से चमकता है। गेरु समझते हो ? सोना-सुवर्ण गेरु लगाते हैं तो चमकता है-शोभित होता है। ऐसे भगवान आत्मा अपनी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द से शोभित होता है, इसका नाम तप कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? बाकी तो सब तो सब लंघन है। आहाहा ! ऐसी बातें मनुष्यों को कठिन लगती हैं। भाई ! यह तो पूरे जन्म-मरण का नाश करना है। आहाहा ! अनादि-अनन्त जन्म-मरण करता आया है। आहाहा ! इसमें से गुलाँट खाकर यह विकल्प भी मैं नहीं (इसमें आनेवाला है)। आहाहा ! मैं अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप हूँ,

ऐसा विकल्प भी उसमें नहीं। ऐसी बात है।

प्रगट हुआ यह 'कैसा है आत्मस्वरूप ?' 'अनुभूतिमात्रम्'। अर्थात् 'अनुभूतिमात्रम्' अेटले ? अेटले समझे ? अर्थात्। अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है। आहाहा! अनुभूति अर्थात् आत्मा विकल्प को छोड़कर आत्मा की अनुभूति करता है, यह अनुभूति अर्थात् अतीन्द्रिय सुख प्राप्त हुआ। आहाहा! यह शक्तिरूप सुख था, वह तो सुख का समुद्र है। ओहोहो! जब उसका स्वीकार हुआ तो अनुभव हुआ, तो पर्याय में अतीन्द्रिय सुख आया, इसको अनुभूति कहते हैं। अनुभूति इसको कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर जो अनुभव होता है, वह अनुभूति अतीन्द्रिय सुख को कहते हैं। आहाहा! यह तुम्हारे पैसा-वैसा-धूल में सबमें तो दुःख है।

मुमुक्षु : पैसा में दुःख होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा दुःख का निमित्त है। ऐ सेठ! दुःख नहीं। यह मेरा है, ऐसी मान्यता दुःख है, इसमें यह निमित्त है। जड़ स्वयं दुःख नहीं, जड़ दुःख में निमित्त है। अन्दर में सुख मानता है कि मैं सुखी हूँ। अभी बहुत दिखते हैं। पाँच-पाँच, दस-दस लाख एक दिन की कमाई है। बड़े गृहस्थ हैं, बड़ी कमाई है, इसमें क्या ? धूल में क्या है ? आहाहा! हम सुखी हैं। पहला सुख निरोगी काया। पुस्तक में ऐसा आता है।

मुमुक्षु : ज्यादा पैसेवाला हो तो उसे शरीर का सुख होता ही नहीं, कम ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसी का शरीर ठीक भी हो। अपने शोभालाल सेठ तो शरीर से ठीक हैं। सभी दुःखी हैं। बहुत से सेठियाओं का शरीर ठीक होता है, परन्तु इससे क्या हुआ ? सेठ तो दवा बहुत रखते हैं। एक बार वह सोते थे, तब में निकला था। इनके मकान में उतरा था न। तब बाहर बहुत दवा थी। सेठ! तुम्हारे सोने की जगह थी न ? वहाँ बाहर पड़ी थी। यह तो रखते हैं। अरे! दवा तो यह दवा है। जिससे जन्म-मरण मिट जाये। 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं।' आत्मा में भ्रान्ति है कि राग मेरी चीज़ है और राग, वह सुख है, यह भ्रान्ति बड़ा रोग है। आहाहा! यह श्रीमद् का वाक्य है न ?

आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान।
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान॥

यह औषध अर्थात् विचार और ध्यान औषध है। आहाहा! आत्मा का ज्ञान और आत्मा का ध्यान, यह जन्म-मरण मिटाने की औषध है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, विकल्प छूटते ही अनुभूति हुई है। यह अनुभूति की व्याख्या क्या? हमें समझाओ। यह अनुभूति अर्थात् अतीन्द्रिय सुख का स्वाद। आहाहा! समझ में आया? तब उसको सम्यग्दर्शन और धर्म हुआ। आहाहा! ऐसी चीज़ है, अब मनुष्यों ने ऐसी कर रखी है कि पर की दया पालना... पर की दया तो पाल सकता नहीं। पर की दया का भाव होता है, यह राग है, हिंसा है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहा है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। राग हिंसा है। पर की दया पालना, ऐसा शुभभाव आया। यह शुभभाव स्वरूप की हिंसा है। आहाहा! यहाँ (अज्ञानी कहते हैं), दया धर्म का मूल है, कैसी दया? बापू! स्थानकवासी में तो यह ही चलता है, दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान, तुलसी दया... यह तो ठीक। 'दया ते सुख की वेलडी', इसमें यह है। 'दया ते सुख की वेलड़ी, दया ते सुख की खान', अनन्त जीव मुक्ति गये, दया तणे परिमान। यह व्याख्या है। यह दया, बापू! यह दया नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं।

परद्रव्य की दया पाल सकता है, यह बात ही आत्मा में है नहीं। परद्रव्य की पर्याय को इसका जीव कर सकता है, रखे और परजीव को मार सकता है? भाव हो कि पर को मारूँ, यह द्वेष है। पर को जिलाऊँ, दया पालूँ, यह राग है। परन्तु यह है तो विकार है। आहाहा! और यह आत्मा के स्वरूप की (हिंसा है)। गजब बात है! इसकी आलोचना की है। यह लोग तो दया के भाव को हिंसा कहते हैं। क्या भाव? बापू! पर की दया का विकल्प उठता है, यह राग है और यह राग स्वरूप-अरागी प्रभु की हिंसा है। आहाहा! इसकी आलोचना की है। अमृतचन्द्राचार्य पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहते हैं। पर यह कहीं पढ़ने को नहीं मिलता, अपना आग्रह छोड़कर शास्त्र का वांचन करना, शास्त्र क्या कहते हैं, ऐसी दृष्टि रखना। अपनी दृष्टि प्रमाण शास्त्र का अर्थ मानना, ऐसा नहीं। शास्त्र का अभिप्राय क्या है, ऐसी दृष्टि करना। अपने अभिप्राय के प्रमाण शास्त्र को मान लेना (ऐसा नहीं)! पाटनीजी, आहाहा! यह श्लोक पूरा हुआ, लो! अब ९१। यह ९० श्लोक पूरा हुआ।

कलश-९१

(रथोद्धता)

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्
पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं
कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः।।46-91।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'तत् चिन्महः अस्मि' मैं ऐसा ज्ञानपुंजरूप हूँ, 'यस्य विस्फुरणं' जिसका प्रकाशमात्र होने पर 'इदं कृत्स्नं इन्द्रजालं तत्क्षणं एव अस्यति' [इदं] विद्यमान अनेक नयविकल्प जो [कृत्स्नं] अति बहुत है [इन्द्रजालं] झूठा है पर विद्यमान है, वह [तत्क्षणं] जिस काल में शुद्ध चिद्रूप अनुभव होता है, उसी काल में [एव] निश्चय से [अस्यति] विनश जाता है। भावार्थ इस प्रकार है-जैसे सूर्य का प्रकाश होने पर अन्धकार फट जाता है; उसी प्रकार शुद्ध चैतन्यमात्र का अनुभव होने पर यावत् समस्त विकल्प मिटते हैं, ऐसी शुद्ध चैतन्य वस्तु है सो मेरा स्वभाव; अन्य समस्त कर्म की उपाधि है। कैसा है इन्द्रजाल? 'पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभि उच्छलत्' [पुष्कल] अति बहुत [उच्चल] अति स्थूल ऐसी जो [विकल्प] भेद कल्पना ऐसी जो [वीचिभिः] तरंगावली उस द्वारा [उच्छलत्] आकुलतारूप है, इसलिए हेय है; उपादेय नहीं है।।46-91।।

कलश - ९१ पर प्रवचन

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्
पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं
कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः।।46-91।।

खण्डान्वय सहति अर्थ :- '**तत् चिन्महः अस्मि**' धर्मात्मा-सम्यग्दृष्टि जीव अपने को ऐसा मानता है और अनुभव करता है। **मैं ऐसा ज्ञानपुंजरूप हूँ... 'चिन्महः'** है न?

'**ज्ञानमहः**' चैतन्य का पुंज-तेज। आहाहा! मैं चैतन्य के प्रकाश का पुंज हूँ। यह विकल्प मात्र मेरी वस्तु में है नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी स्त्री, पुत्र मेरा और पैसा मेरा बँगला-हजीरा मेरा। हजीरा समझते हो? लोटिया दाढ़ी नहीं रखते? जामनगर में नदी के किनारे इसका बड़ा हजीरा है। वहाँ यह लोग दाटे, दाटे अर्थात् गाढ़ते हैं। इसको हजीरा कहते हैं। नदी के किनारे बढ़ा हजीरा।

मुमुक्षु : ताजिया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ताजिया नहीं, मकान। इसमें ले जाके मुर्दा को गाढ़ते हैं, इसको हजीरा कहते हैं। बोहरे लोग दाढ़ी रखते हैं और टोपी पहनते हैं। इनका वहाँ हजीरा है। जामनगर नदी के किनारे बढ़ा मकान है। मर जायें इनको वहाँ गाढ़ते हैं। ऐसे यह भी बढ़े हजीरा में गाढ़ा गया है। पाँच लाख और दस लाख के मकान का आज वास्तु किया, आज तो बढ़े-बढ़े कार्यकर्ताओं को बुलाया और अधिपति बड़े होते हैं, इन्हें बुलाया बाद में प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। धूल में भी नहीं, सुन तो सही! भाई! तुझे वास्तु करना नहीं आता। वास्तु तो अपने आनन्दकन्द में रहना, इसका नाम वास्तु है। पद्मचन्दजी!

यहाँ यह कहते हैं, '**चिन्महः**' मैं तो ज्ञानपुंज रूप हूँ। **ऐसा ज्ञानपुंजरूप हूँ, कि... 'यस्य विस्फुरणम्' जिसका प्रकाशमात्र होते...** क्या कहते हैं? आहाहा! चैतन्य का प्रकाश जहाँ हुआ, इसके स्फुरण मात्र से विकल्प का अन्धेरा नाश हो जाता है। आहाहा! प्रकाश होने से '**इदम् कृत्स्नम् इन्द्रजालम् तत्क्षणं एव अस्यति' विद्यमान अनेक नय विकल्प...** नय विकल्प हैं। नयविकल्प नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? '**इदम्**' नयविकल्प विद्यमान हैं। '**कृत्स्नम्' अति घणा... 'कृत्स्नम्**' का अर्थ घणा (बहुत)। '**इन्द्रजालम्**' इन्द्रजाल की भाँति। जादूगर इन्द्रजाल करता है न? बहुत बताता है और एकदम समेट लेता है। आहाहा! कभी देखना।

हमने छोटी उम्र में देखा था। छोटी उम्र की बात है, हों! दस वर्ष की उम्र होगी। ऐसे अन्दर करके आम-केरी बताते हैं, बड़े जागदूर। उमराला जन्म गाँव, नहीं? छोटी उम्र में देखा था। कैसे बताता होगा अन्दर? ऐसे आढ़ा पर्दा रखता है। अन्दर में आम बताता है। आम, समझे न? आम... आम। पीला आम ऐसे बताये। खबर है, अन्दर दिखाता है। यह इन्द्रजालिया आम है।

ऐसे यह विकल्प सब इन्द्रजाल के झूठे विकल्प हैं। हैं सही। आहाहा! झूठे विकल्प हैं, आत्मा की शान्ति को रोकनेवाले हैं। आहाहा! इन्द्रजाल कहा न? झूठा है, परन्तु विद्यमान है। आत्मा के स्वरूप की अपेक्षा से झूठे हैं, परन्तु विकल्प हैं सही। दूसरे वेदान्तियों की तरह नहीं कि विकल्प है ही नहीं, कोई चीज़ वस्तु ही नहीं। ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा नहीं। द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, विकल्प है, राग की जाल है। समझ में आया? आहाहा! नय विकल्प विद्यमान है।

जिस समय शुद्ध चिद्रूप का अनुभव होता है... आहाहा! चैतन्य प्रकाश तरफ झुकाव होकर विकल्प छूटकर, जहाँ चेतन का प्रकाश वेदन में आया, **उसी समय निश्चय से विनष्ट हो जाता है।** सभी विकल्प नष्ट हो जाता है। सूर्य का प्रकाश हुआ, वहाँ अन्धकार का नाश हो जाता है। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा चैतन्य प्रकाश का पूर नूर, उसका जहाँ पर्याय में प्रकाश हुआ, तब विकल्परूपी अन्धकार अस्त हो जाता है। इसका उदय होता है, विकल्प का अस्त हो जाता है। यह क्या कहा? आहाहा!

चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा अपने प्रकाश में जब आया, पर्याय में विकल्प बुद्धि छूटकर पर्याय में प्रकाश आया तो यह प्रकाश का उदय हुआ, प्रगट हुआ और विकल्परूपी बुद्धिपूर्वक का अन्धकार था, उसका नाश हो गया। '**अस्यति**' है न? '**अस्यति**' यह अस्त हो गया। यह अस्त हो गया अर्थात् नष्ट हो गया। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो वीतराग का मार्ग है। आहाहा! चैतन्य का नूर—प्रकाश जहाँ आया, सूर्य की किरण जहाँ बाहर आयी, तहाँ अन्धकार का नाश हो जाता है। ऐसे भगवान आत्मा, बुद्धिपूर्वक विकल्प का नाश होता है तो चैतन्य का प्रकाश बाहर आता है। चैतन्य का प्रकाश बाहर आता है तो विकल्प का अन्धकार नाश हो जाता है। आहाहा! ऐसा धर्म है। अभी सम्यक्त्व का ठिकाना नहीं। और बाहर में कपड़ा छोड़ा, प्रतिमा ली। दो लीं और पाँच लीं, दस लीं और ग्यारह लीं। अरे! बापू! तेरे हित का मार्ग दूसरा है, भाई! आहाहा! इसके हित की बात कहें तो इसको एकान्त लगता है। क्योंकि यह व्रत-जप करते हैं, इनसे भी कल्याण होता है, (ऐसा कहें) तो तुम्हारा अनेकान्त कहलाये। पाटनीजी!

मुमुक्षु : इसका माना हुआ एकान्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : माना हुआ एकान्त। अरे! बापू! यह तो एकान्त है। मिथ्या अनेकान्त है। सम्यक् एकान्त तो अपने स्वरूप से ही लाभ होता है और राग से नहीं, यह अनेकान्त है। आहाहा! समझ में आया? एक तो संसार के कारण निवृत्ति नहीं मिलती और इसमें थोड़ी बहुत निवृत्ति मिले, घण्टा-दो घण्टा तो सुनानेवाले ऐसे मिले। बस! यह व्रत करो और उपवास करो। तुम्हारा कल्याण (हो जायेगा)। भगवान की प्रतिमा की स्थापना करो और दो-चार मन्दिर दस-दस लाख के, बीस-बीस लाख के बनाओ, जाओ! धर्म धुरन्धर।

मुमुक्षु : सरल लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहा न। इसको सरल लगता है। पैसा तो इसके पास पाँच-पचास लाख होता है। इसमें से पाँच लाख खर्च करे, दस लाख खर्च करे तो धर्मधुरन्धर का अभिनन्दनपत्र देते हैं....

मुमुक्षु : आपने भी तो बहुत मन्दिर बनवाये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ किसी ने नहीं बनाये। हमने तो किसी से नहीं कहा। यह मकान का भी नहीं कहा। हमने तो कभी किसी से कहा नहीं। एक पुस्तक के लिये हमने थोड़े समय से कहा है। समझ में आया? यह बहिन की पुस्तक आयी, इसके लिये कल तो कहा था कि यह पुस्तक दस हजार छपवाना चाहिए। हिन्दी और गुजराती आत्मधर्मवालों को भेंट देना चाहिए। बहिन को तो बाहर आना ठीक नहीं लगता, परन्तु पुस्तक बाहर आ गयी। ऐ... हिम्मतभाई! रात्रि को कहा था। दस हजार छपाओ, कहा। हमने तो कभी (कहा नहीं)। यह तो रामजीभाई सब करते थे। यह मन्दिर बनाओ, ऐसा हमने तो किसी दिन कहा नहीं था। यह मकान के लिये भी हमने किसी दिन नहीं कहा। होता है तो बताते हैं... समझ में आया? यह पुस्तक के लिये मेरी लगन ऐसी हो गयी। समझ में आया? अरे! एक बार विरोधी भी जरा शान्ति से देखे... बापू! अकेला मक्खन है। वस्तुस्थिति ही ऐसी है। आहाहा! महंगी तो है। एक पुस्तक सात रुपये में पड़ी। एक पुस्तक सात रुपये में पड़ी है। तीन रुपये में देगें। दस हजार में तो सत्तर हजार होंगे। यहाँ सत्तर हजार हों या न हों, कुछ नहीं। कहा, परन्तु एक बार तो बनाओ। हिन्दी और गुजराती को दो। सुने (-वाँचें) जो सही।

मुमुक्षु : बन सकती हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन सकती हैं। लो, हमारे पण्डितजी (कहते हैं)। दस हजार कहा। सात रुपये की पड़े तो सत्तर हजार तो एक दस हजार में होंगे। इसके अलावा कोई... क्या कहते हैं? बेचने के लिये भी, बेचने के लिए भी दो-तीन हजार रखना पड़ेगा। बिक्री के लिए। वे तो भेंट के लिए परन्तु भाव आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : दातार मिल जायेंगे....

पूज्य गुरुदेवश्री : रामजीभाई के पास दातार बहुत हैं।

मुमुक्षु : दस हजार एक रुपये हीराभाई की माँ की तरफ से।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ पैसों का कहाँ टोटा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! जिस काल में चैतन्य का प्रकाश बाहर आया। किस प्रकार बाहर आया? विकल्प छूटा जहाँ निर्विकल्प का अनुभव हुआ। आहाहा! यह चैतन्य का उदय हुआ। ऐसा शब्द प्रयोग किया है। नहीं? श्रीमद् में। चारित्र का उदय होता है, नहीं आता? 'उदय होता है चारित्र का'। यह उदय शब्द है। आहाहा! चारित्र का उदय होता है। उदय अर्थात् प्रगट होता है। ऐसी भाषा श्रीमद् में है। ऐसे आत्मा जब आनन्द का नाथ क्षण में जाग उठा... आहाहा! तो विकल्प का अन्धकार नष्ट हो जाता है। समझ में आया? लो। **निश्चय से नष्ट हो जाता है...**

भावार्थ ऐसा है—जैसे सूर्य का प्रकाश होते अन्धकार फट जाता है... फट जाता है। **वैसे शुद्धचैतन्य मात्र का अनुभव होते जितना विकल्प है, सभी मिट जाता है...** बुद्धिपूर्वक के। **ऐसी शुद्धचैतन्य वस्तु है, वो मेरा स्वभाव...** है। आहाहा! यह तो मेरा स्वभाव ही है। बाहर से यह चीज़ नहीं आती। चैतन्यप्रकाश का स्वभाव। **अन्य समस्त कर्म की उपाधि है...** आहाहा! यह विकल्प उठते हैं कि मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, यह भी कर्म की उपाधि है। निरुपाधि भगवान आत्मा स्वभाव में ये उपाधि है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **जितने विकल्प हैं, वे सभी मिटते हैं—ऐसी शुद्धचैतन्य वस्तु है, वह मेरा स्वभाव; अन्य समस्त कर्म की उपाधि है।** अभी थोड़ा कहते हैं। **कैसा है इन्द्रजाल?** यह विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ११, गुरुवार, दिनांक ०८-०९-१९७७
कलश-९१ से ९२, प्रवचन-८९

यहाँ तक आया है। **कैसा है इन्द्रजाल ? 'पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः उच्छलत्' 'पुष्कल' 'अति बहुत...'** क्या कहते हैं ? भगवान आनन्द और ज्ञायकस्वरूप होने पर भी अनादिकाल से अन्दर में विकल्प उठते हैं। मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं शुद्ध हूँ और अभेद हूँ। व्यवहार का तो निषेध करते आये हैं। आहाहा! परन्तु मैं चिदानन्द ज्ञायकस्वरूप (हूँ), मुझे अनन्त काल में अन्तर नजर में नहीं आया। यह चीज़ क्या है ? अन्तर में अनुभव होने से पहले विकल्प आते हैं कि मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ, यह सब इन्द्रजाल है, कहते हैं। आहाहा! यह कहा न ?

अति स्थूल ऐसी भेद कल्पना... यह सब विकल्प है। आहाहा! अब यहाँ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव तो कहाँ रह गये, भाई! आहाहा! समझ में आया ? यहाँ तो आत्मा पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्य धातु अखण्ड आनन्दकन्द की ओर सन्मुख नहीं होकर विकल्प उठाना... आहाहा! में ऐसा शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ और अभेद हूँ, यह विकल्प के जाल हैं। आहाहा! इसमें आत्मा का पता नहीं लगता विकल्प से, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म है। आहाहा!

'वीचिभिः' 'तरंगावलि..' तरंग उठती है, विकल्प का जाल (उठता है)। समुद्र में जैसे तरंग उठती है, ऐसे भगवान अतीन्द्रिय आनन्द सागर प्रभु, उसमें विकल्प की तरंगें उठती हैं। आहाहा! यह तरंगावली **आकुलतारूप है...** आहाहा! मैं आत्मा शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, एक हूँ, अभेद हूँ — ऐसा विकल्प भी दुःखरूप और आकुलतारूप है। आहाहा! समझ में आया ? यह भेद कल्पना आकुलतारूप है। आहाहा! **इससे हेय है...** यह विकल्प उठते हैं, वे हेय हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो शुभयोग को हेय मानने में पसीना आता है। शुभयोग हेय नहीं, शुभयोग मोक्ष

का मार्ग है, ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! यह शुभभाव तो नरक में भी अनन्त बार हुआ। नौवें ग्रैवेयक गया तब भी शुभभाव ऐसा हुआ कि अभी ऐसा हो सकता नहीं। शुक्ललेश्या और शुभभाव और निगोद में भी सिद्धान्त-परमागम में तो ऐसा कहते हैं कि क्षण में शुभ और क्षण में अशुभ एकेन्द्रिय जीव को निरन्तर चलता है। यह कोई नई चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें विकल्प उठाना... आहाहा! यह आकुलता और दुःखरूप है। उससे आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। आहाहा! जरा सूक्ष्म भाव है। लोगों को तो बाहर में शुभ क्रिया करते, दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा करते-करते कल्याण हो जाएगा, (ऐसा मानते हैं)। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा वस्तु की मर्यादा में विकल्प उठते हैं। यह अमर्यादित है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मैं तो शुद्धचिदानन्द का ध्यान करनेवाला। आहाहा! उसमें यह विकल्प क्या? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मैं तो शुद्धचैतन्य (हूँ)। यह विकल्प उठता है, यह हेय है, **उपादेय नहीं है।** है? आहाहा! तो शुभक्रियाकाण्ड का भाव कैसे हेय है। समझ में आया? यह ९१ श्लोक हुआ।

कलश-९२

(स्वागता)

चित्स्वभावभरभावितभावा-
भावभावपरमार्थतयैकम्।
बन्धपद्धतिमपास्य समस्तां
चेतये समयसारमपारम्।।47-92।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'समयसारं चेतये' शुद्ध चैतन्य का अनुभव करना कार्यसिद्धि है। कैसा है। 'अपारं' अनादि-अनन्त है। और कैसा है। 'एकं' शुद्धस्वरूप है। कैसा करके शुद्धस्वरूप है? 'चित्स्वभावभरभावितभावाभावभावपरमार्थतया एकं' [चित्स्वभाव] ज्ञानगुण, उसका [भर] अर्थ ग्रहण व्यापार, उसके द्वारा [भावित] होते हैं [भाव] उत्पाद

[अभाव] विनाश [भाव] ध्रौव्य, ऐसे तीन भेद उनके द्वारा [परमार्थतया एकं] साधा है एक अस्तित्व जिसका। किं कृत्वा–क्या करके? 'समस्तां बन्धपद्धतिं अपास्य' [समस्तां] जितनी असंख्यात लोकमात्र भेदरूप है, ऐसी जो [बन्धपद्धतिं] ज्ञानावरणादि कर्मबन्धरचना, उसका [अपास्य] ममत्व छोड़कर। भावार्थ इस प्रकार है–शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर जिस प्रकार नयविकल्प मिटते हैं, उसी प्रकार समस्त कर्म के उदय से होनेवाले जितने भाव हैं, वे भी अवश्य मिटते हैं, ऐसा स्वभाव है।।47–92।।

कलश - ९२ पर प्रवचन

चित्स्वभावभरभावितभावा–
भावभावपरमार्थतयैकम्।
बन्धपद्धतिमपास्य समस्तां
चेतये समयसारमपारम्।।47–92।।

आहाहा! पहले ही यह लिया है। जो अन्तिम पद है, इसका अर्थ पहले लिया।

खण्डान्वयसहित अर्थ :- 'समयसारं चेतये' आहाहा! **समयसार (अर्थात्) शुद्ध चैतन्य चेतये अनुभव करना कार्यसिद्धि है।** आहाहा! अपने धर्म की कार्यसिद्धि तो तब है। अपना भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप... आया न? शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसका अनुभव, निर्विकल्प दृष्टि में अनुभव करना, आहाहा! वह कार्यसिद्धि है। संस्कृत टीकाकार तो वहाँ '**चेतये**' में ऐसा शब्द लिया है। '**चेतये**' शब्द आया न? ध्यान शब्द आया न। विषय कुरु। यह शब्द बहुत आता है, भाई! आहाहा!

एक बार आनन्दघनजी कहते थे, श्वेताम्बर में हुए हैं, 'देखन दे रे सखी देखन दे, मेरा सुखकन्द प्रभु चन्द्रप्रभु, मुखचन्द्र सखी मुझे देखन दे। देखन दे सखी देखन दे, चन्द्रप्रभु।' चन्द्रप्रभु भगवान, हों! 'चन्द्रप्रभु मुखचन्द्र सखी मुझे देखन दे।' शुद्ध परिणति को ऐसा कहते हैं। मेरा नाथ मुझे देखने दे, सखी! यह वनस्पति अनन्त निगोद में मैं रहा। 'देख्यो नहिं देदार सखी रे मुझे देखन दे' यह निगोद में अनन्त भव किये, सखी! मैंने आत्मा का दीदार नहीं किया। आहाहा! मैं अपर्याप्त में अनन्त काल रहा परन्तु 'चतुर न चढयो रे

हाथ।' चतुर न चड़ियो हाथ। चतुर-आनन्द का नाथ मुझे हाथ नहीं आया वहाँ। हिन्दी भाषा में थोड़ी गुजराती आ जाती है। थोड़ी आ जाती है। आहाहा! 'देखा नहिं मैं दीदार..' मैंने विकल्प में आकर मेरा दीदार नहीं किया। मेरी चीज़ का अनुभव मैंने नहीं किया। समझ में आया? अपर्याप्त के काल में भी यह चतुर हाथ नहीं आया। यह पर्याप्त (अपर्याप्त) में आत्मा हाथ नहीं आता। चतुर न चढ़यो हाथ। चतुर—आनन्द के नाथ को मेरे ध्यान का विषय नहीं बनाया। वहाँ नहीं बना। आहाहा! अब मुझे प्रसंग बना है, प्रभु! कहते हैं कि यह विकल्प का जाल हेय है। छोड़ दे, नाथ! तुझे तेरा दर्शन करना हो तो यह विकल्प की जाल छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो विकल्प है, उसको हेय कहते हैं। जिनेश्वरदासजी! तब शुभयोग कहाँ रहा? प्रभु! अब इसका विवाद। अरे... भगवान! प्रभु! तुझे क्या हो गया? तुझे कहाँ जाना है? नाथ! तू कौन है? शुभयोग तो परसन्मुखता का भाव है। और ध्यान और सम्यग्दर्शन तो स्वसन्मुखता का भाव है। समझ में आया? शुभयोगादि है, वह तो परलक्ष्यी भाव है, पर-सन्मुखता के लक्ष्य में होता है। और सम्यग्दर्शन भाव तो स्वसन्मुखता में होता है। बराबर है। आहाहा! धन्नालालजी! यह सब रुपया-पैसा और पुत्रादि में बेचारा उलझ गया है। यह लड़का कमाता है और ऐसा है, दो लाख तनखा मिलती है। धूल में भी नहीं, सुन तो सही! कहाँ सलवाई गया है, समझा? सलवाई गया, समझे? रुक गया। अटक गया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, क्या कहते हैं? देखो! '**चेतये**' समयसार। प्रभु! एक बार समयसार को चेत। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसको ध्यान में विषय बना। तेरी पर्यायरूपी ध्यान में उसे विषय बना। वर्तमान ज्ञान की पर्यायरूपी ध्यान, उसमें इसको विषय-ध्येय बना। उसको... आहाहा! समयसार पूर्णानन्द का नाथ। आहाहा! ये तेरी वहाँ कार्य सिद्धि है। बाकी कार्यसिद्धि अन्यत्र कहीं धूल में नहीं। आहाहा! है? पोपटभाई! कार्यसिद्धि वहाँ है, ऐसा कहते हैं। ये पैसा और छह लड़के, ये धूल में कार्यसिद्धि नहीं। वहाँ तो पाप की कार्यसिद्धि है। आहाहा!

भगवान! यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, हे नाथ! प्रभु! तू भगवत्स्वरूप है न! इस

विकल्प की जाल में तेरा पता नहीं लगेगा। यह शुभ विकल्प, हों! मैं निश्चय से शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, यह भाव शुभ है। शुभ है या नहीं? वस्तु आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यघन, समयसार लिया है न? समयसार शब्द पड़ा है न? यह समयसार अर्थात् चैतन्यवस्तु घन आनन्दकन्द प्रभु! इसमें मैं ऐसा हूँ — ऐसा विकल्प भी हेय है। आहाहा! भाई! तेरी कार्यसिद्धि तो तब होगी। समझ में आया?

समयसार, भगवान! समय अर्थात् पदार्थ। सार अर्थात् कर्म—जड़कर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित ऐसा समयसार '**चेतये**' प्रभु! '**चेतये**'। यह चेतन को चेतन करता है। चेतन को विषय बना। आहाहा! धर्म की ध्यान की पर्याय में उसको ध्येय बना। आहाहा! समझ में आया? बाकी कहीं दूसरे प्रकार से कार्यसिद्धि नहीं होती, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : क्या कार्यसिद्धि?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा चैतन्यमूर्ति आनन्दघन का अनुभव करना, वह कार्यसिद्धि है। आहाहा! यह इसके वास्तविक कार्य की सिद्धि है। इसे आत्मा का कार्य किया। बाकी तो सब थोथा है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ तक लिया है कि यह विकल्प उठते हैं कि मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, अभेद हूँ, ये हेय हैं। भगवान समयसार शुद्धचैतन्यघन, वह '**चेतये**' अर्थात् उपादेय है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : 'चेतये' उपादेय एक ही बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही उपादेय है। तब संवर, निर्जरा की पर्याय चैतन्य को उपादेयरूप अनुभव करती है। यह अनुभव संवर, निर्जरा की पर्याय है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात! अपूर्व बात है, भगवान! आहाहा! तूने तेरा दीदार कभी देखा नहीं, नाथ! समझ में आया? एक में आता है। 'हरता फरता प्रगट हरि देखूं रे...' मेरा नाथ हरि। अज्ञान और राग-द्वेष को हरण करनेवाला। इसने 'हरता फरता प्रगट प्रभु देखूं रे, मारूँ जीववुं रे सफल तब लेखुं रे... मुक्तानन्द का नाथ विहारी रे, ओघा जीवन डोर हमारी रे।' आत्मा ऐसा पुकार करता है कि मेरी अनुभव दशा, यह मेरी जीवन डोरी है। आहाहा! मेरा जीवन और जीवन की डोरी यह है। 'मुक्तानन्द का नाथ...' मुक्तानन्द प्रभु। मोक्ष का आनन्दस्वरूप प्रभु है। आहाहा! उसे में मेरी चलते-फिरते दृष्टि में यह भगवान रहे। समझ में आया? तब मेरा

जीवन सफल है। बाकी दुनिया के काम में अफल जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! समझ में आया? अरे! मैं जहाँ जाना चाहता हूँ, वहाँ मेरी सफलता है। आहाहा! बात जरा सूक्ष्म है, परन्तु प्रभु! अन्तर के घर की मूल बात है। जहाँ बाहर की पण्डिताई काम नहीं आती। क्रियाकाण्ड के भाव काम नहीं करते। मैं शुद्ध अखण्ड अभेद, यह विकल्प काम नहीं करते... आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि समयसार '**चेतये**'। आहाहा! जहाँ प्रभु है, वहाँ नजर कर न! राग में आत्मा कहाँ है? राग में आत्मा कहाँ? यह विकल्प में आत्मा कहाँ आया? आहाहा! अब यह लोगों को ऐसा लगता है कि यह एकान्त है, एकान्त है। यहाँ तो यह कार्यसिद्धि एक ही बात है।

इसमें भी आया न? छहढाला में। 'लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ, छोड़ जगत जग द्वंद्व-फंद निज आतम ध्यावो', ये यह समयसार '**चेतये**'। पहले के पण्डित तो बहुत सरस कह गये, परन्तु इसका अर्थ करनेवाले फेरफार... फेरफार करते हैं... समझ में आया? छोड़ जगत द्वंद्व फंद। द्वंद्व—भेद का विकल्प भी छोड़ दे। मैं ऐसा हूँ और वैसा हूँ, ऐसा विकल्प भी छोड़ दे। आहाहा! 'निज आतम उर ध्याओ'। निज आत्मा। समयसार निज आत्मा ध्याओ अर्थात् '**चेतये**'। समयसार संस्कृत टीका में '**चेतये**' का अर्थ ध्यान का विषय करता हूँ, बहुत जगह लिया है। (परम) अध्यात्म तरंगिणी। ध्यान का विषय अध्यात्म नहीं। यह कलश टीका। कलश टीका है न '**चेतये चिंतयामि ध्यानविषयकरोमि इति अर्थः**' चेतये का अर्थ। '**समयसारचेतये**'। है शब्द? '**समयसारचेतये**'। का अर्थ। '**चेतये चिंतयामी**' चिन्तवुं अर्थात् विकल्प नहीं। '**ध्यानविषयकरोमि इति अर्थः समयसारं सम्यक्तिगच्छंतिइति निजगुणपर्याय समयसार**' परमाध्यात्म तरंगिणी। समझ में आया? आहाहा!

जहाँ निजस्थल में जहाँ आनन्दधाम पड़ा है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्थल जहाँ है, वहाँ ध्यान कर न, प्रभु! आहाहा! इसके सन्मुख देख न! व्यवहारादि क्रिया में तो इससे विमुख है। आहाहा! यह विकल्प मैं ऐसा हूँ, यह भी विमुख है। समझ में आया? मार्ग बापू! बहुत सूक्ष्म। लोग तो इसमें एकदम (लगे हैं कि) यह कहाँ से नया निकाला? नया

नहीं, भगवान! अनादि का तेरा स्वरूप ही यह है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, '**समयसारचेतये**' समयसार की व्याख्या की। शुद्ध चैतन्य। '**चेतये**' की व्याख्या की अनुभव करना। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ, इसका निर्विकल्प अनुभव करना, यह सम्यग्दर्शन है, यह सम्यग्ज्ञान है, यह स्वरूपाचरण है, यह मोक्ष का मार्ग है... यह मोक्षमार्ग का अवयव है। सम्यग्दर्शन। समझ में आया? ऐसी चीज़ है। अरे! भगवान! तू पर को देखता है। पर को देख-देख के तो तेरा अनन्त काल गया। तूने तेरा दीदार कभी देखा नहीं, नाथ! आहाहा! अन्दर चैतन्य चिन्तामणि रत्न है, जिसकी कथनी सर्वज्ञ के मुख में भी पूरी नहीं आती। समझ में आया? 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कही सके नहिं वे भी श्री भगवान जो'। जो स्वरूप भगवान ने देखा, वह वाणी द्वारा कहाँ पूर्ण कैसे आये? आहाहा! 'उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे?' सर्वज्ञ की वाणी में भी ऐसे नाथ की वाणी पूरी नहीं आयी, तो दूसरे अल्पज्ञ की वाणी में यह किस प्रकार आये? 'अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो'। यह तो अनुभवगम्य की बात रही। आहाहा! समझ में आया? वह यह '**चेतये**'। आहाहा! शब्द थोड़ा, भाव की गम्भीरता का पार नहीं। आहाहा!

भगवान! तेरे संसार का उच्छेद करने का कारण तो यह है। आहाहा! बाकी परिभ्रमण कर करके... (फोक निकल गया)। आहाहा! निगोद के शरीर में अनन्त (भव किये)। यह देखो न! यहाँ नीम के फूल पकते हैं न? फूल। कोर कहते हैं न? कोर— फूल। जब रसोई में जाते हैं, वहाँ सीढ़ियों पर फूल (पड़े रहते हैं)। आहाहा! यह अनन्त जीव, हों! अनन्त भगवान अन्दर पड़े हैं। कोर कहते हैं? फूल... फूल। नीम के फूल। हमारे कोर कहते हैं। इतने एक टुकड़े में तो असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव।

मुमुक्षु : एक जीव में अनन्त शक्तियाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : और एक-एक जीव में अनन्त शक्ति और एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्य। आहाहा! कल कहा था न? अपन चढ़ते हैं न आहार के समय। देखो! ऐ!

मुमुक्षु : वहीं फरमाया था, आपने भोजन की सीढ़ी पर ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! भगवत्स्वरूप अन्दर विराजते हैं। क्षेत्र बढ़ा न हो, इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। अंगुल के असंख्य भाग में असंख्य शरीर और एक-एक शरीर में अनन्त जीव और एक-एक जीव में अनन्त शक्ति और एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्य। आहाहा! जीव को भरोसा आना कठिन। और यह भरोसा अन्दर में से सम्यग्दर्शन को आये बिना कार्यसिद्धि नहीं होती। आहाहा! लाख बात करे कि दान और पूजा और भक्ति और मन्दिर... समझ में आया? बात तो (यह है)।

पहले ही उठाया, देखो! अन्तिम पद है न? '**चेतये समयसारमपारम**' अन्तिम पद है न कलश का? इसका अर्थ पहला लिया। '**समयसारम् चेतये**' नाथ! तू तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है न, प्रभु! विकल्प उठता है, वह तो दुःखरूप है न, नाथ! आहाहा! यह दुःख को छोड़ दे। बाहर में तुझे कहीं मिठास लगती हो तो यह तो दुःख है। परन्तु अन्दर में विकल्प उठता है, यह दुःख है। आहाहा! समझ में आया? पाँच-पच्चीस लाख या दो-पाँच करोड़ रुपया हो, स्त्री ठीक हो, शरीर सुन्दर हो, लड़के छह-आठ हों, एक-एक लड़का दो-दो लाख रुपये कमाता हो। इसमें क्या है? धूल ही नहीं। मर जायेगा, सुन तो सही।

मुमुक्षु : फँस गया इसमें तो अब क्या करें?

पूज्य गुरुदेवश्री : फँस गया है तो निकल सकता है या नहीं? चिमनभाई नहीं आये, नहीं? चिमन ठाकरसी नहीं आये। यह तो उसके बहनोई ऊपर विचार आया था। कल दर्शन करने आये थे। आठ तो लड़के हैं इसके। पैसा है पच्चीस-तीस लाख या चालीस लाख ऐसा कुछ है। पैर छूने आया था। मुम्बई जाना है। मार दिया। ऐ! पहिचानते हो न? केशुभाई नहीं? चिमन ठाकरसी न, उनके बहनोई पैसा बहुत लाखों है। लड़के आठ-आठ हैं। सब मजे में हैं, पर बाद में अन्दर जाये तब हरक आता है। भारी भाई! अपना अनुभव...

मुमुक्षु : आपको सबका पता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐ.. चिमनभाई! सुना है न। जेठाभाई है या नहीं तुम्हारा? कहाँ है? इसके भी सात लड़के हैं। सात हैं या नहीं? यह वहाँ रहता था, इसलिए कहा था। वहाँ

रहता था, इसके साथ सम्बन्ध में। उसके आठ हैं, इसके सात हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आठ-आठ लड़के हैं, मजे हैं-आनन्द हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में ही नहीं। बापू! आहाहा! यह तो सब दुःख के निमित्त हैं। यह दुःखरूप नहीं, दुःख उत्पन्न करते हैं, 'यह मेरे' इसके यह निमित्त हैं। आहाहा! मेरा लड़का, मेरी स्त्री। आहाहा! स्त्रीवाला-पुत्रवाला, पैसेवाला। एक वाळा पैर में निकले तो चिल्लाता है। चिल्लाता है। पीड़ा और पीड़ा। यह कितनेवाला स्त्रीवाला, पैसेवाला, मकानवाला, इज्जतवाला, धूलवाला। धूल यह दागीना-जेवरात, जेवरात होते हैं न? पाँच-पाँच लाख के जेवरात घर में होते हैं। लड़के आठ हों। सब शादीशुदा हों। एक-एक के दो-दो लाख के दागीना-जेवरात हों। कपड़ा हो तो... आहाहा! परन्तु क्या है तुझे यह? यह भूत तुझे कहाँ से लगा? प्रभु! तू विकल्प में आता है तो आकुलता-दुःख है, तो नाथ! यह बाहर में... आहाहा! तुझे कहाँ जाना है? दुःख के पर्वत से तुझे सिर फोड़ना है। आहाहा! आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर विराजता है, उसके समीप जा न! आहाहा! मणिभाई! ऐसी बात है, बापू! यहाँ तो।

मुमुक्षु : अन्दर का नाथ दिखता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखता नहीं, यही दिखता है। दिखता नहीं, कौन कहता है? किसने कहा? किसने जाना? दिखता नहीं, यह किसने जाना? दिखता नहीं — ऐसा जाना किसने? यह जानता है, देखते हैं। आहाहा! यहाँ तो यह चीज़ है। पाटनीजी! आहाहा! अरेरे! चौरासी के अवतार करते-करते कभी विश्राम लिया नहीं। विश्राम का स्थान तो प्रभु अन्दर है। विश्राम... विश्राम... विश्राम... विश्राम। अनुभव, यह विश्राम है। समझ में आया? आहाहा!

एक बार कहा था। (संवत्) १९७५ के वर्ष में। हमारा पालियाद में चौमासा था। हम तब तो उपवास करते थे। अष्टमी, पंचमी का चौविहार उपवास करते। चौविहार अर्थात् पानी नहीं... पानी नहीं। जंगल गया था एक बार। बारह बजे भोजन करके बाहर (गया)। उपवास किया था और दूसरे दिन बाहर निकला तो वहाँ दीमक निकली। दीमक नहीं होती? सूक्ष्म जीव। यह बहिन में लिखा है न? अग्नि को दीमक नहीं होती। यह दीमक

आँखों से बाहर दिखी थी। निकली और धूप (थी)। सड़सड़ तुरन्त मर गयी। ऐसी कोमल दीमक। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भगवान! यह राग के विकल्प वे सब दीमक के समान हैं। आहाहा! यह चैतन्य में नहीं, नाथ! तू आनन्द का नाथ प्रभु, इसमें यह दीमक कैसी? आहाहा! इसको तो नाश करने का इसका स्वभाव है। यह भी व्यवहार है। राग को नाश करने का स्वभाव कहना, यह भी व्यवहार है। यह तो वीतरागस्वरूप है, इसमें से कहाँ निकला कि यह राग का नाश करे? समझ में आया? ऐसी बात है। मूल बात तो यह है। यह कहा न?

शुद्ध चैतन्य का अनुभव करना, यह कार्यसिद्धि है। वहाँ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी कार्यसिद्धि वहाँ होती है। आहाहा! समझ में आया? बाकी सब बातें हैं। जगत में फला फूला सब दिखता है। आहाहा! घाणी... घाणी होती है न? ज्वार की घाणी ऐसी फूली हो। ऐसे यह सब फूले बाहर की घाणी जैसे दिखते हैं। अन्दर भगवान विराजता है, उसको फूला न! आहाहा! इस कमल को खिला। इसमें अनन्त आनन्द आदि है, इसकी दृष्टि करने से ये खिल जाते हैं। आहाहा!

यह यहाँ कहते है, '**समयसार चेतये**' भगवान सन्त मुनि ऐसा पुकार करते हैं, प्रभु! तू एक बार आत्मा का चेत न, नाथ! इसको ध्यान का विषय बना न। आहाहा! कभी तूने तेरा दीदार देखा नहीं, नाथ! राग और पुण्य और उसका फल और धूल का सब दीदार तूने देखा है। आहाहा! परन्तु अन्दर चैतन्य का दीदार, वस्तु का स्वरूप, आहाहा! उसका तूने कभी अनुभव नहीं किया। तो यह अनुभव कर, प्रभु! तेरी कार्यसिद्धि वहाँ है। समझ में आया? बाकी सब धूलधानी। इतना काम बाहर में किया न... रतनलालजी आये हैं। पैसेवाले बहुत है। तुमसे, इसके पास पैसा बहुत है। समझ में आया? इसमें क्या हुआ? पैसा हो तो क्या हुआ? पैसा तो जड़ है, धूल है। यहाँ तो विकल्प उठाते हैं, वह जड़ अचेतन है। उसमें चैतन्य भगवान का अंश आया नहीं। यह अचेतन है, इसलिए दुःख आकुलता है। मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ—ऐसा विकल्प उठाना, यह भी अचेतन, दुःखरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प अचेतन?

पूज्य गुरुदेवश्री : अचेतन, जड़, अजीव। पुद्गल का परिणाम कहा है। पहले परिणाम कहने के बाद पुद्गल कहा है। ७५-७६ गाथा। कर्ता-कर्म अधिकार। पहले पुद्गल का परिणाम कहा। बाद में पुद्गल है (-ऐसा कहा)। यह भगवान आत्मा नहीं, यह समयसार नहीं और '**चेतये**' समयसार का चेतना, उसमें विकल्प नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है, भाई! पहले ज्ञान में यह निर्धार तो करे। मुझे जहाँ जाना है, वह विकल्परहित चीज़ है। समझ में आया? ऐसा निर्धार करे तो अन्तर्मुख का प्रयोग करे, परन्तु निर्धारण का ठिकाना न हो तो यह प्रयोग कहाँ से करेगा? समझ में आया?

'**चेतये**' '**अपारम्**' '**अनादि-अनन्त है।**' आत्मा '**अपारम्**'। आहाहा! अनादि-अनन्त प्रभु विराजता है। आहाहा! जिसकी आदि नहीं, जिसका पार नहीं, अन्त नहीं। ऐसा आनन्दकन्द नाथ, अनन्त गुण का सागर भगवान अनादि-अनन्त विराजता है। आहाहा! **और कैसा है? 'एकम्' शुद्धस्वरूप है...** एक का अर्थ किया। एक अर्थात् शुद्ध। शुद्धस्वरूप। आहाहा! जिसमें पर्याय का भी समावेश नहीं, ऐसा शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा है। विकल्प का तो अवकाश है ही नहीं, परन्तु पर्याय भी अन्दर शुद्धस्वरूप में नहीं। यह बाहर-बाहर ऊपर-ऊपर, शुद्धस्वरूप के ऊपर पर्याय अनित्य है। शुद्धपर्याय भी अनित्य है। यह ऊपर-ऊपर रहती है, यह अन्दर प्रवेश नहीं करती। आहाहा! समझ में आया?

फिर से। यह पहले आ गया है, पहले कलश में आ गया है। पर्याय ऊपर-ऊपर रहती है, अन्दर नहीं प्रवेशती। ध्रुव में यह कैसे प्रवेश करे? शुद्ध निर्मल पर्याय हों! अनुभवपर्याय। यह ध्रुव के ऊपर तैरती है। अन्दर प्रवेश नहीं करती। पर्याय तो परिणमन है और ध्रुव तो कूटस्थ एकरूप चीज़ है। इसमें प्रवेश कहाँ से करे? आहाहा! पाटनीजी! ऐसी बातें हैं। आहा! एक बार तो सबका अहंकार उड़ जाये, ऐसा है। एकदम से। ऐसी हमारी गद्दी है और हम ऐसे व्यापार करनेवाले। अरे! भगवान! क्या करता है तू? विकल्प करे तो भी कर्ता होकर मिथ्यादृष्टि होता है... आहाहा! मिथ्या अर्थात् असत्यदृष्टि है।

मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसा विकल्प मेरा, वह भी मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! कर्ता-कर्म अधिकार है न? आयेगा। विकल्प, यह कर्म; विकल्प, यह कर्ता। यह श्लोक आयेगा। बाद में आयेगा। ९५। '**विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम्।**' है? ९५। ९५।

विकल्प, यह ही कर्ता और विकल्प, यह ही कर्म। आहाहा! यहाँ तो चैतन्य भगवान मैं हूँ, शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ — ऐसा विकल्प उठाना, यह विकल्प ही कर्ता और विकल्प ही कार्य है। आत्मा कर्ता-फर्ता नहीं। विकल्प कर्ता और विकल्प कर्म। आहाहा! है? ९५। आहाहा! **'न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति'** सविकल्पवाले को यह कर्ता-कर्मपना जाता नहीं। आहाहा! विशेष आयेगा (तब लेंगे)।

यहाँ तो अभी विकल्प अपना कर्ता और विकल्प कर्म है। पर्याय में विकल्प जो है, ये षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न हुआ है। मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, ऐसा विकल्प भी षट्कारक के परिणमन से विकल्प कर्ता, विकल्प कर्म, विकल्प अपादान, अपने विकल्प करके रखा और विकल्प के आधार से विकल्प। आहाहा!

मुमुक्षु : यह ज्ञाता का कार्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। जहर, वह अमृत का कारण होता है? यह तो जहर है। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आती है? लहसुन, राग करते-करते आनन्द की डकार आती है, आनन्द का अनुभव होता है? आहाहा! मार्ग बहुत (सूक्ष्म), बापू! प्रभु! तेरा पंथ, प्रभु का पंथ अर्थात् तेरा पंथ, यह कोई अलौकिक है। आहाहा! तेरी प्रभुता से भरा हुआ भगवान, उसका अनुभव, उसमें विकल्प, यह दुःखरूप है। आहाहा! उसका अनुभव आनन्दरूप है। उसका अनुभव, यह आनन्दरूप है। आहाहा! एक भाव भी यथार्थ समझे तो सब भाव ख्याल में आ जायें। परन्तु एक भाव भी यथार्थ समझता नहीं और बढ़े शास्त्र पढ़े। ग्यारह अंग, नौ पूर्व अनन्त बार पढ़े। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आप तो हमें प्रेक्टीकल प्रयोग कैसे करें, यह बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस प्रकार हो, यही तो कहते हैं। विकल्प को छोड़कर अन्दर अनुभव करना, यह करना। रतनलालजी! कैसे करना, यह कहते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : ऐसा पूछते हैं कि आँख बन्द करके या खोल कर...?

पूज्य गुरुदेवश्री : आँख बन्द करने का क्या आया, अन्धे को आँखें नहीं तो बन्द ही है। अन्धे को। इसमें क्या हुआ? अन्दर में पर्याय में विकल्प करना बन्द कर दे।

आहाहा! आहाहा! इसलिए बाद में लोगों को ऐसा लगता है कि यह अकेली निश्चय की बातें करते हैं। परन्तु व्यवहार है, वह तो राग है, दुःख है, आकुलता है। उससे आत्मा का अनुभव, सम्यग्दर्शन होता है? नहीं तो एकान्त है, ऐसा कहते हैं। अभी तो सब एकान्त कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भाई! प्रभु! एकान्त है, नाथ! एक स्वरूपी भगवान है, वहाँ जाना, इसका नाम एकान्त है। देखो! एक की व्याख्या है न? एक का अर्थ क्या किया? शुद्धस्वरूप। आहाहा! शुद्धस्वरूप त्रिकाल अनादि-अनन्त, यही एक है, यही शुद्धस्वरूप है। समझ में आया? आहाहा! अरे..! यह चीज़ सुनने नहीं मिलती। यह बेचारा क्या करे? कहाँ जाये?

नाथ-अनाथ। 'सर्वज्ञ का धर्म सुषर्ण जाणी...' श्रीमद् १६ वर्ष में कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र बहुत संस्कारी जीव हुए। आत्मज्ञान और अल्प काल में मुक्ति। 'सर्वज्ञ का धर्म सुषर्ण जानी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी' आहाहा! सर्वज्ञस्वभावी यह भगवान। यह धर्म के सर्वज्ञ का धर्म सब एक ही है। 'सर्वज्ञ का धर्म सुषर्ण जानी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी, अनाथ एकान्त सनाथ थाशे' अनाथ अनादि का प्राणी। आहाहा! 'अनाथ एकान्त सनाथ थाशे, ऐना बिना न बाह्य कोई झालशे।' इसके बिना कोई तेरा हाथ नहीं पकड़े, नाथ! समझ में आया? आहाहा!

श्वेताम्बर में एक अधिकार आता है 'अनाथीमुनि' का अधिकार आता है। 'अनाथीमुनि' का एक अध्ययन 'उत्तराध्ययन' में है। श्रेणिक राजा ऐसे निकलता है। श्रेणिक राजा बौद्धमति था हाथी और बड़ा राजपाट। राजा चंवर ढालते थे। हाथी ऊपर निकला। वहाँ वह मुनि ध्यान में बैठे थे। बबूल-बावल के नीचे। बबूल कहते हैं न? बावल के नीचे और सुन्दर शरीर। बड़े सेठिया के लड़के। दीक्षा ली है। पूरा सुन्दर शरीर। सोने का जैसे कलश होता है, ऐसा तो शरीर चमकता था। ऐसे बबूल के नीचे बैठे थे। श्रेणिक राजा निकले। नीचे उतरे। प्रभु! आप यहाँ कैसे बैठे हो? आप यहाँ नहीं शोभते। आप तो मेरे राज्य में आओ। तुम्हारा सुन्दर शरीर और ये बबूल। तुम हमारे राज में आओ तो मुनि कहते हैं, हे अनाथ श्रेणिक! किसको नाथ बनाने आया है? महाराज! तुमने मुझे पहिचाना नहीं। मैं राजा हूँ, अनाथ नहीं। बड़ा राज है, घर पर हजारों रानियाँ हैं। सैकड़ों राजा

चँवर ढालते हैं। हीरा के सिंहासन पर बैठता हूँ। अनाथ नहीं। नाथ!

(मुनिराज कहते हैं) राजन! तू अनाथ है। तुझे कोई शरण नहीं। तू मेरा नाथ होने आया है कि मेरे राज में आओ, नाथ होऊँ। तू अनाथ है। महाराजा। यह शास्त्र तो कण्ठस्थ है। छह-सात हजार श्लोक हैं। अनाथ हो, महाराजा! मुझे पहिचाना नहीं। परन्तु तूने कहा नहीं? अनाथ हो। महाराजा। ऐसा कहा था। देखता नहीं? तेरे शरीर का बनाव देखकर लगता है राजा है। अनाथ है, तुझे कोई शरण नहीं। नाथ कैसा शरण यह बताओ, प्रभु! अपने यशोधर मुनि में आता है। सर्प डाला था। इसमें अनाथी मुनि की बात आती है। सब कल्पित बनाया है न। बाद में उपदेश दिया और सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। अपने यशोधर में आता है। वहाँ सम्यग्दर्शन पाया। श्रेणिक राजा। हजारों रानियाँ और बड़ा राज था। राज घर रहा, इसके घर रह गया। आहाहा! मेरी ऋद्धि-समृद्धि का मैं राजा हूँ। यह पर का राजा मैं नहीं। सम्यग्दर्शन वहाँ प्राप्त किया। भगवान के समवसरण में गया। वहाँ तीर्थंकर गोत्र बाँधा। समझ में आया? पहले सातवें नरक की आयुष बँध गयी थी। मुनि के ऊपर सर्प डाला था न? जब समकित पाया तो नरक की चौरासी हजार वर्ष की स्थिति हो गयी। आहाहा! स्थिति तोड़ दी। नरकगति नहीं बदली। गति की स्थिति का रस कम कर दिया। सातवीं नरक की आयु चौरासी हजार वर्ष की रह गयी। तीर्थंकर गोत्र बाँधा। है नरक में। समकिती है, क्षायिक समकिती है, आनन्द में है। जितना राग है, इतना दुःख है। समझ में आया? आहाहा! वहाँ से निकलकर तीर्थंकर तीन लोक के नाथ, सौ इन्द्रों से पूजनीक तीर्थंकर नरक में निकल कर होंगे। यह सम्यग्दर्शन अनाथ का नाथ हाथ आ गया अन्दर से। आहाहा! श्रेणिक राजा अभी तो चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है। २५०० वर्ष निकल गये। अभी साढ़े इक्यासी हजार वर्ष बाकी है। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे। यह सब समकित का—अनुभव का प्रताप है।

शीलपाहुड़ में तो कहा है कि नरक में भी समकिती को शील है। ऐसा पाठ है। शीलपाहुड़। अष्टपाहुड़ है न? शीलपाहुड़ में ऐसा है कि नरक में भी समकिती को शील है। शील का अर्थ अपना अनुभव है और अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, यह इसके पास शील है। ऐसा पाठ है। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होगा। इस शील के प्रताप से। आहाहा!

कहाँ यहाँ बादशाह की भाँति बड़े बँगले में राजा विराजे और कहाँ यह अभी दुःखी है। वहाँ से निकलकर बड़ा तीर्थंकर (होगा)। इन्द्र जिनके तलुवा चाटते हैं। आहाहा! ये सब प्रताप आत्मा के अनुभव का है। समझ में आया? समकित का प्रताप है। इसमें राग आया तो तीर्थंकर गोत्र बँध गया। परन्तु इसको भी वे हेय मानते थे। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, एक है। शुद्धस्वरूप है। **कैसा करके शुद्धस्वरूप है? 'चित्स्वभावभर-भावितभावाभावभावपरमार्थतया एकम्'** आहाहा! **'चित्स्वभाव'** ज्ञानस्वरूप। भगवान तो ज्ञान स्वरूपी प्रभु चैतन्यसूर्य। ज्ञान का सूर्य है। ज्ञान के नूर का तेज का सूर्य है। ज्ञान का सूर्य है। ये प्रकाश के परमाणु ये तो जड़ सूर्य है। यह ज्ञानसूर्य प्रभु अन्दर है। इसमें तो हजार किरणें और उसमें तो अनन्त किरणें हैं अनन्त शक्तियाँ। आहाहा! ऐसा भगवान चैतन्य सूर्य अन्दर विराजता है। कहते हैं, **ज्ञानगुण उसका... 'भर'** अतिशय अर्थ ग्रहण व्यापार उसके द्वारा विशेषता। पदार्थ को जानने की शक्तिवाला ज्ञान है। पदार्थ को उत्पन्न करना या नाश करना, ऐसा नहीं परन्तु पदार्थ को जानने की उसकी शक्ति है। है? इसके द्वारा साधते हैं। क्या? भाव उत्पाद होता है, विनाश होता है। नयी पर्याय उत्पन्न होती है, पुरानी पर्याय का व्यय होता है और ध्रुव है। **ऐसे तीन भेद उनसे...** तीन भेद हैं।

परमार्थतया एक है... 'परमार्थतया' साधा है एक अस्तित्व जिसने... एक रूप चैतन्य का साधन किया। साधन करने से निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, पूर्व पर्याय का व्यय होता है, स्वरूप की दृष्टि है। आहाहा! कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई, पूर्व पर्याय का व्यय हुआ और यह पर्याय ने साधन क्या किया? कि ध्रुव का। आहाहा! समझ में आया? कठिन बातें, बापू! आहाहा! समस्त जन्म-मरण का अन्त लाना, यह कोई साधारण बात है? आहाहा!

सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का विषय अलौकिक बातें हैं, भाई! ये बातें छोड़कर बात करता है कि व्रत करो, उपवास करो, तपस्या करो, और धूल करो। आहाहा! भाई! इसमें तेरा जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। आहाहा! जन्म-मरण का अन्त तो यह। ध्रुव ऊपर अपनी दृष्टि होने से सम्यग्दर्शनादि का उत्पाद होता है और पूर्व पर्याय का व्यय होता है और ध्रुव है, वह ध्येय है। है तीनरूप, फिर भी दृष्टि में एकरूप है। उत्पाद-व्यय की दृष्टि

में ध्रुव एकरूप है। समझ में आया? यह तो कलश टीका है। फिर इसकी राजमलजी ने टीका की है। आहाहा! यह। आहाहा!

एक अस्तित्व जिसका। क्या करके? 'समस्तां बंधपद्धतिम् अपास्य' जितनी असंख्यात लोकप्रमाण भेदरूप है, ज्ञानावर्णादि कर्मबन्ध रचना... इसका तो नाश कर देती है। अनुभवशक्ति आठकर्म के बन्ध का नाश कर देती है। आहाहा! समझ में आया? जिसमें कर्म तो नहीं, राग नहीं, परन्तु उत्पाद-व्यय की पर्याय जिसमें—ध्रुव में नहीं। उस ध्रुव का ध्यान करने से जो उत्पाद-व्यय होते हैं, निर्मल उत्पाद-व्यय की बात है, वह आठ कर्म का नाश कर देती है। आहाहा! समझमें आया? नये को ऐसा लगता है, ये तो अकेली निश्चय की बातें करते हैं। परन्तु हमको करना क्या? यात्रा करना, भक्ति करना, पूजा करना, व्रत पालना, उपवास करना, यह तो इसमें कुछ आता नहीं।

मुमुक्षु : आ गया। इसको कर्म बँधते हैं, ये तो आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो आ गया न। आहाहा! ज्ञानी को होता है, परन्तु ये बन्ध के कारण हैं। धर्मी को भी वीतरागता जहाँ तक नहीं होती, वहाँ तक ये शुभभाव आते हैं, परन्तु बन्ध के कारण हैं। आहाहा!

कहते हैं, '**समस्तां बन्धपद्धतिम् अपास्य**' '**अपास्य**' अर्थात् नाश करता है। '**अपास्य**' अर्थात् ममत्व छोड़कर नाश करता है। मूल तो ज्ञानावरणी बन्ध का ममत्व छोड़कर। अर्थात् जो परिणाम आठ कर्म बाँधते हैं, उनकी ममता समकिती को नहीं होती। ये चीज़ मेरी नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं? अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर धर्मी को जो परिणाम अन्दर दूसरे होते हैं बन्ध के, परन्तु उनकी ममता नहीं होती। ये मेरे हैं, ऐसी मान्यता नहीं होती। शुभभाव आता है, परन्तु मेरा है—ऐसी मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? '**समस्तं बन्धपद्धतिम्**' **ममत्व छोड़कर...** देख? नाश किया, ऐसा नहीं लिया। '**अपास्य**' अर्थात् ममत्व छोड़कर, ऐसा अर्थ लिया है।

भावार्थ ऐसा है कि शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर जैसे नय विकल्प मिटते हैं... क्या कहते हैं? जिस शुद्धस्वरूप का अनुभव करने पर मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, ऐसे विकल्प दूट जाते हैं। तो इसका कर्मबन्ध भी छूट जाता है। ऐसा कहते हैं। विकल्प भाव

छूटते हैं तो द्रव्यकर्म के बन्ध भी छूट जाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह सूक्ष्म लगता है लोगों को। परन्तु करना क्या ? सेठ कहते हैं, क्या करना ? करना ये—अन्दर में जाना। आहाहा ! जहाँ भगवान हैं, वहाँ जाना। पामरता है, वहाँ से खिसक जाना। विकल्प है, वह पामर भिखारी है। दुःख, दुःख की दशा से खिसकना अर्थात् अपने स्वरूप में आना, यह कार्यसिद्धि है। आया न ? पहले आया ये तो। पहली लाईन में आया-कार्यसिद्धि।

जैसे नयविकल्प मिटे हैं, वैसे समस्त कर्म के उदय से... होनेवाले। देखा ? जितने भाव हैं। विकल्प तो मिटते हैं परन्तु कर्म के निमित्त से जितने भाव हैं, **वे भी अवश्य मिटते हैं, ऐसा स्वभाव है।** राग होता है परन्तु मेरा नहीं, ये तो नाश हो जाता है। ऐसे आत्मा का—समयसार का '**चेतये**' अनुभव करने से ये कार्यसिद्धि हुई। विकल्प मिटते हैं तो कर्मबन्ध भी मिट जाता है। विशेष कहते हैं.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

कलश-९३

(शार्दूलविक्रीडित)

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयम्।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान्
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किञ्चनैकोऽप्ययम्।।48-93।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'यः समयस्य सारः भाति' [यः] जो [समयस्य सारः] शुद्धस्वरूप आत्मा [भाति] अपने शुद्ध स्वरूपरूप परिणमता है। जैसा परिणमता है वैसा कहते हैं-'नयानां पक्षैः विना अचलं अविकल्पभावं आक्रामन्' [नयानां] द्रव्यार्थिक -पर्यायार्थिक, ऐसे जो अनेक विकल्प, उनके [पक्षैः विना] पक्षपात बिना किये [अचलं] त्रिकाल ही एकरूप है, ऐसी [अविकल्पमात्रं] निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य वस्तु, उसरूप [आक्रामन्] जिस प्रकार शुद्धस्वरूप है, उस प्रकार परिणमता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है-जितना नय है, उतना श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान परोक्ष है, अनुभव प्रत्यक्ष है; इसलिए श्रुतज्ञान बिना जो ज्ञान है, वह प्रत्यक्ष अनुभवता है। इस कारण प्रत्यक्षरूप से अनुभवता हुआ जो कोई शुद्धस्वरूप आत्मा 'स विज्ञानैकरसः' वही ज्ञानपुञ्ज वस्तु है, ऐसा कहा जाता है। 'स भगवान्' वही परब्रह्म परमेश्वर ऐसा कहा जाता है। 'एषः पुण्यः' वही पवित्र पदार्थ ऐसा भी कहा जाता है। 'एषः पुराणाः' वही अनादिनिधन वस्तु ऐसा भी कहा जाता है। 'एषः पुमान्' वही अनन्त गुण विराजमान पुरुष ऐसा भी कहा जाता है। 'अयं ज्ञानं दर्शनं अपि' वही सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान ऐसा भी कहा जाता है। 'अथवा किं' अथवा बहुत क्या कहें 'अथं एकः यत् किञ्चन अपि' [अयं एकः] यह जो है शुद्ध चैतन्य वस्तु की प्राप्ति [यत् किञ्चन अपि] उसे जो कुछ कहा जाए, वही है; जैसी भी कही जाए, वैसी ही है। भावार्थ इस प्रकार है-शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तुप्रकाश निर्विकल्प एकरूप है, उसके नाम की महिमा की जाए सो अनन्त नाम कहे जाएँ तो उतने ही घटित हो जाएँ, वस्तु तो एकरूप है। कैसा है वह शुद्ध स्वरूप आत्मा? 'निभृतैः स्वयं आस्वाद्यमानः' निश्चल ज्ञानी पुरुषों के द्वारा आप स्वयं अनुभवशील है।।48-93।।

श्रावण कृष्ण १२, गुरुवार, दिनांक ०९-०९-१९७७
कलश-९३, प्रवचन-९०

कलश टीका, कर्ता-कर्म अधिकार। ९३।

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयम्।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान्
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किञ्चनैकोऽप्ययम्।।48-93।।

क्या कहते हैं ? '**यः समयस्य सारः भाति**' समयसार अर्थात् शुद्धस्वरूप, त्रिकाली शुद्धस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, द्रव्यस्वरूप। उसको यहाँ शुद्धस्वरूप कहने में आता है। समयसार की व्याख्या। एक समय की विकारी पर्याय से भी भिन्न और नयविकल्प से भी भिन्न। आहाहा! इस चीज़ को यहाँ शुद्धस्वरूप अथवा समयसार कहते हैं। यह समयसार **अपने शुद्धस्वरूप से परिणमा है। 'भाति' 'भाति'** की व्याख्या यह। अपने शुद्धस्वरूप से शोभता है। है ?

भगवान शुद्धस्वरूप अपनी पर्याय में शुद्धस्वरूप से शोभित है अर्थात् शुद्धस्वरूप से परिणमा है, ऐसी भाषा ली है। '**भाति**' अर्थात् भगवान द्रव्य शुद्ध जो त्रिकाली है, वह वर्तमान में शुद्धस्वरूप परिणमा है, यह शुद्ध की '**भाति**' अर्थात् शोभा है। आहाहा! नय के विकल्प में रहना, यह इसकी शोभा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया ? आहाहा! यह **अपने शुद्धस्वरूप से परिणमा है। 'भाति'** की व्याख्या की। भगवान त्रिकाली आनन्दस्वरूप प्रभु, वह आनन्दस्वरूप परिणमा है, यह इसकी शोभा अर्थात् '**भाति**' प्रसिद्ध हुआ। आहाहा! शुद्धस्वरूप नय के विकल्प से रहित। आहाहा! पंच महाव्रत, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह तो कहाँ दूर रहा। यहाँ तो मैं शुद्ध अखण्ड अभेद (हूँ), ऐसा श्रुतज्ञान के नय के भेदरूप विकल्प, आहाहा! इससे यह आत्मा की शोभा नहीं पाता। समझ में आया ? इसमें तो आत्मा का कलंक है। आहाहा! मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड एकरूप हूँ, ऐसा विकल्प, वह भी आत्मा को कलंक है। आत्मा में अशोभा है। धन्नालालजी! आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

इससे ऐसा कहा कि **शुद्धस्वरूप परिणमता है।** वस्तु जैसी शुद्ध है, ऐसे नय के विकल्प से हटकर—दूर होकर अपने शुद्धस्वरूपरूप परिणमे, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! ये परिणमता है, ये मोक्ष का मार्ग है। शुद्ध तो त्रिकाली है। आहाहा! भगवान आनन्द का पिण्ड प्रभु, आनन्द दल, चिद्घन, चिद्रूपो अहं, वह तो त्रिकाली है। परन्तु इसको प्रतीति में, अनुभव में लेना, यह इसका परिणमन है। आहाहा! क्या? सेठ! देरी से आते हो, इसलिए नजर गई। कहा, थोड़े देरी से आते हैं। हमारा ये सेठ तो जल्दी आते हैं। फिर ये पीछे से आता है। दिन में भी पीछे से आता है और यहाँ भी पीछे से आता है। इसलिए नजर गयी। ऐसा है या नहीं? आया या नहीं? आहाहा! गजब बात है, नाथ!

तेरी चीज़ की प्राप्ति के लिये नाथ! विकल्प का भी सहारा नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का सहारा नहीं, देव-गुरु-शास्त्र का सहारा नहीं, परन्तु यह श्रुतज्ञान के भेदरूप जो विकल्प है, मैं ऐसा शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, ऐसे पक्षपात में रहना, वह भी तेरी शोभा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बन्धमार्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्धमार्ग में रहना, यह शोभा नहीं, नाथ! आहाहा! ऐसी बात अभी लोगों को कठिन लगती है। क्या हो?

मुमुक्षु : धर्म में भी पक्षपात चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टे में चलता है। सेठ! उल्टे में चलता है न। जो सत्य है, वह तो सत्य ही है। आहाहा! धर्म के नाम पर पक्षपात चलता है। समझ में आया? आहाहा!

भाई! तू प्रभु कौन है? तेरी वस्तु की प्राप्ति करने के लिये प्रभु! तुझे विकल्प का, नय का, राग का, विकल्प का भी सहारा लेना नहीं पड़ता। आहाहा! यह तो त्रिकाली आनन्दकन्द है, प्रभु! कहा न? **जिस प्रकार परिणमता है, वैसा कहते हैं... 'नयानां पक्षैः बिना अचलं अविकल्पभावम् आक्रामन्'** आहाहा! गजब काम करते हैं न! आचार्यों दिगम्बर सन्तों ने रामबाण मारा है। राम का बाण फिरता नहीं है, उसी प्रकार इसका वाच्य भाव नहीं फिरता। आहाहा! थोड़े शब्दों में तो गम्भीरता का पार नहीं।

कहते हैं कि किस प्रकार परिणमा? वर्तमान दशा में शुद्धरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-

चारित्ररूप परिणमा, अवस्था हुई, यह इसकी शोभा कैसे परिणमी ? आहाहा ! '**नयानां पक्षैः बिना अचलं अविकल्पभावम् आक्रामन्**' **द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ऐसे जो अनेक विकल्प...** देखो ! पर्यायार्थिक में मैं अनेक हूँ और भेदरूप हूँ और अशुद्ध हूँ, यह तो पर्यायार्थिकनय का विषय (हुआ) । वह तो छोड़ दिया । परन्तु द्रव्यार्थिकनय का द्रव्यस्वरूप भगवान, इसके जो विकल्प हैं, इससे भी पार । आहाहा ! **द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ऐसे जो अनेक विकल्प...** राग, **उनका पक्षपात किये बिना...** इनके पक्षपात में रुके बिना। आहाहा ! अन्तर में भगवान आनन्दस्वरूप है, यह नय के पक्ष को उलांघकर अन्दर में प्रवेश करते हैं । वहाँ नयपक्ष का सहारा नहीं । आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : जिसको उलंघना है, इसका सहारा कैसा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिससे छूटना है, भिन्न करना है, इसका सहारा ? ये तो बहुत बार कहा है, ये व्यवहार-रत्नत्रय का साधक है और निश्चय साध्य है, प्रभु ! तो जिसको भिन्न करना है, वह साधक किस प्रकार होगा ? पण्डितजी ! आहाहा ! भाई ! यह राग व्यवहार रत्नत्रय है, इसको साधक कहा है, वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कहा है । बाकी जिसको भिन्न करना है, वह साधक कैसे हो ? जिनेश्वरदासजी ! आहाहा ! समझ में आया ?

'**नयानां पक्षैः बिना अचलं अविकल्पभावम् आक्रामन्**' अस्ति-नास्ति दोनों कहा । क्या कहा ? नय का **पक्षपात किये बिना...** यह नास्ति से बात हुई । नय के पक्ष से रहित । अब '**अचलं**' **त्रिकाली एकरूप है, निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य वस्तु उसरूप...** आहाहा ! समझ में आया ? यह तो शान्ति से समझने की वस्तु है । ये कोई विद्वत्ता की वस्तु नहीं । समझ में आया ? समयसार (१५६ गाथा) में कहा न ? 'विद्वतजनों भूतार्थ तजि, व्यवहार में वर्तन करें' ये विद्वान नहीं । आहाहा ! 'विद्वतजनों भूतार्थ.. ' भूतार्थ यह । कौन ? त्रिकाली एकरूप है, ऐसी निर्विकल्प शुद्धचैतन्य वस्तु । यह भूतार्थ । समझ में आया ? यह सत्यार्थ प्रभु, सत्य साहिबो, त्रिकाली सत्य साहिब । कबीर में साहिब बहुत कहते हैं । यह साहेब । समझ में आया ? आहाहा !

निर्विकल्प... है ? त्रिकाली एकरूप है । भेद नहीं, **ऐसी निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यवस्तु उस रूप...** '**आक्रमान्**' आक्रमन परिणमता हुआ । **जिस रीति से शुद्धस्वरूप है, उस**

प्रकार से परिणमता हुआ। 'आक्रमान्' का अर्थ परिणमता हुआ। परन्तु जैसा शुद्ध त्रिकाली है, ऐसा ही शुद्धस्वरूप परिणमित हुआ। समझ में आया? आहाहा! आँगन में भगवान पधारे। पर्याय में भगवान पधारे। आहाहा! आहाहा! अपने परिणमन में प्रभु पधारे। 'उपयोग भूमि को पावन करने पधारो...' एक भाईचन्दजी हो गये हैं, इन्होंने (कहा है)। एक भाईचन्द्रजी स्थानकवासी थे। बाद में दिगम्बर हो गये थे, सम्प्रदाय छोड़ दिया था। लींबडी सम्प्रदाय में (थे)। इसने ये बनाया था। 'उपयोग भूमि पावन करने पधारजो' मेरी उपयोग भूमि विकल्प बिना की, वहाँ प्रभु! पधारजो, आवजो, आत्मा, हो! आहाहा! समझ में आया? बात! बापू! धर्म बहुत सूक्ष्म है और इसका फल भी अनन्त आनन्द और अनन्त दुःख का अन्त (है)। जिसका परिणमन शुद्धस्वरूप जैसा है, ऐसा वीतरागी शुद्धपरिणमन होना, इसका फल अनन्त आनन्द और अनन्त दुःख का अन्त है। आहाहा! नास्ति से अनन्त दुःख का अन्त और अस्ति से अनन्त आनन्द की प्राप्ति। आहाहा! उसका उपाय तो अलौकिक होवे न, भाई! समझ में आया?

शान्तिनाथ भगवान जब दीक्षित होते हैं। पुराण में आता है, तब छियानवें हजार स्त्रियाँ पीछे और ये चक्रवर्ती, कामदेव, तीर्थंकर तीन तो पदवी। शान्तिनाथ चक्रवर्ती थे, तीर्थंकर थे और कामदेव थे। इनके जैसा सुन्दर रूप (किसी का नहीं होता)। छियानवें हजार स्त्रियों को पता चला कि दीक्षित होते हैं। पीछे आकर चोटियाँ खींचती हैं। भगवान कहते हैं, हे स्त्रियों! मैं तुम्हारे पास रहा, यह तुम्हारे कारण नहीं। मेरी राग की आसक्ति थी, इससे उस कारण रहा था। माता! अब मेरा राग मर गया है। यह कहा था न?

पिंगला का एक बार नहीं कहा? भर्तृहरि जब दीक्षित होता है। भर्तृहरि राजा, ये तो अन्यमति है। वह दीक्षा लेता है। जब रानी पिंगला ऐसी निकली। हमने तो नाटक देखा है। पिंगला रानी एक वेश्या के पास कोई अमरफल लाया था। होगा कोई ऊँचा। उसने राजा को दिया। राजा ने अपनी रानी पिंगला को दिया। बहुत प्रेमी था न। वह रानी ने अश्वपाल, जो घोड़ों की सेवा करनेवाला था, उसको दिया। अवश्पाल ने वेश्या को दिया। वेश्या ने भर्तृहरि को दिया। अरे! यह क्या हुआ? मेरे पास था। मैंने रानी को दिया था। यह कहाँ से आया? पता लगा कि अश्वपाल उसका पति है। अश्वपाल था व्यभिचारी। आहाहा!

'देख्या नहिं कुछ सार, जगत में देखा नहीं कुछ सार। रानी हमारी प्यारी पिंगला अश्वपाल कुयार।' नाटक में आता है। आहाहा! मुझे तो दूसरा कहना है।

जब दीक्षित होता है, तब इसका गुरु कहता है, जाओ! रानी के पास से आहार लाओ। महाराज! रानी के पास जाओ और आहार (माँगकर) लाओ। गुरु ने (कहा)। इस समय भर्तृहरि का गुरु भी कैसा होगा? राजा! ९२ लाख मालवा का अधिपति। विक्रम संवत् निकला उसका भाई। यह विक्रम संवत् (चलता है)। इसका गुरु भी बड़ा होगा न। इस जाति के पुण्य में। धर्म तो क्या समझे? इसने भर्तृहरि को आदेश दिया। लाओ आहार, जाओ रानी के पास। प्रभु! रानी तो शोक में—दुःख में है। जाओ, वहाँ जा। 'भिक्षा रे दे न मैया पिंगला' भर्तृहरि जाता है। हे माता! रानी कहती है, मुझे माता मत कहो, प्रभु! मुझे यह शोक है। मेरी बात बाहर प्रसिद्ध हो गयी। आप दीक्षित हो रहे हो। 'भिक्षा दे न मैया पिंगला।' हे माता! मुझे भिक्षा दे। आहाहा! ९२ लाख मालवा का अधिपति राजा पत्नी को माता कहता है। ये तो माता शब्द आया न। आहाहा! तब रानी कहती है प्रभु! मैं तो शोक में हूँ। मैंने कुछ बनाया नहीं है। 'खीर रे बनावुं क्षण एक में जमते जाओ जोगीराजजी... प्रभु! मेरे पास आज रोटी नहीं है। क्षण में खीर बनाती हूँ, खीर। दूध... दूध... होता है न? दूध और चावल की। 'क्षण एक मां बनाऊं खीर बनाऊं क्षण एक में'। खीर बनाऊँ क्षण एक में। 'जमता जाओ जोगी राजजी...' माता! मुझे गुरु की आज्ञा ठहरने की नहीं है। मैं तो चला जाता हूँ। भोजन के बगैर। मेरी जमात चली जाती है और मुझे उनके साथ जाना है। आहाहा! यह वैराग्य कैसा! परन्तु सम्यग्दर्शन बिना का, हों! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ शान्तिनाथ जब दीक्षा लेते हैं, ९६ हजार रानियाँ और एक रानी तो ऐसी जिसकी हजार देव सेवा करें। आहाहा! प्रभु! तुम जाते हो तो हमें महा दुःख होता है। देखो, स्त्रियों! हम तुम्हारे कारण नहीं रहे थे, मेरे राग की आसक्ति थी, राग का स्वरूप मेरा नहीं, यह तो मैं जानता था, राग का स्वामी नहीं, परन्तु राग आता था, उस कारण मैं तुम्हारे पास रुका था। माता! वह राग मेरा मर गया है। अब राग को जिन्दा करनेवाली स्त्रियाँ तो है नहीं। समझ में आया?

यहाँ ऐसा विकल्प का राग अन्दर अनुभव में जाने पर मर जाता है। बादशाह का—

भगवान का मिलन जब होता है... आहाहा! समझ में आया? भगवान आनन्दस्वरूप... यह कहते हैं, देखो! क्या कहा? '**नयानां पक्षैः बिना**' पक्ष किये बिना, ऐसा कहा न? आहाहा! मैं शुद्ध और अभेद हूँ, ऐसा विकल्प भी वहाँ कलंक और विघ्न करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं, मैं कैसी चीज़ में जाता हूँ? वहाँ से—पक्ष में से तो मैं छूटता हूँ। '**अचलं**' त्रिकाली एकरूप। अचल की व्याख्या की। चलित नहीं। त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु चल है, अन्दर विराजमान है, इसके पास मैं जाता हूँ। आहाहा! मांगीलालजी! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा!

नय पक्ष को छोड़कर भी... भाई! आहाहा! और यहाँ तो अभी तकरार (करते हैं)। समकित पायें और अनुभव होता है, ये व्रत, तप, भक्ति और पूजा करने से होता है। अरे! प्रभु! यह वस्तु की स्थिति नहीं। नाथ! तुझे तेरी खबर नहीं। आहाहा! तू तो प्रभु! अन्दर अचल है न! कभी चलता नहीं, ऐसी त्रिकाली ध्रुव चीज़ है। आहाहा! एक आया? अचल।

दूसरा '**अविकल्पभावम्**' यह तो निर्विकल्प भाव स्वरूप है भगवान। आहाहा! है? यह तो **निर्विकल्प शुद्धचैतन्य वस्तु...** है। आहाहा! '**आक्रामन्**' आहाहा! अचल, निर्विकल्प चीज़ को '**आक्रामन्**' परिणमता हुआ। अचल, निर्विकल्परूप परिणमता हुआ। '**आक्रामन्**' का अर्थ परिणमता हुआ है। परन्तु ये पीछे खुलासा किया, **जैसा शुद्धस्वरूप है, वैसा परिणमता हुआ।** स्पष्ट किया। मूल तो '**आक्रामन्**' (अर्थात्) परिणमता हुआ। परन्तु कैसा परिणमता हुआ? जैसी शुद्ध चीज़ है, ऐसा परिणमता हुआ। आहाहा! सन्तों ने जंगल में रहकर... आहाहा! सिद्धों के साथ बातें की हैं। 'सिद्ध समान सदा पद मेरा' यह अचल में ये। अचल एक अविकल्पम् सिद्ध समान सदा मेरा त्रिकाली स्वरूप है। शक्ति से... हों! पर्याय से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परिणमता हुआ अर्थात् अन्दर झुकता हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : झुकता हुआ। परिणमता हुआ अर्थात् जैसा शुद्धस्वरूप है, उस प्रकार वर्तमान में परिणमाता हुआ।

मुमुक्षु : दीपचन्दजी ने लिखा है... थको।

उत्तर : हाँ, ये तो भाषा भिन्न-भिन्न। परिणमता हुआ, शुद्धस्वरूप को प्रगट करता हुआ, आनन्द का स्वाद लेता कहो, ये अनेक प्रकार भाषा है।

मुमुक्षु : भगवान को पर्याय में बुलाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पर्याय में भगवान आये। जो पर्याय में राग आता था, इसके स्थापने भगवान पर्याय में आया। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध उपयोगरूपी पर्याय में शुद्ध आत्मा की स्थापना हुई। आहाहा! यह दूसरी गाथा में आता है न? समयसार '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' जीव दर्शन, ज्ञान, चारित्र में आता है, स्थिर होता है। ज्ञान, दर्शन जीव में स्थिर होता है, ऐसा नहीं लेकर, ऐसा लिया है। समयसार दूसरी गाथा। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' भगवान आत्मा अपने निर्मल दर्शन, ज्ञान, चारित्र में आता है, स्थिर होता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह वीतरागमार्ग है, प्रभु! बहुत अलौकिक मार्ग है यह। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि '**नयानां पक्षैः विना**' नय के पक्ष बिना। अचल निर्विकल्प को, जैसी निर्विकल्प और अचल वस्तु शुद्ध है, इस प्रकार परिणमता हुआ। '**आक्रामन्**' करता हुआ। आहाहा! भाषा तो सादी है। वस्तु तो जैसी है, तैसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : अद्भुत बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात है, भाई! आहाहा! सम्यग्दर्शन प्राप्त करता हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? '**आक्रामन्**' करता। अचल निर्विकल्प भगवान आत्मा को सम्यग्दर्शन में प्राप्त करता हुआ। समझ में आया?

भावार्थ - ऐसा है कि जितने नय हैं... जरा ख्याल रखना। जरा भिन्न जाति आती है। **जितने नय हैं, उतने श्रुतज्ञानरूप हैं...** क्या कहते हैं? यहाँ परोक्ष सिद्ध करना है न? श्रुतज्ञान परोक्ष सिद्ध करना है और अनुभव प्रत्यक्ष सिद्ध करना है। नहीं तो भावश्रुतज्ञान जो अन्दर है, वह तो प्रत्यक्ष ही है। परन्तु यहाँ श्रुतज्ञान नयवाला लेना है। श्रुतज्ञान से आत्मा परोक्ष है और यहाँ तो अनुभव में प्रत्यक्ष लेना है। तो श्रुतज्ञान को नय के विकल्प की वहाँ कोई अपेक्षा है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव मतिज्ञान में होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मति-श्रुत दोनों में (होता है)। परन्तु ये श्रुत क्या? प्रत्यक्ष। ये विकल्पवाला श्रुत जो परोक्ष है, यह नहीं। दो-तीन जगह लिया है, यहाँ लिया है। दूसरे में आया है, एक १९ कलश में है। तीसरी जगह है। गुजराती (पुस्तक) में लिखा है। किसमें है ये? ९३। दो जगह यह श्रुत की बात है। श्लोक १९ और १२४। दो जगह यह बात है। १९ और १२४। देखो! १९ भावार्थ की पाँचवीं लाईन है। १९ श्लोक की पाँचवीं लाईन-पंक्ति।

भावार्थ ऐसा है कि श्रुतज्ञान से आत्मस्वरूप विचारने पर बहुत विकल्प उत्पन्न होते हैं... ऐसा लिया है। **श्रुतज्ञान आत्मस्वरूप विचारने पर बहुत विकल्प उत्पन्न होते हैं, एक पक्ष से विचारने पर आत्मा अनेकरूप है।** दूसरे पक्ष से विचारने पर आत्मा अभेदरूप है... ये श्रुतज्ञान ऐसा लिया है। पक्षवाला। भावश्रुतज्ञान अन्दर वेदनवाला नहीं। १२४ में है। १२४। है उसमें?

भावश्रुतज्ञान से प्रत्यक्षरूप अवलम्बन है। पहले ये लेना। **भावश्रुतज्ञान से प्रत्यक्षरूप अवलम्बन है।** पहले ये लेना। नयविकल्पवाला श्रुत है, वह परोक्ष है, ऐसा लेना है। परन्तु अन्दर भावश्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष है। यहाँ प्रत्यक्ष में परोक्ष श्रुतज्ञान का अभाव बताना है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव में प्रत्यक्ष, नयवाला परोक्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ये। नयवाला परोक्ष।

भावार्थ ऐसा है कि जितना नय है... आहाहा! **उतना श्रुतज्ञानस्वरूप है...** भाषा ऐसी ली है, देखो! नहीं तो नय है, वह श्रुतज्ञान का भेद है... श्रुतज्ञान प्रमाण है, वह अवयवी है और नय अवयव है। समझ में आया? और नय अवयव है। परन्तु यहाँ विकल्पवाली नय लेना है। नहीं तो निश्चयनय निर्विकल्प भी है और सविकल्प भी है। प्रमाण भी विकल्पसहित है और निर्विकल्प है। दो प्रकार हैं। प्रमाण-नय दो प्रकार के हैं। नयचक्र में है। समझ में आया? नयचक्र में लिया है। यहाँ विकल्पवाला कहकर नय के विकल्प छुड़ाना है। क्योंकि श्रुत में विकल्प में परोक्ष रहते हैं और वस्तु अनुभव में प्रत्यक्ष है। वहाँ परोक्ष का अभाव हो जाता है। सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

भगवान के दरबार में जाना, इसके लिये कितनी तैयारी चाहिए। आहाहा! यहाँ परमात्मा अन्दर साक्षात् प्रभु विराजते हैं। अनन्त चैतन्य रत्न से भरा भगवान का नय के विकल्प से पता नहीं लगता। उसमें नहीं जा सकते। आहाहा! **अनुभव प्रत्यक्ष है...** आया? **जितने नय हैं, उतने श्रुतज्ञानरूप हैं; श्रुतज्ञान परोक्ष है...** इस अपेक्षा से हो, हों! पहले भावश्रुत है, यह अन्दर में है, यह १२४ में ले लिया। **अनुभव प्रत्यक्ष है; इससे श्रुतज्ञान बिना जो ज्ञान है...** श्रुतज्ञान बिना का अर्थ—नयविकल्पवाला परोक्ष श्रुतज्ञान बिना का ज्ञान है... आहाहा!

मुमुक्षु : श्रुतज्ञान बिना का ज्ञान अर्थात्...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष बताना है।

जो ज्ञान है, वह प्रत्यक्ष अनुभवता है। देखा? श्रुतज्ञान बिना जो ज्ञान है, ये श्रुतज्ञान परोक्ष नयवाला लिया। उसको छोड़कर प्रत्यक्ष अनुभवता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के काल में भावश्रुत जो प्रत्यक्ष होता है, उससे अनुभव होता है। ये विकल्पवाला श्रुत है, ये परोक्ष है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो शास्त्र का बहुत ज्ञान हो और विकल्पवाला हो कि ऐसा है और वैसा है, उसके द्वारा अनुभव नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। प्रभु!

तेरी प्रभुता की क्या महिमा कहें? आहाहा! तेरी प्रभुता एक शक्ति में प्रभुता है। तो इस शक्ति ने सभी शक्तियों में प्रभुता दी है। रूप... रूप। समझ में आया? तेरी एक शक्ति में प्रभुता है। प्रभु! तो सभी शक्तियों में प्रभुता का रूप आया है। आहाहा! ऐसी अनन्त शक्ति प्रभुता से भरी हैं, भगवान! समझ में आया? लोगों को ऐसा कड़क लगता है कि दया, दान, व्रत को धर्म नहीं कहते। नरक, निगोद में जायेंगे... अरे... प्रभु!

मुमुक्षु : जो जायेगा, उसे पता चलेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! भाई! इसको ये बैठा है दूसरा। ये जानता है कि शुभभाव नहीं रहे। इससे तो मोक्षमार्ग है। नहीं करे तो पाप करेगा। इसलिए शुभभाव करना।

मुमुक्षु : सुनने का भाव तो नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव नहीं, बात सच। भाई! ये सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा! तेरी चीज़ प्राप्त करने में व्रत, तप, भक्ति के भाव तो सहारा नहीं, परन्तु मैं शुद्ध अभेद मैं अखण्डानन्द चैतन्य रत्न हूँ, ऐसा विकल्प का पक्ष भी वहाँ सहारा नहीं। इसमें तेरे आनन्द का भोजन नहीं मिलेगा। विकल्प के पक्ष में दुःख का भोजन मिलता है। और श्रुतज्ञान परोक्ष विकल्प के पक्ष को छोड़कर अनुभव प्रत्यक्ष होता है, तब आनन्द का भोजन है। भोक्ता कहो, भोजन कहो। अज्ञान में राग का भोक्ता होता है। आहाहा! अपना परोक्षपना छोड़कर... आहाहा! सीधा भगवान से भेंटता है, अनुभव में सीधा परमात्मा को प्रत्यक्ष करता है।

इससे प्रत्यक्षरूप अनुभवता हुआ जो कोई शुद्धस्वरूप आत्मा... 'सः विज्ञानैकरसः' आहाहा! जिसके अनुभव में तो विज्ञान एक रस है। है? क्या? ९३ श्लोक है न? ९३। अपने चलता है वो। दूसरा तो आधार बताया था। कर्ता-कर्म का ९३। समझ में आया? क्या कहा? देखे! **प्रत्यक्षरूप अनुभवता हुआ जो कोई शुद्धस्वरूप आत्मा... 'सः विज्ञानैकरसः'** तब है कैसा? विकल्प के परोक्षपने से भिन्न है तो है कैसा? जिसमें विज्ञान एक रस है। विज्ञान एक आनन्द और विज्ञान एक सुख और विज्ञान एक अनाकुल आनन्द का कन्द है। इसकी पर्याय में अनुभव आनन्द का आता है — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात इतनी कठिन पड़ती है न? व्यवहार से नहीं होता, ऐसा लगे तो लोग विचारे... अभी तो मोक्ष नहीं, इसलिए व्यवहार करो, इससे पुण्य बँधेगा।

मुमुक्षु : लाखों कोस दूर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत दूर है, बहुत दूर है। आहाहा! भाई! तेरे समीप में जाने के लिये नय पक्ष का भी जहाँ सहारा नहीं, तहाँ व्रत और तप और भक्ति के स्थूल शुभभाव ये तो, ये तो सूक्ष्म जरा, हैं तो ये भी स्थूल, उस स्थूल की अपेक्षा यह जरा अन्दर में अभेद, विज्ञान आनन्दकन्द हूँ, ऐसे विकल्प को भी स्थूल शुभोपयोग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कुछ नहीं, ये तो आता है। सूर्य की गर्मी लगे तो सिर पर (आता है)। आहाहा! ऐसे भगवान की आनन्द की किरणें अन्दर में फटें, कहते हैं। तब उसे मुख ऊपर आवे। मुख (अर्थात्) पर्याय में (आये)। समझ में आया? बारीक बात तो है, प्रभु!

चलती बात से बहुत अन्तर है अर्थात् निश्चयाभास जैसा लगता है। ज्ञानी को ऐसा होने पर भी बीच में व्यवहार आता है। जहाँ तक (पूर्ण) वीतराग न हो, वहाँ तक अनुभव होने पर भी दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, यात्रा का भाव आता है। परन्तु हेयबुद्धि से आता है। आहाहा! हेय है तो करते क्यों हो? अरे! प्रभु! आये बिना रहे नहीं। जहाँ तक वीतरागदशा पूरी न हो, वहाँ तक बीच में व्यवहार आता है, परन्तु ममता नहीं करना। समझ में आया? यह व्यवहार मुझे लाभदायक है, ऐसी दृष्टि नहीं करना। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

'सः विज्ञानैकरसः' नय के विकल्प का पक्षपात छूटने पर क्या होता है? कहते हैं। जिसकी पर्याय में मात्र विज्ञानरस आनन्द का ही स्वाद आता है। आहाहा! समझ में आया? विज्ञान एक वापस, एकरस, भेद नहीं। आहाहा! ज्ञान की पर्याय भी पाँच भेदरूप है, यह नहीं। यहाँ तो एकरूप विज्ञान है, इसका रस पर्याय में है, ऐसा कहते हैं। हुकमचन्दजी! ऐसी बात है। मेल ना खाये अर्थात् पीछे क्या होगा? आहाहा! एक बार आठ दिन, पन्द्रह दिन मध्यस्थ होकर सुने तो ख्याल में आवे कि भाई! यह क्या चीज़ है? ये कोई अध्धर से उठी हुई बात नहीं। आहाहा!

कहते हैं, सम्यग्दर्शन होने के समय नय का पक्ष छूट जाता है और विज्ञान एकरस अनुभव में आता है। आहाहा! अभी तो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? ऐसी बात है। **वही ज्ञानपुंज वस्तु है, ऐसा कहलाता है... 'विज्ञानैकरसः'** का अर्थ किया। **वही ज्ञानपुंज...** अकेला ज्ञान का पुंज है, ढगला है। आहाहा! भर है, भर। भर शब्द आया था न अपने। बाहर में लोग नहीं कहते, गाड़ा भरे तो भर भरे कहलाये। घास की गाड़ी भरते हैं न? भर भर कहलाता है, भर। बड़ा ठेठ तक। पूरी गाड़ी ऊँची। ऐसे ये भरते हैं। है? **वही तेजपुंज वस्तु है ऐसा कहलाता है...**

'सः भगवान्' इसको भगवान कहते हैं। आहाहा! अनुभव में जब भगवान आता है तो अनुभव को भगवान कहते हैं। आहाहा! भगवान अपनी पर्याय में पधारे। द्रव्य और गुण में तो था। आहाहा! अभी तो इसके ज्ञान में निर्णय का ठिकाना नहीं, वह विज्ञान रस में कब जायेगा? समझ में आया? **'सः भगवान्' वही परमब्रह्म परमेश्वर ऐसा कहलाता है...** आहाहा! नय का पक्ष छोड़कर भगवान विज्ञानरस ज्ञानपुंज का वेदन (होना), इसको

परमात्मा कहते हैं। वस्तु परमात्मा है तो पर्याय में भी परमात्मा कहने में आता है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसको परमब्रह्म कहते हैं। है? उसको **परमेश्वर ऐसा कहा जाता है।** आहाहा!

'**एषः पुण्यः**' देखो! पुण्य शब्द में पवित्रता आयी है। यहाँ पुण्य शब्द में पवित्रता आयी है। पुण्य अर्थात् पहला पुण्य नहीं। पाठ पुण्य है। '**एषः पुण्यः**' पुण्य अर्थात् पवित्रता। शुद्धस्वरूप का अनुभव, यह भगवान परमब्रह्म ये पवित्रता। पुण्य का अर्थ पवित्रता है। वो पुण्य नहीं। 'पुनाति ईति पुण्यः' पवित्र करे, वह पुण्य। आहाहा! यह अर्थ उसमें ले जाते हैं कि पुण्य है 'पुनाति ईति पुण्यः'। ऐसा नहीं भाई! ये पुण्य तो जहर है। ये पुनाति नहीं-पवित्र नहीं, अपवित्र है। आहाहा! समझ में आया? वह आत्मा के आनन्द का लुटेरा है। यह आनन्दस्वरूप पुण्य पवित्र है। आहाहा! अरे! भाई! बहुत धीरा (होना) पड़ेगा इसको। धीरा होना पड़ेगा। ये कहते हैं। उसमें कहते हैं, निभ्रत... निभ्रत है न? निभ्रत आया है न? निभ्रत कहाँ आता है। इसमें है? हाँ, ये। बहुत बार कहते हैं। बारम्बार। निभ्रत। निश्चिन्त पुरुषों का यह काम है, निभ्रत। निश्चिन्त पुरुषों का ये काम है, भाई! आहाहा! विकल्प के जाल में रुकने से पता नहीं मिलेगा, नाथ! यह निर्विकल्प चीज़ है। समझ में आया? आहाहा! निभ्रत। निभ्रत अन्तिम शब्द है न? '**निभृतैः स्वयं आस्वाद्यमानः**' इस निभ्रत का अर्थ 'निश्चल ज्ञानीपुरुषों' चलित बिना, विकल्प बिना। ऐसे धर्मात्मा को ये निभ्रत स्वयं आस्वाद्यमान है। ये अन्तिम शब्द है। आस्वाद्यमान का एक अर्थ ऐसा भी किया है कि स्वयं अनुभव होता है और संस्कृत में ऐसा लिया है, आस्वाद्यमान ध्यान विषय कुरु।

मुमुक्षु : कल बताया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल दूसरा बताया था। ये दूसरी जगह से बताया है। और दो जगह है। ये आत्मा है, इस श्लोक में। दो-चार जगह है। विषयकुरु। ये दूसरी जगह से बताया था, हो! पहले बताया था न? ये दूसरी जगह से।

'**आस्वाद्यमानः**' है न? '**आस्वाद्यमानः**' अन्तिम शब्द है न? '**ध्यानविषय-क्रियमाणः**' वह तो '**ध्यानविषयकुरु**' था। '**ध्यानविषयक्रियमाणः**' अपनी पर्याय में

ध्यान का विषय बनाकर अनुभव करते हैं। ऐसा कहते हैं। टीकाकार ने बहु... ये हमारे शब्द का प्रोफेसर है न? इसमें लिखा है। मैंने प्रश्न किया था। दूसरा भी आयेगा। '**विकल्पकः**' शब्द है न? ९५। ये करनेवाला। परन्तु विकल्प करनेवाला द्रव्य-गुण न लेना। ऐसा मुझे तो यही है। '**कः**' है न? भाई! करनेवाला (नहीं)। द्रव्य और गुण तो शुद्ध हैं, पर्याय में करनेवाला। पर्याय ही कर्ता और पर्याय ही कर्म है। **विकल्पकः**' शब्द है न? यह संस्कृत के प्रोफेसर। '**विकल्पकः**' '**कः**' अध्याहार ले लिया। विकल्प कर्ता है, बस! द्रव्य-गुण नहीं। यह जरा सूक्ष्म चीज़ है। हमने तो एक-एक शब्द ऊपर विचार किया है न!

वास्तव में तो विकल्प ही कर्ता और विकल्प ही कर्म है। द्रव्य-गुण विकल्प के कर्ता हैं, ऐसा वस्तु में है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! समझ में आये इतना समझो, प्रभु! यह तो मार्ग वीतराग का... आहाहा! अलौकिक मार्ग है। लौकिक से पार है। व्यवहारनय को द्रव्यसंग्रह में लौकिक कहा है। लौकिक। आहाहा! कथनमात्र है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और व्रत, नियम, यह सब व्यवहारनय से कथनमात्र है। समझ में आया? उसमें कहा था न? हमने बताया था न? व्यवहारनय से। पाँचवाँ श्लोक। पाँचवाँ श्लोक है पहले व्यवहारनय का अर्थ जितना कथन, बस! पाँचवाँ श्लोक। व्यवहारनय है न? पाँचवाँ श्लोक। पहला शब्द। पहली लाईन। व्यवहारनय जितना कथन। बस! व्यवहारनय की व्याख्या इतनी—कथन। नियमसार में आता है न? व्यवहाररत्नत्रय कथनमात्र है, ऐसा अनन्त बार किया है। नियमसार में है। ये शब्द व्यवहाररत्नत्रय कथनमात्र है। यह तो अनन्त बार किया है। आहाहा! धन्नालालजी! यह नियमसार में है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत, शास्त्र का ज्ञान, ये व्यवहार। ये तो कथनमात्र व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। ये तो अनन्त बार कहा है, नियमसार में है। परन्तु इससे भी पार भगवान आत्मा विकल्प से भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु! है तो बहुत सूक्ष्म, परन्तु समझ में आये ऐसी बात है। न समझ में आये ऐसी बात नहीं। आहाहा!

यहाँ ये कहा, ये पुण्य है। **पवित्र पदार्थ ऐसे भी कहते हैं...** देखो! किसको? अपने शुद्ध निर्विकल्प अचल स्वरूप का अनुभव, उसको पुण्य भी कहते हैं। पुण्य शब्द पवित्रता। पुण्य अर्थात् जो व्यवहाररत्नत्रय का राग, ये नहीं। समझ में आया? आहाहा!

और दूसरे में आता है। भाई कहते हैं ये। 'पुनाति इति पुण्या:' पवित्र करे। परन्तु वह यह। यह पुण्य। समझ में आया? **पवित्र पदार्थ ऐसे भी कहते हैं...** आहाहा! विज्ञान एकरस त्रिकाली है, उसको भी पवित्र कहो और उसकी परिणति भी पुण्य-पवित्र कहो। वस्तु भगवानस्वरूप है तो इसका परिणमन भी भगवान कहो। वस्तु पवित्रस्वरूप है, पर्याय को भी पवित्र-पुण्य कहो। आहाहा! समझ में आया? अरे! वीतराग त्रिलोकनाथ का धर्म, बापू! चैतन्य भगवान का धर्म, ये कोई साधारण चीज़ (नहीं)। अभी तो लोगों को बहुत साधारण कर दी। एक दया पालो तो धर्म हो गया। दया पाले, ये भगवान का धर्म। भगवान ने दया को धर्म कहा है। दया तो आत्मा का स्वभाव है, ऐसा भी कहते हैं। धवल में आता है। परन्तु यह दया तो अरागी दया की बात है। धवल में आता है। समझ में आया? दया अकषायभाव है। उसको दया कहते हैं। पर की दया तो राग है, वह तो हिंसा है। बहुत अन्तर।

'एषः पुराणः' उसको पुराण पुरुष कहते हैं। ये अनादि अनन्त वस्तु है न? **अनादि-अनन्त वस्तु ऐसा भी कहते हैं...** जिसका अनुभव उस चीज़ को पुराण पुरुष भी कहते हैं। त्रिकाली पुराण। पुराण अर्थात् तो पुरानी चीज़ का है। समझे? पुरानी चीज़ है।

मुमुक्षु : पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो त्रिकाली लिया है। बाद में पर्याय भी (कहो)। ये अनादि की पवित्र वस्तु है। वस्तु की अपेक्षा लेकर। अन्यमति में एक कहते हैं। अन्यमति में एक भजन है। हमने तो पहले बहुत पढ़ा है न! 'जूना धर्म ल्यो जाणी मेरे संतो, जूनो धर्म ल्यो जाणी रे... जी। जूनो धर्म...' जूनो समझते हो? पुराना। यहाँ पुराण आया न? 'जूना धर्म ल्यो...' जूनो अनादि-अनन्त भगवान 'जूनो धर्म ल्यो जाणी मेरे संतो, जूनो धर्म ल्यो जाणी रे... जी। जूनो धर्म...' आहाहा! अनादि-अनन्त भगवान पुराणा। अनादि पुराण पुरुष आया न? पुराण कहा न? पुराण कहो या पुराना तत्त्व अनादि-अनन्त पुराना (कहो)। उसके अनुभव को भी ये शब्द लागू पड़ता है। आहाहा! **अनादिनिधन वस्तु ऐसा भी कहते हैं...**

'एषः पुमान्' इसको पुरुष कहते हैं। आहाहा! यह आत्मा को पुरुष कहते हैं। है? **'एषः पुमान्' वो ही अनन्त गुण विराजमान पुरुष ऐसा भी कहा जाता है...** ये पुरुष है।

ये बाहर का शरीर पुरुष और स्त्री का (शरीर) तो हाड़ का, माँस का तो जड़ है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु को पुरुष कहने में आता है। प्रभु अर्थात् ये आत्मा, हों! आहाहा! दृष्टि में, वेदन में जहाँ आया तो ये पुराण पुरुष को पुराणा अनादि-अनन्त कहने में आता है। अर्थात् पुरुष कहलाता है। ये पुरुष है। आहाहा!

पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आया है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। पुरुष-अपनी चेतना सत्ता में सोते हैं, उसको पुरुष कहते हैं। पुरुषे इति पुरुष। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में है। न जो अपनी आनन्द की पर्याय में रमते हैं, उसको पुरुष कहते हैं। पुरुषार्थसिद्धि उपाय है। न? अमृतचन्द्राचार्य का। समझ में आया? राग में रमते हैं, वे नपुंसक पवैया-हिंजड़ा है। वे पुरुष नहीं। ज्ञानचन्दजी! शुभभाव में—राग में रमे, वे पुरुष नहीं। यहाँ तो अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु, वह पुरुष है और उसमें रमते हैं, वे पुरुष हैं। समझ में आया? पुरुष कहा न? **वही अनन्त गुणों से विराजमान पुरुष ऐसा भी कहलाता है...**

'अयं ज्ञानं दर्शनम् अचि' वो ही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान ऐसा भी कहलाता है। देखो! बाद में पर्याय लिया। त्रिकाली में लें तो पर्याय में लेना। आहाहा! देखो! यहाँ चारित्र नहीं लिया। यह तो अभी नयपक्ष बिना का अनुभव (हुआ), उसको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान लिया। बस। १४४ में भी ये है। **'सम्यग्दर्शनज्ञानव्यपदेशं किल लभते'** इसका नाम—संज्ञा पाता है। आहाहा! **सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान ऐसा भी कहलाता है। 'अथवा किम्' बहुत क्या कहें? 'अयं एकः यत् किश्चन अपि' ये जो है शुद्धचैतन्यवस्तु की प्राप्ति...** प्राप्ति... प्राप्ति, हों! **उसको जो कुछ कहते ही हैं, जैसी भी कहने में आये वैसी ही है।** भावार्थ है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १२, शनिवार, दिनांक १०-०९-१९७७
कलश-९३ से ९४, प्रवचन-९१

कलशटीका। कर्ता-कर्म अधिकार। ९३ गाथा (कलश) में अन्तिम भावार्थ। ९३ श्लोक का है न? भावार्थ है न? अन्तिम-अन्तिम की पाँच लाईन हैं।

भावार्थ इस प्रकार है, शुद्धचैतन्यमात्रवस्तु प्रकाश निर्विकल्प एकरूप है... क्या कहते हैं? जो यह वस्तु भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यरूप निर्विकल्प एकरूप वस्तु है। त्रिकाल शुद्ध चैतन्य वस्तु निर्विकल्प एकस्वरूप है। उसका अनुभव करने से पर्याय में भी निर्विकल्पता शुद्धता एकरूपता प्रगट होती है। जो पुण्य और पाप के अनेक विकल्प जो प्रगट होते हैं, वह तो संसार हैं। आहाहा! यह शुद्धचैतन्यस्वरूप एकरूप वस्तु, उसका अनुभव करने से पर्याय में भी शुद्धता, एकरूपता, निर्विकल्पता प्रगट होती है। उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

उसके नाम की महिमा की जाए तो अनन्त नाम कहे जायें... कहा था न पहले? वस्तु शुद्ध चैतन्य को ब्रह्म कहो, परमात्मा कहो, ईश्वर कहो, चिदानन्द कहो, सम्यग्दर्शन कहो, सम्यग्ज्ञान कहो, जो कहो वह वस्तु है। आहाहा! जो कभी अपने चैतन्यस्वरूप का लक्ष्य किया नहीं। जो उसमें है नहीं, ऐसा पुण्य-पाप के भाव का लक्ष्य करके, उसमें अपनी रुचि करके चार गति में परिभ्रमण किया, तो कहते हैं कि परिभ्रमण जिसको मिटाना हो और वस्तु की प्राप्ति करना हो तो भगवान निर्विकल्प शुद्ध एकरूप है, उसके ऊपर दृष्टि लगाओ। आहाहा! जो वस्तु के स्वभाव से विपरीत भाव अनादि काल से है, उससे हटकर शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप पवित्र एकरूप उस पर दृष्टि लगाओ, तो तुम्हारा कल्याण होगा। आहाहा! ऐसी बात है। वस्तु तो एकरूप है। नाम अनन्त कहो, परन्तु वस्तु तो शुद्ध चिदानन्द है। निर्विकल्प वस्तु है। ऐसी दृष्टि भी निर्विकल्प वस्तु। सम्यग्दर्शन भी निर्विकल्प वस्तु। आहाहा! उसके चाहे जितने नाम कहो तो लागू हो जाते हैं। आहाहा!

कैसा है शुद्ध स्वरूप आत्मा ? 'निभृतैः स्वयं आस्वाद्यमानः' आहाहा ! **'निभृत'** निश्चल। चिन्ता किये बिना निश्चिन्त पुरुषों द्वारा। आहाहा ! निश्चिन्त पुरुषों द्वारा। निश्चिन्त पुरुषों। **ज्ञानी पुरुषों द्वारा...** आहाहा ! ये **आप स्वयं अनुभवशील है।** संस्कृत में कल बताया था न। **'ध्यान क्रियमाणं'** ऐसा शब्द है संस्कृत में। **'आस्वद्यमानः'** का अर्थ। वस्तु त्रिकाली परमात्मा महा निधान पर दृष्टि करने से। यह ध्यान की पर्याय को **'ध्यानक्रियमाणं'** यह चीज़ का ध्यान करने से। राग और पुण्य-पाप का ध्यान तो अनन्त काल से किया। आहाहा ! परन्तु ये भगवान आत्मा को ध्यान में, **ध्यान को क्रियमाणं...** ध्यान करते हुए और ध्यान में विषय बनाते हुए। आहाहा ! समझ में आया ? खेमचन्दभाई आये नहीं। बुखार है। नहीं ? समझ में आया ?

'निभृतैः स्वयं आस्वाद्यमानः' आहाहा ! विकल्प की चिन्ता से रुक गया है जिसका ज्ञान। और **'निभृत'** स्वयं। अपने से आस्वद्यमान है। किसी की अपेक्षा वहाँ है नहीं। आहाहा ! राग की या निमित्त की, या देव-गुरु-शास्त्र की भी वहाँ अपेक्षा नहीं। स्वयं आस्वाद्यमान है। अपना स्वरूप अपने से ही स्वाद करनेयोग्य-अनुभव करनेयोग्य है— ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ऐसी वस्तु है। लोगों को सूक्ष्म पड़ती है। मार्ग तो यह है, भगवान ! पूरा चिद्ब्रह्म पड़ा है परमात्मा। ब्रह्म अर्थात् आनन्द। चिद्ज्ञान और आनन्दस्वरूप यह तो त्रिकाल है। उस ओर का ध्यान करने से, उस ओर का लक्ष्य आने से, उसका आश्रय लेने से राग और पर्याय का लक्ष्य, आश्रय छोड़ने से तो व्यवहार से होता है, यह मानना रहा नहीं। व्यवहार का भी लक्ष्य छोड़ने से। समझ में आया ? उससे तो **'निभृत'** कहा है। यह व्यवहार के विकल्प से रहित। आहाहा ! ऐसा मार्ग।

'स्वयं' है न पाठ ? **'स्वयं'** शब्द है न ? अपने से। आनन्द की पर्याय से अनुभव में आनेवाली चीज़ है। कोई राग और व्यवहार से अनुभव होता है, ऐसी चीज़ है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? यह ९३ गाथा (कलश) हुई। ९४।

कलश-९४

(शार्दूलविक्रीडित)

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात्।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्माहरन्
आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत्।।49-94।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'अयं आत्मा गतानुगततां आयाति तोयवत्' [अयं] द्रव्यरूप विद्यमान है ऐसा [आत्मा] चेतन पदार्थ [गतानुगततां] स्वरूप से नष्ट हुआ था सो फिर उस स्वरूप को प्राप्त हुआ, ऐसे भाव को [आयाति] प्राप्त होता है। दृष्टान्त [तोयवत्] पानी के समान। क्या करके? 'आत्मानं आत्मनि सदा आहरन्' आपको आपमें निरन्तर अनुभवता हुआ। कैसा है आत्मा? 'तदेकरसिनां विज्ञानैकरसः' [तदेकरसिनां] अनुभवरसिक हैं जो पुरुष उनको [विज्ञानैकरसः] ज्ञानगुण आस्वादरूप है। कैसा हुआ है? 'निजौघात् च्युतः' [निजौघात्] जिस प्रकार पानी का शीत, स्वच्छ, द्रवत्व स्वभाव है, उस स्वभाव से कभी च्युत होता है, अपने स्वभाव को छोड़ता है, उसी प्रकार जीवद्रव्य का स्वभाव केवलज्ञान, केवलदर्शन, अतीन्द्रिय सुख इत्यादि अनन्त गुणस्वरूप है, उससे [च्युतः] अनादि काल से लेकर भ्रष्ट हुआ है, विभावरूप परिणमा है। भ्रष्टपना जिस प्रकार है, उस प्रकार कहते हैं-'दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्' [दूरं] अनादि काल से लेकर [भूरि] अति बहुत हैं [विकल्प] कर्मजनित जितने भाव, उनमें आत्मरूप संस्कारबुद्धि, उसका [जाल] समूह, वही है [गहने] अटवीवन, उसमें [भ्राम्यन्] भ्रमता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है-जिस प्रकार पानी अपने स्वाद से भ्रष्ट हुआ नाना वृक्षरूप परिणमता है, उसी प्रकार जीव द्रव्य अपने शुद्ध स्वरूप से भ्रष्ट हुआ नाना प्रकार चतुर्गति पर्यायरूप अपने को आस्वादता है। हुआ तो कैसा हुआ? 'बलात् निजौघं नीतः' [बलात्] बलजोरी से [निजौघं] अपने शुद्धस्वरूपलक्षण निष्कर्म अवस्था [नीतः] उसरूप परिणमा है। ऐसा जिस कारण से हुआ वही कहते हैं-'दूरात् एव' अनन्त काल फिरते हुए प्राप्त हुआ ऐसा जो 'विवेकनिम्नगमनात्' [विवेक] शुद्धस्वरूप का अनुभव, ऐसा जो [निम्नगमनात्] नीचा मार्ग, उस कारण से जीवद्रव्य का जैसा स्वरूप था वैसा प्रगट हुआ। भावार्थ इस प्रकार

है–जिस प्रकार पानी अपने स्वरूप से भ्रष्ट होता है, काल निमित्त पाकर पुनः जलरूप होता है, नीचे मार्ग से ढलकता हुआ पुञ्जरूप भी होता है, उसी प्रकार जीवद्रव्य अनादि से स्वरूप से भ्रष्ट है। शुद्धस्वरूपलक्षण सम्यक्त्व गुण के प्रगट होने पर मुक्त होता है, ऐसा द्रव्य का परिणाम है।।49–94।।

कलश - ९४ पर प्रवचन

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात्।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्माहरन्
आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत्।।49–94।।

'**अयं आत्मा गतानुगततां आयाति तोयवत्**' आहाहा! भगवान '**अयं**' **द्रव्यरूप...** प्रभु! आहाहा! '**अयं**' शब्द है न? वस्तु जो आनन्दघन भगवान आत्मा विद्यमान है, मौजूद है। आहाहा! परन्तु उस राग के प्रेम में पर्याय के प्रेम में मौजूद चीज़ की दृष्टि नहीं होती। समझ में आया? '**अयं**' ये द्रव्य जो है प्रत्यक्ष प्रगट है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो निभ्रत पुरुषों का काम है—ऐसा आया था न? आहाहा!

मुमुक्षु : निभ्रत पुरुषों अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् कहा न पहले? निश्चिन्त पुरुषों का काम है। चिन्ता में पड़े, उसका काम नहीं। अनेक प्रकार की चिन्ता। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि की। अशुभ की चिन्ता तो एक ओर रखो... आहाहा! परन्तु यह व्यवहार की चिन्ता में पड़ा हो, उस पुरुष को निश्चिन्तपना नहीं आता। आहाहा! निभ्रत शब्द पड़ा है न? निभ्रत का अर्थ निश्चल है अथवा चिन्तारहित है अथवा निश्चिन्त पुरुषों-ज्ञानी पुरुषों द्वारा। जिसमें विकल्प की चिन्ता का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? यह अपने अन्तर में स्वरूप में अपने पूर्णानन्द को ज्ञेय, ध्येय बनाकर, ज्ञेय बनाकर ज्ञान करना, ध्येय बनाकर ध्यान करना। आहाहा! ऐसी वस्तु। कभी किया नहीं, सुनने को मिला नहीं। आहाहा!

एक तो संसार में सारे दिन चौबीसों घण्टे, बाईस घण्टे। पाप में पींजण। वह पींजण आता है न? पंचास्तिकाय में। भाई! चिपटती हैं। पींजण होती है न? पींजण। रुई... रुई के ऊपर रुई की पींजण चिपकती है। ऐसे ये राग-द्वेष की पींजण करते हैं अनादि से। यह पंचास्तिकाय में पाठ है। भाई पींजण समझे? रुई... रुई... रुई को पींजते हैं न? तो रुई के छोटे-छोटे टुकड़े चिपकते हैं। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा विकार की पींजण करते-करते विकार चिपटता है उसे। आहाहा! भगवान आत्मा तो निभ्रत ज्ञानी पुरुषों द्वारा अनुभवशील है। आहाहा!

किसी भी प्रकार के व्यवहार के विकल्प से रहित निश्चय निर्विकल्प भगवान आत्मा के प्रति आश्रय लेने से, वह स्वयं अनुभवशील है। ये स्वयं अपने से ही अनुभव में आता है। कोई पर की अपेक्षा है नहीं। गुरु और देव की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! देव-गुरु की श्रद्धा के राग की भी अपेक्षा नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! ऐसे पुरुषों द्वारा अनुभवशील। अर्थात्? ध्यान में लेने योग्य यह चीज़ है। समझ में आया? आहाहा! भारी काम। अब ९४।

'अयं आत्मा' द्रव्यरूप विद्यमान है आत्मा... 'अयं आत्मा' चेतनपदार्थ... आहाहा! भगवान तो चेतन ज्ञानस्वरूपी आनन्दस्वरूपी पदार्थ है। यह **'गतानुगततां' स्वरूप से भ्रष्ट हुआ था, उसी रूप स्वरूप को प्राप्त हुआ, ऐसे भाव को प्राप्त होता है।** आहाहा! **'गतानुगतं'** जो राग में गति करते हैं अनादि से, पुण्य और पाप के भाव में **'गतानुगत'** पीछे हटते हैं, अपने स्वरूप में आते हैं। आहाहा! पानी का दृष्टान्त देंगे। जल। **'तोयवत्'** है न? **'तोयवत्'** पानी के समान। क्या? **'आत्मनम् आत्मनि सदा आहरन्' आपको आप में निरन्तर अनुभवता हुआ...** आहाहा! भाषा तो बहुत संक्षिप्त है, परन्तु भाव गम्भीर है। आहाहा! **'आत्मानम्' आपको निरन्तर अनुभवता हुआ...** राग बिना निर्विकल्प आनन्द से आत्मा को अनुभवता हुआ। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह बाहर के शास्त्रज्ञान से भी प्राप्त नहीं होता। वैसे ही ये दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव से भी प्राप्त नहीं होता। यह तो सब विकल्प और राग हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जैसे पानी के समान। **आपको आप में...** आपको आप में।

आनन्दस्वरूप ये आप, उसमें अपने-आनन्दस्वरूप में। आहाहा! आपको आप में, हैं? **निरन्तर अनुभवता हुआ।** आहाहा! जैसे अनादि से राग का निरन्तर अनादि से अनुभवता हुआ, यह मिथ्यात्व और भ्रान्ति थी। आहाहा! यहाँ राग से रहित भगवान पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, उसका निरन्तर स्व आश्रय से उत्पन्न हुआ आनन्द, उसको अनुभवता हुआ। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह मार्ग की रीति की भी निर्णय की खबर न मिले। वह मार्ग कैसे जाये? आहाहा! अरे...! चौरासी के अवतार करते-करते दुःखी है। समझ में आया? जब अवसर मिले, तब अवसर चूक जाते हैं। मनुष्यपने में आयी ये वस्तु भगवान की समझने की योग्यता का तो मनुष्यपने में है विशेष, विशेष रूप से। सामान्य रूप से तो भविष्य में उतारा था। समझ में आया? तब यह अवसर टूट जाते हैं कि इसका यह करना... और यह करना... और यह करना... और यह करना। कहीं आलस में, प्रमाद में (चूक जाता है)। आहाहा! इस चीज़ की ओर सावधानी नहीं होती।

तो यहाँ कहते हैं कि '**आत्मानम्**' आत्मा में निरन्तर अनुभवता। आहाहा! सम्यग्दर्शन में आत्मा निरन्तर अनुभवता हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **कैसा है आत्मा? 'तदेकरसिनाम् विज्ञानैकरसः' 'तदेकरसिनाम्' अनुभव रसिक हैं जो पुरुष...** आहाहा! अनुभव के रसिया जीव को विज्ञान एकरस हैं। आहाहा!

फिर से '**तदेकरसिनाम् विज्ञानैकरसः**' '**तदेकरसिनाम्**' '**तदेकरस**' **अनुभव रसिक हैं पुरुष...** जिसको अनुभव का रसिकपना है। राग का रसिकपना छूट गया है। आहाहा! जिसको अनुभव रस का रस है, ऐसे आत्मा को। आहाहा! है? '**विज्ञानैकरसः**' ज्ञान के रसिक पुरुषों को तो विज्ञान एकरस है। आहाहा! संसार का कोई रस उनको उड़ गया है, फीका पड़ गया है। आसक्ति होती है, परन्तु उसमें रस नहीं। उसके आश्रय से लाभ है, ऐसा नहीं। नुकसान... नुकसान है। शुभभाव या अशुभभाव होता है, वह अमृत से विरुद्ध है। भगवान अमृतसागर के अनुभव से यह शुभाशुभभाव विपरीत हैं, जहर है। यह लोगों को कठिन पड़ता है। आहाहा!

ज्ञान '**विज्ञानैकरसः**' अनुभव रसिक पुरुषों को विज्ञान एक ही रस है। आहाहा! राग का रस तो उसमें छूट गया है। सम्यग्दृष्टि को राग आता है, परन्तु रसिकपना छूट गया

है। रस में एकाग्र होना और ये मेरे सुखरूप है, यह रस छूट गया है। आहाहा! छह खण्ड का राज हो चक्रवर्ती को, समकिती को, तो वह छह खण्ड नहीं साधते। वह तो अखण्ड को साधते हैं। यह शब्द आया है। निहालभाई में निहालभाई सोगानी, द्रव्यदृष्टि प्रकाश। चक्रवर्ती छह खण्ड को नहीं साधते, अखण्ड को साधते हैं, ऐसा आया है। पृष्ठ में आया है, इस ओर पृष्ठ की पहली लाईन है। आहाहा! क्या किया? कि चक्रवर्ती छह खण्ड को नहीं साधते। समकिती है यह, हों! आहाहा! ९६ हजार स्त्रियाँ, ९६ करोड़ सैनिक, ९६ करोड़ गाँव, उनका साहेबा होता है मैं यह नहीं, यह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! मेरी चीज़ में यह नहीं और इस चीज़ में मैं नहीं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ यह चीज़ है नहीं और यह चीज़ जहाँ है, वहाँ मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं कि आपको आप में निरन्तर अनुभवता। आहाहा! एक '**रसिकानाम् विज्ञानैकरसः**' आहाहा! सम्यग्दृष्टि को तो आत्मा का एक रस का रसीला है यह। समझ में आया? भले गृहस्थारम में हो। यह गृहस्थाश्रम में है नहीं। यह कहा न उसमें? गृहस्थ है यह, अपने घर में स्थ है। पंच संग्रह में है यह गृहस्थ की व्याख्या। गृहस्थ। जिनेश्वरदासजी! वाँचा है तुमने यह। पंच संग्रह। उसमें गृहस्थ क्या? गृह-स्थ। अपना घर, उसमें स्थ। यह गृहस्थ है। यहाँ लोक में पैसावाला और धूलवाला गृहस्थ है, ऐसा कहते हैं। मर जानेवाले हैं। कहीं पता नहीं लगेगा, भाई! यह राग के रसिकों को चैतन्य का रस नहीं आवे, प्रभु! आहाहा! और आत्मा के रसिकजनों को एक विज्ञान एक यह रस है। एक विज्ञान ही रस है। आहाहा! समझ में आया?

'**रसिकानाम् विज्ञानैकरसः**' आहाहा! '**तदेकरसिनाम्**' पाठ तो ऐसा है। '**तदेकरसिनाम्**' स्वरूप का एक ही रस जिसको है। ऐसा, एक शब्द पड़ा है न? एक शब्द का अर्थ नहीं किया। '**तदेकरसिनाम् और विज्ञानैकरसः**' दोनों में एक-एक पड़ा है। क्या कहते हैं? दो में एक ये क्या '**तदेकरसिकानाम्**' एक चैतन्य आनन्द का रसिक जो है यह एक ही रसिक है। राग का रस ज्ञानी को छूट गया। आहाहा! सर्वार्थसिद्धि की पदवी हो या चक्रवर्ती की पदवी हो, सब राग का रस छूट गया है। आहाहा! समझ में आया?

नोआखली में नहीं हुआ था? नोआखली। गाँधीजी गये थे न। नोआखली देश में

झंझट बहुत हुआ था। मुसलमान लोगों ने हिन्दू लोगों का बहुत नुकसान करते थे। क्या? कि एक बहिन-भाई हो। पच्चीस वर्ष का भाई और अट्ठाईस वर्ष की बहिन को बाँधकर, वस्त्र निकाल कर ऐसे करते। दोनों के शरीर को नंगा करके मिलाते। आहाहा! उसके अन्दर ओ..हो..हो.. प्रभु! यह क्या होता है? जमीन यदि रास्ता दे तो उसमें समा जायें, पर यह बहिन और भाई को क्या करते हैं? माता ४० वर्ष की हो, और लड़का बीस वर्ष का हो। इनको नंगा करके (मिलाते हैं)। जैसे रस उड़ गया उसमें। यह क्रिया का रस उड़ गया है। उनको ऐसा होता है, अरे! प्रभु! जमीन रास्ता दे तो समा जाये। क्या होता है यह?

इसी प्रकार धर्मी को चक्रवर्ती के राज के वैभव का भोग है, उसका रस उड़ गया है। आहाहा! समकिती को रस पर का (उड़ गया है)। एक विज्ञान एक रस है। '**एकरसिकानाम् एकरसः**'। ऐसा कहा न? पण्डितजी! 'एक' शब्द है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को तो '**एकरसिकानाम्**'। आनन्द का एक रस है, उसको विज्ञान का एक रस आता है, बस। आहाहा! भारी भाषा, भाई! रामबाण भाषा है। कहो, ये जिनेश्वरदास है। यह सर्वज्ञ के दास समकिती हैं। आहाहा! '**तदेकरसिकानाम्' अनुभव रसिक है जो पुरुष...** एक शब्द का अर्थ नहीं किया। परन्तु इसका अर्थ, अनुभव हुआ न? ये एकरूप न हुआ। आहाहा! शुद्ध चैतन्य घन आनन्दकन्द प्रभु, वह एक जिसका रसिकपना है, उसको एक विज्ञान का ही रस आता है। विज्ञान ये वस्तुस्वरूप का विज्ञान का ही एक रस है। आहाहा!

कैसा हुआ? 'निजौघात् च्युतः' जिस प्रकार पानी का... पानी, दृष्टान्त देते हैं। **अपना शीत, स्वच्छ और द्रव्यत्वस्वभाव है...** पानी का। जल... जल। जल का स्वभाव है... पानी शब्द लिया है हिन्दी में, पानी ये सब बुलाते हैं तुम्हारे। पानी भी बोलते हैं न? बोलते हैं। हिन्दी में पानी भी कहते हैं... पानी, पहले पाणी हमारे कहते हैं, तुम्हारे पानी। हमारे गुजरात पाणी, तुम्हारे पानी या जल। **पानी का शीत, ठण्डा, स्वच्छ और द्रव्यत्व स्वभाव है, वह स्वभाव से कभी च्युत होता है...** पानी स्वभाव से च्युत होता है। **अपने स्वभाव को छोड़ता है, उसी प्रकार जीव...** आहाहा! यह पानी का स्वभाव स्वच्छ, द्रव्यत्व है। प्रवाहित होना। वह ठण्डा, यह वृक्ष पर चढ़ जाते हैं तो शीतपना मिट जाता है। आहाहा! झाड़ समझे? वृक्ष। बबूल का झाड़ कहते हैं। पानी वहाँ चढ़ जाता है। अपना

द्रव्यत्व स्वभाव छूट जाता है। प्रवाहरूप जो है। प्रवाह बबूल में चढ़ गया बबूल... बबूल। आहाहा! समझ में आया? अपना शीतपना छूट गया, प्रवाहपना छूट गया और स्वच्छपना छूट गया। आहाहा! पानी का दृष्टान्त है। यहाँ पर देखो! आहाहा!

जिस प्रकार पानी का शीत, स्वच्छ और द्रव्यत्व स्वभाव, उस पर कभी च्युत होता है, स्वभाव से अपने स्वभाव को छोड़ता हुआ। जीवद्रव्य का स्वभाव केवलज्ञान... देखो! उसमें लिया न? शीत, स्वच्छ और द्रव्यत्व। तो भगवान का स्वभाव तो केवल ज्ञान है। केवल अर्थात् पर्याय की बात नहीं। अकेला ज्ञान, पूर्ण ज्ञान। आहाहा! **केवलज्ञान...** अकेला दर्शन। दर्शक... दर्शक... दर्शक। केवल **अतीन्द्रिय सुख...** वीर्य नहीं लिया। तीन बोल हैं न, इसलिए तीन लगाये। पानी में तीन बोल थे न? शीत, स्वच्छ और द्रव्यत्व। हैं तीन। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अतीन्द्रिय सुख **इत्यादि...** ऐसा ले लेना। **अनन्त गुणस्वरूप...** भगवान आत्मा। ओहो! जिसमें बेहद अपरिमितज्ञान, अपरिमितसुख और अपरिमितदर्शन और अपरिमितवीर्य (भरा है)। ऐसे अनन्त गुण अपरिमित—मर्यादा से रहित शक्तियों का संग्रह पड़ा है। ऐसा भगवान आत्मा, अपने ऐसे स्वरूप से च्युत होकर (जैसे) पानी अपने स्वभाव से च्युत होकर बबूलादि या कारेला... कारेला समझे? करेला। करेला का वृक्ष होता है न? वृक्ष। पानी वहाँ चढ़ जाता है तो अपना शीतपना छूट जाता है, स्वच्छता छूट जाती है। आहाहा! और द्रव्यत्व-प्रवाह जो चलता है, वह छूट जाता है। वहाँ पकड़ गया। करेला का वृक्ष होता है न? कड़वा। वहाँ पानी कड़वा हो गया। पर्याय में, हों! आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा। यह कहते हैं, देखो! **उससे अनादि काल से लेकर भ्रष्ट हुआ है...** आहाहा! पानी जैसे अपने स्वभाव से भ्रष्ट होकर वृक्ष के मूल में चढ़ जाता है अन्दर में। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, आनन्दस्वरूप ये पुण्य-पाप के पंथ-रास्ते चढ़ गया है। जहर के रास्ते चढ़ गया है। आहाहा! समझ में आया? **विभावरूप परिणमा है...** आहाहा! यह तो विकाररूप से परिणम गया, भ्रष्ट हुआ अपने स्वभाव से। आहाहा! पानी जैसे भ्रष्ट हुआ। वह वृक्ष पर चढ़ जाता है पानी। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुणस्वरूप प्रभु, अपने स्वरूप से च्युत होकर विभाव के परिणाम में चढ़ गया है। आहाहा! समझ में आया? यह तो विभाव में शुभ लेना है या नहीं?

पण्डितजी ! यह विभाव में शुभभाव लेना या नहीं ? दो है ? हैं। आहाहा ! समझ में आया ? नय का पक्ष भी विकल्प है, यह विभाव है। दोपहर में चलता है न ? आहाहा !

भगवान ! जैसे पानी स्वच्छ, प्रवाहित... समझ में आया ? और ठण्डा है। स्वच्छ, ठण्डा और प्रवाहित। ऐसे भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण का स्वरूप; यह पानी जैसे अपना स्वच्छपना छोड़कर लक्ष्य के ऊपर चढ़ गया, ऐसे विभावरूप चढ़ गया आत्मा, कहते हैं... आहाहा !

मुमुक्षु : करेला के वृक्ष पर चढ़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वृक्ष पर चढ़ गया। करेला कहते हैं न ? कड़वा... कड़वा। पानी है तो मीठा। आहाहा ! ऐसे भगवान आत्मा आनन्दकन्द प्रभु शीतल अर्थात् अकषाय शान्त उपशमरस का कन्द, उपशमरस का कन्द ! आहाहा ! स्तुति में आता है न ? 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तारे नयन मां।' स्तुति आती है। 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तारे नयन मां।' ऐसे भगवान उपशमरस का कन्द है। उसके नेत्र समकित में जायें तो उसको उपशमरस झरते हैं। आहाहा ! बहुत मार्ग, भाई ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि **विभावरूप परिणमा है...** आहाहा ! भगवान अनन्त बेहद अपरिमित आनन्द, ज्ञान, दर्शन के स्वभाव स्वरूपरूप प्रभु ! क्षणिक विकृत के विभावरूप चढ़ गया है। आहाहा ! समझ में आया ? अपनी घुड़सवारी छोड़कर गधे की सवारी की। समझ में आया ? अपने ज्ञान, आनन्द स्वभाव पर चढ़ना, उसका स्वामिपना लेना, उसका अनुभव करना, यह छोड़कर, पुण्य-पाप गधा जैसा विकार पर चढ़ गया है अनादि का। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

एक जगह ऐसा हुआ था। वह विवाह करके आये... क्या कहते हैं तुम्हारे ? वर, वर। विवाह करने को आये। थोड़ा रुपया-पैसा निश्चित किया होगा कि इतने देना दो-चार हजार रुपया। अभी ये क्या कहते हैं ? दहेज... दहेज। इतना तो कहा होगा इसके बाप ने। परन्तु जब समय आया कन्या के लग्न का। साढ़े आठ या आठ। वहाँ कन्या आयी नहीं। क्यों क्या नहीं पहुँची ? तो यह कहे कि हमें इतना दो बाद में कन्या आयेगी। एक सोने की घड़ी, एक सोने का पेण्डल, एक फलाना, ढीकाना। ऐसे दस, पन्द्रह, बीस हजार रुपया

माँगे। ऐसे कन्या का पिता साधारण बेचारा। कन्या का बाप। हजार दो हजार किये होंगे। इसमें इतनी माँग की। जवान लोग आये। जवान लोग २५-५० गाँव में आये एक गधा लेकर। चल तेरा विवाह करायेंगे। यह गरीब मनुष्य को (परेशान करते हैं), एक हजार-दो हजार की माँग की थी, इससे तू पच्चीस हजार, बीस हजार और सोने की घड़ी और सोने का पट्टा और सेाने की ये धूलादि माँगता है? इसे गधा के ऊपर बैठाया, बाद में उल्टा बैठाया, हों! मुँह सामने नहीं। उल्टा (मुँह) बैठाकर गाँव में घुमाया। ले अब तू गधे के साथ शादी कर, ऐसा मूर्ख बनाया। ऐसा होता है न, दहेज में होता है। पश्चात् बेचारे खानदानी मनुष्य हों, फिर धीरे-धीरे माल माँगे। इज्जत जाती हो तो उधार लेकर भी दें। क्या करें? बाद में जबान आये और बाहर निकाल दिया।

ऐसे यहाँ परमात्मा कहते हैं कि तू विवाह करने आया है न आत्मा का। आहाहा! इसमें इतना विभाव करना, इतना विभाव करना, इतना विभाव करना बाद में मैं आऊँगा। क्या है तुझे गधे पर चढ़ना है तुझे। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा ऐसा कर लूँ, थोड़ा ऐसा कर लूँ, बाद में (करूँगा), आहाहा! धूल में नहीं करे, मर जायेगा। कहाँ गया? चिमनभाई! इसका भाई है। पैसेवाला, सब पैसेवाले। धूल... धूल। आहाहा! मैं थोड़ा इतना कर लूँ, बाद की बात, थोड़ा कर लूँ, बाद की बात। यह पीछे-पीछे रहेगा और पहला-पहला नहीं होगा। आहाहा!

यहाँ कहे, विभाव पर चढ़ गया नाथ तेरी चीज़ को छोड़कर... आहाहा! आनन्द के सागर भगवान के ऊपर जाना है, उसको छोड़कर तुम विभाव पर चढ़ गया। तो विभाव में पुण्य आया या नहीं? धन्नालालजी! दया, दान, भक्ति, व्रत, ये भी विभाव है। आहाहा! समझ में आया? **भ्रष्टपना किस प्रकार है- 'दूरं भूतिविकल्पजालगहने भ्राम्यान्'** आहाहा! **'दूरं' अनादि काल से... 'दूरं' अनादि काल से... 'दूरं'** की व्याख्या की **अनादि काल से...** लेकर **'भूरि' अति बहुत...** विकल्पों की जाल बहुत चढ़ गयी तेरे, नाथ! तुम भूल गये अपने को। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आचार्यों की शैली तो देखो! प्रभु! तू कहाँ है? और तुम कहाँ से छूट गये और कहाँ जाते हो तुम? निजघर को छोड़कर परघर में भ्रष्टाचार होकर व्यभिचारी हो गये तुम। आहाहा! समझ में आया? यह पुण्य-पाप के भाव

में जाना तो व्यभिचार है। आहाहा! ऐसी बात है।

'अति बहुत' कर्म जनित जितने भाव... 'विकल्प' की व्याख्या की। कर्मजनित जितने तो कर्म जनित में शुभ-अशुभभाव, असंख्य प्रकार के, सब कर्मजनित विकल्प जाल हैं? आहाहा! **उनमें आत्मारूप संस्कारबुद्धि...** आहाहा! यह असंख्य प्रकार के शुभभाव और असंख्य प्रकार के अशुभभाव, उसमें आत्मबुद्धि मेरा हित होगा उससे, मुझे उनमें मजा है—ऐसी आत्मबुद्धि करके भ्रष्ट हुआ है तुम। आहाहा! भगवान! तेरे स्वरूप के घर से तू भ्रष्टा हुआ है। आहाहा! समझ में आया? **उसमें आत्मारूप संस्कार बुद्धि...** देखो! आत्मारूप संस्कार बुद्धि। यह पुण्य, दया, दान, व्रत यह मुझ आत्मा के हैं और यह मुझे लाभदायक हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भी नहीं कहा कि कर्म के कारण से भ्रष्ट हुआ। समझ में आया? यह शब्द लिया ही नहीं। तेरे स्वरूप से तू भ्रष्टा हुआ है, अपने अपराध से। 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' कर्म से भ्रष्टा हुआ, यह तो लिया ही नहीं। वे लोग तो यह कहते हैं कि कर्म के कारण ऐसा होता है। अरे! सुन तो सही, प्रभु! कर्म तो जड़ है बेचारा। तेरे अपराध का करनेवाला तू है। आहाहा!

अपनी आराधन छोड़कर अपराध करता है। आराधन अर्थात् अपना शुद्धस्वरूप का सेवन छोड़कर, अपने भगवान की सेवा छोड़कर पर भगवान की सेवा में तूने धर्म माना। आहाहा! समझ में आया? भगवान आनन्दस्वरूप की सेवा, सेवा अर्थात् उस ओर की एकाग्रता, यह छोड़कर पर भगवान की सेवादि है, यह तो सब राग है, व्यभिचार है। आहाहा! धर्मी को ऐसा शुभभाव आता है, परन्तु है तो दोष है। आहाहा! ... अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त वीतरागी रस और आनन्द में (झूलते कहते हैं)। आहाहा!

वह पूरणपोली नहीं होती? पूरणपोली समझते हो? पूरणपोली। गेहूँ की... पूरण होता है न? पूरण। बाद में पूरणपोली करते हैं। गर्म करके घी में डुबाकर। ऐसे भगवान आत्मा राग से भिन्न होकर आनन्द के रस में तरबोर होता है। आहाहा! वहाँ चैतन्य का चमत्कार दिखाता है। वहाँ चैतन्य के प्रकाश का वेदन होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! और विभाव में तो जहर में चढ़ गया। यह पानी अपना द्रव्यत्व प्रवाहरूप शीत और स्वच्छत्व छोड़कर करेला के वृक्ष पर चढ़ गया। डालचन्दजी! आहाहा!

भगवान, सन्त जगत को आमन्त्रण देते हैं, प्रभु! आ जा न यहाँ। बाहर फिरता है, (इसमें) तुझे नुकसान है। आहाहा! समझ में आया? अभी निर्णय का ही ठिकाना नहीं कि इससे मेरे लाभ होगा दया, दान, व्रत, भक्ति से। अरेरे! अभी तो व्यवहार निर्णय का भी तेरा ठिकाना नहीं तेरा। समझ में आया? उसमें कोई (आनन्द) रस नहीं आता, यह तो जहर है। आहाहा! कहते हैं, भ्रष्टा हुआ। आहाहा! **आत्मास्वरूप संस्कार बुद्धि, उसका समूह, वही है अटवी-वन, उसमें भ्रमता हुआ।** आहाहा! जैसे पानी वन में चला जाता है, ऐसे यह पुण्य और पाप के विकल्प के वन में चढ़ जाते हैं। पार नहीं (ऐसे जंगल में) चढ़ जाते हैं। आहाहा! पाखाने में चढ़ जाता है। पाखाना कहते हैं न? गंगा का पानी पाखाने में। भगवान आत्मा अपना आनन्दस्वभाव छोड़कर असंख्य प्रकार के शुभभाव और असंख्य प्रकार के अशुभभाव के प्रवाह में भ्रष्ट होकर चढ़ जाते हैं। आहाहा!

संस्कार, **आत्म बुद्धिरूप संस्कार, उसका समूह, वही अटवी-वन...** बड़ा वन। आहाहा! असंख्य प्रकार के शुभभाव, असंख्य प्रकार के अशुभभाव विभाव। अपने स्वरूप से भ्रष्ट होकर अटवी-वन में पानी चढ़ जाता है, (वैसे) तुम विकल्प के वन में चढ़ गये। आहाहा! '**भ्रम्यन्**' है न? **भ्रमता हुआ।** इन पुण्य और पाप के विकल्प के वन में भ्रमता हुआ। भगवान इस वन से खाली है, उसमें जाते नहीं और वन में भटकते हैं। जहाँ बस्ती नहीं वहाँ भटकते हैं। जहाँ बस्ती आनन्द की है, वहाँ आते नहीं। आहाहा! यह सब ठीक है, परन्तु इसका साधन क्या? ऐसा कहते हैं। ये साधन यह करण साधन अपने में गुण है, यह साधन है। यह षट्कारक आते हैं न अन्त में? शक्तियों में आयेंगे। शक्ति चलती हैं न, उसमें करण साधन है, (ऐसा शक्ति में लिया है) अपना करण नाम का अन्दर गुण है, यही साधन निर्मल में चढ़ने का है व्यवहार-फ्यवहार साधन है ये नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु कहा है न पंचास्तिकाय में? भिन्न साध्य साधन भाव। यह तो भिन्न साधन का आरोप देकर बात की है। (भिन्न) वस्तु कहीं साधन है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

जिस प्रकार पानी, भावार्थ - अपने स्वाद से भ्रष्ट हुआ... आहाहा! पानी अपने शीत और स्वच्छता और प्रवाहरूपता का स्वाद छोड़कर... आहाहा! **नाना वृक्षरूप परिणमता**

है... नाना अर्थात् अनेक। नाना आया था न अपने ? नाना, अनाना। बीस बोल में यह आया था। हम तो संस्कृत-बंस्कृत बहुत जानते नहीं इसलिए ऐसा हो तो इसमें से ले लेते हैं। आहाहा! समझ में आया ? संस्कृत किया था थोड़ा पाँच सन्धि, पहले। परन्तु पीछे छोड़ दिया, क्योंकि संस्कृत सुने बाद में प्रश्न किया, संस्कृत पढ़ानेवाले को कि, ये दसअट्ठा का अर्थ क्या ? कि भई ये तो गुरुगम से समझ में आये। दस और आठ अठारह लेना के दस और आठ, अस्सी दस आठे अस्सी लेना ? तब संस्कृत से पता नहीं लगता। आहाहा!

मुमुक्षु : भाषा का पता लग सकता है भाव का पता कैसे लगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो प्रश्न किया था मैंने। जो पढ़ाते थे संस्कृत (उससे)। एक महीने या डेढ़ महीने पढ़ा था पाँच सन्धि। सार्थ व्याकरण का गृहस्थाश्रम में। तो यह हम प्रश्न किया कि आप पढ़-पढ़ के सुनके पढ़े हैं या यह अर्थ समझते हैं या नहीं ? बाद में पढ़ना। उसने कहा कि हम तो नहीं समझते कि क्या अर्थ है उसका। दस अध पाठ आता है। पाँच बोल, पंचरंगी आते हैं न ? दस अध। दस के आधे पाँच रंग। दस अध अर्थात् हमें किस प्रकार समझना ? ये तो गुरुगम और संस्कार के बिना समझ में नहीं आता। संस्कृत से नहीं समझ में आता। दस अध बनाकर आता है। पंच वर्ण हैं न ? तो उसका दस अध अर्थ किया है दस से आधा। पाँच वर्ण।

यह तो कहा था न एक बार यह ? एक पण्डित बड़ा आया था काशी का। (संवत्) १९८० के वर्ष में। १९८०-८०। वहाँ बोटाद में आया था। व्याख्यान सुनते थे। बेचारा नरम व्यक्ति था। मैंने कहा, तुम बहुत संस्कृत पढ़ हो तो मैं एक प्रश्न करता हूँ, उसका अर्थ करो। संजोगी भवस्थ केवली। ऐसा मैंने कहा। १९८० की बात है। कितने वर्ष हुए ? बीस और तेतीस—त्रेपन। इसका अर्थ करो। तो यह कहे, सं ऊपर बिन्दी चढ़ाई। देखिये, संयोगी जीव केवली। परन्तु मैंने कहा, संयोगी जीवस्थ भवस्थ केवली का अर्थ करो। तो कहा, ये संजोगवाला भव में रहा केवली। ऐसा अर्थ किया। परन्तु यह अर्थ ऐसा है ही नहीं। यह बिन्दी झूठी है। यह ऊपर का बिन्दु है न संजोगी, ये बिन्दी झूठी है। संजोगी भवस्थ केवली। जोग में आया भव में रहा केवली, ऐसा अर्थ है। वह बनारस का आया था पण्डित। नरम था बेचारा। तो व्याख्यान सुनते थे। मैंने कहा, तुम बहुत पढ़े हो तो संस्कृत

के इस शब्द का अर्थ करो। तो ऐसा किया—संजोगी—संजोगवाला भव में रहा केवली। ऐसा अर्थ है ही नहीं। बिन्दी झूठी है। ऐ... बापू! यह संस्कार। नहीं कहा? कहा न?

आत्मिक संस्कार न रहा, राग में संस्कार डाल दिया। यहाँ संस्कार डालना चाहिए इसके बदले संस्कार यहाँ डाले। समझ में आया? पुण्य और पाप में संस्कार बुद्धि से चार गति में भटकता है। और अपने में संस्कार लगाने से, में आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं विकार नहीं, मैं शुद्ध चिदानन्दघन हूँ — ऐसे संस्कार डालने से उसको अनुभव होकर संसार का अन्त आ जाएगा। समझ में आया? मांगीलालजी! यहाँ तो यह बात है। पैसा-वैसा की यहाँ बात नहीं। आहाहा! देखा! किया न?

नाना वृक्षोंरूप परिणमता है... नाना अर्थात् अनेक वृक्षरूप परिणमता है। कौन? पानी। उसी प्रकार जीवद्रव्य **अपने शुद्धस्वरूप से भ्रष्टा हुआ।** आहाहा! **अनेक प्रकार चतुर्गति पर्यायरूप...** नाना प्रकार। वहाँ नाना लिया। अनेक प्रकार। मनुष्यगति, देवगति स्वर्ग सभी गति। चारों गति पराधीन दुःखरूप (हैं)। आहाहा! हैं? चारों में आया न? चार **अनेक प्रकार की चतुर्गति पर्यायरूप अपने को आस्वादता है।** देखो! चतुर्गति में स्वर्ग की गति भी आयी। यह दुःखरूप आस्वादते हैं। वहाँ दुःख ही है। धूल में कहीं सुख नहीं स्वर्ग में। पंचास्तिकाय में लिया है प्रथम गाथा में कि चारों गति पराधीन हैं। कोई स्वर्ग में सुख है, धूल भी नहीं है सुख यहाँ तो। सुख तो भगवान आत्मा में है। आहाहा! समझ में आया? बहुत वैभव और ऋद्धि बहुत हों इसलिए सुखी है (ऐसा नहीं)। आहाहा!

चतुर्गतिरूप पर्यायरूप अपने को आस्वाद है। जैसे पानी वृक्ष पर चढ़ता है तो पानी का स्वाद छूट जाता है। ऐसे अपना स्वाद छोड़कर चार गति पर्याय में अपने को आस्वादते हैं। वहाँ स्वाद लेता है राग का। आहाहा! नरक में तो द्वेष का स्वाद, स्वर्ग में तो राग का स्वाद। परन्तु स्वाद विकार का स्वाद है सब जगह। आहाहा! अपने आनन्द के स्वाद से भ्रष्ट हुआ विकार के स्वाद में चढ़ गया। आहाहा! ये चार गति में विकार का स्वाद लेते हैं। चार गति में विकार का स्वाद। स्वर्ग में भी? आहाहा!

यह कहा था न एक बार? उसमें है कि जैसे नरक में स्वर्ग के सुख की कल्पना नहीं। स्वर्ग में नरक के दुःख की स्थिति नहीं। सूरज में अन्धेरा नहीं। वैसे भगवान आत्मा

में विकार नहीं त्रिकाल में। आहाहा! परमाणु में पीड़ा नहीं। परमाणु में पीड़ा होती है कहीं? दो परमाणु में पीड़ा तो है नहीं, परन्तु वहाँ विभावरूप है। दो परमाणु से स्कन्ध होता है, वह विभावरूप है। और एक परमाणु स्वभावरूप है। फिर भी पीड़ा उसमें नहीं। आहाहा! दुःख नहीं। वैसे सुख भी नहीं। वह तो जड़ है। आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प नहीं, संसार का सम्बन्ध नहीं। यह आनन्द का नाथ परमात्मस्वरूप से विराजता है। आहाहा! इसकी दृष्टि कर और सम्यग्दर्शन कर। तेरे संसार का अन्त आयेगा। इसके बिना संसार का अन्त आनेवाला नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परमाणु में पीड़ा नहीं तो स्कन्ध में पीड़ा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी में पीड़ा नहीं। यह तो कहा न? यह तो परमाणु एक ही है, छोटा है, पृथक् है... पृथक् है... पृथक् है... स्वभाविक है तो उसमें पीड़ा नहीं है। ऐसे भगवान आत्मा में पीड़ा नहीं। आहाहा! समझ में आया? स्वर्ग में नारकी का दुःख नहीं, नारकी को स्वर्ग का सुख नहीं, ऐसे भगवान में संसार की गन्ध नहीं। आहाहा! भगवान कौन? आत्मा, हो! आहाहा! संसार, यह उदयभाव है। आहाहा! स्वभाव को छोड़कर उदयभाव में जुड़ गया है। आहाहा! ये सब दुःखी हैं, कहते हैं। बाहर में मानते हैं कि सुखी हैं। एक आदमी कहता था बहुत वर्ष पहले, हमारा समधी सुखी है। नानालालभाई। करोड़पति है न? उसका समधी है। वढ़वाण से आया था। चूड़गर कोई चूडगर था। हमारा समधी सुखी है। सुखी की व्याख्या क्या? सुखी की व्याख्या क्या? पैसा ज्यादा हो, स्त्री, लड़का (अच्छे हों), यह सुखी? यह व्याख्या है? आहाहा! यहाँ हुआ था, हों! नाम भूल गये। मणिभाई? हाँ, मणिभाई। चूडगर। तुम्हारा साला है न? आहाहा! एक दूसरा आता है यह अलग, हों! तुम्हारा एक साला आता है न? नारायणभाई? यह अलग। परन्तु यह मणिभाई उस दिन कहता था। बहुत वर्ष हुए। स्वाध्यायमन्दिर में (बात हुई थी)। हमारा समधी सुखी है। करोड़पति है न? नानालाल कालीदास। अरे! सुखी की व्याख्या क्या? क्या कहा? धूल का ढगला है, इसलिए सुखी है?

यहाँ तो चारगति में दुःखी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वर्ग में दुःखी है प्राणी। आहाहा! **शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट हुआ एक गति में अपने को आस्वादते हैं।** आहाहा! मैं

मनुष्य हूँ, मैं क्रोधी हूँ, मैं मानी हूँ और मैं लोभी हूँ। आहाहा! मैं स्वर्गी हूँ, मैं देव हूँ और मैं देवी हूँ — ऐसे विचार का स्वाद; अपने स्वरूप के स्वाद से भ्रष्ट हुआ, उस स्वाद को लेता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

हुआ तो कैसा हुआ? 'बलात् निजौधं नीताः' आहाहा! अब सुल्टा हुआ। उल्टा तो होता है, ये सुल्टा हो गया है। सवलो समझे? अपने स्वरूप में (आया)। **बलजोरी से अपना शुद्धस्वरूप लक्षण निष्कर्म अवस्था उस-रूप परिणमा है।** आहाहा! **'बलात् निजौधं नीताः'** निजौघं... आहाहा! ये राग और विभाव से छूटकर अपने पुरुषार्थ से। आहाहा! **'निजौधं'** अपना ओघ। आनन्द का ओघ पड़ा है बड़ा, उसमें वो आ जाता है-परिणमता है। समकिती... आहाहा! समझ में आया? देखो! **बलजोरी से...** बस, ऐसा लो पुरुषार्थ से। उसका अर्थ ये कि कर्म का अभाव हुआ तो यहाँ पुरुषार्थ समकित का हुआ, ऐसा है नहीं। अपने पुरुषार्थ से। परसन्मुख का झुकाव छोड़कर, अपना स्वभावसन्मुख का वलण-झुकाव किया, यह अपने पुरुषार्थ से किया है। आहाहा! समझ में आया? निष्कर्ता 'निष्कर्म अवस्था' **'निजौधं'** की व्याख्या की। निज ओघ। **अपना शुद्धस्वरूप लक्षण निष्कर्म अवस्था उसरूप परिणमा है।** सम्यग्दर्शनरूप परिणमा है, यह अपना **'निजौधं'** का परिणमन है। अपना शुद्ध पूरा पड़ा है ओघ गंज, उसका यह परिणमन है, आहाहा! ऐसी बात अब ख्याल में नहीं आती और बाद में दूसरी जगह चढ़ जाता है और जिन्दगी व्यर्थ चली जाती है। आहाहा!

इसका संस्कार रहे तो यह आगे बढ़ जाये। समझ में आया? राग से भिन्न मेरी चीज़ है, मेरी चीज़ में तो राग है ही नहीं। और राग से मेरी कल्याण की पर्याय-परिणति कभी परिणमती नहीं। आहाहा! **'निजौधं'** में मेरी दृष्टि हो तो मैं परिणमता हूँ शुद्धरूप से। अपने पुरुषार्थ से। तब सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहते हैं....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-९५

(अनुष्टुप्)

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम्।
न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति।।50-95।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'सविल्पस्य कर्तृ-कर्मत्वं जातु न नश्यति' [सविकल्पस्य] कर्मजनित हैं जो अशुद्ध रागादि भाव, उनको आपरूप जानता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव के [कर्तृ-कर्मत्वं] कर्तापना-कर्मपना, [जातु] सर्व काल [न नश्यति] नहीं मिटता है। जिस कारण से 'परं विकल्पकः कर्ता केवलं विकल्पः कर्म' [परं] एतावन्मात्र [विकल्पकः] विभाव, मिथ्यात्वपरिणामरूप परिणमा है जो जीव, वह [कर्ता] जिस भावरूप परिणमा है, उसका कर्ता अवश्य होता है। [केवलं] एतावन्मात्र [विकल्पः] मिथ्यात्व रागादिरूप अशुद्ध चेतनपरिणाम को [कर्म] जीव की करतूति जानना। भावार्थ इस प्रकार है — कोई ऐसा मानेगा कि जीवद्रव्य सदा ही अकर्ता है, उसके प्रति ऐसा समाधान कि जितने काल तक जीव का सम्यक्त्वगुण प्रगट नहीं होता, उतने काल तक जीव, मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि हो तो अशुद्धपरिणाम का कर्ता होता है, सो जब सम्यक्त्वगुण प्रगट होता है, तब अशुद्धपरिणाम मिटता है, तब अशुद्धपरिणाम का कर्ता नहीं होता।।50-95।।

श्रावण कृष्ण १३, रविवार, दिनांक ११-०९-१९७७
कलश-९५ - ९६, प्रवचन-९२

मान्यता में, विपरीत मान्यता में कितना नुकसान है और अविपरीत मान्यता में कितना लाभ है, इन दोनों की खबर नहीं। आहाहा! यहाँ '**सविकल्पस्य**' की व्याख्या। सविकल्प, ऐसा शब्द है न। विकल्पसहित। सीधा-सीधा अर्थ लें तो। '**सविकल्पस्य**' विकल्पसहित। विकल्पसहित की व्याख्या—जो कर्म के निमित्त के साथ उत्पन्न हुआ

पुण्य-पाप के भाव को अपना जानते हैं, वे सविकल्प है जीव। आहाहा! समझ में आया? परमात्मा का पन्थ तो भाई यह है, आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव उत्पन्न होते हैं, वे परमार्थ से तो यह कर्मजनित हैं। आहाहा! स्वभाव में कोई शक्ति के गुण (ऐसा) नहीं कि विकृत हो। पर्याय में विकृत होता है, यह पर्याय की योग्यता से, कर्म के संग से उत्पन्न होता है। आहाहा! अपना संग छोड़कर पर के संग के कारण राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा

भगवान आनन्द की मूर्ति प्रभु, अनाकुल आनन्द का रस भगवान, विज्ञान एकरस जिसका है, आज आया था। आहाहा! इसको छोड़कर उपाधि, मैल, चाहे तो शुभभाव हो या अशुभ हो, मूल रुका है शुभभाव में। समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, तपस्या, भक्ति, यात्रा का विकल्प जो है यह '**सविकल्पस्य**'। यह विकल्प है, यह विकल्प मेरा है, ऐसा '**सविकल्पस्य**'। बात थोड़ी सूक्ष्म पड़े। समझ में आया? '**सविकल्पस्य**' एक शब्द में इतना भरा है कि जो रागादि भाव, ये विकल्प राग है, यह अपने स्वरूप में नहीं, ऐसे राग को अपना जानते हैं, यह सविकल्प जीव मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? बाहर की बात तो क्या करनी, कहते हैं। आहाहा! शरीर और स्त्री और कुटुम्ब, और मकान, पैसा मेरा, ये तो स्थूल मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अरे! झूठा, बड़ा झूठा है।

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, '**सविकल्पस्य**' आहाहा! जिसने कर्मजनित विकारसहितपना माना है अपना। सविकल्प शब्द है न! यह रागसहित अर्थात् राग मैं हूँ, यह रागसहित अपने को मानता है कि राग मैं हूँ, यह सविकल्प जीव मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! है? सूक्ष्म बात है, भगवान! तेरा पंथ कोई अलौकिक है, भाई! वर्तमान में तो बहुत गड़बड़ी हो गयी। यह सत्य बाहर आया तो गड़बड़ी हो गयी। अरे! भगवान!

मुमुक्षु : सत्य से तो गड़बड़ मिटती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गड़बड़ी सुनी नहीं? कोटा में फिर तूफान हुआ है। सुना? ये तुम्हारे भाई ने भी कहा, ऐसा होता है, तब अपने को क्या करना? हमको सहन करना पड़े। कल रात्रि में कहा था। नहीं? रतनचन्दजी, यह भाई! ऐसा तूफान हुआ तो हमको क्या करना? सहन करना, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : सहन न हो तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सहन न हो, ऐसा नहीं। आहाहा! अपने जानने में रहना। उसमें क्या है ? चाहे तो जगत में फेरफार होओ। जो श्रद्धा सत्य है, उससे कोई भ्रष्ट कराये तो ऐसी कोई चीज़ है नहीं जगत में। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु अनाकुल आनन्द में विकल्पसहितपना अर्थात् आनन्दसहित प्रभु है, उसको रागसहित अर्थात् दुःखसहित जानना। आहाहा! समझ में आया ? सविकल्प का अर्थ चलता है। विकल्पसहित, ऐसा शब्द है न ? पण्डितजी! सविकल्प—विकल्पसहित, अर्थात् भगवान आत्मा तो आनन्दसहित है। उसमें विकल्प सहित-विकल्प मेरा है — ऐसा मानना। आहाहा! यह मिथ्यात्व है। यह निगोद का बीज है। आहाहा!

मुमुक्षु : इतना विकल्प...

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना विकल्प कहाँ ? बड़ा आनन्द के नाथ को छोड़ दिया और कृत्रिम क्षणिक राग को अपना माना। ये बड़ा... क्या कहते हैं तुम्हारे ? चोर। ये ककड़ी का चोर नहीं है यह। राजदरबार में घुसकर लूट की है। आहाहा! समझ में आया ? कहा था न एक बार ? भावनगर दरबार का। भावनगर दरबार हैं। तख्तसिंहजी थे। अभी तो चौथी पीढ़ी है। उसके पहले कृष्णकुमार थे, वह यहाँ आये थे। उसके पहले भावसिंहजी, उसके पहले तख्तसिंहजी (थे)। हमारी छोटी उम्र में उमराला आये, तब भावनगर... उसकी एक रखेली बाई थी। राखेली बाई समझे ? राखेली रखैल। वहाँ यह कमरे में सोता था। वहाँ एक आदमी आया, आदमी। चोर। सोने की घड़ी थी। वह तो बड़ा राजा है। उस समय पच्चीस लाख की आमदनी (थी)। अभी तो एक करोड़ की है। यह अन्दर आया किस प्रकार ? दरवाजे पर तो चौकीदार बैठते थे और कावा (हुक्का) पीते। कावा पीये तो नींद न आये नींद अर्थात् दरबार की पहरेदारी करते। जिससे कोई अन्दर प्रवेश नहीं कर सके। पूरी रात जागते और कावा पीवे। बूँद, बूँद बूँद नहीं होता ? क्या कहते हैं बूँददाना। बूँददाना नहीं समझे ? कॉफी पीते न बूँद की काफी होती है न ? (चाय) चाय नहीं, यह बूँद पीता बूँददाना होता है, कॉफी होती है, वह कॉफी पीये तो नींद नहीं आये अन्दर।

चोरी करनी थी, अब जाये कैसे ? गढ़ बड़ा, यह तो बड़ा पच्चीस-तीस हाथ ऊँचा। एक नसैनी बनायी। नसैनी क्या कहते हैं ? बाहर नसैनी रखी और नसैनी से चढ़ गये गढ़ के ऊपर। और नसैनी अन्दर ले ली। यहाँ से उतरे अन्दर दरबार में गये वह सोता था वहाँ। वहाँ सामान सोने की घड़ी थी, वह ले ली। बड़ी कीमत की। लेकर फिर नसैनी के ऊपर चढ़ा। फिर नसैनी से उतर कर चला गया फिर लोभ लगा। यह तो मुफ्त में मिली। लावो न, फिर दूसरी वस्तु लेने जाऊँ। फिर अन्दर उतर गया। गया और दरबार जग गया। दरबार था। वहाँ तलवार तो खुल्ली रखे। बन्द न हो। क्योंकि दरबार है न। खुल्ली तलवार पड़ी थी। एकदम दरबार ने देखा कि ये तो चोर है। बाई कहे, अहहं ! अरे ! हमारे दरबार गढ़ में इसमें भी जहाँ सोयें वहाँ चोर ? ये ककड़ी का चोर नहीं, यह राजदरबार का चोर है बड़ा। समझ में आया ? आहाहा ! बाद में बचा लिया रानी-बाई ने। मारे नहीं... मारो नहीं। यह तो बेचारा... गरीब...

ऐसे यहाँ आत्मा आनन्द के नाथ के दरबार में नहीं जाकर राग का विकल्प है, इसको अपना मानते हैं, वह बड़ा चोर है। आहाहा ! समझ में आया ? यह आया था न ? सर्वविशुद्धि अधिकार परिक्रमण अधिकार में आते हैं। यह चोर है। चोर। चोर है। आहाहा ! अपनी निधि को नहीं सम्हाल कर, अपने चैतन्य आनन्द और ज्ञान का अनादर करके, कृत्रिम क्षणिक दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का आदर करके, यह अपना है, ऐसा मानकर यह मिथ्यादृष्टि को विकल्प है, उसका यह कर्ता होता है। आहाहा ! बहुत तैयारी (चाहिए)। सत्य बहुत कठिन है, बापू ! आहाहा !

'सविकल्प' कर्म जनित है जो अशुद्ध रागादि भाव उनको आपरूप जानता है... है न ? सविकल्प की व्याख्या। **यह मिथ्यादृष्टि जीव के...** आहाहा ! राग अपना मानता है, ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव के **'कर्त.. कर्मत्व' कर्तापना-कर्मपना सर्वकाल नहीं मिटता...** आहाहा ! राग का कण-मैल, जहर, दुःख, उसको अपने माननेवाले को, राग मेरा कर्तव्य है और राग मेरा कार्य है, यह नाश नहीं होगा। यह कर्ता-कर्मपना होगा। आहाहा ! मणिभाई ! सोमचन्दभाई गये ? ठीक। व्यापार-ब्यापार, धन्धा करने... आहाहा ! अरे ! ऐसा समय कहाँ मिले ? बापू ! यह चीज़ क्या है अन्दर ? यह त्रिकाली आनन्द का नाथ अनादि-

अनन्त। अनादि-अनन्त अनन्त शक्ति सम्पन्न प्रभु शक्तिवान। अनन्त शक्तिसम्पन्न शक्तिवान अनादि-अनन्त वस्तु है, उसकी नजर नहीं करके, उसके अस्तित्व को श्रद्धा में नहीं लेकर क्षणिक विकारी मेरी चीज़ है, ऐसी श्रद्धा में लेनेवाले को उसका कर्ता-कर्मपना नाश नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! चिमनभाई! यह सब बाहर का... तुम्हारे क्या कहते हैं? स्टील का। ये तो कहीं कर सकता नहीं। पोपटभाई! तुम्हारे स्टील का है न कारखाना? वहाँ एकबार ले गये थे। बाद में कहा, ये स्टील लो। एकाध कलश। कहा, हमें स्टील का क्या करना? स्टील आती है न? स्टील। कारखाना है। जो वहाँ वढवाण... वढवाण। स्टील का लो एक कलश। भाई! हमारे स्टील का क्या करना है? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि यह लोहा जैसे जंगवाला है, वैसे यह राग जंगवाली चीज़ है, जंग है। अपना चैतन्यसूर्य में चैतन्य सोने में राग जंग है। यह राग अपना है, ऐसा माननेवाला रागसहित '**सविकल्पस्य**' मिथ्यादृष्टि है, उसके राग का कर्ता-कर्मपने का नाश नहीं होगा। आहाहा! थोड़े में... समझ में आया? है?

उनको आपरूप जानता है... व्याख्या यहाँ सविकल्प कहा न? तो रागसहित-रागसहित को अपना है ऐसा माननेवाला। विकल्पसहित का अर्थ यह। यह विकल्प चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, नामस्मरण आदि का विकल्प हो, परन्तु यह राग मेरा है, रागसहित हूँ, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि, राग मेरा कर्तव्य है और मैं करनेवाला हूँ — ऐसे कर्ता-कर्मपने का नाश कभी नहीं होता। नेमचन्दभाई! आहाहा! यहाँ तो अभी व्रत और तप और भक्ति करते हैं, इससे कल्याण होता है, ऐसा कहता है। यहाँ तो कहते हैं कि यह विकल्प उठते हैं व्रत, तप, आदि, इनको मेरा मानना, यह मिथ्यादृष्टि है। बहुत अन्तर है। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! भगवान! तेरा मार्ग तो अलौकिक है, नाथ! ओहोहो!

भगवान अनन्त आनन्द की चैतन्यशक्ति से चैतन्यरत्नाकर भरा है। उसका स्वामी न होकर, उसकी आस्तिक्यता छोड़कर, राग की आस्तिक्यता करनेवाला, राग का मैं कर्ता और राग मेरा कार्य, यह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! **सर्व काल नहीं मिटता... 'जातु'** है न? '**जातु**'। यह रागसहित अपने को माननेवाला, यह जीव को राग का कर्ता और कर्मपना कभी छूटता नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम आया। सुनने में कठिन पड़े, यह परिणमें

कब ? आहाहा ! जिस **कारण से... 'परं विकल्पकः कर्ता, केवलम् विकल्पः कर्म'** आहाहा ! एतावमात्र **विभाव-मिथ्यात्व-परिणामरूप परिणमा वो जीव, यह जिस भावरूप परिणमा उसका कर्ता...** रागसहित मैं हूँ, तो रागरूप परिणमता है। रागरहित भगवान है, उसका तो परिणमन है नहीं। क्योंकि यह रागरहित हूँ, ऐसी दृष्टि तो हुई नहीं। आहाहा ! रागसहित हूँ, इस कारण राग का कर्तापना और कर्म मेरा कार्य, यह छूटता नहीं इसका। **मिथ्यात्व-परिणामरूप परिणमा है...** वह तो। आहाहा ! कर्मजनित विकार अपना है, ऐसा मानता है, यह मिथ्यात्वरूप परिणमा है। आहाहा ! है ?

जो जीव जिस भावरूप परिणमे उसका कर्ता अवश्य होता है... रागरूप परिणमन हुआ तो उसका कर्ता है ही। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग भारी, भाई ! यहाँ तो अभी एक यात्रा करे, भक्ति करे तो कल्याण हो जाये। अरे ! प्रभु ! सुन तो सही, नाथ ! तू कहाँ गया ? प्रभु ! कहो, सेठ ! सर्राफ है, सर्राफ। ग्वालियर। लड़का करता होगा, लड़का। आहाहा ! यह कहते हैं। **भावार्थ इस प्रकार है कोई ऐसा मानेगा कि जीवद्रव्य सदा ही अकर्ता है...** ऐसा कोई माने कि जीवद्रव्य सदा ही राग का अकर्ता ही है सदा। ऐसा है नहीं। **उसके प्रति ऐसा समाधान है कि जितने काल तक जीव का सम्यक्त्वगुण प्रगट नहीं होता...** अपना आनन्दस्वरूप के अस्तित्व का भान नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्यदर्शन। सत्यदर्शन अर्थात् त्रिकाली भगवान सत्यस्वरूप परमात्मा भूतार्थ सत्यार्थ, उसकी दृष्टि जब तक न हो, तब तक राग मेरा है — ऐसा मिथ्यात्वभाव उसको परिणमता है। आहाहा ! कहो ! समझ में आया ?

कनुभाई ! ऐसी बात है। जज आया है न, भाई ! हीराभाई का कनु ! अपने हीराभाई का जज कनुभाई आया है न। अहमदाबाद जज है। २२०० का वेतन है। २२०० रुपये का मासिक (वेतन)। हम पहले उसके मकान में रहे थे न। सवा तीन वर्ष। उसके पिताजी का मकान था। यह बदल गया छोटे बाजार में वो धीरुभाई सो... है उसने ले लिया हम वहाँ रहे न अब १७००० में ले लिया है। धीरुभाई ने ले लिया है। हम वहाँ रहे थे न। (उसकी) यादगिरी के लिये १७००० में ले लिया। १७ समझे ? दस और सात। उसके मकान में हम रहे थे। धीरुभाई ने ले लिया है। यह जज है अहमदाबाद में जज है। २२०० का मासिक

वेतन है। यह भाई के पास बैठा है न। आहाहा! यह सुमनभाई का आठ हजार का पगार है। रामजीभाई का लड़का। मासिक आठ हजार। तो उसमें हुआ क्या? धूल। आहाहा! यहाँ तो, पैसा तो मेरा माने यह मूढ़ है, परन्तु राग अपना माने, यह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कहो, रतनचन्दजी! आहाहा! ऐसी बात, बापू! यह तो वीतराग का मार्ग है, प्रभु! वीतराग का मार्ग राग से उत्पन्न नहीं होता। रागरहित भगवान सत्यार्थ प्रभु, वीतरागमूर्ति प्रभु का आश्रय करने से सम्यक् सत्य दर्शन होता है। समझ में आया? तब राग मेरा कर्तव्य है और राग कर्म, यह बात छूट जाती है। आहाहा! है?

जितने काल तक जीव का सम्यक्त्वगुण प्रगट नहीं, उतने काल जीव मिथ्यादृष्टि है... अर्थात् स्वभाव की दृष्टि जब तक न हुई, तब तक विभाव की दृष्टि है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! **मिथ्यादृष्टि हो तो अशुद्ध परिणाम का कर्ता होता है...** असत्यदृष्टि-झूठी दृष्टि है, रागसहित अपने को माना, यह तो झूठी दृष्टि है और झूठी दृष्टि के कारण यह कर्ता होता है। आहाहा! **सो जब सम्यक्त्वगुण प्रगट होता है,...** है? **तब अशुद्ध परिणाम मिटता है...** भाषा देखो! सम्यग्दृष्टि को अशुद्ध परिणमन मिट जाता है। अशुद्ध परिणाम उसके हैं ही नहीं। आहाहा! अशुद्ध परिणाम आता है, यह उसका नहीं। उसका स्वामी नहीं। आहाहा! यह शक्ति आयेगी। स्वस्वामीसम्बन्ध। ४७वीं शक्ति है न? पण्डितजी! ४७वीं अन्तिम। स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति। बहुत गम्भीरता भरी है। इसका अर्थ यह किया कि अपना द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई, यह शुद्ध... यह अपना स्व और यह उसका स्वामी। राग स्व और राग का स्वामी सम्यग्दृष्टि नहीं। आहाहा! तो फिर यह पत्नी का पति और नरेन्द्र—नर का इन्द्र और नरेन्द्र और भूपेन्द्र और... आहाहा! धूल में है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जो **अशुद्ध परिणाम मिटता है, तब अशुद्ध परिणाम का कर्ता नहीं होता।** क्यों? कि जब अपना विभाव परिणाम को अपना मानता था, तब तक विभाव ऊपर दृष्टि थी, तब तक विभावरूप परिणमन था, तब तक विभाव का कर्ता-कर्मपना था। जब विभाव परिणाम मेरा नहीं, मेरी तो शुद्धचैतन्यघन वस्तु है, ऐसी दृष्टि हुई तो अशुद्ध परिणाम मिट गया। अशुद्ध परिणमन ही रहा नहीं। आहाहा! क्योंकि द्रव्य और गुण शुद्ध

है, उसका स्वीकार किया तो परिणाम में भी शुद्धता का ही परिणाम रहा, अशुद्धता रही नहीं। आहाहा! यह अशुद्धता है, यह ज्ञान में परज्ञेयरूप से जानने में आती है, अपनेरूप नहीं। समझ में आया?

अज्ञानी को अशुद्धता मारी है, ऐसी मान्यता के कारण कर्ता-कर्मपना खड़ा है और ज्ञानी को अशुद्ध परिणाम की दृष्टि छूट गयी है और शुद्ध द्रव्यस्वभाव की दृष्टि हुई है, इस कारण वहाँ अशुद्ध परिणमन है ही नहीं, शुद्ध परिणमन ही है। अशुद्ध परिणमन है, उसका ज्ञाता है तो उसका शुद्ध परिणमन ही है। आहाहा! ऐसी बात है। दूसरे कहते हैं, दया पालो, व्रत पालो (अर्थात्) धर्म हो गया। अरे! भगवान! ये दया का भाव राग मेरा है, व्रत का राग मेरा है, तब तक तो यह मिथ्यादृष्टि का अशुद्ध परिणमन है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि हुआ तो अशुद्ध परिणमन मिट गया, ऐसा कहते हैं। ये अशुद्ध होता है, परन्तु उसका ज्ञाता रहा, इसलिए मिट गया, ऐसा। समझ में आया? १२वीं गाथा में आया न? व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। तदात्वे—प्रयोजनवान है। १२वीं गाथा। राग होता है, परन्तु उसको जाननेवाला रहता है। तो जो जाननेवाला रहता है, वह कर्ता नहीं होता। तो जाननेवाला होता है, यह शुद्धरूप परिणमन करता है। अशुद्धरूप परिणमन अपने में नहीं लाता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञाता रहना यही प्रयोजन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है। ज्ञाता की पर्याय में ज्ञान हुआ उसका, परन्तु वह चीज़ नहीं आयी। समझ में आया? अशुद्धता नहीं आयी परिणाम में, परिणाम में अशुद्धता का ज्ञाता का जानने का परिणाम आया, परन्तु अशुद्धता नहीं आयी। इसलिए शुद्ध परिणमन में अशुद्ध परिणमन नहीं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा जरा कठिन पड़े, परन्तु यह समझने की (वस्तु है)। इस बिना उसका जन्म-मरण नहीं मिटेगा, भाई! आहाहा! कोई शरण नहीं। आहाहा! एकला पाप किया, और दुःख भोगेगा। आहाहा!

एक दृष्टान्त है। एक छोटाभाई था। इसके बड़े भाई को रोग हुआ तो इसकी सेवा की। सेवा करते-करते अण्डा भी ला दिया। अण्डा। अण्डा समझे? अण्डा नहीं आता? माँस... अण्डा। अण्डा लाकर दिया। छोटे भाई को-भाई को पता नहीं कि ये अण्डा है।

मिलाकर दिया। अब यह मरकर नरक गया। बड़ा भाई नरक में गया। और छोटे भाई के परिणाम जरा ठीक रहे तो वहाँ परमाधामी हुआ। देव तो परमाधामी उसको मारते थे। नारकी को ख्याल आया। भाई! मैंने तेरे लिये पाप किया था (और) तू मुझे मारता है? समझ में आया? ख्याल आया कि यह तो मेरा छोटा भाई है और मैं पूर्व में बड़ा भाई था। मैंने उसको माँस खिलाया था। अण्डा, मछली, उसको बताये बिना। तो उसके परिणाम में थोड़ा भवनवासी का देव हुआ, ऐसा परिणाम रहा। यह मरकर नरक में गया। नरक में यह परमाधामी मारता था। भाई! मैंने तेरे लिये पाप किया और मरकर नरक में आना पड़ा और तू मुझे मारता है? किसने कहा था? मैंने तुझसे कब कहा था?

मुमुक्षु : हिन्दीवालों की समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाषा गुजराती कहाँ है? हिन्दी होती है न? छोटे लड़के की भाषा हिन्दी तो है, गुजराती कहाँ आयी इसमें? इसके अन्दर अपने ऐसा है कि छोटा लड़का कहा, बड़ा भाई कहा, बड़ा भाई छोटे भाई को अण्डा लाकर दे। और वह बड़ा भाई मरकर नरक में गया। और वह छोटा था, वह परमाधामी हुआ। तो परमाधामी मारता था, उसको नारकी को। अरे... भाई! परन्तु मैंने तेरे लिये किया और तू मुझे मारता है? किसने कहा था तुझे मेरे लिये करना? मांगीलालजी! आहाहा! समझ में आया? अपने लड़के के लिये, पत्नी के लिये पाप करे, इन लोगों को पता नहीं है और बेचारे किसी के परिणाम अच्छे हों तो यह परमाधामी हो जाये और यह मरकर नरक में हो जाये। अरे... भाई! मैंने तेरे लिये किया। मुझे खबर थी? मैंने कहा था कि तू मुझे माँस दे, अण्डा दे, मछली दे। मैंने कहा था? तूने पाप किया था, तू भोग। सेठ!

मुमुक्षु : हमें क्या समझना?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ लो न जो समझना हो यह। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, प्रभु! जहाँ तक रागसहितपना अपना माना, वहाँ तक अशुद्ध परिणमन था। वहाँ तक अशुद्ध का कर्ता-कर्म था। परन्तु जैसे ही आत्मा ज्ञायक है, अशुद्ध परिणाम क्षणिक विकृत है, अविकारी मेरी चीज़ है, ऐसी सत्यार्थ की दृष्टि हुई, वह असत्यार्थ था। सत्यार्थ की दृष्टि हुई, तब शुद्ध परिणमन रहा, अशुद्ध परिणमन नहीं

रहा। अशुद्ध है, परन्तु उसका ज्ञाता-दृष्टा रहकर शुद्ध परिणमन है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भगवान! अभी तो मारके ऐसा बिगाड़ मारा है। अभी तो ऐसा हो गया है कि चोर कोतवाल को दण्ड देता है। ज्यादा चोर हों तो कोतवाल को दण्डते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यहाँ तो **अशुद्ध परिणमन मिटता है...** ऐसा कहा न? तो बिल्कुल सम्यक् हुआ तो अशुद्ध परिणाम बिल्कुल होता ही नहीं? होता है, परन्तु उसका ज्ञाता रहता है, यह शुद्ध परिणाम का कर्ता है यह। समझ में आया? अशुद्ध परिणाम होता है, परिणमन होता है, परन्तु ज्ञानी उसको अपने में न मानकर, उसका ज्ञाता रहता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! तो ज्ञाता-दृष्टा का परिणाम है, यह शुद्ध है और रागादि अशुद्ध है तो अशुद्धता का ज्ञाता रहता है। अशुद्ध का कर्ता मानता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग। अब यह आता है, देखो! ९६ (कलश)।

कलश-९६

(रथोद्धता)

य करोति स करोति केवलं
यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलम्।
यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित्
यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित्।।51-96।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-इस समय सम्यग्दृष्टि जीव का व मिथ्यादृष्टि जीव का परिणाम भेद बहुत है, वही कहते हैं-'यः करोति स केवलं करोति' [यः] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव [करोति] मिथ्यात्व, रागादि परिणामरूप परिणमता है, [स केवलं करोति] वह वैसे ही परिणाम का कर्ता होता है। 'तु यः वेत्ति' जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप परिणमता है 'स केवलं वेत्ति' वह जीव उस ज्ञानपरिणामरूप है, इसलिए केवल ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। 'यः करोति स क्वचित् न वेत्ति' जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व, रागादिरूप परिणमता है, वह शुद्धस्वरूप का अनुभवशील एक ही काल तो नहीं होता। 'यः तु वेत्ति स क्वचित् न करोति' जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव

शुद्धस्वरूप को अनुभवता है, वह जीव मिथ्यात्व, रागादि भाव का परिणमनशील नहीं होता। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यक्त्व, मिथ्यात्व के परिणाम परस्पर विरुद्ध हैं। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश होते हुए अन्धकार नहीं होता, अन्धकार होते हुए प्रकाश नहीं होता। उसी प्रकार सम्यक्त्व के परिणाम होते हुए मिथ्यात्व परिणमन नहीं होता। इस कारण एक काल में एक परिणामरूप जीवद्रव्य परिणमता है, अत: उस परिणाम का कर्ता होता है, इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्म का कर्ता, सम्यग्दृष्टि जीव कर्म का अकर्ता ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ।।51-96।।

कलश - ९६ पर प्रवचन

य करोति स करोति केवलं
यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलम्।
य: करोति न हि वेत्ति स क्वचित्
यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित्।।51-96।।

इसका श्लोक हिन्दी 'समयसार नाटक' में है।

करे कर्म सोई करतारा,
जो जानै सो जाननहारा।
कर्ता सो जानै नहिं सोई,
जाने सो कर्ता नहीं होई॥

चौपाई है। चौपाई कहते हैं ? देशी। उसमें। उसका श्लोक है। '**य: करोति स करोति केवलं**' '**करै करम सोई करतारा**', यह पहले पद का अर्थ है। राग करे, वह कर्ता राग का होता है। आहाहा! अशुद्ध परिणाम ऊपर जिसकी दृष्टि है, वह अशुद्ध परिणाम का कर्ता है तो केवल कर्ता ही है। और '**यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलम्।**' परन्तु जाननेवाला तो केवल जाननेवाला ही रहता है। आहाहा! पहले में '**करै कर्म सोई करतारा**', दूसरे में, '**जो जाने सो जाननहारा।**' समझ में आया ? आहाहा! क्या कहा ? कि जो कोई राग का परिणाम होता है और अशुद्ध परिणमन के ऊपर जिसकी दृष्टि है, वह तो राग का कर्ता,

केवल कर्ता ही है। और जो अशुद्ध परिणाम का कर्तापना छूटकर अथवा अशुद्धपने के ऊपर की दृष्टि छूटकर शुद्धस्वभाव के ऊपर दृष्टि हुई तो केवल जाननेवाला जाननेवाला रहता है। ये कर्ता नहीं। कर्ता, वह जाननहार नहीं और जाननहार, वह कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, बापू! भाव तो है ये है। भाई! आहाहा! अरे! चौरासी लाख के अवतार में डुबकी मारकर दु:खी प्राणी है। समझ में आया? इस राग के भाव को अपना मानकर, कर्ता होकर यह दु:खी है ये। नरक और निगोद में जाता है। आहाहा!

तो पहले ये कहा, **इस समय में, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव के परिणाम के भेद बहुत हैं...** ऐसा अर्थ लिया है। क्या कहते हैं? मिथ्यादृष्टि के परिणाम में और सम्यग्दृष्टि के परिणाम में बहुत अन्तर है, बहुत भेद है। आहाहा! भेद है न? भेद। '**यः करोति स केवलं करोति**' देखो! **जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व-रागादि परिणामरूप परिणमता है, वह वैसे ही परिणाम का कर्ता होता है... 'करै कर्म सोई करतारा',** ये उसकी व्याख्या हुई। आहाहा! जब तक ये पुण्य का परिणाम मेरा है, ऐसा मानकर करता है, वहाँ तक वह मिथ्यादृष्टि कर्तारूप परिणमता है। आहाहा!

बारीक बात है, बापू! ये तो। ये हैं बातें सूक्ष्म। लोहा काटे छैनी। छैनी छैनी होती है न लोहे की? ये काटे। तहाँ लकड़ी काटे? लोहे के दो टुकड़ा करना हो तो लकड़ी मारें तो टुकड़ा होता है? लोहे की छैनी चाहिए। आहाहा! ऐसे प्रज्ञाछैनी चाहिए यहाँ... आहाहा! प्रज्ञाछैनी अन्दर में राग मेरी चीज़ नहीं, मैं तो ज्ञायकस्वरूप हूँ — ऐसे प्रज्ञाछैने से सन्धि में मार दिया। आहाहा! क्योंकि राग और आत्मा के बीच सांध ही है, एकरूप हुआ ही नहीं कभी। सन्धि है। बीच में सांध है। भिन्नता की सांध है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा सुनने को भी नहीं मिलता बेचारे को, क्या करे? कहो, बाबूभाई! जयनारायण! एक बार भक्ति कर आया। यात्रा कर आया शत्रुंजय की, बाद में करो पाप चाहे जितना। हो गया, जाओ।

मुमुक्षु : हमारे गुरु ने सिखाया है हम क्या करें?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिखलाया, परन्तु उल्टा माना किसने? आहाहा! कोई ऐसा कहे कि तुम्हारे बाप को मेरे बाप ने पहले पाँच लाख रुपया दिया है। लाओ। मानो? तुम्हारे पिताजी ने मेरे पिताजी को पाँच लाख दिया है। पहले भव में। लाओ देवो। तो ये मानो?

ऐसे अज्ञानी कहनेवाला है परन्तु माना, अपने को रुचा है तो माना है। आहाहा! क्यों, जिनेश्वरदासजी! आता है। शास्त्र में ये सब बातें आती हैं। एक-एक। आहाहा! शास्त्र में सब बड़ी दिगम्बर शास्त्रों में गम्भीरता का समुद्र भरा है। आहाहा! ऐसा है। देखा है कि भाई! पिताजी ने पूर्व भव में उसके पिताजी को दिये हैं, ऐसा कहे, तो माने? आहाहा! ऐसे अज्ञानी ने कहा है और अज्ञानी ने माना है, ये तो उसकी रुचि से माना है। अज्ञानी ने कहा, इसलिए माना नहीं। ज्ञाता और जाननेवाला रहता है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, भगवान! भाव तो जो है, वह है, बापू! आहाहा! अरे! यह सत्य बात सुनने में न मिले और असत्य बात के पंथ में पड़े, प्रभु! तेरा अन्त कब आयेगा? आहाहा! क्या कहा?

दो पद में इतना समा दिया है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य गजब काम किया है! हजार वर्ष पहले चलते सिद्ध! आहाहा! भिक्षा के लिये जाते हों, टीका करते हों... आहाहा! तो कहते हैं कि हम तो ज्ञाता-दृष्टा हैं, प्रभु! हम तो ज्ञान और दर्शनस्वरूपी मैं हूँ न। मैं रागरूप नहीं। तो मैं तो ज्ञान-दर्शनस्वरूपी हूँ तो मेरी पर्याय में ज्ञाता-दृष्टापना आता है। राग का परिणमन मेरे में आया ही नहीं। आहाहा! तीसरी गाथा (कलश) में कहा समयसार '**कल्माषितायाम्**'। इसका तो जाननेवाला रहा कि मेरी पर्याय में दुःख है। प्रभु! मैं ये टीका करने के काल में मेरी दृष्टि द्रव्य के स्वभाव पर जोर होगा। उस काल टीका करने के काल में ये '**कल्माषितायाम्**' का नाश हो जायेगा। आहाहा! अरे! भगवान! यहाँ तो सत्य, वह सत्य है और असत्य, वह असत्य है, बापू! ये राग अपना मानना, वह असत्यदृष्टि है। असत्यदृष्टि कहो या मिथ्यादृष्टि कहो। मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि। और रागसति मैं नहीं, मैं तो आनन्द और ज्ञानसहित हूँ, ऐसे ज्ञाता-दृष्टा हुआ तो वहाँ ज्ञाता-दृष्टा का परिणाम रहता है, यह कर्ता होता नहीं अथवा अशुद्धरूप परिणमन करते नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा अधिकार है। आहाहा!

तेरा अधिकार ही यह है, ऐसा कहते हैं। तेरा अधिकार ज्ञाता-दृष्टापने का है तेरा। समझ में आया? तेरा अधिकार, अशुद्ध परिणमन का कर्ता होना, यह तेरा अधिकार है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! तू ज्ञातापने का, दृष्टापने का अधिष्ठाता है। अधिकारी पहले लिया, बाद में अधिष्ठाता लिया। आहाहा! क्योंकि भगवान! तेरी राग से तो दृष्टि हट गयी और कृत्रिम क्षणिक राग की पर्यायबुद्धि थी, वहाँ तक अशुद्ध परिणाम था। आहाहा!

अब यह क्षणिक बुद्धि छूटकर द्रव्यबुद्धि हुई। आहाहा! तो यह केवल ज्ञाता रहते हैं। अशुद्ध परिणामरूप परिणमते नहीं। **जो जाने सो जानन हारा।** जिनेश्वरदासजी! ये समयसार नाटक का है। आहाहा! बहुत भर दिया है। बनारसीदास ने इस श्लोक में से लिया है।

करे कर्म सोई करतारा,
सो जाने सो जाननहारा।
जाने सो कर्ता नहिं होई,
कर्ता सो जाने नहीं कोई॥

तुलसीदास ने चौपाई में ऐसा बनाया है। चौपाई में। तुलसीदास ने रामायण में कहा न? बनारसीदास ने चौपाई में बनाया। ये तुलसीदास मिलते थे। मिले थे उनको। उस समय तुलसीदास को मिला था। बाद में चेतन की रामायण ये देखिये। घट में ये रामायण है। आहाहा! ये बनाया था, मिले थे। बनारसीदास की दशा अलौकिक! कवि भी थे और स्थिति भी ऐसी थी। अब तो लोग दिगम्बर लोग कहते हैं कि अध्यात्म की भांग पीकर नाचते हैं। अरे! प्रभु! तुझे क्या हुआ? अरर..! भाई! आहाहा! अरर! अध्यात्म की भांग होती है? भगवान! अध्यात्म का तो अन्दर प्याला, अध्यात्म का तो निर्विकल्प प्याला होता है। भांग कैसी? आहाहा! क्या करें? प्रभु का विरह पड़ा। साक्षात् त्रिलोकनाथ का भरत में विरह पड़ा और... आहाहा! केवलज्ञान की उत्पत्ति का विरह पड़ा। भगवान का तो विरह पड़ा केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती। विरह पड़ गया। आहाहा! पिताजी गुजर जायें, लक्ष्मी का नाश हो जाये, बाद में लड़के विवाद करें। आठ लड़के हों। इस मकान में, मैं पहले से रहता हूँ। अब मुझे दो। परन्तु भाई! अपने पास पच्चीस लाख की पूँजी है और पाँच लाख का मकान है। इसमें से तुझे पैसे का भाग दें और मकान दें, यह कैसे होगा? लड़े, विवाद करे। आहाहा!

मुमुक्षु : यह दृष्टान्त लागू पड़ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टान्त—यहाँ भगवान का विरह, केवलज्ञान की ऋद्धि का नाश... आहाहा! और लड़के झगड़ा करें। पहला कहे, राग से लाभ होता है, दूसरा कहे आत्मा से लाभ होता है। बराबर है? आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १४, सोमवार, दिनांक १२-०९-१९७७
कलश-९६-९७, प्रवचन-९३

९६ कलश चलता है। भावार्थ बीच में थोड़ा लिया है। कहाँ तक आया ? क्या कहते हैं ? सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूप को अनुभवता है। बात बहुत सूक्ष्म है। धर्मी जीव अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप को अनुभवता है। इस कारण अशुद्ध दया, दान, व्रतादि के परिणाम का वह कर्ता नहीं होता। समझ में आया ? परिणाम होता है, परन्तु कर्ता नहीं होता। आहाहा! क्योंकि ज्ञानस्वरूप आत्मा चिदानन्द प्रभु, उसकी प्रभुता राग के करने में नहीं। राग के करने में तो उसकी दीनता है, मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! उसकी प्रभुता तो ज्ञानस्वरूप मैं, मैं आनन्दस्वरूप हूँ (इसमें है)। उसमें राग आया, उसका मैं ज्ञाता हूँ। मेरी क्रिया तो ज्ञान की और आनन्द की है। ऐसे अपने स्वरूप की प्रभुता में ज्ञाता-दृष्टापना भासता है, वह धर्म है। सम्यग्दृष्टि को ऐसा भासता है। अपना ज्ञाता-दृष्टा मैं हूँ, राग का तो जाननेवाला हूँ, राग का कर्ता, वह मैं नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, यात्रा, भक्ति के परिणाम आते हैं, तो भी धर्मी उसको ज्ञाता-दृष्टारूप से जानता है। यह मेरा कर्तव्य है या मेरी चीज़ है — ऐसा धर्मी मानता नहीं। आहाहा! ऐसा धर्म।

मिथ्यादृष्टि जीव, यह राग जो अशुद्ध परिणाम, शुभ हो या अशुभ हो, उसके ऊपर दृष्टि होने से यह मेरा कर्तव्य है ऐसा मानकर, यह मेरा कार्य है ऐसा मानकर स्वरूप से भ्रष्ट है। आहाहा! समझ में आया ? कठिन पड़ता है। लोगों को अभी व्यवहार करते-करते धर्म निश्चय हो, यह बात तो बहुत दूर रह गयी। परन्तु व्यवहार आता है, उसका कर्ता होता है, यह भी मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि भगवान आत्मा तो शुद्ध चिद्घन ज्ञानकन्द चिद्रस आत्मा है। ज्ञानरस, आनन्दरस, शान्तरस, वीतरागरस से भरा है। ऐसी जिसको दृष्टि हुई, वह राग का कर्ता होता नहीं। क्योंकि अपनी चीज़ में राग है नहीं। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म पड़ें, लोगों को। क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : है नहीं तो बाहर से कहाँ से राग आता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस बात में बहुत अन्तर हो गया। आहाहा!

भगवान अन्त:तत्त्व, अन्त:तत्त्व शुद्ध आनन्दकन्द का जब भान हुआ। सम्यग्दर्शन में आहाहा! यह आनन्दकन्द का वेदन हुआ, भास हुआ, अनुभव हुआ, तब तो वह शुद्ध परिणाम का कर्ता कहना, यह उपचार से है। आहाहा! क्योंकि राग का तो कर्ता नहीं। राग आता है, परन्तु उसको ज्ञातारूप से जानता है। तो उस ज्ञान परिणाम का कर्ता आत्मा और ज्ञान परिणाम कर्म, यह भी उपचार कथन है। कर्ता-कर्म दो भेद हो गये न ? आहाहा! समझ में आया ? जब अपनी ज्ञान पर्याय में राग जानने में आया। तो ये ज्ञान की पर्याय का कर्ता आत्मा और ज्ञान पर्याय अपना कार्य, यह जब उपचार है तो पर का कर्ता तो है ही नहीं।

मुमुक्षु : राग का कर्ता भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग ही पर है, परवस्तु की यहाँ (बात ही नहीं)। आहाहा! समझ में आया ?

ये कहते हैं, देखो! भावार्थ है न ? इस प्रकार के **सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के परिणाम परस्पर विरुद्ध हैं।** है भावार्थ ? छह लाईन छठवीं-पंक्ति। छठवीं पंक्ति नीचे से, नीचे से छठवीं पंक्ति। भावार्थ। **सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के परिणाम परस्पर विरुद्ध हैं। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश होते हुए अन्धकार नहीं होता।** आहाहा! सूर्य के प्रकाश के काल में अन्धकार नहीं होता। **अन्धकार होते हुए प्रकाश नहीं होता।** आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा नहीं होता कि आधा प्रकाश और आधा अन्धेरा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होता ही नहीं। प्रकाश और अन्धकार दोनों साथ रहते ही नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो राग का कर्ता और ज्ञाता का कर्ता, यह बात सिद्ध करना है। राग होता है, वह तो पहले आया। ज्ञानधारा और कर्मधारा दोनों ज्ञानी को भी होती हैं। धर्मी को भी ज्ञानधारा और कर्मधारा-रागधारा (होती है)। दोनों आ गयी हैं। दो होती हैं। परन्तु रागधारा का कर्ता आत्मा नहीं। क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप आनन्दमूर्ति प्रभु है। ऐसी जिसकी दृष्टि

में सूक्ष्म द्रव्यस्वभाव (आया)। आहाहा! सूक्ष्म द्रव्यस्वभाव दृष्टि में आया, उसको राग का कर्तापने का परिणमन उसको होता ही नहीं। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। आहाहा!

यह चैतन्य के प्रकाश में राग के अन्धकार का कर्ता होता ही नहीं। वहाँ राग-अन्धकार होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग होता है, परन्तु यहाँ राग का ज्ञान होता है। समझ में आया? यह ज्ञान में आत्मा है, राग में आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसी बात बहुत सूक्ष्म। इस प्रकार **सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के परिणाम परस्पर विरुद्ध हैं। जिस प्रकार दीपक का प्रकाश होते अन्धकार नहीं होता, अन्धकार होते प्रकाश नहीं होता, ऐसे सम्यक्त्व के परिणाम होते मिथ्यात्व के परिणाम नहीं।** आहाहा! अपना चिदानन्द भगवान सूक्ष्म द्रव्यस्वभाव का जहाँ भान हुआ, वहाँ राग का अन्धकार होता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? और जहाँ राग का एकत्वबुद्धि में राग का परिणमन है, वहाँ ज्ञान के प्रकाश का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अनन्त जन्म-मरण चौरासी का किया, यह राग की एकताबुद्धि से जन्म-मरण हुआ। चाहे तो शुभराग हो। भगवान तो स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन है। उसमें विकृतभाव का एकपना मानना, वही संसार, मिथ्यात्व संसार है। आहाहा! समझ में आया? शरीर, वाणी जड़, ये तो मिट्टी-धूल है। बहुत रूपवान शरीर हो सुन्दर और लठ्ठ जैसा। आहाहा! भाई! वह तो जड़ है, भगवान! वह चीज़ मिट्टी की है। जड़ की दशा मेरी है, प्रभु! यह भ्रमणा कहाँ से लाया? यहाँ तो इससे आगे जाकर राग जो शुभ उत्पन्न होता है, यह अजीव है, जड़ है, अन्धकार है। तो उस अजीव अन्धकार का कर्ता होता है, यह ज्ञान नहीं, यह तो अज्ञान है। आहाहा! और जो कर्ता होता है, वहाँ ज्ञान नहीं और ज्ञाता होता है, वहाँ कर्ता-राग का कर्ता नहीं। आहाहा! ये आया न?

इस कारण एक काल में एक परिणामरूप जीवद्रव्य परिणमता है... क्या कहा? जीवद्रव्य एक काल में तो एकरूप परिणमता है। या ज्ञातारूप परिणमे, या रागरूप परिणमे। रागरूप परिणमे तो अज्ञानी है। ज्ञातारूप परिणमे तो यह धर्मी है। इसको क्यों धर्मी कहा? कोई कहे कि ज्ञानी है तो ज्ञानी तो कोई ऊँचा होगा। आहाहा! परन्तु ज्ञानी कहो या धर्मी कहो, एक ही बात है। कोई (ऐसा कहे कि) ज्ञानी तो (इसको कहते हैं) बहुत ज्ञान उत्पन्न हो वो ज्ञानी। इसकी यहाँ बात नहीं। यहाँ तो आत्मा आनन्दप्रभु चिद्घन का ज्ञान हुआ, यह

धर्मी। यह ज्ञानी, यह धर्मी। और यह धर्मी राग का कर्ता होता नहीं। क्योंकि वह अपनी चीज़ में यह विकल्प है नहीं, क्योंकि असद्भूतव्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार आता है। असद्भूतनय का विषय है। असद्भूत अर्थात् मेरी चीज़ में नहीं। परन्तु धर्मी परज्ञेयरूप उसको जानता है। अज्ञानी, राग मेरा है — ऐसा स्वज्ञेयरूप मानते हैं। यह दो (बीच) पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा!

एक काल में एक परिणामरूप जीवद्रव्य परिणमता है, अतः उस परिणाम का कर्ता होता है। आहाहा! **मिथ्यादृष्टि जीव कर्म का कर्ता, सम्यग्दृष्टि जीव कर्म का अकर्ता...** योगफल लिया। आहाहा! जिसकी दृष्टि शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति पर है, वह मिथ्यादृष्टि है, वह राग का कर्ता होता है। बाबूभाई! यह सब सूक्ष्म है। तुम्हारे वहाँ सुने ऐसा नहीं, सुने ऐसा नहीं अहमदाबाद में ये तुम्हारी पोल में तो बहुत है एम येने घर गया था न एक बार? चिमनभाई गये, गये हाँ ठीक। दिखती नहीं।

मुमुक्षु : सबकी हाजिरी लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ बैठते थे न! इसका भाई त्रंबकभाई का छोटाभाई है। पैसा बहुत पैसा है। चला गया, यहाँ बैठता था। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी क्रोधरूप नहीं परिणमता?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : क्रोध होता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है, उसका जाननेवाला रहता है। आहाहा! लड़ाई में भी समकिती होता है। थोड़ा अंश द्वेष का आता है, परन्तु उसका ज्ञाता-दृष्टा रहकर द्वेष का कर्ता नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : एक ही समय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही समय है। राग-द्वेष तो होता है या नहीं? कर्मधारा होती है, परन्तु उसका कर्ता नहीं होता। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव का पंथ कोई अलौकिक है। लोगों ने अजैन को जैनपना मान लिया है। समझ में आया?

यह राग को धर्म, यह अजैनपना है। दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति का भाव, यह धर्म (मानना), यह अजैनपना है। आहाहा! अजैन है।

मुमुक्षु : रागादि को धर्म मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधर्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : करना नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है, ज्ञानी को यह होता है, आता है परन्तु कर्ता नहीं। अपना है, ऐसा मानते नहीं। आहाहा! समझ में आया? प्रभु का मार्ग भिन्न है, नाथ! तेरी प्रभुता।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि चैतन्य तेरी प्रभुता, राग के करने में तेरी प्रभुता नहीं, भाई! आहाहा! यह तो व्यवहाररत्नत्रय का कर्ता (होना), यह तेरी प्रभुता नहीं, यह तो पामरता है। आहाहा! तेरी प्रभुता तो राग के काल में राग को जानना, अपना स्वभाव का अनुभव करना, यह तेरी प्रभुता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! और ऐसा अधिकार सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होता। मार्ग ऐसा है। यह ९६ (कलश पूरा) हुआ। ९७।

कलश-९७

(इन्द्रवज्रा)

ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तः
ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः।
ज्ञप्ति करोतिश्च ततो विभिन्ने
ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च।।52-97।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'अन्तः' सूक्ष्म द्रव्यस्वरूप दृष्टि से 'ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासते' [ज्ञप्तिः] ज्ञानगुण [करोतौ] मिथ्यात्व रागादिरूप चिक्कणता इनमें [न हि भासते] एकत्वपना नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है-संसार अवस्था [रूप] मिथ्यादृष्टि जीव के ज्ञानगुण भी है और रागादि चिक्कणता भी है, कर्मबन्ध होता है, सो रागादि सचिक्कणता

से होता है। ज्ञानगुण के परिणमन से नहीं होता, ऐसा वस्तु का स्वरूप है। तथा 'ज्ञप्तौ करोतिः अन्तः न भासते' [ज्ञप्तौ] ज्ञानगुण में [करोतिः] अशुद्ध रागादि परिणमन का [अन्तः न भासते] अन्तरंग में एकत्वपना नहीं है। 'ततः ज्ञप्तिः करोतिश्च विभिन्ने' [ततः] उस कारण से [ज्ञप्तिः] ज्ञानगुण [करोतिः] अशुद्धपना [विभिन्ने] भिन्न-भिन्न हैं, एकरूप तो नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है-ज्ञान-गुण, अशुद्धपना देखने पर तो मिले के समान दिखता है, परन्तु स्वरूप से भिन्न-भिन्न है। विवरण-ज्ञानपना मात्र ज्ञानगुण है, उसमें गर्भित यही दिखता है। सचिक्कणपना, सो रागादि है, उससे अशुद्धपना कहा जाता है। 'ततः स्थितं ज्ञाता न कर्त्ता' [ततः] इस कारण से [स्थितं] ऐसा सिद्धान्त निष्पन्न हुआ- [ज्ञाता] सम्यग्दृष्टि पुरुष [न कर्ता] रागादि अशुद्ध परिणाम का कर्ता नहीं होता। भावार्थ इस प्रकार है-द्रव्य के स्वभाव से ज्ञानगुण कर्ता नहीं है, अशुद्धपना कर्ता है। सो सम्यग्दृष्टि के अशुद्धपना नहीं है, इसलिए सम्यग्दृष्टि कर्ता नहीं है।।52-97।।

कलश - ९७ पर प्रवचन

ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तः
ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः।
ज्ञप्ति करोतिश्च ततो विभिन्ने
ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च।।52-97।।

'अन्तः' सूक्ष्म द्रव्यस्वरूप दृष्टि से... देखो! भगवान आत्मा सूक्ष्म दृष्टि स्वभाववाला है। आहाहा! जिसमें राग की रुचि भी छूट गयी है, पाप की रुचि छूट गयी है, देह मेरा है, ये रुचि छूट गयी। यह तो जड़ की चीज़ है। आहाहा! लक्ष्मी और स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, यह परचीज़ हैं। यह मेरी हैं, यह मेरी रुचि छूट गयी। और राग मेरा है, यह छूट गयी और पर्याय जितना मैं हूँ, यह भी रुचि छूट गयी। क्या कहते हैं? देखो!

सूक्ष्म द्रव्यस्वरूप दृष्टि... समझ में आया? ९७ में कहीं लिखा है। ९७ पृष्ठ है? पृष्ठ है कहीं ९७ पृष्ठ है, ९७ पृष्ठ है। पृष्ठ ९७ गम्भीर। अनन्त शक्ति विराजमान। ९७ पृष्ठ हिन्दी। पहली लाईन गम्भीर। भगवान गम्भीर है। आहाहा! ९७ की पहली पंक्ति। पृष्ठ... पृष्ठ... हों!

आहाहा! अनन्त शक्ति से विराजमान। यह यहाँ लिखा है ९७ वांचकर उस दिन पढ़-पढ़कर लिखा है। यहाँ यह कहा **सूक्ष्म द्रव्यस्वरूप दृष्टि...** समझ में आया? आहाहा! यह अनन्त शक्ति से विराजमान सूक्ष्म प्रभु, उसकी दृष्टि में जो आया, यह सूक्ष्म द्रव्यस्वभाव दृष्टि है। आहाहा! उसमें 'ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासते' **ज्ञान मिथ्यात्व रागादिरूप चिकनापन उसमें एकत्वपना नहीं है।** आहाहा! जिसको सूक्ष्म द्रव्यस्वभाव की दृष्टि हुई, उसमें राग मेरा है — ऐसा भासता नहीं। आहाहा! गजब बात है। यहाँ तो अभी शरीर और यह वाणी और उसकी क्रिया और स्वाहा (बोलते हैं), वह मेरी (क्रिया)। भगवान को (अर्घ्य) स्वाहा करते हैं न? वह तो जड़ की क्रिया है। वाणी में स्वाहा (बोलते हैं) वह जड़ की (क्रिया) है। आहाहा! उसमें राग होता है, वह सूक्ष्मदृष्टि स्वभाववन्त को अन्तर में राग भासता नहीं। समझ में आया? आहाहा! मार्ग बापू! जन्म-मरणरहित (होना)। आहाहा! और सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख। जिसके फल में आदि अनन्त आनन्द का होता है, परन्तु अन्त नहीं, ऐसे अनन्त आनन्द का अनन्त काल रहना, उसका उपाय तो सूक्ष्म ही होगा न। आहाहा! समझ में आया? यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं कि शास्त्र बहुत सुना तो दृष्टि निर्मल हो जाये, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो द्रव्य सूक्ष्मदृष्टि से देखने में आया. आहाहा! यह द्रव्य सूक्ष्म है। विकल्प से भी जानने में नहीं आता. ये व्रत और तप और भक्ति के भाव स्थूल शुभभाव हैं, स्थूल शुभभाव है। यह 'पुण्य-पाप अधिकार' में आयेगा। स्थूल शुभभाव हैं। आहाहा! भगवान तो सूक्ष्म है अन्दर। सूक्ष्म द्रव्यस्वरूप दृष्टि। भाषा देखो! आहाहा! अर्थकार भी कितना करते हैं! पाठ तो '**अन्ताः**' लेना है। '**अन्ताः**' में राग भासता नहीं, इतना लेना है। '**अन्ताः**' अर्थात् क्या? '**अन्ताः**' में राग भासता नहीं ज्ञानी को। ये '**अन्ताः**' की व्याख्या क्या? आहाहा! आहाहा! '**अन्ताः**' **की दृष्टि...** अन्तर की दृष्टिवाले को राग भासता नहीं। ये सिद्ध करना है। और राग भासता है, उसको अन्तःतत्त्व भासता नहीं। राग स्थूल बहिःबुद्धि है, उसको—राग करनेवाले को अन्तःतत्त्व भासता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का। प्रभु अर्थात् तू। हों! तेरा (मार्ग)। तेरी प्रभुता को अन्तर में द्रव्य सूक्ष्मदृष्टि से देखने से राग उसको भासता नहीं, वह तेरी प्रभुता है। मेरे में राग नहीं, मेरे में तो आनन्द और ज्ञान है, ऐसा

भासना, यह चैतन्य की प्रभुता है। ये चैतन्य की बढाई है, चैतन्य की अधिकता है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी आती है, परन्तु भाव तो जो है ऐसा है भाई! अरेरे!

मुमुक्षु : भाव अत्यन्त गम्भीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गम्भीर है। पहला गम्भीर शब्द यहाँ लिखा है न? गम्भीर। ९७ पृष्ठ, ९७ पृष्ठ पहली पंक्ति। गम्भीर भगवान गम्भीर। आहाहा! वह फोड़ा होता है न? गम्भीर, गहरा। अन्दर गौठ बाँधे वस्त्र-कपड़े से बँधे। गम्भीर फोड़ा है कहते हैं बड़ा। तो उसकी हद आती है, ये तो गम्भीर है, भगवान! आहाहा! जिसका ज्ञान, दर्शन, आनन्द अनन्त-अनन्त गम्भीर शक्ति से भरा पड़ा प्रभु है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म द्रव्य दृष्टिवन्त को अन्तर में उसके सूक्ष्मदृष्टिवन्त को-जीव को **'ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासते' 'ज्ञप्तिः करोतौ न भासते' ज्ञानगुण और मिथ्यात्व-रागादिरूप चिकास में एकपना नहीं भासते।** एकपना है नहीं। क्या कहते हैं? सूक्ष्मद्रव्यदृष्टि से भगवान को देखते हैं, उसको अन्तर में राग की एकता नहीं भासती। समझ में आया? आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात (इसलिए) लोगों को फिर चढ़ा दिया। भाई ने कल कहा था न? कौन? जवान आया था न कल दाताराम। बांसगढ़, वह कल कहता था। मक्खनलालजी के साथ चर्चा हुई कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता है? तो उसने कहा कि एक द्रव्य का तो दूसरे द्रव्य के साथ अत्यन्ताभाव है क्या करें? अत्यन्ताभाव है, वह भाव क्या करे? जिसमें अभाव है, वह भाव स्पर्श कहाँ से करे? तो कहा, अध्ययन करो, अध्ययन करो।

मुमुक्षु : पद तो बताया। इसका जवाब क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाब ये-अध्ययन करो, अध्ययन करो। अब यह जवान मनुष्य छोटी उम्र का और ये बड़ा पंडित। आहाहा! भगवान!

यहाँ सूक्ष्मदृष्टि से देखने से तो पर का कर्तापने का प्रश्न है ही नहीं। आहाहा! मलिन अवस्था एक क्षण की एक समय की भूल विकार की, जिसने भगवान देखो, वह भूल का कर्ता नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? ये कहा न? द्रव्य सूक्ष्म **सूक्ष्म द्रव्य दृष्टि...** इसका अर्थ भगवान देखा—आत्मा। वह आया था न तुम्हारे गाने में? 'देखा हमने और न देखा, देखा सो श्रद्धाना' ये आत्मधर्म में आया न? पहला गायन है, ऊपर है। आहाहा!

सूक्ष्म द्रव्य स्वरूपदृष्टि से... उसका अर्थ है कि सूक्ष्मद्रव्य को देखा। 'हम और न देख्या' मैंने वहाँ दूसरी चीज़ नहीं देखी, उसमें। आहाहा!

मुमुक्षु : राग देखा ही नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं देखा, उसमें है ही नहीं।

मुमुक्षु : अज्ञानी ने तो देखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मिथ्यादृष्टिपने दृष्टि राग पर है तो देखते हैं। आत्मा कहाँ आया? राग को देखनेवाले को आत्मा दिखता नहीं और आत्मा के देखनेवाले को राग दिखता नहीं अन्दर। ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

यहाँ तो अन्तर की विवेकदशा की बात है, भगवान! राग से जहाँ विवेक हुआ - भेदज्ञान हुआ, तो राग से भिन्न पड़ा, तब उस चीज़ में राग कहाँ आया? समझ में आया? अतः राग से भिन्न पड़ी चीज़ की जहाँ दृष्टि हुई तो उसमें राग कहाँ है? राग तो भासे, अन्दर है ही नहीं तो भासे कहाँ से? आहाहा! ऐसा मार्ग है। अरे! सत् पंथ के शरण बिना जन्म-मरण नहीं मिटेगा, प्रभु! यह दुनिया की सिफारिश वहाँ काम नहीं करेगी। मैंने बहुत लोगों को समझाया है, लाखों लोग सम्प्रदाय में रहते हैं, टिके हैं। ये वहाँ नहीं काम आये वहाँ। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि, अन्तर **सूक्ष्म द्रव्य दृष्टि से... 'अन्तः'** राग नहीं भासता। सूक्ष्म द्रव्यदृष्टि से अन्तर में राग नहीं भासता। आहाहा! समझ में आता है? **ज्ञानगुण मिथ्यात्व-रागादिरूप एकपनां नहीं है।** भासते नहीं अर्थात् एकपना नहीं है। अन्तर द्रव्यदृष्टि से देखने से राग और ज्ञान एक नहीं। तो अन्दर राग भासता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि संसार-अवस्था (रूप) मिथ्यादृष्टि जीव के ज्ञानगुण भी है और रागादि चिक्कनता भी है, कर्म बन्ध होता है... राग से। संसारी जीव को राग भी है और आत्मा तो है, परन्तु उसको ये खबर नहीं। परन्तु है तो सही न आत्मा-ज्ञान? राग भी है और रागादि की चिक्कनता भी है। उस चिक्कनता से **कर्मबन्ध होता है वह रागादि की चिक्कनता से होता है...** वह राग के कारण ये बन्ध होता है, ज्ञानस्वभाव के

कारण नहीं। आहाहा! क्योंकि ज्ञानस्वभाव में राग का होना है नहीं और राग का जहाँ कर्ता है, वहाँ ज्ञानपना है नहीं। आहाहा! भारी बातें ऐसी। रागादि चिक्कनता से कर्म बन्ध होता है, ज्ञानगुण के परिणमन से नहीं होता; ज्ञानगुण के परिणमन से नहीं होता। रागरूप से परिणमन करते हैं अज्ञानी, उससे बन्ध होता है। ज्ञानस्वभाव है, उसकी दृष्टि से ज्ञान परिणमन में बन्ध है नहीं। आहाहा! **ऐसा वस्तु का स्वरूप है।**

'ज्ञानी करोतिः अन्तः न भासते' ज्ञानगुण में अशुद्ध रागादि परिणमन का अन्तरंग में एकपना नहीं है। नहीं भासते, भाषा तो ऐसी है। '**अन्तः न भासते**' पश्चात् स्पष्टीकरण (किया) **अन्तरंग में एकपना नहीं।** क्या कहते हैं? **ज्ञानगुण में अशुद्ध रागादि परिणमन...** भगवान ज्ञानस्वभाव में रागादि जो पुण्यादि, दया, दान, व्रतादि के भाव अशुद्धपना है। आहाहा! वह अन्तरंग में एकपना नहीं है। अन्तरंग में भासते नहीं। एकपना नहीं है, इसलिए भासते नहीं। समझ में आया? आहाहा!

राग की रुचि छोड़कर ज्ञ—स्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव, सूक्ष्म द्रव्यस्वभाव ऊपर दृष्टि करने से उसमें राग भासते नहीं। इससे उसको अशुद्ध परिणमन है नहीं कि उसको बन्धपना है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अरे! सुनने मिले नहीं, वह कब जाए आगे? अरे! जिन्दगी ऐसे ही चली जाती है। आहाहा! आँख बन्द करके देह छूट जाएगी। कहाँ चला जाएगा। निराधार। अकेला आया, अकेला चला जाएगा। आहाहा! अकेला ऐसा है नियमसार में। नियमसार में गाथा है। और अकेला मोक्ष जाता है। वहाँ किसी दूसरे की सहाय है नहीं। आहाहा! धर्मी को राग का रस छूट गया है। ज्ञान का रस आया है। आहाहा! ज्ञान के रस का अर्थ-ज्ञान में स्वभाव में एकाग्र है तो ज्ञान के आनन्द का रस आया, उसमें राग का रस छूट गया। अज्ञानी को राग के रस में ज्ञान के रस का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? दूसरी दृष्टि से कहें तो, सुबह भाषा ऐसी ली थी न? **सूक्ष्म द्रव्यस्वरूप दृष्टि...** रागरूपी दृष्टि में ज्ञानानन्द के रस का अभाव है और सूक्ष्म द्रव्यस्वभाव की दृष्टि में राग का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? श्लोक कर्ता-कर्म अधिकार। ऐसी बात समयसार सिवाय ऐसी स्पष्टता ७६ गाथा में की है। ६८वीं गाथा जीव-अजीव की कही, ७६ गाथा कहकर १४४ ली है। ऐसा स्पष्टीकरण कर्ता-कर्म का दूसरा कहीं नहीं। ऐसा स्पष्ट है।

आहाहा! यह तो पहले आया था? उसमें पहले आया था।

९२ में। '**समयसारम् चेतये**' है न? ७५ पेज है न? ७५। पौने सौ। पहली लाईन - पहली पंक्ति '**समयसारम् चेतये**' है? **शुद्धचैतन्य का अनुभव करना, यह कार्य सिद्धि है।** आहाहा! यह तेरा कार्य है और यह कार्य की सिद्धि है। आहाहा! राग का कार्य और पर का कार्य ये तो तेरे में हैं ही नहीं। आहाहा! आहाहा! ऐसा मार्ग है। क्या कहा? देखो! '**समयसारम् चेतये**' भगवान को चेत। चेत अर्थात् अनुभव कर, यह कार्य सिद्धि है। आहाहा! राग का करना, यह कार्य सिद्धि अज्ञानी की है। आहाहा! थोड़े शब्दों में बहुत-बहुत भरा है। कलश-टीका में बहुत गम्भीरता। अमृतचन्द्राचार्य अर्थात्... आहाहा! जिन्होंने पाँचवें काल में गणधर जैसा कार्य किया है। कुन्दकुन्दाचार्य ने तीर्थंकर जैसा (कार्य किया है)। ऐसी टीका। आहाहा! इस टीका का नाम आत्मख्याति है। आत्मा की प्रसिद्धि। टीका का नाम यह है। समयसार की टीका है न? ये टीका के कलश हैं न? आत्मख्याति आत्मप्रसिद्धि। भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञानस्वरूप की प्रसिद्धि करना है। आहाहा! राग की प्रसिद्धि नहीं। राग की प्रसिद्धि करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि तो आत्मा की प्रसिद्धि करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : मुद्दे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुद्दे की बात है, भगवान! बात तो ऐसी है। यह तुम्हारे सब बीड़ी के तम्बाकू के पैसे के लिए कानपुर जाते हो... सेठ! सेठ छोटा जाता है न कानपुर? पैसा बहुत लाते हैं वहाँ से। ये रजकण का एक-एक रजकण अपने कारण से आते हैं और अपने कारण से जाते हैं। कोई लाता हैं, देते हैं, यह बात है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा तेरी प्रभुता की शक्ति की प्रसिद्धि करते हैं। प्रभु! तेरा राग का कर्ता, ये तेरी प्रसिद्धि नहीं। यह तो अज्ञान की प्रसिद्धि है, प्रभु! आहाहा! तेरे ज्ञान के ज्ञातापने की पर्याय, राग हो उसको जानना, उस ज्ञान की पर्याय में तेरे आत्मा की प्रसिद्धि है। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! ये सब बाहर में थोथा रह गया सब। छह लड़के और दो करोड़ रुपया और बड़ा बँगला, यह तो होली है।

मुमुक्षु : ये सब छोड़कर आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो कहते हैं न। (सब) इसलिए तो यहाँ आये हैं। आहाहा! अरे! भाई! कहाँ जाना है? आत्मा में आना है यहाँ तो। जाना-बाना बाहर की बात है। समझ में आया? ये कहा न? '**समयसार चेतये**' यह समयसार, ये तेरा कार्य है। समयसार का अनुभव (होना), ये तेरा कार्य है, यह कार्य सिद्धि। ९२ में, ९२ में है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कि **ज्ञानगुण के परिणमन से नहीं होता; ऐसा वस्तु का स्वरूप है।** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा। ज्ञान शब्द से पूरा आत्मा। यह आत्मा की परिणति में राग का भासन होता ही नहीं। जिसको राग भासे, वहाँ आत्मा भासते नहीं और आत्मा भासे, वहाँ राग भासे नहीं। जिसमें राग की प्रसिद्धि भासती है वहाँ आत्मा की ख्याति-प्रसिद्धि नहीं। टीका और जहाँ आत्मा ज्ञान की, आनन्द की प्रसिद्धि में राग की प्रसिद्धि नहीं। आहाहा! अभी तो यहाँ झगड़े पर झगड़ा करता है बेचारा। पहले रामविजय एक बार जामनगर मिला। अरे! तुम तो यह व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति को व्रत धर्म नहीं। लोग बेचारे डूब जायेंगे, गलत करते हो। ऐसे कहता था। श्वेताम्बर में रामविजय एक। आहाहा!

मुमुक्षु : दिगम्बरवाले भी ऐसे ही कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ही कहते हैं। परन्तु यह तो कहा था सीधा। हम गाँव में थे और वहाँ से दस-पन्द्रह बीस आये थे मनुष्य। उसने भेजा था हमारे पास। अरे! यह तुम गलत करते हो। यह व्रत और तप और भक्ति, पूजा, उसको तुम धर्म नहीं कहते, यह गलती है। आहाहा! अरे! एक तो पैसावाला आया था। पैसावाला, नहीं? राजकोटवाला? रतिलाल। हाँ, यह सामने (आया था)। सेठिया है। आहाहा! पैसावाला है। पच्चीस-तीस-चालीस लाख। यह सामने आया था। पहले वैष्णव के स्थानकवासी था, पश्चात् देरावासी में हुआ। स्थानकवासी था। सबको लेकर आया था। रामविजय ने भेजा कि ये कानजीस्वामी क्या करते यह। व्रत, तप, भक्ति, पूजा को धर्म (कहते) नहीं। आहाहा! अरे! भगवान!

मुमुक्षु : फिर भी आप माने नहीं। फिर भी नहीं माने आप।

पूज्य गुरुदेवश्री : हम तो किसी की मानते नहीं, हमारी मानते हैं। आहाहा! और उस रामविजय के साथ चर्चा (हुई थी)। एक जेठाभाई है। अहमदाबाद में जेठाभाई, नहीं? वह श्वेताम्बर था। तो रामविजय का भक्त था, पहले। पीछे हमारा सुना तो उसको ऐसा

हुआ कि ओहो ! यह बात तो दूसरी। पीछे प्रश्न, ५० प्रश्न निकाले उसने। श्वेताम्बर साधु से पूछने को। जवाब दो। एक व्यक्ति का जवाब आया परन्तु ठिकाना नहीं उसका। पीछे रामविजय के साथ मिला। रामविजय के साथ, चर्चा करें हम। जेठाभाई आते हैं। अहमदाबादवाले।

मुमुक्षु : अभी तो नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी नहीं आया... पगड़ी पहनता है। लाल पगड़ी पहनते हैं। ये पहले आ गया है। उसका लड़का है वहाँ है मुम्बई।

चर्चा करें रामविजय कहे, परन्तु पहले ये मान्य है कि कर्म से विकार होता है, यह तुम्हें मान्य है ? पीछे चर्चा करेंगे। कर्म जड़ से विकार होता है, ये मान्यता। अरर्र ! कुकर्म है। अरेरे ! क्या हो ? प्रभु ! दुनिया में चलाना है। दुनिया बेचारे भोलीभट जैसी सभा। भान न मिले कुछ। यह... बाबूभाई ! जहाँ होय तहाँ जी हाँ... हाँ जी किया करे। आहाहा ! जी हाँ...। आहाहा ! यह तो कहते हैं, कर्म से विकार होता है, ऐसा मान्य है ? जेठाभाई कहे, यह हमारे मान्य नहीं है। आहाहा ! विकार तो अपने से होता... कर्म विचार क्या करें ? 'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई' जड़ हैं, वह क्या अपने को विकार कराते हैं ? समझ में आया ? अपनी पर्याय में पर्यायबुद्धि से विकार होता है। ये विकार का भी कर्ता कब छूट जाए कि जब द्रव्यस्वभाव की दृष्टि हो तो विकार का कर्ता छूट जाये। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : थोड़ा भी नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा भी नहीं होता। यहाँ तो पूरा होता है। आहाहा !

वह कहा न, **ज्ञानगुण में अशुद्ध रागादि परिणमन का अन्तरंग में एकपना नहीं।** इससे भासते नहीं। यह पाठ तो ऐसा है कि '**न भाषते**' स्पष्टीकरण यह किया कि, अन्तरंग में एकपना नहीं। इसलिए भासते नहीं यह। यह अर्थ किया। समझ में आया ? आहाहा ! भगवान चैतन्यज्योति निर्मलानन्द मुक्तस्वरूप विराजता है। मुक्तस्वरूप ही है भगवान आत्मा तो अनादि से। पर्याय में नहीं। वस्तु से। उस मुक्तस्वरूप की जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ राग भासते नहीं। एकपना नहीं, इसलिए राग भासते नहीं। आहाहा ! लॉजिक से तो कहते

हैं, न्याय से तो कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? है? **ज्ञानगुण को अशुद्ध रागादि परिणमन का अन्तरंग में न भासते, अन्तरंग में नहीं भासते।** क्योंकि अन्तरंग में राग और स्वभाव एक नहीं। इसलिए अन्तर में देखनेवाले को राग की एकता नहीं, अतः राग भासते नहीं। आहाहा! आहाहा! ऐसी बात सुनना कठिन पड़ती है। अरे! इसका कैसे जन्म-मरण मिटे? बापू! कोई साथी नहीं। आहाहा!

तीर्थंकर कहते हैं कि मेरे ऊपर तेरा लक्ष्य होगा तो राग होता। ऐसा तीर्थंकर कहते हैं। मैं परद्रव्य हूँ। तेरे द्रव्य का लक्ष्य छोड़कर मेरे ऊपर लक्ष्य करेगा तो तुझे राग होगा। और यह ऐसा कहते हैं मोक्षपाहुड़ में, '**परदव्वादो दुग्गई**' मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हम तेरे द्रव्य से परद्रव्य हैं। और हमारी भक्ति और हमारे ऊपर लक्ष्य जायेगा तो तेरी दुर्गति होगी। दुर्गति का अर्थ चैतन्य की गति नहीं। गति स्वर्ग की भले मिले, परन्तु वह दुर्गति है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कठिन पड़ता है, इसलिए लोग, निश्चयाभासी है, व्यवहार को मानते नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो। आहाहा! बापू! मार्ग यह है न, भाई! वस्तु की मर्यादा ही यह है कि वस्तु को देखने से राग की एकता नहीं, इसलिए मर्यादा में राग भासते नहीं।

मर्यादा पुरुषोत्तम पुरुष। रामचन्द्रजी को कहते हैं न? मर्यादा पुरुषोत्तम पुरुष। उसी प्रकार निज आत्मा पुरुषोत्तम पुरुष मर्यादा हैं। उसको देखने में राग भासते नहीं। इसके अन्दर में राग है नहीं। आहाहा! यह पुरुषोत्तम पुरुष आत्मा है—राम। 'निजपद रमे सो राम कहिये, राग में रमे सो हराम कहिये।' रतनचन्दजी! आहाहा!

यहाँ तो यह कहते हैं, **ज्ञानगुण को अशुद्ध रागादि अन्तरंग में अन्तः न भासते...** पाठ ऐसा है। **अन्तरंग में एकत्वपना नहीं।** इसलिए भासते नहीं। '**ततः ज्ञप्ति करोतिः च विभित**' क्यों (भासता नहीं)? किस कारण से **ज्ञानगुण और अशुद्धपना भिन्न-भिन्न है, एकरूप तो नहीं।** आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप और राग मलिनस्वरूप, दोनों एक नहीं। आहाहा! तो जिसको धर्मी-समकिती को सूक्ष्मस्वभाव दृष्टि से भिन्न भासित हुआ, वहाँ राग और आत्मा एक नहीं तो फिर यहाँ राग भासते नहीं। आहाहा! भिन्न है, ऐसा भासते हैं। ज्ञान करते हैं। आहाहा! समझ में आया? **कारण से ज्ञानगुण और अशुद्धपना भिन्न-**

भिन्न है, एकरूप तो नहीं। आहाहा!

जैसे वह नारियल होता है न? श्रीफल। तो उसमें जो ऊपर की छाल है, वह तो भिन्न है। काचली... काचली। क्या कहते हैं तुम्हारे। काचली है न, वह भिन्न है। काचली अर्थात् कर्म। छाल अर्थात् यह शरीर औदारिक का। काचली अर्थात् कार्माण शरीर। और काचली की ओर की लाल छाल होती है। जब वह खोपरापाक करते हैं, तब लाल छाल निकाल देते हैं। उसी प्रकार आत्मा में कर्म की तरफ की पुण्य-पाप के भाव लाल छाल हैं। यह लाल छाल के पीछे जो भगवान हैं, वह शुद्धचैतन्य गोला है। जैसे श्रीफल में लाल छाल के पीछे सफेद और मीठा गोला है। यह श्रीफल है। यह श्रीफल है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा। यह शरीर तो छाल ऊपर का। जड़ का माटी का और अन्दर कर्म है। काचली है, काचली को हिन्दी में क्या कहते हैं? काचली कहते हैं? कोई दूसरी भाषा है। नरेटी। हाँ यह, यह कहता था कोई। नरेटी कहता था। यह काचली कर्म जड़ मिट्टी है, धूल है, पर है और लाल छाल भी पर है। यह दया, दान के विकल्प, यह अन्तर स्वरूप में है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग। एक ही दुकान में यह माल मिलता है ऐसा है। नहीं? ऐसे भगवान की (यह) एक दुकान है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानगुण और अशुद्धपना भिन्न-भिन्न है... इस प्रकार की ज्ञानगुण और अशुद्धपना देखने पर तो मिले के समान दिखते हैं... भावार्थ है न? भगवान चैतन्यस्वरूप प्रभु, जैसे यह लाल छाल और श्रीफल एक जैसे दिखे। अथवा वह शक्करकन्द होता है। शक्करकन्द समझते हैं? शक्करकन्द। शकरिया कहते हैं। हमारे शक्करकन्द तो वह अध सेर-पौन सेर का शक्करकन्द हो तो ऊपर लाल छाल है यह भिन्न है और शक्करकन्द शकर अर्थात् मिठास का पिण्ड, यह शक्कर अर्थात् मिठास का पिण्ड, यह भिन्न चीज़ है। मिठास के पिण्ड में लाल छाल नहीं और लाल छाल में मिठास का पिण्ड नहीं। समझ में आया? आहाहा! दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

ऐसे भगवान आत्मा ज्ञानगुण और अशुद्धपना भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! सम्बन्ध दिखते हैं, एक दिखते हैं। परन्तु स्वरूप से भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! यह लाल छाल शक्करकन्द की और लाल भाग वह श्रीफल का, ये भिन्न हैं और अन्दर की चीज़ भिन्न

है। आहाहा! ऐसे भगवान अन्दर राग की छाल से भिन्न है। राग की छाल में आत्मा नहीं और आत्मा में राग की छाल नहीं। आहाहा! छाल कहते हैं? छिलका... छिलका। आहाहा! राग का छिलका, वह भगवान में नहीं आत्मा में, आत्मा में राग का छिलका नहीं। राग में आत्मा नहीं। आहाहा! अरे! भिन्न-भिन्न है।

नव तत्त्व हैं न? तो नव तत्त्व में पुण्य-पापतत्त्व भिन्न हैं और आत्मतत्त्व भिन्न हैं। ज्ञायकतत्त्व तो भिन्न हैं नौ में आया या नहीं? नौ में ज्ञायकतत्त्व, पुण्य-पापतत्त्व, आस्रवतत्त्व, बन्धतत्त्व, ये तो भिन्न हैं। समझ में आया? आहाहा! उस ज्ञायकतत्त्व में ये है नहीं। यदि हों तो नौ कैसे होंगे? भिन्न-भिन्न हैं तो नौ हो गये। आहाहा! मार्ग तो प्रभु का भाई! मार्ग ऐसा है। तेरा मोक्ष का पंथ तेरा मुक्तस्वरूप है, उसकी दृष्टि-ज्ञान में राग नहीं, यह, यह मोक्ष का पंथ है। मोक्षस्वरूप ही भगवान आत्मा है। उसमें राग नहीं। तो उसकी दृष्टि ज्ञान, रमणता में भी राग नहीं। और रमणता में ज्ञान और आनन्द की रमणता (होती है), यह मोक्ष का, पर्याय में मोक्ष का पंथ यह है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु स्वरूप में भिन्न **ज्ञानपनामात्र ज्ञानगुण है, उसमें गर्भित वही दिखता है...** आहाहा! श्रीफल में तो मिठास और सफेदाई दिखती है। वहाँ ये छाल दिखाती नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा में तो ज्ञान और शुद्धता ही भासती है। वहाँ राग भासता नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, भाई! दुनिया माने, न माने। दुनिया ऐसे कहती है कि यह तो निश्चय का (कथन है), व्यवहार को लोप हो जाता है। ऐसे हो। वस्तु तो ऐसी है। व्यवहार का लोप किये बिना निश्चय की प्राप्ति नहीं होती। समझ में आया? व्यवहार के पक्ष में चढ़ने से निश्चय नहीं मिलता। व्यवहार की रुचि छोड़ने से निश्चय की प्राप्ति होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : सच्चे व्यवहार की स्थापन हो जाता है। सच्चे व्यवहार का स्थापन...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है, परन्तु व्यवहार की रुचि छोड़ दे। व्यवहार चला जाता है तो सर्वज्ञ हो, तब व्यवहार नहीं रहता। आहाहा! व्यवहार छोड़ने का अर्थ अशुभ में आना, ऐसा अर्थ नहीं। यह तो पण्डितजी ने लिखा है उसमें। समझ में आया? तो हमसे पहले से ही कहते हैं बहुत बार। आहाहा! शुभरुचि... शुभ की रुचि छोड़ना। शुभ को छोड़कर अशुभ में आना, ये प्रश्न है नहीं। आहाहा! शुभ की राग की रुचि... क्योंकि स्वरूप

में राग है नहीं। यह चलता है न? देखो! **ज्ञानपनामात्र ज्ञानगुण है, उसमें गर्भित हो, वही दिखता है...** आत्मा को देखे तो ज्ञान और आनन्द ही दिखे। उसमें गर्भित ज्ञान और आनन्द ही दिखे। उसमें गर्भित राग दिखते हैं, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? मनुष्यपने के गर्भ में मनुष्यपना भासता है। वहाँ बन्दर और कुत्ते नहीं भासते जहाँ। उसी प्रकार भगवान के गर्भ में तो ज्ञान और आनन्द भासते हैं। वहाँ रागरूपी कुत्ता नहीं भासता वहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : गर्भ चीज़ बता दी आपने।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह गर्भ शब्द आया न। आहाहा! समझ में आया? पेट में मनुष्यपना जो आया, वह मनुष्यपना है। भले छोटा हो वहाँ। अभी पाँच इन्द्रिय विशेष स्पष्ट न हुई हों, पर है तो मनुष्य, यह तिर्यंच नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा में सम्यग्दर्शन में सारा परमात्मा भासते हैं। भले वहाँ चारित्र और वीतरागता पूर्ण न हो, परन्तु पर्याय में भासता है भगवान शुद्ध चिदानन्द। वहाँ उसके गर्भ में राग भासता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। ओहोहो! एक-एक कलश कैसा बनाया है। देखो! अमृतचन्द्राचार्य। करुणा विकल्प आया, करुणा हो गयी और टीका बन गयी। आहाहा! फिर भी यह कहते हैं कि विकल्प हमारे में है, ऐसा भासित नहीं।

मुमुक्षु : कलश में सागर भर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सागर भर दिया, गागर में सागर भर दिया। कलश, कलश होता है न? छोटा सागर। कलश जितना (छोटा) होता है ऐसे पूरा सागर भर दिया। आहाहा! स्वयंभूरमण समुद्र को बनाकर एक कलश में भर दिया (ऐसे)। आहाहा! अरे! प्रभु!

मुमुक्षु : सागर में बताया आपने। सागर में....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! सन्तों ने बहुत सरल मार्ग कर दिया है। अनुभवप्रकाश में कहा है। दिगम्बर सन्तों ने मार्ग बहुत सहला कर दिया है। सहला कहते हैं? सरल... सरल कर दिया है। आहाहा! उसमें उसने, उसमें उसको समझने में सरल पड़े, ऐसा कर दिया है। आहाहा! धन्नालालजी! **चिकासपना रागादि है, इससे अशुद्धपना कहा जाता है। 'ततः स्थितं' कारण से ऐसा सिद्धान्त निष्पन्न हुआ - सम्यग्दृष्टि पुरुष रागादि**

अशुद्ध परिणाम का कर्ता नहीं होता। क्योंकि उसमें भासते नहीं तो कर्ता होता नहीं। **इस प्रकार द्रव्य के स्वभाव से ज्ञानगुण कर्ता नहीं।** द्रव्य के स्वभाव से ज्ञानस्वरूप भगवान राग का कर्ता नहीं। **अशुद्धपने कर्ता है;...** यह अशुद्धपना अशुद्धपने का कर्ता है। ज्ञानस्वरूप नहीं। आहाहा! **परन्तु सम्यग्दृष्टि के अशुद्धपना नहीं है।** लो, ऐसा लेना है न! शुद्धपने कर्ता है तो सम्यग्दृष्टि के अशुद्धपना है नहीं। यह शुद्धपने की दृष्टि से शुद्धपना ही है। आहाहा! इसलिए सम्यग्दृष्टि कर्ता नहीं। इस कारण से सम्यग्दृष्टि कर्ता है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-९८

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि
द्वन्द्वं विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थितिः।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्नेपथ्ये वत नानटीति रभसा मोहस्तथाप्येष किम्।।53-98।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'कर्ता कर्मणि नियतं नास्ति' [कर्ता] मिथ्यात्व, रागादि अशुद्ध परिणाम परिणत जीव [कर्मणि] ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड में [नियतं] निश्चय से [नास्ति] नहीं है अर्थात् इन दोनों में एक द्रव्यपना नहीं है। 'तत् कर्म अपि कर्तरि नास्ति' [तत् कर्म अपि] वह भी ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड [कर्तरि] अशुद्ध भाव परिणत मिथ्यादृष्टि जीव में [नास्ति] नहीं है अर्थात् इन दोनों में एक द्रव्यपना नहीं है। 'यदि द्वन्द्वं विप्रतिपिध्यते तदा कर्तृ-कर्मस्थितः का' [यदि] जो [द्वन्द्वं] जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य के एकत्वपने का [विप्रतिषिध्यते] निषेध किया [तदा] तो [कर्तृकर्मस्थितिः का] जीव कर्ता ज्ञानावरणादि कर्म ऐसी व्यवस्था कैसे घटती है, अपितु नहीं घटती है। 'ज्ञाता ज्ञातरि' जीवद्रव्य अपने द्रव्यत्व से एकत्व को लिये हुए है। 'सदा' सर्व ही काल ऐसा वस्तु का स्वरूप है। 'कर्म कर्मणि' ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड अपने पुद्गलपिण्डरूप है। 'इति वस्तुस्थितिः व्यक्ता' [इति] इसरूप [वस्तुस्थितिः] द्रव्य का स्वरूप [व्यक्ता] अनादिनिधनपने प्रगट है। 'तथापि एषः मोहः नेपथ्ये वत कथं रभसा नानटीति' [तथापि] स्वरूप तो वस्तु का ऐसा है, जैसा कहा वैसा, फिर भी [एषः मोहः] यह है जो जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य की एकत्वरूप बुद्धि, वह [नेपथ्ये] मिथ्यामार्ग में [वत] इस बात का अचम्भा है कि [रभसा] निरन्तर [कथं नानटीति] क्यों प्रवर्तती है। इस प्रकार बात का विचार क्यों है। भावार्थ इस प्रकार है-जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य भिन्न-भिन्न है, मिथ्यात्वरूप परिणमा हुआ जीव एकरूप जानता है, इसका घना अचम्भा है।।53-98।।

श्रावण कृष्ण १५, मंगलवार, दिनांक १३-०९-१९७७
कलश-९८, प्रवचन-९४

कलश टीका, कर्ता-कर्म अधिकार, ९८ कलश है।

कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि
द्वन्द्वं विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थितिः।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्नेपथ्ये वत नानटीति रभसा मोहस्तथाप्येष किम्।।53-98।।

क्या कहते हैं? '**कर्ता कर्मणि नियतं नास्ति**' यहाँ यह लेना है कि आत्मा अज्ञानपने मिथ्यात्वभाव में राग-द्वेषरूप परिणमो परन्तु वह कर्मबन्धन की क्रिया यह कर्ता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा स्वभाव के भान बिना मिथ्यात्वभाव से रागादि अशुद्ध परिणामरूप परिणमता है। मिथ्यात्वभाव से। समझ में आया? आत्मा अपने चैतन्यस्वरूप का अस्तित्व है, उसकी दृष्टि का जिसका अभाव है, परन्तु अपने में मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेषरूप करता है, ऐसा अज्ञानी मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष को करे अज्ञानी, परन्तु यह समय जो कर्मबन्धन होता है, यह कर्मबन्धन की क्रिया आत्मा कर सकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? जब जितने प्रमाण में मिथ्याभ्रम और अज्ञान से राग-द्वेष उत्पन्न करते हैं, उतने प्रमाण में कर्म बँधते हैं ज्ञानावरणादि। फिर भी यह ज्ञानावरणी जड़ कर्म की पर्याय का कर्ता राग-द्वेष, मिथ्यात्वभाव नहीं। समझ में आया?

'कर्ता' मिथ्यात्व-रागादि अशुद्ध परिणाम परिणत जीव... ऐसा लेना है न? अपने स्वरूप की खबर नहीं, ऐसा उसका मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप परिणमता है जीव अनादि से। और उस समय में नये कर्म भी बँधते हैं ज्ञानावरणादि, परन्तु यह कर्मबन्ध की पर्याय को राग-द्वेष कर्ता नहीं। मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व और राग-द्वेष का कर्ता (होता है) परन्तु इस समय जो कर्म बँधते हैं, उस पर्याय का कर्ता अज्ञानी नहीं। आहाहा! तो जब कर्मपिण्ड में आत्मा का विकार नहीं और आत्मा के विकार में कर्मपिण्ड नहीं। समझ में आया? आहाहा! तो यह आत्मा का परिणाम हुआ, यह राग-द्वेष से मलिन भले हो, परन्तु वह जड़

की पर्याय करे ऐसा है नहीं। तो समतौल जैसा कर्म बँधता है, इसकी क्रिया का ये कर्ता नहीं। तो आत्मा देश सेवा कर सके (यह बात तो कहाँ रह गयी)।

मुमुक्षु : गुरु सेवा तो करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरुसेवा का अर्थ क्या? क्या पैर दबाना ऐसा है? पैर तो आत्मा के हैं नहीं। सेवा तो वे है कहते हैं, ऐसी मान्यता करना, यह सेवा है। समझ में आया? ऐसी बात है। यह बाल-बच्चों को पढ़ाना और सुधारना ये क्रिया आत्मा नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं। नहीं कर सकता।

मुमुक्षु : रुपया तो बहुत खर्च किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रामजीभाई ने तो ३५००० खर्च किये थे सुमनभाई के लिये। अमेरिका में। यहाँ कहते हैं कि कुछ किया नहीं। राग-द्वेष और मिथ्याभ्रान्तिरूप होओ। परन्तु पर की क्रिया कर सके, (ऐसा नहीं)। बाबूभाई! ये धन्धे, धन्धे की क्रिया, वाणी की क्रिया, शरीर की क्रिया... यहाँ तो जितना राग-द्वेष और मिथ्यात्व है। इस प्रमाण में कर्म बँधते हैं। तो भी कर्मबन्धन की पर्याय की क्रिया का कर्ता राग-द्वेष मिथ्यात्व नहीं। आहाहा! तो पीछे परद्रव्य की, देश सेवा करके और बालक को सुधार के बड़ा किया। आहाहा! समझ में आया? यह बहुत सूक्ष्म बात, बापू!

मुमुक्षु : तब बालक का क्या करें?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करें? वह अज्ञान करते हैं राग-द्वेष। करें क्या? पर को पर कहे। सुनते हैं सेठ! कहते हैं, क्या करना सुमनभाई के लिये? पैंतीस हजार खर्च करके पढ़ाया। धूल (कुछ) पढ़ाया नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! बालक, स्त्री, कुटुम्ब की कोई भी क्रिया आत्मा कर सके, यह तीन काल में नहीं। आहाहा! यहाँ तो जितना मिथ्यात्व और राग-द्वेषपना हुआ, उस प्रमाण में वहाँ दर्शनमोह और चारित्रमोह आदि का बन्ध पड़ा है, उसकी पर्याय का कर्ता मिथ्यात्व और राग-द्वेष नहीं। आहाहा! तो फिर पीछे पर की दया पाल सकता है और पर की हिंसा कर सकता है, ये बात आत्मा में है नहीं— ऐसा कहते हैं। हिंसा करूँ, ऐसा भाव करे, परन्तु हिंसा पर की कर सके, ऐसा तीन काल में नहीं। दया पालने का शुभराग करे, राग मेरा है — ऐसा मानकर अज्ञानी राग करे, परन्तु

पर की दया की क्रिया कर सके, यह तीन काल में नहीं। आहाहा! अभी तो यह लेना है। राग का कर्ता मिथ्यादृष्टि, यह यहाँ नहीं लेना है। यह लिया तो सही। परन्तु राग-द्वेष करो, मिथ्यात्वरूप परिणमो, फिर भी कर्म बन्धन की पर्याय का ये मिथ्यात्व राग-द्वेष कर्ता नहीं। मांगीलालजी! तो फिर ये व्यापार-धन्धे की क्रिया कौन करता है? दुनिया के थड़े बैठा हो। थड़े समझे क्या कहते हैं? गादी थरे बोलते हैं अच्छा बोले, हाथी के होदे बैठा हो (और ऐसा कहे) ऐसे करो, ऐसे लाओ। पैसा दो, पैसा लाओ, यह क्रिया तीन काल में आत्मा कर सकता नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यापार धन्धा बन्द कर दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापार-धन्धा बन्द कर दे, यह कर्ता कब था जो बन्द करे। यह कर सकता नहीं, तब बन्द करना ये रहा कहाँ? बन्द करना तो यह रहा कि पर की पर्याय को मैं कर्ता नहीं और मेरे राग-द्वेष कर्ता हूँ और यह राग-द्वेष मेरी चीज़ नहीं, मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा करना है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। अब यह लोग कहते हैं, ऐसा करना, वैयावृत्य करना, पर की वैयावृत्य करना। यह वैयावृत्य का भाव हो शुभ, परन्तु पर की सेवा चाकरी कर सके, परद्रव्य की पर्याय, कर्म के पिण्ड की पर्याय राग-द्वेष करे नहीं तो और पर की क्रिया राग हो और पर की क्रिया करे (ऐसा तो तीन काल में नहीं)। आहाहा! समझ में आया? सेठ! सच्ची बात ऐसी है।

मुमुक्षु : एक द्रव्य की दूसरे द्रव्य में पहुँच ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहुँच अन्दर में कहाँ जाता है? कहा न कि कर्मपिण्ड में मिथ्यात्व, राग-द्वेष नहीं और मिथ्यात्व, राग-द्वेष परिणाम में कर्मपिण्ड नहीं। आहाहा! मार्ग प्रभु का भारी, भाई! लोग कुछ के कुछ रास्ते चढ़ गये और मानते हैं कि हम धर्म करते हैं। आहाहा! अरे! जन्म-मरण के अन्त लाने की चीज़ यह समझे नहीं। यहाँ तो अभी परद्रव्य की पर्याय का कर्ता भी माने, यह तो बहुत बड़ा मिथ्यात्व है। अपने राग का कर्ता माने, जाने तो भी मिथ्यात्व है। आहाहा! परन्तु यहाँ यह बात लेना कि मिथ्यात्व और राग-द्वेष तो अज्ञानी कर्ता है। समझ में आया? अपनी पर्याय में, अपने अस्तित्व में भ्रान्ति, भ्रमणा और राग-द्वेष अपनी पर्याय में करते हैं अज्ञानी। परन्तु ये अज्ञानी कर्मबन्ध की

पर्याय में (कुछ करता नहीं)। यह राग-द्वेष वहाँ है नहीं। तो उसकी पर्याय का कर्ता कैसे हो? आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन काम।

यहाँ तो एक समय कहा था। पण्डितजी आये थे। पण्डितजी कहते थे, इन्दौर में हुआ था, पाँच-सात वर्ष पहले। पचास पण्डित इकट्ठे हुए थे। रात्रि में भाषण किया। परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर जैन नहीं। अरे! भगवान! क्या करना है तुझे? बात ये कि ये सोनगढ़ के सामने विरोध करना। भगवान! तुझे शोभता नहीं, नाथ! तू कौन है? आहाहा! तू तो ज्ञानानन्द सहजानन्द की मूर्ति प्रभु है न! तेरे स्वरूप को भूलकर, पर में सुख है और राग से धर्म है, ऐसा मिथ्यात्वभाव करना, यह भी तेरी शोभा नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो पर का कर सके अज्ञानभाव से, आहाहा! यह लकड़ी ऊँची होती है तो आत्मा करता है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। दाल, भात, शाक बनता है तो स्त्री का आत्मा राग करे, राग के परिणमन का कर्ता हो अज्ञानी, परन्तु ये दाल, भात, शाक की पर्याय बनावे, बिल्कुल नहीं। आहाहा! ऐसे पैसा... नोट... नोट आते हैं? नोट, नोट है इसके पास आते हैं तो ये राग करे, कि मैं पैसा कमाता हूँ। परन्तु ये पैसा आता है, उसे राग नहीं लाता। आहाहा! और पैसा कोई को नोट दिया। पचास-सौ-पाँच सौ के नोट। यह इसमें राग करनेवाला राग करता है। परन्तु ये नोट देने की क्रिया नहीं करता। अरे! ऐसी बातें हैं। समझ में आया?

ये लोंच करते हैं न? लोंच। ये कहते हैं कि वहाँ विकल्प हो, अज्ञानी विकल्प का कर्ता हो, परन्तु उस लोंच की क्रिया का कर्ता तो आत्मा नहीं। आहाहा! ज्ञानी तो लोंच की क्रिया तो कर्ता नहीं परन्तु उसमें विकल्प उठाया उसका भी कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! मार्ग... आहा...! अरे...! अकेला रूलता भटकता चौरासी के अवतार में ये मिथ्यात्व और राग-द्वेष से दुःखी है। ये दुःख को करो कहे अज्ञानभाव से, परन्तु पर का कर कर्ता तो कर्मबन्धन मैं करता हूँ (-ऐसा नहीं)।

ज्ञानावरणीय कर्म ये छह कारण से बँधता है। ज्ञानावरणीय ये छह बोल का भाव करो अज्ञानभाव से, परन्तु ज्ञानावरणीय कर्म बँधता है ये क्रिया आत्मा कर सकता है, ऐसा नहीं। जिस भाव से ज्ञानावरणीय बँधे, ये भाव ज्ञानावरणीय बन्ध की क्रिया का कर्ता नहीं।

ये भाव का कर्ता, अज्ञानी राग का कर्ता अज्ञानी होता है। आहाहा! परन्तु ये ज्ञानावरणीय छह कारणों से बँधे, ऐसा पाठ 'तत्त्वार्थसूत्र' में है। दर्शनावरणीय बँधे, वेदनीय बँधे, आठकर्म हैं न? आयुष्य बँधे, लो! तो यह आयुष्य बँधने में निमित्तिरूप से जो राग है, उसका कर्ता अज्ञानी है। अज्ञानी, हों! परन्तु वह आयुष्य का बन्धन मैंने किया, वह क्रिया जड़ की आयुष्य आत्मा नहीं। आहाहा! कहो, पोपटभाई! तुम्हारी गद्दी की क्रिया को हसमुख की क्रिया तो कहीं बाहर रह गयी।

मुमुक्षु : ये तो नौकर करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौकर करे? आहाहा! नौकर वह राग करे? परन्तु यह धन्धे की क्रिया — यह गुड़ उठाया, रखा, तोला, ये क्रिया राग कर भी नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : तदानुकूल परिणति, तदानुकूल परिणति का ही कर्ता नहीं फिर...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म तत्त्व, बापू! अभी तो लोगों को पर का कर दें, पर का कर दें, पर का कर दें। आहाहा! समझाने का विकल्प है, उसमें भी ऐसा माने कि मैं पर को समझा दूँ, तो वह मिथ्यात्वरूप, रागरूप परिणमा परन्तु पर को समझा सकते, ये बात है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : समझाने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझाने जाता है ये तो विकल्प है और विकल्प का कर्ता नहीं हो तो वास्तविक उपदेशक कहने में आता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व में जहाँ अभाव है, तो जिसमें है नहीं, उसका कर्ता कैसे बने? आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान आदि। अरे! भगवान की प्रतिमा मन्दिर में मन्दिर बनाकर स्थापना की क्रिया आत्मा कर सकता नहीं, ऐसा कहते हैं, इस समय शुभरागी प्राणी को राग की मन्दता हो, उसका कर्ता हो, अज्ञानभाव से। वह भी अज्ञानभाव से, हों! आहाहा! गजब बात, बापू! समझ में आया? तीर्थ की रक्षा आत्मा कर सके। कठिन बात है। बाबूभाई ये फण्ड बनाया है। तीर्थरक्षा फण्ड। बड़ा विवाद चलता है इसमें तो। ऐसा और वैसा और सहयोग न देना। अरे! भगवान! आहाहा!

यहाँ तो प्रभु यह कहते हैं, सुन तो सही, नाथ! सत्य की स्थिति सत्य की मर्यादा, सत्य की मर्यादा यह है कि तेरे अज्ञानभाव से तुम राग-द्वेष करो। परन्तु पर की क्रिया— ये पैसा कमाना और पैसा खर्च करना, मन्दिर बनवाना, प्रतिमा स्थापित करना (ये क्रिया कर सकता नहीं)। गजब बातें है, बापू!

मुमुक्षु : आत्मा की चाकरी (हरराजी) करे तो हजारों रुपया मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच है। बाबूभाई बोले इसमें से, बराबर हजार, बोलो, झट बोलो। ऐसे बोले। झट करो। ये.. पोपटभाई! यहाँ तो कहते हैं, यह वाणी के समय वाणी हो, वाणी का कर्ता आत्मा नहीं। इस समय राग आता है तो राग के ऊपर जिसकी दृष्टि है, तो राग का कर्ता है। दृष्टि वहाँ है तो। आहाहा! और जिसकी दृष्टि स्वभाव के ऊपर— ज्ञायक के ऊपर है, वह तो राग का भी कर्ता नहीं, वह तो राग का जाननेवाला है। आहाहा! ऐसा मार्ग। दुनिया मान (इज्जत) लेना और दुनिया में कुछ गिनती में आये ऐसा गिनाना... आहाहा! ये पर की क्रिया। अरे! प्रभु! क्या है? भाई! मुझे दुनिया गिने, गिनती में ले कि मैं कुछ हूँ। ऐसे पर की क्रिया में गिनती में आऊँ, ऐसा भाव करे। आहाहा! समझ में आया?

यह भगवान निज आत्मा में सुल्टी दृष्टि अथवा उल्टी दृष्टि अपने स्वभाव की दृष्टि करके राग का भी ज्ञाता रहकर, पर की क्रिया के भी ज्ञाता रहते हैं, ये तो वस्तुस्थिति है। परन्तु कदाचित् इस समय न रह सके तो अज्ञानी राग-द्वेष को, मिथ्यात्व को कर्ता है फिर भी ये परद्रव्य की क्रिया कर सके राग के कारण (ऐसी वस्तुस्थिति नहीं)। आहाहा! दया का भाव आया तो राग का कर्ता हो अज्ञानी। अज्ञानी, हों! परन्तु पर की दया की क्रिया करे, यह आत्मा में है नहीं। आहाहा! बात ऐसी है।

ये यहाँ कहते हैं देखो! क्या कहते हैं? **ज्ञानावरणादि पुद्गल पिण्ड में निश्चय से नहीं है...** कौन? मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम जीव जो कर्ता है, ये ज्ञानावरणादि कर्म में निश्चय से नहीं है। आठ कर्म जो बँधते हैं, उसमें मिथ्यात्व और राग-द्वेष परिणाम है उसमें? समझ में आया? आहाहा! **नहीं है अर्थात् इन दोनों में एकद्रव्यपना नहीं है...** क्या (कहा)? जीव अपने स्वभाव को भूलकर मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष करे, परन्तु उन राग-द्वेष और मिथ्यात्व में कर्म पर्याय नहीं और उस कर्म की पर्याय में राग-द्वेष और मिथ्यात्व

की पर्याय नहीं। दो है ? **इन दोनों में एक द्रव्यपना नहीं।** दो की एक चीज़ नहीं। कर्मबन्ध की क्रिया भिन्न है और राग-द्वेष करनेवाला जीव भिन्न है। दोनों एक नहीं। आहाहा! दो, दो रूप से भिन्न हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

'तत् कर्म अपि कर्तरि नास्ति' क्या कहते हैं ? अज्ञानी जब अपने परिणाम में मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष करता है, ये कर्म के पिण्ड में नहीं। और **'तत् कर्म अपि' वह भी ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड अशुद्धभाव परिणत मिथ्यादृष्टि जीव में नहीं है...** समझ में आया ? जिसमें राग-द्वेष, पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के राग को करता हुआ मिथ्यादृष्टि, तो ये परिणाम, कर्मबन्धन हुआ, उसमें ये परिणाम है नहीं। और कर्म की पर्याय मिथ्यात्व, राग-द्वेष परिणाम में है नहीं। दो भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! सत्य बात में बहुत अन्तर हो गया। जैन सम्प्रदाय में जन्मा फिर भी सत्य बात क्या है, (इसकी खबर नहीं)। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत फेरफार हो गया। आहाहा!

क्या बात! आचार्य पुकार करते हैं, प्रभु! तुम अज्ञानभाव से मिथ्यात्व और राग-द्वेष करो, परन्तु ये परिणाम तेरे कर्मबन्धन की पर्याय में ये परिणाम नहीं हैं। वहाँ तो परिणाम जड़ की पर्याय है और जड़ की पर्याय पुद्गलादि की बँधी, छह कारण जो ज्ञानावरणीय (बँधने) के कारण छह है, ये परिणाम का कर्ता तुम हो अज्ञानभाव से, आहाहा! परन्तु ये परिणाम कोई ज्ञानावरणीय बँधा इसमें गया नहीं। और ये परिणाम जो है छह कारण ज्ञानावरणीय बँधा, ये परिणाम में कर्मपिण्ड की पर्याय आयी नहीं। आहाहा! ये तो है न ? ज्ञानावरणीय छह प्रकार से बँधा, दर्शनावरणीय ये भाव भी राग है। आहाहा! ये राग को मिथ्यादृष्टि-स्वभाव की दृष्टि नहीं तो ये राग का कर्ता अपने परिणाम में हो। मिथ्यात्वभाव से, परन्तु ये परिणाम जड़ की पर्याय में जाता नहीं। तो जाते नहीं तो जड़ की पर्याय क्यों करे ? और जड़ की पर्याय, राग-द्वेष के परिणाम किये, उसमें ये पर्याय आई नहीं। तो ये जड़ की पर्याय यहाँ राग-द्वेष को कैसे करे ? आहाहा! कर्म का बन्धन हुआ, यह पर्याय हुई। उस पर्याय में यहाँ मिथ्यात्व, राग-द्वेष के परिणाम उसमें है नहीं। उसमें है नहीं तो करे

कहाँ से ? और ये पुद्गल पिण्ड की पर्याय यहाँ राग-द्वेष के परिणाम में है नहीं। ये पुद्गल पिण्ड की पर्याय राग-द्वेष कैसे करे ? आहाहा! समझ में आया ? मार्ग ऐसा है, भाई! अरे! दु:खी प्राणी चार गति में (भ्रमण करता है)।

यहाँ तो मिथ्यात्व के परिणामवाला भी पर के परिणाम नहीं कर सके, ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया ? और धर्मीजीव तो अपना स्वभाव ज्ञायक चिदानन्द है, ऐसे अस्तित्व की जहाँ प्रतीति, भान हुआ तो मेरे अस्तित्व में ये राग-द्वेष है ही नहीं। आहाहा! तो राग-द्वेष का कर्ता ज्ञानी है नहीं। आहाहा! अपने अस्तित्व में ये नहीं और इनके अस्तित्व में मैं नहीं। क्या कहते हैं ?

पहले तो ये लिया कि राग-द्वेष और मिथ्यात्व के परिणाम में पुद्गल नहीं और पुद्गल के परिणाम में ये परिणाम नहीं। अब तीसरी बात अन्दर के भाव से ये बात ली कि अज्ञानी राग-द्वेष का कर्ता था तो ये परिणाम नये बन्धन में निमित्त कहने में आता था। अब यहाँ ये राग-द्वेष, छह कारण जो ज्ञानावरणीय बँधे। आहाहा! ज्ञानी के दसवें गुणस्थान तक अभी छह कर्म तो बँधते हैं तो इनको राग भी निमित्त है, परन्तु उस राग का कर्ता नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? रागतत्त्व भिन्न है, अजीवतत्त्व भिन्न है, चैतन्यतत्त्व भिन्न है। रागतत्त्व भिन्न है तो पुद्गल की पर्याय को कैसे करे ? उस जड़ से तो भिन्न है। और राग का परिणाम अपने में है तो जड़ की पर्याय उसको किस प्रकार करे ? लोग ऐसा कहते हैं न ? कर्म का उदय आता है तो आत्मा में विकार होता है। तो कहते हैं कि उदय तो उदय में है। उदय तेरे राग-द्वेष परिणाम में तो आया नहीं। तो कर्म राग-द्वेष को कैसे करे ? आहाहा! समझ में आया ?

छह प्रकार से ज्ञानावरणीय बँधता है। दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय ले लेना। ये परिणाम तो जड़ की पर्याय में जाते नहीं और जड़ की पर्याय तेरे परिणाम होते हैं, उसमें आती नहीं। आहाहा! पहले तो भेदज्ञान इस प्रकार करना। बाद में अन्तर के भेदज्ञान में भगवान ज्ञानस्वरूपी आत्मा। ये बाद के कलश में लेंगे। ज्ञाता के परिणाम में राग-द्वेष परिणाम आते नहीं। निर्मल परिणाम ज्ञाता का-सम्यग्दृष्टि का... आहाहा! निर्मल परिणाम में मलिन परिणाम का अस्तित्व तो आता नहीं और मलिन परिणाम में निर्मल परिणाम जाता

नहीं। आहाहा! जिनेश्वरदासजी! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म। मार्ग तो यह है। आहाहा!

वह ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड अशुद्ध भाव परिणत मिथ्यादृष्टि जीव में नहीं... आहाहा! देखो! यह तो बन्ध की पर्याय इसकी कही। परन्तु दूसरे प्रकार कहें तो जो कर्म का उदय है, वह पर्याय जड़ में है। ये कुछ राग-द्वेष करने में ये पर्याय आती नहीं। आहाहा! बड़ी तकरार यह है न? कर्म के उदय से विकार होता है, कर्म के उदय से विकार होता है। यहाँ तो कहते हैं कि कर्म का उदय तो जड़ की पर्याय है। राग-द्वेष पर्याय तो तेरे चैतन्य में विपरीत पर्याय है। विपरीत पर्याय में कर्म का उदय आता नहीं और कर्म के उदय में विपरीत पर्याय जाती नहीं। तो इसका उदय कैसे करे और बन्ध कैसे करे? आहाहा! मार्ग बहुत ऐसा, भाई! बनिया को समय नहीं मिलता। ये धन्धा और स्त्री, लड़का... अकेला पाप का पोषण पूरा। इसमें सुनने के लिये घण्टा, दो घण्टो मिले तो पहले कुगुरु लूट लेता है। श्रीमद् कहते हैं। कुगुरु लूट ले, कहे कि तुम ऐसा करो तो तुम्हारा कल्याण हो, ऐसा करो तो कल्याण हो। मार दे घण्टा। हो रहा, देखो! आहाहा!

यहाँ परमात्मा फरमाते हैं कि एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरी सम्पदा में क्या पड़ा है। अरे! राग-द्वेष तेरे परिणाम में तू भले कर, परन्तु कर्मबन्धन की पर्याय तू करे (ऐसा बिल्कुल नहीं)। और कर्म का उदय आता है, ये जड़ की पर्याय में है। ये तेरे राग-द्वेष आते हैं कि ये राग-द्वेष ये कराते हैं, ऐसा है नहीं। आहाहा! भारी काम, भाई! स्त्री, लड़का, कुटुम्ब ये सब ठगों की टोली है। तुझे ठगों की टोली मिली है, भाई! मैं इनका करूँ, इन्हें प्रसन्न रखूँ। मर गया तू भाई! तेरे ज्ञाता-दृष्टा के जीवन में तूने चोट की। तू घायल हो गया। आहाहा! छुरा से जैसे शरीर घायल होता है, घायल कहते हैं न? ऐसे मैं पर को प्रसन्न करूँ और पर से प्रसन्न होऊँ, भगवान! तूने चैतन्य को घायल किया। आहाहा! तेरा जीवन तूने न रखा। इसमें चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा का जीवन तूने न रखा। आहाहा! ये राग करके मैंने पर का किया, ऐसा मानना यह चैतन्यस्वरूप को घायल किया। जैसे घायल होता है और खून, खून निकलता है, ऐसे घायल होने पर विपरीत दशा उत्पन्न होती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया?

अर्थात् इन दोनों में एक द्रव्यपना नहीं है। है न इस ओर? ऊपर की लाईन। राग-

द्वेष मिथ्यात्व में परद्रव्य नहीं और परद्रव्य की पर्याय में राग-द्वेष, मिथ्यात्व नहीं। आहाहा! **'यदि द्वन्द्वं विप्रतिषिध्यते तदा कर्तृकर्मस्थितः का' जो जीवद्रव्य और पुद्गलद्रव्य के एकत्वपने का निषेध किया...** आहाहा! जड़ की कर्म बन्धन की पर्याय और अज्ञानी के राग-द्वेष के परिणाम, दोनों को भिन्न बताया, द्वन्द्व। आहाहा! **जीवद्रव्य और पुद्गलद्रव्य के एकत्वपने का निषेध किया तो... 'कर्तृकर्मस्थितिः का' तो जीव कर्ता ज्ञानावरणादि कर्म...** ऐसी व्यवस्था कहाँ से घटे? ये गजब की बात है न! ज्ञानावरणीय कर्म तो चौथे गुणस्थान में भी बँधता है, पाँचवें में बँधता है, छठवें में बँधता है, परन्तु बँधता है वह तो जड़ की पर्याय है और यहाँ विकार हुआ, उसका भी कर्ता ज्ञानी नहीं। तो ये राग हुआ इसका भी ज्ञाता है और बन्ध हुआ, इसका भी ज्ञाता है। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी राग का कर्ता होकर अज्ञानभाव को सेवन करता है परन्तु कर्म की पर्याय का ये बन्धन करे, ऐसा (तीन काल में नहीं)। क्योंकि दो द्रव्य जहाँ भिन्न बताये (वहाँ) भिन्न में भिन्न की क्रिया किस प्रकार हो? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, कर्ता है, कर सकता है।

शास्त्र में ऐसा नहीं आता? एक अंगुली जितनी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करे तो संघवी कहलाये। लो! किस अपेक्षा से? भाई! पद्मनन्दी पंचविंशति में आता है कि छोटी प्रतिमा भी करे और पधराये तो बड़ा धर्मी है। ये तो सम्यग्दृष्टि की बात है और उसको ऐसा राग आया, उसका कर्ता नहीं, पर का कर्ता नहीं। इसकी प्रतिष्ठा और प्रभावना के भाव वाला कहलाता है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : कहना कुछ और मानना कुछ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहने की भाषा दूसरी, और आशय क्या है? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं न, परद्रव्य की पर्याय, कर्म की पर्याय में राग-द्वेष आते नहीं। छह कारण से चौथे, पाँचवें, छठवें ज्ञानावरणीय तो बँधता है, परन्तु उस परिणमन का कर्ता ज्ञानी नहीं। तो वास्तव में उसके बन्धन भी है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग का कर्ता भी ज्ञानी नहीं। छह प्रकार से जो ज्ञानावरणीय बँधता है, उस परिणाम का कर्ता भी ज्ञानी-धर्मी नहीं। तो इससे बन्ध हुआ, उसका कर्ता है ही नहीं। ज्ञाता हुआ, ख्याल में आया

कि ये छह कारणरूप भाव है, ये ख्याल में आया और ज्ञानावरणीय बँधता है, इसका ज्ञान हुआ। ख्याल में आया कि इस प्रकार का राग इस प्रकार के ज्ञानावरणीय के बन्ध में निमित्त हुआ, उसका ज्ञान हुआ। आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं, प्रभु! परद्रव्य और स्वद्रव्य की भिन्नता तुझे बतायी तो अब तू परद्रव्य की क्रिया करता है, यह कहाँ से आया? समझ में आया? पीछे के श्लोक में अन्तर में बाद में लेंगे। ९९ में ये लेंगे कि जब राग-द्वेष और चैतन्य भिन्न बताया... आहाहा! तो फिर भिन्न द्रव्य, भिन्न द्रव्य का कर्ता कैसे हो। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य भिन्न क्या? इस श्लोक में भिन्न द्रव्य कर्म और बाद के श्लोक में भिन्न द्रव्य राग-द्वेष। समझ में आया? आहाहा! ये, ये है, बाद में आयेगा। देखो! '**एतत् ज्ञानज्योतिः तथा ज्वलितं' विद्यमान शुद्धचैतन्यप्रकाश जैसा था, वैसा प्रगट हुआ।** यह पहले शब्द में है। ९९ (कलश)। समझ में आया? यह समझाकर बाद में समझायेंगे यह। समझ में आया? आहाहा!

अरे...! छह कारण से तो दसवें गुणस्थान में भी छह कर्म बँधते हैं। छह कर्म बँधते हैं तो कारण भी होगा या नहीं? तो कहते हैं, कारण और बन्धन, दोनों का सम्यग्दृष्टि तो ज्ञाता-दृष्टा है। आहाहा! आहाहा! शास्त्र में तो ऐसा आता है। छठवें गुणस्थान में आयुष्य सहित बँधे तो आठ बँधते हैं। आयुष्य न हो तो सात बँधते हैं। आता है या नहीं? जब आयुष्य न बँधे तब सात (बँधे)। आयुष्य बँधे तो आठ बँधते हैं। भगवान! ये आठ बँधते हैं, ये बराबर है। परन्तु पहले गुणस्थान में जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष निमित्त पड़ता है, उससे बँधे, इसमें तो दर्शनमोहनीय आदि बँधे। इसकी पर्याय में भी ये राग-द्वेष न गये तो राग-द्वेष ने वहाँ क्या किया? और बन्धन की पर्याय यहाँ आयी नहीं तो ये पर्याय ने बन्धन ने क्या किया? समझ में आया? आहाहा! परन्तु इसका तात्पर्य लेना है। ऐसा निर्णय कराके तात्पर्य लेना है—वीतरागभाव का। समझ में आया?

राग-द्वेष का कर्ता मिथ्यादृष्टि है तो ये परिणाम तो तेरा है और बन्ध की पर्याय में तेरा परिणाम नहीं। तो पर की पर्याय को तू कैसे करे? इतना लेकर इसमें से वीतरागता निकालनी है। समझ में आया? क्योंकि शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता है। यह सिद्ध करके

भी वीतरागता सिद्ध करना है। समझ में आया ? आहाहा ! यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम तुझे हुए और कर्म बन्धन की पर्याय पर में हुई। इतना बताकर अब वीतरागता बताना है कि जब ये राग-द्वेष है तो तेरी चीज़ में नहीं। जैसे परचीज़ तेरे में नहीं। तेरे मिथ्यात्व का परिणाम पर में नहीं। वैसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम, ये तेरी चीज़ में नहीं, ऐसे परचीज तेरे में नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम में तू नहीं। तू तो ज्ञानस्वरूप में है। आहाहा ! ज्ञानस्वरूप में राग-द्वेष नहीं। राग-द्वेष, राग-द्वेष में हैं। ज्ञायक ज्ञायक में है। आहाहा !

यह कहा न ? कर्मधारा और ज्ञानधारा। श्लोक आता है न ? जहाँ तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक कर्मधारा है। कर्म-रागधारा है और ज्ञाता-ज्ञानधारा भी है। निज स्वभाव शुद्धचैतन्य है — ऐसी दृष्टि, ज्ञान का भी भान है। तो ज्ञानधारा और रागधारा (दोनों हैं)। परन्तु राग की कर्ता ज्ञानधारा नहीं। यह वह बताने का तात्पर्य है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष से कर्म बँधते हैं कर्म के कारण वहाँ रुका नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! अब तो प्रभु ! तेरी चीज़ में राग-द्वेष नहीं, वहाँ तुझे ले जाना है। पर की पर्याय तेरे में नहीं और पर की पर्याय में तू नहीं। यहाँ तो यहाँ तक ले जाना है, भगवान ! आहाहा !

ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव ज्ञायकभाव भगवान आत्मा... उसमें आया न ? छठवीं गाथा में। कि शुभभाव, अशुभभाव उसमें नहीं। ये ज्ञायकभाव शुभ-अशुभभाव हो तो जड़ हो जाये। आहाहा ! यहाँ अज्ञानी ज्ञायकभाव को छोड़कर राग-द्वेष करता है तो ये निश्चय से तो जड़ है। चैतन्य न रहा। आहाहा ! समझ में आया ? चैतन्य तो इसको कहते हैं कि जो भगवान आत्मा राग होता है, इसको स्पर्शे बिना राग का ज्ञान करता है और शास्त्र में ऐसा सुनने में आता है कि चौथे गुणस्थान में आयुष्य सहित आठ कर्म बँधते हैं, सात बँधते हैं। वाँचन करने में ये ख्याल में आये तो भी उसका ये ज्ञान करता है। इसके ख्याल में आता है कि यहाँ यह कहते हैं। यह जाननहार है। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तो अभी शरीर इतना सुन्दर हो, वाणी अच्छी हो। मेरा शरीर ऐसा है, मेरी वाणी ऐसी है। अरे ! प्रभु ! तू कौन है ? कहाँ तेरा शरीर, कहाँ तू ? कहाँ वाणी, कहाँ तुम ? कहाँ पैसा, कहाँ तुम ? द्वन्द्व में दो में एक में दूसरा तो है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? देखो !

'कर्तृकर्मस्थितिः का' तो जीव कर्ता ज्ञानावरणादि कर्म, ऐसी व्यवस्था कैसे घटती है, अपितु नहीं घटती। 'ज्ञाता ज्ञातरि' जीवद्रव्य अपने द्रव्यत्व से एकत्व को लिये हुए है। यहाँ राग सहित का ज्ञाता लेना है। अशुद्ध परिणमन का कर्ता है न? ये द्रव्यत्व से एकपने को प्राप्त है। **सर्व ही काल ऐसा वस्तुस्वरूप है। 'कर्म कर्मणि' ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड अपने पुद्गलपिण्डरूप है। 'इति वस्तुस्थितिः व्यक्ता'** ऐसी वस्तुस्थिति प्रगट है। व्यक्त है, प्रगट है, भिन्न है। आहाहा! बस, किसी को कुछ करना नहीं। हो रहा है। ये कहते थे, तुम्हारे आगरा में। कौन है? जाड़ा। बाबूलाल, जाड़ा। तुम्हारे मकान के पीछे व्याख्यान हुआ था न? व्याख्यान पूरा होने के बाद (बोला), करना-धरना कुछ नहीं और आनन्द बहुत! ऐसा करके ये कहना था कि दया, दान, व्रत, भक्ति भी करना नहीं। अरे! प्रभु! सुन तो सही! बापू! ये बाबूभाई पण्डित था। जाड़ा-जाड़ा। आहाहा!

भाई! राग का करना ऐसा मान तो राग और ज्ञायक दो एक हो जायें। जड़ की पर्याय में करता हूँ तो दो द्रव्य एक हो जाते हैं। उसी प्रकार राग का कर्ता आत्मा हो तो राग और ज्ञायकभाव एक हो जाते हैं और दो तत्त्व तो भिन्न हैं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा!

जब अकस्मात देह छूटने का समय आता है न? आहाहा! अकस्मात् (आयेगा)। इसको ख्याल नहीं रहेगा कि अरे! ये क्या हुआ? दुःखता है... दुःखता है... दुःखता है... ऐसा करते-करते देह छूट जायेगा। एकदम से। अब तो हार्टफेल बहुत होते हैं। हार्टफेल कहते हैं न? आहाहा! 'एक दिन ऐसा आयेगा, मानो जन्म ही न हुआ हो जी... काढ़ो रे काढो रे इसको सब कहेंगे।' आहाहा! 'सगी नारी रे तारी कामनी, रे खड़ी टक टक देखे जी... अरे... शरीर में अब कुछ नहीं, ऐसे खड़ी रोये जी...' आहाहा! आँसू की धारा (चली जाए)। अरे! कहाँ चला गया? अरे! कुँआ में उतार के डोरी कोटी। ऐसा कहते हैं हमारे। रस्सी काटी। ऐसा सुना है। हमारा बड़ा भाई गुजर गया। (संवत्) १९५७ के वर्ष की बात है। १९५७। बड़ा भाई बहुत होशियार था। आठ वर्ष का विवाहित। एक ही लड़का था। इसकी बहू बाद में रोवे। सुना था। तब मेरी उम्र ग्यारह वर्ष की। १९५७ के वर्ष। ऐसे रोती थी। अरे! कुँआ में उतार के रस्सी-डोरी होती है न? उतर के डोरी काटी। कुँआ में पड़ा

(गिर गया)। अरर्र! सुन तो! आहाहा! दुनिया अज्ञानी कहाँ दु:खी होकर पड़ी है? कैसा मानते हैं? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! यह राग भी तेरी चीज़ नहीं, तब फिर पति और पत्नी और ये नरेन्द्र और नर का इन्द्र है न! आहाहा!

मुमुक्षु : एकत्व ज्ञान काम आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ काम आयेगा। भाई! दूसरा कुछ काम नहीं आयेगा। आहाहा! मैं तो ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु हूँ। मेरे आनन्द में से मैं निकलता ही नहीं। आहाहा! निकले तो राग आता है, ये तो दु:खरूप लगता है। आहाहा! तो उसको मरण का दु:ख नहीं लगे। देह छूटे तो ये तो छूटने की चीज़ है। ये छूटी ही थी। ये इस क्षेत्र में एक थी ही नहीं, यहाँ ही भिन्न थी। परन्तु भिन्न हुई, तब लगा कि देह छूट गयी। परन्तु छूटा ही है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ ये कहा, अरे! द्रव्य का स्वरूप तो प्रगट भिन्न है न। **'तथापि एषः मोहः नेपथ्ये वत कथं रभसा नानटीति' स्वरूप तो वस्तु का ऐसा है, जैसा कहा वैसा, फिर भी यह है जो जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य की एकत्वरूप बुद्धि, वह 'नेपथ्ये' मिथ्यामार्ग में इस बात का अचम्भा है कि...** मिथ्यामार्ग लिया। **'नेपथ्ये'** है न? पथ्य नहीं-पन्थ नहीं, वह कुमार्ग-कुपन्थ। ऐसा लिया। आहाहा! अरे! अज्ञानी जीव ऐसे कुपन्थ में क्यों नाचता है? मैंने कर्मबन्धन किया न मैंने पर का काम किया न पर को खुशी किया और पर को प्रसन्न किया और पर को दान दिया। मैंने इस जीव को बचाया नहीं... आहाहा! अरे..! भगवान! **'नेपथ्ये'** जो पन्थ नहीं, कुपन्थ में कैसे नाचता है? अथवा पर्दे के पीछे अज्ञान में तू कैसे ऐसे नाचता है? आहाहा! देखो न! एक-एक श्लोक में अमृतचन्द्राचार्य। **इस बात का अचम्भा है...** देखो! **'नेपथ्ये'** का अर्थ मिथ्यामार्ग किया। मिथ्या—**'नेपथ्ये'** पथ्य-पथ नहीं। क्यों तेरी निरन्तर प्रवृत्ति है? आहाहा! **इस प्रकार बात का विचार क्यों है?**

भावार्थ इस प्रकार है - जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य भिन्न-भिन्न है,... भगवान आत्मा द्रव्य भिन्न है। कर्म परमाणु अत्यन्त भिन्न है। ये अपनी पर्याय परिणम रही है, तू तेरी पर्याय परिणम रहा है। समझ में आया? यहाँ तो राग-द्वेष सहित लेना है। आहाहा! इस ओर

विचार कहाँ है ? **मिथ्यात्वरूप परिणमा हुआ जीव एकरूप जानता है...** देखो ! भ्रमणा से (ऐसा जानता है कि) पुद्गल की पर्याय मैं करता हूँ और पुद्गल और जीव एक हैं, परद्रव्य और मैं एक हूँ, ऐसा मिथ्या भ्रमणा से मानता है। आहाहा ! यहाँ कहते हैं न ? अर्धांगिनी। हमारी अर्धांगिनी है ? आधा अंग इसका और आधा अंग उसका, दो होकर एक अंग हुए। मूर्खाई है। हमारी घरवाली है। घर कैसा ? घर तो तेरा यहाँ है। यहाँ कहाँ से घरवाली आ गयी ? आहाहा ! समझ में आया ? हमारे घर से है, घर से। हमारे घर से अर्थात् क्या ? अमारे-अमारे, अमारे-हमारे घर नहीं, ऐसा (इसका अर्थ)।

श्रीमद् को ऐसा चलता था। श्रीमद् राजचन्द्र थे न ? कोई पुस्तक मँगाये, कोई कोट मँगाये, तो कहे, अमारा-अमारा कोट लाओ। तो साहेब ! अमारो कोट ऐसा कैसे (कहते हो) ? अमारो कोट (कैसे) ? एक वचन कहो कि ये मेरा कोट। तो ऐसा कहे कि मेरा कोट। अमारो कोट (कहते हो) ? सुनो तो सही, भाई ! अ-मारो (अर्थात्) ये कोट मेरा नहीं। बाबूभाई ! ऐसा कि तुम तो एक हो और अमारो कोट ऐसा बहुवचन क्यों करते हो ? सुनो तो सही, नाथ ! प्रभु ! सुनो। अमारो अर्थात् मेरा नहीं। ऐसा कहकर कोट का ख्याल किया कि ये मेरा नहीं, कोट हमारा नहीं, कपड़ा हमारा नहीं। ये लकड़ी अमारी लाओ। अर्थात् कि अ—मारी—मारी नाहीं। रतनचन्दजी ! आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि दो द्रव्य जहाँ भिन्न हैं, वहाँ **मिथ्यात्वरूप परिणमा हुआ जीव एकरूप जानता है, इसका घना अचम्भा है।** आहाहा ! अब योगफल लेते हैं। **आगे मिथ्यादृष्टि एकरूप जानो तथापि जीव पुद्गल भिन्न-भिन्न हैं...** आहाहा !

कलश-९९

आगे मिथ्यादृष्टि एकरूप जानो तथापि जीव पुद्गल भिन्न-भिन्न हैं ऐसा कहते हैं-

(मन्दाक्रान्ता)

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमंतस्तथोच्चै-
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत्।।54-99।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'एतत् ज्ञानज्योतिः तथा ज्वलितं' [एतत् ज्ञानज्योतिः] विद्यमान शुद्धचैतन्यप्रकाश [तथा ज्वलितं] जैसा था, वैसा प्रगट हुआ। कैसा है? 'अचलं' स्वरूप से चलायमान नहीं होता। और कैसा है? 'अन्तः व्यक्तं' असंख्यात प्रदेशों में प्रगट है। और कैसा है? 'उच्चैः अत्यन्तगम्भीरं' अनन्त से अनन्त शक्ति विराजमान है। किस कारण गम्भीर है? 'चिच्छक्तीनां निकरभरतः' [चिच्छक्तीनां] ज्ञानगुण के जितने निरंश भेद-भाग, उनके [निकरभरतः] अनन्तानन्त समूह होते हैं, उनसे अत्यंत गम्भीर है। आगे ज्ञान-गुण का प्रकाश होने पर कैसे फलसिद्धि है, वही कहते हैं-'यथा कर्ता कर्ता न भवति' [यथा] ज्ञानगुण ऐसा प्रगट हुआ है। जैसे [कर्ता] अज्ञानपना को लिए हुए जीव मिथ्यात्व परिणाम का कर्ता होता था, सो तो [कर्ता न भवति] ज्ञान प्रकाश होने पर अज्ञानभाव का कर्ता नहीं होता। 'कर्म अपि कर्म एव न'-[कर्म अपि] मिथ्यात्व रागादि विभाव कर्म भी [कर्म एव न भवति] रागादिरूप नहीं होता। 'यथा च' जैसे कि 'ज्ञानं ज्ञानं भवति' जो शक्ति विभाव परिणमनरूप परिणमी थी, वही फिर अपने स्वभावरूप हुई। 'यथा' जिस प्रकार 'पुद्गलः अपि पुद्गलः' [पुद्गलः अपि] ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमा था जो पुद्गलद्रव्य, वही [पुद्गलः] कर्म-पर्याय को छोड़कर पुद्गलद्रव्य हुआ।।54-99।।

कलश - ९९ पर प्रवचन

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमंतस्तथोच्चै-
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत्।।54-99।।

खण्डान्वय सहित अर्थ - 'एतत् ज्ञानज्योतिः तथा ज्वलितं' विद्यमान शुद्धचैतन्यप्रकाश जैसा था, वैसा प्रगट हुआ। आहाहा! योगफल यह लिया बाद में। पहले परद्रव्य से भिन्न बताया। अब तो राग से भी भिन्न चैतन्यज्योति थी, वैसी प्रगट हुई। समझ में आया? मैं तो विज्ञानघन, विज्ञानरस हूँ। राग रस ये मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? पहले दो द्रव्यों में ये परिणाम इसमें नहीं, ऐसा बताया। अब तो यहाँ राग से भिन्न चैतन्यज्योति प्रगट हुई। जब पर से भिन्न जाना, तब राग से भी भिन्न जानने में आया। समझ में आया? आहाहा! ऐसा उपदेश लगता है मनुष्यों को। व्रत करो, उपवास करो, यात्रा करो, भक्ति करो (ऐसा तो कहते नहीं)। देखो, यहाँ से अहमदाबाद से आये तो यात्रा करने वहाँ जाओ। तो कहते हैं, तुम्हारी यात्रा ये धर्म नहीं। अरर! परन्तु शत्रुंजय तो शाश्वत् तीर्थ है न। वहाँ तीर्थ को जायें तो धर्म नहीं? अरे! साक्षात् तीर्थंकर त्रिलोकनाथ समवसरण में हों, इनके दर्शन करने से भी शुभभाव होता है। आहाहा!

यहाँ तो शुभभाव से भिन्न चैतन्य प्रगट होता है, ऐसा बताना है। समझ में आया? **विद्यमान शुद्धचैतन्यप्रकाश...** ये तो **'ज्ञानज्योतिः'** ली न? **जैसा था, वैसा प्रगट हुआ। कैसा है? 'अचलं' स्वरूप से चलायमान नहीं होता।** आहाहा! भगवान अपने स्वरूप में चलायमान होता नहीं, रागरूप होता नहीं। ऐसी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? **और कैसा है? 'अन्तः व्यक्तं' असंख्यात प्रदेशों में प्रगट है।** अन्तः असंख्य प्रदेश अपने देश में भगवान चैतन्यस्वरूप प्रगट है। वह राग में नहीं, पर में नहीं। समझ में आया? ऐसी बात अर्थात् लोगों को निवृत्ति—फुरसत नहीं और फुरसत मिले तो मिले सब उल्टा-विपरीत। अब इनमें से ऐसा समझना भी इनको कठिन पड़ता है। आहाहा! मार्ग तो यह है। समझ में आया? आहाहा!

'अचलं' स्वरूप से चलायमान नहीं होता। 'अन्तः व्यक्तं' असंख्यात प्रदेशों में प्रगट है। आहाहा! **'उच्चैः अत्यन्तगम्भीरं'** अनन्तानन्त शक्ति से विराजमान है। आहाहा! यह रागरूप विराजमान नहीं प्रभु! अब कहते हैं। ये तो अनन्त शक्ति से (विराजमान है)। दोपहर में चलता है न? दोपहर। आहाहा! अनन्त शक्ति? इसका गाँव—देश असंख्य प्रदेश। इस देश में अनन्त शक्ति-गाँव, एक-एक गाँव में प्रजा (होती है)। ऐसे एक-एक शक्ति में अनन्त ताकत। समझ में आया? ऐसे प्रभु को पालन करनेवाला भगवान तू है। राग का पालन और पर का पालन करनेवाला तू नहीं। समझ में आया? !

किस कारण गम्भीर है? 'चिच्छक्तीनां निकरभरतः'... आहाहा! देखो! अब यहाँ रागादि निकाल दिये। **ज्ञानगुण के जितने निरंश भेद-भाग उनके अनन्तानन्त समूह होते हैं,...** आहाहा! ज्ञानपर्याय में भी अनन्तता, गम्भीर है। शक्ति तो गम्भीर है ही, परन्तु इसकी पर्याय में (भी अनन्त गम्भीरता) है। इसकी ताकतवाली पर्याय में अनन्त अविभागप्रतिच्छेद। भगवान आत्मा रागरूप हुआ ही नहीं। रागरूप है ही नहीं। इसने माना है। इससे पहले मिथ्यात्व लिया न? मिथ्यात्व सहित रागरूप परिणमा है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि एक बार... **अनन्तानन्त समूह होते हैं, उनसे अत्यन्त गम्भीर है?** विशेष कहेंगे.... !

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक १५-०९-१९७७
कलश-९९-१००, प्रवचन-९५

कलशटीका, ९९ श्लोक है। कर्ताकर्म अधिकार का अन्तिम है न? ९९।

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमंतस्तथोच्चै-
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत्।।54-99।।

९९ कलश। '**एतत् ज्ञानज्योतिः तथा ज्वलितं**' '**एतत्**' अर्थात् विद्यमान भगवान ज्ञानस्वरूप '**एतत्**' अर्थात् विद्यमान। '**एतत्**' यह है। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप चैतन्यप्रकाश का नूर। चैतन्य प्रकाश का पूर। यह '**एतत्**' विद्यमान है। आहाहा! यह **विद्यमान शुद्धचैतन्यप्रकाश...** ऐसा यह शुद्ध चैतन्यप्रकाश विकारसहित। एक समय की पर्याय की दृष्टि भी छोड़कर '**एतत्**' विद्यमान शुद्ध चैतन्य पर ही दृष्टि होने से '**तथा ज्वलितं**' **जैसा था, वैसा प्रगट हुआ।** आहाहा! कर्ता-कर्म का अन्तिम श्लोक है न। '**कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव**' पहला पद है न। आहाहा! भगवान आत्मा राग का कर्ता नहीं होने से अपनी दृष्टि का विषय शुद्ध चैतन्य प्रकाश होने से राग का कर्ता नहीं होता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें।

जैसा था वैसा प्रगट हुआ। ज्ञायक चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा राग का कर्तृत्व भी छोड़कर, निज चैतन्य तेजस्वरूप भगवान दृष्टि में विद्यमान चैतन्य प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया? वस्तु तो थी, कहते हैं। परन्तु वह राग और विकार की विकृत अवस्था के ऊपर रुचि और कर्तृत्व के कारण विद्यमान चीज़ को अविद्यमान कर दिया था। आहाहा! समझ में आया? ये राग और पुण्य आदि के परिणाम का कर्ता था तो उसकी रचना में रागादि की रचना होती थी, उसकी विद्यमानता भासती थी। परन्तु अन्दर चैतन्यज्योति राग से भिन्न है

ऐसी अस्ति-विद्यमान चैतन्य का विद्यमानपना भासता न था। आहाहा! यह विद्यमान चैतन्यमूर्ति भगवान शुद्ध द्रव्य-गुण स्वभाव की दृष्टि हुई। उसका स्वीकार, सत्कार, आश्रय लिया तो यह प्रगट हुई। थी तो सही, परन्तु पर्याय में इसका ज्वलन्त प्रकाश हुआ। सम्यग्दर्शन होने पर चैतन्य का तेज-प्रकाश पर्याय में प्रगट हुआ। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

कैसा है? **जैसा था वैसा प्रगट हुआ। कैसा है? 'अचलं' स्वरूप से चलायमान नहीं होता।** भगवान आत्मा अपनी ध्रुवता-स्वरूप से चलायमान नहीं होता। आहाहा! अपना जो ध्रुवस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, उससे कभी चलायमान नहीं होता। आहाहा! **और कैसा है? 'अन्तः व्यक्तं'** अन्तः की व्याख्या की। असंख्यात प्रदेश में प्रगट है। आहाहा! राग के कर्तृत्व में राग की विद्यमानता भासती थी। उस राग की रुचि छोड़कर कर्तापने का अभिप्राय छोड़कर चैतन्यप्रकाश के पूर पर दृष्टि पड़ने से अन्तः असंख्य प्रदेश में अनन्त आनन्द प्रगट है।

अपना असंख्य प्रदेश है। प्रदेश अर्थात् अंश। ये असंख्य अंश हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त ये बात कहीं नहीं है। जीव के असंख्य प्रदेश हैं, ये सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने देखे नहीं इसलिए असंख्य प्रदेश हैं, ऐसा किसी ने कहा नहीं। समझ में आया? श्रीमद् में आता है, 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन' शुद्ध-पवित्र भगवान, बुद्ध-ज्ञान की मूर्ति प्रभु चैतन्यघन। असंख्य प्रदेशी चैतन्यघन-समूह। आहाहा! समझ में आया? 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम।' अपने से स्वयं चैतन्य ज्योति है, अपने आनन्द का धाम प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्थल, अतीन्द्रिय आनन्द की भूमिका है। 'कर विचार तो पाम'। अन्तिम शब्द ऐसा लिया है। उस ओर का ज्ञान करे तो तू पाये। आत्मसिद्धि में आता है। समझ में आया? वहाँ ऐसा तो नहीं लिया कि देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति कर तो पाये। उस ओर का विचार करे तो पाये। आहाहा!

अनादि अभ्यास शुभ-अशुभभाव और पर्याय का अभ्यास। वह अभ्यास छोड़कर असंख्यात प्रदेशों में प्रगट है। आहाहा! इसके देश-आत्मा के देश अर्थात् क्षेत्र, आत्मा का देश अर्थात् क्षेत्र असंख्यातप्रदेशी देश है। उसका क्षेत्र-भूमि असंख्यात प्रदेशी भूमि है। और उसमें अनन्त गुण व्यापक हैं। आहाहा! **और कैसा है? 'उच्चैः अत्यन्तगम्भीरं'**

'**उच्चैः**' का अर्थ अनन्त किया और अत्यन्त का भी अनन्त किया। अनन्त से अनन्त शक्ति से विराजमान है। आहाहा!

दोपहर शक्तियाँ चलती हैं न? तो कहते हैं, अनन्त-अनन्त शक्ति। असंख्य प्रदेश में अनन्त-अनन्त अपरिमित जिनका माप नहीं, इतनी शक्ति से विराजमान भगवान अन्दर है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त से अनन्त शक्ति। भाषा ऐसी ली ह न? '**उच्चैः अत्यन्तगम्भीरं**' आहाहा! जिसको, अनन्त से अनन्त शक्ति से भरपूर मैं हूँ, ऐसा भान सम्यग्दर्शन में होता है, तब वो शुभराग का कर्ता नहीं होता। समझ में आया? क्योंकि अनन्त-अनन्त शक्ति का भण्डार भगवान है। ऐसी कोई गुण-शक्ति ऐसी नहीं कि विकृतभाव को करे। ऐसी कोई शक्ति नहीं। अनन्त-अनन्त शक्ति में एक शक्ति (ऐसी) नहीं। समझ में आया?

कलशटीका में अन्दर यह प्रश्न चला है। जब अनन्त शक्ति हैं तो एक शक्ति ऐसी भी हो कि पर का करे। अनन्त शक्ति हैं न? समझ में आया? अनन्त-अनन्त शक्ति हैं तो एक शक्ति ऐसी भी अन्दर हो कि पर का करे या राग का करे। अनन्त शक्तियों में एक शक्ति ऐसी भी हो। शिष्य का प्रश्न है, अन्दर आ गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सर्व शक्ति नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व शक्ति कहो तो भी सर्व शक्तिमान अपना शक्तिमान। पर के कर्तापने की शक्ति उसमें नहीं। समझ में आया? लोग ऐसा कहते हैं न? कि एक गाय का ग्वाल... ग्वाल कहते हैं न? गोपाल? तुम्हारे में क्या कहते हैं? ग्वाला। एक गाय को चरावे तो साथ में पाँच गाय को चराये। इसमें हरकत क्या है? एक गाय को चराये तो पाँच गाय को चराये। ऐसे आत्मा की अनन्त शक्ति में एक शक्ति ऐसी भी हो कि अपने भी करे और राग का भी करे। ऐसा है नहीं। समझ में आया? अनन्त-अनन्त पवित्र शक्ति अपने में पवित्र भरी हैं। वे पवित्र परिणाम को करें। राग को करे, ऐसी कोई शक्ति नहीं। आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि शुभयोग यह मोक्ष का मार्ग, लो! चेलेंज दिया है। मक्खनलालजी ने कैलाशचन्दजी को। इतने वर्षों में दोनों पण्डित हुए। कैलाशचन्दजी से कहा कि

मक्खनलालजी ने ऐसा कहा कि शुभयोग को हेय माने तो मिथ्यादृष्टि है। मक्खनलालजी का (समाचार)पत्र में आया है। आया है ? समाचारपत्र में आया है। तो कैलाशचन्दजी ने कहा कि शुभयोग को हेय तो कुन्दकुन्दाचार्य भी मानते हैं, तो कुन्दकुन्दाचार्य मिथ्यादृष्टि हैं ? अरे! भगवान! कहाँ लगाते हैं। आहाहा! यह चर्चा अभी बहुत चलती है। बाद में कहा, मक्खनलालजी ने चेलेंज दिया है। आओ, हम चेलेंज देते हैं। दिल्ली आओ। शुभयोग मोक्ष का मार्ग है, ये हम सिद्ध करेंगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि शुभयोग राग है। उसको करे, ऐसी कोई आत्मा में शक्ति नहीं। समझ में आया ? अनन्त-अनन्त शक्ति से विराजमान है। परन्तु इन अनन्त शक्तियों में कोई ऐसी शक्ति नहीं कि पर का करे कि राग का करे, ऐसी कोई शक्ति ही नहीं। व्यवहार करे ऐसी कोई शक्ति नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब है। यहाँ तो अकेला व्यवहार... व्यवहार। दया, दान और व्रत, तप और भक्ति, पूजा, बस, ये व्यवहार और इस व्यवहार से निश्चय होगा। आहाहा! दृष्टि की विपरीतता बहुत। अनन्त-अनन्त शक्ति से विराजमान। आहाहा!

क्यों ? **किस कारण गम्भीर है ?** अनन्त-अनन्त शक्ति से गम्भीर कहा न ? **किस कारण गम्भीर है ? 'चिच्छक्तीनां निकरभरतः'** आहाहा! **ज्ञानगुण के जितने निरंश भेद-भाग...** एक-एक ज्ञानगुण में अनन्त पर्याय और एक-एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद-अंश। आहाहा! यहाँ तो (कहते हैं), **अनन्तानन्त समूह होते हैं,...** जितना निरंश भाग करो जिसके भाग न पड़े, भाग न पड़े, ऐसे निरंश भाग करो तो इसके अनन्तानन्त समूह होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : निरंश अर्थात् अंश....

पूज्य गुरुदेवश्री : अंश नहीं। निरंश अर्थात् अंश नहीं। निरंश। अकेला अंशी है। निरंश-अंश। इस अंश का अंश नहीं। यह अंश है, उसमें दूसरा अंश नहीं। ऐसा निरंश का अंश अनन्तानन्त हैं। आहाहा! समझ में आया ? यह तो सिद्धान्त की वाणी गम्भीर है, भगवान! आहाहा! अरे! अपनी चीज़ क्या है, इस ओर कभी लक्ष्य दिया नहीं। देखनेवाले को देखा नहीं, जाननेवाले को जाना नहीं और पर को जानने-देखने में रुक गया। आहाहा! समझ में आया ?

निरंश... निरंश अर्थात् अंश के फिर भेद नहीं। यह निरंश भेद। अंश बिना का भेद, ये अनन्तानन्त है, ऐसा कहते हैं। ज्ञानगुण में ज्ञान की पर्याय में निरंश—जिसका दूसरा अंश नहीं, ऐसे निरंश अनन्त-अनन्त भेद हैं। आहाहा! यहाँ तो अन्त के केवलज्ञान को भी ले लिया है। समझ में आया? अन्तर में निरंश अनन्त शक्ति थी, इस पर्याय में केवलज्ञान में निरंश अनन्त शक्ति प्रगट हो गयी। सम्यग्दर्शन में भी अनन्त अंशों की प्रतीति प्रगट हो गयी। समझ में आया? मैं रागवाला हूँ, यह बात छूट गयी। आहाहा! अनन्त निरंश ऐसे भाग, अनन्त भेद प्रगट हुए। आहाहा! अरे! ऐसी बड़ी बातें। बापू! मार्ग अलग नाथ तेरा। तू तो प्रभु है न, नाथ! तेरी शक्ति में तो अनन्त प्रभुता पड़ी है। एक-एक शक्ति प्रभुत्व से भरी है। समझ में आया? यह निरंश अंश यह भी प्रभुता से (भरा) है। आहाहा!

भगवान आत्मा अपने स्वभाव की दृष्टि में जाता है तो राग का कर्ता बन्द होकर अनन्त-अनन्त शक्ति की व्यक्तता उसको प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म पड़े इसलिए लोग फिर... मूलचीज़ तो ये है। समझने और करने की तो ये (चीज़) है। आहाहा! समझ में आया?

अनन्तानन्त समूह होते हैं, उनसे अत्यन्त गम्भीर है? आहाहा! जिसका तल अन्तर अनन्त गम्भीर है। आहाहा! सागर-समुद्र का तल जैसे मोती और हीरा पड़े होते हैं, वैसे भगवान आत्मा के तल में-ध्रुव में अनन्त शक्ति में अनन्तपने की गम्भीरता पड़ी है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा ध्रुव में अनन्त-अनन्त शक्ति थी, वह पर्याय में अनन्त-अनन्त शक्ति प्रगट हो गयी। आहाहा! समझ में आया?

आगे ज्ञानगुण का प्रकाश होने पर कैसे फलसिद्धि है,... कहते हैं कि अपना ज्ञानस्वरूप चैतन्य है, उसका भान हुआ, ज्ञातापने की प्रतीति से ज्ञातापना प्रगट हुआ। रागपने का कर्तृत्व माना था, यह कोई गुण नहीं। यह मान्यता तो अज्ञान से खड़ी की थी। और यह तो आत्मा में अनन्त ज्ञान था, वह राग का कर्तापना छोड़कर ज्ञानस्वभाव की दृष्टि हुई तो ज्ञानपर्याय प्रगट हुई। **कैसे फलसिद्धि है,...** आहाहा! यह पहली लाईन का अर्थ है। मूल श्लोक का पहला है न? '**कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव**' आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त ज्ञानगम्भीर, ऐसी चीज़ जहाँ सम्यग्दर्शन में, ज्ञान में प्रगट हुई तो

कहते हैं कि '**कर्ता कर्ता भवति न**' यह भगवान आत्मा राग का कर्ता था, यह अब कर्ता नहीं होता। आहाहा! यह सब काम करते हैं न पूरे दिन? ये सब होशियार लोग। बाबूभाई! नहीं करते? चिमनभाई में मुख्यता थी न? प्रमुख थे। यह सब करते थे या नहीं? आहाहा! यह काम तो करता नहीं था, परन्तु जो राग है, वह भी उसका कर्तव्य नहीं था। यह तो दृष्टान्त है। सभी प्राणियों को (ऐसा है)। आहाहा!

भगवान तू तो ज्ञानगुण से गम्भीर है न! आहाहा! तेरे में अपरिमित ज्ञान और आनन्द भरा है। ऐसे अपरिमित ज्ञान और आनन्द का भान हुआ, राग का कर्तापना छोड़कर, तो कहते हैं कि '**कर्ता कर्ता न भवति**'—यह राग का कर्ता था, ज्ञान प्रगट हुआ तो '**कर्ता कर्ता न भवति**' आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! अन्तर अरूपी भगवान, जिसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श का अभाव है। जिसमें शरीर, रागादि का अभाव है। आहाहा! जहाँ-जहाँ अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द की शक्ति से भरपूर (भरा है)। उस भगवान की प्रतीति और अनुभव हुआ तो कहते हैं कि '**कर्ता कर्ता न भवति**' आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम को अज्ञान से मैं करनेवाला, मैं रचना करनेवाला ऐसी मान्यता थी, वह अब '**कर्ता कर्ता न भवति**' आहाहा!

राग आता है। दोपहर में शक्ति में कहा था न? षट्कारक से पर्याय में विकृत अवस्था होती है। छह कारक। पर्याय के छह कारक, हों! दोपहर में आया था न? ३९। आहाहा! गजब! पर्याय में अंश में षट्कारक के कारण राग-द्वेष की विकृत अवस्था होती थी, मिथ्यात्व का षट्कारक से परिणमन होता था। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उससे रहित निज शक्ति की सम्भाल की तो उसका गुण ऐसा है कि राग से रहित परिणमन करना, उसका गुण है। आहाहा! मीठाभाई! राग हो, कर्ता नहीं। अर्थात् कि राग के अभावस्वरूप परिणमन होता है। अरेरे!

निराधार अशरण है। राग का शरण लेने जाता है, वहाँ शरण नहीं। आहाहा! बाहर का शरण लेने जाता है। शरण तो भगवान अन्दर अनन्त ज्ञान का भण्डार शरण पड़ा है, वहाँ शरण ली तो पहले राग और दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभ परिणाम का कर्ता होता था, यह ज्ञान का भान हुआ तो '**कर्ता कर्ता न भवति**'। समझ में आया? ऐसी बात है। अन्तर की रमणता की बात है। इसमें कहीं आता है। 'राम की रमत को ते ज लूंटे, कंचन ने कामनी

चोकी आडी शामनी, रामनी रमतने ते ज लूंटे।' क्या कहते हैं ? भगवान आनन्द का नाथ भगवान, इसमें कंचन और कामनी। पैसा-कंचन, कामिनी-स्त्री। 'कंचन कामिनी, चोकी आडी शामनी'। उसके प्रेम में भगवानपना भूल गया। आहाहा! अन्यमति में यह आता है। 'कंचन और कामिनी चोकी आडी शामनी।' शाम भगवान, इनके प्राप्त करने के लिए चौकी है। ये अन्दर प्राप्त नहीं कर सकती। 'राम की रमत को वो लूटे' आहाहा! ये कंचन और कामनी का प्रेम अर्थात् पुण्य—दया, दान, व्रत के राग का प्रेम, ये आत्मा की शान्ति को लूटते हैं। आहाहा! समझ में आया ? राम की रमतुं। निजपद भगवान। निजपद रमे सो राम कहिये। आनन्द और ज्ञान की शक्ति का भण्डार। इसमें रमना, वह आत्माराम है। आहाहा! यह आत्माराम हुआ तो राग की रमणता में राग का कर्तापना पहले माना था, यह राम की रमत में यह राग का कर्ता छूट गया। यह राम अपना, हों! आत्मा आनन्दराम। आहाहा! समझ में आया ?

'**कर्ता कर्ता न भवति**' है न ? **ज्ञानगुण ऐसा प्रगट हुआ है। जैसे अज्ञानपने के लिए हुए जीव मिथ्यात्व परिणाम का कर्ता होता था...** यह रागादि मिथ्या—झूठे परिणाम थे। आहाहा! शुभ-अशुभभाव, ये सब झूठे भाव थे। ये आत्मा के सत्यभाव नहीं। आहाहा! ये **ज्ञानगुण ऐसा प्रगट हुआ है। जैसे अज्ञानपने के लिए हुए जीव मिथ्यात्व परिणाम का कर्ता होता था...** झूठा परिणाम जो सत्य नहीं आत्मा में, ऐसे परिणाम का मिथ्यात्व में कर्ता होता था। आहाहा! अथवा मिथ्या झूठे परिणाम में कर्ता होता था। आहाहा!

सो तो ज्ञानप्रकाश होने पर अज्ञान भाव का कर्ता नहीं होता। ज्ञानस्वरूपी प्रभु, मैं तो ज्ञानप्रकाश मूर्ति हूँ। ऐसे ज्ञान का सम्यग्ज्ञान में प्रकाश हुआ तो राग का कर्ता नहीं होता। आहाहा! तो पर के कर्तापने की तो बात दूर रही। बहुत दूर रही। आहाहा! **ज्ञानप्रकाश होने पर अज्ञान भाव का कर्ता नहीं होता। 'कर्ता कर्ता न भवति'** का अर्थ किया।

अब '**कर्म अपि कर्म एव न**' कर्म भी अब कर्मरूप नहीं होता। क्योंकि यहाँ अज्ञानपने राग का कर्ता था तो कर्म कर्मरूप होता था। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध। यहाँ राग का कर्ता नहीं हुआ और ज्ञातापने का भान हुआ तो राग कर्ता न हुआ तो कर्म कर्मपने भी न हुआ। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह इसके कारण न हुआ। परन्तु यहाँ राग का कर्तापना छूट गया तो निमित्तपना भी नहीं रहा तो नैमित्तिक पुद्गल में कर्मरूप

पर्याय होती थी, यह भी नहीं रही। आहाहा! समझ में आया? बनिया चक्रवृद्धि ब्याज निकाले, उसमें होशियार है। क्या चक्रवृद्धि ब्याज समझे? पाँच लाख रुपया दिया हो। आठ आना के ब्याज से। अब तुम्हारे रुपया, डेढ़ रुपया हो गया। पहले आठ आना ब्याज था। पाँच लाख दिया हो सौ रुपये के एक महीने के आठ आना। तो प्रत्येक दिन का ब्याज निकाले। उन पाँच लाख का प्रत्येक दिन का ब्याज निकाले और यह ब्याज सहित पैसा का बाद में ब्याज लगाये। ये चक्रवृद्धि ब्याज कहलाता है। क्या कहा?

मुमुक्षु : यह नाम का चक्रवर्ती....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चक्रवर्ती है भगवान अन्दर, आहाहा! उसको भूलकर राग का चक्रवर्ती (होता है)। ऐसा पहले था। गृहस्थ आदमी हो। दो-दो लाख देता था। दो लाख आठ आना... उस समय तो आठ आना बहुत थे। अब तो कहीं डेढ़ रुपया हो गया है, ऐसा कहते हैं। डेढ़ प्रतिशत, डेढ़ प्रतिशत ऐसा सुना है। यह आठ आने का प्रत्येक दिन ब्याज बढ़े। रोजाना का। पाँच लाख रुपया हो तो प्रत्येक दिन ब्याज निकाले। यह ब्याज सहित बाद में दूसरे दिन आठ आना का ब्याज चढ़ाये। आहाहा! ऐसे प्रत्येक दिन मिलाकर ब्याज लगाता है। इसका अर्थात् बारह माह तक चक्रवृद्धि ब्याज ले जाता है। इसमें बनिया होशियार है। बनिया का अर्थ व्यापार के वे। बनिया तो खोजा भी बनिया कहलाता है। व्यापार करे इस अपेक्षा। बनिया जात भले न हो। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे भगवान बनिया—आत्मा व्यापारी... आहाहा! ये बनिया! आहाहा! कहते हैं कि अपने ज्ञानस्वरूप का जहाँ व्यापारी हुआ, वहाँ राग का कर्ता होता था, वह छूट गया। और कर्म भी कर्मपने बँधता था, यह रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

'कर्म अपि कर्म एव न' मिथ्यात्व रागादि विभाव कर्म भी रागादिरूप नहीं होता। कर्म भी अब कर्मरूप होते नहीं। और फिर **'ज्ञानं ज्ञानं भवति' जो शक्ति विभाव परिणमनरूप परिणमी थी...** जो शक्ति विभावरूप परिणमी थी। शक्ति तो शक्ति है, परन्तु पर्याय में विभावरूप थी। आहाहा! **वही फिर अपने स्वभावरूप हुई।** राग का कर्ता विभावरूप से था, यह स्वभाव का कर्ता हुआ तो ज्ञानरूप कर्ता हुआ। यह आत्मा तो ज्ञान की शक्ति का कर्ता है। **अपने स्वभावरूप हुई।** जिस प्रकार **'यथा पुद्गलः अपि पुद्गलः'**

ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमा था जो पुद्गल द्रव्य वही कर्म-पर्याय को छोड़कर पुद्गल द्रव्य हुआ ? आहाहा! भगवान आत्मा जब राग के कर्तापने से छूट गया और सम्यग्दर्शन में ज्ञान का कर्ता हुआ तो कर्तापना मानता था वह छूट गया। राग का कर्ता है नहीं तो राग है ही नहीं। यहाँ राग करता था, तब कर्मरूप भी था। राग का कर्तृत्व छूट गया तो कर्म भी कर्मपने छूट गया। कर्म कर्मपने रहा नहीं। आहाहा! निमित्त छूट गया तो नैमित्तिक कर्म की अवस्था भी छूट गयी। समझ में आया? ऐसी व्याख्या है। पहले तो ऐसा सीधा था।

एक व्यक्ति बेचारा कहता था, हम दया पालते हैं, व्रत करते हैं, सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण (करते हैं)। स्थानकवासी में ये सामायिक करो प्रतिक्रमण करो और प्रौषध करो और उपवास करो। तुमने ऐसी लकड़ी बीच में मारी कि ये सब क्रिया राग की है। जिसको हम धर्म मानकर बैठे थे, उसको तुमने धर्म नहीं ऐसा कहा है। एक व्यक्ति आया था। वीरमगाम का था। इनकमटैक्स। क्या कहते हैं, इनकमटैक्स का अफसर था। मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर था। आया, स्वाध्यायमन्दिर में व्याख्यान सुना। व्याख्यान सुनकर (कहा), बहुत सरस। बाद में अन्दर आया और कहा, महाराज! हम जो कुछ करते थे, उसमें अन्दर में लकड़ी मारी। पूजा, यात्रा शत्रुंजय की की उसमें धर्म नहीं? कितना वातावरण वहाँ भगवान का है न... कहा, धर्म नहीं तीन काल में। यह तो परलक्ष्यी भाव शुभभाव है। समझ में आया? आहाहा! भाव हो, परन्तु बन्ध का कारण है। समझ में आया? आता है, ज्ञानी को भी भाव तो आता है, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा! अर्थात् कि मोक्ष का कारण मानता था, बात सीधी थी, इसमें बीच में आड़ मार दी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा ये शुभभाव का भी कर्ता होता है, वहाँ तक तो अज्ञान था। अर्थात् चैतन्यज्ञान का ज्ञान नहीं था। जो चैतन्य प्रकाश का पूर है, उसके ज्ञान का ज्ञान नहीं था। राग का ज्ञान था और राग करता था, वह अज्ञान था। आहाहा! समझ में आया? जब ज्ञान का ज्ञान हुआ तो राग का कर्तृत्व छूट गया और कर्म बन्धन था, वह भी नहीं रहा। यह कर्ता-कर्म का अन्तिम श्लोक, यह योगफल लिया। आहाहा! कर्ता-कर्म तो अपने बहुत समय से चलता है। बीस दिन कक्षा (शिविर) में, चौदह-पन्द्रह दिन हो गये। यह पहले से तो चलता है। समझ में आया? यह कलशटीका में।

[४]
पुण्य-पाप अधिकार

कलश-१००

(द्रुतविलम्बित)

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो
द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन्।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं
स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः।।1-100।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'अयं अवबोधः सुधाप्लवः स्वयं उदेति' [अयं] विद्यमान [अवबोधः] शुद्ध ज्ञानप्रकाश, वही है [सुधाप्लवः] चन्द्रमा [स्वयं उदेति] जैसा है, वैसा अपने तेजपुञ्ज के द्वारा प्रगट होता है। कैसा है? 'ग्लपितनिर्भरमोहरजा' [ग्लपित] दूर किया है [निर्भर] अतिशय सघन [मोहरजा] मिथ्यात्व अन्धकार जिसने, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है-चन्द्रमा का उदय होने पर अन्धकार मिटता है, शुद्ध ज्ञान प्रकाश होने पर मिथ्यात्व परिणमन मिटता है। क्या करता हुआ ज्ञान चन्द्रमा उदय करता है-'अथ तत् कर्म ऐक्यं उपानयन्' [अथ] यहाँ से लेकर [तत् कर्म] रागादि अशुद्ध चेतना परिणामरूप अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल पिण्डरूप कर्म, इनका [ऐक्यं उपानयन्] एकत्वपना साधता हुआ। कैसा है कर्म? 'द्वितयतां गतं' दोपना करता है। कैसा दोपना? 'शुभाशुभभेदतः' [शुभ] भला [अशुभ] बुरा, ऐसा [भेदतः] भेद करता है। भावार्थ इस प्रकार है-किसी मिथ्यादृष्टि जीव का अभिप्राय ऐसा है जो दया, व्रत, तप, शील, संयम आदि से देहरूप लेकर जितनी है शुभ क्रिया और शुभ क्रिया के अनुसार है उसरूप जो शुभोपयोग परिणाम तथा उन परिणामों को निमित्त कर बाँधता है जो साताकर्म आदि से लेकर पुण्यरूप पुद्गलपिण्ड, वे भले हैं, जीव को सुखकारी हैं। हिंसा विषय कषायरूप जितनी है क्रिया, उस क्रिया के अनुसार अशुभोपयोगरूप संक्लेश परिणाम, उस परिणाम के निमित्त कर

होता है जो असाताकर्म आदि से लेकर पाप बन्धरूप पुद्गलपिण्ड, वे बुरे हैं, जीव को दु:खकर्ता हैं। ऐसा कोई जीव मानता है। उसके प्रति समाधान ऐसा कि जैसे अशुभ कर्म जीव को दु:ख करता है, उसी प्रकार शुभकर्म भी जीव को दु:ख करता है। कर्म में तो भला कोई नहीं है। अपने मोह को लिये हुए मिथ्यादृष्टि जीव कर्म को भला करके मानता है। ऐसी भेद प्रतीति शुद्धस्वरूप का अनुभव हुआ, तब से पायी जाती है।।1-100।।

कलश - १०० पर प्रवचन

अब, पुण्य-पाप अधिकार। यह तो मध्यस्थता से बहुत समझने जैसी बात है। यह कोई बहुत सूक्ष्म नहीं। समझ में आाय? पुण्य-पाप अधिकार।

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो
द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन्।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं
स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लव:।।1-100।।

आहाहा! अब अधिकार बदला। पहले कर्ता-कर्म था, अब पुण्य-पाप का अधिकार। शास्त्र में यहाँ शब्द तो प्रकृति का है। पुण्य-पाप जड़कर्म की प्रकृति है न? उसमें ऐसा प्रश्न किया है कि यहाँ तो प्रकृति की बात है। पुण्य-पाप जड़ दोनों एकसमान हैं, ये तो जड़ की बात है। परन्तु शुभाशुभभाव एक समान हैं, यह बात कहाँ है अन्दर? इसमें से निकालते हैं। अर्थ में तो अमृतचन्द्राचार्य ने लिया है कि जो पुण्य-पाप प्रकृति के परमाणु हैं, बात तो उसकी है, परन्तु जिस भाव से बँधता है, यह भाव भी इसमें आ जाता है। समझ में आया? आगे हेतु आयेगा। **'हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां'**। १०२ कलश है न? यह १००वाँ चलता है, बाद में १०२। यह १००वाँ श्लोक है न? बाद में १०२।

'हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां'। अर्थात् कि अकेली प्रकृति लेना, ऐसा नहीं। पुण्यबन्ध और पापबन्ध दोनों समान हैं बन्ध में, परन्तु शुभाशुभ दोनों समान हैं, ऐसा इसमें नहीं आता। ऐसा कहते हैं। प्रश्न है। जिनेश्वरदास के गाँव से रतनचन्दजी का। रतनचन्दजी ऐसा कहते

हैं। रतनचन्दजी नाम है न? रतनचन्दजी? आहाहा! यह कहते हैं कि यहाँ तो प्रकृति की बात है, पुण्य-पाप की, परन्तु भाव की बात नहीं। ऐसा (वे) कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य ने यहाँ एक में से चार निकाले हैं। समझ में आया? १०२ में आयेगा। कारण शुभाशुभभाव भी एक, पुण्य प्रकृति बन्धन एक, और फलरूप संयोग एक और बन्ध के आश्रय शुभाशुभभाव होते हैं। मुक्ति के आश्रय नहीं होते। समझ में आया? आगे आयेगा। वे तो ऐसा ही कहते हैं, यह तो प्रकृति की बात है। पुण्य-पाप जड़, वह हेय हैं, इसमें शुभभाव हेय कहाँ आया? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, शुभाशुभभाव कहो या शुभाशुभ प्रकृति कहो या शुभाशुभ के आश्रय में बन्ध का कारण है, ऐसा कहो। समझ में आया? यह सब एक ही बात है। मुख्यरूप से प्रकृति की कही। कुन्दकुन्दाचार्य थोड़े शब्दों में कहना है न? बहुत विस्तार करना नहीं अर्थात् थोड़े शब्दों में कहना है तो प्रकृति से लिया। बाद में इसकी टीका की उसमें ऐसा (कहा कि) इसके कारण शुभाशुभभाव भी इसमें आ जाता है। शुभाशुभभाव भी चण्डालिनी के पुत्र के समान दोनों हेय हैं। समझ में आया? बाद में श्लोक आयेगा। चण्डालिनी के पेट से दोनों उत्पन्न हुए। एक चण्डालिनी के घर रहा और एक ब्राह्मण के घर गया। पर हैं तो दोनों चण्डालिनी के पुत्र ऐसे शुभ और अशुभ परिणाम दोनों चण्डालिनी-विभाव के पुत्र हैं। समझ में आया? ये भगवान स्वभाव के पुत्र नहीं। आहाहा! कठिन काम है। अभी तो बाधा ये उठी है न। शुभभाव मोक्ष का मार्ग। लो! यहाँ कहते हैं, शुभ और अशुभ दोनों बन्ध के कारण हैं। यह एक भी मोक्ष के मार्ग नहीं। आहाहा! अभी तो मक्खनलालजी जैसे ने भी चर्चा उठाई। यहाँ तो कहते हैं, शुभभाव ये बन्ध का कारण है, चण्डालिनी का लड़का है।

मुमुक्षु : वह पर सन्मुखता का भाव है...

पूज्य गुरुदेवश्री : परसन्मुख परन्तु यह शुभ है न। ऐसा कहते हैं। शुभ है न इसका नाम। परन्तु शुभ का अर्थ क्या? ये अशुभ की अपेक्षा शुभ। बाकी तो दोनों अशुद्ध हैं। समझ में आया? अरे! इनने पंचाध्यायी में अर्थ किया है। पंचाध्यायी का अर्थ मक्खनलालजी ने किया है। तो इसमें एक श्लोक है कि शुभभाव दुष्टपुरुष की भाँति आदरणीय (नहीं)। दुष्ट

का कथन जैसे आदरणीय नहीं। वैसे शुभभाव आदरणीय नहीं। आहाहा! मूल श्लोक है, अर्थ किया है परन्तु बाद में दृष्टि बदल ली। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरा कहने लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा कहने लगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, '**अयं अवबोधसुधाप्लवः स्वयम् उदेति**' बाद में यह यहाँ आया, देखो! वहाँ '**एतत्**' था न? यहाँ '**अयं**' (लिया)। **विद्यमान शुद्धज्ञानप्रकाश...** पुण्य-पाप के भाव कोई त्रिकाली विद्यमान नहीं। यह तो क्षणिक विकार उत्पन्न करते हैं। भगवान विद्यमानम त्रिकाली आनन्द का धाम शुद्ध चैतन्य प्रकाश का पूर है। आहाहा! समझ में आया? **विद्यमान... 'अवबोध' शुद्धज्ञानप्रकाश... 'अवबोध'** अर्थात् ज्ञान। शुद्धज्ञानप्रकाश। विद्यमान त्रिकाल है। **वही है चन्द्रमा, 'स्वयं उदेति' जैसा है वैसा अपने तेजपुंज के द्वारा प्रगट होता है।** क्या कहते हैं? चैतन्यपुंज प्रभु जो विद्यमान है। आहाहा! यह चन्द्रमा, शुद्धप्रकाशरूप चन्द्रमा। देखा? चन्द्र की उपमा दी। क्योंकि प्रकाश है, यह अन्दर शीतल प्रकाश है। चैतन्य के प्रकाश में शीतलता और शान्ति साथ में है।

सम्यग्दर्शन में जो शुद्ध चैतन्य का प्रकाश प्रगट होता है, इसके साथ शान्ति भी प्रगट होती है। इसलिए चन्द्रमा का उदाहरण दिया। सूर्य के प्रकाश में तो ताप (गर्मी) है। चन्द्र के प्रकाश में शीतलता-ठण्डक है। समझ में आया? उसी प्रकार भगवान आत्मा राग का कर्तृत्व छोड़कर जब चैतन्य प्रकाश की पर्याय में व्यक्तपना-प्रगटपना हुआ, वहाँ ज्ञान में शान्ति भी साथ में आई। ऐसे ज्ञानरूपी चन्द्रमा प्रगट हुआ। यह चन्द्रमा प्रगट हुआ तो दौज हुई तो पैर लगते हैं। आहाहा! दौज हुई तो लगते हैं न? सवेरे में सूर्य के पैर लगते हैं न और दौज उगे तो (चन्द्र के पैर लगे)। वास्तव में तो इनमें भगवान की प्रतिमाएँ हैं। सूर्य के पैर लगने का हेतु तो यह है। सूर्य में अन्दर में जिनप्रतिमा और मन्दिर है। इनके सवेरे पैर लगते हैं। चन्द्रमा में भी दूज उगी, कहीं नहीं होता दिखता, इसमें चन्द्रमा में भी मणिरत्न की शाश्वत् जिन प्रतिमा है। आहाहा! इसलिए इसके पैर लगते हैं। पहले पैर लगें उस दूज को, परन्तु हेतु तो अन्दर भगवान के पैर लगना है। अहो! शाश्वत् प्रतिमायें!

मुमुक्षु : सूर्य में भी मन्दिर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें मन्दिर हैं। चन्द्रमा, सूर्य में जिनमन्दिर जिनप्रतिमायें शाश्वत् हैं।

मुमुक्षु : चक्रवर्ती इनके दर्शन करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दर्शन करें। चक्रवर्ती के बहुत नजदीक इसके ऊपर चढ़कर पैर छुए। मूल तो मन्दिर के पैर छूते हैं। ये बाहर दिखता है, यह पत्थर है। पत्थर का प्रकाश है। परन्तु अन्दर भगवान सर्वज्ञ वीतरागी प्रतिमा शाश्वत है। चक्रवर्ती सवेरे पैर लगता है। शाश्वत् जिनबिम्ब। समझ में आया? अरे! लोगों को पक्ष के कारण सूझ पड़ती नहीं। शाश्वत् प्रतिमायें हैं।

जैसे त्रिकाल में त्रिकाल ज्ञानी का विरह नहीं होता, ऐसे त्रिकाल में जैन प्रतिमा स्थापना का विरह नहीं होता। ये स्थापना भी, जैसे भाव त्रिकाल है... क्या कहा? त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाला भाव जैसे त्रिकाल है—कायम है। ये तीन काल को जाननेवाले अभी हुए, ऐसा नहीं। पहले से अनादि से तीन काल को जाननेवाले अनादि से हैं। भाव जैसे अनादि से है, वैसे उसकी स्थापना भी अनादि से है। आहाहा! समझ में आया? इसका कथन दीपचन्दजी ने बहुत किया है। अनुभवप्रकाश में। दीपचन्दजी हुए न? बहुत प्रकाश किया है। वहाँ तो ऐसा लिया है कि जिसके नाममात्र से भी भव का अन्त आये, ऐसा कहा है। सम्यग्दर्शनसहित है न! भानसहित है न! जिनेन्द्रदेव। आहाहा!

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। ऐसा नाम लेने से भी पवित्र दशा हो जाती है। ये है तो विकल्प, परन्तु लक्ष्य आत्मा ऊपर है, इससे (ऐसा कहा)। समझ में आया? ये अनुभवप्रकाश में है, इसमें चिद्विलास में भी है अथवा वह क्या कहलाये? अध्यात्मपंचसंग्रह। फिर वहाँ तो ऐसा लिया है... लक्ष्य में आ गया, लो, ठीक! 'नाम भगवान के समान आन कोऊ नहीं, यातैं भवतारी नाम सदा उर भाईये।' वहाँ ये शब्द हैं, हों! पहले दूसरा है। आया, लो! उपदेशसिद्धान्त रत्नमाला में है। कहाँ से लिया है ये पता नहीं थोड़ा... 'महिमा हजार दस सामान्य जु केवली की', सामान्य केवली से 'महिमा हजार दस सामान्य जु केवली की, तिनके सम तीर्थंकरदेव की मानिए।' एक तीर्थंकर की महिमा दस हजार सामान्य केवली से भी विशेष हैं। अब प्रतिमा की आयेगी।

'तीर्थंकर मिले दस हजार ऐसे' दस हजार तीर्थंकर हों, 'ऐसी महिमावन्त एक प्रतिमा की जानिये।' उपदेशसिद्धान्त रत्नमाला' में है। यह याद आ गया। यह तो सब देखा है न!

मुमुक्षु : ...तीर्थंकर के बराबर एक प्रतिमा...

पूज्य गुरुदेवश्री : दस हजार तीर्थंकर की विशेषता एक प्रतिमा में है। ऐ... सेठ!!! उपदेशसिद्धान्त रत्नमाला, पंच संग्रह में है, उपदेश सिद्धान्त (रत्नमाला), पृष्ठ-१९। यह तो हाथ में आ गया, नहीं तो समय लगे। आहाहा! देखो! 'नाम अविकार पद दाता है, जगतमांहि नाम की प्रभुता एक भगवान जानी है' पहले नाम की बात की। अब स्थापना की। 'महिमा हजार दस सामान्य जु केवली की, ताकै सम तीर्थंकरदेवजी की मानिये, तीर्थंकर मिलै दस हजार ऐसी महिमा महत एक प्रतिमा की जानिये। विरह पड़ा वहाँ भगवान की प्रतिमा दिखती है, ऐसा कहते हैं। जहाँ भगवान के विरह में प्रतिमाजी देखते हैं तो दस हजार तीर्थंकर से भी इसकी महिमा विशेष है। ये तो अध्यात्म पंच संग्रह है। उपदेशसिद्धान्त रत्नमाला में पृष्ठ नं. १९ है। इसमें है। इसमें लिखा नहीं? लिख लेना चाहिए। कहो, समझ में आया? है तो शुभभाव। परन्तु शुभभाव में आत्मा का लक्ष्य अन्दर आता है कि भगवान ऐसा। आहाहा! प्रतिमा देखो तो शान्त शान्तरस से भरी मानो। अक्रियबिम्ब—राग की क्रिया से रहित बिम्ब है। आहाहा! समझ में आया?

यह इसमें भी आता है न? समयसार, नहीं? भावार्थ में। भगवान की शान्ति देखकर शान्ति आती है। आती है, समयसार की पहली गाथाओं में। भगवान की स्थापना देखो शान्ति होती है, शान्ति। है तो शुभभाव, परन्तु अन्दर यह शान्ति की याद आती है कि शान्त.. शान्त... उपशमरस से भरा हुआ, हिले नहीं, चले नहीं, क्रिया नहीं, ऐसी मेरी चीज़ शान्त चैतन्य प्रतिमा मैं हूँ, ऐसा याद आता है, उसमें निमित्त भगवान की प्रतिमा है, ऐसा यहाँ कहना है। समयसार में है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो बात जैसी है, वैसी जानना चाहिए। बापू! इसमें कोई पक्ष यहाँ नहीं। समझ में आया? सन्त पहले कह गये हैं, वह बात है। आहाहा! भाई ने — बनारसीदास ने कहा नहीं? जिनप्रतिमा जिनसारखी। समयसार नाटक में आता है। समयसार नाटक में आता है। समयसार नाटक, बनारसीदास। जिनप्रतिमा जिनसारखी। समझ में आया? यह समयसार नाटक रहा। बनारसीदास का है न?

यहाँ कहते हैं, चन्द्रमा-जैसा आत्मा (है, वैसा) तेज पुंज द्वारा प्रगट होता है। आहाहा! राग का कर्तृत्व, शुभाशुभभाव का (कर्तृत्व) छोड़कर, यहाँ तो अब शुभाशुभभाव है न? यह शुभाशुभभाव की रुचि छोड़कर जिसने चैतन्य प्रकाश की रुचि की, चन्द्रमा शीतल जैसे प्रगट होता है, वैसे शान्ति से चैतन्य का प्रकाश प्रगट होता है। आहाहा!

'जिसके हृदय में अंतर सुदृष्टि की लहर जगी, विणसी मिथ्यात्व मोह निद्रा की... जिसका मिथ्यात्व नाश हुआ। 'विणसी मिथ्यात्व मोह निद्रा की ममारखी शैली जिनशासन की फैली, जाकै घट भयो, गर्व को त्यागी, षट्द्रव्य को पारखी, आगम के अक्षर परै हैं जाके श्रवण में हृदय भंडार में समानी वाणी आरखी कहत बनारसी अल्प भव स्थिति जाकी, सोई जिन प्रतिमा प्रवानै जिन सारखी' यह दूसरी विशेष बात है। विशेष आयेगी, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ४, शुक्रवार, दिनांक १६-०९-१९७७
कलश-१००, प्रवचन-९६

कलशटीका, पुण्य-पाप अधिकार। १०० श्लोक है। इसका भावार्थ इस ओर। इस ओर भावार्थ है। **भावार्थ इस प्रकार है...** है ? **चन्द्रमा का उदय होने पर अन्धकार मिटता है,...** पहले दृष्टान्त दिया है। **चन्द्रमा का उदय होने पर...** है ? चन्द्रमा का दृष्टान्त दिया है, सूर्य का नहीं। क्योंकि चन्द्रमा का प्रकाश और शीतलता दोनों साथ हैं। **चन्द्रमा का उदय होने पर अन्धकार मिटता है, शुद्ध ज्ञान प्रकाश होने पर...** अब सिद्धान्त। आत्मा पुण्य-पाप के राग से भिन्न, ऐसा चैतन्य का प्रकाश होने पर **शुद्ध ज्ञान प्रकाश होने पर...** शुद्ध ज्ञान प्रकाश का अर्थ—शुभ-अशुभभाव जो विकार, विकल्प, राग, विकार से भिन्न मैं चैतन्यज्योति हूँ — ऐसा चैतन्य का प्रकाश प्रगट होने पर **मिथ्यात्व परिणमन मिटता है।** कर्म मिटता है, ऐसा नहीं लिखा। मिथ्यात्व परिणाम मिटता है।

शुभभाव अच्छा है और अशुभभाव खराब है — ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, (वह मिटता है)। समझ में आया ? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के शुभभाव अच्छे हैं और अशुभभाव खराब हैं — ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, ये शुद्ध ज्ञानप्रकाश होने पर मिथ्यात्व का नाश होता है। मैं तो शुद्ध चैतन्य आनन्द, ज्ञानामृत सूर्य हूँ। ज्ञानामृत सूर्य हूँ। ज्ञान और अमृत से भरा हुआ। आहाहा! ऐसी दृष्टि होने से शुद्धज्ञान का प्रकाश होता है। तब पुण्य भला और पाप खराब, इस मिथ्या अन्धकार का नाश होता है। आहाहा! ये तो बहुत सादा अधिकार है, दोपहर शक्ति का अधिकार (चलता है), वह जरा सूक्ष्म है। समझ में आया ?

वर्तमान में ये बड़ी गड़बड़ है न ? कि व्यवहार समकित और व्यवहार व्रत, तप करे तो कल्याण होगा। परन्तु व्यवहार समकित ही नहीं होता। आहाहा! राग का तो (आरोप देते हैं)। सम्यग्दर्शन हुआ हो, शुभाशुभभाव से भिन्न चैतन्य की अन्तर्दृष्टि का अनुभव हुआ हो, उसको यथार्थ निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। साथ में राग है, उसको आरोप देकर

व्यवहार समकित कहते हैं। वह कोई व्यवहार समकित है ही नहीं। ये तो रागभाव को आरोप देकर कथन करने में आता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **मिथ्यात्व परिणमन मिटता है।** ऐसा लिया है। शुद्धज्ञानप्रकाश होते शुभाशुभभाव की रुचि छोड़कर शुद्ध ज्ञानस्वरूप की दृष्टि करने से शुद्धज्ञान का प्रकाश होता है। आहाहा! तब सम्यग्दर्शन होता है। तब मिथ्यात्व के परिणमन के अन्धकार का नाश होता है। समझ में आया? पाठ में मोहरज है। ऊपर है पहली लाईन? मोहरज। इसका मिथ्यात्व अन्धकार अर्थ किया है। है? मोहरज। पाठ में मोहरज है। तथापि उसका अर्थ किया कि मिथ्यात्व अन्धकार।

मुमुक्षु : भाव मिथ्यात्व लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। है न? गुजराती में चौथी-पाँचवीं लाईन होगी। गुजराती में पाँचवीं नहीं, पहली। समझ में आया? यहाँ ऐसा कहा, अपने तेजपुंज द्वारा ज्ञान प्रगट हुआ। उससे मोहरज-मिथ्यात्व अन्धकार का जिसने नाश किया है। मोहरज का— कर्मरज का नाश, ऐसा नहीं कहा। कर्मरज तो उसके कारण से नाश होती है। यहाँ तो सम्यक् चैतन्यमूर्ति, चैतन्यसूर्य शीतलचन्द्र, शान्त और आनन्दरस और ज्ञानरस से, ज्ञानामृतरस के रस से भरा ऐसा अमृत का स्वाद आता है तो कहते हैं कि ज्ञान का प्रकाश हुआ। ये वस्तु थी, वह प्रकाशित हुई। यह प्रकाश होने से मिथ्यात्व अन्धकार का नाश होता है। दूसरा कोई उपाय है नहीं। इतना व्रत पालो और दया और भक्ति और पूजा बहुत करे तो इससे मिथ्यात्व अन्धकार का नाश होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो सादा भाषा है। सादी सरल।

दोपहर शक्ति का अधिकार जरा सूक्ष्म है। गुण का अधिकार है न, गुण? यह भी आया कि आत्मा में ऐसा कोई गुण नहीं कि जो शुभाशुभभाव उत्पन्न करे गुण—ऐसी कोई शक्ति—सत्व नहीं कि दया, दान, व्रत के विकल्प उत्पन्न करे, ऐसी कोई शक्ति-गुण नहीं। आहाहा! वह तो पर्याय की योग्यता से पुण्य-पाप भाव उत्पन्न करता है और इससे लाभ होता है, ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया? अपनी पर्याय की योग्यता से शुभभाव अपने कारण षट्कारक की विकृत परिणमन के कारण ये पर्याय उत्पन्न हुई। समझ में आया? परन्तु ऐसी कोई आत्मा में शक्ति-गुण नहीं कि शुभभाव उत्पन्न करे। आहाहा! तो

कहते हैं कि पर्याय में जो पुण्य-पाप के भाव मेरे ऐसा मिथ्यात्व अन्धकार उत्पन्न होता है। आहाहा! यह शुद्धचैतन्य प्रकाश की दृष्टि करने से (मिटता है)। चैतन्यप्रकाश प्रगट होना, इसको मिथ्यात्व के अन्धकार का नाश होना, एक समय है। समझ में आया?

ये चैतन्य भगवान ज्ञाननूर, ज्ञानपूर... आहाहा! अमृत का सागर भगवान आत्मा उसका अनुभव करने से, दृष्टि करने से, आश्रय करने से, सन्मुख होने से पर्याय में सम्यग्ज्ञान हुआ। समझ में आया? आहाहा! इस सम्यग्ज्ञान ने मिथ्यात्व अन्धकार का व्यय किया। सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, मिथ्याज्ञान का व्यय, ध्रुवपने कायम रहना। समझ में आया? आहाहा!

यह शल्य इतनी कठिन है कि मानो कषाय की मन्दता और शुभभाव करते-करते सम्यक् होगा, महामिथ्यात्व शल्य है। सूक्ष्म बात है, भाई! प्रभु का मार्ग वीतरागभाव से उत्पन्न होता है और शुभभाव है, वह तो राग है तो राग से आत्मा का वीतराग सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है? आहाहा! पहले मूल में भूल है। मूल में भूल।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञान का प्रकाश। चैतन्य सत्ता अर्थात् चैतन्य का होना, वह है, ऐसा अन्दर अनुभव में स्वीकार किया। आहा! तब ज्ञान के प्रकाश की पर्याय प्रगट हुई। उससे मिथ्या अन्धकार नाश होता है, तब सम्यग्दृष्टि होता है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? **क्या करता हुआ ज्ञान चन्द्रमा उदय करता है - 'अथ तत् कर्म ऐक्यं उपानयन्'** आहाहा! क्या कहते हैं? **यहाँ से लेकर रागादि अशुद्ध चेतना परिणामरूप... 'कर्म'** शब्द पड़ा है। **'कर्म'। 'कर्म'** के दो अर्थ किये। पुण्य-पाप के भाव अशुद्ध परिणाम। रागादि अशुद्ध अर्थात् शुभ-अशुभभाव रागादि भाव हैं। व्रत, तप, दया, दान के भाव, वह राग हैं। तो रागादि अर्थात् राग शुभ, अशुभ, द्वेषादि अशुद्ध जीव के परिणाम, चेतना परिणाम। देखो! ये **रागादि अशुद्ध चेतना परिणाम...** आहाहा! यहाँ जड़ के परिणाम की बात नहीं। यह तो निमित्त से कथन करता है। परन्तु **'तत्कर्म'** पुण्य-पापादि **अशुद्ध चेतना परिणामरूप अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल पिण्डरूप...** यह तो निमित्त का कथन है। अशुद्ध उपादान है इतना इसका। इसमें कर्म तो निमित्त है। शुद्ध उपादान के आश्रय से अशुद्ध उपादान जो अशुद्ध मलिन परिणाम था, उसका नाश हुआ तो कर्म का

भी नाश हुआ। समझ में आया ?

मुमुक्षु : निमित्त तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त बताया कि ये उपादान में अशुद्धता का नाश हुआ, शुद्ध उपादान का आश्रय करके अशुद्ध उपादान का व्यय हुआ तो कर्म का व्यय उसके कारण से हुआ। आत्मा कर्म का कर्ता है और बाँधता है, ऐसा है नहीं। वे तो जड़ है। जड़ की अवस्था आत्मा कैसे करे ? और छोड़े कैसे ? समझ में आया ? आहाहा ! अभी तो बड़ी धमाल ये शुभभाव... शुभभाव धर्म है, धर्म है। शुभभाव से शुद्धता होती है। बड़ी मिथ्या शल्य है। महा अन्धकार मिथ्यात्व का। इसमें शुभभाव के कारण धर्म है और ये धर्म का कारण है, ऐसा मानना भवोदधि का कारण मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! भवरूपी समुद्र में डूबने का (कारण) मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! पहले उसको सुधारना है यहाँ। व्रत, तप बाद में आयेंगे। विकल्प है। परन्तु यह सम्यग्दर्शन हुए बिना और मिथ्यात्व का नाश करे बिना व्रत और प्रतिमा सब फोकट निष्फल हैं सब। आहाहा ! समझ में आया ?

भाषा कैसी ली है ! दूसरे में मोहरज में मिथ्यात्व अन्धकार लिया। और '**तत् कर्म**' में भी पहले रागादि अशुद्ध परिणाम लिए। यह गाथा है न ? १६० है ? मोहरज। '**मोहरयेण आच्छादन**' हुकमीचन्दजी सेठ आये थे न ? साथ में जीवंधरजी थे। भाई भी थे। बंशीधरजी थे। ऐसा समयसार की गाथा में आता है। ये मोहरज है न ? ऐसा कहा। परन्तु मोहरज का अर्थ टीकाकार ने क्या किया ? समझ में आया ? १६० गाथा है न। वह उस दिन थी। यहाँ सेठ आये थे न ? तब ये गाथा चली थी। देखो ! क्या है ?

'**सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणावच्छण्णो**' '**सव्वणाणदरिसी**' भगवान आत्मा तो सर्व ज्ञान-सर्वदर्शी है। फिर भी '**कम्मरएण णियेणावच्छण्णो**' कर्मरज से ढंका हुआ है। तब वह कहे, कर्मरज अर्थात् जड़। ऐसा नहीं। अर्थ में लिया है देखो ! **जो अपना ही ज्ञान होने के लिए विश्व को (सर्व पदार्थों को) सामान्य-विशेषरूप जानने के स्वभाववाला है ऐसा ज्ञान अर्थात् आत्मद्रव्य, अनादि काल से अपने पुरुषार्थ के अपराध से प्रवर्तता ऐसे कर्ममल से...** कर्मरज जड़ नहीं। तब वे कहते हैं, देखो ! यहाँ कर्मरज है। परन्तु कर्मरज का अर्थ क्या है ? समझ में आया ? इसका अर्थ ये किया, देखो !

अपने पुरुषार्थ के अपराध से... पुरुषार्थ के अपराध से, **प्रवर्तता ऐसे कर्ममल...** अर्थात् राग परिणाम, मिथ्यात्व परिणाम। इसको यहाँ कर्ममल कहा है। रज जड़ की पर्याय यह तो पर कर्म है, इसके साथ क्या सम्बन्ध है ? आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा यहाँ आया—मोहरज। रज अर्थात् कर्म परमाणु नहीं। समझ में आया ? उस समय चर्चा हुई थी। (संवत्) २००५ के वर्ष। २६ वर्ष हुए। हुकमचन्दजी सेठ पहले-पहले आये थे न ? जीवणधरजी साथ में थे। देखो ! यहाँ रज है, मोहरज जड़। जड़ से आच्छादित है। कहा, यह तो निमित्त का कथन है। यहाँ ये नहीं। यहाँ तो मिथ्यात्व परिणाम और राग-द्वेष परिणाम जो भावघाति हैं, इससे आत्मा ढँका हुआ है। जड़ से ढँका है, यह तो निमित्त का कथन है। समझ में आया ? आहाहा ! निज चैतन्यस्वरूप को भूलकर पुण्य और पाप में पुण्य भला है, पाप बुरा है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, इससे आत्मा आच्छादित है। इससे आत्मा कर्म से ढँका हुआ है, यह तो निमित्त का कथन, व्यवहार है। आहाहा ! ऐसा नहीं। यह तो निमित्त का ज्ञान कराया है।

यहाँ भी यह लिया है, देखो ! मोहरज अर्थात् मिथ्यात्व अन्धकार। और यहाँ कर्म में ये लिया। कर्म। रागादि अशुद्ध परिणाम। अशुद्ध चेतना परिणाम, ऐसा स्पष्ट लिया है। कर्म शब्द से पुण्य और पाप चेतना के परिणाम, उसको यहाँ कर्म कहने में आता है। भावकर्म को कर्म कहने में आया है। आहाहा ! समझ में आया ?

कल तो कर्म शक्ति बहुत चली थी। नहीं ? एक तो जड़ पर्याय है। जड़कर्म को कर्म कहते हैं। अरे ! ये नोकर्म की पर्याय भी कर्म-कार्य है। उसको भी उसका कर्म कहते हैं। पुण्य-पाप के भाव को भी भावकर्म कहते हैं और निर्मल पर्याय भी अपना शुद्ध उपयोग कार्य है, उसको भी निर्मल कर्म कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? प्रवचनसार में उपयोग—शुद्ध उपयोग, यह कर्मचेतना (कही है)। ज्ञानी की कर्मचेतना। ज्ञानरूपी कार्य, उसकी चेतना। आहाहा ! और यहाँ कर्मशक्ति ली, वह तो गुण लिया है। समझ में आया ? कर्मशक्ति आत्मा में एक गुण है। कर्मशक्ति नाम का अर्थात् कार्य करने की शक्ति ऐसा एक गुण है। निर्मल आत्मा में पर्यायरूपी कार्य होता है, (ऐसा) उसके अन्दर गुण है। ये गुण के कारण (कार्य होता है)। कर्म नाम का गुण। नाम कर्म शब्द है। परन्तु कर्म अर्थात्

जड़कर्म नहीं, भावकर्म नहीं, वैसे निर्मल पर्याय शक्ति नहीं। शक्ति तो त्रिकाली गुण है। आहाहा! समझ में आया? यह त्रिकाली कर्म नाम का एक गुण है। उस गुण के कारण कार्य होता है। और विकारी परिणाम जो होता है, इस कारण आत्मा में आच्छादन होता है। आहाहा! समझ में आया? विकारी परिणाम, ये भावघाति भाव है। जड़घाति जड़, ये जड़कर्म है और पुण्य-पाप के भाव, ये भावघाति कर्म हैं। समझ में आया? आहाहा! यहाँ पहले भावघाति का नाम लिया है। आहाहा!

अशुद्धचेतना... रागादि चेतना परिणाम। भाषा बाद में ऐसी की। अशुद्ध परिणाम ऐसा सीधा नहीं लिया। **अशुद्धचेतना परिणाम...** आहाहा! रागादि पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, काम, क्रोधादि। अशुद्ध चेतनापरिणामरूप। आहाहा! और **ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्डरूप...** निमित्तरूप। **उनका एकत्वपना साधता हुआ।** क्या कहते हैं? शुभ और अशुभभाव दो हैं। उसको सम्यग्ज्ञान एकरूप साधता है कि दोनों एकरूप ही हैं। शुभ ठीक है और अशुभ अठीक है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : एक...

पूज्य गुरुदेवश्री : एकपना साधता है। शुभभाव हो या अशुभभाव हो। दोनों विकार हैं, दोनों दुःख हैं, दोनों अशुद्ध हैं, दोनों बन्ध के कारण हैं। आहाहा! समझ में आया? व्रत पालना, दया पालना, भक्ति, पूजा करना, ये शुभभाव। कहते हैं कि ये दुःखरूप भाव हैं।

मुमुक्षु : तो शुभभाव नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं, परन्तु हैं दुःखरूप, ऐसा जानना। ज्ञानी को आते हैं, परन्तु ये दुःखरूप हैं, इसलिए हेय मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? पकड़ पकड़ में अन्तर है। सुना नहीं? बिल्ली होती है न? बिल्ली। चूहे को पकड़ती है और अपने बच्चे को पकड़ती है। बच्चे को पकड़ती है, तब पोले दाँत रखके पकड़ती है और चूहे को पकड़े (तब छूट नहीं, इस प्रकार पकड़ती है)। ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य-पाप के (भाव को) पकड़ लेता है—मेरा है, ऐसे पकड़ लेता है। ज्ञानी को शुभभाव आते हैं, ये चूहे की तरह जैसे माँस को काटे (पकड़े) ऐसे नहीं, भिन्न रखता है। निजस्वभाव से पुण्य परिणाम भिन्न है, मेरे चीज़ में पकड़ करने की चीज़ नहीं। आहाहा! उनको भिन्न रखकर उनका

जाननेवाला रहता है। समझ में आया? बहु मार्ग, वीतराग मार्ग जिनेन्द्र पन्थ का रास्ता अलौकिक है। आहाहा!

कहते हैं, ज्ञानी इन दोनों को भिन्न मानता है। है? **'द्वितीयां गतम्' कैसा है दो-पना?** दोनों का एकपना करते हैं। कैसा? **'शुभाशुभभेदात्'** आहाहा! शुभ भला, अशुभ खराब, ऐसा भेद करते हैं, वे अज्ञानी है। ज्ञानी दोनों को एक मानता है। दोनों पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ। आहाहा! भगवान का स्मरण करना, णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, वह भी विकल्प है। और स्त्री के विषय का भाव अशुभभाव है, ऐसे ये शुभ, दोनों बन्ध के कारण हैं। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानी दोनों को दो नहीं मानता, दोनों एकरूप मानता है। अज्ञानी दोनों के दो भेद पाड़ता है कि पुण्य भला है और पाप बुरा है। आहाहा! समझ में आया?

'शुभ' भला 'अशुभ' बुरा ऐसा भेद करता है। भावार्थ इस प्रकार है—किसी मिथ्यादृष्टि जीव का अभिप्राय ऐसा है... है? **दया, व्रत, तप, शील, संयम आदि से देहरूप लेकर जितनी है शुभक्रिया...** आहाहा! एक बात। दया, व्रत, पहले यह पर की दया की बात है। **दया, व्रत, तप, शील, संयम आदि के देहरूप लेकर जितनी है शुभक्रिया...** ये जड़ की क्रिया **और शुभक्रिया के अनुसार है उसरूप जो शुभोपयोग परिणाम...** यह जीव के शुभपरिणाम। आहा! देह से ऐसे दया की क्रिया होती है न? ये जड़ की क्रिया है। और शुभभाव है, यह जीव के परिणाम हैं। यह शुभ जीव के चेतना परिणाम हैं और जड़ की क्रिया, इसके अनुसार परिणाम होना, वह शुभभाव हैं, पुण्य हैं। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि जीव का अभिप्राय ऐसा है कि दया, व्रत, तप,... देखो! यहाँ तो तप (लिया)। शरीर से तप किया न? दो-चार दिन खाया नहीं, यह शरीर की क्रिया। और भाव, विकल्प आया कि मैं तप (करता हूँ), यह शुभराग। **शील...** शरीर से ब्रह्मचर्य पाला। **संयम...** शरीर से इन्द्रिय दमन किया **आदि के देहरूप लेकर जितनी है शुभक्रिया...** ये जड़ की शुभक्रिया। आहाहा! **और शुभक्रिया के अनुसार है उसरूप जो शुभोपयोग परिणाम...** जो जड़ की शुभक्रिया है, इसके अनुसार यहाँ शुभपरिणाम (होते हैं) ये जीव के विकारी भाव हैं। वह क्रिया जड़ की। अरेरे! ऐसी बात है। समझ में आया? **शुभक्रिया**

के अनुसार है उसरूप जो शुभोपयोग परिणाम... एक बात। **तथा उन परिणामों को निमित्त कर बाँधता है जो साताकर्म आदि से लेकर पुण्यरूप पुद्गलपिण्ड...** तीन बातें लीं। एक तो देह की क्रिया। दया, दान, व्रत आदि जड़ की। एक, इसके अनुसार हुए शुभपरिणाम और उनसे बन्ध हुआ पुण्य प्रकृति का। तीन आये। देह की क्रिया, शुभपरिणाम और बन्धन पुण्य। तीनों ठीक हैं, ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया? ये पर्यूषण में पण्डितों को धड़ाधड़ लगा देते हैं। व्रत करो, तप करो, ऐसा करो... ये सेठिया सुननेवाले जयनारायण करते हैं। हाँ बराबर है। ऐ... मफतभाई! यह इस बार यहाँ रुक गया है। भावनगर में पण्डित आये तो दिये रखे। सब प्रसन्न-प्रसन्न हो जायें। क्या कहा?

मुमुक्षु : धर्म करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु धर्म किसको कहना? यहाँ क्या कहते हैं?

दया, व्रत, तप,... शरीर से ब्रह्मचर्य। ये शरीर की क्रिया की बात है। तप में भी जो शरीर में आहार-पानी नहीं आया, उसको लेकर शरीर के शोषण ये जड़ की क्रिया (हुई) दया अर्थात् शरीर से पर जीव को न मारना, इसमें शरीर की क्रिया हुई न? ये लेना **दया, व्रत, तप, शील, संयम...** जड़ इन्द्रियों का दमन। **आदि के देहरूप लेकर जितनी है शुभक्रिया...** ये जड़। आहाहा! एक बात। उसके अनुसार हुए शुभ परिणाम। दो बात। उसके अनुसार हुई पुण्यबन्ध प्रकृति। तीसरी बात। समझ में आया?

(जीव के) ये **पुद्गलपिण्ड वे भले हैं,...** ऐसा अज्ञानी मानते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव देह की क्रिया—व्रत, तप, इन्द्रिय (दमन) आदि जड़ की क्रिया और उनके अनुसार (हुआ) शुभपरिणाम और उनके अनुसार (होता) प्रकृति का बंध को मिथ्यादृष्टि भला मानता है। आहाहा! इतना तो स्पष्ट कथन है तो भी बड़ी गड़बड़ करे चर्चा करो... चर्चा करो। मक्खनलालजी कहते हैं, शुभोपयोग मोक्ष का मार्ग है। शुभोपयोग को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। अरे! भगवान! क्या करते हो? बापू! भाई! तू तेरे हित की बात को भूल जाता है। समझ में आया?

यहाँ तो कहा, जो शरीर की जड़ क्रिया—व्रत की, तप की, ये शरीर की, शरीर। उपवास किया, आहार नहीं लिया, यह शरीर की क्रिया। व्रत भी शरीर से ब्रह्मचर्य पाला,

यह शरीर की क्रिया। और इसके अनुसार हुए शुभपरिणाम—पुण्य। और इसके अनुसार हुए प्रकृतिबन्ध। तीनों को अज्ञानी भला मानता है। इसमें से ये निकालते हैं, यहाँ तो कर्म प्रकृति की बात है। रतनचन्दजी हमारे जिनेश्वरदासजी के गाँव के हैं। वे इसमें से कहते हैं। यहाँ तो प्रकृति की बात है। परन्तु इसका अर्थ क्या कहा? समझ में आया?

मुमुक्षु : .... चार दिन रुक जाते तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस समय दिल्ली आये थे तो आ गये। आहाहा! ऐसा मार्ग स्पश्ट है, प्रभु! तुझे हाँ बोलने में पसीना आता है, अरे! तो परिणमन किस दिन हो? आहाहा! समझ में आया? कितना स्पष्ट किया है। आहाहा!

शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह जड़ की क्रिया है, इसके अनुसार ब्रह्मचर्य का भाव हुआ ये शुभभाव है। और इसके अनुसार सातादि की पुण्य की प्रकृति बँधी ये जड़ है। तीनों को अज्ञानी भला मानता है। है या नहीं सीधी बात? आहाहा! भाई! प्रभु! तेरा मार्ग तो यह शुभपरिणाम से भिन्न है। सम्यग्दर्शन का मार्ग। अरे! बन्धन से छूटने का मार्ग, नाथ! तेरे आत्मा के आश्रय भिन्न है। तूने कभी आत्मा का आश्रय लिया नहीं। यह तो पर का आश्रय है। शुभभाव ये तो पर के आश्रय की बात है। आहाहा! वहाँ सन्तोष हो गया कि मैंने बहुत किया, बहुत किया। शरीर से ब्रह्मचर्य पाला, इसके अनुसार शुभभाव हुए और शरीर से कोई दया, दान की क्रिया हुई शरीर से। इसके अनुसार शुभभाव हुआ। इससे पुण्यबन्ध हुआ। बस, बहुत अच्छा किया।

मुमुक्षु : अगले भव में साता मिलेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ साता का आराम मिलता है, ऐसा कहते हैं। ये धूल मिलती है इसमें। ऐसा मानते हैं। आहाहा! कितना स्पष्टीकरण किया है, देखो!

शुभोपयोग परिणाम तथा उन परिणामों को निमित्त कर बाँधता है जो सातकर्म आदि... सातकर्म, नामकर्म, यशकर्म आदि। ये **आदि से लेकर पुण्यरूप पुद्गलपिण्ड वे भले हैं, जीव को सुखकारी हैं।** देखो! ये शुभभाव जीव को सुखकारी हैं और शुभ से पुण्यकर्म बँधता है, ये भी सुखकारी हैं। सातावेदनीय के कारण पैसा, लक्ष्मी—धूल मिलती है। लो! सेठाई मिले। अज्ञानी मानता है कि ये सुखकारी है। धूल में ही सुखकारी

नहीं। सुन तो सही। ऐ... शान्तिभाई कहाँ है ? आहाहा!

हिंसा विषय कषाय... अब दूसरी बात। **हिंसा विषय कषायरूप जितनी है क्रिया,...** जड़ की, ये जड़ की क्रिया पहले लेना। शरीर से जीव को मारता है न ? ये क्रिया जड़ की लेना। और इसके अनुसार हुआ हिंसा का परिणाम ये अशुभ (भाव)। और इसके अनुसार असाता बँधी ये कर्म पिण्ड। तीनों को अज्ञानी बुरा मानता है और उसको (शुभ को) भला मानते हैं। समझ में आया ? **हिंसा विषय कषायरूप....** यह पहले जड़ की क्रिया लेना, हों! **जितनी है क्रिया,...** ये जड़ की लेना। **उस क्रिया के अनुसार अशुभोपयोगरूप...** ये जीव के परिणाम लेना। उसके **अनुसार अशुभोपयोगरूप संक्लेश परिणाम, उस परिणाम के निमित्त कर होता है जो असाताकर्म आदि से लेकर...** असाता, अपयश आदि नामकर्म। बन्ध आदि। **पाप बन्धरूप पुद्गलपिण्ड, वे बुरे हैं,...** ऐसा अज्ञानी मानता है। पहले तीन ठीक हैं और ये तीन अठीक हैं। ऐसा अज्ञानी दोनों एकरूप है, ऐसे उसके दो भाग करता है। आहाहा! बहुत कठिन काम।

स्थानकवासी में तो यही चलता है। इतने उपवास किये और इसने इतने उपवास किये, पच्चीस करे, पचास करे, ऐसा किया। तपस्वी की शोभायात्रा निकालो। शोभायात्रा— रथ निकालते हैं न ? और इसकी प्रशंसा करे। ओहो! तुमने बहुत किया। तुमको तपस्वी की उपमा देते हैं, लो! आहाहा! धूल में नहीं, सुनो तो सही। आहाहा! ये शुभभाव और शुभ के परिणाम (बँधी) पुण्य (प्रकृति) और शुभ के अनुसार जड़ की शुभक्रिया, तीनों मिथ्या है, झूठ है इनको अज्ञानी एक को भला मानता है दूसरे को बुरा मानता है। आहाहा! ऐसी बात है। पहले ये लेना, हों!

हिंसा विषय कषायरूप जितनी है क्रिया,... क्रिया अर्थात् जड़। ये जड़ अजीव की क्रिया, हों! उस क्रिया के अनुसार (होता) अशुभ उपयोग संक्लेशपरिणाम ये जीव के परिणाम। और **उस परिणाम के निमित्त कर होता है जो असाताकर्म...** ये पुद्गल जड़। **पाप बन्धरूप पुद्गलपिण्ड, वे बुरे हैं, जीव को दुःखकर्ता हैं ?** ऐसा अज्ञानी मानता है। ये बुरा है और यह पहला भला है, ऐसे अज्ञानी दो भाग करता है। आहाहा! **ऐसा कोई जीव मानता है। उसके प्रति समाधान ऐसा कि जैसे अशुभ कर्म जीव को दुःख करता है...**

आहाहा! **उसी प्रकार शुभकर्म भी जीव को दुःख करता है।** शुभ परिणाम भी वर्तमान दुःखरूप है और पुण्यरूप बन्धन होता है, ये बन्ध का कारण भी दुःखरूप है और उसका फल लक्ष्मी आदि मिलते हैं... आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक लिया है कि शुभभाव से पुण्य बँधता है और पुण्य बन्ध के कारण कोई वीतरागादि की वाणी मिले। तो भी उसके ऊपर लक्ष्य जाये तो उसको राग होगा, दुःख होगा। आहाहा! कठिन बात। संयोग मिलेगा (और) संयोग पर लक्ष्य जायेगा तो राग ही होगा। आहाहा! समझ में आया? यह ७४ में कहा है। कर्ता-कर्म अधिकार में आ गया है कि शुभभाव वर्तमान दुःखरूप है और भविष्य में दुःख का कारण है। छठवाँ बोल है। ७४ गाथा। दुःख और दुःख फल। ये यहाँ कहते हैं।

शुभभाव और अशुभभाव दोनों दुःख हैं। समझ में आया? आहाहा! और—उनका शुभभाव का फल भी दुःख है, ऐसा कहा। अर्थात् शुभभाव से संयोगी चीज़ मिलेगी और संयोग पर लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग ही होगा। गजब बात है। समझ में आया? पूर्व के कोई शुभभाव से पुण्य बँधा और पुण्यबन्ध के उदय से इसको अनुकूल संयोग मिला। आहाहा! परन्तु उस संयोग पर लक्ष्य जाये तो राग ही होगा। '**परदव्वादो दुग्गई**' आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

कल यहाँ कहा कि हजार केवली से एक तीर्थंकर की महिमा विशेष और हजार तीर्थंकर से एक प्रतिमा की महिमा विशेष। यह तो व्यवहार की शुभभाव की व्याख्या की। क्योंकि भगवान तो एक निश्चित जगह ही होते हैं और परमात्मा की प्रतिमा तो शाश्वत (हर जगह) होती है। निरन्तर चौबीसों घण्टे। आहाहा! और पचास, सौ, दो सौ, पाँच सौ वर्ष ये प्रतिमा वहाँ रहती है। इस अपेक्षा से वहाँ कहा है। समझ में आया? भगवान तो अमुक जगह रहते हैं और चले जाते हैं। और प्रतिमा तो एक स्थान में (रहती है)। आहाहा! वीतरागी मूर्ति चैतन्य प्रतिमा निमित्तरूप तो कायम रहती है। इस कारण उसकी महिमा की है। समझ में आया? परन्तु है तो शुभभाव। परन्तु व्यवहार में फेर बताया। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञ भगवान केवली और तीर्थंकर केवली, ये पुण्य और अतिशय से इन्द्र ऊपर

से आते हैं। ऐसा देखें। आहाहा! इससे इनकी महिमा बाहर से विशेष है। केवलज्ञान और केवलदर्शन तो दोनों के समान हैं, इसमें कुछ अन्तर नहीं। केवली का और तीर्थंकर के केवलज्ञान में। परन्तु बाहर में पुण्य में (महिमा में) अन्तर है न? इन्द्र ऊपर से उतरकर सभा में आते हैं। बाघ और नाग, सिंह, सैकड़ों सिंह जंगल में से (आते हैं), केसरी सिंह।

मुमुक्षु : पुण्य की महिमा कैसी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहते हैं कि केवली से अधिक इनके पुण्य का योग है, वह व्यवहार है, ऐसा कहा। इतना अन्तर है। बाकी तो उनका आश्रय लेनेवाले को शुभभाव ही होता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

ऐसा कोई जीव मानता है। उसके प्रति समाधान ऐसा कि जैसे अशुभ कर्म जीव को दुःख करता है, उसी प्रकार शुभकर्म भी जीव को दुःख करता है। कर्म में तो भला कोई नहीं है। आहाहा! सातावेदनीय बँधे या असाता बँधे, दोनों दुःखरूप हैं। आहाहा! और उनके दो भाव हैं, वे दोनों दुःखरूप हैं। यह तो सादी बात है। इसमें कोई सूक्ष्म नहीं। शक्ति का वर्णन दोपहर (चलता है), वह अलौकिक है। समझ में आया? एक-एक न्याय... शक्ति का—गुणों का वर्णन है न! गुणी के गुणों का वर्णन है। आहाहा! भगवान आत्मा के अनन्त गुण कैसे हैं। आहाहा! और उस गुणों का कार्य-पर्याय क्या है? उसका वर्णन है। अलौकिक वर्णन! आहाहा! समझ में आया? ये तो समझ में आये ऐसी चीज़ है। इसमें कोई सूक्ष्मता है नहीं।

कर्म में तो भला कोई नहीं है। आहाहा! **शुभकर्म भी जीव को दुःख करता है।** शुभ से भले ही कहते हैं कि वाणी मिलती है, तो भी वह राग का निमित्त है। और ये पैसा-बैसा, करोड़, दो करोड़—धूल करोड़, दस करोड़ मिले तो ये दुःख के निमित्त हैं। आहाहा! उन्हें तो दुःख का ही निमित्त कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : आप मिले ये हमारा पुण्योदय...

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले इसमें क्या हुआ? ये तो पूर्व का पुण्य था तो संयोग हुआ। परन्तु इसमें धर्म क्या हुआ? धर्म तो अपना आश्रय करे तो होगा। निज आश्रय बिना पर के

आश्रय कभी धर्म होता नहीं। तीन लोक के नाथ की पूजा समवसरण में भी अनन्त बार की। आहाहा! मणिरत्न का थाल। हीरा का थाल, मणिरत्न का दीपक और कल्पवृक्ष के फूल। साक्षात् भगवान समवसरण में विराजते थे। महाविदेह में अनन्त बार गये हैं। महाविदेह में अनन्त बार जन्म लिया है। भगवान वहाँ कायम विराजते हैं। एक के बाद एक, भिन्न-भिन्न। अनन्त बार (संयोग हुआ है)। इसमें क्या हुआ? यह तो शुभभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : थोड़ा तो नजदीक आए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़े भी नजदीक नहीं आये। दूर हैं इसमें नजदीक कहाँ से आये? इनको छोड़कर दृष्टि अपनी आत्मा की करे तो नजदीक आये। ऐसी बात है, बापू! लोगों को कठिन लगती है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! तीर्थंकर की वाणी भी समवसरण में अनन्त बार सुनी है। समझ में आया? परन्तु अपना आश्रय लिया नहीं तो, वह सब व्यर्थ गया। आहाहा! यह आया न? 'विद्वतजनों भूतार्थ तजि व्यवहार में वर्तन करें।' पुण्य-पाप अधिकार में गाथा आती है न? 'विद्वतजनों निश्चय तजी, भूतार्थ तजी।' आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु का आश्रय छोड़कर व्यवहार में वर्तन करे। दया, दान, व्रत, भक्ति (करे)। आहाहा! निर्वाण तो निश्चय के आश्रय से होता है। स्व के आश्रय निर्वाण होता है, पर की क्रिया से निर्वाण होता नहीं। वहाँ विद्वानों की व्याख्या की है। विद्वान शास्त्र में से ऐसे निकालते हैं। भूतार्थ सत्यार्थ का आश्रय छोड़कर ऐसा करो, ऐसा पुण्य करो, दया, व्रत पालो, भक्ति करो, दान दो-पाँच, दस लाख खर्चों। दो-पाँच मन्दिर बनाओ। जाओ! आहाहा!

इन्दौर के एक मुन्नालाल थे न? नहीं? राजकोट आया था न? राजकोट अपना मन्दिर हुआ न? नानालालभाई ने मन्दिर बनाया। करोड़पति आदमी। मन्दिर बनाया तो शिखर पर सोने का कलश (चढ़ाया)। मुन्नालाल पण्डित इन्दौर से आये थे। मुन्नालाल ने कहा, सेठ! तुम तो आठ भव में मोक्ष जाओगे। ऐसा मन्दिर बनाया। सेठ ने कहा, हमारी ऐसी मान्यता नहीं। हमारे महाराज ऐसा कहते नहीं। हम भी ऐसा मानते नहीं। सेठ ने मना किया। नानालालभाई ने (कहा), हम ऐसा नहीं मानते। ये शुभभाव है। भले ही मन्दिर

बनाया। ये तो इसके कारण (बना), हमारा भाव तो शुभ था, वह तो पुण्य है। इसके आश्रय भव मिटे, (ऐसा हम मानते नहीं)। अपना सेठ न बोलता था। नानालाल कालीदास करोड़पति। श्वेताम्बर था। दिगम्बर हो गया न!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर संघ का प्रमुख था।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमुख था। बड़ा करोड़पति आदमी और खानदानी आदमी। उद्धत नहीं। नरम... नरम... नरम... नरम। पैसा इतना परन्तु घमण्ड बिल्कुल नहीं। दान दे तो भी (अभिमान नहीं)। नरम, बहुत नरम। तीन भाईयों में इसकी स्थिति बहुत... राजकोट नानालाल कालीदास। उसने मन्दिर बनाया। दिगम्बर मन्दिर (संवत्) २००६ के वर्ष में (बनाया)। पण्डित मुन्नालाल आये थे। मनुष्य बहुत आये थे। बाहर से भी बहुत आये थे। पंच कल्याणक था न। हिन्दी लोग भी आये थे। तम्बू लगाये थे। बड़ी प्रवचन सभा थी। इसने (कहा), आहाहा! ऐसा मन्दिर और ऐसी प्रभावना। सेठ! तुम्हारा तो कल्याण हो जायेगा, आठ भव में मोक्ष जाओगे। ऐ... सेठ! उन्होंने इनकार किया। नानालालभाई ने कहा, भाई! हम ऐसा नहीं मानते। पर के आश्रय के भाव से संसार का नाश हो, ये हम नहीं मानते। नहीं तो श्वेताम्बर था। श्वेताम्बरों का प्रमुख था। मुख्य मनुष्य था। वहाँ ८००-१००० घर हैं। उनका प्रमुख था। छोड़कर आया वहाँ राजकोट में ३५० (घर)। स्थानकवासी और श्वेताम्बर छोड़कर। यहाँ तो कोई दिगम्बर था ही नहीं न। ३५० घर राजकोट में आ गये। साढ़े सात-आठ लाख का तो समवसरण, मानस्तम्भ, मन्दिर, धर्मशाला (बनाये)। बड़ा गृहस्थ है न। अभी भी है। रतिभाई घीया आता है न? ये भी करोड़पति है। करोड़पति तो कहते हैं, बाकी तो विशेष है। मन्त्री है। यहाँ आया (मन्दिर) बनाया तो, तो तुम्हारा आठ भव में मोक्ष हो जायेगा। (इसने कहा), हम तो ऐसा मानते नहीं। ये शुभभाव है पुण्य होगा। कहो, पण्डित ने कहा मोक्ष जाओगे, ये कहे पुण्य होगा। आहाहा! बाहर में क्या? ऐसे लाख मन्दिर बनाये तो भी क्या? बनावे कौन? वह तो पर की क्रिया है। वह तो परमाणु की क्रिया है। आत्मा बना सकता है? यह आत्मा मन्दिर बना सकता है? यह २६ लाख का मन्दिर हुआ है, लो! कोई आत्मा कर सकता है? रामजीभाई की प्रमुखता में सब काम हुआ है। वजुभाई तो अभी दो-दो माह को बांकानेर चले जाते और रामजीभाई तो कायम यहाँ रहते। परन्तु बात तो निमित्त के कथन में ऐसी आती है। परन्तु फिर भी किसी से बना है ऐसा नहीं।

भाव हो। समझ में आया? ये शुभभाव है। आहाहा! ये शुभभाव भी भला नहीं, ऐसा कहते हैं। गजब बात है। आहाहा! क्योंकि शुभभाव राग है, दुःखरूप है और इसका फल साता आदि बँधता है, वह दुःखरूप है। आहाहा! आकुलता है। आहाहा! भगवान अनाकुल का नाथ प्रभु! इसमें से खिसककर राग में आया, वह स्वरूप से पतित होता है। समझ में आया? ये आगे अधिकार है।

पुण्य-पाप अधिकार की अन्तिम गाथा में जयसेनाचार्यदेव की टीका में है। व्यवहाररत्नत्रय है, इसको पहले पवित्र कहने में आता है, पवित्रता के निमित्त है, इसलिए; परन्तु वास्तव में तो ये पाप ही है। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ निष्क्रिय-राग की क्रिया से रहित, इसमें ये राग व्यवहाररत्नत्रय का राग आता है, वह स्वरूप से पतित होता है। मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा! समझ में आया? यहाँ कोई मनुष्यों की संख्या (काम नहीं आती)। इसको बहुत माने तो सत्य है, थोड़े माने तो असत्य है, सत्य नहीं — ऐसी कोई चीज़ नहीं। आहाहा! सत् को भले एक ही माने। आहाहा! सत् तो सत् ही है। सत् में कोई असत् कभी आयेगा नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, इसमें **भला कोई नहीं है।** आहाहा! **अपने मोह को लिये हुए...** अपने मोह को लेकर-मिथ्यात्वभाव के कारण। आहाहा! **मिथ्यादृष्टि जीव कर्म को भला करके मानता है।** यहाँ दूसरा कर्म लिया न? तो दूसरा अकेला कर्म... कर्म... कर्म... (कहता है)। परन्तु पहले अन्दर का कारण भी लिया, परिणाम लिया, देह की क्रिया ली, सब लिया है। ये कर्म पुण्यबन्ध को निकालो परन्तु शुभभाव को नहीं। अरे रे! भगवान क्या कहते हैं, इस तरफ दृष्टि नहीं ले जाता, अपनी दृष्टि से शास्त्र खताता है (अपनी दृष्टि से अर्थ करता है), ऐसा नहीं होता। शास्त्र का आशय क्या है, उस तरफ दृष्टि ले जाना। अपनी दृष्टि की तरफ शास्त्र को नहीं ले जाना। समझ में आया?

अपने मोह को लिये हुए मिथ्यादृष्टि जीव कर्म को भला करके मानता है। ऐसी भेद प्रतीति शुद्धस्वरूप का अनुभव हुआ, तब से पायी जाती है। आहाहा! क्या कहते हैं? इसमें पुण्य भला है और पाप बुरा है, ऐसी इसमें भेद प्रतीति (होना), दो में अलगपना है ऐसी **ऐसी भेद प्रतीति शुद्ध स्वरूप का अनुभव हुआ, तब से पायी जाती है।** ये दोनों भेद हैं, दोनों एकरूप हैं, भेद नहीं, दोनों एकरूप हैं। ऐसी भेद प्रतीति शुद्धस्वरूप का

अनुभव हुआ तब से छूट जाती है। भेद प्रतीति नहीं रहती। सब एकरूप हैं। शुभ हो या अशुभ, दोनों बन्ध के कारण हैं। समझ में आया?

शुभ भला और अशुभ बुरा, ये भेद प्रतीति है। ये शुद्धस्वरूप का अनुभव हुआ, तब से होती है अर्थात्? भेद का भान, हों? शुभाशुभभाव भिन्न हैं, मैं भिन्न हूँ। इसमें भेद है, ऐसा नहीं। मेरे से ये चीज़ भिन्न है। आहाहा! **ऐसी भेद प्रतीति शुद्ध स्वरूप का अनुभव हुआ, तब से पायी जाती है।** आहाहा! शुभराग से भी मैं भिन्न हूँ। अशुभ से भी भिन्न हूँ। शुभराग से भी दुःख है। अशुभराग से भी दुःख है। ऐसा पर से भिन्नपना अपने स्वरूप की प्रतीति होने से भेद भासता है। पर भिन्न है, ऐसा भासता है। स्वरूप की दृष्टि न हो, वहाँ तक अज्ञानी को शुभ भला और अशुभ बुरा — ऐसा भासता है। समझ में आया? आहाहा! बात बहुत (कठिन)। इसलिए बाद में लोग ऐसा कहते हैं न कि ये व्यवहार का तो लोप करते हैं। परन्तु व्यवहार है कहाँ? तेरे पास व्यवहार भी नहीं। व्यवहार तो जब आत्मा का ज्ञान, आनन्द हुआ तब राग की मन्दता का शुभभाव भाव हुआ, इसको व्यवहार कहने में आता है। तथापि ज्ञानी का व्यवहार, ये बन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : अधिकार बहुत अच्छा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा अधिकार है। समझ में आये ऐसा है। दशलक्षण पर्व में। बराबर है। दोपहर को शक्ति है ये जरा गम्भीर है। बहुत अच्छी बात है। छह शक्ति अभी बाकी है न। ४१ हुई। और ये सब सेठिया आये हैं न। कहीं आगे से (आगे से)। सहारनपुर। दो सौ मील? कितने? चार सौ मील? दूर से आये हैं न। दूर से आये हैं। सहारनपुर कहाँ आया? दिल्ली से दूर? मेरठ से दूर। आहाहा!

भिन्न—शुभाशुभ की भिन्नता अपने में, हों! अपने से भिन्न। दोनों एकरूप हैं। ऐसी प्रतीति शुद्धस्वरूप की दृष्टि होती है, तब ऐसी प्रतीति होती है।

ऐसा जो कहा कि कर्म एकरूप है, उसके प्रति दृष्टान्त कहते हैं — शुभ और अशुभ भाव दोनों एकरूप हैं और पुण्य-पाप दोनों एकरूप हैं, इसका दृष्टान्त कहते हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१०१

ऐसा जो कहा कि कर्म एकरूप है, उसके प्रति दृष्टान्त कहते हैं-

(मन्दाक्रान्ता)

एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमाना-
दन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शुद्रिकायाः
शूद्रौ साक्षादपि च चरतो जातिभेदभ्रमेण।।2-101।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'द्वौ अपि एतौ साक्षात् शूद्रौ' [द्वौ अपि] विद्यमान दोनों [एतौ] ऐसे हैं-[साक्षात्] निःसन्देहपने [शूद्रौ] दोनों चण्डाल हैं। कैसा होने से? 'शूद्रिकायाः उदतरात् युगपत् निर्गतौ'-जिस कारण से [शूद्रिकायाः उदरात] चाण्डाली के पेट से [युगपत् निर्गतौ] एक ही बार जन्मे हैं। भावार्थ इस प्रकार है-किसी चाण्डाली ने युगल दो पुत्रों को एक ही बार जन्मा। कर्म के योग से एक पुत्र ब्राह्मण का प्रतिपाल हुआ, सो तो ब्राह्मण की क्रिया करने लगा। दूसरा पुत्र चाण्डाली का प्रतिपाल हुआ, सो तो चाण्डाल की क्रिया करने लगा। अब जो दोनों के वंश की उत्पत्ति विचारिये तो दोनों चाण्डाल हैं। उसी प्रकार कोई जीव दया, व्रत, शील, संयम में मग्न हैं, उनके शुभ कर्मबन्ध भी होता है। कोई जीव हिंसा विषय कषाय में मग्न हैं, उनके पापबन्ध भी होता है। सो दोनों अपनी अपनी क्रिया में मग्न हैं। मिथ्यादृष्टि से ऐसा मानते हैं कि शुभकर्म भला, अशुभकर्म बुरा। सो ऐसे दोनों जीव मिथ्यादृष्टि हैं, दोनों जीव कर्मबन्ध करणशील हैं। कैसे हैं वे। 'अथ च जातिभेदभ्रमेण चरतः' [अथ च] दोनों चाण्डाल हैं, तो भी [जातिभेद] ब्राह्मण - शूद्र, ऐसा वर्णभेद उसरूप है [भ्रमेण] परमार्थ शून्य अभिमानमात्र, उसरूप से [चरतः] प्रवर्तते हैं। कैसा है जातिभेदभ्रम? 'एकः मदिरां दूरात् त्यजति' [एकः] चाण्डाली के पेट से उपजा है, पर प्रतिपाल ब्राह्मण के घर हुआ है, ऐसा जो है वह [मदिरां] सुरापान को [दूरात् त्यजति] अत्यंत त्याग करता है, छूता भी नहीं है, नाम भी नहीं लेता है, ऐसा विरक्त है। किस कारण से? 'ब्राह्मणत्वाभिमानात्' [ब्राह्मणत्व] अहं ब्राह्मणः ऐसा संस्कार, उसका [अभिमानात्] पक्षपात से। भावार्थ इस प्रकार है - शूद्री के पेट से उपजा हूँ, ऐसे मर्म को नहीं जानता है, 'मैं ब्राह्मण, मेरे कुल में मदिरा निषिद्ध है' ऐसा जानकर मदिरा को छोड़ा

है, सो भी विचार करने पर, चाण्डाल है; उसी प्रकार कोई जीव शुभोपयोगी होता हुआ यतिक्रिया में मग्न होता हुआ–शुद्धोपयोग को नहीं जानता, केवल यतिक्रियामात्र मग्न है, वह जीव ऐसा मानता है कि मैं तो मुनीश्वर, हमको विषय–कषाय सामग्री निषिद्ध है। ऐसा जानकर विषय–कषाय–सामग्री को छोड़ता है, आपको धन्यपना मानता है, मोक्षमार्ग मानता है, सो विचार करने पर ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है, कर्मबन्ध को करता है, कोई भलापन तो नहीं है। 'अन्यः तया एव नित्यं स्नाति' [अन्यः] शूद्री के पेट से उपजा है, शूद्र का प्रतिपाल हुआ है, ऐसा जीव [तया] मदिरा से [एव] अवश्य ही [नित्यं स्नाति] नित्य अति मग्न हो पीता है। क्या जानकर पीता है? 'स्वयं शूद्रः इति' 'मैं शूद्र, हमारे कुल मदिरा योग्य है,' ऐसा जानकर। ऐसा जीव विचार करने पर चाण्डाल है। भावार्थ इस प्रकार है– कोई मिथ्यादृष्टि जीव अशुभोपयोगी है, गृहस्थ क्रिया में रत है–'हम गृहस्थ, मेरे विषय–कषाय क्रिया योग्य है' ऐसा जानकर विषय–कषाय सेवता है, सो भी जीव मिथ्यादृष्टि है, कर्मबन्ध करता है, क्योंकि कर्मजनित पर्यायमात्र को आपरूप जानता है, जीव के शुद्ध स्वरूप का अनुभव नहीं है।।2–101।।

भाद्र शुक्ल ५, शनिवार, दिनांक १७-०९-१९७७

कलश-१०१, प्रवचन-९७

पर्यूषण का पहला दिन है—उत्तम क्षमा। उत्तम क्षमा इसको कहते हैं, जिसको आत्मा का अनुभव हुआ हो। सम्यग्दर्शन से रहित क्षमा ये उत्तम क्षमा नहीं। लोग दृष्टान्त देते हैं न कि ये ईशु ख्रिस्ती ने क्षमा दी, मोहम्मद ने क्षमा दी। ऐसा दृष्टान्त बहुत आता है। ये क्षमा नहीं। उत्तम क्षमा। उत्तम क्षमा इसको कहते हैं कि अपने में अपना आनन्दस्वरूप भगवान... कल बहिन के शब्दों में कहा था न? जागृत जीव अन्दर ध्रुव पड़ा है। खड़ा है। उसकी अन्तर्दृष्टि करके पूर्णानन्द का स्वीकार, सत्कार और स्वभाव का आदर करना। आहाहा! समझ में आया? इसका नाम सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन के बिना की क्षमा, वह क्षमा की गिनती नहीं। कोई रागादि, क्रोधादि कम करे तो ये शुभभाव है, पुण्य बँध जाए। उत्तम क्षमा नहीं। आहाहा! उत्तम क्षमा निज आनन्द के अनुभव पूर्वक, प्रतिकूल

देव, मनुष्य, पशु और अचेतन कृत (होता है), देव, मनुष्य, पशु, अचेतन, इन चार कृत कोई प्रतिकूलता आ जाये तो वहाँ ज्ञाता-दृष्टापने रहना और विकल्प उठाना नहीं, इसका नाम उत्तम क्षमा है। आहाहा! एक समय भी उत्तम क्षमा करे तो ये आत्मज्ञान और धर्म कहने में आये। परन्तु यह क्षमा। समझ में आया? आहाहा!

कोई प्रतिकूल शब्द कहे, अपना दोष न हो और दोष कहे तो जानना कि यह तो मेरे में दोष है और कहता है। और दोष मेरे में नहीं और कहता है तो यह तो अजान है। और इसे तो दोष की खबर नहीं और दोष मेरे में है और यह कहता है तो यह तो बराबर कहता है। समझ में आया? और दोष मेरे में कहता है, न हो और कहता है तो यह बालक है, अज्ञानी है, इसे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? और दोष कटुवचन से कहे तो ऐसा जानना कि यह मुझे ताड़न तो करता नहीं। समझ में आया? ताड़न करता है तो (ऐसा जानना कि) यह मेरा वध तो नहीं करता। वध करे तो मेरे आत्म प्राणों का—आत्मधर्म का घात तो नहीं करता। सेठ! इसका नाम उत्तम क्षमा है। आहाहा! एक भी बोल यथार्थ समझ में आये तो सभी चीज़ समझ में आ जाये। आहाहा!

भगवान आत्मा जागती ज्योति चैतन्यबिम्ब प्रभु, इसमें तो पूर्ण अकषायस्वभाव ही भरा है, आहाहा! इसका जिसको अन्तर में (भान हुआ), परमानन्द का नाथ बादशाह परमात्मा परमात्मस्वरूप, इसका जिसको अन्तर में स्वीकार हुआ, दृष्टि में परमात्मस्वरूप अन्तर में अपने को स्वीकार हुआ, उसका नाम अनुभव और सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शनसहित क्षमा हो तो (वह सच्ची क्षमा है)। यह तो दृष्टान्त कल आया। श्वेताम्बर का उत्तम क्षमा का आया न? भाई! क्या कहते हैं? जैन सन्देश। अन्यमति के बहुत उदाहरण दिये हैं। ईशु ख्रिस्ती ने क्षमा की और मोहम्मद ने ऐसा किया। ये योगीराज ये स्वामी नारायण में हो गया है न? इसने ऐसी क्षमा की। यह क्षमा कहाँ है? इन्हें तो आत्मज्ञान क्या चीज़ है, ऐसी ही खबर नहीं, क्षमा आयी कहाँ से? समझ में आया?

मुनियों को घानी में पेले। तब मुनि तो आनन्दस्वरूप में रमते थे। आहाहा! घानी में पेले, तब उसका ख्याल भी नहीं था। आहाहा! और प्रतिकूलता में द्वेष का अंश भी नहीं

था। और अनुकूलता का गंज हो। आहाहा! तो भी रति का—राग का जिसको अभाव है। और अपने आनन्दस्वरूप में शान्ति से रहते हैं, इसका नाम उत्तम क्षमा कहते हैं। समझ में आया? देश के लिए उनको क्षमा करते हैं। यह क्षमा नहीं। वे लड़के मर नहीं जाते? क्या कहते हैं उसको? शहीद हुआ। धूल में ही शहीद नहीं। सुन तो सही। तुझे खबर नहीं, भाई! ये मेरा देश है, ऐसा मानते हैं, यही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! इसको सहन करें तो ये क्षमा नहीं। शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है, बापू!

सर्व जीव परमात्मस्वरूप हैं, भगवन्तस्वरूप हैं। आहाहा! कोई प्राणी प्रति राग-द्वेष होता है, ये राग-द्वेष इसका स्वरूप नहीं। अपना स्वरूप नहीं तो उसको भी चैतन्यस्वरूप आनन्दकन्द है, ऐसा देखते हैं। किसके ऊपर द्वेष करना? समझ में आया? भगवान चिदानन्दस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप विराजमान भगवतस्वरूप सभी आत्मायें हैं। आहाहा! वह पर्याय में एक समय की भूल है। वह तो एक समय की भूल है। अनन्त प्राणी निगोद से लगाकर मिथ्यादृष्टि जीव एक सेकेण्ड के असंख्यभाग में समय की भूल है। बाकी सारी चीज़ भगवान है। लो! भगवानदासजी! भगवान है, यहाँ तो कहते हैं। एक समय की भूल। इसमें चौरासी का अवतार है। एक समय की भूल पर्याय में है, इसके पीछे भगवत्स्वरूप परमात्मा... आहाहा! उसमें भूल का अभाव है और पर्याय का अभाव है। भूल का तो अभाव है, परन्तु वर्तमान जो पर्याय है जो ज्ञानादि के क्षयोपशम की अवस्था है, उसका भी उसमें अभाव है। ऐसी चीज़ को श्रद्धा ज्ञान में लेकर... आहाहा! पर की अनुकूलता और प्रतिकूलता में...

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि प्रतिकूलता आ जाये तो थोड़ा द्वेष हो जाता है, फिर बाद में जीतना, ऐसा नहीं। यह परीषह की व्याख्या ही नहीं। परीषह की व्याख्या प्रतिकूलता के काल में आनन्द की पर्याय—क्षमा उत्पन्न करना। प्रतिकूलता का विकल्प आया और बाद में जीतना, यह परीषह की व्याख्या ही नहीं। समझ में आया? परि अर्थात् समस्त प्रकार सहन करना अर्थात् ज्ञाता-दृष्टारूप जानना। आहाहा! भगवत्स्वरूप परमात्मा कौन दोषी है और कौन रागी है? आहाहा! समझ में आया? ऐसी दृष्टि करना और इस दृष्टिसहित क्षमा, शान्ति करना, इसका नाम उत्तम क्षमा है। लो! ये पहला दिन, ये थोड़ी गाथा लेते हैं। (कार्तिकेयानुप्रेक्षा)।

कोहेण जो ण तप्पदि सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे तस्स खमा णिम्मला होदि॥३९४॥

अर्थ :- जो मुनि देव, मनुष्य, तिर्यंच अचेतन आदि द्वारा रौद्र भयानक घोर उपसर्ग होने पर भी... 'बहु उपसर्ग कर्ता के प्रति क्रोध नहीं'

बहु उपसर्ग कर्ता के प्रति क्रोध नहीं
वंदे चक्री तथापि न होय मान जो

चक्रवर्ती छह खण्ड का धनी, ९६ हजार रानियों का स्वामी, छह खण्ड को साधनेवाला वन्दन करता है तो भी उसमें... आहाहा!

वंदे चक्री तथापि न होय मान जो
देह जाय पर माया ना होवे रोम में
लोभ नहिं हो प्रबल सिद्धि निधान जो
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?

राजमल ने बनाया है। राजमल है न? भोपाल। पवैया? क्या कहते हैं? राजमल पवैया, उसने बनाया है। अपूर्व अवसर को हिन्दी में बनाया है। ये तो गुजराती है, उसने हिन्दी में बनाया है। पुस्तक आयी है। आहाहा! 'अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?' ऐसा लिया है। यह तुम्हारी हिन्दी भाषा। 'अपूर्व अवसर ऐवो क्यारे आवशे? क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो' आहाहा! बाह्य और अभ्यन्तर निर्ग्रंथ। दिगम्बर मुनि। अन्तर में विकल्प नहीं और बाहर में वस्त्र का टुकड़ा नहीं। ऐसी दशा उत्तम क्षमावन्त प्राणी की होती है। आहाहा! समझ में आया? उत्तम क्षमा - मुनि को लेना है न।

मुमुक्षु : दश धर्म मुनिधर्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मुनिधर्म है। दिगम्बर में उत्तम क्षमा आदि से ली है। ये धर्म पाँचवीं से चौदश तक लिया है। वे यथार्थ है। क्योंकि कोई भी पंच कल्याणक करता है तो जन्म होने के बाद इसका आठ दिन तक कल्याणक करता है। केवल होने के बाद आठ

दिन कल्याणक करता है। तब पहले श्वेताम्बर में पहले आठ दिन लेता है। लौकिक में जैसे लग्न करते हैं तो मण्डप चार दिन, पाँच दिन पहले मण्डप लगाते हैं। वह तो लौकिक लाईन हुई। यह तो लोकोत्तर शैली है। आहाहा! समझ में आया? आज पंचमी शुरु होकर बाद में नौ दिन और दस दिन में पूरा होगा। आहाहा!

ऐसी उत्तम क्षमा। **रौद्र भयानक घोर उपसर्ग होने पर भी क्रोध से तप्तायमान न हों, उन मुनि को उत्तम क्षमा होती है।** यह तो पाव घण्टा लिया। अब अपना चलता अधिकार।

१०१ कलश। समझ में आया? १०१ आया। १०० कलश पूरा हुआ और १०१ कलश उत्तम क्षमा के दिन आया। सौ ऊपर एक।

एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमाना–
दन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शुद्रिकायाः
शूद्रौ साक्षादपि च चरतो जातिभेदभ्रमेण।।2–101।।

आहाहा! **खण्डान्वय सहित अर्थ - 'द्वौ अपि एतौ साक्षात् शूद्रौ' विद्यमान दोनों ऐसे हैं—निःसन्देहपने दोनों चण्डाल हैं।** (उसके पुत्र हैं)। एक चाण्डालनी के एक साथ दो पुत्रों ने जन्म लिया। एक साथ, हों! पहले और बाद में ऐसा नहीं। चाण्डालनी के एक साथ दो पुत्रों ने जन्म लिया। एक साथ में विशेषता है। एक साथ। पुण्य-पाप में घटाना है न। **दोनों चण्डाल हैं। कैसा होने से? 'शुद्रिकायाः उतरात् युगपत् निर्गतौ— जिस कारण से चाण्डाली के पेट से 'युगपत्' एक ही बार जन्मे हैं?** आहाहा! यह दृष्टान्त है।

भावार्थ इस प्रकार है - किसी चाण्डाली ने युगल दो पुत्रों को एक ही बार जन्मा। कर्म के योग से एक पुत्र ब्राह्मण का प्रतिपाल हुआ... किसी ब्राह्मण के यहाँ पुत्र नहीं था तो चाण्डालनी के लड़के को ले गया और ये ब्राह्मण के यहाँ उछरा। उछरा कहते हैं? क्या कहते हैं हिन्दी मैं? पालन किया। ब्राह्मण के यहाँ पालन हुआ। **सो तो ब्राह्मण की क्रिया करने लगा।** ब्राह्मण की क्रिया करने लगा। है तो चाण्डालनी का पुत्र,

परन्तु ब्राह्मण के यहाँ गया तो ब्राह्मण की क्रिया करने लगा। **दूसरा पुत्र चाण्डाली का प्रतिपाल हुआ....** चाण्डालनी के घर रहा। **सो तो चाण्डाल की क्रिया करने लगा।** आहाहा! भारी वस्तु है। **अब जो दोनों के वंश की उत्पत्ति विचारिये तो दोनों चाण्डाल हैं। उसी प्रकार...** यह तो दृष्टान्त हुआ। आहाहा! पहले दिन से ही ऐसा अधिकार आया। आहाहा!

कोई जीव दया,... पालता है। **व्रत,...** पालता है। **शील,...** ब्रह्मचर्य शरीर से पालता है। **संयम...** इन्द्रिय दमन करता है, उसमें **मग्न हैं,...** उस शुभभाव में मग्न है। आहाहा! जैसे ये ब्राह्मण के यहाँ गया तो ब्राह्मण की क्रिया करता है। ऐसे शुभभाववाला व्रत, तप, दया, आदि की क्रिया करता है। आहाहा! है तो यह विभाविक चाण्डालनी का पुत्र है। गजब बात है। समझ में आया? **दया, व्रत, शील, संयम में मग्न हैं, उनके शुभ कर्मबन्ध भी होता है।** इसके कारण उसको पुण्य बन्ध भी होता है। **कोई जीव हिंसा विषय कषाय में मग्न हैं,...** आहाहा! चाण्डालनी के घर रहा, ये चाण्डालनी के कर्तव्य में मग्न है। ऐसे यह हिंसा, विषय में मग्न है। **उनके पापबन्ध भी होता है। सो दोनों अपनी अपनी क्रिया में मग्न हैं।**

मिथ्यादृष्टि से ऐसा मानते हैं कि शुभकर्म भला,... आहाहा! शान्तिभाई! यह दया, दान, व्रत, तप, पूजा से पुण्यबन्ध होता है, यह भला है और यह भाव भी भला है, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठोर बात। अरे! समझ में आया? भाई! कहते हैं, चाण्डालनी के पेट में दोनों एकसाथ उत्पन्न हुए। वैसे विभाव में से दोनों उत्पन्न हुए हैं। दोनों विभाव हैं। दया, दान, व्रत, शील, संयम, ये भी विभाव हैं और हिंसा, झूठ, विषय कषाय के भाव भी विभाव हैं। आहाहा!

दोनों जीव कर्मबन्ध करणशील हैं। आहाहा! व्रत, नियम पालनेवाला, तप करनेवाला और हिंसा, झूठ (बोलनेवाला) दोनों कर्मबन्ध हैं। आहाहा! यह बड़ा विवाद अभी चलता है। पहले कहते हैं, शुभयोग मोक्ष का मार्ग है। अरे! प्रभु! शुभयोग तो चाण्डालनी का पुत्र है न, वह तो विभाव का पुत्र है। भगवान स्वभाव आनन्द का नाथ, सच्चिदानन्द प्रभु की वह प्रजा नहीं। आहाहा! यह तो विभाविक दशा-चाण्डालनी के दो पुत्र हैं। आहाहा! समझ

में आया ? अरे ! अभी तो सम्यग्दर्शन की भी खबर नहीं। सम्यग्दृष्टि तो शुभभाव और अशुभभाव दोनों को बन्ध मानता है। धर्म का कारण और धर्म तो इन्हें मानता ही नहीं। आहाहा ! यह तो सादी भाषा है। दोपहर में जरा कठिन है, परन्तु ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। (दोपहर) शक्ति (चलती है)। यह तो चलता अधिकार है। आहाहा !

कहते हैं कि व्रत, तप, नियम, शील पालनेवाला पुण्यबन्ध करता है। हिंसा, झूठ, विषय सेवन करनेवाला पापबन्ध करता है। परन्तु दोनों बन्ध करणशील हैं। दोनों बन्ध के कारण हैं। दोनों में किसी को धर्म है, स्वभाव है, ऐसा है नहीं। आहाहा ! भगवान आनन्द का नाथ स्वभाव, उस स्वभाव में से शुद्धता प्रगट हो, यह धर्म है। स्वभाव चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा ध्रुव चैतन्यभाव से चैतन्यस्वभाव से ध्रुवरूप से भरा भगवान है। आहाहा ! उसका आश्रय लेने से जो कोई पुण्य-पाप भाव रहित शुद्धभाव उत्पन्न होता है, वह धर्म है। यह बात लोगों को कठिन लगती है। समझ में आया ? आहाहा ! जिसको पर्याय में आनन्द का स्वाद आता है, पुण्य-पाप का स्वाद तो कलुषित अर्थात् आकुलित है। यह व्रत, नियम आदि के भाव आकुलित हैं। शान्तिभाई ! बड़ा भाषण करे पीछे ऐसा करे, ऐसा है वैसा है। व्रत पाले और ये करे... धूल में भी उसमें धर्म नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे दान। कंजूस है ये दान नहीं करता, दूसरा दान करता है। परन्तु यह दान करता है, इसमें राग शुभ है, यह चाण्डालनी का पुत्र है। गजब बात है, प्रभु ! आहाहा ! चैतन्य चमत्कार से भरा भगवान, उस ओर का लक्ष्य और आश्रय नहीं और ये पुण्य-पाप के भाव का आश्रय, वह बन्ध का कारण है। आहाहा ! समझ में आया ? देखो क्या कहा ?

दोनों जीव मिथ्यादृष्टि हैं, दोनों जीव कर्मबन्ध करणशील हैं। कैसे हैं वे ? 'अथ च जातिभेदभ्रमेण चरतः' दोनों चाण्डाल हैं तो भी ब्राह्मण-शूद्र ऐसा वर्णभेद... करते हैं। हैं तो दोनों चाण्डाल के पुत्र, परन्तु वर्णभेद करते हैं, मैं ब्राह्मण हूँ, पहला कहता है, मैं शूद्र हूँ, चाण्डाल हूँ। आहाहा ! **परमार्थ शून्य अभिमानमात्र,...** है। आहाहा ! परमार्थ से तो शून्य है, अभिमानमात्र (करता है) मैं ब्राह्मण हूँ या शूद्र (हूँ)। **उस रूप से प्रवर्तते हैं।**

कैसा है जातिभेदभ्रम ? 'एकः मदिरां दूरात् त्यजति' ब्राह्मण के घर बड़ा हुआ और मदिरा-शराब के सामने (देखता नहीं)। नहीं.. नहीं... नहीं...। छूता नहीं। शराब को

छूना नहीं। मदिरा **चाण्डाली के पेट से उपजा है परन्तु प्रतिपाल ब्राह्मण के घर हुआ है ऐसा जो वह सुरापान को अत्यन्त त्याग करता है, छूता भी नहीं है,...** देखो! है? छूता भी नहीं, स्पर्शता भी नहीं। **नाम भी नहीं लोता...** मदिरा का नाम भी नहीं। आहाहा! **ऐसा विरक्त है।** ऐसा विरक्त है? **किस कारण से? 'ब्राह्मणत्वाभिमानात्' अहं ब्राह्मणः...** ऐसे पक्षपात से अभिमानी है।

भावार्थ इस प्रकार है - शूद्री के पेट से उपजा हूँ, ऐसे मर्म को नहीं जानता है... मैं चाण्डालनी के पेट से जन्मा हूँ, ऐसा मर्म तो जानता नहीं और मैं ब्राह्मण हूँ (-ऐसा कहता है)। आहाहा! गजब बात है। अब सिद्धान्त में उतारेंगे। **'मैं ब्राह्मण, मेरे कुल में मदिरा निषिद्ध है' ऐसा जानकर मदिरा को छोड़ा है, सो भी विचार करने पर, चाण्डाल है...** अब सिद्धान्त आया।

उसी प्रकार कोई जीव शुभोपयोगी होता हुआ... देखो! लो, शुभोपयोगी। अब ये प्रश्न करते हैं कि शुभोपयोग मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अरेरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! तेरे भगवानस्वरूप में स्वभाव पड़ा है न! उस स्वभाव के सामने देखता नहीं और शुभ-विभाव के सामने तू देखता है। तेरे स्वभाव की महिमा तुझे आयी नहीं, नाथ! तू परमात्मस्वयप है न, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, तेरे में विभाव का अभाव है। यह विभाव के अभाव को देखता नहीं और विभाव को देखता है। आहाहा!

शुभोपयोगी होता हुआ यतिक्रिया में मग्न होता हुआ... देखो! साधु की क्रिया-अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, व्यवहारसमिति, गुप्ति में मग्न है। **शुद्धोपयोग को नहीं जानता,...** देखो! मेरी चीज़ आनन्द का नाथ प्रभु शुद्धोपयोग से जानने में आता है, ऐसा तो जानता नहीं। आहाहा! यह तो समझ में आये ऐसी बात है। दोपहर की (बात) ध्यान में रखें तो (समझ में आये ऐसी है)। वस्तुस्थिति-तत्त्व ऐसा है। दोपहर को शक्ति का जो वर्णन चलता है, यह वस्तु का तत्त्व ही ऐसा है। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों शुद्ध हैं। अन्तर शक्ति से परिणमन करता है। शुद्ध है तो इसकी तुलना बहुत कठिन है। यह तो सादी भाषा है। आहाहा!

मुनि होकर व्रत पालता है, यतिक्रिया करता है। पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति में

मग्न रहता है। आहाहा! **वह जीव ऐसा मानता है कि मैं तो मुनिश्वर,...** हूँ। है? **केवल यतिक्रियामात्र मग्न है, वह जीव ऐसा मानता है कि मैं तो मुनिश्वर, हमको विषय-कषाय सामग्री निषिद्ध है...** विषय-कषाय हमको नहीं चलेंगे। इसमें क्या हुआ? वह तो शुभभाव हैं। समझ में आया? आहाहा! ब्राह्मण के घर (बड़ा हुआ) चाण्डालनी का लड़का ऐसा कहता है, हमें शराब नहीं चलेगी। ऐसे यहाँ शुभोपयोग में आया अज्ञानी (ऐसा कहता है), मुझे विषय-कषाय चलेंगे नहीं। परतु विषय-कषाय चलेंगे नहीं, यह भाव तो तेरा शुभ है। यह कोई धर्म-बर्म नहीं।

मुमुक्षु : सब साफ कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है न? भाई! इसमें है या नहीं? आहाहा! इसमें से ही निकाला है। आहाहा! समयसार नाटक बनाया है। समझ में आया? यह इसमें से बनाया है। कलशटीका में से समयसार नाटक बना है। आहाहा! यह इसमें से बना है। पूरा समयसार नाटक इसमें से बना है। राजमल्लजी की टीका में से बनाया है। आहाहा! अब ये लोग ऐसा कहते हैं। प्रभु! तुझे शोभता नहीं, नाथ! यह टोडरमल और बनारसीदास अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे हैं। अरर! अर्थात् कि अध्यात्म का अभिमान हो गया है, ऐसा कहते हैं। अरेरे! भगवान! ऐसे पवित्र पुरुषों के लिये भाँग पीकर नाचे हैं, ऐसा कहना नहीं शोभता, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : अध्यात्म के रस को भाँग कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाँग। अध्यात्म को भाँग कहा। आहाहा! क्योंकि ये वाणी उन्हें रुचे नहीं। अरर! शुभोपयोग की सभी क्रिया बन्ध का कारण है। पंच महाव्रत लो, महीना, महीना के, दो महीने के उपवास करो। आहाहा! और आजीवन रात्रि को आहार न करे, चोविहार न करे, ये भी शुभभाव है, इसमें धर्म कहाँ आया? समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जैसे ब्राह्मण के कुल में बड़ा हुआ चाण्डालनी का पुत्र ऐसा मानता है कि मुझे मदिरा नहीं चलेगी। ऐसे शुभोपयोगी मुनि अज्ञानी ऐसा मानता है कि हमारे विषय-कषाय नहीं चलेंगे। इसमें क्या हुआ? आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! वहाँ

जाकर सब भाषण किये होंगे। सबको गप्पें मारी होंगी। बेन को लेकर धीरे-धीरे... आहाहा!

अरे... भगवान! बापू! तेरा मार्ग-धर्म कोई अलग चीज़ है, नाथ! आहाहा! अन्तर में बड़ा ध्रुवधाणी पड़ा है न अन्दर। आहाहा! 'ढींग धीण माथे कियो रे कोण गंजे रण खेत'। जिसने, आत्मा ध्रुव आनन्दकन्द प्रभु दृष्टि में ढींग धणी धारण किया, (उसे) 'कौन गंजे रण खेत।' अब इसको नुकसान करनेवाली चीज़ जगत में है? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **वह जीव ऐसा मानता है कि मैं तो मुनीश्वर, हमको विषय-कषाय सामग्री निषिद्ध है...** आहाहा! **ऐसा जानकर विषय-कषाय सामग्री को छोड़ता है...** देखो! स्त्री और कुटुम्ब और व्यापार-धन्धे को छोड़ता है, यह मुझे नहीं चलेगा, यह मुझे नहीं चलेगा। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! आज तो बराबर उत्तमक्षमा के दिन आया है। आहाहा! भाई! यह शुभोपयोग की क्रिया, जैसे चाण्डालनी का पुत्र है, वैसे यह विभाव का पुत्र है, प्रभु! तेरे स्वभाव की प्रजा नहीं। तेरे स्वभाव की प्रजा नहीं। तेरा स्वभाव तो आनन्द का नाथ प्रभु है। तेरी प्रजा में तो आनन्द की दशा प्रगट होती है। यह तेरी प्रजा है। विभाव की प्रजा, यह तेरी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आज संवत्सर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आज संवत्सर नहीं, आज तो पहला दिन है। संवत्सर अपना अन्तिम एकम को। यह श्वेताम्बर का संवत्सर है, श्वेताम्बर का संवत्सर है। शुक्रवार का तो कल गया। रामविजय के शिवाय की जो है, वो संवत्सर तो कल गया। रामविजय वालों का तो आज संवत्सर है। यह कहाँ था संवत्सर? आहाहा! अरे! भगवान! बापू! आहाहा!

यह तो यही कहता था। मैं जामनगर गया था। रामविजय था। हमारे पास १५-२० आदमी भेजे। आये। तुम ये व्रत, तप, भक्ति और पूजा का निषेध करते हो कि ये धर्म नहीं, तो बहुत नुकसान होगा। अरे... भगवान! कहे, चर्चा करें। मैंने कहा, मैं तो किसी के साथ चर्चा नहीं करता, प्रभु! आहाहा! यह व्रत करे और तप करे और ब्रह्मचर्य पाले आजीवन जीव ब्रह्मचारी रहे। यह तो शुभभाव है। यह कोई धर्म नहीं। आहाहा! ऐसे पंच महाव्रत का पालन करे, वह शुभराग है। वह आकुलता का कारण है, सुख नहीं। आहाहा! मफाभाई!

ये अलग बात सुनने इस बार यहाँ रहा है। परन्तु अच्छा किया। वजुभई के पीछे...

मुमुक्षु : सुनना ही रुकना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये रहा है। यह बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! अरे! जिनवर का मार्ग वीतरागभाव से उत्पन्न होता है। शुभराग, ये तो रागभाव है न, प्रभु! ये राग में मग्न होनेवाला मानता है कि हम मुनि हैं। पंच महाव्रत पालते हैं, हमारे विषय-कषाय नहीं चलते। आहाहा! हमारे लिये आहार-पानी बने, यह हमारे नहीं चलता। ऐसा माननेवाला भी शुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि है। यह तो, अभी तो चौका करके लेते हैं। खुल्लमखुल्ला। अरर! प्रभु! मार्ग... समझ में आया?

हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे। बहुत शान्त थे, कषाय मन्द थी। दृष्टि पूरी विपरीत थी। परन्तु बाह्य में इतनी बात कि छोटा गाँव हो, वहाँ जाये। वहाँ पाँच-सात घर हों। तो वहाँ पहले गाँव में न जाये। नौ, साढ़े नौ बजे गाँव में जायें। तब तक बाहर बैठें। जंगल में बैठें। क्योंकि यदि पहले जाऊँगा मेरे लिये कुछ बनायेंगे। अथवा बनता होगा, उसमें थोड़ा और डाल देंगे। भात, रोटी थोड़ा डाल दें। तो पहले नहीं जाते। बहुत सख्त किया थी। जंगल में रहते। बाहर बैठे। नौ, साढ़े नौ का समय हो, दाल-भात हो गया हो। रोटी करते हों तब जाये। जो निर्दोष वो लावो। दो रोटी आदि। अपने लिये बनाया आहार बिल्कुल न लें। जिनेश्वरदासजी! हमारे सम्प्रदाय के गुरु। बहुत सख्त क्रिया, बहुत सख्त। पानी का बिन्दु इसको बनाया हो (तो ले नहीं)। अरे! असंख्य जीव। पानी के एक बिन्दु में असंख्य जीव। पानी के एक बिन्दु में असंख्य जीव। हमारे लिये तुमने बनाया, ये हमारे नहीं चलेगा। हम नहीं लेंगे। आहाहा! सख्त क्रिया। और दोपहर व्याख्यान करे। सवेरे आया हो। भोजन लिया हो। एकदम अनजाने (घर)। दोपहर व्याख्यान करे। जो कोई साधु के लिये आहार-पानी बना दे, वह गर्भ में गलेगा। गर्भ में समझे? गर्भ में गलेगा। माता के पेट में मर जायेगा।

मुमुक्षु : महाराज! आज कहीं भावलिंग भी हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो खुल्ली बात है। ये तो हमारे सम्प्रदाय के गुरु ऐसे थे। दृष्टि विपरीत—मिथ्यादृष्टि। परन्तु क्रिया में तो ऐसी (सख्त किया थी कि) पानी का एक बिन्दु

भी किसके लिये बनाया ? महाराज ! हमारे स्नान के लिये बनाया है। स्नान के लिये बनाया तो दस सेर कहाँ से बढ़ा ? स्नान के लिये बनाया हो तो सेर, दो सेर पानी बढ़े। दस सेर कैसे बढ़ा ? नहीं चलेगा। पानी न ले। बाद में मट्ठा ले आये। मट्ठा समझे ? छाछ। गरासिया का घर हो न ? काठी गरासिया। वहाँ मट्ठा बहुत पड़ा हो। आओ, आओ महाराज ! दस सेर छाछ, पाँच सेर (ले)। निर्दोष, हों ! इसके लिये बनायी हुई न ले। पानी न ले। अब यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि शुभभाववाला सदोष न ले तो भी वो शुभभाव में धर्म मानते हैं तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा ! हमारे लिये बनाया आहार न चले। ऐसे शुभोपयोगी उसके लिये बनाया आहार न ले। पर है शुभोपयोगी, दृष्टि मिथ्यात्व है तो उसमें धर्म मानता है। आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है, कर्मबन्ध को करता है,... ऐसा जानकर **विषय-कषाय सामग्री को छोड़ता है, अपने को धन्यपने मानता है,...** आहाहा ! **मोक्षमार्ग मानता है,...** आहाहा ! यह व्रत और उपवास और शरीर का ब्रह्मचर्य और छह परवी आहार न लेना और कन्दमूल न खाना। कन्दमूल समझे ? अनन्त काय। दौज, पाँचम, आठें आदि। ब्रह्मचर्य पाले, कन्दमूल का त्याग करे। परन्तु यह तो सब शुभभाव है। और इसमें धर्म और मोक्षमार्ग माने, वह मिथ्यादृष्टि है। सेठ ! कल तो तुम कहते थे न ? काललब्धि आयेगी तब होगा। ऐसा है नहीं। अपने स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ करेगा, तब काललब्धि पक ही जाती है। समझ में आया ? यह शुभ-अशुभभाव की रुचि छोड़ अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा सत् सत् शाश्वत चिद् ज्ञान और आनन्द का खजाना प्रभु है। आहाहा ! उसकी दृष्टि करने से शुद्ध भाव उत्पन्न होता है, यह धर्म है। आहाहा ! समझ में आया ? शास्त्र की भक्ति करना या भगवान की प्रतिमा की भक्ति करना, यह सब शुभभाव है। इसमें धर्म मानना, मोक्षमार्ग मानना, यह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा कड़क है। शान्तिभाई ! रतलाम से आये हैं।

मुमुक्षु : अब हमें क्या करना है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले श्रद्धा में तो सुधार कर कि यह पुण्य परिणाम भी बन्ध का कारण है, धर्म नहीं। मेरी चीज़ आनन्द का नाथ सागर पड़ा है अन्दर, उसका

स्वीकार करते जो शुद्धता प्रगट होती है, वह धर्म है। आहाहा! तो कहते हैं, धर्म भले न हो, परन्तु धर्म का कारण तो है या नहीं? बिल्कुल नहीं। यह तो बन्ध का कारण है। कहा न?

अपने को धन्य मानता है। **मोक्षमार्ग मानता है, सो विचार करने पर ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है...** आहाहा! महीनों के उपवास करे। बाद में अहो! तपस्वी हुआ, तपसी। महिमा करे। बालब्रह्मचारी कन्या दीक्षा ले तो पूरा समाज इकट्ठा होकर उसकी प्रशंसा करे। परन्तु यह क्या? इसमें धर्म कहाँ आया? भले बालब्रह्मचारी हो, तो भी कदाचित् दीक्षा लेने का भाव हो तो ये शुभभाव है और मुनिपने में चारित्र तो नहीं और दीक्षित होता है। दीक्षा लेने का भाव है, यह तो मिथ्यादृष्टिपना है। आहाहा! समझ में आया? मैं श्वेताम्बर साधु हूँ, मैं साधुपना लेने जाता हूँ, यह दृष्टि मिथ्यात्व है। शान्तिभाई! आहाहा! यहाँ तो दिगम्बर मुनि होकर भी शुभोपयोग की क्रिया में मग्न है और मोक्षमार्ग मानता है, ये मिथ्यादृष्टि है, ये जैन ही नहीं। जैन की इसे खबर नहीं। आहाहा! परन्तु ऐसा सेठिया हो, वह भी मक्खन लगाये। गाँव में महाराज आये हैं।

मुमुक्षु : सेठिया क्या करे, उन्हें तो भूखों मारे?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, भूखों मरने दें? आहाहा! ऐसा मुनिपना है ही नहीं और इसको मुनि मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, देखो! **ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है, कर्मबन्ध करता है,...** व्रत और नियम और तपस्या और बाल ब्रह्मचारीपना सब बन्ध का कारण है। आहाहा! यह तो शुभराग है। मैं शरीर से ब्रह्मचर्य पालता हूँ, आजीवन स्त्री का सेवन नहीं, ये भाव तो शुभभाव है। इसमें धर्म मानना, यह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? **कोई भलापन तो नहीं है।** है? कोई, ये शब्द पड़ा है। **कोई भलापन तो नहीं है।** व्रत पाले, आजीवन ब्रह्मचर्य पाले, दया पाले, पंच महाव्रत रखे, देखकर चले, निर्दोष आहार (ले), अपने लिये बनाया आहार ले नहीं। तो भी कहते हैं कि भला क्या है? ये तो शुभभाव है। आहाहा! मीठालालभाई! ऐसी बात है। मीठालालभाई को एक साधु मिला था। कहा था। वहाँ छह साधु आये थे। शिवसागर और ये। बाद में बात हुई हम भावलिंगी नहीं? ना, ना,

भावलिंगी नहीं। तो हम द्रव्यलिंगी हैं या नहीं ? द्रव्यलिंगी भी नहीं। अरे ! बापू ! द्रव्यलिंगी किसे कहते हैं ? जिसकी नग्नदशा हो, अट्ठाईस मूलगुण सही पालता हो। इसके लिये आहार बनाया हो तो न ले, ऐसा द्रव्यलिंग में शुभभाव बहुत ऊँचा होता है, उसको द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ये वस्त्रसहित हो तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। समझ में आया ? और इसके लिये आहार बनाते हैं और लेते हैं, ये द्रव्यलिंगी भी नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी नहीं तो कौन हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि हैं।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी भी तो होते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, मुनिपना मिथ्यादृष्टि है। मुनि है ही नहीं। ऐसी बात है, बापू ! ये तो पर्यूषण के दिन हैं। परमात्मा के पंथ की बात है, नाथ ! आहाहा ! भगवन्त ! तेरी चीज़ की अन्दर बलिहारी है। बापू ! भाई ! ये शुभभाव से रहित तेरी चीज़ अन्दर विराजमान है। समझ में आया ? इस चीज़ का पता ले और शुभभाव में धर्म की मान्यता छोड़ दे तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। धर्म की क्या कहते हैं ? छहढाला में नहीं आया ? मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी। छहढाला में। मोक्षमहल की पहली सीढ़ी। शुभभाव में धर्म नहीं और मेरी चीज़ आनन्दस्वरूप है, इसका मुझे अनुभव हो, इसका नाम धर्म है। यही धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा ! समझ में आया ?

एक श्वेताम्बर ऐसा मिला था, ये कहे, पहले अशुभ छोड़ना, ये इसका क्रम है। बाद में शुभ छोड़ना। परन्तु क्रम से शुभ छोड़ना, ये क्रम ही नहीं। अशुभ छोड़ना और शुभ भी छोड़ना। शुभ में मेरी वस्तु है ही नहीं। ये तो सब विभाव की क्रिया है। पंच महाव्रत, नग्नपने रहना, वस्त्ररहित रहना आदि शुभभाव तो विकार भाव है। आहाहा ! भगवान आत्मा अन्दर नग्नस्वरूप विराजमान है, जिसमें विकल्प का भी अभाव है, शुभभाव का भी अभाव है। ऐसी नग्न चीज़ विराजमान प्रभु, इसकी दृष्टि और अनुभव करना इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! और यह सम्यग्दर्शन बिना जितना कायक्लेशादि करता है, वे सब निरर्थक है। भव भ्रमण के अभाव के लिये निरर्थक है, भवभ्रमण के लिये सार्थक है। आहाहा ! कठिन

काम बहुत पड़ता है लोगों को। ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं हो तो धर्म रहेगा किस प्रकार? बाह्यद्रव्यलिंग हो, नग्नपना हो तो धर्म रहेगा? यह धर्म है ही नहीं। सुन तो! धर्म कहाँ है? आहाहा! है?

'**अन्यः तया एव नित्यं स्नाति**' पहले शुभोपयोग का दृष्टान्त दिया। ब्राह्मण के घर जो चाण्डाल पुत्र बड़ा हुआ (ऐसा कहता है), मुझे मदिरा नहीं चले। ऐसे शुभभाववाला कहता है, मुझे विषय-कषाय नहीं चलें। हमारे विषय-कषाय नहीं होती। हमारे लिये बना भोजन नहीं लेते। ये सब शुभभाववाले हैं। हैं तो सब विभाविकभाव-चाण्डालनी के पुत्र हैं। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

अग्नि को दीमक नहीं होती। ऐसा बहिन ने लिखा है। ऐसे भगवान चैतन्यमूर्ति में पुण्य-पाप के भाव दीमक जैसे हैं। आहाहा! दीमक समझते हो? जीवडा नहीं होता? बहुत पोला, पोंचा होता है। दीमक हाँ ये। मैं एक बार (संवत्) १९७५ के वर्ष में देखा था। हम जंगल गये थे। तब चोविहार उपवास करते तो पारणा करके बारह बजे जंगल गये। धूप तेज थी। बाहर गये और जहाँ हम बैठे थे वहाँ धूल में से दीमक निकली। निकली और धूप लगते ही मर गयी। बहुत पोचा शरीर होता है। मस्तिष्क? क्या कहते हैं? मस्तिष्क अर्थात् तो मगज। (दीमक) आहाहा! ऐसी धोली होती है। लकड़ी, धूल खाती है। आहाहा!

उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु ज्ञायकस्वभाव में ये पुण्य-पाप के भावों का अभाव है। आहाहा! इसके सद्भाव में तो पवित्रता और वीतरागता भरी है। ऐसा वीतरागता का नाथ परमात्मा स्वयं, इसका आश्रय लेने से जो वीतरागता उत्पन्न हो, वह मोक्ष का मार्ग है। शुभभाव, वह बन्ध का मार्ग है। बन्ध का कारण कहा न? अब तो इसका झगड़ा अभी। अरे! प्रभु! आहाहा! मक्खनलालजी ऐसा कहते हैं, शुभभाव मोक्ष का मार्ग है। और इसको जो हेय मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। अरर! तब कैलाशचन्दजी ने लिखा, शुभभाव को हेय तो कुन्दकुन्दाचार्य मानते हैं, तो वे मिथ्यादृष्टि है? दो पण्डितों के बीच चर्चा चली। अभी तो चलती है। मक्खनलालजी ने इनको चेलेंज दिया कि शुभभाव मोमक्षमार्ग है, हम चेलेंज देते हैं। चलो, दिल्ली। तुम्हारे गाँव में। ये मक्खनलालजी ने

लिखा है, समाचार पत्र (छापे में) आया है। दिल्ली आओ, चर्चा करेंगे। अरे! प्रभु! आहाहा!

शुभभाव तो बन्ध का कारण है, और तुम मोक्ष का मार्ग ठहराते हो! अरेरे! भाई! ये साधारण प्राणियों को ठीक लगेगा परन्तु ये मार्ग नहीं। वीतराग तीन लोक के नाथ जिनेन्द्र भगवान का मार्ग तो रागरहित वीतराग पर्याय से उत्पन्न होता है। आहाहा! शुद्धोपयोग, वह धर्म है। शुभ और अशुभ दोनों अशुद्धोपयोग हैं, दोनों अधर्म हैं। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम भी अधर्म हैं, धर्म नहीं। हाय... हाय...! कहा था न पहले?

(संवत्) १९८५ के वर्ष में सम्प्रदाय में थे। १९८५। कितने वर्ष हुए? पचास में दो कम-४८। बोटाद में बड़ी सभा। १५००-१५०० आदमी। सभा बड़ी। हम व्याख्यान करने बैठते तो बहुत लोग आते। उपाश्रय में तो समाते ही नहीं थे, बाहर गली में बैठते। इतने (लोग)! ये तो पचास में दो कम की बात है। सभा में ऐसा कहा, सुनो! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं। धर्म से बन्ध होता नहीं और बन्ध के कारण से धर्म होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? काँप गये। लोग तो सुनते थे। हमारे ऊपर प्रेम था न। और उसमें (सम्प्रदाय में) थे न! (संवत्) १९८५ के वर्ष की बात है। पचास में दो कम। हमारा साधु एक गुरुभाई था, वह काँप उठा। नहीं, वोसरे... वोसरे... ये श्रद्धा नहीं। जगजीवन था। अरे! भगवान! कौन माने? हमारी तो प्रतिष्ठा बहुत थी न! समाज में हमारे सामने कोई नहीं बोल सके और किसी को शंका भी न हो। हमारी प्रतिष्ठा इतनी थी! किसी ने सुना ही नहीं। मैंने कहा, तुम्हारी बात किसने सुनी? नहीं समझ में न आये तो बैठे रहना था। किसने तुम्हारी (बात) मानी? तुम क्या बोले सभा को पता चला? तुम्हें रुचि नहीं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे वो भाव धर्म नहीं, ये रुचि नहीं। (क्योंकि) तुम्हारा धर्म मानना है। मानो तुम्हारी इच्छा। परन्तु ये बाहर में किसका? मांगीलालजी! यह तो पचास वर्ष पहले की (बात है)। आहाहा!

प्रभु अन्दर चैतन्य का नाथ विराजता है। चैतन्यस्वभाव भाव से भरा भगवान, ये चैतन्य को जगाकर चैतन्यपर्याय-ज्ञानचेतना प्रगट कर। यह तो राग कर्मचेतना है। शुभभाव तो कर्मचेतना है, बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? कहो, सुजानमलजी!

अभी तो यह चलता है सब। स्थानकवासी में, मन्दिरवासियों में, दिगम्बरों में। ऐसा है और वैसा है, अपवास करते हैं, हमने आठ अपवास किये और दस अपवास किये। अपवास किये हैं, उपवास नहीं। उपवास तो शुभभाव से रहित भगवान आनन्द में उप नाम समीप में वास करना, उसका नाम उपवास है। आहाहा! समझ में आया? इसका नाम तपस्या है। शुद्धस्वरूप में अन्दर वास करना, वास्तु लेना, घर में वास्तु लेना, (वह) कभी लिया नहीं। आहाहा! ऐसे शुद्धोपयोग को धर्म कहते हैं। बाकी शुभभाव को अधर्म कहते हैं।

कहा था न? एक बार ये कहा और दूसरी बार ये कहा। दो बोल कहे थे। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, ये धर्म नहीं और पंच महाव्रत ये आस्रव है, धर्म नहीं। सम्प्रदाय में कहा था। जो भाव पंच महाव्रत है ये भाव धर्म नहीं, ये आस्रव हैं। तत्त्वार्थसूत्र के छठवें अध्याय में ये आस्रव, पुण्य कहा। समझ में आया? आहाहा! लोगों को खबर नहीं, श्रद्धा क्या है? किसकी श्रद्धा ये तो फिर ये लोग कहें, भगवान की भक्ति करो, गुरु की भक्ति करो, कल्याण हो जायेगा। यह साधन है। धूल में ही साधन नहीं, सुन न! यह साधन का अधिकार दोपहर आता है। करण शक्ति। आज दोपहर। आहाहा!

अब दूसरा बोल लिया। **'नित्यं स्नाति' शूद्री के पेट से उपजा है, शूद्र का प्रतिपाल हुआ है, ऐसा जीव मदिरा से अवश्य ही नित्य अति मग्न हो पीता है।** अर्थात् मदिरा को छूता है-स्पर्श करता है। **क्या जानकर पीता है? 'स्वयं शूद्रः इति' 'मैं शूद्र, हमारे कुल मदिरा योग्य है' ऐसा जानकर। ऐसा जीव विचार करने पर चाण्डाल है।** आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है - कोई मिथ्यादृष्टि जीव अशुभोपयोगी...** पहले शुभोपयोग लिया था। **गृहस्थक्रिया में रत है...** गृहस्थक्रिया में **'हम गृहस्थ, मेरे विषय-कषाय क्रिया योग्य है'...** हम गृहस्थ हैं। आहाहा! पहले मुनि लिया, यहाँ गृहस्थ लिया। **विषय-कषाय क्रिया योग्य है, ऐसा जानकर विषय-कषाय सेवता है...** आहाहा! विषय-कषाय सेवना तो अशुभभाव है, पापभाव है। आहाहा! समझ में आया?

सो भी जीव मिथ्यादृष्टि है, कर्मबन्ध करता है,... आहाहा! **क्योंकि कर्मजनित पर्यायमात्र को आपरूप जानता है,...** आहाहा! क्या कहते हैं? यह शुभ-अशुभभाव असंख्य प्रकार के कर्म जनित हैं। कर्म के निमित्त के आधीन होकर उत्पन्न होते हैं। कर्म

से नहीं, परन्तु कर्म के निमित्त के आधीन होकर उत्पन्न होते हैं। स्वभाव के आधीन होकर शुभभाव उत्पन्न नहीं होते। आहाहा! समझ में आया? कर्मजनित की व्याख्या ये है। कर्म जिसका निमित्त है, उसके वश होकर पुण्य-पाप के भाव उत्पन्न होते हैं। तो **कर्मजनित पर्यायमात्र को...** विकार भाव मात्र को **आपरूप जानता है,...** अपना स्वरूप है, ऐसा मानता है। **जीव के शुद्धस्वरूप का अनुभव नहीं।** आहाहा! भगवान चैतन्य पुण्य-पाप से रहित, ऐसे शुद्धस्वरूप उसकी दृष्टि नहीं, अनुभव नहीं। उन चाण्डालनी के पुत्र की भाँति। वह घर में रहता, वैसे यह शुभाशुभभाव में आया वो भी मिथ्यादृष्टि है। दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। शुभभाव में धर्म माननेवाला और अशुभभाव में हमारे चलता है - ऐसा माननेवाला दोनों अधर्मी है मिथ्यादृष्टि है शुद्ध अनुभव नहीं भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप पुण्य-पाप के विकल्प से रहित ऐसी शुद्धस्वरूप की दृष्टि नहीं अनुभव नहीं अनुभूति नहीं, आत्मा का आनन्द का वेदन नहीं। वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१०२

(उपजाति)

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां
सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः।
तद्बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं
स्वयं समस्तं खलु बन्धहेतु।।3-102।।

खण्डान्वय सहित अर्थ–यहाँ कोई मतान्तररूप होकर आशंका करता है–ऐसा कहता है कि कर्मभेद है–कोई कर्म शुभ है, कोई कर्म अशुभ है। किस कारण से? हेतुभेद है, स्वभावभेद है, अनुभवभेद है, आश्रय भिन्न है–इन चार भेदों के कारण कर्मभेद है। वहाँ हेतु अर्थात् कारणभेद है। विवरण–संक्लेशपरिणाम से अशुभ कर्म बँधता है, विशुद्धपरिणाम से शुभबन्ध होता है। स्वभाव भेद अर्थात् प्रकृति भेद है। विवरण–अशुभकर्मसम्बन्धी प्रकृति भिन्न है–पुद्गल कर्मवर्गणा भिन्न है; शुभकर्मसम्बन्धी प्रकृति भिन्न है–पुद्गलकर्म वर्गणा भी भिन्न है। अनुभव अर्थात् कर्म का रस, सो भी रसभेद है। विवरण–अशुभ कर्म के उदय में जीव नारकी होता है अथवा तिर्यञ्च होता है अथवा हीन मनुष्य होता है; वहाँ अनिष्ट विषयसंयोगरूप दुःख को पाता है; अशुभ कर्म का स्वाद ऐसा है। शुभ कर्म के उदय में जीव देव होता है अथवा उत्तम मनुष्य होता है; वहाँ इष्ट विषयसंयोगरूप सुख को पाता है; शुभ कर्म का स्वाद ऐसा है। इसलिए स्वादभेद भी है। आश्रय अर्थात् फल की निष्पत्ति ऐसा भी भोगता है। विवरण–अशुभकर्म के उदय में हीन पर्याय होती है, वहाँ अधिक संक्लेश होता है, उससे संसार की परिपाटी होती है; शुभकर्म के उदय में उत्तम पर्याय होती है, वहाँ धर्म की सामग्री मिलती है, उस धर्म की सामग्री से जीव मोक्ष जाता है, इसलिए मोक्ष की परिपाटी शुभ कर्म है–ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है। उसके प्रति उत्तर ऐसा जो 'कर्म भेदः न हि' कोई कर्म शुभरूप, कोई कर्म अशुभरूप–ऐसा भेद तो नहीं है। किस कारण से? 'हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदा अपि अभेदात्' [हेतु] कर्मबन्ध के कारण विशुद्ध परिणाम, संक्लेश परिणाम – ऐसे दोनों परिणाम अशुद्धरूप हैं, अज्ञानरूप हैं; इससे कारणभेद भी नहीं है, कारण एक ही है। [स्वभाव] शुभकर्म, अशुभकर्म ऐसे दोनों कर्म पुद्गल पिण्डरूप हैं, इस कारण

एक ही स्वभाव है, स्वभावभेद तो नहीं। (अनुभव) रस भी तो एक ही है, रसभेद तो नहीं। विवरण–शुभकर्म के उदय से जीव बँधा है, सुखी है; अशुभकर्म के उदय से जीव बँधा है, दुखी है; विशेष तो कुछ नहीं। [आश्रय] फल की निष्पत्ति, वह भी एक ही है, विशेष तो कुछ नहीं। विवरण–शुभकर्म के उदय संसार, त्यों ही अशुभकर्म के उदय संसार; विशेष तो कुछ नहीं। इससे ऐसा अर्थ निश्चित हुआ कि कोई कर्म भला, कोई कर्म बुरा, ऐसा तो नहीं, सब ही कर्म दु:खरूप हैं। 'तत् एकं बन्धमार्गाश्रितं इष्टं' [तत्] कर्म [एकं] नि:सन्देह [बन्धमार्गाश्रित] बन्ध को करता है, [इष्टं] गणधरदेव ने ऐसा माना है। किस कारण से? जिस कारण 'खलु समस्तं स्वयं बन्धहेतु:' [खलु] निश्चय से [समस्त] सब कर्म जाति [स्वयं बन्धहेतु:] आप भी बन्धरूप है। भावार्थ इस प्रकार है–आप मुक्तस्वरूप होवे तो कदाचित् मुक्ति को करे; कर्मजाति आप स्वयं बन्ध पर्यायरूप पुद्गलपिण्ड बँधी है, सो मुक्ति कैसे करेगी। इससे कर्म सर्वथा बन्धमार्ग है।।3–102।।

भाद्र शुक्ल ६, रविवार, दिनांक १८-०९-१९७७

कलश-१०२, प्रवचन-९८

आज दशलक्षणी पर्व का दूसरा दिन है। मार्दव... मार्दव। उत्तममार्दव। ऐसे तो मिथ्यादृष्टि अपमान सहन करता है, मान नहीं रखता, परन्तु ये तो दृष्टि मिथ्यात्व है। यहाँ तो आत्मा आनन्दस्वरूप अनाकुल आनन्द का नाथ प्रभु ध्रुव, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसे उत्तममार्दव गुण है, उसकी बात है। मिथ्यादृष्टि को मार्दव, इसको मार्दव होता नहीं। यहाँ ये कहते हैं।

अब उत्तममार्दव धर्म कहते हैं —

उत्तमणाणपहाणो उत्तमत्व यरणकरणसीलो वि।
अप्पाणं जो हीलदि मद्दवरयणं भवे तस्स॥३९५॥

आहाहा! **जो मुनि उत्तमज्ञान से तो प्रधान हो...** सम्यग्ज्ञान में बारह अंग आदि का ज्ञान हो। आहाहा! **उत्तम तपश्चरण करन का जिसका स्वभाव है...** चरण अर्थात् मुनिपने में वीतरागभाव। उत्तम तपश्चरण। तपश्चरण अर्थात् दीक्षा। दीक्षा अर्थात् चारित्र। चारित्र

अर्थात् उत्तम तपश्चरण। ये उत्तम चारित्र में उत्कृष्ट होता है। जिसका स्वभाव हो गया, ऐसा कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द में रमना, ऐसा मुनि का स्वभाव हो गया है। वह **अपने आत्मा को मद रहित करे-अनादररूप करे...** आहाहा! वस्तुस्वरूप परमेश्वर है, वह तो दृष्टि में है परन्तु पर्याय में इतना उत्कृष्ट ज्ञान हुआ, बारह अंगादि और चारित्र की उत्कृष्ट रमणता आनन्द की बहुत हो गई, तो भी पर्याय में अपने को निन्दते हैं, निन्दते हैं। आहाहा! अपनी पर्याय में अपना अनादर करता है। अरे! तू क्या... अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञान दशा है। सम्यग्दर्शन बिना का ज्ञान ये तो ज्ञान ही नहीं। ग्यारह अंग पढ़ा या नौ पूर्व पढ़ा हो। समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा का आत्मज्ञान... आत्मज्ञान (हुआ हो)। निमित्त का नहीं, राग का नहीं, पर्याय का ज्ञान नहीं। आहाहा! आत्मज्ञान। आत्मद्रव्य जो वस्तु, इसका ज्ञान। ये ज्ञान की उत्कृष्ट दशा बहुत हो तो भी अपनी पर्याय में अपनी निन्दा करता है। अरे! तू कहाँ पामर! कहाँ सर्वज्ञ, मन:पर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी की दशा! समझ में आया? और कहाँ तेरी बारह अंगादि की ज्ञान दशा। ऐसे अपना अनादर करता है। इसका नाम निर्मानी है। आहाहा! यहाँ तो जहाँ पाँच, पच्चीस हजार श्लोक कण्ठस्थ किये तो हो गया चतुर और अभिमानी। समझ में आया? हमको बहुत आता है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, जिसको उत्तम ज्ञान, सम्यग्ज्ञान, आत्मज्ञान हुआ है और चारित्र में भी उत्कृष्ट दशा हो गयी है। फिर भी पर्याय में केवलज्ञान और यथाख्यातचारित्र की अपेक्षा से अपने को अल्पज्ञ मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? अपनी पर्याय में...

कार्तिकेयानुप्रेक्षा की ३१३ गाथा में आया है कि जिसको अन्तर में मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण प्रगट हुआ, वे भी अपनी पर्याय में केवलज्ञान और महाश्रुतज्ञानी की अपेक्षा से अपने को तृण समान मानता है। तिनका... तिनका। आहाहा! समझ में आया? चौदह पूर्व आदि बारह अंग का ज्ञान सम्यग्ज्ञान हुआ हो तो भी अपनी पर्याय में अपने को तिनका समान मानता है। वस्तु प्रभु है परन्तु पर्याय में मेरी पामरता, बहुत पामरता है। आहाहा! मेरी ज्ञानदशा कहाँ और अवधि, मन:पर्यय आदि की ज्ञानदशा कहाँ! और मेरी चारित्र की दशा कहाँ और यथाख्यातचारित्रवन्त

की वीतरागदशा कहाँ? आहाहा! समझ में आया? यह तो सम्यग्ज्ञानी की बात है, हों! मिथ्यादृष्टि का ज्ञान, वह तो ज्ञान ही नहीं। वह तो परलक्ष्यीज्ञान सब अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो अपना स्वरूप भगवान सच्चिदानन्द प्रभु का ज्ञान हुआ और विकास में ग्यारह अंगादि का विकास हुआ। एक आचारांग में अठारह हजार पद और एक पद के इक्यावन करोड़ से ज्यादा श्लोक। आहाहा! ऐसे-ऐसे ग्यारह अंग कण्ठस्थ हों। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को भी ग्यारह अंग कण्ठस्थ हों, इसकी यहाँ बात है नहीं।

यहाँ तो आत्मज्ञानपूर्वक जिसको ग्यारह अंग ज्ञान हुआ हो। आहाहा! वह भी अपनी पर्याय में। आहाहा! अपना अनादर करता है। यह नहीं... यह नहीं... इतना नहीं। कहाँ केवलज्ञान जलहलज्योति, कहाँ मनपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान! इसकी अपेक्षा अपने को (पामर मानता है)।

मुनि को उत्तममार्दव धर्मरत्न होता है। है? धर्मरत्न कहा, देखो! '**मद्दवरसण**' है न? पाठ में यह है। मार्दवरत्न-धर्मरत्न। आहाहा!

भावार्थ - सब शास्त्र को जाननेवाला पण्डित हो तो भी ज्ञानमद न करे। वहाँ ऐसा विचारे कि मेरे से बढ़ा अवधि-मनःपर्ययज्ञानी है, केवलज्ञानी तो सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी है। मैं कौन हूँ? अल्पज्ञ हूँ। फिर उत्तम तप करे चारित्र तो भी उसका मद नहीं करे। छह-छह महीने के अपवास करे, सम्यग्दर्शनपूर्वक करे तो भी उसका मद न करे। **अपने सर्व जाति, कुल, बल, विद्या, ऐश्वर्य और तपादि बड़े सबसे बड़े हैं तो भी परकृत अपमान भी सहन करता है...** महामुनि राजकुमार हो, चक्रवर्ती हो, (ये) मुनि (हुए) हों। आहाहा! उनका लोक अपमान करे तो सहन करते हैं। ज्ञातापने जाननेवाले (रहते हैं)। आहाहा! समझ में आया? मैं कौन? **वहाँ गर्व करके कषाय उत्पन्न नहीं करता। वहाँ उत्तम मार्दवधर्म होता है।** आहाहा!

सज्झाय में एक आता है, 'गर्व न करिये गात्रनों' गात्र अर्थात् शरीर को गर्व न करें, प्रभु! सज्झायमाला में आता है। श्वेताम्बर में चार सज्झायमाला हैं न! दुकान पर सभी पढ़ी हैं न! (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष। इसमें ये आता है। 'गर्व न करिये गात्रनों।' गात्र

अर्थात् शरीर। श्रीकृष्ण जैसा वासुदेव महापुण्यवन्त बलदेव, वासुदेव कौसम्बी वन में अकेला प्यासा और देह छूट गया। समझ में आया ? जिसको सोने का गढ़ (किला) और रत्नों के कंगूरे थे, ऐसी द्वारका अपनी मौजूदगी में बलदेव और वासुदेव के सामने हल हल अग्नि में जले। समुद्र का पानी डालें तो मिट्टी के तेल होकर (जले)। आहाहा! अरे! भाई!

श्रीकृष्ण बलदेव से कहते हैं, भाई! अपन कहाँ जायेंगे ? आहाहा! माँ-बाप को अन्दर से निकालने गये, (तब) देव ने ऊपर से कहा कि दोनों निकल जाओ। तुम्हारे माता-पिता नहीं निकलेंगे। पूरी द्वारिका भस्म होगी। आहाहा! अकेला बाहर जंगल में चले तृषा लगी। भाई! मुझे तृषा लगी है बलदेव। आहाहा! जिसकी आठ-आठ हजार देव सेवा करते, कहाँ गये ? आहाहा! भाई! बलदेव से कहे, बन्धु! मुझे तृषा लगी है। मैं चल नहीं सकता। मैं एक डग नहीं भर सकता। आहाहा! भाई! मैं पानी लाता हूँ। आहाहा! वहाँ कहाँ लोटा-बोटा था। बड के पत्ते का (लोटा) बनाकर पानी लेने गये। बड का पत्ता का। ये तो बलदेव थे। बड़े बुद्धिशाली। पानी के लिये लोटा जैसा बनाया। वहाँ बाद में जरदकुमार ने बाण मारा। हिरण जैसा लगा। वासुदेव पुण्यवन्त प्राणी हैं। जिनके पैर में तो पद्ममणि दिखे। जाने हिरण हो। पैर में पद्ममणि (जैसा दिखे)। पैर ऐसे ऊँचा करके सोते थे। हिरण है, ऐसा जानकर मारा। कौन है इस जंगल में मेरा अपराध करनेवाला ? श्रीकृष्ण ने पुकार की। आया, अरेरे! प्रभु! तुम यहाँ कहाँ से ? तुम्हारे लिये तो बारह-बारह वर्ष से जंगल में बैठा हूँ। प्रभु! तुम्हारे लिये। यह क्या ? भाई! आहाहा! यह शरीर सड़ा। कीड़े पड़े हों! कीड़े समझे! चींटी। चींटी लाखों कीड़े। आहाहा! आहाहा! रत्न के पलंग पर सोनेवाला, आठ-आठ हजार देव सेवा करें। हजारों जिसकी पद्मिनी जैसी रानी, अब ऐसी पीड़ा में। शरीर में कीड़े। गर्व नहीं करो शरीर का, प्रभु... प्रभु! इस शरीर-गात्र का गर्व न करो। नाथ! आहाहा! शरीर की स्थिति ऐसी है। ऐसे ज्ञान का और चारित्र का गर्व न कर तू! समझ में आया ? आहाहा! यह मार्दव धर्म (विषय में) थोड़ा कहा।

अब, चलता अधिकार। १०२ कलश।

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां
सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः।

तद्बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं
स्वयं समस्तं खलु बन्धहेतु।।3-102।।

खण्डान्वय सहित अर्थ - यहाँ कोई मतान्तररूप होकर आशंका करता है - मिथ्यादृष्टि ऐसी आशंका करता है। **ऐसा कहता है कि कर्मभेद है—कोई कर्म शुभ है, कोई कर्म अशुभ है।** अज्ञानी ऐसा मानता है कि कोई कर्म शुभ है और कोई अशुभ है। **किस कारण से? हेतुभेद है, स्वभावभेद है,...** आहाहा! **अनुभवभेद है, आश्रय भिन्न है - इन चार भेदों के कारण कर्मभेद है। वहाँ हेतु अर्थात् कारणभेद है।** अर्थात् कि? **संक्लेशपरिणाम से अशुभकर्म बँधता है,...** संक्लेश अशुभभाव से अशुभकर्म बँधता है और विशुद्ध परिणाम से शुभबन्ध होता है; इसलिए कारण में भेद है। कर्म के कारण में भेद है। बन्ध के कारण में भेद है, एक संक्लेशपरिणाम से पाप बन्ध होता है, विशुद्ध परिणाम से पुण्य (बँधता है) कर्म के बन्ध के कारण में भेद है। ऐसी अज्ञानी की दलील है। समझ में आया? आहाहा!

स्वभाव भेद अर्थात् प्रकृति भेद है। विवरण - अशुभकर्मसम्बन्धी प्रकृति भिन्न है - अब कर्म (लिया)। पहले कारण-भाव लिया था। भाव में भेद है, ऐसा अज्ञानी कहता है। एक संक्लेश परिणाम है, एक विशुद्ध परिणाम है। अब ऐसा कहते हैं कि प्रकृतिबन्ध में भी भेद है। अज्ञानी ऐसा कहता है। एक में प्रकृति शुभ बँधती है और एक में अशुभ बँधती है। आहाहा! समझ में आया? **पुद्गल कर्मवर्गणा भिन्न है;...** पुद्गलकर्म की वर्गणा एक शुभरूप है और एक अशुभरूप प्रकृति में है। ऐसे अज्ञानी प्रकृति के दो भेद जानता है और मानता है।

अनुभव अर्थात् कर्म का रस, सो भी रसभेद है। विवरण - अशुभकर्म के उदय में जीव नारकी होता है... पापकर्म से **नारकी होता है, तिर्यंच होता है अथवा हीन मनुष्य होता है; वहाँ अनिष्ट विषयसंयोगरूप दुःख को प्राप्त होता है...** वहाँ महाअनिष्ट दुःख नारक, तिर्यंच को प्राप्त होता है। और **अशुभकर्म का स्वाद ऐसा है। शुभकर्म के उदय में जीव देव होता है...** अशुभ को तुम कहते हो एक है, एक है। कितना अन्तर है। शुभकर्म से स्वर्ग में देव होता है। यह करोड़ों, अरबोंपति सेठिया होता है। धूल की धणी। वह कहता

है कि है। वह कहे अन्तर है, अज्ञानी कहता है कि अन्तर है। अशुभ से नरकादि में जाता है और शुभ से स्वर्ग में सेठाई मिलती है। तुम कहते हो कि दोनों एकसमान हैं, एक जैसे हैं। समझ में आया? **शुभकर्म के उदय में जीव देव होता है अथवा उततम मनुष्य होता है, वहाँ इष्ट विषय संयोगरूप सुख को पाता है...** इष्ट अनुकूल विषयों से इसको सुख मिलता है। **शुभकर्म का स्वाद ऐसा है।** आहाहा! **इसलिए स्वादभेद भी है।**

अब आश्रय। इसमें और मूल समयसार में आश्रय में भेद है। समझ में आया? हमारे पण्डितजी ने कहा था न? मूल समयसार में आश्रय में अज्ञानी कहता है कि शुभभाव मोक्षमार्ग के आश्रय बँधता है और अशुभ (भाव) बन्धमार्ग के आश्रय बँधता है, ऐसी अमृतचन्द्राचार्य की टीका है। समझ में आया? क्या कहा? अज्ञानी की दलील है कि शुभभाव, ये मोक्षमार्ग के आश्रय बँधता है और अशुभभाव, बन्धमार्ग के आश्रय बँधता है, इस प्रकार आश्रय में अन्तर है। ऐसा अज्ञानी मानता है।

यहाँ आश्रय में दूसरा परिणाम लिया। **आश्रय अर्थात् फल की निष्पत्ति...** जो पुण्य और पाप के जो फल मिलता है। **अशुभकर्म के उदय में हीन पर्याय होती है, वहाँ अधिक संक्लेश होता है, उससे संसार की परिपाटी होती है;...** अज्ञानी कहता है, हों! अशुभभाव से संक्लेशपरिणाम, संक्लेशपरिणाम से कर्म और कर्म से परिभ्रमण की परिपाटी मिलती है। **शुभकर्म के उदय से उत्तम पर्याय होती है,...** मनुष्यपना मिलता है, संहनन मिलता है। आहाहा! और एक हुक्म करते हैं, वहाँ हजार तैयार होते हैं। क्या लेना है? साहेब! क्या माँगते हो? क्या चाहिए? पानी चाहिए? बर्फ चाहिए? आहाहा! शुभकर्म के उदय से ऐसी संयोग सामग्री मिलती है न! अज्ञानी की दलील है। **वहाँ धर्म की सामग्री मिलती है, उस धर्म की सामग्री से जीव मोक्ष जाता है, इसलिए मोक्ष की परिपाटी शुभकर्म है**- हम तो ऐसा मानते हैं कि शुभभाव से शुभकर्म बँधता है, वह मोक्ष की परम्परा में काम आता है। ऐसी अज्ञानी की दलील है। आहाहा! **ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है।** है? मिथ्या-झूठा माननेवाला। आहाहा! तुझे खबर नहीं, नाथ!

उसके प्रति उत्तर ऐसा जो 'कर्म भेदः न हि' कोई कर्म शुभरूप, कोई कर्म अशुभरूप-ऐसा भेद तो नहीं है। आहाहा! **किस कारण से? 'हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां**

सदा अपि अभेदात्' कर्मबन्ध के कारण विशुद्धपरिणाम-संक्लेश परिणाम, ऐसे दोनों परिणाम अशुद्धरूप हैं, अज्ञानरूप हैं... आहाहा! दया, दान, भक्ति आदि के परिणाम अशुद्ध हैं। वे अज्ञानरूप हैं। अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञानस्वभाव नहीं। आहाहा! ऐसी बात। वे कहते हैं कि अन्तर है। यहाँ कहते हैं कि दोनों अज्ञान हैं। समझ में आया? भगवान चैतन्यज्योति प्रभु, इसमें शुभाशुभभाव में ज्ञान, चैतन्य का तो अभाव है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, इस भाव में ज्ञानस्वरूप चैतन्य का तो अभाव है। आहाहा! समझ में आया? **इससे कारणभेद भी नहीं है,...** तू कहता है कि संक्लेशपरिणाम से पाप बँधता है और विशुद्ध परिणाम से पुण्य (बँधता है), ऐसा कारण भेद है। हम तो कहते ही हैं, दोनों से बन्ध होता है, कारण भेद नहीं। आहाहा! शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, तप से पुण्य बँधता है और संक्लेशपरिणाम से पाप बँधता है, परन्तु दोनों में बन्ध है, अन्तर कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कारण एक ही है... क्या कहते हैं? शुभ-अशुभपरिणाम अज्ञानमय अशुद्धरूप एक ही हैं। इसमें शुभ ठीक है और अशुभ अठीक है, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! बड़ा विवाद। यह झगड़ा शुभभाव से मोक्षमार्ग है। ऐसा कहते हैं। अरेरे! आहाहा! यहाँ कहते हैं कि शुभ और अशुभ दोनों एक परिणाम बन्ध के कारण हैं। अरेरे! 'प्रभु का मार्ग है शूरों का, कायर का नहीं काम।' समझ में आया? आहाहा! 'हरि का मार्ग है शूरों का, कायर का नहीं काम जो ने', 'प्रभु का मार्ग है शूरों का।' यह शुभ-अशुभमार्ग, यह प्रभु का मार्ग नहीं। बन्ध मार्ग है। समझ में आया? शुभ और अशुभ दोनों। आहाहा! कायर का तो कलेजा काँप उठे, ऐसा है।

जिस भाव से पुण्य बन्ध होता है, वह भाव अशुद्ध और अज्ञान है। आहाहा! अज्ञान शब्द (आशय) मिथ्यात्व नहीं। अज्ञान शब्द से इसमें ज्ञान चैतन्य का अभाव है। चाहे तो पंच महाव्रत का परिणाम हो। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, मन्दिर बनवाना, रथयात्रा निकालना, ये धर्मशाला बनवानी। सेठ आ गया। सेठ न तीन लाख की धर्मशाला बनवाई है। इन्दौर में। इन्दौर नहीं, तुम्हारे सागर... सागर...। सागर। ये मन्दिर और धर्मशाला करोड़ बनावे परन्तु ये भाव शुभ और अशुद्ध और अज्ञान है। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया?

कारणभेद भी नहीं है, कारण एक ही है। शुभकर्म-अशुभकर्म ऐसे दोनों कर्म पुद्गल पिण्डरूप हैं, इस कारण एक ही स्वभाव है, स्वभावभेद तो नहीं। ये पुण्यबन्ध होता है कि पाप बन्ध होता है, दोनों प्रकृति पुद्गल जड़ हैं। १०२ कलश। समझ में आया? ये तो बहुत सादी बात है। इसमें कहीं बहुत... दोपहर की बड़ी सूक्ष्म बात है। दोपहर में शब्द-शब्द में अन्तर है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तू कौन है? अन्दर चैतन्यरत्न हीरा पड़ा है, प्रभु! आहाहा! सच्चिदानन्द नाथ प्रभु! तेरी चीज़ में से बाहर निकलना, शुभाशुभभाव प्रभु! ये तो दुःखरूप है। आहाहा! ये दोनों अज्ञान हैं। आहाहा! और दोनों का फल कर्मबन्धन, वह भी पुद्गल है। चाहे तो पुण्यबन्ध हो, चाहे तो पापबन्ध हो, ये दोनों पुद्गल जड़ हैं। आहाहा! समझ में आया?

स्वभावभेद तो नहीं। स्वभावभेद नहीं। क्या कहा? शुभ-अशुभपरिणाम में कारणभेद है, ऐसा तू कहता है। हम तो कहते हैं, दोनों से बन्ध होता है, कारणभेद नहीं। अब तू बन्ध की प्रकृति के स्वभाव में तू भेद मानता है, हम तो कहते हैं, दोनों पुद्गलस्वभाव हैं। स्वभाव में कोई भेद नहीं। आहाहा! रसभेद है। **रस भी तो एक ही है, रसभेद तो नहीं। विवरण- शुभकर्म के उदय से जीव बँधा है, सुखी है;...** लोग मानते हैं। पैसेवाला और इज्जतवाला सुखी है। धूल में भी है नहीं। समझ में आया? आहाहा! **अशुभकर्म के उदय से जीव बँधा है, दुःखी है; विशेष तो कुछ नहीं।** विशेष कुछ नहीं। आहाहा! दोनों रस खराब है। आहाहा!

'आश्रय' फल की निष्पत्ति, वह भी एक ही है... दोनों में फल है-जड़ संयोग। **विशेष तो कुछ नहीं।** टीका में अमृतचन्द्राचार्य ऐसा लिया है... १४५ गाथा। उसमें ऐसा लिया है। शिष्य ने ऐसा कहा कि शुभभाव तो मोक्षमार्ग के आश्रय है और अशुभभाव बन्धमार्ग के आश्रय है। जवाब ऐसा दिया है। इसमें दो अर्थ हो गये हैं, मतभेद हो गया है। वहाँ ऐसा कहा कि शुभ मोक्षमार्ग है, अशुभ बन्धमार्ग है। ऐसा पाठ है। परन्तु ये शुभ मोक्षमार्ग अर्थात् शुभभाव नहीं। जो शुद्ध मोक्ष का मार्ग है, उसको वहाँ शुभ कहने में आया है। आहाहा! जो निज शुद्ध चैतन्य वस्तु, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता वीतराग परिणाम है, उसको वहाँ शुभ कहने में आया है। यह शुभ है। अर्थात् पुण्य और पाप परिणाम हैं, वे

दोनों अशुभ हैं। निश्चय मोक्षमार्ग शुभ है और राग—शुभ-अशुभ परिणाम, दोनों अशुभ और अशुभ हैं। आहाहा! इस अर्थ में थोड़ा अन्तर करते हैं। फूलचन्दजी अर्थ में अन्तर करते हैं कि शुभ तो मोक्षमार्ग के आश्रय रहते हैं। और पीछे वहाँ प्रश्न ऐसा लिया है, जीवमय वहाँ लिया है। शुभ मोक्षमार्ग के आश्रय है अर्थात् जीवमय है। तो जो शुभपरिणाम मोक्षमार्ग के आश्रय कहो तो शुभपरिणाम जीवमय नहीं, ये तो विकार परिणाम हैं। जीवमय शुभ का अर्थ अपने आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र परिणाम उत्पन्न हुए, ये शुभ हैं और जीवमय हैं। ये जीवमय हैं। समझ में आया? अरे! अर्थ में भी अन्तर। क्या करें? आहाहा!

ये मतान्तर कहते हैं, इसके पाठ का अर्थ भी लोगों को ऐसा दिखता है कि शुभाशुभ मोक्षमार्ग, बन्धमार्ग ऐसा पाठ है। शुभ ये मोक्षमार्ग है और अशुभ बन्धमार्ग है। परन्तु ये शुभ परिणाम की बात नहीं। शुभ अर्थात् वहाँ शुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, इस शुद्ध को वहाँ शुभ कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? संस्कृत टीका में ऐसा है। १४५ गाथा की मूल टीका है। समयसार पढ़े उससे उलझन हो जाती है। यहाँ अर्थ दूसरा लिया है। आश्रय में फल लिया है। वहाँ आश्रय में मोक्षमार्ग के आश्रय शुभ है और बन्धमार्ग के आश्रय अशुभ है, ऐसी अज्ञानी की दलील थी। तो उसके उत्तर में कहा कि शुभ तो इसको कहते हैं कि जो आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पवित्रता प्रगट हुई, उसको शुभ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पवित्रता को शुभ कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको शुभ कहते हैं। वह शुभ है। आहाहा! भला वह है। शुभ-अशुभभाव से रहित निज आत्मा पवित्र भगवान के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है, उसको भगवान मोक्षमार्ग के आश्रय शुभ कहते हैं। शुभ अर्थात् शुद्ध। शुद्ध को शुभ कहा है। और पुण्य और पाप जो शुभाशुभभाव है, उसे अशुभ कहा है। समझ में आया? अर्थ में थोड़ा अन्तर है। क्योंकि जो ऐसा कहो कि शुभभाव मोक्षमार्ग के आश्रय मोक्षमार्ग कहो। तो शुभ को तो जीवमय कहा है। तो ये शुभभाव जीवमय है ही नहीं। ये तो अशुद्ध और अज्ञानमय है। आहाहा! समझ में आया? हमारे पण्डितजी ने ऐसा अर्थ किया है कि शुभ अर्थात् शुद्ध। और अशुभ अर्थात् शुभाशुभभाव

दोनों अशुद्ध को अशुभ कहा है। समझ में आया ? इसके अर्थ में अन्तर है। फूलचन्दजी ऐसा अर्थ करते हैं कि शुभभाव है। बाद में कहते हैं कि ये शुभभाव मोक्ष का कारण नहीं। परन्तु शुभभाव मोक्षमार्ग है और अशुभभाव बन्धमार्ग है, ऐसा अर्थ करते हैं। परन्तु ऐसा नहीं। समझ में आया ? शुभभाव तो निश्चय से इसको कहते हैं कि शुभाशुभभाव से रहित भगवान आत्मा को ध्येय बनाकर जो शुद्ध परिणाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान वीतरागता हुई, उसको मोक्षमार्ग के आश्रय शुभ कहने में आया है और शुभ और अशुभभाव बन्धमार्ग के आश्रय अशुभ कहने में आया है। आहाहा! जिनेश्वरदासजी! यह टीका में ऐसा है। १४५ है न ?

शुभ (अच्छा) ऐसा मोक्षमार्ग तो केवल जीवमय होने से... १४५ गाथा की संस्कृत। **शुभ (अच्छा) ऐसा मोक्षमार्ग तो केवल जीवमय होने से और अशुभ (खराब) ऐसा बन्धमार्ग तो केवल पुद्गलमय होने से...** ऐसी टीका है, परन्तु इसका अर्थ अलग है। **शुभ (अच्छा) ऐसा मोक्षमार्ग तो केवल जीवमय होने से...** अच्छा अर्थात् शुद्धपरिणाम। शुभाशुभपरिणाम से रहित शुद्धपरिणाम। ये **(अच्छा) ऐसा मोक्षमार्ग तो केवल जीवमय होने से...** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो वीतरागी पर्याय, वह जीवमयी है। और शुभाशुभपरिणाम जीवमय नहीं। समझ में आया ? पहले अर्थ करते हैं, बाद में ऐसा कहते हैं कि शुभभाव भी बन्ध का कारण है। परन्तु मोक्षमार्ग व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। यहाँ यह बात नहीं। व्यवहार मोक्षमार्ग है ही नहीं। यहाँ तो मोक्षमार्ग शुभ को कहा। जो शुद्धपरिणाम निज शुद्ध चैतन्य के आश्रय निर्मल वीतरागी परिणति मोक्षमार्ग की उत्पन्न होती है, वह मोक्षमार्ग है और इसके आश्रय से इसको शुभ कहने में आया है। पण्डितजी! शुद्ध को शुभ कहने में आया है और शुभ-अशुभभाव को अशुद्ध कहकर दोनों को अशुभ कहने में आया है। आहाहा! अशुभ। दोनों बन्ध के कारण हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : समयसार... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार १४५। पाठ है अन्दर, देखो! अन्दर पाठ है ? संस्कृत में ऐसा पाठ है। '**शुभोश्शुभो वा जीवपरिणामः केवलाज्ञानमयत्वादेकाः**' देखा! '**तदेकत्वे केवलाज्ञानमयत्वादेकाः... शुभोष्शुभो वा फलपाकः...**' ये आ गया। '**शुभाशुभो मोक्षबन्धमार्गो**' ऐसा पाठ है। '**शुभोश्शुभो मोक्षबन्धमार्गो तु प्रत्येकं केवलजीवपुद्गल-**

मयात्वादनेकौ' टीका में ऐसा है कि शुभ, अशुभ। शुभ मोक्षमार्ग, अशुभबन्ध मार्ग। **'तु प्रत्येकं केवल'** शुभ—जीवमय; अशुद्ध शुभाशुभपरिणाम पुद्गलमय, इससे अनेक हैं। दो एक नहीं, अनेक हैं। आहाहा! संस्कृत टीका में ऐसा लिया है। परन्तु शुभ का अर्थ तो वहाँ शुद्ध लेना है। और शुभाशुभ का अर्थ वहाँ अशुभ लेना है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात और अनेक है, दो एक नहीं। भगवान आत्मा को शुभभाव इसे कहा, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निर्विकारी पर्याय उत्पन्न हुई, उस मोक्षमार्ग को यहाँ शुभ कहा। और इससे विरुद्ध जितना पुण्य और पाप शुभ-अशुभभाव है, उसको पुद्गलमय कहकर अशुभ कहा। यह पुद्गलमय अज्ञानमय है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ इसका अर्थ दूसरा लिया है। इसके आश्रय का अर्थ फल लिया। शुभ का फल अनुकूल और अशुभ का फल प्रतिकूल। बस। परन्तु सब पुद्गल का संयोग है। ऐसा कहकर उड़ा दिया। आहाहा! समझ में आया? किसको पड़ी है अन्दर का सत्य क्या है? समझ में आया? आहाहा! नगदी आठ आना का अन्तर पड़े तो रुपये का मिट्टी का तेल जलाये। क्यों यह अन्तर पड़ा? रात जलाये, पूरी रात वही फेरे। आहाहा! पाप का। ये नगदी का मेल कैसे मिले, कुछ खबर नहीं पड़ती।

मुमुक्षु : नामा का तो ज्ञान ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जिसको धर्म करना हो, उसको मेल करना पड़ेगा या नहीं? धर्म खाते में धर्म क्या? और अधर्म खाते में अधर्म क्या? शुभाशुभभाव दोनों अधर्म हैं, अशुद्ध हैं, अशुद्ध हैं, अशुभ है। और भगवान आत्मा का आनन्द, ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र हुए ये शुद्ध हैं, शुभ हैं, ये मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? आहाहा! अरे! लोग क्या करते हैं। अपनी दृष्टि (के साथ मिलाता है)। फूलचन्दजी की दृष्टि ऐसी नहीं। दृष्टि में तो राग बन्ध का कारण है। परन्तु मोक्षमार्ग शब्द जो पड़ा है न? तो शुभमोक्षमार्ग ऐसा अर्थ लिया। और दूसरा तो शुभभाव को मोक्षमार्ग ही कहता है। बाद में तो हेय कहते हैं। फूलचन्दजी हेय तो कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो एक बात है, प्रभु! तेरी चीज़ तो देख! चैतन्य रत्न! अनन्त शक्ति के रत्न

से भरा प्रभु ! ऐसे प्रभु के आलम्बन से जो परिणाम होता है, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं और उसे शुद्ध और शुभ कहते हैं। उसको भला कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! और शुभ और अशुभभाव दोनों बुरे हैं, खराब हैं, ऐसा कहते हैं। अशुभ हैं।

कहते हैं कि '**आश्रय' फल की निष्पत्ति, वह भी एक ही है...** यहाँ यह लिया है। दोनों का फल एक ही है-संयोग मिले, दुःख मिले। बस ! आहाहा ! शुभ-अशुभभाव का फल बन्धन और बन्ध का फल संयोग। ये दुःखरूप। सब दुःख के कारण हैं। आहाहा ! शुभ के कारण यह लक्ष्मी मिलना, यह दुःख का कारण है। उसके ऊपर लक्ष्य जाता है तो पाप बँधता है। आहाहा ! लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार के ऊपर लक्ष्य जाता है तो अकेला पाप उत्पन्न होता है, पाप बन्धन है। शान्तिभाई ! अरेरे ! जिन्दगी ऐसी पच्चीस-पचास वर्ष जिन्दगी निकाले, बाद में थोड़ी बहुत भगवान की पूजा या शास्त्र वाँचन करे तो जानता है कि अपने को तो धर्म हो गया। आहाहा ! भाई ! धर्म चीज़ तो अलौकिक है, भाई ! ऐसा शुभभाव तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' यह शुभभाव अशुभ है। निश्चय से तो अशुभ है।

पुण्य-पाप अधिकार में अन्त में कहा न ? प्रभु ! यहाँ तो पाप का अधिकार चलता है न, इसमें तुम ये दया, दान, व्रत को कहाँ लाये ? भाई ! ये दया, दान, व्रत, लाये, यह निश्चय से तो पाप है। ले ! टीका में है। पुण्य-पाप अधिकार की जयसेनाचार्यदेव की टीका के पाठ में है। संस्कृत टीका में है। समझ में आया ? अधिकार पाप का चलता है और तुमने व्यवहार मोक्षमार्ग की बात तुमने कहाँ से कही ? समझ में आया ? व्यवहार मोक्षमार्ग तो पुण्य है और यहाँ तो मोक्षमार्ग की बात है। पाप का अधिकार चलता है। भाई ! पुण्य, वह पाप ही है। योगसार में योगीन्द्रदेव ने भी कहा कि 'पाप पाप को सब कहें' पर अनुभवी जीव पुण्य को भी पाप कहते हैं। आहाहा ! योगसार में आता है। 'पाप पाप को तो सब कहें' पर धर्मी अनुभवी जीव पुण्य को भी पाप कहता है। आहाहा ! समझ में आया ? निज चैतन्य पवित्र स्वरूप से च्युत हुआ, ये शुभभाव में च्युत होना, ये पाप है। आहाहा ! अरे ! मार्ग इसको सुनने मिलता नहीं और उल्टा मार्ग मिलता है, कहाँ जाये ? आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, आश्रय में अन्तर है। मोक्षमार्ग के आश्रय शुद्धता प्रगट होती है। बन्धमार्ग के आश्रय अशुद्धता पुण्य और पाप उत्पन्न होता है। आहाहा! यह टीका का अर्थ है। यहाँ आश्रय का अर्थ फल (लिया है)। पुण्य और पाप दोनों का फल संयोग दुःख है। समझ में आया? उसमें कोई आत्मा की शान्ति वहाँ है नहीं। आहाहा! जहाँ शान्ति का सागर भगवान डोलता है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्तरस से भरा प्रभु! आहाहा! प्रभु की स्तुति में नहीं आता? 'उपशम रस बरसे रे प्रभु तारा नयन में, उपशम रस वरसे रे प्रभु तारा नयन में।' जिसके शरीर में उपशमरस दिखता है। भगवान को प्रगट केवलज्ञान हुआ। उपशमरस में अन्दर ढीम हो गये। आहाहा! ऐसे भगवान उपशमरस द्रव्यस्वभाव तो उपशमरस स्वरूप है। आहाहा! इसके आश्रय उपशम अर्थात् शान्ति अर्थात् वीतरागता उत्पन्न होती है। शान्ति प्राप्त कराये, उसको सन्त कहते हैं। आहा! उनके चारण में जाकर रहे। ये शान्ति पाये वह तो भगवान अन्दर है। आहाहा! शान्ति का सागर उछला है न, प्रभु! ये पुण्य-पाप के राग रहित चीज़ है न! आहाहा! जिसके शरण में जाने से शान्ति मिलती है। पुण्य-पाप के शरण में जाने से प्रभु! उसको अशान्ति-दुःख मिलेगा। आहाहा! समझ में आया? अब अभी ये बड़ी चर्चा मक्खनलालजी ने निकाली। शुभभाव मोक्ष का मार्ग है। शुभभाव को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। अरेरे! प्रभु! क्या करता है? भाई!

मुमुक्षु : शब्द की भ्रान्ति हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द की खबर न पड़े, बापू! आहाहा! इस शुभभाव को तो निश्चय से यहाँ अशुभ कहा। शुभ-अशुभ दोनों भाव को तो अशुभ कहा। और अशुभ तो बन्धमार्ग के आश्रय कहा। जैसे अशुभ से बन्ध होता है, ऐसे शुभ से बन्ध होता है। आहाहा! मोक्षमार्ग नहीं, वह तो बन्धमार्ग है। अरेरे! समझ में आया?

शुभकर्म के उदय संसार... है। देखो! शुभभाव से बन्ध पड़ा और उसका फल तो संसार है। चार गति मिलेगी। भले स्वर्ग मिले या सेठाई मिले, वह संसार है। आहाहा! अरबोंपति हो, करोड़ोंपति हो। करोड़पति की तो अब गिनती नहीं, अब तो अरबोंपति हो गये हैं। पहले लखपति में बहुत कहलाते थे। लाख क्या, पहले तो दस हजार में बहुत कहलाते थे। हमारे पिताजी के पिताजी के पास दस हजार रुपया थे। गाँव में राजा कहलाते

थे। रूपवाला सुन्दर शरीर। दस हजार की पूँजी। धन्धा-बन्धा करे नहीं। रुई का व्यापार रुई के गट्ठे। आदमियों को 'धोलेरा' भेजें। दो महीने में दो हजार पैदा कर लें। बस, बाद में दस महीना धन्धा नहीं। हमारे पिताजी के पिताजी। बहुत सुन्दर रूप था और गृहस्थ थे। बड़ा नामांकित शरीर था नामांकित नाम था, परन्तु पूँजी कितनी? दस हजार। अब तो पच्चीस-पच्चीस हजार की एक दिन की आमदनीवाले पैसेवाले पड़े हैं। धूल के धनी। जिनको भान नहीं कुछ। आहाहा!

यहाँ कहते हैं यह पुण्य का फल तो दुःख है। आहाहा! पुण्य स्वयं दुःख है। शुभभाव... आहाहा! यह आकुलता है। निराकुलता का वह कारण नहीं। निराकुलता का कारण तो भगवान आत्मा है। आहाहा! भगवान सच्चिदानन्द प्रभु का आश्रय लेने से अनाकुलता प्रगट होती है। पुण्य-पाप का आश्रय तो दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, सेठ! दुनिया से निराली है, भाई! यह तो वीतराग जिनेन्द्र का मार्ग है। ओहो! और अब तो ऐसे धमाधम पर्यूषण चलाते हैं। पण्डित और त्यागी। ये व्रत और अपवास और ये सब धर्म हैं। धर्म मना करें, यह नहीं (चले)। अरे! भगवान! तेरा मार्ग इतना है न!

बन्धन के हेतु में तू अन्तर कहता है न, परन्तु हम तो न कहते हैं कि बन्धन के हेतु में अन्तर नहीं है। शुभ हो या अशुभ, दोनों का बन्धन है। आहाहा! बात सुनी नहीं जाती। कठिन पड़ती है। आहाहा! ये सम्मेदशिखर की यात्रा और तीर्थ रक्षा के बहुत फण्ड करते हैं। बाबूभाई करते हैं न? तीर्थ रक्षा को। परन्तु इसमें विवाद चलता है कि ये सोनगढ़ का तीर्थ रक्षाफण्ड है, इसलिए नहीं। अरे! प्रभु! ऐसा भगवान! ये शुभभाव होता है। बाकी तीर्थरक्षा का भाव, ये कोई धर्म है? आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! ऐसा मानेंगे तो कोई नहीं करेगा। परन्तु नहीं करे, (क्या) ये आये बिना रहेगा नहीं। जब तक वीतरागता नहीं, तब तक आत्मदृष्टिपूर्वक शुभभाव आते हैं। परन्तु ये शुभाशुभभाव का फल बन्ध है।

मुमुक्षु : पर कोई करे या न करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : ये प्रश्न कहाँ है, करेगा या नहीं करे। ये आयेगा ही इस काल में इसको। जिस समय जो पर्याय होनी है, होनी है, वह होगी। 'जो जो देखी वीतराग ने सो

सो होसी वीरा जे, अनहोनी कबहूं न होसी, काहे होत अधीरा रे' 'काहे होत अधीरा रे' आहाहा! ये तो अशुभभाव के काल में अशुभ ही आयेगा, नाथ! परन्तु ये दुःखरूप है, ऐसा हेय जानकर आयेगा। और शुभ के काल में भी शुभ आता है। सन्तों को भी पंच महाव्रत का विकल्प शुभभाव आता है, परन्तु है उसे हेयरूप मानते हैं। आहाहा!

सन्त तो अतीन्द्रिय आनन्द के स्वरूप में तल्लीन हो गये हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के... आहाहा! परिपूर्ण आनन्द के महल में जिन्होंने पाँव धरे हैं, प्रवेश किया है। आहाहा! शुभाशुभ परिणाम से हटकर। सन्त तो उन्हें कहते हैं, जिन्होंने अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ के महल में प्रवेश किया है। आहाहा! अर्थात् उसके सन्मुख हुए हैं। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त है। उसको यहाँ मुनि कहते हैं। पंच महाव्रत में मस्त है और अतीन्द्रिय आनन्द को भूल जाता है, वे मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बात है। सेठियाओं ने भी अभी तक सब दरकार बिना किया। हम बड़े हैं, बड़े हैं। सेठ शाबासी मिली।

एक पिता का पुत्र होता है तो दूसरे पिता का पुत्र ऐसा कहता है कि मेरे बाप ने (तेरे बाप को) पिछले भव में पाँच लिख दिये हैं। माने? वहाँ विचार करे, नहीं, नहीं। पहले भव में दिये हैं, ये किसे पता है? तेरे बाप ने मेरे बाप को पिछले भव में पाँच लाख दिये हैं। लाओ। वहाँ ना करता है वहाँ विचार करता नहीं कि इसने माँगे, इसलिए दे दूँ। ऐसे सामने पण्डित कहे कि पुण्य से धर्म होता है। तो कहे, हाँ हक है।

कहा न भाई ने? सुना? जिनेश्वरदासजी! एक बाबूलाल जमादार हैं। यहाँ का विरोध करता है। उसके साथ एक आया था। प्रियंकरजी, यहाँ भाषण किया था। मेरे साथ उनकी बहुत चर्चा हुई है। इसने एकान्त में कहा कि बात तो सोनगढ़ की सच्ची है। परन्तु हम यदि सच्ची कहेंगे... क्रमबद्ध तो वहाँ से निकला है। क्रमबद्ध का उद्घाटन सोनगढ़ से हुआ है। समझ में आया? क्रमबद्ध की भाषा करनेवाले तो हमारे पण्डिजी हिम्मतभाई ने की है। यदि क्रमबद्ध हम निश्चित करें तो सोनगढ़ सच्चा ठहरेगा, तो लोग वहाँ चले जायेंगे। हमारी ठेकेदारी नहीं रहेगी। और यहाँ तक बोला, यहाँ बोल गया था, मेरे सामने कहा था, मैं नरक या निगोद जाऊँगा। हमने सोनगढ़ का विरोध किया है, परन्तु अब दूसरा क्या करें? ठेकेदार हुए। ऐसा बोला। रिकोर्डिंग की है। प्रियंकरजी यहाँ बोले। प्रियंकरजी

हैं। कहाँ के हैं ? मुम्बई। चर्चा हुई। लाल बहादुर ने कहा। क्रमबद्ध की बात तो सच्ची है। एक सिद्धसेन साधु है। यहाँ का विरोध करने के लिये आया था। शास्त्र देखने से तो क्रमबद्ध दिखता है। क्या करें ? यदि तुम मानोगे तो सोनगढ़ सत्य ठहरेगा। इसलिए तुम्हें नहीं मानना। साधु ने कहा, न मानना। लो! अरर्र! अरे! प्रभु! सत्य के स्वीकार में क्या दिक्कत है। बालक कहे तो भी क्या है ?

आठ वर्ष का बालक कोई समकिती ज्ञानी है। वह कहे तो भी तुम्हें मान्य रखना चाहिए। हम इतने साठ वर्ष के, अस्सी वर्ष के हैं इसलिए... अस्सी वर्ष तो शरीर के हैं। तेरी स्थिति तो अनादि-अनन्त है। तो अनादि-अनन्त तत्त्व का किसी को भान हो और कहे और कोई भूल हो तो स्वीकार कर लेना कि बात सच है, भाई! बालक कहता है, परन्तु बात सच्ची है। आहाहा!

श्वेताम्बर में ऐसा आता है। एक साधु निकला था। रास्ते में एक स्त्री मिली तो उसके साथ बातचीत करता था। वहाँ एक बालक आया। अरे! महाराज तुम ये स्त्री के साथ बात करते हो! रास्ते में ईर्यासमिति ? तू क्या जानता है ? शास्त्र कहते हैं कि बालक कहे तो भी उसका मान लेना। रास्ते में चलते स्त्री के साथ बात करते हो, तुम्हारे ईर्यासमिति नहीं, ये क्या करते हो ? स्त्री का संग, परिचय ब्रह्मचारी को नहीं होता। बालक कहे तो भी सत्य मान लेना। जिनेश्वरदासजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ये। आया है। शब्द याद न हो, भाव याद हो। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **शुभकर्म के उदय संसार, त्यों ही अशुभकर्म के उदय संसार...** विवरण है न ? विवरण। आहाहा! यह पुण्यभाव का फल संसार। अरे! पुण्यभाव स्वयं संसार। आहाहा! **गणधरदेव ने ऐसा माना है।** है ? **'इष्ट' गणधरदेव ने ऐसा माना है।** भगवान की वाणी ओम्। 'मुख ओम् (कार) ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' भगवान की वाणी मुख में से ओम् ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे। 'रचि आगम उपदेश भविक (जीव) संशय निवारे।' वे गणधर ऐसा कहते हैं। वाणी की रचना करनेवाले ऐसा कहते हैं कि पुण्य, वह संसार है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ७, सोमवार, दिनांक १९-०९-१९७७
कलश-१०२ से १०४, प्रवचन-९९

दशलक्षण पर्व का आज तीसरा दिन है। उत्तम आर्जवधर्म। क्षमा हुई और मार्दव— निर्मानता हो गयी। यह सरलता-आर्जव। सरलता तो मन से, वचन से और से। ये भी सरलता है। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। ये तो सरलता सम्यग्दर्शन में शुद्धोपयोग, अपना जो शुद्धोपयोग, शुभ-अशुभभाव जो अशुद्धोपयोग से रहित होकर शुद्धोपयोग में जब सम्यग्दर्शन होता है, बाद में स्वरूप में अरागी वीतरागी परिणति उग्ररूप से होती है उसमें आर्जवपना-सरलपना कहलाता है। समझ में आया?

(संवत्) १९८२ के वर्ष में जब बाहर निकले थे बाहर तो जामनगर गये थे। वहाँ तो वीरजीभाई के पिताश्री शास्त्र वाँचते थे। साधु, अर्जिकाओं को वँचावता था। १९८२ की बात है। व्याख्यान में कहा, देखो! तुम्हारे... कैसा? ज्ञानसागर। ज्ञानसागर पुस्तक है। उसमें ऐसा लिया है, चार कारण से शुभ नामकर्म बँधता है। शुभ नामकर्म चार कारण से (बँधता है)। इसमें ऐसा लिया है, मन सरलता, वचन सरलता, काय सरलता, अविसंवादीजोगेण। किसी को ठगना नहीं। ऐसा भाव तो पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया? यह सरलपना नहीं। थोड़ी खलबलाहट हो गयी। वीरजीभाई का पिताश्री ताराचन्दभाई, साधु— आर्यिकाओं को वाँचवाता। चलता सूत्र कहते। व्यक्ति नरम है। ये बात पहले कही तो विचलित हो गया। अरे! महाराज! लोगों को... पहले से ही अकेला आया। चार प्रकार मन सरल, वचन सरल, काय सरल, ये पुण्यबन्ध के कारण? तो धर्म क्या? बापू! धर्म दूसरी चीज़ है। देखो! तुम्हारे ज्ञानसागर में। जामनगर से छपा है। पुनातर की ओर से।

यह मन की सरलता सम्यग्दर्शन बिना, आत्मा ज्ञान बिना... शुद्धोपयोग में आत्मज्ञान होता है। शुद्धोपयोग में सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! वहाँ तो यह शुभाशुभपरिणामरहित निज आत्मा पवित्र आनन्दस्वरूप है, इसका भान हुआ, इसके बाद स्वरूप में आनन्द की

रमणता होती है, उसमें सरलता अर्थात् वक्रता का अभाव हुआ, उसको आर्जव धर्म कहते हैं। उत्तम आर्जवधर्म है न ? उत्तम शब्द सम्यग्दर्शनसहित लेना है। उत्तम आर्जव ये अकेला आर्जव, आर्जव-सरलता ऐसा नहीं। बाद में तो विचारे की बैठे। आखिर में सुनने आया था। ये तो दूसरा मार्ग है। अभी तक तो हम ऐसा कहते थे, ऐसा है, ऐसा है। मन में सरलता करना, वाणी में सरलता करना, काया में सरलता (करना)। बापू! ये तो शुभभाव है। वह परलक्षी शुभभाव बन्ध का कारण है। यह जो है वह तो मोक्ष के कारण की बात चलती है।

जो चिंतेइ ण वंकं कुणदि ण वंकं ण जंपए वंकं।
ण य गोवदि णियदोसं अज्जवधम्मो हवे तस्स॥३९६॥

अर्थ - जो कोई मुनि मन में वक्रता न चिंतवे... आहाहा! सरल बालक की तरह अपने दोष को जानता है और अपना दोष गुरु से कहने के लिये बालक जैसा है। आहाहा! सरलपना जिसका है। आत्मज्ञानसहित निज आनन्द की धारा बहती है। आहाहा! जिसको अन्दर में वक्रता नहीं होती, उसका नाम यहाँ आर्जव-सरलता धर्म कहते हैं। आहाहा! है ? **मन में वक्रता न चिंतवे, काया से वक्रता न करे, वचन से वक्रता न बोले तथा अपने दोष को गोपे नहीं-छिपावे नहीं...** आहाहा! जितना-जितना अपने में शुभाशुभभाव का दोष होता है तो यह दोष हैं। यह गुरु के पास खुल्ला प्रगट करता है। मुझे ऐसा भाव आया। ऐसे सरलतापूर्वक गुरु के निकट दोष दिखाये। है ? **उस मुनि को उत्तम आर्जवधर्म होता है।** नीचे है।

अपना दोष छिपाए नहीं परन्तु जैसा हो, वैसा बालक के समान गुरु के पास कहे, तब उत्तम आर्जवधर्म होता है। अपने दोष का बचाव नहीं करता कि इस कारण से मुझे करना पड़ा। नहीं। आहाहा! शुभभाव आदि, अशुभभाव आदि। दोनों। दोष के कारण हैं। गुरु के पास सरलता से प्रगट करता है। अपने में वक्रता एक क्षण भी नहीं रखता। इसका नाम सम्यग्दर्शनसहित उत्तम सरलता कहने में आती है। समझ में आया ? यह तीसरा बोल हुआ। अपने यहाँ कहाँ आया है ? गणधर देव कहते हैं, यहाँ तक आया है। है न ?

गणधरदेव ने ऐसा माना है... आहाहा! क्या माना है ? कि व्रत, तप, नियम, शील,

तप, ये सब (भाव) बन्धन के कारण हैं, ऐसा गणधरदेव ने कहा है। समझ में आया? **किस कारण से?** गणधर ने किस कारण से कहा? **क्योंकि... 'खलु समस्तं स्वयं बन्धहेतुः' निश्चय से सर्व कर्मजाति आप भी बन्धरूप हैं।** आहाहा! जैसे अशुभभाव कर्म जाति बन्धरूप है, ऐसे व्रत, नियम, शील, तप, ये भी कर्म की जात है, वह भी बन्धरूप है। आहाहा! बहुत कठिन मार्ग, बापू! समझ में आया?

भावार्थ ऐसा है कि - स्वयं मुक्तस्वरूप हो तो कदाचित् मुक्ति को करे... परन्तु शुभभाव तो बन्धस्वरूप है, यह बन्धस्वरूप मुक्ति को कैसे करे? आहाहा! शुभभाव व्रत, नियम, तप आदि बन्धरूप है। तो बन्धरूप हैं, वे मुक्ति कैसे करे? मुक्तस्वरूप हो तो मुक्ति को करे। आहाहा! भगवान आत्मा शुभ-अशुभभाव से रहित मुक्तस्वरूप है। समझ में आया? यह आत्मा अन्दर वस्तु है, यह अत्यन्त मुक्तस्वरूप है। राग से और बन्ध से मुक्त, अबन्ध भिन्न चीज़ है। यह मुक्तस्वरूप मुक्ति को करे। बन्धरूप है, वह मुक्ति को किस प्रकार करे? आहाहा! सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : कदाचित् तो मुक्ति को करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कदाचित् मुक्ति को करे। मुक्तिस्वरूप हो तो कदाचित् मुक्ति को करे। मुक्तस्वरूप हो तो मुक्ति को करे।

मुमुक्षु : कदाचित् करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कदाचित् कहा न, परन्तु कदाचित् अर्थात् मुक्तस्वरूप होय, वह कदाचित् मुक्ति को करे। मुक्तिस्वरूप होय, वह कदाचित् मुक्ति को करे। कदाचित् अर्थात् वह मुक्ति को करे। परन्तु बन्धस्वरूप है, वह कदाचित् मुक्ति को किस प्रकार करे? ऐसा कहना है। समझ में आया? कदाचित् का अर्थ बन्ध में तो मुक्ति है नहीं। परन्तु मुक्तस्वरूप जो भगवान है, वह कदाचित् अर्थात् जो अन्तर आश्रय ले तो मुक्ति करे। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर अबद्धस्पष्ट है। ये १४-१५ गाथा में आया। **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं'** आहाहा! आत्मा को अबद्धस्पृष्ट—राग और कर्म के सम्बन्ध से रहित अबद्ध देखे अर्थात् मुक्त देखे। आहाहा! उसने जैन शासन देखा। सूक्ष्म बात, भाई! अभी तो गड़बड़ ऐसी हो गयी, लोगों को मुश्किली पड़ गयी।

यहाँ तो कहते हैं, मुक्तस्वरूप हो तो कदाचित् मुक्ति करे अर्थात् मुक्तिस्वरूप होय तो मुक्ति करे। परन्तु बन्धस्वरूप हो तो कदाचित् कभी न करे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! **कर्म जाति स्वयं अपनी बन्धपर्यायरूप पुद्गलपिण्डरूप बँधी हुई है...** आहाहा ! यह शुभ-अशुभ वास्तव में तो पुद्गलपिण्ड हैं-पुद्गल हैं। आहाहा ! बहुत कठिन काम। **वे मुक्ति कैसे करेंगे ? इससे कर्म सर्वथा बन्धमार्ग है...** क्रियाकाण्ड का जितना भाव है, वह सब बन्धमार्ग है।

कलश-१०३

(स्वागता)

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्
बन्धसाधनमुशन्त्यविशेषात्।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं
ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः।।4-103।।

खण्डान्वय सहित अथ-'यत् सर्वविदः सर्वं अपि कर्म अविशेषात् बंधसाधनं उशन्ति' [यत्] जिस कारण [सर्वविदः] सर्वज्ञ वीतराग [सर्वं अपि कर्म] जितनी शुभरूप व्रत, संयम, तप, शील, उपवास इत्यादि क्रिया अथवा विषय-कषाय, असंयम इत्यादि क्रिया उसको [अविशेषात्] एक सी दृष्टिकर [बन्धसाधनं उशन्ति] बन्ध का कारण कहते हैं; भावार्थ इस प्रकार है-जैसे जीव को अशुभ क्रिया करते हुए बन्ध होता है, वैसे ही शुभ क्रिया करते हुए जीव को बन्ध होता है, बन्धन में तो विशेष कुछ नहीं; 'तेन तत् सर्वं अपि प्रतिषिद्धं' [तेन] इस कारण [तत्] कर्म [सर्वं अपि] शुभरूप अथवा अशुभरूप, (उनमें) [प्रतिषिद्धं] कोई मिथ्यादृष्टि जीव शुभ क्रिया को मोक्षमार्ग जानकर पक्ष करता है, सो निषेध किया, ऐसा भाव स्थापित किया कि मोक्षमार्ग कोई कर्म नहीं। 'एव ज्ञानं शिवहेतुः विहितं' [एव ज्ञानं] निश्चय से शुद्धस्वरूप अनुभव [शिवहेतुः] मोक्षमार्ग है, [विहितं] अनादि परम्परा ऐसा उपदेश है।।4-103।।

कलश - १०३ पर प्रवचन

१०३ (कलश)।

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्
बन्धसाधनमुशन्त्यविशेषात्।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं
ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः।।4-103।।

'यत् सर्वविदः सर्वं अपि कर्म अविशेषात् बंधसाधनं उशन्ति' जिस कारण सर्वज्ञ वीतरागदेव... त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र वीतराग ऐसा फरमाते हैं कि **जितनी शुभरूप व्रत, संयम, तप, शील, उपवास...** आहाहा! शुभरूप व्रत करो, पंच महाव्रत, इन्द्रियदमन, महीना-महीना, छह-छह महीना के अपवास आदि, शील-शरीर से ब्रह्मचर्य आजीवन पाले, उपवास करे, इत्यादि क्रिया तो शुभभाव है। भगवान इन्हें तो बन्ध के कारण कहते हैं। आहाहा!

विषय-कषाय, असंयम इत्यादि क्रिया... यह शुभ की क्रिया (कही)। अब अशुभ (क्रिया कहते हैं)। **विषय-कषाय, असंयम इत्यादि क्रिया, उसको एक सी दृष्टिकर बन्ध का कारण कहते हैं...** एक ही प्रकार बन्ध का कारण कहते हैं। कोई अन्तर जरा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? जो कोई व्रत, नियम, शील और विषय-कषाय (भाव है), दोनों एक समान बन्ध के कारण हैं। दोनों में जरा भी अन्तर नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। ऐसे **एक सी दृष्टिकर...** अविशेष है न? **'अविशेषात्'** (अर्थात्) भेद नहीं, विशेष नहीं। दोनों क्रिया बन्ध को कारण हैं। आहाहा! **'बन्धसाधनं उशन्ति'** गणधरदेव, तीर्थंकर सर्वा परमेश्वर शुभ-अशुभ क्रिया को एक ही प्रकार से बन्ध के कारण कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है - जैसे जीव को अशुभक्रिया करते हुए बन्ध होता है,... विषय-कषाय, ये खाने-कमाने के भाव, ये सब बन्ध के कारण हैं। **वैसे ही शुभ क्रिया करते हुए जीव को बन्ध होता है,...** आहाहा! **बन्धन में तो विशेष कुछ नहीं...** बन्धन में तो थोड़ा जरा भी फेर नहीं! आहाहा! शुभयोग व्रत का, नियम का, तप का, उपवास का,

ये सभी और विषय-कषाय के परिणाम, दोनों ही एक समान दृष्टि से बन्ध के कारण हैं। दोनों में जरा थोड़ा भी बन्ध के कारण में अन्तर नहीं। आहाहा! ऐसा काम है।

'तेन तत् सर्वं अपि प्रतिषिद्धं' इस कारण... क्या कारण से? कि शुभभाव और अशुभभाव एक दृष्टि से बन्ध के कारण हैं। दोनों की एक ही दृष्टि है। दोनों में थोड़ा भी फेर नहीं। **इस कारण...** आहाहा! आहाहा! **'तत्' कर्म शुभरूप अथवा अशुभरूप, (उनमें) कोई मिथ्यादृष्टि जीव शुभ क्रिया को मोक्षमार्ग जानकर पक्ष करता है,...** आहाहा! ऐसी बात है। देश सेवा, गुरु की वैयावृत्य आदि भाव शुभभाव हैं। बन्ध के कारण हैं। कितने ही कहते हैं, देश सेवा में तो बस, कल्याण होगा। क्या कहते हैं? शहीद होता है। धूल भी नहीं। सभी भाव (बन्ध के कारण हैं)।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर में तो कहाँ ठिकाना है। इसमें ठाणांग में तो पंच महाव्रत को निर्जरा का स्थान गिना है। ऐसी बात है, क्या हो? उसमें यह बात है ही नहीं। समझे! आहाहा! वे वीरजीभाई के पिताजी तो बत्तीस सूत्र के जानकार थे। जामनगर। बहुत जानें। बत्तीस सूत्र साधु आर्जिका सबको पढ़ायें। इनने जब कहा तो बौखलाहट मच गयी थी। (संवत्) १९८२ के वर्ष। ५१ साल पहले की बात है। बौखलाहट। अरे! ये क्या? एकान्त में आये। महाराज! ये लोग (नहीं मानें)। कहा, क्या करें? लोग माने, न माने, वस्तु तो ऐसी है। तुम्हारे छापे ज्ञानसागर में देखो। मैंने कहा। क्या है? चार प्रकार से शुभ नामकर्म बँधता है। मन में शुभभाव सरलता, कषाय की मन्दता। यह सब पुण्यबन्ध के कारण हैं। धर्म-बर्म नहीं। समझ में आया? नरम व्यक्ति। ऐसा बत्तीस सूत्र का जानकार। साधु, आर्जिकाओं को पढ़ावे। नरम व्यक्ति। बाद में कहा, हाँ। जामनगर में मुझे सुनने के बाद तीन कोस दूसरे गाँव गया। वहाँ आया, वहाँ बराबर सुना। कहा, मार्ग तो बापू! ऐसा है, भाई! अभी तो पूरे सत्य की बात मुँद गयी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, (शुभ और अशुभ) **कोई मिथ्यादृष्टि जीव शुभ क्रिया को मोक्षमार्ग जानकर पक्ष करता है, सो निषेध किया...** आहाहा! इसका तो निषेध किया। समझ में आया? पुस्तक के ऊपर हाथ नहीं रखे, हों! पुस्तक पर कोहनी नहीं रखें, असातना होती है।

समझ में आया ? आहाहा ! **कोई मिथ्यादृष्टि जीव शुभ क्रिया को मोक्षमार्ग जानकर पक्ष करता है, सो निषेध किया...** समझ में आया ? **ऐसा भाव स्थापित किया कि मोक्षमार्ग कोई कर्म नहीं।** कर्म अर्थात् पुण्य और पाप आदि कर्म हैं—भावकर्म हैं। समझ में आया ? तो मोक्षमार्ग कोई कर्म नहीं। आहाहा ! अब ये चिल्लाहट मचाते हैं न अभी। शुभभाव मोक्ष का मार्ग है, शुभयोग मोक्ष का मार्ग है। चैलेंज (चुनौती) करते हैं। अरे ! प्रभु ! क्या है ? सुन न भाई ! किसी जगह ऐसा निमित्त से कहा है, परन्तु यह तो बन्ध के कारण को निमित्त से मोक्ष के मार्ग में लिया है। निरूपण करना, कथन करना (भी) मार्ग नहीं। निरूपण दो प्रकार से चलता है—निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग। तो निश्चय का जब भान है, तब राग आता है, उसे आरोप से व्यवहार मोक्षमार्ग कहते हैं। है नहीं, उसको कहना, इसका नाम व्यवहार है। यह लेखन बड़ा सामने उसे कहते हैं, देखो ! यहाँ लिखा है, देखो ! समझ में आया ? आहाहा !

अरे ! जन्म-मरण से रहित भगवान आत्मा आनन्दकन्द है, प्रभु ! निज ज्ञानस्वभाव स्पर्शे बिना कभी मुक्ति का उपाय उत्पन्न नहीं होता। अपना ज्ञानस्वरूप ही चिद्ब्रह्म है। ज्ञानस्वभाव। उस ज्ञानस्वभाव में दृष्टि किये बिना मोक्ष का मार्ग उत्पन्न नहीं होता। आहाहा ! वस्तु पूरी पड़ी है न ! ये दया, दान, व्रतादि के विकल्प तो क्षणिक विभाव हैं, ये क्षणिक हैं। भगवान तो ज्ञानस्वरूपी आनन्दकन्द सच्चिदानन्द है। ऐसे स्वभाव में दृष्टि करना। आहाहा ! तब तो उसे प्रथम सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ? बात ही भाई ! बहुत कड़क। क्या हो ? आहाहा !

एक ओर आतमराम और एक ओर गाँव—पुण्य-पाप के भाव। ऐसा पुण्यभाव निगोद में भी होता है। यह नीम है न ? नीम। इसके पत्ते। इन पत्तों में असंख्य तो जीव हैं। एक पत्ते में, इतने में। एक-एक जीव को क्षण-क्षण में शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभ होता ही है। कर्मधारा (चलती ही है)। आहाहा ! असंख्यजीव का गंज पड़ा है। ऐसे आलू, प्याज, लहसुन के एक टुकड़े में तो असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में अनन्त जीव हैं। और प्रत्येक जीव को क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ, क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ चलता है। यह कोई नयी चीज़ नहीं। आहाहा ! ऐसे मुनि होकर पंच महाव्रत पाले तो यह तो शुभभाव है। वह कोई धर्म नहीं और धर्म का कारण भी नहीं। आहाहा !

यहाँ ये कहते हैं, **मोक्षमार्ग कोई कर्म नहीं।** तब है क्या? '**एव ज्ञानं शिवहेतुः विहितं**' '**एव**' **निश्चय से...** '**एव**' अर्थात् निश्चय। **शुद्धस्वरूप अनुभव...** आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव से रहित भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव, आनन्द की दशा, ज्ञान की दशा, श्रद्धा की दशा, शान्ति की दशा, यह अनुभव। आहाहा! शुद्धस्वरूप का अनुभव। भाषा कितनी है? '**एव ज्ञानं**' '**एव ज्ञानं**' और इसका अर्थ। '**एव**' अर्थात् निश्चय। '**ज्ञानं**' अर्थात्? ज्ञान अर्थात्? **शुद्धस्वरूप अनुभव...** जैसा स्वभाव शुद्ध पवित्र भगवान आत्मा, उसके अनुभव में पवित्रता आती है, यह शुद्धता का अनुभव (हुआ)। वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्षस्वरूप।'

मुमुक्षु : महाराज!....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...क्या करें? आहाहा! अरे! क्या हो? प्रभु! तेरी शुद्धता का पंथ, तेरी मुक्ति का पंथ कोई अलौकिक है, भाई!

ये यहाँ कहते हैं, देखो! कौन '**शिवहेतुः**' शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव, ये शिवहेतु '**विहितं**' **अनादि परम्परा ऐसा उपदेश है।** है। जिनेश्वरदासजी! '**अनादि परम्परा ऐसा उपदेश है।** शान्तिभाई! अभी तक सब गप्प मारी। अन्दर में भाषण बड़ा करते हैं। मुँह के सामने बैठाये। शान्तिभाई जेतपुर का है, ये काठियावाडी भाषण करता है। मारता हो गप्प गप्प। शान्तिभाई! खबर नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ, गणधर और सन्त, सर्वज्ञ शुद्धस्वरूप पवित्रदल आनन्दकन्द हैं, उसका अनुभव को अनादि परम्परा में उसको मोक्षमार्ग का उपदेश कहा है। ये अभी नया निकाला है, ऐसा नहीं — ऐसा कहते हैं। तुम तो बड़े सेठ हो। वहाँ बुलन्दशहर... क्या कहते हैं? सागर.. सागर। ये बुलन्द... क्यों कहा है? बुंदेलखण्ड, के तो दोनों बादशाह कहलाते हैं। ये छोटा और ये बड़ा। धूल के (बादशाह)। ऐसा मार्ग। आहाहा!

प्रभु! तू चीज़ है या नहीं? और तेरी चीज है तो क्या है? तेरी चीज में तो ज्ञान और आनन्द भरा है। ये ज्ञान और आनन्द का अनुभव करना। आहाहा! ये ज्ञान और आनन्द का अनुसरकर होना। निमित्त का अनुसरकर होना ये तो पुण्य-पाप भाव है। आहाहा! ऐसा

मार्ग। जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ। ऊपर आया था न? गणधरदेव ने ऐसा कहा है। आया था न? यहाँ कहते हैं, **अनादि परम्परा ऐसा उपदेश है।** मांगीलालजी अनादि का ये मार्ग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सोनगढ़वालों ने नया निकाला है, ऐसा कहते हैं। अरे! सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! कहीं है नहीं, नया निकाला, अपना नया पंथ चलाने को। अरे! प्रभु! ऐसा नहीं, नाथ! मार्ग प्रभु! ऐसा है।

तेरी चीज़ कोई है या नहीं? पुण्य-पाप ये चीज है? तू कोई चीज अन्दर है या नहीं? पुण्य-पाप तो क्षणिक विकृत अवस्था एक समय की है और तेरी चीज़ तो त्रिकाली आनन्द और ज्ञानस्वभाव से पूरी भरी है। आहाहा! इस ज्ञानस्वभाव और आनन्दस्वभाव का अनुभव (हुआ) वह शिव अर्थात् मोक्ष का कारण (है, ऐसा) अनादि परम्परा में यह उपदेश चला आता है। गणधर, तीर्थंकर, केवली और सन्त अनादि से यह मार्ग कहते आये हैं। भईया!

मुमुक्षु : अनुभव में चिन्तवन क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : चिन्तवन क्या करना? अन्दर अनुभव करना। पहले विकल्प से निर्णय करना। विकल्प से निर्णय करना कि ये अन्तर का अनुभव होता है ये मोक्ष का मार्ग है। ऐसे विकल्प से निर्णय करना, फिर विकल्प छोड़कर अनुभव करना। पहले विकल्प से निश्चय करना कि शुभ-अशुभभाव बन्ध के कारण हैं। मेरी चीज़ का अनुभव मोक्ष का कारण है, ऐसा विकल्प से निर्णय करना। स्वलक्ष्य करके। आहाहा! अभी स्वलक्ष्य करके विकल्प में निर्णय का ठिकाना नहीं, वह अन्तर में कैसे जाये? आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई!

देखो न! शब्द कैसा लिखा है! '**विहितं**' '**विहितं**'। अनादि परम्परा ऐसा उपदेश कहा है। '**विहितं**' अर्थात् कहा है। अनादि-अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अनन्त सन्त, मुनि, अनन्त समकिती, अनन्त पंचम गुणस्थानवाला श्रावकों ने अनादि परम्परा से यह उपदेश किया है। समझ में आया? यह विधि है। '**विहितं**' यह विधान तो कहा है, विधि तो यह है। आहाहा! आचार्यों ने तो दुनिया पर करुणा करके...।

भाई! तू आत्मा है न, प्रभु! तेरे में तो पुण्य-पाप के विकल्प का तो अभाव है न,

नाथ! और तेरे में सद्भाव है तो ज्ञान और आनन्द का सद्भाव है। विभाव का अभाव है।

यह अपने भाव शक्ति में आ गया। भावशक्ति। ४७ शक्तिमें आ गया था कि भाव शक्ति के कारण निर्मल पर्याय विद्यमान होती है। मलिनता होती है, ऐसा कोई गुण नहीं। आहाहा! समझ में आया? भावशक्ति, अभावशक्ति आ गयी न, भाव, अभाव, (भावअभाव), अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव ऐसे छह बोल चल गये। आहाहा! आहाहा! प्रभु! तेरे में एक भाव नाम की शक्ति-गुण ऐसा है कि जिस गुण के कारण गुणी का अनुभव करने में इस गुण के कारण निर्मल पर्याय की विद्यमानता होती है। यह व्यवहार से निर्मल पर्याय विद्यमान होती है कि पूर्व की पर्याय से निर्मल पर्याय की अस्ति होती है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा कथन, ऐसी शैली दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं। सब गड़बड़ कर दी, मारे! आहाहा! समझ में आया?

'**विहितं**' आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त केवलियों, अनन्त सन्तों, मुनियों ने यह उपदेश किया है, कहते हैं। तुझे सुनने नहीं मिला, इससे कोई वस्तु बदल जाती है? आहाहा! कहो, पोपटभाई! आहाहा! '**शिव**' '**शिव**' समझे न? '**शिव**' अर्थात् मोक्ष। '**शिव**' अपने यहाँ आता है, नमोत्थुणं आता है। '**शिवमलयमरुयम...**' नमोत्थुणं... नमोत्थुणं। अपने में भी आता है, परन्तु दिगम्बर में बहुत प्रचलित नहीं। सामायिक पाठों में आता है। इसमें '**नमोत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं...**' ऐसा करते-करते ठेठ '**शिवमलयमरुयमतमक्ख...**' श्वेताम्बर में बहुत चलता है। अपने सामायिक का पाठ है परन्तु वह प्रचलित नहीं। इसमें '**नमोत्थुणं**' में ऐसा आता है, '**नमोत्थुणं**' नमोस्तु '**अरिहंताणं, भगवंताणं**', बाद में अन्तिम शब्द ऐसा आया है। बड़ा पाठ है।

'**नमोत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरियाणं,...**' इसमें बहुत शब्द आते हैं। आखिर '**शिव**' आता है '**शिव**' अर्थात् मोक्ष का स्वरूप। '**शिवमलयम**' हे नाथ! आप तो शिवस्वरूप हो। अचल हो, तुम तुम्हारे स्वरूप से न चलो, ऐसे हो। अनुपम—आपको उपमा क्या दें। ऐसे भगवान कहते हैं। ऐसा ये आत्मा है। समझ में आया? ये '**नमोत्थुणं**' आता है। स्थानकवासी, श्वेताम्बर में बहुत चलता है। अपने में है परन्तु सामायिक चलती

नहीं। सामायिक में '**नमोत्थुणं**' आता है। दिगम्बर सामायिक पाठ यहाँ है। उसमें आया है। '**शिवं**' आप तो शिवस्वरूप हो न, प्रभु! आहाहा! ये तो परमात्मा के लिये कहते हैं। परन्तु शिवस्वरूप ये आत्मा है।

शिव अर्थात् शंकर। शंकर अर्थात् सुखस्वरूप। इस सुखस्वरूप भगवान का अनुभव, यह आनन्द का अनुभव करना, यह मोक्ष का मार्ग अनन्त तीर्थंकरों और केवलियों ने कहा है। आहाहा! अनन्त गणधरों ने शास्त्र में ऐसी रचना की है। आहाहा! अनन्त केवलियों ने कहा, गणधरों ने कहा और गणधरों ने शास्त्रों में रचना ऐसी की कि निज आनन्दस्वरूप के अनुभव से मोक्ष होता है, ऐसी शास्त्र में रचना की है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा उपदेश है। गजब बात है! देखो! यह आर्जव धर्म के दिन में यह आया। आहाहा! १०३ (कलश) हुआ।

कलश-१०४

(शिखरिणी)

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः संत्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयं विन्दन्त्येते परममृतं तत्र निरताः।।5-104।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-यहाँ कोई प्रश्न करता है कि शुभक्रिया तथा अशुभक्रिया सर्व निषिद्ध की, मुनीश्वर किसे अवलम्बते हैं? उसका ऐसा समाधान किया जाता है- 'सर्वस्मिनृ सुकृत-दुरिते कर्मणि निषिद्धे' [सर्वस्मिन्] आमूल चूल [सुकृत] व्रत, संयम, तपरूप क्रिया अथवा शुभोपयोगरूप परिणाम [दुरिते] विषय-कषायरूप क्रिय अथवा अशुभोपयोगरूप संक्लेश परिणाम, ऐसी [कर्मणि] करतूतिरूप [निषिद्धे] मोक्षमार्ग नहीं ऐसा मानते हुए, 'किल नैष्कर्म्ये प्रवृत्ते' [किल] निश्चय से [नैष्कर्म्ये] सूक्ष्म स्थूलरूप अन्तर्जल्पबहिर्जल्परूप समस्त विकल्पों से रहित निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यमात्र-प्रकाशरूप

वस्तु मोक्षमार्ग ऐसा [प्रवृत्ते] एकरूप ऐसा ही है ऐसा निश्चय से ठहराते हुए, 'खलु मुनयः अशरणाः न सन्ति' [खलु] निश्चय से [मनुयः] संसार शरीर भोग से विरक्त होकर धरा है यतिपना जिन्होंने, वे [अशरणाः न सन्ति] आलम्बन के बिना शून्य मन ऐसे तो नहीं हैं। तो कैसा है? 'तदा हि एषां ज्ञानं स्वयं शरणं' [तदा] जिस काल में ऐसी प्रतीति आती है कि अशुभक्रिया मोक्षमार्ग नहीं, शुभक्रिया भी मोक्षमार्ग नहीं, उस काल में [हि] निश्चय से [एषां] मुनीश्वरों को [ज्ञानं स्वयं शरणं] शुद्ध स्वरूप का अनुभव सहज ही आलम्बन है। कैसा है ज्ञान? 'ज्ञाने प्रतिचरितं' जो बाह्यरूप परिणमा था वही अपने शुद्धस्वरूप परिणमा है। शुद्ध स्वरूप का अनुभव होने पर कुछ विशेष भी है, कहते हैं–'एते तत्र निरताः परमं अमृतं विन्दन्ति' [एते] विद्यमान जो सम्यग्दृष्टि मुनीश्वर [तत्र] शुद्ध स्वरूप के अनुभव में [निरताः] मग्न हैं वे [परमं अमृतं] सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख को [विन्दन्ति] आस्वादते हैं। भावार्थ इस प्रकार है–शुभ–अशुभ क्रिया में मग्न होता हुआ जीव विकल्पी है, इससे दुःखी है। क्रियासंस्कार छूटकर शुद्धस्वरूप का अनुभव होते ही जीव निर्विकल्प है, इससे सुखी है।।5–104।।

कलश - १०४ पर प्रवचन

१०४। प्रभु! आप तो शुभ और अशुभ सभी क्रियाओं का निषेध करते हो, तो फिर करना क्या? जो कुछ करनेयोग्य है, हमें जो भासता है, उसे तो तुम करते हो, कि यह बन्ध का कारण है। अब हमें करना क्या? मुनियों को करना क्या? करनेयोग्य क्रियाओं का तो आप निषेध करते हो। सेठ! यह पूछते हैं। आहाहा!

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः संत्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयं विन्दन्त्येते परममृतं तत्र निरताः।।5–104।।

'**निषिद्धे सर्वस्मिन्**' गुरु कहते हैं। '**सुकृतदुरिते कर्मणि किल**' शुभ–अशुभभाव का सम्पूर्ण निषेध किया। '**प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः**' निष्कर्म मुनियों

को अन्दर राग रहित क्रिया, आनन्द की क्रिया में रमते हैं। आहाहा! वे अशरण नहीं। मुनियों को अन्दर आनन्द का शरण है, ज्ञान का शरण है। पुण्य-पाप को छोड़कर आनन्द में रमते हैं। उनको आत्मा का आलम्बन है, आत्मा का शरण है। आहाहा! '**तदा ज्ञाने ज्ञानं**' आहाहा! स्वरूप जो आत्मा ज्ञानस्वरूप ज्ञान की प्रधानता से कथन है। परन्तु ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप, प्रभुस्वरूप, ईश्वरस्वरूप... '**तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं स्वयं विन्दन्त्येन**' स्वयं आनन्द को अनुभवता है। आहाहा! मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं। पुण्य-पाप की क्रिया के बोझा में से हट जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह!

पूरा महा भगवान अनन्त सागर विराजता है। उसका इन्हें शरण है। उनको वहाँ भगवान आनन्द के नाथ का शरण है। आहाहा! '**ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरित**' वस्तुस्वभाव में स्वभाव एकाकार होता है। आहाहा! पुण्य-पाप, दया, दान तो विभाव हैं। उनकी शरण नहीं। हमने निषेध किया तो उनका आलम्बन किसका? भगवान चिदानन्दस्वरूप ध्रुव का शरण है। आहाहा! उसमें रमते हैं। उसका अनुभव करते हैं। '**परममृतं तत्र निरताः**' मुनि तो अमृत में लीन हैं। निज अमृत आनन्द सागर में लीन हैं। आहाहा! समझ में आया? जैसा पुण्य परिणाम में लीन था अज्ञान में, ऐसे ज्ञान में निजस्वभाव में '**निरताः**' लीन (होकर) अमृत पीते हैं। आहाहा!

गगन मण्डल में गौआ विहाणी, वसुधा दूध जमाया, सौ रे सुणो रे भाई, वलुणो वलोवे तो तत्त्व अमृत कोई पाई, अवधु सो जोगी रे गुरु मेरा।

'गगन मण्डल में गौआ विहाणी' गगनमण्डल में भगवान की आकाश में वाणी निकली। दिव्यध्वनि। 'वसुधा दूध जमायो' ये जगत के कान में गई। आहाहा! आहाहा!

गगनमण्डल में अधबीच कुआ, वहाँ है अमृत का वासा

सुगुरा होवे सो भर भर पीवे प्यारे, निगुरा जावे प्यासा, अवधु सो जोगी रे गुरु मेरा।

इस पद का करे रे निवेरा, अवधु सो जोगी रे गुरु मेरा।

गगन मण्डल में अधबीच कुआ....

अमृत का कुँआ अन्दर पड़ा है। 'वहाँ है अमृत का वासा' अमृत कहा न? वहाँ

भगवान में अमृत का वास है। आहाहा! 'सुगुरा होवे सो भर भर पीवे' जिसको सद्गुरु मिले, ये कहते हैं कि तेरे आनन्द का अनुभव कर। शुभाशुभभाव छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह आनन्दघनजी कहते हैं। श्वेताम्बर में हुए हैं न। समझ में आया? आहाहा! 'गगन मण्डल में गौआ विहाणी, वसुधा दूध जमायो, माखन था सो विरला रे पाया... सन्तो छाछे जगत भरमाया' माखन था सो विरला रे पाया, यह पुण्य-पाप से रहित भगवान आनन्द का नाथ आनन्द का अनुभव विरलों ने पाया। छाछ... छाछ समझे? मट्ठा, मट्ठा। 'छाशे जगत भरमाया' दया, दान और व्रत की क्रिया की भ्रमणा में अज्ञानी भ्रम गया। छाछ, मट्ठा मिला। समझ में आया? सेठ! ऐसी बात है। आहाहा! अरेरे! मिले नहीं इसको। यहाँ यह कहते हैं। देखो! '**परममृतं तत्र निरताः**' आहाहा! ये तो अभी शब्दार्थ किया है, हों!

खण्डान्वय सहित अर्थ - यहाँ कोई प्रश्न करता है कि शुभक्रिया और अशुभक्रिया सर्व निषिद्ध की, मुनीश्वर किसे अवलम्बते हैं? अवलम्बन किसका? जो करनेयोग्य था उसका तो तुमने निषेध कर दिया। आहाहा! दुकान, धन्धा, स्त्री, कुटुम्ब छोड़कर व्रत किये, तपस्या की, शील का पालन किया और उसका तो आप निषेध करते हो कि ये तो शुभक्रिया है, बन्ध का कारण है। तो उसको अब अवलम्बन किसका रहा? मुश्किल बाहर में प्रवृत्ति करने में शुभभाव आता था, उसका तो आप निषेध करते हो। तो प्रभु! उसको अवलम्बन किसका रहा? सुन, सुन!

उसका ऐसा समाधान किया जाता है - 'सर्वस्मिन् सुकृत-दुरिते कर्मणि निषिद्धे' आमूलचूल आहाहा! क्या कहते हैं? आमूल। मूल में तो व्रतादि की क्रिया बन्ध की कारण है, उखाड़ दिया है, निषेध कर दी है। समझ में आया? गधा होता है न? वह घास खाये तो मूल से उखाड़ के खाता है। फिर उगे नहीं इस प्रकार खाता है। और गाय जो खाती है ये गौचर, गौचर... ऊपर से खाती है, मूल को बाकी रखे। जैसे गधा मूल से उखाड़कर खाता है, ऐसे ज्ञानी मूल से उखाड़ देता है। व्रत और नियम की क्रिया को मूल में से छेदकर उखाड़ता है। है शब्द? आमूल। आमूल अर्थात् मूल में से। समस्त प्रकार के व्रत और नियम और शील और उपवास **आमूलचूल...** मूल में से उखाड़कर फेंका, क्योंकि वह बन्ध का कारण है। जिनेश्वरदासजी! आहाहा! इसकी श्रद्धा तो कर तू, श्रद्धा तो कर, प्रभु! ये

स्वसन्मुख होने से अमृत की धारा बहती है और परसन्मुखता में दुःख की धारा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान! अनन्त केवलियों ने जो शुभभाव का निषेध किया तो इसको शरण कौन? ये शरण चिदानन्द भगवान शरण है। इसमें अमृत पीता है। आहाहा! यह अमृत अनुभव है, वही धर्म है। अमृत के-आनन्द का अनुभव शुद्धोपयोग में होता है, वह धर्म है। आहाहा! लोगों को ऐसा लगता है, साधारण बेचारे को मूल में भगवान की अनादि परम्परा में तो ये उपदेश है, ये नया उपदेश कहाँ से निकाला? आहाहा!

प्रभु! एक तरफ पूरा भगवान विराजता है। पूर्णानन्द की लक्ष्मी। ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता की शक्ति का बड़ा पिण्ड है न! आहाहा! तो ये व्यवहार विकल्प का तो निषेध किया तो धर्मी जीव को स्वरूप की शरण है, स्वरूप का अवलम्बन है, स्वरूप ध्येय है। आहाहा! समझ में आया? राग का ध्येय था तो मिथ्यादृष्टि था। सम्यग्दृष्टि का ध्येय आनन्दकन्द प्रभु है, वही ध्येय हो गया। आहाहा! ऐसी बात है। है?

आमूलाग्र... आमूलाग्र अमूलचूल भाषा देखो! पाठ में '**सर्वस्मिन्**' है न? तो मूल में से उखाड़ के छोड़ दिया। शुभक्रिया चाहे तो छह माह का उपवास हो, समझ में आया? और अखण्ड बालब्रह्मचारी हो, ऐसा ब्रह्मचर्य हो पर मूल में से उखाड़कर दिया है। यह क्रिया राग है, राग आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह '**सर्वस्मिन्**' का अर्थ हुआ। सबसे छोड़ दिया, सम्पूर्णरूप से छोड़ दिया। इसका अर्थ? आमूल-मूल में से उखाड़ दिया। जहाँ से शुभ विकल्प उठते हैं, वहाँ मूल में से उखाड़ दिया। छोड़ दिया (कि) यह धर्म नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी बात। फिर बाद में कहे ऐसा माने तो, सही और व्यवहार करें तो सही। परन्तु व्यवहार आता है, वह हेयबुद्धि से आता है। सुन तो सही। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आनन्द का नाथ प्रभु विराजता है, अन्दर अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का बड़ा गट्ठा पड़ा है। उसके अन्तर में जा न! तुझे आलम्बन मिलेगा, प्रभु का तुझे आधार मिलेगा। आहाहा! तेरी वीतरागी अनुभवदशा में भगवान का आधार मिलेगा। आहाहा! समझ में आया? अब यह बात इसको एकान्त लगती है। एकान्त लगे, एकान्त है। एकान्त

है। हम ये सब व्रत और तप करते हैं। धूल में ही नहीं तेरे व्रत। सुन तो! नौवीं ग्रैवेयक गया था ऐसे जो व्रत हैं, ऐसे व्रत तो अभी हैं ही नहीं। साधारण कोई दया, दान के शुभ परिणाम हों, वे भी साधारण।

यहाँ तो कहते हैं, अमूल-मूल में से छोड़ दिया। जरा भी यह व्यवहार व्रत, तप साधन है। ये साधन-फाधन है नहीं, विकल्प है। आहाहा! ऐ... सेठ! सेठ भी सब साधुओं को मक्खन लगाते थे। बना हो इनके लिये, फिर भी (कहे) आहार शुद्ध, पानी शुद्ध, मन शुद्ध, वचन शुद्ध, काय शुद्ध। तीनों झूठ। नहीं? ये दोनों सेठिया बैठे हैं। यह तो भूतकाल में... बनाये इनके लिये। पानी, मौसम्बी और आम का रस। (बोले ऐसे) आहार शुद्ध। कहाँ से लाया आहार शुद्ध? पानी इसके लिये बनाया हो (और बोले), पानी शुद्ध। आहाहा!

यहाँ तो अमृतरस का कुँआ भगवान आत्मा। हमने नहीं कहा? 'गगन मण्डल में अधबीच कुँआ' ऐसे आलम्बन बिना अन्दर पड़ा है। जिसको शरीर और आकाश का भी आधार नहीं, ऐसा अमृत का कुँआ अन्दर पड़ा है। 'वहाँ है अमी का वासा अमृत पड़ा है।' ये यहाँ कहते हैं। 'परन्तु मक्खन था सो विरला ने पाया, छाछ में जगत भरमाया।' दया, दान और व्रत, संयम की क्रिया में जगत-मिथ्यादृष्टि भ्रमित हो गया। समझ में आया? सुजानमलजी! सादड़ी (पगड़ी रस्म, मृत्यु भोज) में नहीं वहाँ। सादड़ी, ये सादड़ी है। ये मुम्बई में सादड़ी नहीं करते? मरने के बाद सादड़ी करते हैं न। आहाहा! ऐसा मार्ग, प्रभु! आहाहा!

यह उपदेश तो अनादि का है, ऐसा कहते हैं। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अनन्त मुनि ये उपदेश करते थे, करते हैं, और करेंगे। अरेरे! समझ में आया? **व्रत-संयम-तपरूप क्रिया...** ये '**सुकृत**' अथवा... ये बाहर की जड़ की क्रिया। **अथवा शुभोपयोग रूप परिणाम...** दो प्रकार लेना। व्रत, संयम, तप की क्रिया शरीर की और शुभोपयोग जीव के परिणाम। '**दुरिते**' पहले '**सुकृत**' था, ये '**दुरित**'। **विषय-कषायरूप क्रिया...** जड़ की-शरीर की **अथवा अशुभोपयोगरूप संक्लेश परिणाम—ऐसा करतूतीरूप मोक्षमार्ग नहीं... 'निषिद्धे' मोक्षमार्ग नहीं ऐसा मानता हुआ...** आहाहा! धर्मी जीव मुनि इनको धर्म नहीं मानते।

'किल नैष्कर्म्ये प्रवृत्ते' 'किल' अर्थात् **निश्चय से सूक्ष्म स्थूलरूप अन्तर्जल्प-बहिर्जल्परूप समस्त विकल्पों से रहित...** कहना तो निष्कर्म है, तो निष्कर्म की व्याख्या क्या की। सूक्ष्म-स्थूलरूप अन्तर्जल्प विकल्प-राग। अन्तर्जल्प गुण-गुणी के भेदरूप विकल्प भी अन्तर्जल्प। बाह्य स्थूल जल्प। बहिर्जल्प। **समस्त विकल्पों से रहित...** आहाहा! **निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यमात्र-प्रकाशरूप वस्तु... निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यमात्र-प्रकाशरूप वस्तु...** रागरहित निर्विकल्प वस्तु। **शुद्ध चैतन्यमात्र-प्रकाशरूप वस्तु मोक्षमार्ग है, ऐसा एकरूप ऐसा ही है, ऐसा निश्चय से ठहराते हुए...** आहाहा! शुभाशुभभाव से रहित निष्कर्म निर्विकल्प चैतन्यस्वरूप भगवान, उसकी एकाग्रता। निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यप्रकाश, यह मोक्षमार्ग है। **एकरूप ऐसा ही है, ऐसा निश्चय से ठहराते हुए...**

'खलु मुनयः अशरणाः न सन्ति' निश्चय से, संसार शरीर भोग से विरक्त होकर... मुनि संसार उदयभाव, शरीर, भोग से विरक्त होकर **धरा है यतिपना जिन्होंने...** आहाहा! **'अशरणाः न सन्ति'** वे अशरण नहीं। आहाहा! **आलम्बन के बिना शून्य मन ऐसे तो नहीं हैं।** शून्य है, ऐसा नहीं, विकल्प छोड़कर शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ। यह कहते हैं, न भाई? रजनीश। शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ, परन्तु कहाँ? आलम्बन बिना? क्या चीज़ है कि जिसके लक्ष्य से शून्य हो जाये? यहाँ तो यह बात है। समझ में आया? **'खलु मुनयः अशरणाः न सन्ति' निश्चय से, संसार शरीर भोग से विरक्त होकर धराहै यतिपना जिन्होंने, वे आलम्बन के बिना शून्य मन ऐसे तो नहीं हैं। तो कैसा है?**

'तदा हि एषां ज्ञानं स्वयं शरणं' आहाहा! ज्ञान अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, वह धर्मी को शरण है। आते हैं न वे चार? चत्तारि मंगलं। चार मंगल, चार उत्तम, चार शरण। उस शरण में तो यह आत्मा शरण है। अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, ये तो व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? **'तदा हि एषां ज्ञानं स्वयं शरणं'** भाषा देखो! **जिस काल में ऐसी प्रतीति आती है कि अशुभक्रिया मोक्षमार्ग नहीं, शुभक्रिया भी मोक्षमार्ग नहीं, उस काल में निश्चय से मुनीश्वरों को... 'ज्ञानं स्वयं शरणं' अर्थात् शुद्ध स्वरूप का अनुभव सहज ही आलम्बन है।** स्वयं का अर्थ सहज किया। अर्थात् स्वयं भगवान शरण है। यह राग का कुछ भी शरण है और इससे अन्दर गया है, व्यवहाररत्नत्रय कुछ किया तो अन्दर

गया, ऐसा बिल्कुल नहीं, ऐसा कहते हैं। '**स्वयं शरणं**' सहज शरणं। अपना निजस्वरूप आनन्द है, वही स्वयं शरण है। आहाहा अब ऐसा मार्ग। समझ में आया? एक तो व्यापार-धन्धे से फुरसत नहीं। इसमें से फुरसत हो तो दया, दान, व्रत, क्रिया में घुस गया। वह का वह व्यापार है, पाप का। पहले पाप का था, ये पुण्य का हुआ, वास्तव में दोनों धन्धे एक ही हैं। आहाहा! ऐई... शान्तिभाई! आहाहा!

ऐसी **शुभक्रिया भी मोक्षमार्ग नहीं, उस काल में निश्चय से मुनीश्वरों को शुद्धस्वरूप का अनुभव सहज ही आलम्बन है।** बस। आहाहा! अन्तर में दृष्टि लगाना, यह भगवान का उनको आलम्बन है। निर्मल वीतरागी परिणति में आलम्बन द्रव्य का है। आहाहा! दुनिया चाहे जो कहे, चाहे वह माने, मार्ग तो यह है। समझ में आया? बराबर पर्यूषणों के दिनों में तो ये गाथायें आयीं। यह तो सादी भाषा है। दोपहर में जरा सूक्ष्म है। वह भी गुणी और गुण वस्तु क्या है, ये बताते हैं। राग-फाग भिन्न हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **मुनीश्वरों को शुद्धस्वरूप का अनुभव सहज ही आलम्बन है।** ठीक! अब आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका यहाँ आलम्बन है, ऐसा कहते हैं। मुनिश्वरों की निर्मल वीतरागीदशा में त्रिकाली आनन्द का नाथ भगवान शरण है, आलम्बन है। आहाहा! यह व्यवहार के आलम्बन से निश्चय का आलम्बन नहीं होता। आहाहा! व्यवहार का लक्ष्य छोड़कर वीतरागी पर्याय में आलम्बन आत्मा का है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! अरेरे! ऐसी बात। वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव की अनादि परम्परा में ये उपदेश (किया है)। यह उपदेश छोड़कर दूसरा उपदेश करना... आहाहा! वह अनन्त सर्वज्ञ का अपराधी है। पुण्य की क्रिया कर्म से होती है, ऐसा लिखा है। पंचसंग्रह में आता है, जिनेश्वरदासजी! पंचसंग्रह में आया है, परम्परा मानता है, वह महा मिथ्यादृष्टि है। पंचसंग्रह में आया है, क्रिया करते-करते परम्परा से होगा। मूढ़ है। इसमें— (अध्यात्म) पंचसंग्रह में आया है। आहाहा!

यह परम्परा अनादि तीर्थंकरों, केवलियों, मुनियों ने पुण्य की क्रिया का निषेध किया है। तो शरण क्या रहा? क्या करना? करना यह कि अन्दर स्वरूप में रमना, जमना, यह करना है। आहाहा! विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ८, मंगलवार, दिनांक २०-०९-१९७७
कलश-१०४ से १०५, प्रवचन-१००

दशलक्षणी पर्व का चौथा दिन है। शौचधर्म-निर्लोभता। यह शौचधर्म का अर्थ है।

समसंतोसजलेण य जो घोवदि तिह्वलोहमलपुंजुं।
भोयणगिद्धिविहीणो तस्स स उच्चं हवे विमलं॥३९७॥

दस प्रकार के धर्म मुनि की मुख्यता से बात करते हैं न!

अर्थ - जो (धर्मात्मा) मुनि समभाव अर्थात् राग-द्वेष रहित परिणाम और सन्तोष... सन्तोष-शान्ति। इस **जल से तृष्णा तथा लोभरूप मलसमूह को धोते हैं...** आहाहा! तृष्णा (अर्थात्) भविष्य की चाहना और लोभ (अर्थात्) वर्तमान पदार्थ की प्रीति। क्या कहा? तृष्णा और लोभ की व्याख्या भिन्न है। तृष्णा इसको कहते हैं कि भविष्य की चाहना और लोभ इसको कहते हैं कि वर्तमान में भाव। पदार्थ में प्रीति। ये भविष्य की चाहना और वर्तमान में प्रेम का जिसको त्याग है, अन्दर में स्वभाव के सन्तोष में। आहाहा! **भोजन की गृद्धि....** भोजन की गृद्धि। दूसरी चीज़ तो है ही नहीं उनको। तो भोजन की गृद्धि का भी त्याग। आहाहा! **उन मुनि का चित्त निर्मल है...** व्याख्या जरा कड़ी है।

भावार्थ - (समभाव तृष्णा) **तृण कंचन को समान जानना...** तृण हो या सोना हो, दोनों पुद्गल की जड़ पर्याय हैं। दोनों में समान भाव रखना। आहाहा! **तथा सन्तोष-सन्तुष्टपना-तृप्तभाव अर्थात् अपने ही स्वरूप में सुख...** अपने आनन्दस्वरूप में सुख है, उसमें रहना, यह शौचधर्म है। आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अपने आनन्दस्वभाव में सन्तोष से रहना, सुख के स्वाद में रहना। आहाहा! इसका नाम शौच-निर्लोभ धर्म है। ऐसी बात है। आहाहा! **भविष्य में मिलने की चाहनारूप तृष्णा तथा प्राप्त द्रव्यादिक में अति लिप्तपनेरूप लोभ, इसके (ये दोनों के) त्याग में अति खेदरूप मल को धोने से मन पवित्र होता है। मुनि को अन्य त्याग तो होता ही है, परन्तु आहार के ग्रहण में...**

भोजन शब्द आया न! उसके **ग्रहण में भी तीव्र चाहना रखता नहीं, लाभ-अलाभ रस-नीरस में समभाव रखें तो उत्तम शौचधर्म होता है।**

लोभ के चार प्रकार **जीवनलोभ, आरोग्य रखने का लोभ, इन्द्रियाँ निरोग रखने का लोभ तथा उपभोग का लोभ...** पदार्थ को उपभोग करने का लोभ। आहाहा! इन चार प्रकार के लोभ का त्याग। **अपने सम्बन्धी तथा अपने स्वजन-मित्रादि सम्बन्धी ऐसे दोनों के लिये इच्छा, तब उसकी (लोभ की) आठ भेदरूप प्रवृत्ति होती है। जहाँ इस प्रमाण समस्त ही लोभ नहीं होता।** आहाहा! अपने अतीन्द्रिय आनन्द में, शान्ति में रहना। आहाहा! यह अति लोभ रहित सन्तोषपने का धर्म है। आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग है। यह शौचधर्म। अब अपना चलता अधिकार।

मुमुक्षु : शरीर स्वस्थ रहे...

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की रक्षा, जीने का लोभ, स्वकुटुम्ब का, अपना शरीर और उपभोग का लोभ। बारम्बार स्त्री आदि भोगना और बारम्बार भोजनादि लेना। आत्मा तो आनन्दस्वरूप है, भगवान! उस आनन्दस्वरूप में निवास करना और परपदार्थ का लोभ हटाना, इसका नाम शौचधर्म है। आहाहा! यह शब्द है, बापू! भाव कोई अलौकिक है। यह अनादि से समझा ही नहीं। मेरी चीज़ आनन्दस्वरूप सुा का धाम है। अब १०५ में आयेगा।

अब यहाँ कहते हैं, कैसा है ज्ञान? **'तदा हि एषां ज्ञानं स्वयं शरणं'** शुभ और अशुभभाव शरणरूप नहीं, वे दु:खरूप हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, नियम, शील, तप, ये सब विकल्प हैं, दु:खरूप हैं। आहाहा! समझ में आया? इनसे रहितपना। **जिस काल में ऐसी प्रतीति आती है कि अशुभक्रिया मोक्षमार्ग नहीं, शुभक्रिया भी मोक्षमार्ग नहीं...** आहाहा! अब शुभ उपयोग को मोक्षमार्ग कहते हैं। तो यहाँ कहते हैं कि शुभक्रिया भी मोक्षमार्ग नहीं। ये तो पुण्य है, राग है। आहाहा!

उस काल में निश्चय से मुनिश्वरों को... 'ज्ञानं स्वयं शरणं' शुद्धस्वरूप का अनुभव सहज ही आलम्बन है। भाषा कही। कोई आलम्बन है या नहीं? पुण्य-पाप के भाव छूटे तो आलम्बन किसका? जो शुभ-अशुभभाव का आलमबन लेकर परिणाम होता है, वह तो छूट गया, तो धर्मी को आलम्बन किसका? आहाहा! शब्द तो ऐसा लिया है,

'**ज्ञानं स्वयं शरणं**' अर्थ ऐसा लिया है, **शुद्धस्वरूप का अनुभव सहज ही आलम्बन है।** शुद्धस्वरूप का अनुभव सहज ही आलम्बन है। आहाहा! इस शब्द में बहुत गम्भीरता है। अपने आनन्दस्वरूप का सहज आलम्बन-आश्रय है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग... व्रत और नियम के सभी क्रियाकाण्ड के विकल्प दुःखरूप हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तो शरण क्या? '**ज्ञानं स्वयं शरणं**' शुद्धस्वरूप का अनुभव। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव का अनुसरण होना, इसमें सहज स्वरूप का आलम्बन है। आहाहा! भाषा अलग, भाव अलग। कहो! **शुद्धस्वरूप का अनुभव सहज ही....** ऐसा शब्द है। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान, ज्ञानस्वरूप भगवान नित्यानन्द प्रभु का अनुभव, उसका अवलम्बन लेकर अनुभव (होना), यह स्वभाविक ही शरण है, स्वभाविक ही शरण है। सहज यह स्वभाव शरण है। आहाहा! समझ में आया?

कैसा है ज्ञान? 'ज्ञाने प्रतिचरितं' जो बाह्यरूप परिणमा था... जो शुभ-अशुभ विकार की परिणति में परिणमा था। भगवान ज्ञानस्वरूप... आहाहा! **वही अपने शुद्धस्वरूप परिणमा है।** पुण्य और पाप की पर्याय में जो ज्ञान रूका था, परिणमा था, वह ज्ञान, स्वरूप में परिणमा। आहाहा! है? **शुद्धस्वरूप परिणमा है। शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर कुछ विशेष भी है... 'एते तत्र निरताः परमं अमृतं विन्दन्ति'** आहाहा! **विद्यमान जो सम्यग्दृष्टि मुनिश्वर शुद्धस्वरूप के अनुभव में मग्न हैं... 'निरतः'** आहाहा! रता-निरता। रक्त है, परन्तु निरत है, विशेष मग्न है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि है, वह रत-लीन है। मुनि तो '**निरताः**' विशेष रक्त है। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में अपने आनन्द में रत है। मुनि तो '**निरताः**' विशेष रक्त है। आहाहा! ऐसा मार्ग। समझ में आया? आहाहा! मग्न है। '**परमं अमृतं विन्दन्ति**' आहाहा!

कर्ता-कर्म पहले आया था कि जब विकल्प छूट जाते हैं, मैं बद्ध हूँ या अबद्ध हूँ या शुद्ध हूँ, तब '**अमृतं पिवन्ति**' कर्ता-कर्म में अन्त में आया था। आहाहा! शुभ-अशुभभाव का आश्रय छूटता है तो अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान का आश्रय लेते हैं। वे अतीन्द्रिय आनन्द में लीन, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करते हैं। आहाहा! समझ में आया? **सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख को आस्वादते हैं।** देखो!

'**विन्दन्ति**' आस्वादता है। आहाहा! जो कुछ पुण्य की क्रिया में राग का आस्वाद था... आहाहा! वह स्वाद छूटकर अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लीन है। आहाहा! ऐसा मार्ग। ऐसा मार्ग सत्य है। आहाहा! लोगों को निश्चय... निश्चय लगता है। बापू! सत्य ही यह है। आहाहा! यह कहा न?

सर्वोत्कृष्ट... 'परमं अमृतं' 'परमं अमृतं' सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख को आस्वादते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी आनन्द का स्वाद शुभाशुभ परिणाम से रहित होता है। तो यहाँ तो मुनि की बात है। आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प ये राग दुःख हैं। उससे हटकर ज्ञानानन्दस्वभाव में सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख में लीन रहते हैं, आहाहा! उसको आस्वादते हैं। शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। किसको मुनि कहना, किसको समकिती कहना! आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—शुभ-अशुभ क्रिया में मग्न होता हुआ जीव विकल्पी है,.... देखो! आहाहा! वह तो विकल्पी-रागी प्राणी है। आहाहा! शुभ-अशुभक्रिया में (रहता है), वह तो विकल्पी प्राणी, दुःखी है। आहाहा! विकल्प दुःख है। उसमें आया न, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' तो उसमें क्या हुआ? पंच महाव्रत के परिणाम दुःख हैं। आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पाया। आहाहा! भगवान आत्मा का अन्तर आश्रय लेकर जो अनुभव होता है, उसमें सुख है। पंच महाव्रत आदि परिणाम तो दुःखरूप है, विकल्प की जाल हैं ये तो। आहाहा! **शुभ-अशुभ क्रिया में मग्न होता हुआ जीव विकल्पी है, इससे दुःखी है।** आहाहा! कहो, सेठ! ये तुम्हारे पैसे की तृष्णा में तो दुःख है, परन्तु पंच महाव्रत के विकल्प में दुःखी है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग है न। दया, दान, व्रत, तप, भगवान का स्मरण, पंच परमेष्ठी की भक्ति, यह विकल्प की जाल है। ऐसी बात लोगों को कठिन लगती है। भाई! मार्ग यह है। तेरा मार्ग... अभी आगे कहेंगे। आहाहा! गजब बात है। सन्तों की कथनी 'शान्ति प्राप्त कराये, उसको सन्त कहते हैं, उनके दासानुदास होकर रहें।

भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, आनन्द का धाम। आहाहा! इसमें अतीन्द्रिय सुख का आस्वाद लेना इसका नाम आत्मधर्म, आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आत्मस्थिरता कहते हैं। ऐसी बात। श्रावक के छह कर्तव्य हैं न हमेशा के? स्वाध्याय, पूजा, गुरुसेवा, वह राग हैं, ऐसा

कहते हैं। वह विकल्प की जाल है। समझ में आया? आहाहा! भगवान अन्दर निर्विकल्प वीतराग की मूर्ति प्रभु चिदानन्द आत्मा अनादि-अनन्त वीतरागस्वरूप विराजमान भगवान है। उसका आस्वाद लेना, इससे उसका राग का स्वाद छूट जाता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, शुभभाव (मोक्ष का मार्ग है)। अरे! प्रभु! तू भगवान है न! तेरे में-तेरे घर में तो अतीन्द्रिय आनन्द ठसाठस भरा है न! आहाहा!

कहते हैं कि पुण्य-पाप का, **जीव विकल्पी है,...** आहाहा! **इससे दुःखी है।** पंच महाव्रत, पाँच समिति। गुप्ति व्यवहार, इसको लोग अभी सरागचारित्र कहते हैं। कहाँ सराग था? वीतराग बिना? समझ में आया? और ये सरागचारित्र से वीतरागचारित्र होता है, ऐसा कल आया था। आहाहा! ये दुःख की दशा से आनन्द की दशा प्रगट होगी, नहीं? ऐसा नहीं। छोड़कर होगी। आहाहा! **क्रियासंस्कार छूटकर...** क्या कहा? देखो! यह दया, दान, व्रत, तप के विकल्प के संस्कार छूटकर **शुद्धस्वरूप का अनुभव होते ही जीव निर्विकल्प है,...** आहाहा! समझ में आया? कितनी स्पष्ट वस्तु है। अब इसमें से गड़बड़ करता है। अरेरे! भगवान! तेरी चीज़ में पर का आलम्बन बिल्कुल नहीं। तेरी चीज में जाने में पर का, शुभराग का बिल्कुल आलम्बन नहीं। तो उससे निश्चयचारित्र होगा, ऐसा तीन काल में नहीं। आहाहा! वस्तु **जीव निर्विकल्प है, इससे सुखी है।** है? जीव तो भगवान निर्विकल्प वीतरागस्वरूप है। उसके आश्रय से सुखी है। आहाहा!

मुमुक्षु : क्रिया संस्कार?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया संस्कार ये राग। दया, दान, व्रत, पूजा और भक्ति के नामस्मरण की क्रिया के संस्कार, ये राग के संस्कार हैं। वीतराग न हो, तब तक धर्मी को ये आता है। परन्तु है विकल्प और राग। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग। १०४ हुआ, १०५।

कलश-१०५

(शिखरिणी)

यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवमलचमाभाति भवनं
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति।
अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत्
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम्।।6-105।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'यत् एतत् ज्ञानात्मा भवनं ध्रुवं अचलं आभाति अयं शिवस्य हेतुः' [यत् एतत्] जो कोई [ज्ञानात्मा] चेतनालक्षण ऐसा [भवनं] सत्त्वस्वरूप वस्तु [ध्रुवं अचलं] निश्चय से स्थिर होकर [अभाति] प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वादक कहा है [अयं] यही [शिवस्य हेतुः] मोक्ष का मार्ग है। किस कारण से? 'यतः स्वयं अपि तत् शिव इति' [यतः] जिस कारण [स्वयं अपि] अपने आप भी [तच्छिव इति] मोक्षरूप है। भावार्थ इस प्रकार है-जीव का स्वरूप सदा कर्म से मुक्त है, उसको अनुभवने पर मोक्ष होता है ऐसा घटता है, विरुद्ध तो नहीं। 'अतः अन्यत् बन्धस्य हेतुः' [अतः] शुद्धस्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है, इसके बिना [अन्यत्] जो कुछ है शुभ क्रियारूप, अशुभ क्रियारूप अनेक प्रकार [बन्धस्य हेतुः] वह सब बन्ध का मार्ग है; 'यतः स्वयं अपि बन्ध इति' [यतः] जिस कारण [स्वयं अपि] अपने आप भी [बन्ध इति] सर्व ही बन्धरूप है। 'ततः तत् ज्ञानात्मा स्वं भवनं विहितं हि अनुभूतिः' [ततः] तिस कारण [तत्] पूर्वोक्त [ज्ञानात्मा] चेतनालक्षण, ऐसा है [स्वं भवनं] अपना जीव का सत्त्व [विहितम्] मोक्षमार्ग है, [हि] निश्चय से [अनुभूतिः] प्रत्यक्षपने आस्वाद किया होता हुआ।।6-105।।

कलश - १०५ पर प्रवचन

यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवमलचमाभाति भवनं
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति।

अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत्
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम्।।6-105।।

आहाहा! भगवान ने तो अनुभव का उपदेश दिया है। महाव्रत और राग और इसको करना, ऐसा उपदेश किया ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**यत् एतत् ज्ञानात्मा भवनं ध्रुवं अचलं आभाति अयं शिवस्य हेतुः**' इसमें थोड़ी गम्भीर चीज़ है, देखो! **जो कोई चेतनालक्षण...** ऐसा भगवान। '**भवनं**' **सत्त्वस्वरूप वस्तु...** चेतना लक्षण सत्त्वस्वरूप वस्तु, यह अपना भवन है-यह अपना घर है। आहाहा! पुण्य-पाप अपना घर नहीं। **चेतनालक्षण ऐसा...** '**भवनं**' यहाँ वस्तु सत्त्वस्वरूप वस्तु कही अथवा सत्त्वस्वरूप का परिणमन। परन्तु वह '**भवनं**' यहाँ वस्तु सत्त्वस्वरूप वस्तु कही अथवा सत्त्वस्वरूप का परिणमन। परन्तु वह '**भवनं**' अर्थात् ये चेतना लक्षण भवन है। इसका चेतनास्वरूप उसका घर-स्थान है। रागादि बाह्यस्थान व्यभिचार हैं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप ये तेरा घर है-गृह है, भवन है, यह तेरा महल है। आहाहा! शान्तिभाई! यह घर तो धूल का है। चालीस-चालीस लाख के मकान, ये सेठ का छह-छह लाख के। गोवा में चालीस-चालीस लाख के। पोपटभाई नहीं, नहीं? गये। धूल में ये तेरा भवन नहीं। बापू! ये तो नहीं, परन्तु राग भी तेरा भवन नहीं। दया, दान, व्रत के संस्कार, वह भी तेरा घर नहीं। वह तेरा घर नहीं। आहाहा! यह कहते हैं न कि ये हमारी घरवाली! हमारे घर से है ये। ऐसे हाथ बताता है। ये हमारे घर से है। ऐसा कहता है। यहाँ घर कहाँ आया? आहाहा! अरे! भगवान! बाई कहे, ये हमारा घरवाला है। ऐसे कहे। मीठी भाषा से कहे तो हमारा पतिदेव है। ऐसा सुना है, अपन को कहाँ यहाँ... पतिदेव कहे। पतिदेव है मेरा। वह कहे, मेरी पत्नी है, अर्धांगिनी है। अरे! भगवान! तेरा आधा अंग वहाँ कहाँ आया? राग में भी तेरा अर्धांगिना नहीं आया, तो स्वरूप सिवाय है कहाँ? आहाहा!

संस्कृत टीका में ये अर्थ किया है। '**भवनं**' गृह-स्थान। आत्मा का भवन स्थान अन्दर स्वरूप है। आहाहा! ऐ... पोपटभाई! आहाहा! कहते हैं, तेरा भवन क्या? उसमें नहीं आता? 'मोक्षमहल की पहली सीढ़ी' पण्डितजी! छहढाला में। मोक्षमहल की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन। आहाहा! निज भगवान आनन्द, ज्ञानस्वरूप प्रभु, वह अपना भवन है।

उस भवन में रहना ये धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा! यहाँ तो बाह्य की क्रिया लाभ करे, वहाँ बस प्रसन्न-प्रसन्न (हो जाये)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **जो कोई...** ज्ञानस्वरूप। '**ज्ञानात्मा**' शब्द पड़ा है न? ज्ञानस्वरूप अर्थात् **चेतनलक्षण...** ज्ञानस्वभाव ऐसा निजघर, निज वस्तु। है न? सत्त्व स्वरूप वस्तु कही। निजघर, निजधाम, निजस्थान। आहाहा!

वह आता है न? रहनेवाले का स्थान है। निर्जरा-अधिकार में आता है। जिसको अन्तर में रहना हो ये रहनेवाले का स्थान भगवान आत्मा है। आहाहा! ऐसी बात सुनते, ये फिर नया होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नया नहीं, बापू! यह तो कल आया था न? अनादि परम्परा से ऐसा उपदेश है। कल आया था। १०३। आहाहा! अनादि-अनन्त तीर्थंकर अनन्त तीर्थंकर हुए, वर्तमान में हैं और भविष्य में अनन्त होंगे, अनन्त केवली हुए, हैं और होंगे, अनन्त मुनि हुए, हैं और होंगे। सबका यह उपदेश है। प्रभु! तेरे घर में तू जा। पर घर में व्यभिचारी होकर तू न रह। आहाहा! शुभभाव में जाना प्रभु! तेरा व्यभिचार है। क्योंकि वह संयोगी भाव है, स्वभावभाव नहीं। आहा! ऐसा कठिन पड़े। समझ में आया? शास्त्र की भक्ति और पूजा, ये शुभभाव राग संसार है, विकल्प है, दुःख है, यह तेरा घर नहीं। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया?

भगवान! तू तो आनन्दस्वरूप है न! चेतना, चेतन, चेतनास्वभाव से भरा हुआ है न! ज्ञानस्वरूप अर्थात् ये। चेतन, चेतनास्वभाव से भरपूर भरा है न! भगवान! तेरा घर तो यह है न! आहाहा! अरे! ऐसी बात! जहाँ श्रीमद् में ऐसा कहते थे, बात हमारी निश्चय, परन्तु इसका साधन? अरे! भगवान! ऐसा कि ये भक्ति करना न (ये साधन)। बापू! ये तो विकल्प की जाल, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ तो निर्विकल्प वीतरागी पदार्थ है। उस निर्विकल्प पदार्थ में '**भवनं**' निर्विकल्पपने होना, निर्विकल्पपने रहना, निर्विकल्प घर में स्थान रखना। आहाहा! निर्विकल्प चीज में-वस्तु में बसना। क्या कहलाता है? वास्तु। वस्तु में वास्तु करना। वास्तु कहते हैं न? वास्तु नहीं कहते? मकान बनाये इसको। वास्तु लेते हैं। बड़े-बड़े आदमियों को बुलाते हैं और बाद में हलवा बनाते हैं, अरबी के पत्तों की भजिया (बनाते हैं)। आहाहा! वास्तु की पाप में। यहाँ पुण्य परिणाम

में वास्तु, वह भी व्यभिचार है। भगवान! तेरी चीज़ नहीं, तेरा घर नहीं, तेरा स्वभाव नहीं। आहाहा! आहाहा!

'**ज्ञानात्मा भवनं**' ज्ञानस्वरूप होना, रहना, परिणमना और ज्ञानस्वरूप अर्थात् त्रिकाली ज्ञानस्वरूप। ये त्रिकाली। ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा... आहाहा! उसमें रहना। यह भवन हुआ—यह परिणमन हुआ। राग में रहना, यह विकार का परिणमन हुआ। और ज्ञानानन्द स्वभाव में रहना, यह निर्विकारी परिणमन हुआ। ये घर का घर हुआ। आहाहा! समझ में आया? दो शब्द है। '**भवनं**' पहली लाईन में है और चौथी लाईन में '**भवनं**' है। चौथी लाईन है न? '**भवनमनुभूतिर्हि विहितम्**' आहाहा! कभी सुना नहीं। शान्तिभाई! बेचारे लोगों को लोगों ने मार डाला। आहाहा! 'श्रीमद् कहते हैं, लोग पाप में (रचे-पचे हैं) पूरे दिन स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, भोग, खाना, पीना, ऊँघना, सोना। एकाध घण्टा मिले तो जाये सुनने। कुगुरु इसका घण्टा (समय) लूट लेते हैं। उसे पुण्य में धर्म मनवाकर उसकी जिन्दगी लूट लेते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह पुण्य-पाप का अधिकार है। शुभ-अशुभभाव दोनों विकल्प हैं, दोनों दुःख हैं। क्रिया के संस्कार हैं, ये आत्मा के संस्कार नहीं। आहाहा! यह आत्मा की क्रिया नहीं। यह निर्विकल्प नहीं। आहाहा! ऐसी वस्तु है, बापू! महा अलौकिक बात है, भाई! तू तो भगवान है न, नाथ! तेरी लक्ष्मी में तो आनन्द और ज्ञान पड़ा है न! उस तेरी लक्ष्मी में भवन-वास करना। आहाहा! ये वास्तु करना, वास करना, ये धर्म है। धर्मी आत्मा का धर्म चेतना और आनन्द, उसमें वास करना, ये पर्याय धर्म है। आहाहा! क्या कहा ये?

धर्मी ऐसा द्रव्य, उसमें ज्ञान और आनन्द उसका स्वभाव, उसमें बसना, ये पर्याय धर्म है। आहाहा! गजब बात है! लोगों को तो ऐसा (होता है)। ऐ... सोनगढ़वालों ने ये काम किया। प्रभु! सुन न, नाथ! सोनगढ़ अर्थात् सोनगढ़ सोनगढ़ रहा। सोने को जंग नहीं होती, प्रभु! सोने को जंग लगे? काट को क्या कहते हैं? जंग... जंग। सोने को लगे नहीं। भगवान आनन्दस्वरूप, उसमें राग की जंग नहीं, प्रभु! आहाहा! आहाहा! लोहे को जंग होती है। सोने को नहीं होती। आहाहा! ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा... भाषा तो देखो!

'**ज्ञानात्मा भवनं ध्रुवं अचलं**' आहाहा! गजब है! प्रभु तू कैसा है? ज्ञानस्वरूप है

न। पुण्य-पाप के भाव, ये कहीं ज्ञानस्वरूप नहीं, ये तो विकृत स्वरूप, संयोगी विकृतभाव है। आहाहा! व्यभिचार भाव है। ये तेरे रहने के लिये रहने का स्थान नहीं। आहाहा! प्रभु! तेरे रहने के लिये रहने का स्थान तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। आहाहा! ये सब बाहर का धमाल। चमक... चमक। श्मशान की हड्डियों की सब बाहर की चमक है। शरीर रूपवान धूल है। सुन तो। अन्दर पाप के परिणाम ये दुःख और पुण्य परिणाम दुःख हैं। वह तेरी चमक कहाँ है? तेरे चैतन्य चमत्कारिक चमत्कार, चमक आनन्द की लहर, वह तेरी चमक है। आहाहा! अरे! कहाँ... अब वस्तु की खबर भी न मिले। आहाहा!

'ज्ञानात्मा भवनं' सत्त्वस्वरूप वस्तु... वह सत्त्वस्वरूप। ज्ञान सत्त्व, ज्ञान सत्त्वस्वरूप वस्तु। **'ध्रुवं अचलं' निश्चय से स्थिर होकर... 'आभाति' प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वादक कहा है...** आहाहा! निश्चय से अन्तर में एकाग्र होकर **प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वादक कहा है...** आहाहा! ये आनन्द का स्वाद दूसरे लेते हैं और उसको (खबर नहीं पड़ती - ऐसा नहीं)। प्रत्यक्ष आस्वादक कहा है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ज्ञानस्वरूप में **'आभाति'** एकाग्र होकर तेरे को आनन्द के स्वाद को आस्वाद कहा है। उस आनन्द का आस्वाद लेनेवाला तेरे को कहा है। आस्वादक है न? आस्वादक। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेनेवाला तुझको कहा है। राग का स्वाद लेनेवाला आत्मा, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें।

यह राग का संस्कार, क्रियाकाण्ड के संस्कार से पार प्रभु विराजता है अन्दर। आहाहा! निर्विकल्परूप से विराजता है, वीतरागी आनन्द से विराजता है। इस तरफ का भवन अर्थात् अन्दर जाना, उस महल में अन्दर जाना। आहाहा! वह साफ महल है, आनन्द के स्वरूप से साफ महल है। निर्मलानन्द महल है। आहाहा! उसका आस्वादक कहा है। धर्मी को तो उसको आस्वाद करनेवाला कहा है। राग का आस्वाद करनेवाले धर्मी को भगवान ने कहा नहीं। अरे रे! कहो, कान्तिभाई! ऐसा क्या, पैसा-बैसा का इसमें क्या आया? पैसा में दान का भाव हो तो वह शुभभाव है। वह भी व्यभिचार है, ऐसा कहते हैं। अरर! क्रिया संस्कार। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि यह ज्ञानसत्त्व स्वरूप वस्तु है। सत् वस्तु। जिसमें

आनन्द और ज्ञान और शान्ति और स्वच्छता की प्रभुता का कस पड़ा है। उस वस्तु में निश्चय से स्थिर होकर। इसमें रहने से प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वादक, आस्वादक-आस्वाद करनेवाला कहा है। आहाहा! राग को करनेवाला आत्मा, ऐसा यहाँ कहा ही नहीं। मीठाभाई! ऐसी बातें लोगों को लगे। क्या करें? भाई! 'अनुभव रत्न चिन्तामणि अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप' ये यहाँ निर्विकल्प आस्वाद करनेवाला ज्ञानी को कहा है। आहाहा! एक-एक पंक्ति एक-एक लाईन... आहाहा!

गम्भीर स्वभाव से भरा है। प्रभु! तेरी गम्भीरता का अन्दर पार नहीं तो उसको बतानेवाली वाणी में भी गम्भीरता है। श्रीमद् कहते हैं न? 'वचनामृत वीतराग के, वचनामृत वीतराग के परम शान्त रसमूल, औषध जो भावरोग की पण कायर को प्रतिकूल, रे गुणवन्ता ज्ञानी अमृतवर्षा रे पंचम काल में।' आहाहा! नाथ! तूने तो पंचम काल में अमृत बरसाया! ये अमृत, हों! आहाहा! ज्ञानामृत, आहाहा! वचनामृत वीतराग के। भाषा क्या की? वचनामृत। 'वचनामृत वीतराग के, परम शान्त रसमूल, जिसमें से शान्ति प्रगट हो, ऐसे वीतरागी वचन हैं। राग तो अशान्ति है। राग के संस्कार दुःख हैं। आहाहा!

अरे! लोगों को एकान्त लगता है। हाँ, यह सम्यक् एकान्त है। समझ में आया? इसमें राग के संस्कार का अभाव है, यह अनेकान्त है। आहाहा! श्रीमद् भी कहते हैं, अनेकान्त मार्ग भी सम्यक् संस्कार ऐसे निजपद की प्राप्ति सिवाय अन्य हेतु से उपकारी नहीं। आहाहा! अनेकान्त भी निजपद की एकान्त प्राप्ति के सिवाय अनेकान्त भी दूसरे प्रकार से हितकारी नहीं। आहाहा! अपना सम्यक् एकान्त में आनन्द में आना। आहाहा! अरे! भाव की हाँ तो पाड़, प्रभु! हाँ पाड़ते तेरी हालत हो जायेगी। समझ में आया? हाँ की लत पाड़ते-पाड़ते हालत हो जायेगी। आहाहा!

निश्चय से स्थिर होकर प्रत्यक्षरूप स्वरूप का आस्वादक... प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वादक कहा है। आस्वादक। प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वाद करनेवाला कहा है। आहाहा! ऐसा कि कुछ करता है या नहीं? पुण्य-पाप के भाव छूटे तो कुछ करता है या नहीं? कि आस्वादक कहा है। यह आनन्द का आस्वाद करनेवाला कहा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक पंक्ति में कितना भरा है! आहाहा! दिगम्बर सन्तों

की वाणी तो देखो!

मुमुक्षु : ब्रह्माण्ड के भाव भरे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्रह्माण्ड के भाव भरे हैं। समयसार ग्रन्थाधिराज तारामां भाव ब्रह्माण्ड के भरे हैं। आहाहा!

यही मोक्ष का मार्ग है। स्वरूप में एकाग्रता होना और आनन्द का आस्वाद लेना, यही एक ही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अब लोग चिल्लाहट मचाते हैं, ये सब (ठीक) परन्तु साधन क्या? ये ही साधन है। साधन नाम का—करण नाम का आत्मा में गुण पड़ा है। करणशक्ति अपनी आ गयी। शक्ति... शक्ति। करणशक्ति पड़ी है। उसमें करण नाम का गुण पड़ा है। यही करण-साधन है। आहाहा! एकान्त हो जाता है, एकान्त हो जाता है, भगवान! सम्यक् एकान्त हो जाता है, ऐसा कहते हैं।

अरे रे! देखो न यह स्थिति! शरीर में रोग होता है, पक्षघात होता है। पच्चीस-पच्चीस वर्ष की उम्र, तीस, तीस वर्ष की उम्र में पक्षघात हो जाता है। आहाहा! चल सके नहीं, बोल सके नहीं। निराधार। एक बार पक्षघात कर न! राग का पक्ष घात कर दे न! राग का पक्ष का घात कर दे न। एक अंग-पर खराब हो जायेगा, तेरा स्वअंग रहेगा। आहाहा! समझ में आया?

शिव—**मोक्ष का मार्ग है। 'शिवस्य हेतुः'** है न? शिव अर्थात् मोक्ष। परमानन्दरूपी मोक्ष, उसका हेतु यह। प्रत्यक्षरूप से स्वरूप के आस्वाद करनेवाले को कहा है। आहाहा! अभी तो वस्तु की खबर ही नहीं मिले। सच्चा ज्ञान भी नहीं मिलता, वह भटकने का रास्ता मिलता है। आहाहा! भवाब्धि बड़ा दरिया-समुद्र है। भ्रमणा में राग के संस्कार से धर्म होगा बाद में सुख के साधन मिलेंगे, ऐसा कहते हैं। अभी पुण्य होगा, अनुकूल साधन मिलेंगे। यह पहले आ गया है। यह मिले, बाद में धर्म पायेंगे। अरे! धूल में नहीं मिले, सुन न! आहाहा! धर्म तो तेरी चीज़ में भरा हुआ स्वभाव है, उसका आस्वाद लेनेवाला (को धर्म है)। आहाहा! ऐसा कैसे लिया? राग का आस्वाद तो तुझे अनादि का है। वह कोई चीज़ नहीं। तेरी वस्तु का सत्व नहीं, तेरी वस्तु का वह स्वभाव नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान, इस तरफ का आस्वाद करनेवाले को शिव का—मोक्ष का हेतु

(कारण) कहा है। ऐसा मार्ग है, बापू! वाद-विवाद से पार नहीं पड़ेगी। शास्त्र में व्यवहार की चर्चा बहुत आती है। परन्तु बापू! इसका फल संसार है। जिनाज्ञा में भी वह निमित्तिरूप व्यवहार कहा, परन्तु उसका फल संसार है, शिव हेतु नहीं। समझ में आया? आहाहा!

किस कारण से? मोक्ष का मार्ग है। किस कारण से? निज स्वभाव का अनुभव करना-स्वाद लेना, ये मोक्ष का कारण। किस कारण से? '**यतः स्वयं अपि तत् शिव इति**' भाषा देखो! **जिस कारण अपने आप भी मोक्षरूप है।** यह स्वभाव का वेदन मोक्षस्वरूप है। मोक्षस्वरूप द्रव्य है और उसका वेदन भी मोक्षस्वरूप है। आहाहा! ऐसी बात है। मफाभाई! इन सब सेठियाओं ने ऐसे के ऐसे सब वर्ष गँवाये। निवृत्ति ली थोड़ी। नहीं? सेठ! यह तो अनादि से सब जीवों ने ऐसा किया है और बाहर की बातें प्रिय लगती हैं। प्रवृत्ति और इसमें धर्म। आहाहा! अरे! भगवान! तेरा स्वभाव है, उसमें प्रवृत्ति कर न! राग से निवृत्ति कर न! आहाहा! राग से निवृत्ति और स्वरूप में प्रवृत्ति। आहाहा!

मोक्षरूप है। किस कारण से? कैसे? ज्ञानस्वभाव का आस्वाद लेना, यह मोक्ष का हेतु, कारण क्या? क्योंकि ये स्वयं मोक्षस्वरूप है। राग के बन्धन से रहित आस्वाद, वह मोक्षस्वरूप है। मोक्षस्वरूप है, वह मोक्ष का कारण होगा। बन्धस्वरूप हो, वह मोक्ष का कारण कैसे हो? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! झगड़ा करे, बाधा खड़ी करे। '**स्वयं अपि तत् शिव इति' अपने आप भी मोक्षरूप है।** कौन? भगवान आत्मा मुक्त अबद्धस्वरूप है तो अबद्धस्वरूप के आश्रय जो परिणाम होता है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! क्योंकि मोक्षस्वरूप है, उसका आश्रय लिया है, स्वाद लिया है। आहाहा! भगवान त्रिकाली अबद्धस्वरूप मोक्षस्वरूप है। इस कारण उसका आस्वाद मुक्ति का कारण है। समझ में आया? और ये आस्वाद स्वयं मोक्षस्वरूप है। अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव मोक्षस्वरूप कहा न? 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप' रसकूप— आनन्द का कूप... क्या कहलाता है ये? शीशो... शीशो... शीशा नहीं यह काँच का। कूप... कूप। 'अनुभव है रसकूप, अनुभव, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्ष स्वरूप।' लो, मोक्ष का मार्ग कहकर इसको मोक्षस्वरूप कहा। है? अरे! इसके घर में क्या चीज़ है और घर में बसने से क्या होता है? घर में वास्तु लेने से आनन्द होता है, कहते हैं। परघर में वास्तु

लेने से तो तुझे प्रभु! दुःख होगा। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है - जीव का स्वरूप सदा कर्म से मुक्त है... देखो! जीव का स्वरूप ज्ञायकस्वरूप सदा कर्म से और राग से मुक्त है। **उसके अनुभवने पर मोक्ष होता है...** मोक्षस्वरूप है, उसको अनुभवते मोक्ष होता है। आहाहा! समझ में आया? बात आ गयी, बहुत अच्छी आई है। पुण्य-पाप अधिकार। बहुत गड़बड़ चलती है। प्रभु! तुझे तेरी गड़बड़ी उखाड़ फेंकनी है। इसकी श्रद्धा में तुझे अभी ठिकाना नहीं। सत्य श्रद्धा के पक्ष में भी नहीं, सत्य श्रद्धान का संस्कार भी नहीं। आहाहा! अरेरे! भाई! मुक्तस्वरूप भगवान का अनुभव, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! भावार्थ - **उसके अनुभवने पर मोक्ष होता है, ऐसा घटता है...** ऐसा घटता है। **विरुद्ध तो नहीं।** आहाहा! यह ही है।

'अतः अन्यत् बन्धस्य हेतुः' शुद्धस्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है, इसके बिना जो कुछ है शुभक्रियारूप, अशुभक्रियारूप... आहाहा! शुभरागरूप के अशुभरागरूप। **वह सब बन्ध का मार्ग है...** बन्ध का मार्ग कहकर, वह बन्ध है; इसलिए बन्ध का मार्ग है — ऐसा कहेंगे। क्या कहते हैं? देखो! **वह सब बन्ध का मार्ग है, 'यतः स्वयं अपि बन्ध इति' जिस कारण अपने आप भी सर्व ही बन्धरूप है।** राग, ये बन्धस्वरूप ही है; अबन्धस्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? जैसे आत्मा मोक्षस्वरूप है तो उसके आश्रय मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है तो यह बराबर है। अब राग और दया, दान, व्रतादि बन्धस्वरूप है। आहाहा! इसलिए बन्ध का कारण है। जैसे ये मोक्षस्वरूप है तो मोक्ष का कारण है। ये बन्धस्वरूप है तो बन्ध का कारण है। आहाहा! ...लालजी! ऐसी बात है। झगड़ा करे। भगवान! ऐसा है। आहाहा!

अनन्त रत्नाकर भगवान आत्मा, उसमें अशुभभाव का तो अभाव है। वह तो निर्विकल्प वस्तु है। आहाहा! निर्विकल्प वस्तु के आश्रय निर्विकल्पता प्रगट होती है। राग तो बन्धस्वरूप है तो इसके आश्रय बन्ध का कारण उत्पन्न होता है, राग उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? गहल-पागल कहते हैं। कितने ही। छोटाभाई! पागल कहें। यह एक लगाई है। अरे! भगवान! सुन तो सही। परमात्मप्रकाश में कहा है, ऐसे धर्मात्मा को दुनिया पागल कहती है। और धर्मात्मा दुनिया को पागल मानता है। परमात्मप्रकाश में

है। आहाहा! कहो, बापू! कहो। आहाहा! समझ में आया?

दो बात सिद्ध की। आत्मस्वरूप शुद्धचैतन्यघन है, उसका वेदन करना, यह मोक्षमार्ग क्यों? कि वस्तु मोक्षस्वरूप है। वस्तु मोक्षस्वरूप है, उसका वेदन मोक्ष का कारण है। अर्थात् राग दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का राग, ये बन्धस्वरूप है, बन्धस्वरूप है। आहाहा! है? आहाहा! **वह सब बन्ध का मार्ग है...** क्यों? **कारण अपने आप भी सर्व ही बन्धरूप है।** अपना आप ही राग जो दया, दान के भाव हैं, ये बन्धस्वरूप ही है। भगवान मोक्षस्वरूप है तो राग बन्धस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात! कितनों ने तो पहली बार सुनी होगी। ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! जिस **कारण अपने आप भी सर्व ही बन्धरूप है।** आहाहा! इस कारण से....

'ततः तत् ज्ञानात्मा स्वं भवनं विहितं हि अनुभूतिः' तिस कारण पूर्वोक्त चेतनालक्षण, ऐसा है... पहले कहा था न? **'ज्ञानात्मा भवनं'** ये चेतनालक्षण **'स्वं भवनं', 'स्वं भवनं' अपना जीव का सत्त्व... 'स्वं भवनं'** अपने जीव का सत्त्व। आहाहा! अपने जीव का सत्त्व। आहाहा! अनुभूति। आनन्द का स्वाद, ये अपने जीव का सत्व। आहाहा! **मोक्षमार्ग है, निश्चय से प्रत्यक्षपने आस्वाद किया होता हुआ।** मोक्षमार्ग **'विहितं'** सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेवों ने... आहाहा! रागरहित भगवान आत्मा का वेदन करना, वह मोक्षमार्ग है, ऐसा परमात्मा ने फरमाया है **'विहितं'** पहले **'विहितं'** आया था। **'शिवहेतुः विहितं'** १०३। **'ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः'** १०३। अन्तिम पद। यहाँ यह कहा। आहाहा! यहाँ **'ज्ञानात्मा विहितं'** आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप का अनुभव करना, यह विधि कही है। अनुभूति मोक्ष का मार्ग कहा है। आहाहा! दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ९, बुधवार, दिनांक २१-०९-१९७७
कलश-१०६, प्रवचन-१०१

आज दशलक्षण पर्व का पाँचवाँ दिन है। दशलक्षणी पर्व के मूल तो दस धर्म हैं। चारित्रवन्त को दस प्रकार का धर्म होता है। सम्यग्दर्शन होता हो, आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव हो और आनन्द के स्वाद में जिसकी लीनता होती हो, उसको यहाँ चारित्रवन्त कहते हैं, उसको मुनि कहते हैं। आहाहा! उन मुनि को दस प्रकार का धर्म होता है। यह मुनि की प्रधानता से कथन है। आज पाँचवाँ उत्तम सत्यधर्म है। आज पाँचवाँ दिन है न? ये सत्य बोलना, वह कोई धर्म नहीं। सत्य भाषा, यह तो जड़ की है। और सत्य बोलने का जो विकल्प उठता है, वह शुभ पुण्यरूप राग है। आहाहा!

सत्यधर्म तो इसको कहते हैं कि जो आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सत्यस्वरूप, द्रव्यस्वभाव सत्य चैतन्य ज्ञानानन्द सत्स्वरूप, उसका वीतराग निर्मल परिणतिरूप परिणमना, इसका नाम सत्यधर्म है। आहाहा! समझ में आया? सत्य बोलना, वह तो जड़ भाषा है, वह कोई धर्म नहीं। ऐसे पंच महाव्रत में सत्य बोलने में आता है, वह भी राग है। आहाहा! पंच महाव्रत में सत्यव्रत आता है, वह तो राग है, यह सूक्ष्म बात, भाई! सत्यधर्म तो राग से रहित अपना जिन स्वरूप वीतरागस्वरूप सत्य है, उसके आश्रय वीतरागरूप परिणमना, सत्यस्वभावरूप परिणमना, (यह सत्यधर्म है)। ऐसी बात है। मार्ग प्रभु का, वीतराग का पंथ कोई अलौकिक है, भाई! अभी तो यह सत्य का बोलना, वह धर्म (कहते हैं)। सत्य बोलना तो राग है। पंच महाव्रत में सत्य बोलना, यह तो शुभराग है, पुण्य है, वह धर्म नहीं। वाणी बोलना ये तो जड़ की क्रिया है, आत्मा की नहीं। आहाहा!

जिणवयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि।
ववहारेण वि अलिंय ण वददि जो सच्चावाई सो॥३९८॥

अर्थ - जे मुनि जिनसूत्र अनुकूल ही वचन कहे,... अपनी कल्पना से नहीं

कहता। **फिर उसमें जो आचारादि कहे हैं, उसका पालन करने में स्वयं असमर्थ हो तो भी (झूठ न बोले) अन्य प्रकार से न कहे....** ऐसा भी चलता है, ऐसा भी चारित्र होता है, अपने लिये चौका करके बनाया भोजन लेना ये भी मार्ग है, ऐसा न कहे। समझ में आया? चौका करके उसके लिये (बनाया) आहार लेता है और आहार देनेवाला बोलता है, आहार शुद्ध। ऐ... सेठ! तुम भी ऐसा झूठा बोले है। पहले किया था। बड़ा सेठ है तो वहाँ साधु आवे। आहार बनाये। मोसम्बी, आम का रस, गर्म पानी और कहे आहार शुद्ध है। ऐ... सेठ!

मुमुक्षु : पाँच बार तो जीमता हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस पक्षी को रात्रि को तो कुछ मिलता ही नहीं। पानी का बिन्दु भी (नहीं मिलता)। पक्षी होते हैं न? पानी का एक बिन्दु भी नहीं मिलता। इससे क्या? दिन में ही खाते हैं तो भी पापी हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो जन्म-मरण से रहित कैसे हो, यह वीतराग का मार्ग है।

सत्य जिनवचन प्रमाण बोले। इसके लिये आहार आदि बना हो और ले तो कहे, अभी तो इस समय ऐसा भी होता है। ऐसा झूठ नहीं बोले। क्यों, जिनेश्वरदासजी! आहार शुद्ध, वचन शुद्ध, मन शुद्ध बोलता है या नहीं? यह तो झूठा है। इसके लिये पानी भी बनाया, मोसम्बी लाया, वह आहार शुद्ध कहाँ से हुआ?

यहाँ तो जिनवचन अनुसार कहे। बिल्कुल वीतराग मार्ग से कम, ज्यादा या विपरीत न कहे। आहाहा! और अन्तर में वीतराग परिणति जागी हो, उस वीतरागी परिणति को यहाँ सत्यधर्म कहने में आता है। आहाहा! **पालन करने में स्वयं असमर्थ हो तो भी अन्य प्रकार से न कहे, और जो व्यवहार से भी...** आहार आदि के पूजा, प्रभावना में भी व्यवहार से भी झूठ न बोले। पूजा, प्रभावना का भाव है, यह राग है; यह धर्म नहीं, यह पुण्य है। आहाहा! व्यवहार से भी झूठ न बोले। समझ में आया? **वह मुनि सत्यवादी है और उसे ही उत्तम सत्यधर्म होता है।** इसमें विशेष लिखा है।

भावार्थ :- जैन सिद्धान्त में आचारादिक का जैसा स्वरूप कहा हो, वैसा ही कहे परन्तु ऐसा नहीं कि अपने से न पालन हो सके, इसलिए उसको दूसरे प्रकार से

कहे, जैसा है वैसा न कहे, अपना मान भंग होता है, इससे चाहे जैसा कहे। चाहे वह हो, अपमान होओ। बापू! आहाहा! प्रभु का मार्ग तो चारित्र वीतरागता की परिणति, वह चारित्र है, इसमें आहार-पानी निर्दोष लेना, उसके लिये बना हुआ न ले, वह भी शुभराग विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? और उसके लिये बना हुआ लेना ये तो पाप राग है। ये तो व्यवहार भी अशुद्ध है। निश्चयसम्यग्दर्शन तो है नहीं। इसको हो तो ऐसा सदोष आहार ले नहीं। समझ में आया? ऐसी यहाँ सत्यधर्म की व्याख्या है। लो! थोड़ा लिया।

कलश-१०६

(अनुष्टुप्)

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत्।।7-106।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'ज्ञानस्वभावेन वृत्तं तत् तत् मोक्षहेतुः एव' [ज्ञान] शुद्ध वस्तुमात्र, उसकी [स्वभावेन] स्वरूपनिष्पत्ति, उससे जो [वृत्तं] स्वरूपाचरण चारित्र [तत् तत् मोक्षहेतुः] वही वही मोक्षमार्ग है; [एव] इस बात में सन्देह नहीं। भावार्थ इस प्रकार है-कोई जानेगा कि स्वरूपाचरण चारित्र ऐसा कहा जाता है जो आत्मा के शुद्ध स्वरूप को विचारे अथवा चिन्तवे अथवा एकाग्ररूप से मग्न होकर अनुभवे। सो ऐसा तो नहीं, उसके करने पर बन्ध होता है, क्योंकि ऐसा तो स्वरूपाचरण चारित्र नहीं है। तो स्वरूपाचरण चारित्र कैसा है? जिस प्रकार पन्ना [सुवर्णपत्र] पकाने से सुवर्ण में की कालिमा जाती है, सुवर्ण शुद्ध होता है, उसी प्रकार जीव द्रव्य के अनादि से अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणमन था, वह जाता है, शुद्ध स्वरूपमात्र शुद्धचेतनारूप जीवद्रव्य परिणमता है, उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र कहा जाता है; ऐसा मोक्षमार्ग है। कुछ विशेष-वह शुद्ध परिणमन जहाँ सर्वोत्कृष्ट होता है वहाँ तक शुद्धपना के अनंत भेद हैं। वे भेद जातिभेद की अपेक्षा तो नहीं। बहुत शुद्धता, उससे बहुत, उससे बहुत ऐसा थोड़ा-बहुतरूप भेद है। भावार्थ इस प्रकार है-जितनी शुद्धता होती है, उतनी ही मोक्ष का कारण है। जब सर्वथा शुद्धता होती

है तब सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्षपद की प्राप्ति होती है। किस कारण? 'सदा ज्ञानस्य भवने एकद्रव्यस्यभावत्वात्' [सदा] तीनों कालों में ही [ज्ञानस्य भवने] ऐसा है जो शुद्धचेतना-परिणमनरूप स्वरूपाचरणचारित्र वह आत्मद्रव्य का निजस्वरूप है, शुभाशुभ क्रिया के समान उपाधिरूप नहीं है, इस कारण [एकद्रव्यस्वभावत्वात्] एक जीवद्रव्यस्वरूप है। भावार्थ इस प्रकार है-कि जो गुण-गुणीरूप भेद करते हैं तो ऐसा भेद होता है कि जीव का शुद्धपना गुण; जो वस्तुमात्र अनुभव करते हैं, तो ऐसा भेद भी मिटता है, क्योंकि शुद्धपना तथा जीवद्रव्य वस्तु तो एक सत्ता है, ऐसा शुद्धपना मोक्षकारण है, इसके बिना जो कुछ करतूतिरूप है, वह समस्त बन्ध का कारण है।।7-106।।

कलश - १०६ पर प्रवचन

अब, आज १०६। १०६ कलश है। पुण्य-पाप का अधिकार चलता है, उसमें १०६ कलश।

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत्।।7-106।।

आहाहा! सन्त गजब करते हैं! दिगम्बर सन्त अमृतचन्द्राचार्य। आहाहा! क्या श्लोक है। शब्दार्थ '**ज्ञानस्वभावेन वृत्तं तत् तत् मोक्षहेतुः एव**' '**ज्ञान**' **शुद्ध वस्तुमात्र...** प्रभु। चैतन्य शुद्ध पुण्य-पाप के भाव से रहित। ऐसी शुद्ध वस्तु जो आत्मा है, पवित्र भगवान वीतरागस्वरूप **उसकी स्वरूपनिष्पत्ति....** है? शुद्ध वस्तु है, पवित्र है, पुण्य-पाप से रहित है, ऐसी वस्तु की निष्पत्ति (अर्थात्) परिणति में उस वस्तु की प्राप्ति। आहाहा! पर्याय में वस्तु शुद्ध वीतरागस्वरूपी ही भगवान आत्मा तो है। पुण्य-पाप के भाव तो नव आत्मतत्त्व से भिन्न हैं। नव तत्त्व हैं न? दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम, ये तो पुण्य तत्त्व में जाते हैं, ये आत्मतत्त्व में नहीं। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, ये पाप में जाते हैं। ये इस पुण्य में भी नहीं आते। आत्मा में तो हैं ही नहीं।

ऐसे पुण्य-पाप के भाव से रहित शुद्ध वस्तु चैतन्यघन आनन्ददल है, उसकी

स्वरूपनिष्पत्ति-पर्याय में उसकी प्राप्ति होना। शुद्धस्वरूप की पर्याय में प्राप्ति होना, उसका नाम धर्म है। आहाहा! समझ में आया? है? **स्वरूपनिष्पत्ति, उससे जो... 'वृत्तं' 'वृत्तं'** है न? **स्वरूपाचरण चारित्र...** आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प से, राग से रहित शुद्ध चैतन्य ज्ञायक प्रभु का स्वरूप में आचरण। ऐसे आनन्दकन्द में आचरण करना, अन्दर में रमना, आनन्दस्वरूप में रमना, उसको स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं। चौथे गुणस्थान से होता है। आहाहा! अरे.. भगवान! बापू! तेरा वीतरागमार्ग... आहाहा!

यहाँ तो शुद्ध वस्तु-पवित्र वस्तु भगवान आत्मा ज्ञायकभाव के आनन्द से भरी ऐसे शुद्ध वस्तुस्वरूप की निष्पत्ति, पर्याय में स्वरूप निष्पत्ति। स्वरूप जो शुद्ध है, उसकी पर्याय में प्राप्ति। आहाहा! वीतरागी निर्विकल्प आनन्द की पर्याय में प्राप्ति, इसका नाम धर्म भगवान के पंथ में कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा! **उससे जो स्वरूपाचरण चारित्र... 'तत् तत् मोक्षहेतुः'** भाषा देखो! **वही वही मोक्षमार्ग है...** वही वही मोक्षमार्ग, दो बार लिया है। वही, वही। जो शुद्धस्वरूप परमात्मा का पूर्ण आनन्दकन्द है, उसकी पर्याय में वीतराग दशा की प्राप्ति होना वही, वही मोक्षमार्ग है। आहाहा! मूल पाठ है। यह दया और दान और व्रत और तप और उपवास और पूजा और भक्ति के विकल्प धर्म नहीं। आहाहा! ये तो पुण्यभाव हैं। पुण्यभाव, वह बन्ध के कारण हैं। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! प्रभु! तेरा वीतराग का मार्ग... आहाहा! और ये वीतराग के अतिरिक्त कहीं है नहीं। समझ में आया?

'तत् तत्' ते ज, ते ज... यह गुजराती भाषा। हिन्दी में **वही, वही मोक्षमार्ग...** आहाहा! पुण्य-पाप का अधिकार है न। ये पुण्य-पाप के विकल्प से रहित शुद्ध पवित्र स्वरूप की पर्याय में प्राप्ति होना वही, वही मोक्ष का मार्ग है। यह अमृतचन्द्राचार्य पुकार करते हैं। सन्त दिगम्बर मुनि। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर का कहा मार्ग जगत में प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! **वही वही मोक्षमार्ग है, इस बात में सन्देह नहीं।** अन्दर भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, ये पवित्र की पर्याय में शुद्ध चैतन्यघन की प्राप्ति होना, वीतरागी दशा होना, ये एक ही, वो ही, वो ही, वही-वही मोक्षमार्ग है। ऐसा निःसन्देहरूप से जानना। समझ में आया? आहाहा! बहुत मार्ग... वीतराग का मार्ग अभी लोगों ने छिन्न-भिन्न कर दिया।

आहाहा! अन्यमत का जैनमत ठहराया। राग से धर्म होता है, यह तो अन्यमत है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव से धर्म होता है, यह तो अन्यमत-रागमत है। यह तो रागी अज्ञानी का धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

जिसमें स्वरूपाचरणचारित्र... स्वरूप-शुद्ध ज्ञानघन स्वरूप—इसमें चारित्र, यह स्वरूप में रमणता। पुण्य-पाप के परिणाम की रमणता, वह तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? यहाँ तो स्वरूप में रमणता-चारित्र, वह ही मोक्षमार्ग है। इसमें सन्देह नहीं।

भावार्थ इस प्रकार है - कोई जानेगा कि स्वरूपाचरणचारित्र ऐसा कहा जाता है, जो आत्मा के शुद्धस्वरूप को विचारे... क्या कहते हैं? शान्ति से सुनो! भगवान ज्ञायक शुद्धस्वरूप है, ऐसा विचारे। विचार है, वह तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? **शुद्धस्वरूप को विचारे अथवा चिन्तवे...** मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, वीतरागस्वरूप हूँ—ऐसा चिन्तवन ये भी विकल्प और राग है। आहाहा! ऐसी बातें बहुत... सन्तों ने प्रसिद्ध (की)। सर्वज्ञ के मार्ग को सन्तों ने आड़तिया होकर मार्ग की प्रसिद्धि की है। मार्ग तो यह है, नाथ! दुनिया तुझे दूसरे रूप से मनाये और माने, (ये तो) भ्रमण कर मरेंगे। समझ में आया?

यहाँ तो शुद्ध स्वरूप का विचार। शुद्धस्वरूप जो चैतन्यमूर्ति वीतराग परमानन्द की मूर्ति प्रभु का विचार। आहाहा! विचार (अर्थात्) यहाँ विकल्प लेना है। समझ में आया? यहाँ विचार में उसका विकल्प लेना है। **अथवा चिन्तवे...** शुद्धस्वरूप परमानन्द प्रभु है, उसका चिन्तवन करे, वह भी विकल्प है, वह भी राग है। आहाहा! **एकाग्ररूप से मग्न होकर अनुभवे।** यह एकाग्र (अर्थात्) राग... राग। **सो ऐसा तो नहीं...** सूक्ष्म बात है, प्रभु! मैं शुद्ध चैतन्य ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु (हूँ), ऐसा विकल्प उठाकर विचार करे, उसका चिन्तवन करे, उसमें एकाग्र होकर ध्यान में—राग में एकाग्र हो। समझ में आया? राग-अशुभराग तो नहीं, शुभराग में एकाग्र हो, यह शुद्धस्वरूप का आचरण नहीं।

मुमुक्षु : यहाँ राग के अनुभव की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग के अनुभव की बात है। राग की एकाग्रता। एकाग्र—ऐसा लक्ष्य में लेकर विकल्प उठता है, उसमें एकाग्र होता है। राग में एकाग्रता। आहाहा!

यहाँ तो तीन बोल लिये। शुद्धस्वरूप आत्मा के शुद्ध स्वरूप को विचारे, चिन्तवे, एकाग्र-मग्न होकर अनुभवे राग को। **सो ऐसा तो नहीं, उसके करने पर बन्ध होता है,...** आहाहा! यह तुम्हारा धन्धा करने में तो पाप बन्ध होता है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करने का भाव भी बन्ध का कारण है। आहाहा! प्रभु! वीतरागमार्ग प्रभु अलग है, नाथ!

यहाँ तो कहते हैं, शुद्ध स्वरूप ज्ञायकपिण्ड प्रभु, इसके विचार में—विकल्प में रुक जाये, चिन्तवन विकल्प करे, इसमें—राग में एकाग्र हो जाये, मूल तो राग में (एकाग्र होता है), अन्तर में एकाग्र कहाँ है? अशुभराग छोड़कर अन्दर शुभराग में एकाग्र (होता है)। यह सब स्वरूपाचरण नहीं, यह धर्म नहीं। आहाहा! है? यह तो हजार वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य हुए हैं। दो हजार वर्ष पहले भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त (हुए हैं)। और इनका अभिप्राय तो अनन्त काल से चला आता है। यह तो कल आया था न? अनादि। अनादि परम्परा से ऐसा उपदेश है। तीसरे श्लोक में अन्तिम शब्द। अनादि सन्त, महामुनियों वीतरागी, दिगम्बर मुनि अनादि काल से ऐसा उपदेश करते आये हैं। आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! अभी तक तो तुमने सभी भाषण बड़े किये हैं। भाषण करते थे न? राग से धर्म। आहाहा! यह बात नहीं होती न।

यहाँ तो प्रभु तीन लोक के नाथ वीतराग जिनेन्द्रदेव जो फरमाते हैं, ये सन्त उस प्रकार से फरमाते हैं। दिगम्बर सन्त। प्रभु! तू शुद्ध चैतन्यमूर्ति जिन है न! 'जिन सो ही है आत्मा और अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' 'जिन सो ही है आत्मा' अन्य विकल्प आदि हैं, वह तो कर्म, पर हैं। 'यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञदेव की वाणी का मर्म ये है। आहाहा! कि वीतरागस्वरूप से विराजमान तेरी चीज़ अन्दर है। वीतरागता पर्याय में आती है, वह कहाँ से आती है? वीतरागस्वरूप है, इसमें से आती है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि वीतरागस्वरूप का विकल्प से चिन्तवन करना... आहाहा! यहाँ मन के अन्दर आया, ऐसा कहते हैं। मन से चिन्तवन करना, इसके विचार में रोकना-राग, इसमें एकाग्र होकर अनुभव मानता है। यह अनुीाव नहीं, यह सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा

मार्ग। अभी तो लोगों को कठिन (लगता है)। हा...हो... हा... हो... व्रत करो और अपवास करो और पूजा, भक्ति करो और मन्दिर बनाओ और दो-पाँच खर्च करके गजरथ निकालो, धर्म है। धूल में धर्म नहीं, सुन तो सही! समझ में आया?

यहाँ तो शुद्ध स्वरूप का चिन्तवन भी धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? चिन्तवन में आहाहा! यहाँ विकल्प लेना। वृत्ति उठती है न? मैं शुद्ध हूँ, मैं ऐसा हूँ, ऐसा हूँ। ऐसा विकल्प है, वह भी मोक्ष का मार्ग नहीं। **उसके करने पर बन्ध होता है,...** आहाहा! प्रभु! तेरा स्वरूप तो ज्ञाता-दृष्टा है न, नाथ! आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा ज्ञायकस्वभाव, जानना-देखना, आनन्द, ये तेरा स्वभाव है। आहाहा! यह विकल्प में आना, ये तुझे बन्ध का कारण है। आहाहा! पंच महाव्रत और पाँच समिति, गुप्ति व्यवहार, ये तो बन्ध के कारण हैं ही। समझ में आया? छहढाला में आया न? कहा था न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' मुनिव्रत लिया, पंच महाव्रत धारण किये, हजारों रानियों को छोड़ दिया, आजीवन शरीर से ब्रह्मचर्य पाला। पंच महाव्रत लिया तो भी धर्म नहीं, वह दुःखी है,कहते हैं। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' यह छहढाला में है। 'पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' ये पंच महाव्रत के परिणाम दुःख हैं। गजब बात है, आहाहा! 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' यह पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति के भाव, ये सब दुःख हैं, राग हैं, आस्रव हैं, बन्ध के कारण हैं। अरे! क्या हो? जगत को लूट के रख दिया। उल्टी प्ररूपना (व्याख्या) करके स्वयं लुटते हैं और दुनिया को लूटते हैं। आहाहा! समझ में आया? बन्धन के कारण को धर्म का कारण कहते हैं।

कहते हैं कि यह तो बन्ध का कारण है। **क्योंकि ऐसा तो स्वरूपाचरणचारित्र नहीं है।** ये स्वरूप का आचरण नहीं। यह तो राग का आचरण है। आहाहा! राजमलजी की टीका है। इसमें से समयसार नाटक बनाया है। बनारसीदासजी ने जो समयसार नाटक बनाया, वह इसमें से बनाया। राजमलजी की टीका में से। समझ में आया? टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशक बनाया, वह तो स्वतन्त्र अपने से बनाया। शास्त्र का रहस्य समझकर बनाया है और समयसार नाटक तो इस पुस्तक में से बनाया है। कलशटीका अभी तो हिन्दी

हुई है, पहले ढूंढारी भाषा में थी। ढूंढारी भाषा में थी। ये पुस्तक हमारे पास है। शीतलप्रसादजी ढूंढारी भाषा में (प्रकाशित की)। भाषा जरा कठिन थी। ये पीछे चलती हिन्दी में बनायी है। फूलचन्दजी। आहाहा! कहते हैं, **ऐसा तो नहीं, उसके करने पर बन्ध होता है, क्योंकि ऐसा तो स्वरूपाचरणचारित्र नहीं है। तो स्वरूपाचरणचारित्र कैसा है?** आहाहा!

जिस प्रकार पन्ना 'सुवर्णपत्र'... सोने का पन्ना **पकाने से सुवर्ण में की कालिमा जाती है,...** सोने में से कालिमा जाती है। सोना। सोने के पत्रा को अग्नि में तपाने से कालिमा जाती है। **सुवर्ण शुद्ध होता है, उसी प्रकार जीवद्रव्य के अनादि से अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणमन था,...** आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्यद्रव्य अनादि से पुण्य-पाप की अशुद्ध चेतनारूप रागादि कर्मचेतना थी। **अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणमन...** शुभाशुभ परिणमन, ये अशुद्ध चेतना का रागादि परिणमन है। आहाहा! शास्त्र वाँचते नहीं, स्वाध्याय करते नहीं और अपना आग्रह छोड़ते नहीं। इसलिए फिर यह बात ऐसी लगती है। ऐ... यह तो निश्चयाभास है, व्यवहार को मानते नहीं। अरे! सुन तो सही, प्रभु! व्यवहार राग है, उससे धर्म होता नहीं, ऐसा मानते हैं। आहाहा! व्यवहार होता है। धर्मी को भी व्यवहार आता है। सम्यक् अनुभव हुए बाद शुभभाव आता है, परन्तु उसको बन्ध का कारण जानता है। आहाहा! समझ में आया? तेरे जन्म-मरण से रहित का मार्ग भिन्न, नाथ! आहा!

अरे! अनन्त काल से चौरासी लाख योनि में अनन्त-अनन्त अवतार किये। आहाहा! अपनी (ओर) तूने देखो नहीं, भाई! ये नरक की पीड़ा सुनी न जाये ऐसी नरक की वेदना। प्रभु! तू वहाँ अनन्त बार मिथ्यात्व को लेकर जन्मा है। आहाहा! यह मिथ्यात्व अर्थात् पुण्य से धर्म होता है और रागादि की क्रियाकाण्ड से धर्म होता है, यह मिथ्यात्व। इस कारण से अनन्त बार जन्म-मरण किये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **शुद्ध स्वरूपमात्र शुद्धचेतनारूप जीवद्रव्य परिणमता है,...** अशुद्धचेतनारूप रागादि परिणमन था। पुण्य का परिणाम, ये अशुद्धचेतनारूप रागादि का परिणमन है। आहाहा! ये तो अनादि से है। दया, दान, व्रत, भक्ति तो अनन्त बार किया। द्रव्यलिंगी दिगम्बर साधु होकर नौवीं ग्रैवेयक स्वर्ग में गया। सम्यग्दर्शन बिना, आत्मज्ञान

बिना पंच महाव्रतादि की क्रिया की, शुक्ललेश्या धारण करके.... शुक्ललेश्या, हों! शुक्लध्यान दूसरी चीज़ है, शुक्ललेश्या दूसरी चीज है, स्वर्ग में नौवीं ग्रैवेयक अनन्त गया। वह **अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणमन था, वह जाता है, शुद्ध स्वरूपमात्र शुद्धचेतनारूप जीवद्रव्य परिणमता है,...** आहाहा! जैसे स्वर्ण को अग्नि में डालने से कालिमा का नाश होता है, ऐसे भगवान आत्मा शुद्धचैतन्य के ध्यान में रागादि कालिमा का नाश होता है। ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

वीतराग जिनेन्द्रदेव परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं। भगवान तो महाविदेह में विराजते हैं। सीमन्धर भगवान केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ। उनके पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, आठ दिन रहे थे। दो हजार वर्ष हुए। वहाँ से आकर ये शास्त्र बनाये। भगवान का तो ये सन्देश है। आहाहा! समझ में आया? बाद में हजार वर्ष बाद अमृतचन्द्राचार्यदेव ने ये टीका बनायी। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके हजार वर्ष बाद आपने उद्घाटन किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो भगवान का मार्ग है, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! मार्ग ऐसा है, आहाहा!

शुद्ध चैतन्यवस्तु, इसकी पर्याय में अशुद्धता का परिणमन अनादि का है। अशुद्ध शब्द पुण्य और पाप दोनों अशुद्ध। जब यह आत्मा आनन्दकन्द प्रभु ज्ञायकस्वरूप का अन्तर में ध्यान करता है, द्रव्यस्वभाव में जब एकाग्र होता है, तब उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट होता है, यह उत्पाद होता है और कालिमा-अशुद्धता का व्यय होता है। आहाहा!

फिर से, ध्रुव स्वरूप का ध्यान करने पर, भगवान ध्रुव। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तत्त्वार्थसूत्र। उत्पाद-व्यय-ध्रुव। उत्पाद-व्यय, यह पर्याय है; ध्रुव है, वह द्रव्यस्वभाव त्रिकाल है। तो उत्पाद-व्यय की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर जिसने ध्रुव का ध्यान किया। आहाहा! ये अन्दर में ध्रुव के ध्यान में शुद्धता की उत्पत्ति हुई और अशुद्ध चेतना का व्यय हुआ। उत्पाद-व्यय-ध्रुव। आहाहा! बहुत मार्ग। बापू! अभी तो लोगों ने बाहर में इतना प्रवृत्ति में धर्म मनाया है, इसमें जिन्दगी चली जाती है। ऐसा मनुष्यभव... आहाहा! अनन्त

काल में मिलना मुश्किल है। इसमें वीतराग की भाव की, भव के अभाव की बात न जानी, न मानी, न जानी, वह मनुष्यपना व्यर्थ है। चाहे तो द्रव्यलिंगी साधु अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, परन्तु आत्मज्ञान बिना सब व्यर्थ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सब व्यर्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ना, व्यर्थ नहीं, भटकने में सफल। संसार कहा है। राग को संसार कहा है। तो पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति भी संसार है। अर र र! गजब बात, नाथ! सुना नहीं जाता।

भाई! तुझे तेरे स्वभाव की खबर नहीं, बापू! भगवान! तू अतीन्द्रिय आनन्द और निर्विकल्प स्वभाव से भरा पड़ा है। इस ओर की एकाग्रता से शुद्धता की—धर्म की उत्पत्ति होती है और अशुद्ध ऐसे अधर्म का विनाश होता है। समझ में आया? बहुत कठिन काम, बापू! यह तो बाहर में हो...हा... हो...हा... मन्दिर बनाया और रथयात्रा निकाली और गजरथ निकाला धर्म हो गया। धूल में धर्म नहीं। सुन तो भाई! बापू! तूने अनन्त बार ऐसी की ऐसी जिन्दगी गँवाई। आहाहा! है?

जीवद्रव्य... आहाहा! **शुद्ध स्वरूपमात्र शुद्धचेतनारूप जीवद्रव्य परिणमता है, उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र कहा जाता है; ऐसा मोक्षमार्ग है।** आहाहा! अब विशेष कहते हैं। **कुछ विशेष—वह शुद्ध परिणमन जहाँ सर्वोत्कृष्ट होता है...** अब क्या कहते हैं? कि अपना शुद्धस्वरूप भगवान... द्रव्यसंग्रह में आया है। ४७ गाथा—चार और सात। द्रव्यसंग्रह में आया न? कल-परसों हिन्दी हो गया। इसमें आया है। ४७—चार और सात गाथा। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ऐसा फरमाते हैं कि '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' निश्चयमोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है। अर्थात् शुद्धचैतन्य का ध्यान जहाँ लगाया, तब जो वीतरागी परिणति उत्पन्न हुई, वह निश्चयमोक्षमार्ग है और बाकी जो राग रहा, उसको उपचार से आरोप से व्यवहार मोक्षमार्ग का आरोप दिया। समझ में आया?

द्रव्यसंग्रह है। पाठशाला में पढ़ाते हैं परन्तु अर्थ का ठिकाना नहीं। छहढाला पाठशाला में पढ़ाते हैं। तो छहढाला में तो ऐसा कहा, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक

उपजायो' और बाद में भी ऐसा कहा, 'लाख बात की बात...' छहढाला में आता है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ जगत द्वंद्व फंद निज आतम उर ध्याओ।' आहाहा! छहढाला है, छहढाला सेठ! पढ़ी है? हमारे नवनीतभाई को छहढाला याद थी। नवनीतभाई को छहढाला पूरी मुँह से कण्ठस्थ थी, बहुत फेरते थे। छहढाला का बहुत प्रेम था। उनने तो ये व्याख्यान छपाये, मुफ्त में दिया है न। छहढाला का व्याख्यान। चल गया।

यहाँ कहते हैं, शुद्धस्वरूप चैतन्य... 'लाख बात की बात... छोड़ जगत द्वंद्व फंद' आहाहा! यह विकल्प का द्वंद्व अर्थात् द्वैतपना है, यह भी छोड़ दे। आहाहा! एक अन्तर भगवान आत्मा को ध्येय बना। तेरी ध्यान की पर्याय में द्रव्यस्वभाव को ध्येय बनाकर, आहाहा! 'निज आतम उर ध्याओ' यह आत्मा का ध्यान करना, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! भारी कठिन। इसमें कुछ दूसरा साधन हो या नहीं? यही साधन है। आहाहा! ये व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। (तब) राग साधन? राग से वीतरागता उत्पन्न होती है? आहाहा!

मुमुक्षु : राग के अभाव से (होता है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव से (होता है)।

मुमुक्षु : ध्यान तो बहुत किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : दरकार की नहीं। सादडी में सुजानमलजी! आहाहा! जैसे स्त्री को देखकर कैसा प्रेम आता है! ये मेरी अर्धांगिनी है, ये मेरी धूल है। ऐसा आत्मा के प्रति प्रेम आना चाहिए। आहाहा! ये शुभ और अशुभराग का प्रेम छोड़कर, तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा अन्दर विराजता है। आहाहा! इस ओर ढलना। और यहाँ तक कहते हैं, निजस्वरूप की ओर ढलता नहीं और शुभ-अशुभराग, शुभराग में जिसको प्रेम है, उसको आत्मा के प्रति द्वेष है। सूक्ष्म बात। प्रभु! यह तो श्वेताम्बर में एक आनन्दघनजी हुए हैं। उन्होंने थोड़ी बात की है, बाकी इसमें तो कहीं सत्य है नहीं। ये तो नया (सम्प्रदाय) निकला था न। दिगम्बर में से दो हजार वर्ष पहले निकला था। समझे? तो भी आनन्दघनजी ने थोड़ी ऐसी बात की है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, स्वरूपाचरण। स्वरूपाचरण अर्थात् राग—दया, दान का आचरण,

यह स्वरूपाचरण नहीं। यह तो उपाधि का आचरण है। अरे! प्रभु! गजब मार्ग, भाई! आहाहा! अनन्त काल से चौरासी के अवतार में भटक के मरा है। इसने शुभभाव भी अनन्त बार किया। कहा था न? नरक के भव जो अनन्त किये, इससे असंख्य गुणा अनन्त तो स्वर्ग के किये, अभी तक तो। भगवान के, परमात्मा जिनेन्द्रदेव के ज्ञान में आया है कि नरक के जो अनन्त भव किये, मनुष्य के किये, इससे करते असंख्यगुणे अनन्त नरक के किये, और असंख्यगुणे अनन्त असंख्यगुणे अनन्त स्वर्ग के किये। तो स्वर्ग में कोई पाप करके जाता है? आहाहा! ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा तो अनन्त बार की है। आहाहा! इससे स्वर्ग में जाता है और स्वर्ग में से निकलकर वापस पशु और नरक में चला जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, शुद्ध परिणाम चारित्र हुआ। द्रव्यस्वभाव के आश्रय से स्वरूप में आचरण अर्थात् लीनता प्रगट हुई, अब कहते हैं कि शुद्ध भी अनेक प्रकार का है। पहले थोड़ा शुद्ध है, फिर विशेष शुद्ध है, फिर विशुद्ध है। स्वरूप में रमणता बढ़ते... बढ़ते... बढ़ते... शुद्धता बहुत बढ़ती जाती है। समझ में आया? ये कहते हैं, **शुद्ध परिणमन जहाँ सर्वोत्कृष्ट होता है, वहाँ तक शुद्धपने के अनन्त भेद हैं।** आहाहा! अन्तर भगवान का अवलम्बन लेकर शुद्ध पवित्र दशा प्रगट हुई, उसमें भी विशेष आश्रय करते विशेष पवित्रता, विशेष आश्रय करते विशेष पवित्रता प्रगटती है। ऐसे पवित्रता के तो अनन्त भेद हैं। आहाहा! समझ में आया? **अनन्त भेद हैं। वे भेद जातिभेद की अपेक्षा तो नहीं।** क्या कहते हैं? शुद्ध वस्तुस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता प्रगट हुई और पीछे विशेष आश्रय करते विशेष शुद्धता उत्पन्न हुई, उस शुद्धता की जातिभेद नहीं, जाति तो एक ही है। पुण्य और पाप के भाव तो जातिभेद हैं। आहाहा! ऐसी भारी बातें।

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, उसकी एकाग्रता में शुरुआत में सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान-दर्शन और स्वरूपाचरण स्थिरता का अंश प्रगट हुआ, वह मोक्षमार्ग की पर्याय है। बाद में जीवद्रव्य का विशेष आश्रय लिया तो शुद्धता बहुत प्रगट हुई, इससे विशेष आश्रय लेने से शुद्धता प्रगटी, विशेष आश्रय लेने से शुद्धता प्रगट हुई, ऐसे शुद्धता के अनन्त भेद हैं। धर्म की पवित्रता के परिणाम में अनन्त प्रकार हैं, परन्तु वह कोई जाति भेद नहीं।

जाति तो शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... जाति है। ठेठ (तक)। टीका की है न! इसमें से बनारसीदास ने नाटक समयसार (बनाया)। आहाहा! अरेरे! वे बनारसीदास और टोडरमलजी के लिये कहते हैं, ये तो अध्यात्म की भांग पीकर नाचे हैं। अरर! प्रभु... प्रभु! क्या करता है तू ये? अध्यात्म की भांग कहना? नाथ! फलटन में चला था। ललितपुर और फलटन। आहाहा! टोडरमलजी और बनारसीदास अध्यात्म की भाँग पीकर नाचते थे। उनकी दृष्टि के साथ मेल नहीं खाता है इसलिए (ये ऐसा कहते हैं), अध्यात्म की भाँग पी है। अरे! भगवान! ऐसा न शोभे, प्रभु! ऐसे धर्मात्मा ज्ञानी भाँग पीकर नाचे हैं, ऐसा न कहवाए। भाई! आहाहा! समझ में आया? ये तो अध्यात्म की लगन करानेवाले थे। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में कितना प्रकाश किया है! मोक्षमार्गप्रकाशक। आहाहा! सन्तों जैसा काम किया है। सभी बातें शास्त्र के आधार से, हों! सभी बात। शुभराग हो ये बन्ध का कारण है। श्रद्धा में बन्ध का कारण समझो। यदि शुभराग को धर्म मानोगे तो मिथ्याश्रद्धा है। मिथ्यात्व का पोषण है। मिथ्यात्व, संसार है और मिथ्यात्व, वह अधर्म-महान बड़ा अधर्म है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो स्पष्ट बात है, भाई! गुप्त-बुप्त कुछ है नहीं। आहाहा! दुनिया को रुचे, न रुचे। इसके लिये बड़े सन्त जिम्मेदार नहीं कि ये दुनिया को रुचती है या नहीं? समाज में सामंजस्य रहेगा या नहीं? ऐसी बात में गड़बड़ न हो जाये कि अरे! ये तो व्यवहार का नाश करते हैं। लाभ तो दिखता नहीं और नुकसान करता है, ऐसा कहते हैं। मानों बापू! वस्तु तो यह है। व्यवहार नुकसान कारक है। रागादि क्रिया। जिनेश्वरदेव के द्वारा कहा व्यवहार भी संसार है। यह ग्यारहवीं गाथा में आ गया। समझ में आया? ज्ञान कराया, व्यवहार होता है। मुनि सच्चे सन्त भावलिंगी आत्मज्ञानी को भी पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं, परन्तु हैं दुःखरूप, हैं बन्ध के कारण, हैं संसार। जितने विकल्प हैं, ये संसार है। निर्विकल्प स्वरूप के आश्रय जो परिणति, वह मोक्ष का मार्ग अथवा वह मोक्ष। आहाहा!

बहुत शुद्धता, इससे अधिक, इससे अधिक ऐसा भेद है, परन्तु जाति भेद नहीं। आहाहा! जाति भेद नहीं। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को शुद्धता प्रगट होती है। इससे (अधिक) पाँचवें गुणस्थान की शुद्धता है। ये तो सच्चा श्रावक, हों! वाड़े का श्रावक, वे

श्रावक है ही नहीं। अभी इसे सम्यग्दर्शन की भी खबर नहीं। यह तो मार्ग... प्रभु! त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव के मार्ग का ऐसा प्रवाह है।

भगवान महाववि देहक्षेत्र में विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का शरीर है। आहाहा! करोड़ पूर्व का प्रभु आयुष्य है। मुनिसुव्रतनाथ भगवान के समय दीक्षा ली है। तुरन्त केवलज्ञान पाया है। अभी केवलज्ञानी परमात्मा है। आगामी चौबीसी के जब तेरहवें तीर्थंकर होंगे, तब मोक्ष जायेंगे। तब तक करोड़ों अरब वर्ष विराजेंगे। वर्तमान समवसरण में धर्मोपदेश होत है और विराजते हैं। मनुष्यक्षेत्र में, हों! सिद्ध में नहीं। महावीर आदि भगवान तो णमो सिद्धाणं में गये। ये तो णमो अरिहंताणं में हैं। चार कर्म क्षय हुए, चार कर्म बाकी हैं। आठ कर्मों का नाश हो जायेगा तो सिद्ध हो जायेंगे। चार कर्मों का नाश करके केवलज्ञानी परमात्मा विराजते हैं। अभी चार कर्म बाकी हैं, इसलिए अरिहन्त हैं। अरिहन्त को वाणी अभी होती है, सिद्धों को वाणी नहीं होती। आहाहा! उन भगवान की वाणी में यह आया है। आहाहा!

भाई! तेरी चीज़ है न, नाथ! शुद्धस्वरूप का भण्डार तेरा आत्मा है। उस शुद्धस्वरूप की एकाग्रता करने से शुद्धता उत्पन्न होती है। विशेष एकाग्रता से विशेष शुद्धता उत्पन्न होती है। ये शुद्धता का भेद भले ही थोड़ा-ज्यादा है, परन्तु जाति भेद नहीं। आहाहा! चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण चारित्र की दशा, उससे पाँचवें गुणस्थान में सच्चे सन्त श्रावक समकित दृष्टि सहित की बात है, हों! उसका स्वरूपाचरणचारित्र विशेष निर्मल है। छठवे में विशेष, सातवें में विशेष, ऐसे करते-करते केवलज्ञान में पूर्ण स्वरूपाचरण (चारित्र) हो गया। आहाहा! समझ में आया?

जितनी शुद्धता होती है, उतना ही मोक्ष का कारण है। देखो! **जब सर्वथा शुद्धता होती है, तब सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्षपद की प्राप्ति होती है।** आहाहा! क्या कहा? वस्तु जो शुद्ध चैतन्यघन परमात्मा आत्मा है। परमात्मस्वरूप ही आत्मा है, तो उसमें से परमात्मा पर्याय में इनलार्ज होता है। आहाहा! उस परमात्मस्वरूप का ध्यान करते जितनी शुद्धता उत्पन्न हुई, वह शुद्धता थोड़ी-बहुत ये सब मोक्षमार्ग है और पूर्ण शुद्धता हुई, वह मोक्ष है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : स्थिरता अन्दर....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिरता, अन्दर शुद्ध में लीनता। अशुद्धता घटती जाती है, शुद्धता बढ़ती जाती है। अशुद्धता से धर्म होता है, यह दृष्टि तो छूट गयी। शुद्धता से धर्म होता है, यह दृष्टि हुई, परन्तु अभी अशुद्धता बाकी रही। यह अशुद्धता न हो तो केवलज्ञान हो जाये। आहाहा! तो जितनी जितनी शुद्धस्वरूप में लीनता होती है, उतनी-उतनी अशुद्धता का नाश होता है। पूर्ण शुद्धता उत्पन्न हुई, तब आठों कर्म का नाश होता है। आहाहा! यह बात है। अरे! इसकी श्रद्धा तो करे। इसके ज्ञान में और जमावट तो करे। आहाहा! भले विकल्पसहित पहले करे। आहाहा! मार्ग तो यह है, ऐसा निर्णय तो कर, नाथ! आहाहा! अरे! कोई रक्षक नहीं, भाई! रक्षक और शरण तो तेरा आत्मा है, प्रभु! आहाहा! यह शरीर में मरण की वेदना-पीड़ा... आहाहा! कौन शरण वहाँ? प्रभु! यह पुण्य परिणाम शरण है? यह पुण्य परिणाम तो गये और कर्म में परमाणु बँध गये। वह तो रहे नहीं। नया पुण्य कर तो वह भी राग है। भगवान... भगवान... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... करे परन्तु ये तो विकल्प-राग है। आहाहा! भगवान आत्मा राग के विकल्प से रहित प्रभु, उस शुद्धता का जितना आश्रय लिया इतनी शुद्धता प्रगट हुई, वह मोक्ष का मार्ग। पूर्ण शुद्धता प्रगट हो जाती है ये मोक्ष। आहाहा!

किस कारण? 'सदा ज्ञानस्य भवने एकद्रव्यस्यभावत्वात्' आहाहा! गजब बात करते हैं! क्या कहते हैं? **'सदा ज्ञानस्य भवने एकद्रव्यस्यभावत्वात्' तीनों कालों में... 'सदा'** अर्थात् तीनों काल। **'ज्ञानस्य भवने' ऐसा है जो शुद्धचेतना-परिणमनरूप... 'ज्ञानस्य भवने'** अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्य। उसका चेतना परिणमनरूप। **स्वरूपाचरण चारित्र वह आत्मद्रव्य का निजस्वरूप है,... 'एकद्रव्यस्यभावत्वात्'** ऐसा शब्द पड़ा है न? **एकद्रव्यस्यभावत्वात्'** क्या कहते हैं यह? इस कारण एकद्रव्यस्वभाव—एक जीवद्रव्यस्वभाव है। द्रव्यस्वरूप है। आहाहा! **शुभाशुभ क्रिया की उपाधिरूप नहीं... तीनों कालों में ही ऐसा है जो शुद्धचेतना-परिणमनरूप स्वरूपाचरणचारित्र, वह आत्मद्रव्य का निजस्वरूप है,...** आहाहा! स्वरूप वीतराग है और उसमें वीतरागता स्वरूप की पर्याय प्रगट हुई। वह शुद्धचेतनारूप स्वरूपाचरणचारित्र है। **वह आत्मद्रव्य का**

निजस्वरूप है,... वह तो निजस्वरूप का परिणमन है। समझ में आया?

शुद्धचेतना-परिणमनरूप स्वरूपाचरणचारित्र वह आत्मद्रव्य का निजस्वरूप है, शुभाशुभ क्रिया की तरह उपाधिरूप नहीं... आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे उपाधि हैं। अरर! अब इनको अभी धर्म मनाया। और लोग प्ररूपणा भी ऐसी करते हैं। अरे! भगवान! इसमें वीतरागमार्ग का ध्वंस होता है। आहाहा! मार्ग प्रभु! ऐसा है, भाई! गाथा बहुत ही स्पष्ट! क्या कहा? यह आत्मद्रव्य का निजस्वरूप शुभाशुभक्रिया की भाँति उपाधि नहीं। यह पंच महाव्रत विकल्प आदि तो शुभभाव उपाधि है। वह जीव का स्वरूप नहीं। अहाहा! है या नहीं? ये सोनगढ़ का है? आहाहा! अनादि से सन्त दिगम्बर महामुनि वीतरागी सन्त ऐसा कहते आये हैं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ भी ऐसा कहते थे, ये लेकर आये। भगवान का सन्देश लेकर कुन्दकुन्दाचार्य (आये)। वहाँ आठ दिन रहे। संवत् ४९, दो हजार वर्ष पहले। आये (और कहा) भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं कि जितना शुभाशुभभाव है, वह उपाधि है और त्रिकाली शुद्धस्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुई शुद्धता निरूपाधि है। समझ में आया? आहाहा! इसके ज्ञान में, श्रद्धा में अभी सत्य नहीं तो उसका आचरण कहाँ से आया? समझ में आया? शान्तिभाई! जवाहरात-फवाहरात में तो... आहाहा! कान्तिभाई है न! आया है न? लाठीवाले चला गया? गया। यहाँ बैठा। ठीक! आहाहा! क्या कहते हैं? शुद्धचैतन्य वस्तु में निर्मल आचरण, वह स्वरूपाचरणचारित्र, वह एक '**एकद्रव्यस्यभावत्वात्**'। एक जीवद्रव्य का स्वभाव होने से। आहाहा!

एक जीवद्रव्यस्वरूप है... आहाहा! एक द्रव्यस्वभाव की यह व्याख्या हुई और पुण्य-पाप एक द्रव्य नहीं, वह तो परद्रव्य के संयोगीभाव उपाधि हैं। आहाह! पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति, भगवान की पूजा, भक्ति (करना) और मन्दिर बनवाने में लाखों-करोड़ों खर्च करना, ये सब भाव राग की मन्दता के शुभभाव उपाधि हैं। बैंगलोर में कहा था। बारह लाख का अपना दिगम्बर मन्दिर बनाया है। बैंगलोर बारह लाख का मन्दिर। दोनों श्वेताम्बर। एक श्वेताम्बर था उसने आठ लाख दिये और चार लाख एक स्थानकवासी ने दिये। बारह लाख का एक दिगम्बर मन्दिर। परन्तु देखनेयोग्य है। बैंगलोर हम गये थे

न। इसने कहा, देखो! तुमने बारह लाख खर्चे और आठ लाख दिये तो तुमको धर्म हो गया (ऐसा नहीं)। राग की मन्दता हो तो पुण्य है, उपाधि है। आहाहा! भभूतमल यहाँ आया था न? उसके पास दो करोड़ रुपये हैं, आठ लाख खर्चे और जुगराजजी स्थानकवासी हैं। मुम्बई में महावीर मार्केट है। एक करोड़ है, इसने चार लाख (रुपया) दिये थे। भाई! यह बात होती है, परन्तु इसके परिणाम का भाव तो शुभ है और बाहर की क्रिया तो आत्मा कर सकता नहीं। आहाहा! विशेष भावार्थ कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १०, गुरुवार, दिनांक २२-०९-१९७७
कलश-१०६ से १०८, प्रवचन-१०२

दशलक्षणी पर्व का आज छठवाँ दिन है। उत्तमसंयम। उत्तमसंयम क्यों कहा? पहले अपने आनन्द का अनुभवरूपी सम्यग्दर्शन होना चाहिए, बाद में संयम और चारित्र आता है। जिसके संयम सम्यग्दर्शन... यह दोपहर आया न? द्रव्यस्वभाव आत्मा का आनन्द, उस आनन्द का वेदन अनुभव में न आया तो सम्यग्दर्शन है नहीं। आहाहा! और सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र निश्चय और व्यवहार एक भी नहीं होता। उस कारण से उत्तम शब्द लिया है। प्रत्येक में उत्तमक्षमा आदि। हेतु तो आत्मा के आनन्द के स्वाद का है।

जिसको सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है, उसको चारित्र अर्थात् स्वरूप के आनन्द में रमणता होती है। अतीन्द्रिय आनन्द में लवलीन प्रचुर स्वसंवेदन आता है, उसको चारित्र कहते हैं। उस चारित्रवन्त को व्यवहार का विकल्प भी कैसा होता है और निश्चय में दर्शन और चारित्र के साथ कैसा व्यवहार होता है, यह बात करते हैं।

जो जीवरक्खणपरो गमणागमणादिसव्वकज्जेसु।
तण छेदं पि ण इच्छदि संजमधम्मो हवे तस्सो॥३९९॥

मुनिराज आपने आनन्दस्वभाव में लीन न रह सकें, तब ईर्या और एषणा, भाषा (समिति) में आते हैं, तो उनके लिये बनाया आहार भी नहीं लेते व्यवहार में, निश्चय में तो आहार लेना, यह है नहीं। ध्यान के आनन्द में मस्त रहना, वह निश्चयचारित्र है। समझ में आया? '**तण छेदं पि ण इच्छदि**' एक तृण के दो टुकड़ा भी न करें। ऐसे यत्न से जिसकी क्रिया है। आहहा! यति अर्थात् स्वरूप की यत्ना करते हैं, उसमें बाह्य की यत्ना का विकल्प होता है तो किसी प्राणी का अहित हो, ऐसा भाव नहीं करते। समझ में आया? और '**गमणागमणादिसव्वकज्जेसु**' गमन, आगमन आदि कार्यों में। कार्य यह। आहाहा!

प्रमाद का भाव छोड़कर '**तण छेदं पि ण इच्छदि संजमधम्मो हवे तस्सो**' उसको संयम होता है। अहाहा!

भावार्थ है। **इन्द्रिय और मन को वश में करना...** इन्द्रिय को वश में करने की व्याख्या सूक्ष्म है। समयसार ३१ गाथा में (ऐसा कहा)। '**जे इंदिये जिणित्ता**' जो कोई आत्मा द्रव्येन्द्रिय—यह जड़, भावेन्द्रिय एक-एक विषय को जाननेवाला क्षयोपशमभाव और बाह्य भगवान की वाणी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार के भगवान का शरीर, ये सब इन्द्रिय हैं। इन्द्रिय के विषय, वह इन्द्रिय हैं, ऐसा लिया है। आहाहा! कल कहा था न किसी ने? '**जे इंदिये जिणित्ता**' तुमने कहा था? '**जे इंदिये जिणित्ता**' यह कहाँ से आया? इन्द्रिय जीतना। अरे! बापू! इन्द्रिय को जीतने का अर्थ क्या आया? जैसे ये पाँच इन्द्रिय जड़ हैं, उनका भी लक्ष्य छोड़ना और भाव इन्द्रिय एक-एक इन्द्रिय के विषय को जानती है, उसको भी छोड़ना, आहाहा! और भगवान और स्त्री, कुटुम्ब-परिवार और भगवान की वाणी का भी लक्ष्य छोड़ना। ऐसी बात है। ३१वीं गाथा में है। ये अभी बात ही चलती नहीं। अभी तो बाहर के क्रियाकाण्ड, सम्यग्दर्शन के बिना ये भी क्रिया कितनी साधारण, स्थूल। आहाहा! उसमें संवर और निर्जरा है ऐसा मान लेते हैं। अरे!

यहाँ तो कहते हैं, अपने में मन और इन्द्रिय का दमन (करना)। इन्द्रिय में तो भगवान की वाणी और भगवान स्वयं इन्द्रिय में आते हैं। अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, अनीन्द्रिय ऐसे आत्म में रहना, उसने इन्द्रियों को जीता ऐसा कहने में आता है। शान्तिभाई! आहाहा! ऐसी बात है। समयसार ३१वीं गाथा में है। लोग कहते हैं, इन्द्रियों को जीती। क्या.. इन्द्रिय... इन्द्रिय... (जीती कहते हैं)। ये जड़ और भावइन्द्रिय और उसका विषय, उस ओर का लक्ष्य छोड़कर अनीन्द्रिय भगवान आत्मा में आना, उसे इन्द्रियाँ जीतीं ऐसा कहने में आता है। ये, ये इन्द्रिय, मन का संयम। समझ में आया?

तथा छह काय के जीवों की रक्षा करना। अथवा छह काय के जीवों को नहीं मारने का भाव। रक्षा कर सकता नहीं। रक्षा तो शब्द है। और **मुनि को आहार विहारादि करने में गमन-आगमनादि काम करना पड़ता है परन्तु वह कार्य करते ऐसा परिणाम रहा करता है कि तृणमात्र का भी छेद न करूँ....** आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! **मेरे निमित्त**

से किसी का अहित न हो, ऐसे यत्नरूप प्रवर्तते हैं, जीवदया में ही तत्पर रहते हैं। यह उत्तम संयम।

अपना वर्तमान में १०६ कलश, उसका भावार्थ। अन्तिम पाँच लाईन हैं। आहाहा! **जो गुण-गुणीरूप भेद करते हैं तो ऐसा भेद होता है...** क्या कहते हैं? एक जीवद्रव्य -स्वरूप... कहा था न? **आत्मद्रव्य का निजस्वरूप है, शुभाशुभ क्रिया के समान उपाधिरूप नहीं है, इस कारण... 'एकद्रव्यस्यभावत्वात्'** अब कहते हैं कि शुद्धपना पवित्र शुद्ध द्रव्य और शुद्धपना—पुण्य-पाप के विकल्प से रहित आत्मद्रव्य के स्वभाव की परिणति शुद्ध हुई, उस परिणति को गुण कहो, भगवान को—आत्मा को गुणी कहो। ऐसा गुणी-गुण का भेद करके तो ऐसा भेद होता है। शुद्धता और जीव, ऐसे दो भेद करे तो भेद होता है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, बापू! आहा! चौरासी के अवतार में भटक मरता है। मुनिव्रत भी अनन्त बार धारण किया। क्रियाकाण्ड का। ऐसी क्रिया तो अभी है नहीं। नौवें ग्रैवेयक गया, पंच महाव्रत (पाले), हजारों रानियाँ छोड़ीं, नग्न दिगम्बर (होकर) अट्ठाईस मूलगुण पाले। वे कैसे चुस्त? इनके लिये चौका बनाकर (आहार बनाया हो) प्राण जाए तो भी ले नहीं। उद्देशिक आहार का तो ग्यारहवीं प्रतिमा में ही त्याग है। जिनेश्वरदासजी! उनके लिये बनाया हो, उसका त्याग तो ग्यारहवीं प्रतिमा में है, तो मुनिराज की तो क्या बात करनी!

यहाँ कहते हैं, यह पुण्य-पाप के विकल्प से रहित आत्मद्रव्य के स्वभाव की परिणति शुद्ध हुई ये गुण है और आत्मा गुणी है, ऐसा भेद जानने में पड़ता है। आहाहा! **जीव का शुद्धपना गुण;...** देखो! **जो वस्तुमात्र अनुभव करते हैं, तो ऐसा भेद भी मिटता है,...** आहाहा! अन्तर के अनुभव में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में जब रहता है तो गुण और शुद्ध और जीव, ऐसा भेद भी इसमें नहीं रहता। आहाहा! चैतन्य शुद्ध पवित्र वस्तु है, ऐसा भेद भी अनुभव में नहीं रहता, कहते हैं। शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अरे! इसने सत्य की शरण कभी ली नहीं।

यह क्रियाकाण्ड दया, दान, व्रत, भक्ति आदि व्यवहार क्रिया, वह स्वरूप की घातक है। यह आगे आयेगा। १०८ कलश में आयेगा। व्यवहार क्रियाकाण्ड तो दुष्ट है,

अनिष्ट है, घातक है। १०८ में आयेगा। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित आत्मा के अनुभव की स्थिरतासहित जो कोई पंच महाव्रत का विकल्प आता है। १०८ कलश की तीसरी पंक्ति, तीसरी पंक्ति। है? आचरणरूप चारित्र तो करनेयोग्य नहीं, कोई ऐसा कहे १०८ **कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप जो आचरणरूप चारित्र है, सो करनेयोग्य नहीं। उसी प्रकार वर्जवा करनेयोग्य नहीं।** ऐसा नहीं। **उत्तर ऐसा है कि - वर्जन करनेयोग्य है।** ये पंच महाव्रत आदि की क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, वे तो छोड़नेयोग्य हैं। **वर्जनेयोग्य हैं। क्योंकि व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट हैं...** आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप से अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन से भिन्न विकल्प जो चारित्र व्यवहार, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है, **दुष्ट है, अनिष्ट है,...** आहाहा! अरे! लोग इसमें ही मान बैठे हैं कि हम धर्म करते हैं। प्रतिमा पालते हैं। सात प्रतिमा और दस प्रतिमा। अरे! भाई! यह प्रतिमा के विकल्प तो सम्यग्दर्शन के बिना नुकसानकारक हैं, पर सम्यग्दर्शनसहित भी जो पंच महाव्रत के विकल्प हैं, वह आत्मा के स्वरूप के घातक हैं। शान्तिभाई! हैं? यह किसी दिन पढ़ा भी नहीं होगा। घर में पुस्तक पढ़ी है या नहीं? है न? होते तो हैं। हमारी बहिन है, तो रखती है न! तुम्हारे कहाँ? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, सम्यग्दर्शन जहाँ अनुभव नहीं, आनन्द का स्वाद जहाँ नहीं, वहाँ तो क्रियाकाण्ड निश्चय-व्यवहार एक भी नहीं होता। यह मानता है कि मैंने यह प्रतिमा और महाव्रत लिये हैं। यह हैं ही नहीं यहाँ तो आत्मा का आनन्द स्वभाव... एक जीवद्रव्य लिया न? जीवद्रव्य का स्वभाव। यह दया, दान की क्रिया जीवद्रव्य का स्वभाव नहीं, यह पुद्गल का स्वभाव। आहाहा! माफाभाई! कहाँ यह सब सुना था वहाँ? यह सेठिया था वहाँ। हमारे भावनगर का सेठ है, सेठ। अब इस बार आ गया है। पर्यूषण ही यहाँ किये। भावनगर का सेठ है न! बापू! मार्ग... प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, सन्त कहते हैं, वह परमात्मा कहते हैं; परमात्मा कहते हैं, वह सन्त कहते हैं कि... भावार्थ आया न? गुण-गुणी का भेद करना ये नहीं। **जीव का शुद्धपना गुण...** यह नहीं। आहाहा! क्रिया तो नहीं, व्यवहार की (क्रिया) तो उसमें है ही नहीं, आहाहा! परन्तु गुण-गुणी का भेद भी **वस्तुमात्र का अनुभव करें तो ऐसा भेद भी मिटता है...** आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! जिनेन्द्र प्रभु... आहाहा! **क्योंकि**

शुद्धपना तथा जीवद्रव्य वस्तु से तो एक सत्ता है। वस्तु—आत्मा शुद्ध है, पवित्र है। परन्तु ये तो एक ही है। पवित्र और आत्मा दोनों एक ही चीज़ हैं। पवित्र की सत्ता भिन्न और आत्मा की सत्ता भिन्न, ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! **ऐसा शुद्धपना मोक्ष का कारण है...** ऐसा शुद्धपना मोक्ष का कारण है। **इसके बिना जो कोई क्रियारूप...** इसके बिना कोई भी विकल्प महाव्रत का, प्रतिमा का, दया, दान का, व्रत, भक्ति का, भगवान की पूजा का विकल्प, यह करतूति बन्ध की कारण है। है? आहाहा! १०६ (कलश पूरा हुआ)। १०७।

कलश-१०७

(अनुष्टुप्)

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत्।।8-107।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'कर्मस्वभावेन वृत्तं ज्ञानस्य भवनं न हि' [कर्मस्वभावेन] जितना शुभ क्रियारूप अथवा अशुभ क्रियारूप आचरणलक्षण चारित्र उसके स्वभाव से अर्थात् उसरूप जो [वृत्तं] चारित्र वह [ज्ञानस्य] शुद्ध चैतन्यवस्तु का [भवनं] शुद्धस्वरूपपरिणमन [न हि] नहीं होता ऐसा निश्चय है। भावार्थ इस प्रकार है-जितना शुभ-अशुभक्रियारूप आचरण अथवा बाह्यरूप वक्तव्य अथवा सूक्ष्म अन्तरंगरूप चिन्तवन अभिलाष स्मरण इत्यादि समस्त अशुद्धत्वरूप परिणमन है, शुद्ध परिणमन नहीं; इसलिए बन्ध का कारण है, मोक्ष का कारण नहीं है। इस कारण जिस प्रकार कामला का नाहर (सिंह) कहने के लिये नाहर है उसी प्रकार आचरणरूप (क्रियारूप) चारित्र कहने के लिए चारित्र है, परन्तु चारित्र नहीं है, निःसन्देहरूप से ऐसा जानो। 'तत् कर्म मोक्षहेतुः न' [तत्] इस कारण [कर्म] बाह्य-आभ्यन्तररूप सूक्ष्म-स्थूलरूप जितना आचरणरूप (चारित्र) है वह [मोक्षहेतुः न] कर्मक्षपण का कारण नहीं, बन्ध का कारण है। किस कारण से? 'द्रव्यान्तरस्वभावत्वात्' [द्रव्यान्तर] आत्मद्रव्य से भिन्न पुद्गलद्रव्य, उसके [स्वभावत्वात्] स्वभावरूप होने से, अर्थात् यह सब पुद्गल द्रव्य के उदय का कार्य है, जीव का स्वरूप नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है-जो शुभ-अशुभ क्रिया, सूक्ष्म-

स्थूल अन्तर्जल्प बहि:जल्परूप जितना विकल्परूप आचरण है वह सब कर्म का उदयरूप परिणमन है, जीव का शुद्ध परिणमन नहीं है; इसलिए समस्त ही आचरण मोक्ष का कारण नहीं है, बन्ध का कारण है।।8-107।।

कलश - १०७ पर प्रवचन

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत्।।8-107।।

खण्डान्वय सहित अर्थ - 'कर्मस्वभावेन वृत्तं ज्ञानस्य भवनं न हि' जितना शुभ क्रियारूप अथवा अशुभ क्रियारूप आचरणलक्षण.... जितनी शुभयोग की क्रिया पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि शुभक्रिया या अशुभक्रिया। **उसरूप जो चारित्र, वह शुद्ध चैतन्यवस्तु का शुद्धस्वरूपपरिणमन नहीं होता,...** आहाहा! ऐसी दया, दान, व्रत (पाले), अरे! संथारा करे दो-दो महीने के। समझ में आया? परन्तु आत्मज्ञान के भान बिना, अरे! आत्मज्ञान के भान सहित हो तो भी... आहाहा! वह चारित्र **शुद्धस्वरूपपरिणमन नहीं होता,...** उससे आत्मा की पवित्रता प्रगट नहीं होती। आहाहा! शान्तिभाई! शान्तिभाई आये हैं। रतलाम से आये हैं। आहाहा! ऐसा भगवान अकषाय शुद्धस्वरूप विराजमान है। ऐसा स्वभाव शुद्ध परिणमन सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का, वह शुभ क्रियाकाण्ड से नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! अभी तो यही प्ररूपणा चलती है। व्यवहार करो, करते-करते निश्चय होगा। विकार करो, राग करो, राग करते-करते वीतरागता हो जायेगी। लहसुन खाने से कस्तूरी की डकार आयेगी। नहीं? लहसुन... लहसुन। खाते हैं न? उसी प्रकार व्यवहार क्रियाकाण्ड... यद्यपि ऐसे व्यवहार क्रियाकाण्ड करके नौवें ग्रैवेयक के साधु दिगम्बर मिथ्यादृष्टि में गया, ऐसी क्रिया तो अभी है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जितनी शुभक्रिया रागादि की है, उससे शुद्धस्वरूप परिणमन होता नहीं। इससे आत्मा द्रव्य का परिणमन, धर्मरूप परिणमन ऐसी अशुद्ध क्रिया से होता नहीं। आहाहा! अरे रे! अभी मूल बात की तो खबर नहीं मिले और बड़े पंच महाव्रत लिये और बारह व्रत लिये और सात, दस और ग्यारह प्रतिमा लीं। क्या होता है? प्रभु! यहाँ तो ऐसा

कहते हैं, प्रभु! तेरी पवित्रता से भरा भगवान है न! यह पवित्रता का परिणमन उस अपवित्र क्रियाकाण्ड से कभी होता नहीं... शान्तिभाई! आहाहा! है? **नहीं होता, ऐसा निश्चय है।** है? जिनेश्वरदासजी! ऐसा निश्चय है, आहाहा! व्रत और नियम और तप और अपवास और यह लाख करोड़ क्रिया तेरी कर न, उससे शुद्धता-आत्मधर्म होता नहीं। समझ में आया? लोगों को यह कड़वा लगता है। बाद में सोनगढ़ के नाम खताते हैं। यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय... व्यवहार से कुछ होता नहीं, व्यवहार को तो उड़ा दिया है। ये कौन उड़ाते हैं? ये यहाँ का है? भाई! तुझे खबर नहीं। प्रभु! तेरी पवित्रता से भरा भगवान, पवित्रता का सागर आत्मा है। उस पवित्रता की परिणति प्रगट हुई, वह क्रियाकाण्ड से तीन काल में होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! **ऐसा निश्चय है।**

भावार्थ इस प्रकार है - जितना शुभ-अशुभक्रियारूप आचरण... शुभ-अशुभ परिणति आचरण **अथवा बाह्यरूप वक्तव्य...** बाह्य वक्तव्य। बाह्य वक्ता... वक्ता। बोलना। वक्ता हुआ। इसमें क्या हुआ? वह तो विकल्प राग वाणी है। और वाणी में कहने का विकल्प है, वह तो राग है। आहाहा! समझ में आया? समाधिशतक में तो यहाँ तक कहा है... पूज्यपादस्वामी। अरे! उपदेश का विकल्प उठता है, वह पागल है। चारित्रदोष है न। सूक्ष्म बात, भाई! राग चारित्रदोष का पागल, हों! सम्यग्दर्शन (दृष्टि दोष) का पागल नहीं। और तत्त्वार्थसूत्र में पहले अध्याय में आखिरी सूत्र है, ये मिथ्यादर्शन का पागलपना। तत्त्व को अतत्त्व समझता है। उमास्वामी तत्त्वार्थसूत्र। ये मिथ्यादर्शन का पागलपना। पहले अध्याय का आखिरी (सूत्र) और यह चारित्रदोष का पागलपना। आहाहा!

भगवान निर्विकल्प वीतरागमूर्ति प्रभु में यह विकल्प उठाना, यह दोष है और इस क्रियाकाण्ड से अपनी परिणति शुद्ध होती है, ऐसा तीन काल में नहीं। आहाहा! समझ में आया? और शुद्धता के भान बिना जन्म-मरण कभी मिटता नहीं। यह क्रियाकाण्ड तो पूरा संसार है। व्रत और नियम और तप और उपवास, यह सब संसार है, राग है। आहाहा! ऐसी बात सुनना कठिन पड़ती है। क्या हो? तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा मार्ग तो यह है उसे क्रियाकाण्ड के राग के रास्ते धर्म मना दिया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं। **बाह्यरूप वक्तव्य अथवा सूक्ष्म अन्तरंगरूप...** सूक्ष्म अन्तरंगरूप

आहाहा! **चिन्तवन...** आहाहा! **अभिलाष स्मरण इत्यादि समस्त अशुद्धत्वरूप परिणमन है,...** यह अशुद्धरूप परिणमन है। आहाहा! शुभ-अशुभरूप आचरण, बाह्यरूप वक्तव्य, सूक्ष्म अन्तरंग विकल्प, चिन्तवन, अभिलाष। आहाहा! स्मरण-परमात्मा आदि का स्मरण **इत्यादि समस्त अशुद्धत्वरूप परिणमन है,...** यह तो अशुद्धरूप परिणमन है। आहाहा! **शुद्ध परिणमन नहीं;...** यह धर्म परिणमन नहीं। आहाहा! ऐसी बात। उसमें से समयसार नाटक बनाया है। राजमलजी की टीका में से बनाया है, **इसलिए बन्ध का कारण है,...** कौन? शुभ-अशुभक्रिया, बाह्य वक्तव्य, सूक्ष्म अन्तरंग चिन्तवन, अभिलाष, स्मरण, (यह) बन्ध के कारण हैं, यह कोई धर्म नहीं। आहाहा! **मोक्ष का कारण नहीं है।** अन्तरंग सूक्ष्म वक्तव्य, बाह्य आचरण शुभराग, महाव्रतादि, ये सब मोक्ष के कारण नहीं। आहाहा!

इस कारण जिस प्रकार कामला का नाहर (सिंह) कहने के लिये नाहर है,... वह क्या कहलाता है? कम्बल... कम्बल। बनुस में होता है न? बनुस... छपा हुआ। बनुस में सिंह छपा है। बनुस होता है न? सिंह छपा है। वह कोई सिंह नहीं। आहाहा! कामली... कामली अपने क्या कहते हैं? बनुस... बनुस नहीं? कामला भी आपने बनुस कहते हैं। मखमल का बनता है। इसमें सिंह की छाप होती है। छपा हुआ सिंह। ऐसे ये कामला का सिंह नहीं। ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे धर्म नहीं। सेठी! सेठ! ऐसे के ऐसे जिन्दगी गुजारी, समझे बिना, ऐसा कहते हैं। यह कहते हैं कि सुनानेवाला नहीं मिला, ऐसा सेठ कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का है, प्रभु! कामला का सिंह... कामला का सिंह है... वह कहनेरूप नाहर है।

उसी प्रकार आचरणरूप (क्रियारूप) चारित्र... आहाहा! पंच महाव्रत, बारह व्रत, यह क्रिया राग **कहने के लिये चारित्र है, परन्तु चारित्र नहीं है,...** आहाहा! ऐसा स्पष्ट कथन, उसे पढ़े नहीं, विचारे नहीं, माने नहीं। ऐसे के ऐसे अन्धी दौड़ से चला जाये। आहाहा! समझ में आया? अरे! भाई! तरने का उपाय, जन्म-मरण से तरने का उपाय तो शुद्धस्वरूप है। ये अशुद्ध आचरण तरने का उपाय है ही नहीं। आहाहा! तो कहते हैं कि व्यवहार तो है न? परन्तु व्यवहार से यह कहा न? कामला का सिंह कहने में आता है, ऐसे व्यवहार से कहने में आता है। आत्मा का शरण इसको नहीं। आहाहा! **चारित्र नहीं है,**

निःसन्देहरूप से ऐसा जानो। निःसन्देह, सन्देह नहीं कहना कि कुछ... कुछ... कुछेक व्यवहार क्रियाकाण्ड करते-करते होगा। शुभयोग से कुछ तो लाभ होगा कि नहीं। सन्देह नहीं करना। आहाहा! निःसन्देहपने निर्णय करना। समझ में आया? यह सराग संयम-क्रियाकाण्ड, ये निश्चयचारित्र का कारण है। ऐसी प्ररूपणा अभी चलती है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग प्रभु! ऐसा नहीं। यह राग की क्रिया के चितरामण नाम का सिंह है-नाम का चारित्र है, वस्तु है नहीं। आहाहा!

'तत् कर्म मोक्षहेतुः न' इस कारण बाह्य-आभ्यन्तररूप सूक्ष्म-स्थूलरूप जितना आचरणरूप... देखो! बाह्य आचरण, अभ्यन्तर विकल्प का आचरण। आहाहा! बाह्य में नग्न आचरण, अभ्यन्तर में विकल्प का आचरण। आहाहा! **सूक्ष्म-स्थूलरूप जितना आचरणरूप (चारित्र) है, वह कर्मक्षपण का कारण नहीं,...** वह मोक्ष हेतु नहीं। अरे! प्रभु! भारी कठिन काम। एक ही कलश में इतना भरा है, लो! वाँचते नहीं न, (वाँचे तो) अपने दृष्टि रखकर वाँचता है। भगवान तेरा द्रव्य जो भगवान परमात्मस्वरूप, सच्चिदानन्द आनन्द का नाथ भगवान, इसके आश्रय बिना धर्म तीन काल में होता नहीं। आहाहा! स्वद्रव्य आश्रय 'निश्चय नयाश्रित मुनिवरों प्राप्ति करें निर्वाण की।' आहाहा! अरे! इसकी श्रद्धा तो कर! इसका विश्वास तो ला कि मार्ग तो ये है!! आहाहा! **कर्मक्षपण का कारण नहीं, बन्ध का कारण है।**

किस कारण से? यह तो कितना कहा है? **'द्रव्यान्तरस्वभावत्वात्'** आत्मद्रव्य से अन्तर अर्थात् **भिन्न पुद्गलद्रव्य, उसके स्वभावरूप होने से,...** आहाहा! गजब बात है! यह व्रत और नियम, और स्मरण और भगवान की भक्ति, पूजा आदि... आहाहा! झगड़ा करें न लोग। यह आत्मद्रव्य से... **'द्रव्यन्तर'** है न? **'द्रव्यन्तर'** आत्मद्रव्य से अन्य द्रव्य। भगवान आत्मा आनन्दकन्द प्रभु से अन्य पुण्य, दया, दान के विकल्प अन्य पुद्गल के परिणाम है ये तो। आहाहा! कठिन काम। **आत्मद्रव्य से भिन्न...** अन्तर का अर्थ भिन्न किया। **द्रव्यान्तर'** है न? **'द्रव्यान्तर'** द्रव्य से अन्य। **पुद्गलद्रव्य, उसके... 'स्वभावत्वात्' स्वभावरूप होने से, अर्थात् यह सब पुद्गलद्रव्य के उदय का कार्य है,...** यह तो सब पुद्गल के उदयरूप कार्य है; आत्मा के कार्य नहीं। आहाहा! ये तो जन्म-मरण के कारण हैं। चौरासी के अवतार के कारण हैं ये भाव। आहाहा! पुद्गलद्रव्य का स्वभाव। गजब है

न! जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! ये विकल्प की जाल जो उठती है, बारह व्रत और पंच महाव्रत, ये विकल्प की जाल तो सब पुद्गलद्रव्य है। आहाहा! आत्मद्रव्य नहीं। भगवान स्वभाव पवित्र आत्मा का यह नहीं। यह तो अपवित्र पुद्गलस्वभाव है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है - जो शुभ-अशुभ क्रिया,... शुभ-अशुभ परिणाम। **सूक्ष्म-स्थूल अन्तर्जल्प बहिःजल्परूप...** अन्तर विकल्प और बाह्य बोलना। दोनों। **जितना विकल्परूप आचरण है,...** आहाहा! **वह सब कर्म का उदयरूप परिणमन है,...**

मुमुक्षु : अन्तर्जल्प अर्थात्... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर विकल्प। ख्याल है, मैं ऐसा हूँ, ऐसा हूँ, ऐसे। मैं शुद्ध हूँ, ऐसे विकल्प उठते हैं, वे अन्तर्जल्प। बाह्यजल्प (अर्थात्) बोलना। अन्तर्जल्प ये। मैं ऐसा हूँ, ऐसा हूँ। यह विकल्प है, राग है। आहाहा! अन्तर्जल्प सूक्ष्म-स्थूल **बहिःजल्परूप जितना विकल्परूप आचरण है, वह सब कर्म का उदयरूप परिणमन है,...** कहो, इसमें तो कहाँ... (दूसरा कहनापना नहीं)। साफ तत्त्व खड़ा किया है।

मुमुक्षु : अन्तर्जल्प सूक्ष्म-स्थूल...

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म अन्दर विकल्प। अन्तर्जल्प भी विकल्प। यह विकल्प हैं अन्दर। मैं ऐसा हूँ — ऐसा, अन्तर्जल्प बोलना। यह बोलना अर्थात् विकल्प है। बाहर बोलना यह बाह्य जल्प है, अन्तर विकल्प, वह अन्तर्जल्प भाषा है। आहाहा! मैं शुद्ध हूँ, मैं चैतन्य हूँ, मैं परमानन्द हूँ — ऐसा जो अन्तर्जल्प अर्थात् विकल्प है, वह सब बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : सूक्ष्म क्यों कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म ये, अन्दर विकल्प कहा ये। बाह्य में बोलना ये स्थूल है। सूक्ष्म, स्थूल दोनों।

मुमुक्षु : चिन्तवन...

पूज्य गुरुदेवश्री : चिन्तवन आदि सूक्ष्म अन्तर्जल्प कहलाते हैं और बाह्य बोलनादि ये स्थूल कहलाते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ — ऐसा बोलना ये... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मैं शुद्ध हूँ, अबद्ध हूँ, ऐसा अन्तर्जल्प। ये अन्दर बोला। मन में। ये राग है। आहाहा! वाणी से बोलना ये तो जड़ की भाषा। वह बाह्य स्थूल और यह अभ्यन्तर सूक्ष्म विकल्प, यह दोनों बन्धन के कारण हैं। ऐसा मार्ग वीतराग का। अरे! सुनने मिले नहीं। विचारे कब ? कब श्रद्धा करे ? और कब परिणमन करे ? आहाहा! दुर्लभ वस्तु हो गयी। एक तो संसार के काम के आगे निवृत्ति नहीं। फुरसत नहीं। इसमें फुरसत मिले तो ऐसे क्रियाकाण्ड में धर्म मनानेवाले इसको मिल जाते हैं। आहाहा! लुट जायें, जिन्दगी पूरी लुट जाये।

यहाँ कहते हैं, यह **जीव का शुद्ध परिणमन नहीं है;...** यह तो पहले आया था न ? (कलश १०६)। **आत्मा के शुद्धस्वरूप को विचारे अथवा चिन्तवे अथवा एकाग्ररूप से मग्न होकर अनुभवे, सो ऐसा तो नहीं।** यह धर्म नहीं, यह मार्ग नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! १०६ में आया न ? **उसके करने पर तो बन्ध होता है, क्योंकि ऐसा तो स्वरूपाचरण चारित्र नहीं।** लो, आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, वह ज्ञान में रमणता ज्ञान में निर्विकल्प रमणता ये चारित्र है, ये रागादि क्रिया तो बन्ध का कारण है। आहाहा! इसलिए समस्त आचरण मोक्ष का कारण नहीं; बन्ध का कारण है, लो। आहाहा! पर्यूषण के दिनों में यह आया। १०८ वाँ कलश।

कलश-१०८

(अनुष्टुप्)

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते।।9-108।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप जो आचरणरूप चारित्र है सो करनेयोग्य नहीं है उसी प्रकार वर्जन करनेयोग्य भी नहीं है? उत्तर इस प्रकार है-वज्रन करनेयोग्य है। कारण कि व्यवहार चारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है, इसलिए विषय-कषाय के समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है ऐसा कहते हैं-'तत् निषिध्यते' [तत्] शुभ-अशुभरूप करतूति [निषिध्यते] तजनीय है। कैसा होने से निषिद्ध है? 'मोक्षहेतुतिरोधानात्' [मोक्ष] निष्कर्म अवस्था, उसका [हेतु] कारण है जीव का शुद्धरूप परिणमन, उसका [तिरोधानात्] घातक ऐसा है। इसलिए करतूति निषिद्ध है। और कैसा होने से? 'स्वयं एव बन्धत्वात्' अपने आप ही बन्धरूप है। भावार्थ इस प्रकार है-जितना शुभ अशुभ आचरण है वह सब कर्म के उदय के कारण अशुद्धरूप है, इसलिए त्याज्य है, उपादेय नहीं है। और कैसा होने से? 'मोक्षहेतुतिरोधायि-भावत्वात्' [मोक्ष] सकल कर्मक्षयलक्षण परमात्मपद, उसका [हेतु] जीव का गुण जो शुद्ध चेतनारूप परिणमन उसका [तिरोधायि] घातनशील ऐसा है [भावत्वात्] सहज लक्षण जिसका, ऐसा है इसलिए कर्म निषिद्ध है। भावार्थ इस प्रकार है-जिस प्रकार पानी स्वरूप से निर्मल है, कीचड़ के संयोग से मैला होता है-पानी का शुद्धपना घाता जाता है, उसी प्रकार जीवद्रव्य स्वभाव से स्वच्छस्वरूप है-केवलज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यरूप है, वह स्वच्छपना विभावरूप अशुद्ध चेतनालक्षण मिथ्यात्व विषय-कषायरूप परिणाम के कारण मिटा है। अशुद्ध परिणाम का ऐसा ही स्वभाव है जो शुद्धपना को मेटे, इसलिए समस्त कर्म निषिद्ध है। भावार्थ इस प्रकार है - कोई जीव क्रियारूप यतिपना पाते हैं, उस यतिपने में मग्न होते हैं-जो 'हमने मोक्षमार्ग पाया, जो कुछ करना था सो किया,' सो उन जीवों को समझाते हैं कि यतिपना का भरोसा छोड़कर शुद्ध चैतन्य स्वरूप को अनुभवो।।9-108।।

कलश - १०८ पर प्रवचन

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते।।9-108।।

खण्डान्वय सहित अर्थ - यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप जो आचरण चारित्र है... दया, दान, व्रत परिणाम आदि के आचरणरूप व्यवहार है, सो करनेयोग्य नहीं, **उसी प्रकार वर्जन करनेयोग्य भी नहीं है।** कोई ऐसा कहता है कि करनेयोग्य नहीं, परन्तु वर्जनयोग्य तो नहीं न। **वर्जन करनेयोग्य भी नहीं है।** ऐसा कोई अज्ञानी कहता है। आहाहा!

उत्तर इस प्रकार है - वर्जन करनेयोग्य है। आहाहा! निषेध करनेयोग्य है। व्रतादि के, नियम, उपवासादि के विकल्पों, ये सब निषेध करनेयोग्य हैं। आहाहा! **कारण कि व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है,...** पंचाध्यायी में आया कलश, श्लोक शुभोपयोग दुष्ट पुरुष की तरह दुष्ट है ५६८। बताया था। पंचाध्यायी में ५६८ गाथा है। दूसरा भाग, हों, पंचाध्यायी का दूसरा भाग। मक्खनलालजी ये अर्थ किया है, परन्तु वे अब कहते हैं कि शुभोपयोग, वह मोक्ष का मार्ग। अरे... प्रभु! अभी तक पकड़ा है इसलिए बदलना मुश्किल है। दुष्ट है। दुष्ट पुरुष की तरह। दृष्टान्त दिया है। पंचाध्यायी है? ५६८ गाथा है। शुभ क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव दुष्ट पुरुष की तरह दुष्ट हैं। आहाहा! दुष्ट पुरुष में कोई भलापना होता ही नहीं। उसी प्रकार शुभभाव में कोई भलापना है ही नहीं। ऐसा कठिन पड़ता है। आहाहा! मीठाभाई!

मुमुक्षु : अशुभ से कुछ भला नहीं ऐसा तो मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल लाभ नहीं। मिथ्यात्व है। अशुभ से लाभ मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यात्व का लाभ है। संसार में परिभ्रमण का लाभ है। यह तो कहा न? प्रवचनसार में कहा नहीं? ७७ गाथा। पुण्य और पाप दोनों में अन्तर माने, वह घोर संसार में भ्रमेगा। भाव, हों! पुण्य, ये तुम्हारा पैसा मिलता है, इसको पुण्य बन्धन कहते नहीं। शुभाशुभभाव। समझ में आया? शुभभाव—पुण्य और अशुभ पाप, दोनों में अन्तर माने कि

एक ठीक है और दूसरा अठीक है, वह घोर संसार में भ्रमेगा। प्रवचनसार है? परमात्मप्रकाश में है। '**ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं**' पुण्य-पाप में कोई विशेष नहीं। दोनों एक समान बन्ध के कारण हैं। ऐसा न माने (वह) '**हिंडति घोरमपारं संसारं**' घोर नरक और निगोद के संसार में चला जायेगा। ऐसा काम कठिन बहुत, बापू! कठिन है। परन्तु अशक्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? '**हिंडति घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो**' वह मिथ्यात्व से ढँका हुआ है। पुण्य ठीक है, शुभक्रिया ठीक है, अशुभ अठीक है! (ऐसा माननेवाला) मिथ्यात्व से ढँका हुआ है। आहाहा! और घोर संसार में चार गति में नरक और निगोद में जायेगा। पोपटभाई!

यहाँ तो ठीक है, भाई! मनुष्य नहीं कहते? छाछ लेने जाये और दोनिया छिपाये? ऐसा नहीं कहते? ऐसी बात है। हमारी मामी थी न, वे भैंस रखती। संसार में मामी गृहस्थ थीं। भैंस रखे तो छाछ लेने जायें। हमेशा जायें तो दो सेर, चार सेर लेना हो। परन्तु कोई मेहमान आया हो और कढ़ी करना हो तो दस सेर (लेना पड़े)। मामी! ये मेहमान है। ये चरु है, भर के देना पड़ेगी। छाछ लेने जाये और दोनी छिपाये, वह ऐसे नहीं कहता। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का है, वहाँ छिपाये किस प्रकार? आहाहा! नहीं, नहीं, कहीं शुभ करते-करते इसको कुछ-कुछ धर्म का लाभ होगा। अरे! मनुष्य को कठिन पड़े, हों! आहाहा! इससे तो ये कहे, नहीं, ये हमारे दिगम्बर नहीं। अरे! प्रभु! आहाहा! दूसरे भाई! हमारा लेख देखा है। समन्तभद्र। कमेटी का लेख आया है। ये लोग दिगम्बरी हैं, दिगम्बर हैं। इन्हें बाहर न निकालना। कमेटी ये क्या करती है? सोनगढ़ की कमेटी को सहयोग नहीं करना, ये क्या करते हो? हमें आया है। है न तुम्हारा? रतनचन्दजी निकालते हैं न? जैनपथ प्रदर्शक। उसमें आया है। अरे! प्रभु! तुम्हें न बैठे, इसलिए तुम ऐसे निकलते हो। बापू! मार्ग तो यह है।

कोई शरण नहीं, हों! मृत्यु समय तूने पुण्य किया होगा तो इससे परमाणु बँध गये। इसमें शरण क्या आया? कोई दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभ काम किये हों। अभी तो शुभभाव नये करे तो होय। था, उसका तो पुण्य बँध गया। परमाणु जड़।

मुमुक्षु : शुद्धि की प्राप्ति जहाँ तक नहीं, वहाँ तक तो शुभभाव करना न?

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे शुद्धता तीन काल में नहीं। हो, अशुभ से बचने शुभ आये, पर ये धर्म है और धर्म का कारण है (ऐसा नहीं)। शुभ छोड़कर अशुभ करना, ऐसी यहाँ बात नहीं। परन्तु शुभभाव भी बन्ध का कारण है। उसके स्वरूप की बात चलती है। यहाँ तो दोनों समान कहे। दोनों में एक ठीक और दूसरा अठीक माने तो घोर संसार में (भटकेगा)। कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है। प्रवचनसार—दिव्यध्वनि का सार। त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धर भगवान विराजते हैं। समवसरण में प्रभु विराजते हैं। वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। आहाहा! वहाँ से आकर यह कहा। भगवान का सन्देश तो यह है। पुण्य क्रियाकाण्ड ठीक है और पाप अठीक है, इन दोनों में भेद डालता है, वह घोर संसार में मिथ्यात्व के कारण भ्रमेगा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कोई शिष्य ऐसा कहे कि **करनेयोग्य नहीं है, उसी प्रकार वर्जन करनेयोग्य भी नहीं है। उत्तर इस प्रकार है - वर्जन करनेयोग्य है।** समकिती व्यवहार को त्याज्य-हेय मानता है। आता है, समकिती को भी, मुनि सच्चे सन्त भावलिंगी आत्मानुभवी हो, उसको भी पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं, परन्तु उनको हेय मानता है। उनको हेय जानता है। हेयरूप ज्ञेय हैं और भगवान त्रिकाली उपादेयरूप ज्ञेय है। आहाहा! यह उपादेयरूप ज्ञेय है। आदरनेयोग्य जाननेयोग्य है, वह हेयरूप जाननेयोग्य है। आहाहा!

अरे! भरत में भगवान का विरह पड़ा। तीर्थंकर केवलियों के टोला तो महा विदेह में विचरते हैं। लाखों केवली, हों! आहाहा! यहाँ केवलज्ञानी तीर्थंकर का विरह पड़ा। समवसरण (स्तुति में) आता है न? आता है न कहीं 'रे रे सीमन्धरनाथ का विरह पड़ा इस भरत में।' समवसरण स्तुति में आता है।

मुमुक्षु : हिम्मतभाई ने बनायी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हिम्मतभाई ने बनायी। 'रे रे सीमन्धरनाथ का विरह पड़ा इस भरत में।' अरे... प्रभु! तेरा विरह पड़ा और तेरे विरह में जगत में लोग कुछ का कुछ धर्म मान बैठे। समझ में आया?

ये **वर्जन करनेयोग्य है। कारण कि व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है,...** आहाहा! अरे! प्रभु! यह समाज समतौल रहेगा या नहीं, तुम्हें दरकार भी नहीं? आहाहा! भाई ने

लिखा है, जगमोहनलालजी, जैनतत्त्व मीमांसा में। फूलचन्दजी की जैनतत्त्व मीमांसा है न? इसमें प्रस्तावना में लिखा है, पण्डितों का ये काम है कि सत्य का उद्घाटन करना। समाज समतौल रहेगी या नहीं, मानेंगे या नहीं, ये विचार इन्हें नहीं करना। समझ में आया? सत्य जैसा है वैसा उद्घाटन करना—प्रसिद्ध करना। समाज मानेगी या नहीं मानेगी, इसकी दरकार नहीं करना। आहाहा! समझ में आया?

दुष्ट है, अनिष्ट है,... ये अनिष्ट हैं। शुभभाव... ? शुभजोग व्रतादि के परिणाम अनिष्ट हैं। आहाहा! इष्ट तो आत्मा का शुद्धस्वभाव, वह इष्ट है। ये विकार, विभाव तो अनिष्ट है। आहाहा! **घातक है,...** स्वरूप शुद्ध चैतन्य का यह शुभभाव, व्रत, नियम के विकल्प वे घातक हैं। है? आहाहा! दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है, वर्जन करनेयोग्य है। आहाहा!

भाई! तेरा नाथ आनन्द का सागर है न! प्रभु! उस आनन्द के सागर में डुबकी मार न! ये राग को छोड़ न। यह राग बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? इस अशुद्धता का नाश करना हो तो स्नान कर। इस शुद्ध चैतन्य के अभाव में जा। आहाहा! वहाँ अशुद्धता का नाश होता है। अशुद्धता से अशुद्धता का नाश नहीं होता। समझ में आया? कहो, राजमलजी यहाँ स्पष्ट करते हैं। **इसलिए विषय-कषाय के समान...** देखो! जैसे विषय-कषाय छोड़नेयोग्य हैं, (वैसे) **क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है...** ऐसे व्यवहार क्रियाकाण्ड के जो विकल्प हैं, उनका निषेध है। आहाहा! अभी श्रद्धा का ठिकाना न हो, उसको सम्यग्दर्शन कहाँ से हो? अर्थात् उसको चारित्र तो कहाँ से आया? बापू!

अहो! धन्य अवतार! जिसने आनन्द की रमणता (की)! आहाहा! चरना। चारित्र अर्थात् चरना। हरा घास पशु चरते हैं। गाय, भैंस, हरी घास चलती हैं। लीला को क्या कहते हैं। हरा... हरा। हरी घास चरते हैं न? ऐसे चारित्र अर्थात्? अपने अतीन्द्रिय आनन्द में चरना, रमना, भोजन करना। आहाहा! इसका नाम भगवान सत्य चारित्र कहते हैं। समझ में आया? व्यवहारचारित्र तो राग, दुःखरूप है। आहाहा! वह तो दुष्ट है, वर्जन करनेयोग्य है, अनिष्ट है और घातक है। आहाहा! कठिन लगे, भाई! तेरे घर की चीज़ की तुझे कीमत नहीं और पर घर की चीज़ की कीमत में व्यभिचारी हो गया, प्रभु! ये पुद्गल की जाति का परिणाम है, ये तेरा नहीं। आहाहा! इससे लाभ मानना, ये व्यभिचारी मिथ्यादृष्टि तू हुआ,

प्रभु ! आहाहा ! समझ में आया ?

विषय-कषाय के समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है, ऐसा कहते हैं - आहाहा ! **'तत् निषिध्यते' शुभ-अशुभरूप करतूति तजनीय है।** चाहे तो शुभ हो और चाहे तो अशुभ हो, दोनों परिणाम-विकल्प, राग वे तजनीय—छोड़नेयोग्य हैं। और जो शुभभाव को उपादेय मानता है, उसने भगवान आनन्द के नाथ को हेय माना। शुभराग को जिसने आदरणीय माना, उसने चैतन्य भगवान को हेय माना। आहाहा ! यह परमात्मप्रकाश में है। और जिसने आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्धचैतन्य को उपादेय माना, वह राग को हेय मानता है। समझ में आया ? ऐसा मार्ग है। आहाहा ! 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल, औषध जे भवरोग की परन्तु कायर को प्रतिकूल।' आहाहा ! इसको ये लगता है कि यह तो एकान्त है। यह तो व्यवहार से लाभ होता है, ऐसा मानता ही नहीं। अरे ! प्रभु ! सुन तो। आहाहा !

'तत्' शुभ-अशुभरूप करतूति... 'निषिध्यते' कैसा होने से निषिद्ध है ? 'मोक्षहेतुतिरोधानात्' मोक्ष अर्थात् **निष्कर्म अवस्था, उसका कारण है, जीव का शुद्धरूप...** जीव का शुद्धरूप **परिणमन, उसका घातक ऐसा है।** देखो ! पाठ में आया। ये करतूत किसलिए निषिद्ध है ? ये घातक है, इसलिए क्रियाकाण्ड के विकल्प हैं, वे निषिद्ध हैं। अब ये दान के भाव हों, ये भी राग हैं ऐसा कहते हैं। हो, हो। अशुभ से बचने के लिये। परन्तु ये तो निषिद्ध। इनसे कोई धर्म होगा या लाख, दो लाख, पाँच लाख दिये तो इससे कोई धर्म की दशा होगी, ऐसा तीन काल में नहीं। समझ में आया ? ये शुभभाव घातक हैं, इससे करतूति निषिद्ध है। कैसी होने से घातक है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र शुक्ल ११, शुक्रवार, दिनांक २३-०९-१९७७
कलश-१०८-१०९, प्रवचन-१०३

दशलक्षणीपर्व का आज सातवाँ दिन है न। तपधर्म, तप। तप किसको कहते हैं? ये कहते हैं।

इहपरलोयसुहाणं णिरवेक्खो जो करेदि समभावो।
विविहं कायकिलेसं तवधम्मो णिम्मलो तस्स॥४००॥

आत्मा में सम्यग्दर्शन होने के बाद, स्वरूप में चारित्र की रमणता होने के बाद में चारित्र में बहुत उद्यम करना, इसका नाम तप है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं होता और चारित्र के बिना उत्कृष्ट तप नहीं होता। सूक्ष्म बात है। यह कहते हैं, देखो!

अर्थ - जो मुनि इसलोक और परलोक के सुख अपेक्षा से रहित... होता हुआ। इसलोक और परलोक-स्वर्ग के सुख की भी जहाँ इच्छा नहीं। आहाहा! **सुख-दुःख...** अनुकूलता-प्रतिकूलता में जिसके अन्दर सम्यग्दर्शनसहित चारित्र की दशा में समभाव वर्तता है, उसको तप कहते हैं। आहाहा! **सुख-दुःख, शत्रु-मित्र, तृण-कंचन...** तृण हो या कंचन हो, **निन्दा-प्रशंसादि में राग-द्वेष से रहित समभावी होकर...** चारित्र तो है। दसलक्षणी मुनिधर्म की बात है न! दशलक्षण पर्व चारित्र की आराधना के दिन हैं। क्योंकि चारित्र ये साक्षात् मोक्ष का कारण है। परन्तु उस चारित्र में तप किसको कहते हैं? कि आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ, वीतरागस्वभाव चैतन्य की दृष्टि में, ज्ञान की पर्याय में आया, बाद में स्वरूप में जो आनन्द आया, उसमें लीन होना, इसका नाम चारित्र है। और चारित्र में भी बाद में उद्यम-विशेष पुरुषार्थ करना, इसका नाम तप है। आहाहा! इतनी शर्त। समझ में आया? अपवास करे, यह कोई तप नहीं।

उप-वास। उप अर्थात् भगवान आनन्दस्वरूप के उप अर्थात् समीप, राग से रहित

होकर स्वभाव के समीप में बसना और उसमें उग्र पुरुषार्थ से इच्छा का उत्पन्न नहीं होना, उसे अतीन्द्रिय आनन्द का प्रतपन (होना, वह तप है)। जैसे स्वर्ण में गेरु लगाने से चमकता है, वैसे चारित्र में उग्र पुरुषार्थ से आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से शोभता है, तपता है, इसका नाम तप कहा जाता है। ऐसी व्याख्या। '**तवधम्मो णिम्मलो तस्स**' है ? **अनेक प्रकार का कायक्लेश करता है...** परन्तु समभाव वीतरागभाव है। **उस मुनि को निर्मल अथवा उत्तम तपधर्म होता है।**

भावार्थ - चारित्र का अर्थ जो उद्यम और उपयोग करे, उसको तप कहा है... व्याख्या देखो! चारित्र के लिये। चारित्र के लिये अर्थात् ? स्वरूप आत्मा के आनन्द का भान तो है, परन्तु इसके बाद चरना—आनन्द में रमना, ऐसा चारित्र का अर्थ है। चारित्र की दशा में **उद्यम और उपयोग करता है...** आहाहा! **उसको तप कहा है।**

मुमुक्षु : स्वरूप विश्राम निस्तरण चैतन्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतपन। भगवान आनन्द की शोभा से अति ओपित, अतीन्द्रिय आनन्द से अति ही ओपित है और इच्छाओं का नाश हो जाता है और चारित्रसहित शुद्धता की वृद्धि हो जाती है, उसको तप कहते हैं। है।

चारित्र के लिये जो उद्यम और उपयोग करता है, उसको तप कहा है। वहाँ वो कायक्लेशसहित होता है, इससे आत्मा में विभाव परिणति का संस्कार होता है, उसको मिटाने के लिये उद्यम करता है... आहाहा! विभाव-विकृत अवस्था, चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, वह विभाव परिणति को संस्कार मिटाने के लिये। आहाहा! उद्यम करता है। **अपने शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में रोकता है...** देखो भाषा! अर्थ भी (किया है न)! भगवान आत्मा अशुद्ध पुण्य-पाप के परिणाम से रहित अपने अनुभव में **शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में रोकता है...** चारित्र में शुद्ध उपयोग को रोकता है। आहाहा! यह बात। पोपटभाई! तुम तो कहाँ हमारे, बालूभाई ने किया था न ? वर्षीतप किया था। घर में औरतों बोंरतों ने कभी किया न हो।

मुमुक्षु : करने की तैयारी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयारी थी ? आहाहा! भाषा तो देखो!

शुद्ध स्वरूप... अपने शुद्ध पवित्र स्वरूप उसमें उपयोग को चारित्र में रोकता है। आहाहा! अपनी चारित्रदशा में शुद्ध उपयोग को रोकता है, उसका नाम तप है। आहाहा! ऐसी व्याख्या। यह तो बाहर से उपवास किया न... यह श्वेताम्बर में वर्षीतप करते हैं। एक दिन खाना एक दिन उपवास। मानते हैं कि तप है। तप-बप कहाँ है? वह तो लंघन है। आहाहा! **वो बहुत जोर से रुकता है, ये जोर करना, वही तप है।** आहाहा! स्वरूप की चारित्रदशा में बहुत प्रयत्न से शुद्ध उपयोग को रोकता है, वह तप है। आहाहा! कभी सुना न हो कि यह तप किसको कहना? समझ में आया? फिर बारह प्रकार तप के भेद हैं, ये तो व्यवहार हैं। इस वस्तु का नाम तप है। इसको तपधर्म कहने में आता है। बड़ी व्याख्या...

शुद्धोपयोग को चारित्र में रोकना। आहाहा! जिसको सम्यग्दर्शन और चारित्र है, उसको शुद्धोपयोग में रोकना। अर्थात् इच्छा उत्पन्न न होकर शुद्धोपयोग को चारित्र में रोकना, बहुत बलपूर्वक रोकना, इसका नाम जैनधर्म में उत्तम तप कहते हैं। आहाहा! उत्तम तप है न? सम्यग्दर्शनसहित, चारित्रसहित बहुत उद्यम से अपने शुद्धोपयोग को अन्दर रोकना, यह तप है। आहाहा! ऐसी व्याख्या अर्थकार ने स्वयं की है। मूल पाठ में है, हों!

१०८, १०८ कलश। उसका भावार्थ। १०८ कलश है? **भावार्थ इस प्रकार है - जितना शुभ-अशुभ आचरण है,...** जितना शुभ और अशुभ परिणाम का आचरण है... आहाहा! **वह सब कर्म के उदय के कारण अशुद्धरूप है,...** यह कर्म के निमित्त के संग से उत्पन्न हुआ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के भाव, वे सब अशुद्ध हैं। **अशुद्धरूप है, इसलिए त्याज्य है,...** आहाहा! **उपादेय नहीं है।** जितने शुभ या अशुभ विकल्प उत्पन्न होते हैं, वे सब त्याज्य हैं। क्योंकि कर्म के संग उत्पन्न हुए विभाव हैं। वह अपना स्वभाव धर्म नहीं। आहाहा!

और कैसा होने से? 'मोक्षहेतुतिरोधायि-भावत्वात्' सकल कर्मक्षयलक्षण परमात्मपद,.... मोक्ष की व्याख्या की। मोक्ष अर्थात् क्या? सकल कर्मक्षयलक्षण परमात्मपद, यह मोक्ष। सकल कर्मक्षयलक्षण ऐसा परमात्मपद। इसका नाम मोक्ष है। आहाहा! **उसका हेतु अर्थात् जीव का गुण जो शुद्ध चेतनारूप परिणमन...** अन्तर्मुख होकर शुद्धचेतना का परिणमन पर्याय में होना, **उसका घातनशील ऐसा है...** आहाहा! ये शुभ-अशुभभाव

अन्तर्मुख शुद्धचैतन्य के परिणमन का घातक है। आहाहा! ऐसी व्याख्या। अशुद्धचेतनारूप परिणमन, ये शुद्धचेतनारूप परिणमन का घातनशील है। जिसका घात करना स्वभाव है। आहाहा! ये शुभजोग शुद्ध परिणति को घात करना, यह इसका स्वभाव है। इसके ठिकाने यहाँ कहते हैं कि शुभजोग ये मोक्ष का मार्ग है। अरे! प्रभु! कहाँ ले गया? भाई! समझ में आया?

चैतन्य शुद्धस्वरूप भगवान, उसकी परिणति जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्ध परिणति-पर्याय, ये शुभभाव उसका घात करने का स्वभाव है। निर्मल परिणति को घात करने का शुभभाव का स्वभाव है। मदद करने का स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? अभी दर्शन का ठिकाना नहीं, वहाँ चारित्र और तप आया कहाँ से? ओहो! भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप का पिण्ड है, वीतरागस्वरूप है। उसके वीतरागस्वरूप के स्वरूप-सन्मुख जो परिणति निर्मल दशा होती है, उसका घात करने का शुभभाव का स्वभाव है, घातकशील है। आहाहा! जो शुद्धस्वभाव को, मोक्ष का मार्ग जो शुद्ध परिणति, उसका शुभभाव घातक स्वभाववाला है, उसको मदद स्वभाववाला कहना, (यह विपरीतता है)। आहाहा! बहुत अन्तर पड़ा, भाई! अरे! अनन्त काल में अपनी निज चीज़ अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसके ऊपर नजर नहीं की। और यह क्रिया—पुण्य, दया, दान, व्रतादि परिणाम के ऊपर नजर रखकर जन्म अफल गया। समझ में आया? पाप पर नजर करने से तो निष्फल है (परन्तु पुण्य पर नजर रखने पर भी निष्फल गया)। शुभभाव-पुण्यभाव के ऊपर नजर है, यह पर्यायबुद्धि कहलाती है। पर्यायबुद्धि है तो वहाँ नजर है। समझ में आया? आहाहा! उसको द्रव्यबुद्धि नहीं हुई।

मेरी चीज़ तो परम पवित्र आनन्दधाम है। इस क्षेत्र में से आनन्द का पाक होता है। अतीन्द्रिय आनन्द का पाक (होता है) वह मेरी जमीन—भूमि है। आहाहा! मेरे असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण की भूमि... आहाहा! मेरा स्वदेश है। यह स्वदेश (समझकर) मर जाये, यह इसका स्वदेश नहीं। वह तो परदेश है। हमारा स्वदेश मुम्बई में कहते हैं न? क्या कहा ये? अमची नगरी अमची नगरी बोले ये लोग मुम्बई में मराठी लोग। धूल में भी नगरी नहीं। बापू! नगरी-नगर। न—गर। जिसमें राग-द्वेष के मैल का घर नहीं, ऐसी नगरी तो

आत्मा है। न—गर, गर। जिसमें पुण्य और पाप और कर्म के मैल से रहित ऐसा आत्मा, इसको यहाँ आत्म नगर कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! अरेरे! कहाँ-कहाँ दुनिया मानकर रुक जाती है। प्रभु का तत्त्व मिलता नहीं। इसको प्रभु चैतन्य का पत्ता नहीं लगता। आहाहा!

अभी तो सुनिए सही। जवान अवस्था, जवान अवस्था, इसको ये पीड़ा होती है न ये होता है। देखो न! इस समय सुनो। ये क्या कहलाता है? अपेन्डिक्स। कहते हैं। पूछड़ी की व्याधि। बहुत पीड़ा, आहाहा! कल कपूरभाई की लड़की और लड़का जोड़ी से आये हैं न? इसके बड़े को ये हुआ है। ओपरेशन किया परन्तु बाद में पीड़ा उठी। डॉक्टर कहे, अभी ऑपरेशन करो नहीं तो लड़का खलास (मर जाएगा)। रात के बारह बजे। आहाहा! ये वीरचन्दभाई के लड़के का लड़का। वीरचन्दभाई लाठी और ये कपूरभाई की लड़की की लड़की। दोनों जोड़ी से जन्मे हैं। पहले ऑपरेशन कराया था। व्याधि बहुत हो। हमारे जीवराजजी को व्याधि हुई थी। (संवत्) १९९० के वर्ष में। अेपेन्डिक्स। ऑपरेशन तो कराया फिर इतना दु:ख उठा। दूसरे दिन खबर पड़ी। आहार देने में नहीं थे न! पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... डॉक्टर कहे बारह बजे हैं, अभी ऑपरेशन करो। नहीं तो लड़का छूट जायेगा। ऑपरेशन किया। आहाहा! ये शरीर-मिट्टी। आहाहा! यह मिट्टी का स्वामी जाननेवाला भिन्न है।

ये जानने में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। आहाहा! ये अतीन्द्रिय आनन्द के परिणमन को... आहाहा! शुभभाव **'तिरोधायि' घातनशील ऐसा है, सहज लक्षण जिसका,...** आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा...

मुमुक्षु : घातनशील...

पूज्य गुरुदेवश्री : घातनशील सहज स्वभाव इसका है। शुभभाव का घातनशील सहज स्वभाव इसका। आहाहा! उसको धर्म मानना अथवा उसे करते-करते धर्म होगा। अरे! प्रभु! तूने बहुत भूल की है। भगवान को तू भूल गया। तेरा भगवान पवित्र आनन्द का नाथ, उस भगवान को भूल गया। आहाहा! ये शुभभाव में भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसकी परिणति में पर्याय में यह शुभभाव घातनशील-नाश करने का जिसका सहज

स्वभाव है। आहाहा! कहो, पोपटभाई! तो अब पापभाव का क्या कहना? पूरे दिन खाना और कमाना। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : पापभाव को कम करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरे दिन चलता है, वह पाप नहीं? धन्धा... आहाहा! और पाप का अभाव करके भी जहाँ पुण्यभाव है... आहाहा! वह भी चैतनय भगवान पवित्र आनन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! उसकी परिणति अर्थात् निर्मल दशा, उसका शुभभाव घातकशील सहज स्वभाव है, घात करने का सहज स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म का अभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव यह कर्म। यह शुभभाव कर्म है। बन्धन हुआ, वह कर्म जड़ है। यह कैसे पीछे से आता है? पहले चला जाए उससे क्या? समझ में आया? आहाहा! क्या कहते हैं?

सकल कर्मक्षयलक्षण परमात्मपद, उसका हेतु जीव का गुण जो शुद्ध चेतनारूप परिणमन... आहाहा! समझ में आया? सकल कर्मक्षय लक्षण ऐसा जो मोक्ष-परमात्मपद। उसका हेतु, शुद्धस्वभाव अपना परमातमा, उसका परिणमन, वह मोक्ष का कारण। यह कारण का शुभभाव का घातनशील सहज स्वभाव है। आहाहा! अरे! प्रभु! '**तिरोधायी**' **घातनशील ऐसा है** '**भावत्वात्**' ऐसा उसका भाव। देखो! शुभभाव का भाव मोक्ष जो परमात्मपद, उसका हेतु जो शुद्धात्म परिणमन, उस परिणमन में शुभभाव घातनशील सहजस्वभाव है। आहाहा! इतनी बात स्पष्ट है, फिर भी गड़बड़ करता है। दीपक जैसी बात है, बापू! समझ में आया? आहाहा! **इसलिए कर्म निषिद्ध है।** यह शुभभाव परिणाम ये विकार है और उसका बन्धन है, दोनों निषिद्ध हैं। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है - जिस प्रकार पानी स्वरूप से निर्मल है,... अब देखो! दृष्टान्त कहकर सिद्धान्त उतारते हैं। जिस प्रकार पानी-जल **स्वरूप से निर्मल है, कीचड़ के संयोग से मैला होता है...** कीचड़ के संयोग से जल मैला होता है। **पानी का शुद्धपना घाता जाता है।** पानी के निर्मलपने का कीचड़ से घात होता है। निर्मलपने का घात होता है। आहाहा! दृष्टान्त है, हों! सिद्धान्त बाद में उतारेंगे। आहाहा! **पानी का शुद्धपना घाता जाता है।**

उसी प्रकार जीवद्रव्य... भगवान आत्मा चैतन्य रत्नाकर प्रभु, ऐसा जीवद्रव्य। सर्व, हों! **स्वभाव से स्वच्छस्वरूप है...** आहाहा! स्वच्छत्वशक्ति इसमें है न! ४७ शक्ति आ गयी हैं। ग्यारहवीं स्वच्छत्वशक्ति। ४७ शक्ति में ११वीं आ गयी। सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व, प्रकाशत्व। प्रकाशत्व—स्वसंवेदनमयी १२वीं। आहाहा! भगवान आत्मा, उसमें स्वच्छत्व नाम का गुण है तो पूरा आत्मा स्वच्छत्व है। अनन्त गुण से स्वच्छत्व से भरा हुआ प्रभु है। आहाहा!

ऐसा स्वच्छत्व **केवलज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यरूप है,....** आहाहा! आत्मा भगवान तो केवलज्ञान... केवल अर्थात् केवलज्ञान पर्याय नहीं, एक ज्ञान, एकरूप ज्ञान, एकरूप दर्शन, एकरूप सुख। आहाहा! और वीर्य। एक ज्ञान, एक दर्शन, एक सुख, एक वीर्यरूप ऐसा आत्मा है। ऐसे स्वच्छता के स्वभाव से भरा प्रभु पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? निज निधान तो केवलज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य से भरा पड़ा है। परिमित नहीं। केवलज्ञान, दर्शन, सुख, परिमित नहीं। अपरिमित। आहाहा!

ऐसा **केवलज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यरूप है, वह स्वच्छपना...** यह स्वच्छत्वपना। आहाहा! **विभावरूप अशुद्ध चेतनालक्षण मिथ्यात्व...** आहाहा! पुण्यपरिणाम मेरा, ये मिथ्यात्व। आहाहा! **विषय-कषायरूप परिणाम के कारण मिटा है।** आहाहा! भगवान तो शुद्ध स्वच्छ केवलज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य से भरा पड़ा शुद्ध है। उसकी स्वच्छता मिथ्यात्व और विषय-कषाय के परिणाम से अशुद्ध हो गयी है। पर्याय अशुद्ध हो गयी है। आहाहा! है? **अशुद्ध परिणाम का ऐसा ही स्वभाव है...** आहाहा! कैसी टीका की है! आहाहा!

राजमलजी गृहस्थाश्रम में थे, हों! आत्मा कहाँ (गृहस्थ है)। वास्तव में तो गृहस्थ इसको कहते हैं... कहा था। आहाहा! (अध्यात्म) पंच संग्रह में परमात्मपुराण में आता है। गृहस्थ इसको कहते हैं, गृह अर्थात् निज घर—अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, उसमें स्थ रहता है, उसको गृहस्थ कहते हैं। गृह-स्थ। निज घर में स्थ-टिकता है, उसका नाम गृहस्थ कहते हैं। ऐ... मफाभाई! ये तुम सब गृहस्थ कहलाते हो, पैसेवाले, वह यहाँ न पाड़ते हैं। ये सेठिया रहे। मफाभाई, भगवानभाई, पोपटभाई। ये भी सेठिया कहलाते हैं न।

आहाहा! श्रेष्ठ तो उसको कहते हैं, सेठ जो अपना केवलज्ञान, दर्शन, आनन्द शुद्धस्वरूप का स्वामी होता है, उसको सेठ कहते हैं, बाकी सब हेठ।

यह बात एक बार चूडा में बनी थी। चूडा है न? चूडा में। चूडा में एक जेठमलजी स्थानकवासी साधु थे न? जेठमलजी थे। मूली के पास गाँव है। खाटरी का था, खाटरी का। खबर है। हम खाटरी गये थे न। ये जेठमलजी स्थानकवासी थे। गाड़ीवाले के बैलों पर भार बहुत हो उसे सब निकलवावे। आखिर में मरने लगे, तब मुझसे कहा कि, हमें दर्शन देने आओ। वहाँ था। कहाँ था? मोरवी। ये जेठमलजी राजपूत था, बाद में साधु (हो गया), परन्तु ठिकाना नहीं। इसमें चूड़ा में आये। चूडा.. चूडा। अन्दर आया और कहा, खड़े होओ। इसका मान बहुत नहीं था इसलिए चूड़ा में जरा खड़े न हों। कहे, खड़े होओ। और पीछे एक रायचन्द दोशी था। विशाश्रीमाली। बहुत कड़क आदमी था। वृद्ध (था)। रायचन्द दोशी जेठी बैठे न हेटी। बहुत कड़क था। ऐई! रायचन्द दोशी था। अपना नारायणभाई। नहीं था? नारायणभाई के ससुर का बाप। अपना नारायणभाई। हमारे पास दीक्षा ली थी। इसके ससुर का बाप। वह बहुत कड़क था। हमारे ऊपर बहुत प्रेम। खम्बे के पास बैठे। वृद्ध अवस्था, वृद्ध। बहुत वृद्ध अवस्था। व्याख्यान सुने। बहुत प्रेम, बहुत प्रेम। हमारे ऊपर तो बहुत प्रेम इसको और श्रीमद् के ऊपर भी बहुत प्रेम।

कोई मनुष्य ऐसा कहने लगा कि श्रीमद् अर्थात् कुछ नहीं। ऐसा है। (ये) कहें, बोलो नहीं। स्वयं स्थानकवासी। श्रीमद् राजचन्द्र का वैराग्य मैंने देखा है, ये कहीं है नहीं, मैंने देखा है। लींबड़ी में आये थे। वैराग्य, उदास थे। श्रीमद् राजचन्द्र। नहीं तो ये माने नहीं। मूर्ति को न माने। परन्तु श्रीमद् राजचन्द्र के वैराग्य को देखकर ऐसे बोला कि (वैराग्य) मैंने देखा है। परपदार्थ से उदास... उदास... उदास... उदास... ऐसे श्रीमद् का तू विरोध न कर। पोपटभाई! वहाँ पहले जेठमलजी (कहें), खड़े हो जाओ। तो कहा, बैठ न हेठी, बैठ न हेठी। तुझे कौन यहाँ बड़ापन (सम्मान) देता है। आदर-वादर नहीं। ऐसे यहाँ सेठ तो इसे कहते हैं। आहाहा! बड़ा अर्थात् सेठ। आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द के स्वामी का अनुभव करे, वह श्रेष्ठ है, बाकी सब हेठ है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **वह स्वच्छपना विभावरूप अशुद्ध चेतनालक्षण मिथ्यात्व-**

विषय-कषायरूप परिणाम के कारण मिटा है। आहाहा! पर्याय में मिटा है, हों! पीछे फिर भाषा ऐसी आ गयी। **जीवद्रव्य स्वभाव से स्वच्छस्वरूप है—केवलज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यरूप है, वह स्वच्छपना विभावरूप अशुद्ध चेतनालक्षण मिथ्यात्व-विषय-कषायरूप परिणाम के कारण (वर्तमान में) मिटा है।** मिटा है, इसका अर्थ त्रिकाली मिट गया है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! त्रिकाली तो शुद्ध, शुद्ध है, परन्तु शुद्ध को जब स्वीकारा नहीं और अकेले अशुद्ध परिणमन का जहाँ स्वीकार है, वहाँ शुद्धपने का नाश हो गया है। पर्याय में नाश हुआ है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग। यह बाहर की चमक और दमक। बाहर के देखने में मग्न हो गया है। आहाहा!

भगवान चैतन्यचमत्कार अतीन्द्रिय आनन्द का सागर जहाँ... आहाहा! यह स्वच्छस्वरूप प्रभु, इसका ये पुण्य का भाव... '**भावत्वात्**' है न? आ गया न? देखो! '**भावत्वात्**' ऐसा शब्द है। **घातनशील है...** ऐसा '**भावत्वात्**' '**तिरोधायिभावत्वात**' ऊपर आ गया है, '**तिरोधायिभावत्वात**' आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्यप्रभु, उसमें अशुभभाव की तो बात क्या करनी, यह अशुभभाव स्वरूप का घात करता है। आहाहा! बीस घण्टे पूरे दिन धन्धा-पानी। आहाहा! कमाना और लेना और देना और यह और यह। आहाहा! प्रभु! तेरी शक्ति तो शुद्ध है। उसका परिणमन तो निर्मल होना चाहिए। उस निर्मल को छोड़कर अशुभभाव, तेरी शुद्धस्वभाव परिणति का घातनशील भाव होने से, ये घात करने के स्वभावरूपी भाव है। आहाहा!

जैसे कोई छुरा मारे। छरो, छरो होता है न? छरो कहते हैं न? छुरी। और जैसे शरीर में नस्तर (छुरी का घाव) लगे। खून (निकले)। ऐसा कहते हैं, प्रभु! तेरी शक्ति आनन्द का नाथ प्रभु, इसके ऊपर शुभ-अशुभभाव घात करते हैं। समझ में आया? आहाहा! देखो! अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त। वीतरागता का वर्णन करते हैं। आहाहा! प्रभु! तू वीतरागस्वरूप है न! यह वीतरागस्वरूप का शुभ और अशुभ परिणाम घातनशील भाव है न! है न? सहज लक्षण इनका है। शुभ अशुभभाव का सहज लक्षण यह है। आहाहा! शान्ति का सागर भगवान, उस शान्ति का घात करता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कलश तो देखो, कलश! अमृत से भरा है कलश! आहाहा! भाई! और इसमें वापस प्रसन्न होता है।

एक बार कहा था। नहीं ? खस (गाँव) है। हमारे जीवनलालजी खस के थे न। बोटाद के पास। इसमें गरासिया था, ये बाहर गया। गरासिया समझा ? गरासदार। बाहर गया तो कोई बैरी-विरोधी गरासिया था। दोनों महाविरोधी। इसको मार-मार के लोही जम (गया)। लोही... लोही समझे ? खून। पूरे शरीर में। अब गाँव में चारों ओर मार ठहराने गया। जूता पहरे था। जूता खून खून से भर गया। गाँव में गया। गरासिया अभी गाँव में पहुँचा था। चारों तरफ हल्ला हो गया। खून... खून। जूता में खून भर गया। ऐसे चलते-चलते जगह-जगह खून बाहर फैल गया। क्योंकि खून पूरे (शरीर में से निकले)। गरासिया सच्चा न। ऐसा का ऐसा घर पहुँच गया। बाद में मर गया। खून... खून... इतना खून कि चलते-चलते पूरे शरीर का खून जोड़ा में उतर जाये और ये चले अर्थात् शेड (धार) पड़े। जूता में से खून की धार बाहर निकले। आहाहा! गरासिया अर्थात् रा बल से घर तक पहुँच गया।

ऐसे यहाँ कहते हैं, तू एक बार सुन तो सही। आहाहा! तू अनन्त आनन्द का नाथ गरासिया। तेरे घर में गरास पड़ा है—महा आनन्द, ज्ञानादि। इसका स्वामित्व छोड़कर ये पुण्य-पाप के (परिणाम) तेरी शक्ति का घात करते हैं। आहाहा! देखो! ये दिगम्बर सन्तों की शैली! आहा! भाई! तुझे आत्मा की शान्ति, इन शुभ और अशुभभाव से घातनशील सहज इनका स्वभाव है। ये शुभ-अशुभभाव का सहज स्वभाव ऐसा है। आहाहा! भगवान का सहज स्वभाव आनन्द और ज्ञान, दर्शनादि है। तब शुभाशुभभाव का सहज घातनशील सहज स्वभाव है। आहाहा! भाई! तुझे इसमें होंश क्यों आता है ? आहाहा! समझ में आया ? जो घातनशील भाव है, उसमें तुझे रस क्यों आता है ? छोड़ एक बार, कहते हैं। आहाहा! यह तो अगम्य-गम्य की बातें हैं। आहाहा!

स्वच्छपना विभावरूप अशुद्ध चेतनालक्षण मिथ्यात्व विषय-कषायरूप परिणाम के कारण.... लक्षण है न ? इसकी पर्याय की बात है। उसको **मिथ्यात्व विषय-कषायरूप परिणाम के कारण मिटा है।** आहाहा! यह पुण्य का भाव मेरा, मेरा धर्म — ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह शुद्ध परिणमन का घात करनेवाला (है, इससे) शुद्धपना मिटता है। समझ में आया ? आहाहा!

आज (उत्तम) तप का दिन है। **अशुद्ध परिणाम का ऐसा ही स्वभाव है...** ये शुभ-अशुभभाव का ऐसा ही स्वभाव है **जो शुद्धपना को मेटे,...** आहाहा! **इसलिए समस्त कर्म निषिद्ध है।** शुभ और अशुभभाव, कोई भी भाव, असंख्य प्रकार के शुभ और असंख्य अशुभ, सब निषिद्ध हैं। समझ में आया? वहाँ टीका में हैं न? भाई! व्रत, शील, तप शब्द पड़ा है। पुण्य-पाप अधिकार यह व्रत, तप, नियम, शील को कर्म कहा है। कर्म अर्थात् कार्य। समझ मेमं आया? समयसार टीका में है। यह पुण्य-पाप अधिकार में। ये शुभ-अशुभ कार्य-राग। कार्य अर्थात् कर्म।

कर्म के प्रकार एकबार नहीं किये थे? अपने कर्मशक्ति का खुलासा करते थे न? कर्मशक्ति। कर्म तो चार प्रकार के कर्म शब्द हैं। एक—जड़कर्म की पर्याय को कर्म कहते हैं और शरीरादि पर हैं और उसके परिणाम को भी कर्म कहते हैं। कार्य अर्थात् कर्म पर्याय। और राग को भी कर्म कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! शास्त्र के अर्थ करने में भी बहुत गड़बड़ हो गयी है। आहाहा! कर्म शक्ति है। कहा था न? आत्मा में एक गुण है। कार्य निर्मल हो, ऐसे कार्य नाम की शक्ति, कर्मशक्ति है। आहाहा! ये कर्म शक्ति से भरा प्रभु, इसका कार्य तो निर्मल परिणति होना चाहिए। वह निर्मल परिणति जिसका लक्षण है स्वरूप का, इसे शुभभाव घातनशील सहज स्वभाव का घात करते हैं अर्थात् शुद्ध परिणति को मिटाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ भावकर्म लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव। व्रत, ये भावकर्म है। है न इसमें? इसमें है। १५३ गाथा। समयसार, १५३ गाथा।

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति॥१५३॥

टीका में अर्थ किया है। '**अज्ञानी ने अन्तरंग में व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि शुभकर्मों का सद्भाव...** उसे ही शुभकर्म कहे हैं। समझ में आया? आ गया। गुजराती है न (अर्थात्) तुरन्त याद आये। ये हिन्दी है न। ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है। ये भी है न? अपने ये चलता है, इसके पहले आ गया है। ये १०८ चलता है और ये १५३ में टीका है,

टीका। आहाहा! **व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि शुभकर्मों...** यह राग शुभकर्म है। आहाहा! **सद्भाव होने पर भी मोक्ष का अभाव है।** इस परिणाम में मोक्ष का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? १५३। यह तो हिन्दी है न। पर्यूषण में तो गुजराती चलती है, परन्तु ये जिनेश्वरदास और सब दूर से आये हैं, इसलिए हिन्दी चलती है। क्या कहते हैं?

मिथ्यात्व विषय-कषायरूप परिणाम के कारण... शुद्ध परिणाम की परिणति जो लक्षण है, यह मिटा है। लक्षण कहते वहाँ परिणति आयी। **अशुद्ध परिणाम का ऐसा ही स्वभाव है जो शुद्धपना को मेटे, इसलिए समस्त कर्म निषिद्ध है।** आहाहा! ऐसा है। **भावार्थ इस प्रकार है - कोई जीव क्रियारूप यतिपना पाते हैं,...** पंच महाव्रत और समिति, गुप्ति और व्यवहार क्रियाकाण्ड यतिपना पाता है। **उस यतिपने में मग्न होते हैं....** ये पंच महाव्रत और समिति, गुप्ति और विकल्प शुभराग में मग्न होता है। आहाहा! ऐसा स्पष्टीकरण है। '**हमने मोक्षमार्ग पाया,**'... हमने पंच महाव्रत धारण किये हैं, पंच महाव्रत पालते हैं, अट्ठाईस मूलगुण (पालते हैं), निर्दोष आहार लेते हैं, पाँच समिति-व्यवहार पालते हैं, तीनों गुप्ति अशुभ से रहित (धारण करते हैं), वहाँ गुप्ति (अर्थात्) अशुभ से रहित शुभ। ऐसा हम करते हैं, नग्न रहते हैं। अरे रे! ऐसी व्याख्या। '**हमने मोक्षमार्ग पाया,**'... हम मोक्षमार्गी हैं। पंच महाव्रत पालन करते हैं, पाँच समिति, गुप्ति, निर्दोष आहार (लेते हैं), स्त्री, कुटुम्ब छोड़ा है, हमारे गृहस्थाश्रम है नहीं। आहाहा! '**जो कुछ करना था सो किया**',... स्त्री, कुटुम्ब छोड़ा, दुकान-धन्धा छोड़ा, पाप परिणाम छोड़ा, शुभभाव किया। आहाहा!

सो उन जीवों को समझाते हैं... सो उन जीवों को समझाते हैं कि यतिपना का भरोसा छोड़कर... यह पंच महाव्रत और समिति, गुप्ति, यह यतिपना नहीं। शुद्धस्वरूप की यत्ना करना, वह यति है। शुभजोग की यत्ना, वह यति नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बापू अलग, भाई! अरे! दुःखी हुआ... आहाहा! **यतिपना का भरोसा छोड़कर शुद्ध चैतन्य स्वरूप को अनुभवो।** आहाहा! ये है। भगवान! ये पंच महाव्रत और समिति, गुप्ति और पाँच समिति व्यवहार देखकर चलना... ये तो देखकर चलने में क्या ठिकाना है? इसके लिये बनाया आहार न लेना, ये सब शुभभाव है। उसे यतिपना मानता है। छोड़!

आहाहा! **शुद्ध चैतन्य स्वरूप को अनुभवो।** छोड़कर करना क्या? भगवान शुद्धचैतन्य है न! पवित्रता का पिण्ड प्रभु तेरा आत्मा है न, नाथ! आहाहा! इसका अनुसरण करके अनुभव कर न! तो तेरा कल्याण होगा। बाकी कल्याण-फल्याण है नहीं। आहाहा! यतिपने के भरोसे मग्न होकर पड़ा है, कहते हैं। उसको छोड़ और स्वरूप का अनुभव कर तो मोक्षमार्ग है। ऐसी बात है। कठिन लगती है। यह लेख किसका है? सोनगढ़ का है ये? सोनगढ़ ने ऐसा करके व्यवहार का नाश किया है। बापू! व्यवहार का नाश करना, ये ही स्वरूप का अनुभव है। उसको छोड़कर स्वरूप का अनुभव करना, यह मोक्ष का मार्ग है। यह तो मूल बात है। आहाहा! श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं मिलता। यह व्रत और तप को करो तुम्हारा कल्याण होगा, उपवासादि करने से निर्जरा होगी। सामायिक, प्रौषध करने से संवर होगा। अरे! सामायिक, प्रौषध हैं कहाँ? आहाहा! समझ में आया?

यतिपना का भरोसा... विश्वास छोड़ दे। यह पंच महाव्रत की क्रिया मोक्ष का मार्ग है, यह भरोसा छोड़ दे। **शुद्ध चैतन्य स्वरूप को अनुभवो।** आहाहा! आहाहा! १०८ कलश (पूरा) हुआ।

कलश-१०९

(शार्दूलविक्रीडित)

संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना
संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्
नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति।।10-109।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'मोक्षार्थिना तत् इदं समस्तं अपि कर्म संन्यस्तव्यं' [मोक्षार्थिना] कर्मक्षयलक्षण मोक्ष-अतीन्द्रिय पद, उसमें जो अनंत सुख उसको उपादेय

अनुभवता है, ऐसा है जो कोई जीव उसके द्वारा [तत् इदं] वही कर्म जो पहले ही कहा था [समस्तं अपि] जितना शुभ क्रियारूप अशुभ क्रियारूप, अन्तर्जल्परूप बहिर्जल्परूप इत्यादि करतूतिरूप [कर्म] क्रिया अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल का पिण्ड, अशुद्ध रागादिरूप जीव के परिणाम–ऐसा कर्म [संन्यस्तव्यं] जीवस्वरूप का घातक है ऐसा जानकर आमूलचूल त्याज्य है। 'तत्र संन्यस्ते सति' उस समस्त ही कर्म का त्याग होने पर 'पुण्यस्य वा पापस्य वा का कथा' पुण्य का पाप का कौन भेद रहा? भावार्थ इस प्रकार है–समस्त कर्मजाति हेय है, पुण्य–पाप के विवरण की क्या बात रही। 'किल' ऐसी बात निश्चय से जानो, पुण्यकर्म भला ऐसी भ्रान्ति मत करो। 'ज्ञानं मोक्षस्य हेतुः भवन् स्वयं धावति' [ज्ञानं] आत्मा का शुद्ध चेतनारूप परिणमन [मोक्षस्य] सकल कर्मक्षयलक्षण ऐसी अवस्था का [हेतुः भवन्] कारण होता हुआ [स्वयं धावति] स्वयं दौड़ता है ऐसा सहज है। भावार्थ इस प्रकार है–जैसे सूर्य का प्रकाश होने पर सहज ही अन्धकार मिटता है वैसे ही जीव के शुद्ध चेतनारूप परिणमने पर सहज ही समस्त विकल्प मिटते हैं, ज्ञानावरणादि कर्म अकर्मरूप परिणमते हैं, रागादि अशुद्ध परिणाम मिटता है। कैसा है ज्ञान? 'नैष्कर्मप्रतिबद्धं' निर्विकल्पस्वरूप है। और कैसा है? 'उद्धतरसं' प्रगटरूप से चैतन्यस्वरूप है। कैसा होने से मोक्ष का कारण होता है? 'सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनात्' [सम्यक्त्व] जीव का गुण सम्यग्दर्शन [आदि] सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ऐसे हैं जो [निजस्वभाव] जीव के क्षायिक गुण उनके [भवनात्] प्रगटपने के कारण। भावार्थ इस प्रकार है–कोई आशंका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान–चारित्र इन तीन का मिला हुआ है, यहाँ ज्ञानमात्र मोक्षमार्ग कहा सो क्यों कहा? उसका समाधान ऐसा है–शुद्धस्वरूप ज्ञान में सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र सहज ही गर्भित हैं, इसलिए दोष तो कुछ नहीं, गुण है।।10–109।।

कलश - १०९ पर प्रवचन

१०९ कलश।

संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना
संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा।

सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्
नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति।।10-109।।

खण्डान्वय सहित अर्थ - 'मोक्षार्थिना तत् इदं समस्तम् अपि कर्म संन्यस्तव्यम्' सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष-अतीन्द्रिय पद, उसमें जो अनन्त सुख उसको उपादेय अनुभवता है,... आहाहा! मोक्ष में अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसे अनन्त सुख को वर्तमान में सम्यग्दृष्टि उपादेयरूप से अनुभवता है। आहाहा! राग को हेय अनुभवता है और आनन्द के नाथ भगवान पूर्णानन्दस्वरूप मोक्ष में सुख है, उस सुख को वर्तमान उपादेयरूप अनुभवता है। आहाहा! इसका अर्थ ये हुआ कि सम्यग्दर्शन में जो आनन्द आया, उसमें अनन्त मोक्ष सुख को उपादेय जाना। समझ में आया? आहाहा! शुभ-अशुभभाव से रहित शुद्धस्वरूप की दृष्टि में जो आनन्द का अनुभव हुआ, वह आंशिक आनन्द है। सम्यग्दृष्टि, अनन्त आनन्द ऐसा जो मोक्ष, उसको उपादेय मानता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग। कुन्दकुन्दाचार्य अमृतचन्द्राचार्य सब मुनियों ने तो सब स्पष्ट किया है और मार्ग को सरल किया है। तेरी चीज़ तेरे पास है और तुझे प्राप्त न हो! आहाहा! तेरी नजर वहाँ नहीं। शुभ-अशुभभाव ज्ञानी को भी होते हैं, परन्तु वहाँ नजर नहीं। समझ में आया?

यह अनन्त आनन्दरूपी मोक्षदशा, उसे सम्यग्दृष्टि अनन्त आनन्द के अनुभव को उपादेय मानता है। **सुख, उसको उपादेय अनुभवता है,...** भाषा देखो! आहाहा! पाठ तो ऐसा है कि मोक्ष अतीन्द्रियपद, उसमें जो अनन्त सुख, मोक्ष में जो अनन्त सुख, उसको उपादेय अनुभवता है। वर्तमान में तो है नहीं, परन्तु आनन्दस्वरूप भगवान की ओर झुकने से जो अनुभव होता है, पुण्य-पाप के भाव का लक्ष्य को छोड़कर तो अनन्त सुख को ही उपादेय मानता है। अपने आनन्द की पर्याय में अनन्त सुख भगवान को उपादेय माना तो प्रगट अनन्त सुख को भी उपादेय माना है। आहाहा! ये राग के व्रतादि की क्रिया होती है, परन्तु उसको उपादेय नहीं मानता। आहाहा! कठिन पड़ती है, कठिन पड़ती है। अभ्यास नहीं और अन्तर में इतना रस... रस, रुचि नहीं। (बाहर के) रस में चढ़ गया है। पुण्य परिणाम के रस में चढ़ गया है, रस। जिसके रस में चढ़ा हो, उसमें एकाकार होता है। आहाहा!

कहते हैं, आहाहा! **ऐसा है जो कोई जीव...** उसके द्वारा **'तत् इदं' वही कर्म जो पहले ही कहा था,...** कर्म, देखा! **जितना शुभक्रियारूप अशुभक्रियारूप, अन्तर्जल्परूप बहिर्जल्परूप इत्यादि करतूतिरूप...** ये देह की क्रिया लेते हैं। शुभक्रियारूप-अशुभक्रियारूप ये दो। अशुद्ध रागादि बाद में लेंगे। **अन्तर्जल्परूप बहिर्जल्परूप...** अन्तर में विकल्प और बाहर बोलने की (क्रिया) आदि। **इत्यादि करतूतिरूप क्रिया...** एक बात। ये शरीरादि की (क्रिया)। **अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल का पिण्ड,...** जड़कर्म। दो बात। **अशुद्ध रागादिरूप जीव के परिणाम...** यह तीसरी बात। इसमें ये यहाँ लिये। तीनों को (लिये)।

शरीर की क्रिया होती है... यहाँ अन्तर्जल्प, बहिर्जल्प को बाहर में लिया है। और आठ कर्म, **अशुद्ध रागादिरूप जीव के परिणाम...** आहाहा! **ऐसा कर्म...** देखो! वह **जीवस्वरूप का घातक है,...** भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु का शुभ-अशुभभाव घातक है। **ऐसा जानकर आमूलचूल त्याज्य है।** आहाहा! आमूलचूल त्याज्य-मूल में से सब त्याज्य हैं। सब मूल के अंश छोड़ दे। मूल में से छोड़ने योग्य है। आहाहा! समझ में आया? बाद में क्या होता है, यह बात विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १२, बुधवार, दिनांक २४-०९-१९७७
कलश-१०९, प्रवचन-१०४

दशलक्षणी पर्व का आठवाँ दिन है। त्याग, त्यागधर्म। त्यागधर्म की व्याख्या क्या?

जो चयदि मिट्ठभोज्जं उवयरणं रायदोससंजणयं।
वसदिं ममत्तहेदुं चायगुणो सो हवे तस्स॥४०१॥

मुनि की मुख्यता से व्याख्या है न! मुनि को तो संसार, देह, देह के मोह का त्याग है। अन्तर में मिथ्यात्व, अव्रत का त्याग है। सम्यग्दर्शन और अनुभव की स्थिरता का ग्रहण है। चारित्र, स्वरूप आनन्द में रमणता, ये तो है परन्तु जिसके साथ काम पड़ता है, ऐसा **इष्ट भोजन छोड़े...** भोजने लेने की इच्छा होती है तो इसमें इष्ट भोजन का... आहाहा! राग छोड़ना, यह त्याग है। सम्यग्दृष्टि का त्याग यह है मिथ्यात्वभाव और अनन्तानुबन्धी का त्याग और सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण का ग्रहण। समझ में आया? वहाँ त्यागधर्म इतना है।

पंचम गुणस्थान में मिथ्यात्व (का सर्वथा) और अव्रत का एक अंश त्याग है। स्वरूप में आनन्द की एकाग्रता चौथे से विशेष है तो इसमें अव्रत का त्याग अंश में आया। अन्तर के व्रत की बात है, हों! बाहर नहीं। आहाहा! छठवें गुणस्थान में अव्रत का सर्वथा त्याग और विरति भाव है, विरक्ति है। राग से तो विरक्त सम्यग्दर्शन हुआ, तब से है। परन्तु अस्थिरता से विरक्त है। आहाहा! यह मिष्ट भोजन को तो छोड़ते हैं।

'**रागदोससंजणयं**' जो उपकरण में, पुस्तक, पिच्छी और कमण्डल—तीन उपकरण हैं। उसमें भी **राग-द्वेष को उत्पन्न करनेवाले उपकरण का त्याग करते हैं...** आहाहा! जिसमें राग उत्पन्न होता है, ऐसा उपकरण छोड़ते हैं। अन्तर अनुभव और आनन्द का भाव तो है ही। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का परिणमन तो है ही, परन्तु अभी संज्वलन का राग तो रहा है, तो उसमें भी तीव्र राग होता है, ऐसा उपकरण छोड़ देते हैं। **तथा ममत्व के**

कारणरूप वसतिका का त्याग करते हैं... इन तीन के साथ काम पड़ता है। भोजन, उपकरण, बस्ती। मुनि को तीन के साथ (काम पड़ता है)। तीन में राग छोड़ दे। यह बात करना है। समझ में आया? स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो हैं नहीं। उनका राग भी नहीं। आहाह!

अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की दशा में विचारनेवाले सन्त को ये तीन प्रकार— भोजन, उपकरण और बस्ती, इस प्रकार का ममत्व छोड़ दे। उसको त्यागी कहने में आता है। आहाहा! उसको त्यागधर्म कहने में आता है। बाहर वस्तु स्त्री, कुटुम्ब, परिवार छोड़ा, इसलिए त्यागी हैं, ऐसा नहीं। क्योंकि बाह्य वस्तु का तो आदान-उपादानशून्य है। ग्रहण करना, छोड़ना, इससे तो आत्मा शून्य है। पर का तो ग्रहण करना और छोड़ना, यह तो है ही नहीं। आहाहा! राग का ग्रहण करना और राग का छोड़ना, ये जो व्यवहार है, तो मुनि को राग तो तीव्र होता ही नहीं। छठवें-सातवें में झूलते हैं। आहाहा! क्षणिक में छठे और क्षण में सप्तम आनन्द के अनुभव में, अभेद में अनुभव हो जाता है। तो उनको तीव्र राग तो है ही नहीं। परन्तु यह भोजन, आदि सामग्री उपकरण के बस्ती सम्बन्धी राग हो, उसे छोड़ते हैं। उसको त्यागधर्म कहने में आता है। बाह्य का त्याग किया, वह त्यागधर्म नहीं। अन्दर में बाह्य का त्याग तो है ही। क्या कहा?

मुमुक्षु : सब मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब मानते हैं, बाद में तुम्हारे जैसे सेठिया भी मानते हैं। सेठ!

त्याग तो यह है, जिसमें आनन्दस्वरूप का ग्रहण और राग का त्याग, ऐसा है न? आहाहा! वीतरागस्वरूप आत्मा, उसका ग्रहण-अनुभव और राग का त्याग कहना, यह भी एक उपचार से कथन है। पर के त्याग की बात तो है ही नहीं। समयसार ३४ गाथा में आता है कि राग का त्याग करना, ऐसा कहना यह परमार्थ से आत्मा में है ही नहीं। क्योंकि राग का ग्रहण ही किया नहीं तो छोड़ना क्या? आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! मार्ग कठिन।

यह तो आत्मा के हित की बात है। भाई! अरे! जन्म-मरण कर-करके, अरे! अनन्त-अनन्त अवतार अकेले जन्म-मरण करके दुःखी है। कोई इसके जन्म-मरण में सहायक नहीं। अकेले निगोद आदि में अनन्त भव करते हैं। आहाहा! यह मनुष्यपना तो मुश्किल

से अनन्त काल में मिला है, बाकी निगोद की अवस्था (भोगनी है)। शास्त्र तो ऐसा कहते हैं, जैसे स्त्री का पीहर है, पीहर, इसमें बड़ी होती है न? ऐसा पहले तो निगोद के घर में ही रहते हैं। आहाहा! उसमें अनन्त काल में मुश्किल से कोई दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि होते हैं और इसमें मनुष्यपना मिलना और इसमें आर्यक्षेत्र और उत्तम कुल... आहाहा! वह तो दुर्लभ चीज़ है। पर इसमें भी सम्यग्दर्शन अनन्त काल से नहीं पाया, ये दुर्लभ है। आहाहा!

इस सम्यग्दर्शन में स्वरूप का ग्रहण और अनन्तानुबन्धी राग का त्याग, इसको यहाँ समकिती का त्यागधर्म कहने में आता है। मुनि को तो अन्दर आनन्द की लहर होती है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, जैसे समुद्र के किनारे बाढ़ आती है, ऐसे मुनि को तो पर्याय में अनन्त आनन्द की बाढ़ आती है। आहाहा! समझ में आया? जिसे पाँचवीं गाथा में प्रचुर स्वसंवेदन कहा है। समयसार, पाँचवीं गाथा। मुनि कहते हैं कि हमारे तो प्रचुर स्वसंवेदन है। हमारा वैभव... कहो, पोपटभाई! यह तुम्हारा पैसा और लड़कों का वैभव... नहीं? आहाहा! हमारा वैभव... कुन्दकुन्दाचार्य मुनिराज कहते हैं, प्रचुर स्वसंवेदन यह हमारा वैभव है। अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन होना, यह हमारा वैभव है। आहाहा! और इस वैभव की प्राप्ति से मैं समयसार कहूँगा। पाँचवीं गाथा। आहाहा! गजब बात! कठिन पड़ती है लोगों को। आहाहा!

कल तो तार आया है। सेठ! रात्रि में कहा था न? गंगवाल, कलकत्ता से। ये पुस्तक है, वह हिन्दी नहीं छपवाना, हिन्दी वालों को भेंट में देने, नहीं तो तूफान होगा, गड़बड़ होगी। अरर! ऐ! भेंट नहीं देना और बाहर नहीं निकालना। पहले प्रकाशकीय निवेदन है न? उसको फाड़ दो। ऐसा देखा है। समाज... समाज... बड़ा। ये बात... प्रभु! ये तो जिसको अन्तर आत्मा की लगन लगी हो...! आहाहा! मेरी चीज़ क्या है? मेरे में क्या नहीं है? मेरी चीज़ क्या है? और मेरी चीज़ में क्या नहीं? मेरी चीज़ में तो ज्ञान और आनन्द, शान्ति और स्वच्छता, प्रभुता भरी है और पुण्य-पाप के विकल्प का तो मेरे में अभाव है। समझ में आया? ऐसी दृष्टिपूर्वक अनुभव में लीन होना, उसका नाम यहाँ त्यागधर्म कहने में आता है।

अब चलता विषय। १०९ कलश। यहाँ आया है। **रागादिरूप जीव के परिणाम— ऐसा कर्म जीवस्वरूप का घातक है, ऐसा जानकर आमूलचूल त्याज्य है।** पहली लाईन है, पहली लाईन। पहली पंक्ति है। आहाहा! हिन्दी में पहली लाईन इस ओर है। गुजराती (पृष्ठ ९५)। हिन्दी में ९१ पृष्ठ की पहली पंक्ति है। अशुद्ध पुण्य और पाप के भाव, वे जीव स्वरूप के घातक हैं। आहाहा! इस कारण, **ऐसा जानकर आमूलचूल त्याज्य है।** आमूलचूल त्याज्य। आहाहा! मूल में से छोड़ देना। आहाहा! निज भगवान आनन्द में लीन होकर राग की उत्पत्ति न होना, इसको राग का आमूल त्याग, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! राग का त्याग करूँ, ऐसा भी नहीं, इसमें तो दृष्टि राग पर जाती है। समझ में आया? दया, दान, व्रतादि के विकल्प हैं, इसमें तो दृष्टि वहाँ जाती है। ऐसा नहीं। पर इस ओर की अस्थिरता छोड़कर स्वरूप में स्थिरता होती है, तब राग की उत्पत्ति होती नहीं, यह आमूलचूल राग का त्याग कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

एक-एक तत्त्व ऐसी चीज़ है। अपूर्व बात है। एक भाव भी यथार्थ समझे तो सब भाव यथार्थ समझ में आयें, ऐसा जयसेनाचार्य की टीका में है। एक भाव भी यथार्थ—जैसा है, वैसा यदि समझे तो सब भाव इसको समझ में आ जाये। एक भाव भी यथार्थ न समझे तो सब भाव विपरीत भाव हैं।

यहाँ तो कहते हैं, **'तत्र संन्यस्ते सति' उस समस्त ही कर्म का त्याग होने पर...** जहाँ शुभ और अशुभ का सर्वथा त्याग होने पर **'पुण्यस्य वा पापस्य वा का कथा' पुण्य का पाप का कौन भेद रहा?** कि पाप छोड़नेयोग्य और पुण्य अच्छा, ऐसा वहाँ कहाँ रहा? आहाहा! ज्ञानस्वभाव भगवान आत्मा में लीन होने से पुण्य-पाप का भाव त्याज्य है, मूल में से त्याज्य है, तो कहते हैं कि जहाँ मूल में से त्याज्य है, वहाँ पुण्य-पाप के दो भेद की कथा कहाँ? कि पाप को छोड़ना और पाप को रखना, यह बात है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग। **'तत्र संन्यस्ते सति'** दोनों में भेद क्या? है?

भावार्थ इस प्रकार है - समस्त कर्मजाति हेय है,... पुण्य के असंख्य प्रकार, पाप के असंख्य प्रकार—विकल्प के, आहाहा! **समस्त कर्मजाति हेय है,...** यह तो कर्म जाति है। आहाहा! यह आत्म जाति नहीं। समझ में आया? **पुण्य-पाप के विवरण की क्या**

बात रही। तो फिर पुण्य-पाप में भेद है, ऐसा कहाँ रहा? दोनों कर्म जाति हेय हैं। आहाहा! यह कठिन पड़ता है लोगों को। ऐसा कि दिगम्बर सम्प्रदाय प्रमाण से व्रत और तप और भक्ति और पूजा करें, ये दिगम्बर हैं। कल पत्र आया है। कल आया है एक। और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रमाण में व्रत, नियम करे, ये श्वेताम्बरी। इससे आगे बात क्या करना? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रमाण में व्रत, नियम इसको कहते हैं कि जिसके अन्दर सम्यग्दर्शन हो, राग का त्याग हुआ हो, राग की उपादेयता छूट गयी हो, भगवान आनन्द के नाथ का उपादेयपना अन्दर प्रगट हुआ हो... आहाहा! समझ में आया? वह अन्दर में स्थिरता करता है, इसका नाम दिगम्बर धर्म है। यह व्रत और तप की क्रिया शुभराग, ये तो यहाँ कहते हैं, ये तो मूल में से छोड़नेयोग्य है। इसमें पाप छोड़नेयोग्य है और पुण्य ठीक है, ऐसा भेद रहा कहाँ? दो में एक ठीक और दूसरा अठीक, रहा कहाँ? ये तो बताया था न?

प्रवचनसार ७७ गाथा। जो कोई पुण्य और पाप में दो में विशेष मानता है-अन्तर मानता है, पुण्य ठीक और पाप अठीक, वे घोर अपार संसार में हिंडंति। आहाहा! ऐसी बात है। शुभ और अशुभभाव, पुण्य और पाप, दो में विशेष मानता है कि यह पुण्य-पाप में अन्तर है। यह विशेष माननेवाला, दोनों को समान नहीं माननेवाला घोर संसार में हिंडंति — ऐसा पाठ है। आहाहा! समझ में आया?

दान का भाव शुभभाव और कंजूस का भाव अशुभभाव। यहाँ तो दोनों भावों का त्याग बताना है। समझ में आया? दान का अधिकार चलता है, तब यह बात आती है.. समझ में आया? पद्मनन्दि पंचविंशति, भाई! तुझे पूर्व के पुण्य के कारण पाँच, पचास लाख के दो-चार करोड़ मिले तो जैसे कौआ, मनुष्यों के भोजन खाने के बाद उकडिया... उकडिया क्या कहते हैं? खुरचन। मनुष्य भोजन जीमने के बाद उकडिया छोड़ देते हैं। इसमें कौआ अकेला नहीं खाता, कौआ अकेला नहीं खाता। काँव... काँव करके पाँच-पच्चीस कौओं को बुलाकर खाता है। पद्मनन्दि पंचविंशति में (आता है)।

उसी प्रकार तुझे खुरचन का फल—पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़, पाँच करोड़ मिले हैं। ये पूर्व के शुभभाव जो आत्मा की शान्ति जलायी थी, यह खुरचन का फल

है, जो तुझे दो-पाँच करोड़ मिले हैं। आचार्य तो यहाँ कहते हैं, कौआ अकेला नहीं खाता। ऐसे तुझे खुरचन—पुण्य का फल मिला, यदि अकेला खायेगा तो कौआ से भी गया गुजरा है। जब जो अधिकार होता है, तब वो चलता है। है तो ये पुण्य का अधिकार। समझ में आया? शुभभाव का। पाप की अपेक्षा शुभभाव की बात करना हो तो ऐसा बताते हैं कि पूर्व पुण्य के कारण जो खुरचन था, बन्धन था। उससे तुझे ये थोड़ी धूल मिली है। इसमें तू अकेला कुटुम्ब और कबीला के लिये खायेगा तो तू कौआ से भी गया बीता है, याद रख! पद्मनन्दि पंचविंशति दान के अधिकार में। सब पड़ा है। आहाहा! वहाँ आगे ये राग की मन्दता करने के लिए और तीव्रता छोड़ने के लिए बताया है। यहाँ तो पुण्य और पाप दोनों ही धर्म नहीं। ऐसा बताना है। समझ में आया? आहाहा!

पुण्य-पाप के विवरण की क्या बात रही। 'किल' ऐसी बात निश्चय से जानो,... ऐसी बात निश्चय से जानो (कि) शुभ और अशुभभाव दोनों में कुछ अन्तर नहीं। दोनों राग, दोनों मैल, दोनों दुःख, दोनों विभाव हैं। आहाहा! जिनको धर्मदृष्टि करना हो, उनको तो दोनों बन्ध के कारण हैं, ऐसे हेय मानकर स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप की रमणता करना। आहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

पुण्य-पाप के विवरण की क्या बात रही। पुण्यकर्म भला ऐसी भ्रान्ति मत करो। है? **ऐसी बात निश्चय से जानो, पुण्यकर्म भला, ऐसी भ्रान्ति मत करो।** आहाहा! शुभभाव ठीक है, ऐसी भ्रान्ति, भ्रम (न करो)। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु से विरोधी का शुभभाव ठीक है, ऐसी भ्रान्ति न करो। समझ में आया?

'ज्ञानं मोक्षस्य हेतुः भवन् स्वयं धावति' आहाहा! **आत्मा का शुद्ध चेतनारूप परिणमन...** इसका (पुण्य का) त्याग बताया है तो अब करना क्या? आहाहा! **आत्मा का शुद्ध... 'ज्ञान'** शब्द लिया न? **आत्मा का शुद्ध चेतनारूप परिणमन...** शुद्ध चैतन्यस्वरूप त्रिकाल है, उसका वर्तमान में शुद्ध चैतन्य का परिणमन (होना), उसमें राग के अंश का अभाव है और निर्मलता का सद्भाव है। आहाहा! है? **शुद्ध चेतनारूप परिणमन मोक्ष का अर्थात् सकल कर्मक्षयलक्षण ऐसी अवस्था का कारण...** मोक्ष का कारण तो यह है। शुद्ध चैतन्यस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का परिणमन (होना) यह मोक्ष का

कारण है। समझ में आया? पुण्य-पाप दोनों बन्ध के कारण, संसारकारण हैं। आहाहा! कहा? **शुद्ध चेतनारूप परिणमन मोक्ष का अर्थात् सकल कर्मक्षयलक्षण ऐसी अवस्था का कारण...** है। कारण है।

स्वयं दौड़ता है ऐसा सहज है। आहाहा! कहते हैं, राग बिना अपनी जो चीज़ है, उसमें दृष्टि करके स्थिरता करते हैं तो शुद्धपरिणति दौड़ती है। आया? निर्मल परिणति एक के बाद एक निर्मल परिणति उत्पन्न होती है। वह मोक्ष का कारण है। भाषा देखी? **स्वयं दौड़ता है...** है? **'स्वयं धावति', 'स्वयं धावति' स्वयं दौड़ता है...** आहाहा! शुद्ध चैतन्यस्वभाव त्रिकाली परम पवित्र प्रभु, उसके अवलम्बन से जो शुद्ध चैतन्यपरिणति-पर्याय उत्पन्न होती है, वह मोक्ष का कारण है और स्वयं दौड़ती है। समझ में आया? ये स्वयं दौड़ती है, ऐसा कैसे कहा? कि पुण्य के भाव की सहायता बिना शुद्ध परिणति स्वयं दौड़ती है। दो शब्द पड़े हैं। **'स्वयं धावति'।** ये तो गम्भीर शब्द है। स्वयं अर्थात् स्वयं। ये शुद्ध परिणति पर की सहायता बिना, व्यवहाररत्नत्रय की सहायता के बिना अपनी शुद्धपरिणति स्वयं दौड़ती है—**'धावति'** है। आहाहा! समझ में आया? स्वयं शब्द कहकर (ऐसा कहना है कि) जहाँ व्यवहार की अपेक्षा नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय का जो शुभराग है, उसकी अपेक्षा वहाँ नहीं, शुद्ध चैतन्यस्वभाव स्वयं अपने से अपनी परिणति में दौड़ता है अर्थात् शीघ्र काम करता है। आहाहा! यह बात!

शुद्धस्वरूप जो निज परमात्मस्वरूप, इसका आश्रय लेने से पुण्य के परिणाम का अवलम्बन और आश्रय की सहायता बिना... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय की अपेक्षा और आश्रय लिये बिना, अपना स्वयं शुद्धस्वभाव, अपने से निर्मल परिणति दौड़ती है। इसका अर्थ कि ये परिणाम निर्मल करते-करते दौड़ते अल्पकाल में स्वयं पूर्ण हो जायेगा और केवलज्ञान हो जायेगा। आहाहा! शीघ्र शुद्ध परिणति दौड़ती-दौड़ती केवलज्ञान ले लेगी। आहाहा! यहाँ मोक्ष का कारण कहना है। स्वयं दौड़ती है, ये कारण है, तो इसे दौड़ते-दौड़ते इसको जाना कहाँ है? पूर्ण केवलज्ञान प्राप्त करने को जाना है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश अर्थात् लोगों को... नहीं तो पुस्तक तो बहुत अच्छी आयी है, परन्तु अब ऐसा निकाला। हिन्दी छपायेंगे, जिसको जरूरत होगी वे लेगा। बाकी पुस्तक तो बहुत अच्छी!

परन्तु अरे... ! जगत को वाड़े में बाँधा। अपनी दृष्टि से बँधा हो, उसको यह बात रुचे नहीं। आहाहा ! यह क्या कहते हैं ? यह कहते हैं।

इसमें भी कितने ही जिनेश्वरदास के गाँव के रतनचन्दजी कहते हैं। इसमें सुधार करना, ऐसा कहते थे। कलशटीका में सुधार करना। बाद में अटक गये और बाहर आये थे। आहाहा ! अरे ! प्रभु ! तू कितना सुधार करेगा ? ऐसा कि बहुत निश्चय की बातें उड़ा दी हों और व्यवहार को सुधार दो। क्या सुधार दें ? प्रभु ! तू सुधर जा न। आहाहा ! तेरी दृष्टि में से पुण्य-पाप के भेद हैं, वह निकाल दे न ! तू सुधर जायेगा। तेरे में पुण्य ठीक और पाप अठीक, ऐसा भेद निकाल दे। ये अर्थ बदलेगा तो नहीं निकलेगा। समाचारपत्र में आया था। सुधार कर दो न कलशटीका में भी ऐसा है और वैसा है। आहाहा ! बाद में कुछ कहा नहीं। यहाँ से चार हजार छपवाना है, हिन्दी यहाँ से छपायेंगे, परन्तु जिसको लेना होगा वह लेगा, सामने से नहीं देना। बस इतना ! ऐसी अमृत चीज़ है, ये सामने से नहीं देना, लेना होगा वह लेगा, ऐसा निर्णय रात्रि में लिया। रामजीभाई से कहा। आहाहा ! कैसी चीज़ थी !

कहते हैं, आहाहा ! **भावार्थ इस प्रकार है - जैसे सूर्य का प्रकाश होने पर सहज ही अन्धकार मिटता है,...** आहाहा ! सहज ही अन्धकार मिटता है। अन्धकार मिटाना नहीं पड़ता। आहाहा ! जहाँ प्रकाश हुआ, वहाँ अन्धकार उत्पन्न होता ही नहीं, तब नाश करना कहाँ रहा ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! **वैसे ही जीव के शुद्ध चेतनारूप परिणमने पर...** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप के अभिमुख होकर शुद्धचैतन्य का परिणमन होने पर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्धपरिणति होने पर शुद्धपरिणति अर्थात् ये। आहाहा ! **परिणमने पर सहज ही समस्त विकल्प मिटते हैं,...** देखो ! जैसे सूर्य का प्रकाश होने पर सहज ही अन्धकार मिटता है, वैसे शुद्धचैतन्यरूप परिणमते सहज ही समस्त विकल्प, समस्त में शुभभाव के विकल्प भी मिट जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, इसको अब यह रुचता नहीं है।

हम मानते हैं कि ये व्रत, तप और ये करते हैं। सम्यग्दर्शन के बिना, हों ! इससे धर्म होता है। इससे विरुद्ध कहो तो, नहीं। अरे ! भगवान ! क्या हुआ ? आहाहा ! शरणभूत वस्तु का अनादर और अशरणभूत (वस्तु) का आदर ! ये शुभभावादि तो अशरणभूत हैं, शरणभूत

नहीं। शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान का शरण लेना तो शुद्ध चैतन्य परिणति, वह शरण है। वीतरागी परिणति, यह शरण है। आहाहा! समझ में आया? अरे रे! ऐसा मनुष्यपना मिला और तिर्यंच को मनुष्यपना न मिला तो मनुष्यपना मिला परन्तु जो ये सत्य समझण अर्थात् सम्यग्दर्शन न किया तो ये मनुष्यपना मिला, न मिला, सब बराबर है। आहाहा! पशु को मिला नहीं और तुझे मिला, परन्तु काम न किया। आहाहा!

अन्दर में शुद्ध चैतन्य भगवान की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, ऐसा शुद्ध परिणमन होते सहज समस्त विकल्प मिटते हैं। सूर्य के प्रकाश में अन्धकार की उत्पत्ति नहीं, वैसे शुद्ध चैतन्य के परिणमन में विकल्प की उत्पत्ति नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग। अन्तर्मुख होने का मार्ग है प्रभु! यह तो। बहिर्मुख की जितनी वृत्तियाँ, विकल्प हैं, वे सब बन्ध के कारण हैं। समझ में आया? तब कहें, परन्तु ये तो बहुत निश्चय की बात है, इसका कोई साधन? यही साधन है स्वरूप की शुद्ध परिणति ये ही मोक्ष का साधन है। आहाहा! प्रज्ञाछैनी कहा न? आहाहा!

समस्त विकल्प मिटते हैं,... किस प्रकार? शुद्धस्वरूप जो द्रव्यस्वभाव, उसके अवलम्बन से विकल्परहित निर्विकल्प शुद्ध परिणति है, वहाँ समस्त विकल्प मिटते हैं। सूर्य के प्रकाश में अन्धकार नहीं रहता, वैसे शुद्ध परिणाम में विकल्प का अन्धकार नहीं रहता। आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़ती है मनुष्यों को। बापू! अनन्त काल से भटकता है, भाई! कहीं सुख नहीं, भाई! यह सुख का सागर भगवान है न, भाई! आहाहा! यह सुख का सागर भगवान, उसके आगे जा न, भाई! आहाहा! समझ में आया? पुण्य-पाप के भाव तो दुःख के समुद्र हैं। आहाहा! विकल्प की जाल, आकुलता के कारण और वे तो आकुलतारूप है। भगवान आनन्द का कारण और आनन्दरूप है। ऐसी बात है। आहाहा!

यहाँ तो बाहर से यहाँ मिलेगा, यहाँ से मिलेगा। स्त्री में से सुख मिलेगा, पैसा में से सुख मिलेगा, आबरू में से सुख मिलेगा, व्यापार-धन्धा खूब जम जाये तो सुख मिलेगा। मूढ़ है... तूने जीव को मार दिया। चैतन्यसागर आनन्द से अन्दर डोलता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर परमात्मा, वहाँ नजर किये बिना तुझे सुख नहीं मिलेगा। पुण्य-पाप में तो सुख नहीं और पुण्य-पाप के फल बाहर की अनुकूलता-प्रतिकूलता

मिले, उसमें भी सुख नहीं। आहाहा! गधे के ऊपर चन्दन का भार। गधा को चन्दन की सुगन्ध नहीं। आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा के ऊपर विकल्प का बड़ा भार। आहाहा! उसको आत्मा की सुगन्ध नहीं। समझ में आया?

कैसा है ज्ञान? मिटते हैं, ज्ञानावरणादि कर्म अकर्मरूप परिणमते हैं,... देखो! भाषा! भाई ने लिखा है। 'जैन तत्त्व मीमांसा' 'जैन तत्त्व मीमांसा' में फूलचन्दजी ने लिखा है कि चार कर्म नाश होने से केवलज्ञान होता है, ऐसा तुम कहते हो, तो ऐसा है नहीं। चार कर्म के नाश से तो अकर्म पर्याय होती है। कर्म की पर्याय जो होती है, वह व्यय होकर के अकर्मरूप पर्याय होती है। 'जैन तत्त्व मीमांसा' में लिखा है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो मोक्ष की केवलज्ञान की पर्याय तो अन्दर द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है। आहाहा! पूर्व का मोक्ष का मार्ग है, उससे भी केवलज्ञान-मोक्ष की पर्याय उत्पन्न होती नहीं। ये भी व्यवहार कथन है। आहाहा! द्रव्य में यह केवलज्ञान की—सर्वज्ञ की शक्ति पड़ी है, उस शक्ति की वर्तमान व्यक्तता, वर्तमान में सीधा व्यक्त परिणमन होता है, वह सर्वज्ञपना और मोक्ष है। आहाहा! यह मोक्ष-केवलज्ञान चार कर्म का नाश हुआ, इसलिए उत्पन्न हुआ—ऐसा नहीं। तथा वैसे ही पूर्व की मोक्षमार्ग की पर्याय थी, वह गयी और केवलज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं। गयी उसमें से होना कहाँ से आया? अन्दर में भगवान पूर्णानन्द का नाथ सर्वज्ञस्वभावी वस्तु में से परिणमन होकर सर्वज्ञपना होता है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु की स्थिति तो ऐसी मार्यादा में रही है। समझ में आया?

कल कहा था न? जिनशासन को ओलंगता नहीं। धर्मी जैनशासन को ओलंघता नहीं। अपने स्वरूप को ओलंघता नहीं—राग में जाता नहीं। आहाहा! राग होता है, परन्तु उसका जाननहार रहता है। राग मेरा है, ऐसा धर्मी मानता नहीं। आहाहा! यहाँ तो राग की क्रिया को मोक्षमार्ग तो ठीक, नहीं तो एकान्त है। भगवान! तेरी वस्तु में...

आहाहा! अनुभवप्रकाश में ये कहा है, कि तेरी शुद्धता तो बड़ी, परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी। तीर्थंकर जैसों को तूने सुना परन्तु तूने अशुद्धता छोड़ी नहीं। शुद्धता तो बड़ी है, महा भगवान परमानन्दमूर्ति प्रभु है, परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी कि तीर्थंकर जैसे

समवसरण में गया, सुना परन्तु तूने अशुद्धता छोड़ी नहीं। आहाहा! अनुभवप्रकाश में है। दीपचन्दजी।

यहाँ कहते हैं, भगवान! तू एक बार तेरे नाथ को सम्भाल न! यह राग तेरी चीज़ नहीं, प्रभु! तेरे द्रव्य में-गुण में यह (राग) वस्तु ही नहीं। पर्याय में उत्पन्न हुई, ये तो निमित्ताधीन विकृत अवस्था है। तो वस्तु स्वभाव का... स्वभाव का सागर है न आत्मा। उस स्वभाव का परिणमन पर्याय में होने से अशुद्ध परिणमन मिटता है। आहाहा! और ज्ञानावरणी अकर्मरूप परिणमता है। रागादि अशुद्ध परिणाम मिटता है। है न?

कैसा है ज्ञान? स्वरूप भगवान आनन्दकन्द प्रभु कैसा है? **'नैष्कर्मप्रतिबद्धं' निर्विकल्पस्वरूप है।** ये **'नैष्कर्मप्रतिबद्धं'** है। **निर्विकल्पस्वरूप है।** भगवान तो निर्विकल्प-राग बिना का निर्विकल्पस्वरूप है। ये दया, दान के विकल्प से रहित तेरी चीज़ निर्विकल्प-स्वरूप है। आहाहा! उस चीज़ में विकल्प का तो अवकाश नहीं। आहाहा! समझ में आया? **'नैष्कर्मप्रतिबद्धं'** '**नैष्कर्मप्रतिबद्धं**' निष्कर्म के साथ प्रतिबद्ध है। अर्थात् निर्विकल्प-स्वरूप है। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ में विकल्प मात्र तो नहीं, निर्विकल्प से प्रतिबद्ध तेरी चीज़ है। तेरा स्वरूप निर्विकल्प है। प्रतिबद्ध का अर्थ यह किया। आहाहा! अभी श्रद्धा में भी बात बैठे नहीं, तो कहाँ से अनुभव करे। आहाहा! झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा।

और कैसा है? 'उद्धतरसं' प्रगटरूप से चैतन्यस्वरूप है। '**उद्धतरसं**' जिसका चैतन्यरस है। आहाहा! ज्ञानस्वरूप उद्धत है। किसी को गिनता नहीं, राग को गिनता नहीं। मनुष्य नहीं कहते? ये उद्धत है, किसी को गिनता नहीं। ऐसे ज्ञानरस कोई को—रागादि को गिनता नहीं। समझ में आया? आहाहा! थोड़ी परन्तु सत्य बात होनी चाहिए। बड़ी-बड़ी बातें करे और सत्यता हाथ नहीं आये, वह कोई चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान निष्कर्म प्रतिबद्ध है-आत्मा। निर्विकल्पस्वरूप है और उद्धत जिसका रस है। आहाहा! उद्धत रस का अर्थ क्या किया? **प्रगटरूप से चैतन्यस्वरूप है।** आहाहा! उद्धत चैतन्यरस है। यह चैतन्यरस अद्भुतरस राग को, व्यवहार को कोई गिनता नहीं। तेरी मुझे सहायता नहीं, तेरी मुझे सहायता नहीं, मेरी सहायता स्वयंसिद्ध है। आहाहा! ऐसी बात। **कैसा होने से मोक्ष का कारण होता है?** चैतन्य निर्विकल्पस्वरूप, उद्धतरस

अर्थात् चैतन्य निर्विकल्प स्वरूप, उद्धतरस अर्थात् प्रगट चैतन्यस्वरूप **कैसा होने से मोक्ष का कारण होता है ?** आहाहा ! स्वरूप तो त्रिकाल चैतन्य प्रगट है, ऐसा कहते हैं। वस्तु तो प्रगट चैतन्यस्वरूप अखण्डानन्द प्रभु है। ज्ञान और आनन्द के रस से भरा प्रभु आत्मा है।

कैसा होने से मोक्ष का कारण होता है ? 'सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनात्' वह विकल्प यह निज स्वभाव नहीं। **'सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनात्' जीव का गुण सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ऐसे हैं...** आहाहा ! **जो जीव के क्षायिक गुण उनके प्रगटपने के कारण।** आहाहा ! शुरु से लेना है। क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है और क्षायिक केवलज्ञान भी उस शुद्ध परिणति को कारण होता है। आहाहा ! जीव का क्षायिक गुण निजस्वभाव। उसके प्रगटपने के कारण। **'भवनात्' 'भवनात्'** परिणमन में प्रगटपने के कारण। आहाहा !

भावार्थ इस प्रकार है - कोई आशंका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन का मिला हुआ है,... क्या कहते हैं ? मोक्षमार्ग तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों मिलकर हैं और आप तो ज्ञान, ज्ञान ही करते हो। समझ में आया ? ज्ञान मोक्षमार्ग, ज्ञान मोक्षमार्ग। शुद्धचैतन्य का परिणमन मोक्षमार्ग, शुद्ध चैतन्य का परिणमन मोक्षमार्ग (कहते हो) मोक्षमार्ग तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों हैं, और आप तो ज्ञान ज्ञान करते हो। समझ में आया ? ऊपर यह कहा था न ? ज्ञान। आया था न ये ? (मोक्षमार्ग तो तीनों मिलकर) मोक्ष का कारण कहा है और आप तो ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान (करते हो)। सुन तो सही, प्रभु !

कोई आशंका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन का मिला हुआ है, यहाँ ज्ञानमात्र मोक्षमार्ग कहा सो क्यों कहा ? अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... मोक्ष का मार्ग। भगवान ने तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों कहे हैं। आप अकेले ज्ञान को ही क्यों कहते हो ? **उसका समाधान ऐसा है - शुद्धस्वरूप ज्ञान में सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्र सहज ही गर्भित हैं,...** आहाहा ! शुद्धस्वरूप का ज्ञान (अर्थात्) परिणमन, हों ! त्रिकाली शुद्धस्वरूप है, इसमें शुद्ध परिणमन। ज्ञान का शुद्ध वर्तमान परिणमन। इसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र गर्भित है। इसमें **सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्र सहज ही गर्भित हैं,...** आहाहा ! यह क्या कहा ? आप तो ऐसा कहते आये हो, दो-तीन ठिकाने

आया, हों! समझे? पृष्ठ ८ पर भी है। ३३ पेज पर भी है, ९१ पर भी आया। दो ठिकाने आया है, पहले आ गया है।

ऐसा कि आत्मा ज्ञानस्वरूप... ज्ञानस्वरूप... ज्ञानस्वरूप है और ज्ञानस्वरूप परिणमन करना, ऐसा मोक्षमार्ग है। तो आप तो अकेले ज्ञान को मोक्षमार्ग कहते हो। भगवान ने तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों को मोक्षमार्ग कहा है। सुन तो सही, प्रभु! **शुद्धस्वरूप ज्ञान में...** वर्तमान परिणमन पुण्य-पाप, दया, दान के विकल्प से रहित शुद्धस्वरूप ज्ञान के परिणमन में **सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्र सहज ही गर्भित हैं,...** समझ में आया? आहाहा! ज्ञानस्वरूप पूर्ण प्रभु, इसका वर्तमान में ज्ञानमय परिणमन होना, यह मोक्ष का कारण कहा। तो ज्ञान के परिणमन में दर्शन और चारित्र गर्भित है। यह ज्ञान के परिणमन में प्रतीति, लीनता तीनों इसमें हैं। अरे! ऐसी बातें, लो। सहज हैं। आहाहा!

सहज ही गर्भित हैं,... सहज ही गर्भित हैं। भगवान चैतन्य शुद्धवस्तु, उसका शुद्ध परिणमन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणमन, उसको हमने ज्ञान का परिणमन कहा और उसको मोक्ष का कारण कहा तो ये ज्ञान के परिणमन में सम्यग्दर्शन, चारित्र अन्दर गर्भित हैं ही। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान है, ये असाधारण स्वभाव है, असाधारण गुण है। इससे ज्ञानमात्र आत्मा कहा। परन्तु अकेला ज्ञान... यह तो सुबह चलता है कि अकेला ज्ञानमात्र कहा, इसलिए ज्ञानमात्र ही है, ऐसा नहीं। अनन्त गुण की पर्याय इसमें ज्ञान की परिणति में उछलती हैं। आहाहा! ऐसा उपदेश अर्थात् लोगों को... और पर्यूषण के दिन हों, उपवास करो, ये करो, ये करो, हो यह, राग की मन्दता हो तो भले हो, परन्तु ये धर्म है (ऐसा नहीं)। अशुभ से बचने के लिये शुभभाव हो, परन्तु वह तपस्या है, ऐसा नहीं।

यह तो कल आया न? तपस्या तो इसको कहते हैं... कल आया था, कि सम्यक् अनुभव दर्शन, ज्ञानपूर्वक चारित्र जो है, उस चारित्र में उग्र उद्यम करना ये तप है। चारित्र में उद्यम उग्र करना, वह तप है। परन्तु अभी सम्यग्दर्शन और चारित्र नहीं, तब तप कहाँ से आया? आहाहा! कल तप आया था। आहाहा! ऐसी व्याख्या तो... माँगीलालजी! कहीं सुनने मिले — ऐसा नहीं? तप... तप। 'तपयन्ते इति तपः' आहाहा! भगवान आत्मा निज

शुद्ध स्वरूप का अनुभव, इसमें प्रतीति और इसमें लीनता। यह लीनता में उग्र पुरुषार्थ को तप कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

एक आर्यिका ऐसा कहती थी, चर्चा। है न अपने यहाँ? वेजलका की। चन्दुभाई है अभी यहाँ? नहीं। वेजलका का चन्दुभाई है। है? गया होगा। ये वहाँ वडोदरा में चर्चा हुई थी। लीलावती अर्जिका के साथ। चन्दुभाई ने कहा, धर्म तो वीतराग दूसरी वस्तु है। तो कहे, तुम चाहे जो कहो, पर अपवास ये तप है और तप है वह निर्जरा है और निर्जरा वह धर्म है। हम तो ये मानते हैं, दूसरा न माने। लीलावती (कहती है)। आहाहा! तपस्या, भी कौन सी? बापू! लड़के तो अभी तो हजारों तैयार हो गये हैं। हजारों। सैकड़ों तो व्याख्यानवाले हो गये हैं, हजारों चर्चावाले हो गये हैं। ४३ वर्ष हो गये हैं न।

वेजलका का है न, एक चन्दुभाई है। राणपुर के पास गाँव है। बड़ोदरा रहते हैं। वह इनके पास गया होगा। ये कहें, तुम भले कहो पर उपवास, वह तप है और तप, वह निर्जरा है और ये धर्म है। अरे! भाई! यह तप तो सब विकल्प है। यदि राग की मन्दता हो तो। मान के लिये, आबरू के लिये और जगत में प्रशंसा के लिये करता हो तो पाप है। समझ में आया? वे न माने। क्योंकि बारह प्रकार के तप चलते हैं न? तो बारह प्रकार के तप में तो अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, विनय, वैयावृत्य, सज्झाय, ध्यान और कायोत्सर्ग (आदि सब आते हैं)। परन्तु ये सब विकल्प की बातें है, भाई! आहाहा! तप में तो णमो अरिहंताणं को भी तप में गिनने में आया है। लो, सज्झाय में। इसका अर्थ क्या? यह विकल्प है, इससे भिन्न भगवान आत्मा को स्व-अध्याय। स्वाध्याय—स्व का अनुभव करना, यह स्वाध्याय है। यह तप है।

ऐसे तो शास्त्र स्वाध्याय अनन्त बार किया। ग्यारह अंग पढ़े। नो पूर्व की लब्धि (प्रगट) हुई, उससे क्या हुआ? आहाहा! वह कोई चीज़ नहीं। ग्यारह अंग के एक-एक अंग में अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ से ज्यादा श्लोक। ऐसे ग्यारह अंग कण्ठस्थ किये। अब यहाँ तो कहाँ तेरह करोड़-फरोड़ भी हैं। इक्यावन करोड़ से ज्यादा श्लोक तो एक पद में, ऐसे अठारह हजार पद आचारांग, छत्तीस हजार पद सूयगडांग, बहत्तर हजार पद, ठाणांग। डबल। ऐसे ग्यारह अंग कण्ठस्थ किये, इसमें क्या

हुआ ? पत्थर में शास्त्र को उत्कीर्ण किया तो पत्थर हल्का हो जायेगा ? शास्त्र उसमें लिखा हो और पानी में डालें तो तैरेगा ? शास्त्र लिखा है न ? उसी प्रकार मन में शास्त्र लिखा है— उत्कीर्ण है। समझ में आया ? आहाहा ! शास्त्र में ये उदाहरण है, हों ! शास्त्र में सब उदाहरण है, सब पड़ा है। आहाहा !

यह भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु स्वभाव जिसका, यह ज्ञानस्वभाव का आश्रय करके ज्ञान प्रगट हुआ, उसको ज्ञान कहते हैं और वह ज्ञान मोक्ष का कारण है। तो उस ज्ञान में सहज दर्शन और चारित्र गर्भित है। आहाहा ! अरे ! वीतरागदेव सर्वज्ञ परमात्मा का शासन और मार्ग तो यह है। समझ में आया ? कहा न (समयसार) पन्द्रहवीं गाथा में ? जो कोई अपनी आत्मा को... आहाहा ! अबद्धस्पृष्ट देखे, सामान्य देखे, राग-द्वेष की जलन के दुःख से भिन्न देखे... आहाहा ! निश्चय से देखे, उसने सर्व जैनशासन देखा। पन्द्रहवीं गाथा। 'जो पस्सदि अप्पाणं'। आत्मा को, आत्मा को 'पस्सदी' देखा है। शास्त्र सुना और पड़ा, इसकी बात यहाँ है नहीं। भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप (है, उसको) अबद्ध कहा है। राग से बद्ध नहीं। स्वभाव से मुक्त है। अबद्धस्पृष्ट देखा, उसने सर्व जैनशासन देखा। आहाहा ! राग से भिन्न देखा, उसने जैनशासन देखा। रागसहित आत्मा है और उससे कल्याण (होगा), यह जैनशासान है ही नहीं। समझ में आया ? लो, गर्भित है।

इसलिए दोष तो कुछ नहीं, गुण है। ज्ञान को ही मोक्ष का मार्ग कहा तो इसमें गर्भित रूप से दर्शन, चारित्र आते हैं। इसमें कोई दोष नहीं, परन्तु गुण है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र शुक्ल १३, रविवार, दिनांक २५-०९-१९७७
कलश-११०, प्रवचन-१०५

दशलक्षणी पर्व, उसमें नौवाँ दिन है न आज। आकिंचन। आहाहा! कोई मेरा नहीं। राग का और रजकण भी मेरी चीज़ नहीं। मुनि की मुख्यता से बात करते हैं।

तिविहेण जो विवज्जदि चेयणमियरं च सव्वहा संगं।
लोयववहारविरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स॥४०२॥

आहाहा! मुनि तो सम्यग्दृष्टि अन्तर अनुभवी होते हैं। तदुपरान्त स्वरूप में चारित्र की रमणता प्रगट हुई है। उसको अकिंचनधर्म कैसे होता है, यह बात करते हैं। आहाहा!

अर्थ - जो मुनि... लोकव्यवहार से विरक्त लौकिक व्यवहार से विरक्त हैं वे। आहाहा! अरे! अन्दर में जो क्रियाकाण्ड का विकल्प है। इससे भी मुनि तो विरक्त हैं। आहाहा! अन्दर में बात सूक्ष्म बहुत है। समझ में आया? '**चेयरमियरं च सव्वहा संग**' चेतन तथा अचेतन जो सर्व परिग्रह है, उसका ममत्व छोड़ते हैं। चेतन में अपने शिष्य और संग, अचेतन में देह, बस्ती आदि उपकरण, उनका भी उनको ममत्व नहीं। मेरी चीज़ तो आनन्दस्वरूप मैं भगवान पूर्णानन्द हूँ। उसमें उस चीज़ के सम्बन्ध का त्रिकाल में अभाव नहीं। आहाहा! ऐसे अन्तर में **मन-वचन-काय-कृत-कारित-अनुमोदना पूर्वक सर्व चेतन-अचेतन परिग्रह का सर्वथा त्याग करते हैं...** आहाहा! मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित और अनुमोदना। **त्याग करते हैं - वे मुनि निर्ग्रन्थरूप होते हैं।** लो! आहाहा!

भावार्थ - मुनि अन्य परिग्रह तो छोड़ते ही हैं... उनको वस्त्र-पात्र तो होते ही नहीं। भावलिंगी सन्त, जिनके अन्तर प्रचुर आनन्द का स्वसंवेदन प्रगट हुआ है। आहाहा! यह भावलिंग का लक्षण है। अन्तर में आनन्द... आनन्द... आनन्द... प्रचुर अधिक आनन्द का वेदन जिसको अन्तर में प्रगट हुआ है, यह भावलिंग का लक्षण है और द्रव्यलिंग में

नग्नपना और पंच महाव्रतादि विकल्प होते हैं, परन्तु उनसे अन्तर्दृष्टि में तो विरक्त हैं। आहाहा! ऐसा मुनिपना आये बिना कभी मुक्ति नहीं होती। मुक्ति का कारण सीधा चारित्र है। अकेले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से मुक्ति होगी, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञानस्वरूप का आश्रय होने पर भी स्वरूप में लीनता, निर्ग्रन्थदशा प्रगट न हो तो मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा!

यह कारण कहते हैं, **मुनिपने में योग्य ऐसा चेतन तो शिष्य-संघ तथा अचेतन पुस्तक-पिच्छी-कमण्डल आदि धर्मोपकरण और आहार-वसतिका-देह (अचेतन) इनमें से सर्वथा ममत्व का त्याग करें। ऐसा विचार करें कि मैं तो एक आत्मा ही हूँ...** मैं तो आत्मा ही हूँ। इसका अर्थ—मैं तो ज्ञाता-दृष्टा निर्विकल्प आनन्दकन्द वह ही आत्मा हूँ। आहाहा! **अन्य मेरा कुछ भी नहीं - मैं आकिंचन हूँ। ऐसा निर्ममत्व होता है, ऐसा अन्तर में निर्ममत्व हो, उसको (उत्तम) आकिंचन धर्म होता है।** आहाहा! मुनिधर्म तो अलौकिक है।

कलश-११०

(शार्दूलविक्रीडित)

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपिविहितस्तावन्न काचित्क्षतिः।
किंत्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बन्धाय तन्
मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः।।11-110।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-यहाँ कोई भ्रान्ति करेगा जो मिथ्यादृष्टि का यतिपना क्रियारूप है, सो बन्ध का कारण है सम्यग्दृष्टि का है, जो यतिपना शुभ क्रियारूप, सो मोक्ष का कारण है; कारण कि अनुभवज्ञान तथा दया, व्रत, तप, संयमरूप क्रिया दोनों मिलकर ज्ञानावरणादि कर्म का क्षय करते हैं। ऐसी प्रतीति कितने ही अज्ञानी जीव करते

हैं। वहाँ समाधान ऐसा–जितनी शुभ–अशुभ क्रिया, बहिर्जल्प विकल्प अथवा अन्तर्जल्परूप अथवा द्रव्यों का विचाररूप अथवा शुद्ध स्वरूप का विचार इत्यादि समस्त कर्मबन्ध का कारण है। ऐसी क्रिया का ऐसा ही स्वभाव है। सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि का ऐसा भेद तो कुछ नहीं। ऐसी करतूति से ऐसा बन्ध है। शुद्धस्वरूप परिणमनमात्र से मोक्ष है। यद्यपि एक ही काल में सम्यग्दृष्टि जीव के शुद्ध ज्ञान भी है, क्रियारूप परिणाम भी है। तथापि क्रियारूप है जो परिणाम उससे अकेला बन्ध होता है, कर्म का क्षय एक अंशमात्र भी नहीं होता है। ऐसा वस्तु का स्वरूप, सहारा किसका? उसी समय शुद्ध स्वरूप अनुभव ज्ञान भी है। उसी समय ज्ञान से कर्मक्षय होता है, एक अंशमात्र भी बन्ध नहीं होता है। वस्तु का ऐसा ही स्वरूप है। ऐसा जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं– 'तावत्कर्मज्ञानसमुच्चयः अपि विहितः' [तावत्] तब तक [कर्म] क्रियारूप परिणाम [ज्ञान] आत्मद्रव्य का शुद्धत्वरूप परिणमन, उनका [समुच्चयः] एक जीव में एक ही काल अस्तित्वपना है, [अपि विहितः] ऐसा भी है; परन्तु एक विशेष–'काचित् क्षतिः न' [काचित्] कोई भी [क्षतिः] हानि [न] नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है–एक जीव में एक ही काल ज्ञान–क्रिया दोनों कैसे होते हैं? समाधान ऐसा–विरुद्ध तो कुछ नहीं, कितने ही काल तक दोनों होते हैं, ऐसा ही वस्तु का परिणाम है; परन्तु विरोधी के समान दिखता है, परन्तु अपने–अपने स्वरूप है, विरोध तो नहीं करता है। उतने काल तक जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं–'यावत् ज्ञानस्य सा कर्मविरतिः सम्यक् पाकं न उपैति' [यावत्] जितने काल [ज्ञानस्य] आत्मा का मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम मिटा है, आत्मद्रव्य शुद्ध हुआ है, उसकी [सा] पूर्वोक्त [कर्म] क्रिया, उसका [विरतिः] त्याग [सम्यक् पाकं न उपैति] बराबर परिपक्वता को नहीं पाता है अर्थात् क्रिया का मूल से विनाश नहीं हुआ है। भावार्थ इस प्रकार है–जब तक अशुद्ध परिणमन है तब तक जीव का विभाव परिणमनरूप है। उस विभाव परिणमन का अंतरंग निमित्त है, बहिरंग निमित्त है। विवरण–अन्तरंग निमित्त जीव की विभावरूप परिणमनशक्ति, बहिरंग निमित्त मोहनीय कर्मरूप परिणमा है पुद्गलपिण्ड का उदय। सो मोहनीयकर्म दो प्रकार का है– एक मिथ्यात्वरूप है, दूसरा चारित्रमोहरूप है। जीव का विभाव परिणाम भी दो प्रकार का है–जीव का एक सम्यक्त्व गुण है वही विभावरूप होकर मिथ्यात्वरूप परिणमा है। उसके प्रति बहिरंग निमित्त मिथ्यात्वरूप परिणमा है, पुद्गलपिण्ड का उदय, जीव का

एक चारित्रगुण है, वह विभावरूप परिणमता हुआ विषय कषायलक्षण चारित्रमोहरूप परिणमा है, उसके प्रति बहिरंग निमित्त है चारित्रमोरूप परिणमा पुद्गलपिण्ड का उदय। विशेष ऐसा–उपशम का, क्षपण का इस प्रकार है; पहले मिथ्यात्व कर्म का उपशम होता है अथवा क्षपण होता है; उसके बाद चारित्रमोह का उपशम होता है अथवा क्षपण होता है। इसलिए समाधान ऐसा–किसी आसन्न भव्य जीव के काललब्धि प्राप्त होने से मिथ्यात्वरूप पुद्गलपिण्ड–कर्म उपशमता है अथवा क्षपण होता है। ऐसा होने पर जीव सम्यक्त्वगुणरूप परिणमता है, वह परिणमन शुद्धतारूप है। वही जीव जब तक क्षपकश्रेणी पर चढ़ेगा तब तक चारित्रमोह कर्म का उदय है। उस उदय के रहते हुए जीव भी विषय कषायरूप परिणमता है, वह परिणमन रागरूप है, अशुद्धरूप है, इस कारण किसी काल में जीव का शुद्धपना अशुद्धपना एक ही समय घटता है, विरुद्ध नहीं। 'किन्तु' कुछ विशेष है, वह विशेष जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं–'अत्र अपि' एक ही जीव के एक ही काल शुद्धपना अशुद्धपना यद्यपि होता है तथापि अपना–अपना कार्य करते हैं। 'यत् कर्म अवशतः बन्धाय समुल्लसति' [यत्] जितनी [कर्म] द्रव्यरूप भावरूप–अन्तर्जल्प–बहिर्जल्परूप–सूक्ष्म–स्थूलरूप क्रिया, [अवशतः] सम्यग्दृष्टि पुरुष सर्वथा क्रिया से विरक्त है पर चारित्रमोह कर्म के उदय में बलात्कार होती है ऐसी [बन्धाय समुल्लसति] जितनी क्रिया है उतनी–ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध करती है, संवर निर्जरा अंशमात्र भी नहीं करती है। 'तत् एकं ज्ञानं मोक्षाय स्थितं' [तत्] पूर्वोक्त [एकं ज्ञानं] एक शुद्ध चैतन्यप्रकाश [मोक्षाय स्थितं] ज्ञानावरणादि कर्मक्षय का निमित्त है। भावार्थ इस प्रकार है–एक जीव में शुद्धपना अशुद्धपना एक ही काल होता है, परन्तु जितना अंश शुद्धपना है, उतना अंश कर्मक्षपण है, जितना अंश अशुद्धपना है, उतना अंश कर्मबन्ध होता है। एक ही काल दोनों कार्य होते हैं। 'एव' ऐसा ही है, सन्देह करना नहीं। कैसा है शुद्धज्ञान? 'परमं' सर्वोत्कृष्ट है–पूज्य है। और कैसा है? 'स्वतः विमुक्त' तीनों काल में समस्त परद्रव्य से भिन्न है।।11–110।।

कलश - ११० पर प्रवचन

अब अपने यहाँ कलश। ११० कलश बहुत अच्छा आया है। दो पृष्ठ में अर्थ है। श्लोक एक (अर्थ) दो पृष्ठ। आहाहा! ११०।

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपिविहितस्तावन्न काचित्क्षतिः।
किंत्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बन्धाय तन्
मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः।।11-110।।

खण्डान्वय सहित अर्थ - यहाँ कोई भ्रान्ति करेगा जो मिथ्यादृष्टि का यतिपना क्रियारूप है, सो बन्ध का कारण है... क्या कहते हैं? कोई ऐसी भ्रमणा-भ्रान्ति करेगा कि मिथ्यादृष्टि का मुनिपना और पंच महाव्रत क्रिया है, उसको बन्ध का कारण मानता है। सम्यग्दृष्टि का जो यतिपना है, पंच महाव्रतादि किया, वह मोक्ष का कारण है। यह शुभक्रिया मोक्ष का कारण है। आहाहा! ऐसा कोई अज्ञानी मानता है। मिथ्यादृष्टि का यतिपना पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति व्यवहार को तो बन्ध का कारण है। परन्तु सम्यग्दृष्टि की जो व्यवहार क्रिया पंच महाव्रतादि मोक्ष का कारण है, ऐसा कोई मूढ़-मिथ्यादृष्टि मानता है। आहाहा!

कारण कि... ये बताते हैं भ्रान्ति का। **अनुभवज्ञान...** आत्मा के आनन्द का अनुभव-ज्ञान ये भी मोक्ष का कारण **तथा दया, व्रत, तप, संयमरूप क्रिया दोनों मिलकर ज्ञानावरणादि कर्म का क्षय करते हैं।** शान्तिभाई! अज्ञानी ऐसा मानता है कि सम्यग्दृष्टि का सम्यग्दर्शनपना निर्विकल्प जो आनन्द का वेदन, उसके साथ दया, दान, व्रत, तप आदि की क्रिया, दो होकर उसे मोक्ष का मार्ग है। (उससे) मोक्ष होगा। ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **ऐसी प्रतीति कितने ही अज्ञानी जीव करते हैं।** सम्यग्दर्शन होने के बाद भी भले पंच महाव्रतादि की क्रिया हो तो उसे वे भी मोक्ष कारण है, ऐसी अज्ञानी भ्रान्ति करते हैं, यह भी झूठ है। आहाहा!

वहाँ समाधान ऐसा—जितनी शुभ-अशुभ क्रिया,... चाहे तो अशुभभाव हो या

शुभ—दया, दान, व्रत (हो), आया न? दया, व्रत, तप, संयम, ये शुभक्रिया और अशुभक्रिया हिंसा, झूठादि **बहिर्जल्प विकल्प...** बोलनादि बाह्यजल्प। **अन्तर्जल्परूप विकल्प...** अन्तर में विकल्प उठाना। वृत्ति राग। **द्रव्यों का विचाररूप...** आहाहा! छह द्रव्यों का विचार भी विकल्प है। ऐसी बात है। **अथवा शुद्धस्वरूप का विचार...** मैं शुद्धस्वरूप हूँ, ऐसा विकल्प उठाना। विचार शब्द यहाँ विकार लेना। **इत्यादि समस्त कर्मबन्ध का कारण है।** ये तो सब कर्मबन्ध के कारण हैं। आहाहा! **ऐसी क्रिया का ऐसा ही स्वभाव है।** सम्यग्दृष्टि का हो या मिथ्यादृष्टि का हो, परन्तु जितने अन्तर्जल्प, बहिर्जल्प विकल्प उठते हैं, वे तो बन्ध के ही कारण हैं। आहाहा! समझ में आया?

एक ओर ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का हेतु है। एक ओर यहाँ कहा कि सम्यग्दृष्टि का शुभभाव भी बन्ध का कारण है। समझ में आया? ऐसा कैसे कहा? निर्जरा अधिकार में आता है। सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का हेतु है। इसका अर्थ—भोग का भाव तो बन्ध का ही कारण है, परन्तु दृष्टि की स्वभाव में जहाँ निर्मलता प्रगट हुई तो दृष्टि की प्रधानता से उसका कथन ऐसा आया कि भोग का राग आया, वह दृष्टि की मुख्यता से उसकी निर्जरा हो जायेगी। इस अपेक्षा से कहा। समझ में आया? यहाँ तो कहा कि भोग तो ठीक, वह तो बन्ध के ही कारण हैं, सम्यग्दृष्टि का, कहो! एक ओर (कहे) सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा के हेतु, एक ओर (कहे), सम्यग्दृष्टि के पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, व्रत, तप के भाव ये भी बन्ध के कारण है। समझ में आया? आहाहा! किस अपेक्षा से बात है? भोग यदि निर्जरा के कारण हों तो भोग छोड़कर मुनिपने लेने की भावना ही नहीं होगी। यह तो दृष्टि के जोर में शुद्धचैतन्य आनन्द का नाथ भगवान मैं हूँ, ऐसी अन्तर सम्यग्दृष्टि के जोर में कमजोरी से राग आया तो स्वभाव की दृष्टि में बन्ध होता नहीं, ऐसी बात कही। समझ में आया?

मुमुक्षु : मिथ्यात्व का बन्ध नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का बन्ध होता नहीं, ऐसा नहीं, भोग का भी बन्ध नहीं होता। वहाँ तो ऐसा कहा है। सूक्ष्म बात। जरा सूक्ष्म बात है। सम्यग्दर्शन चैतन्य परमानन्द की मूर्ति प्रभु... आहाहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि को निर्विकल्प आनन्द का वेदन है तो वहाँ भोग

का परिणाम आया, परन्तु इसमें सुखबुद्धि नहीं। सुखबुद्धि नहीं, हितबुद्धि नहीं, जहर बुद्धि है। काले नाग को देखने से जैसे डर लगता है, ऐसे शुभभाव के अन्दर बोझ, डर लगता है। इस अपेक्षा से, दृष्टि के जोर की अपेक्षा से भोग को निर्जरा कहा।

यहाँ तो कहते हैं कि भोग तो पापबन्ध का कारण है ही, परन्तु सम्यग्दृष्टि के व्रत, तप, नियम के विकल्प हैं, वे भी बन्ध के कारण हैं। अरे! ऐसा कथन। समझ में आया? है? **इत्यादि समस्त बन्ध के कारण हैं। ऐसी क्रिया का ऐसा ही स्वभाव है।** आहाहा! सम्यग्दर्शन आत्मा का अनुभव, आत्मा के आनन्द का स्वाद तो भी जितनी उसको शुभक्रिया है, व्रत का, तप का, उपवास का विकल्प है, वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि का ऐसा भेद तो कुछ नहीं... है? मिथ्यादृष्टि के व्रत आदि बन्ध के कारण और सम्यग्दृष्टि के व्रतादि बन्ध के कारण नहीं, ऐसा भेद तो है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म विषय है। भोग निर्जरा के हेतु हैं, ऐसा जानकर स्वच्छन्द हो जाये वह तो मिथ्यादृष्टि है। यह तो दृष्टि के जोर की अपेक्षा से भोग में अल्प रस और अल्पस्थिति पड़ती है, उसकी गिनती नहीं की, ऐसे भोग निर्जरा का हेतु है ऐसा कहा। बाकी भोग यदि निर्जरा का कारण हो तो फिर, ये शुभ भी बन्ध के कारण हैं तो फिर अशुभ निर्जरा के कारण कहाँ से आये? समझ में आया? आहाहा! अरे रे! इसका मार्ग तो देखो! परमात्मा अपने स्वरूप है और इसके अवलम्बन से जितनी सम्यग्दर्शनादि शुद्धता प्रगट हुई, वह मोक्ष का कारण है और जितना महाव्रत, पंच महाव्रतादि के विकल्प उठते हैं, वह सम्यग्दृष्टि को, क्षायिक समकिती हो, तो भी वे बन्ध के कारण हैं। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि का ऐसा भेद तो कुछ नहीं... कुछ भेद नहीं। आहाहा! यद्यपि **जो कि एक ही काल में सम्यग्दृष्टि जीव को शुद्धज्ञान भी है...** क्या कहते हैं? आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव को आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसे अन्तर में अनुभव वीतरागी ज्ञान का भी होता है और **क्रियारूप परिणाम भी है...** है? पंच महाव्रतादि विकल्प, बारह व्रत, भक्ति आदि के परिणाम भी हैं। आहाहा! स्व चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु का सम्यग्दर्शन में भान हो गया, वेदन हुआ तो वह वेदन भी है और

साथ में पंच महाव्रत या बारह व्रत के भक्ति, पूजा के भाव आते हैं। वे बन्ध के कारण हैं। एक समय में एक मोक्ष का कारण है, दूसरा बन्ध का कारण है। आहाहा! समय तो एक ही है। आहाहा! अब यहाँ तो अभी पंच महाव्रतादि सम्यग्दर्शन बिना मोक्ष के कारण हैं, क्रम-क्रम से मोक्ष होगा, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। प्रभु! भाई! इसमें आत्मा का नुकसान है, भाई! आहाहा! ऐसा बचाव करो प्रभु! तेरा हित नहीं होगा। आहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की प्ररूपणा भी व्रत और नियम बन्ध होता है, ऐसी प्ररूपणा वह तो करते हैं। यहाँ व्रत और तप करने से धर्म होता है, ऐसी प्ररूपणा ये तो मिथ्या प्ररूपणा है। यहाँ तो ज्ञानस्वरूप का वेदन भी है और राग की क्रिया भी है। एक समय में दो धारा- ज्ञानधारा और रागधारा अर्थात् कर्मधारा। हो, परन्तु एक धारा मोक्ष का कारण हैं, एक धारा बन्ध का कारण है। आहाहा!

तो भी क्रियारूप है जो परिणाम, उससे अकेला बन्ध होता है... सम्यग्दृष्टि को, अनुभवी को, आनन्द के स्वादी को... आहाहा! जितना दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, शास्त्रवांचन, श्रवणादि का शुभभाव (होता है) वह बन्ध का कारण है। ऐसी बात है। **अकेला बन्ध होता है...** देखा! इसमें आंशिक भी निर्जरा और संवर नहीं। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! **उससे अकेला बन्ध होता है...** सम्यग्दृष्टि के भोग की बात तो क्या करना, यह तो अशुभभाव है, यह तो बन्ध का ही कारण है। समझ में आया? परन्तु यह पंच महाव्रत, दया, दान, पूजा, भक्ति ऐसे जो भाव आते हैं, वे अकेले बन्ध के कारण हैं। अंश भी इसमें संवर, निर्जरा नहीं। आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय जितनी निर्मलता प्रगट हुई, उतना मोक्षमार्ग है और जितना परद्रव्य के आश्रय क्रिया का भाव उत्पन्न हुआ, वह बन्ध का कारण है। ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : अवलम्बन किसका लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अवलम्बन लेना आत्मा का। पर का अवलम्बन लेने जायेगा तो राग ही (उत्पन्न) होगा, राग होगा तो बन्ध ही होगा। यहाँ तो यह है, सेठ! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! आहाहा! चैतन्य सहजानन्द प्रभु का जितना आश्रय लिया-अवलम्बन लिया, उतनी तो निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान की परिणति होती है। वह तो खास मोक्ष का

कारण है और इसमें कमजोरी से परद्रव्य के अवलम्बन में लक्ष्य जाता है तो जो शुभराग होता है, वह अकेला बन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को तो बन्ध होता नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न पहले। किस अपेक्षा से? यह तो सम्यग्दृष्टि को बन्ध नहीं होता तो सम्यग्दर्शन के जोर से, बन्ध राग आता है तो अल्प स्थिति, रस बन्ध पड़ता है, उसको नहीं गिनकर ऐसा कहने में आया है। परन्तु वास्तविक प्रकार से जितना-जितना शुभराग है, उतना बन्ध है, है और है ही। ऐसा मार्ग है, भाई! इसमें कोई बचाव करे तो चले नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव भी आता है। विषय, कमाना, खाना आदि के (भाव आते हैं)। वह तो बन्ध का ही कारण है। पापबन्ध का ही कारण है। परन्तु ये व्रत, नियम, दया आदि के भाव आते हैं, वे मात्र बन्ध के कारण हैं। आहाहा! भाई! तेरे आत्मा में बन्ध होता है। आहाहा! अबन्ध परिणाम पूर्ण प्रगट न हों, तब तक बन्ध का भाव आता है तो मात्र बन्ध ही करता है। समझ में आया? आहाहा! चौरासी लाख अवतार, भवाब्धि भवरूपी बड़ा समुद्र, इसमें रुलते-भटकते कभी आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु है, इसका शरण लिया नहीं और शरण लिया हो फिर भी जितनी कमजोरी से शुभ क्रियाकाण्ड का भाव आता है... आहाहा! वह भी भव का कारण है, बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? भाषा क्या ली है।

क्रियारूप जो परिणाम उससे अकेला बन्ध होता है... जितने पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति का व्यवहार, निर्दोष आहार लेना, ये सब जो विकल्प हैं, ये मात्र बन्ध का ही कारण है। आहाहा! **कर्म का क्षय एक अंशमात्र भी नहीं होता।** यह शुभक्रिया में समकिती को भी अंशमात्र भी मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि को तो मोक्ष का कारण है ही नहीं, उसको तो सम्यक्त्व भी उत्पन्न हुआ नहीं। आहाहा! **कर्म का क्षय एक अंशमात्र भी नहीं होता।** अकेला बन्ध होता है और क्षय अंश मात्र भी नहीं। आहाहा! तब शुभभाव में शुद्ध का अंश कहा है न? वह तो अन्दर अंश सिद्ध करना है। अकेले ज्ञान से ज्ञान निर्मल होता है तो शुद्धता बिना मात्र अशुद्धता से चारित्र निर्मल नहीं होता, यह बताने के लिए शुद्ध कहा। पर ग्रन्थी (अर्थात् कि) सम्यग्दर्शन (बिना)—राग की एकता बुद्धि

का नाश हुए बिना ये शुद्धता का अंश काम करता नहीं। आहाहा! ऐसी कहाँ फुरसत... धन्धा-पानी पूरे दिन पाप का, उसमें ऐसी बात सुनने मिले नहीं, अरे! आहाहा! भाई!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तुझे तेरा शरण मिला है... आहाहा! आत्मा अन्दर सुधानन्द चिदानन्द प्रभु, इसकी दृष्टि हुई हो और आनन्द का अंशरूप वेदन हुआ हो, इतना भाव मोक्ष का कारण है। जितना पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, व्यवहार पूजा, भक्ति, दान, दया के भाव उत्पन्न होते हैं, ये मात्र बन्ध के कारण हैं। इन बन्ध के कारण में एक अंश धर्म के कारण नहीं और धर्म के कारण में बन्ध का एक अंश भी नहीं। आहाहा! अरे रे! श्लोक बहुत सरस आया है। आहाहा! पूरे दो पेज भरे हैं। आहाहा!

ऐसा वस्तु का स्वरूप है, सहारा किसका? भगवान आत्मा... आहाहा! निज शुद्धस्वरूप का आश्रय लेने से जितनी निर्मलता प्रगट हुई, उतना मोक्ष का कारण और जितना पंच महाव्रत, दया, दान, पूजा, भक्ति आदि के भाव हुए, वे बन्ध के कारण। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। **सहारा किसका?** उसमें मदद किसकी? आहाहा! वस्तुस्वरूप ऐसा है। भगवान ने कहा तो वस्तुस्वरूप है, ऐसा कहा है। भगवान ने कुछ किया नहीं। आहाहा! ऐसा है, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! जहाँ आत्मा का ज्ञान और भान नहीं तो पुण्य की क्रिया से, व्रतादि से धर्म मानते हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि है। उस मिथ्यादृष्टि के भी व्रतादि के परिणाम बन्ध के कारण हैं, वैसे सम्यग्दृष्टि के भी व्रतादि के परिणाम बन्ध के कारण हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह तो दशलक्षणी पर्व धर्म है। धर्म की आराधना के दिन हैं। आहाहा!

भगवान पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु तू है न! आहाहा! उस ओर नजर करने से तुझे शान्ति मिलेगी और यह शान्ति जितनी मिली... शान्तिभाई! यह शान्ति। उतना उसे मोक्ष का कारण होगा। और जितना बाह्य ऊपर लक्ष्य जायेगा, चाहे तो देव-गुरु और शास्त्र, पंच परमेष्ठी के ऊपर लक्ष्य जाये तो राग होगा, (वह) अकेला बन्ध का कारण है। सेठ! अन्दर ठहर जाओ, ऐसा कहते हैं। आत्मा में ठहरो, आत्मा में ठहरो, प्रभु! तेरे निज घर में आ जा। यह शुभभाव भी अभी पर घर का आचरण है। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु! तेरा दुःख तूने इतना सहा कि ये दुःख देखनेवाले को रोना आया है। इतना

दु:ख सहन किया है। परन्तु भूल गया, भूल गया। आहाहा! समझ में आया? नरक और निगोद के दु:ख... आत्मा के आनन्दस्वभाव को भूलकर, इन पुण्य-पाप के भाव में धर्म मानकर मिथ्यात्व का सेवन किया, इस मिथ्यात्व के फल में नरक और निगोद मिला। आहाहा! वह दु:ख की धारा कैसे वेदी होगी, ये विचार करने से... आहाहा!

वहाँ कहते हैं, कोढ़... वादिराज। वादिराज कहते हैं, भावलिंगी मुनि हैं। शरीर में कोढ़ हुआ। तो एक श्रावक से राजा ने कहा। राजा कहे, तेरे साधु को तो कोढ़ है। कोढ़ रोग। श्रावक ने कहा, ना, ना, महाराज! कोढ़ नहीं। महाराज पास आये। महाराज! मैंने ऐसा कहा है। शान्ति रखो। प्रभु! आहाहा! बाद में भक्ति स्तवन करते-करते... प्रभु! जिस तुम माता की कूख में तुम जाते हो तो ये नगर का गढ़ सोने का और कंगूरे रतन के हो जाते हैं। प्रभु! मेरे हृदय में आप आओ और ये कोढ़ रहे, ऐसा कैसे बने? यह तो एक... प्रभु! मेरे हृदय में प्रभु परमात्मा का स्थापन किया है। आहाहा! माता के उदर में आते हैं तो इन्द्र सेवा करते हैं और नगर सोने का गढ़ और रत्नों के कंगूरे बनाते हैं, प्रभु! मेरे हृदय में आप बसते हो और शरीर में ऐसा रहे, ये आप किस प्रकार देख सकते हो? एक भक्ति है। सहज पुण्य का योग था तो (मिट गया) नहीं तो ये नहीं मिटे। मुझे तो दूसरा कहना था।

ये वादिराज ऐसा कहते थे, महाराज! नाथ! मैं भव के दु:ख को याद करता हूँ तो मेरे अन्दर घाव लगते हैं। आयुध से जैसे घाव लगते हैं, प्रभु! मुझे बीते समय के दु:ख जब याद आते हैं, हैं तो मुनि, परन्तु मैं भूतकाल में नरक और निगोद के दु:ख सहन किये। याद आते हैं तो आयुध के जैसे घाव लगते हैं, ऐसा मुझे (मन) में होता है। आहाहा! इसे तो कुछ परवाह ही नहीं। कितने दु:ख सहन किये। थोड़ी यहाँ अनुकूलता मिली, पाँच-पच्चीस लाख, दो-पाँच करोड़ मिले और शरीर ठीक तो मानो... आहाहा! सुखी है। धूल में सुखी नहीं। दु:ख के पर्वत से सिर फोड़ता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! मुझे दु:ख याद आता है तो मुझे शस्त्रों के घाव लगते हैं। मेरा नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द के सागर में छलाछल भरा है, इसको भूलकर मैंने ये दु:ख सहे। आहाहा! प्रभु! तेरी भक्ति मैं करता हूँ। शरीर में से कोढ़ चला गया। ये तो पुण्य के कारण गया, हों! भक्ति लाख करे तो न जाये। मेल खाना था। पीछे थोड़ा रखा। थोड़ा रखा। क्योंकि

पहला राजा झूठा न हो जाये। राजा कहता था, यह बात तो सच्ची थी। कोढ़ तो था। परन्तु भगवान की भक्ति सम्यग्दर्शन में भक्ति उठी, उठते-उठते रोग समाप्त हो गया। थोड़ा नमूना रखा, क्योंकि राजा झूठा नहीं था। कोढ़ तो था। परन्तु ये वर्तमान दुःख भी ज्ञानी को तो नहीं। आहाहा! वह तो पर चीज़ है, शरीर की अवस्था है। उसको तो ज्ञानी ज्ञेयरूप से जानता है। मुझे कोढ़ हुआ है, ऐसा ज्ञानी मानता नहीं। यह धूल... रोगी शरीर में रोग है, वह मेरे में नहीं। मैं तो निरोग और निराकुल आनन्दकन्द प्रभु हूँ। आहाहा! शरीर में रोग हो तो हो, वह मेरे ज्ञान का ज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **वस्तु का ऐसा ही स्वरूप है। यह जैसा है, वैसा कहते हैं...** आहाहा! **उस ही समय ज्ञान से कर्म क्षय होता है, एक अंश मात्र भी बन्ध होता नहीं।** किस समय? जिस समय व्रतादि, भक्ति आदि के परिणाम हैं, उस समय बन्ध है। उसी समय जितना आत्मा का आश्रय ज्ञान हुआ, उतने अंश में अबन्ध है। आहाहा! दोनों एक समय है।

मिथ्यादृष्टि को अकेला बन्ध का परिणाम है, केवली को अकेला अबन्ध परिणाम है, साधक को बन्ध और अबन्ध दो परिणाम हैं। सर्वज्ञ परमात्मा को अकेला अबन्ध परिणाम, मोक्ष परिणाम, केवल परिणाम है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि को अकेला बन्ध का ही परिणाम है। है? साधक को दो हैं। बस, यह बात करते हैं। आहाहा! अरे! मेरे दोष की कमी, प्रभु! मेरे आनन्द में कमी है। मैं दोष में आ जाता हूँ। शुभभाव में, हों! शुभभाव, यह दोष। आहाहा! समझ में आया? यह मेरा अपराध है, मेरा गुनाह है। आहाहा! ज्ञानरूप ज्ञेय है, समकित रूप से वहाँ निर्जरा कही, चारित्र की अपेक्षा से बन्ध का कारण कहा। आहाहा! क्या कहा यह? निज स्वरूप का ज्ञान हुआ, इस अपेक्षा से राग को ज्ञेय कहा, ज्ञान में ज्ञेय कहा। सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से राग को निर्जरा का कारण कहा, परन्तु चारित्र की अपेक्षा से राग को जहर कहा। समझ में आया? वह बन्ध का कारण है। मेरे चारित्र में इतनी कमजोरी है। आहाहा!

वस्तु का ऐसा ही स्वरूप है। अब जैसा है, वैसा कहते हैं... 'तावत्कर्मज्ञानसमुच्यः अपि विहितः' वहाँ तक क्रियारूप परिणाम और आत्मद्रव्य का शुद्धत्व परिणमन...

जहाँ तक क्रियारूप परिणाम-व्रतादि के, पूजा, भक्ति आदि के और **आत्मद्रव्य का शुद्धत्व परिणमन...** भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप का शुद्धत्वरूप पर्याय में परिणमन। **उसका एक जीव में एक ही काल अस्तित्वपना है...** एक जीव में एक ही काल में अस्तित्वपना है। है देखो! विकल्प की अशुद्धता है। आहाहा! दूसरी जगह ऐसा कहा हो तो वहाँ ऐसा पकड़े कि सम्यग्दृष्टि हो अकेला शुद्ध परिणमन ही है, अशुद्ध परिणमन है ही नहीं। ऐसा पहले आता है। यह तो किस अपेक्षा से? अकेला शुद्ध परिणमन गिना। क्योंकि द्रव्य और गुण शुद्ध हैं तो अनुभव हुआ तो शुद्ध परिणमन इतना गिनने में आया। अशुद्ध परिणमन कोई द्रव्य, गुण का परिणमन नहीं। इस अपेक्षा से अशुद्ध परिणमन नहीं, ऐसा कहने में आया। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कि सम्यग्दृष्टि को दुःख है ही नहीं। किस अपेक्षा से? भाई! अपने आनन्दस्वरूप की मुख्यता से दुःख का परिणमन है, उसको गौण करके, उसकी अल्प स्थिति, बन्ध गिनकर, उसे 'नहीं' — ऐसा कहने में आया। पर जहाँ चारित्र की अपेक्षा के साथ वर्णन चलता है... आहाहा! (वहाँ ऐसा कहते हैं), बन्ध का कारण है। आहाहा!

'लागी लगन हमारी, जिनराज सुजस सुन्यो मैं।' प्रभु! तूने मेरा जस गाया, मैं आनन्द शुद्ध चैतन्यघन हूँ। 'लागी लगन हमारी, जिनराज सुजस सुन्यो मैं, काहू के कहे, कबहु न छूटे लोकलाज सब डारी, जैसे अमली अमल करत समय लाग रही जो खुमारी...' अफीम पीनेवाले जब अमल में चढ़ते हैं, ऐसे ज्ञानी स्वयं अपने ज्ञान में चढ़ते हैं तो मस्ती लग गयी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञान में और आनन्द में मस्त ज्ञानी! आहाहा! समझ में आया? तो मुझे दुःख है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस अपेक्षा से।

यहाँ तो चारित्र की मुख्यता से वर्णन है। आहाहा! पुण्य-पाप का अधिकार है न? जहाँ तक अन्दर में चारित्र की पूर्णता नहीं, वहाँ तक ऐसा बन्ध का परिणाम (होता है)। क्षायिक समकिती... आहाहा! अरे! तीर्थंकर का आत्मा जहाँ तक छद्मस्थ मुनि है, उनको भी जितना स्वद्रव्य के आश्रय से परिणमन उत्पन्न हुआ वह मोक्ष का कारण है। और छद्मस्थ (दशा में) उनको पंच महाव्रतादि के विकल्प उठते हैं, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! केवलज्ञानी होने के पहले की बात है। छद्मस्थ मुनि हो तब। भिक्षा के लिये,

आहार के लिये जाते हैं न। आहार है, निहार नहीं। तीर्थंकर त्रिलोकीनाथ का परमौदारिक शरीर है। जन्म से। तो भिक्षा के लिये जाते हैं। आहार लेते हैं, ऐसा विकल्प है। निहार नहीं। जंगल (दस्त) जाना नहीं पड़ता। पेशाब नहीं, जंगल (दस्त) नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा इनका परम औदारिकशरीर है। परन्तु उनको भी छद्मस्थदशा में मुनिपने का जो राग आता है, ये विकल्प उनको भी बन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो (अज्ञानी) कहते हैं, पंच महाव्रत और तप करना और ये करना, यह मोक्ष कारण है। अरे! भगवान! तेरी मिथ्यादृष्टि है। इसमें तेरा व्रतादि तो अकेला जहर, बन्ध का कारण है। पर सम्यग्दृष्टि के रागादि भी बन्ध के कारण हैं। तेरी अभी दृष्टि मिथ्या है। तू मानता है ये व्रत, तप करने से मोक्ष होगा। तो राग की क्रिया करने से मोक्ष होगा तो दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! तब ये खबर कैसे पड़े कि ये मिथ्यादृष्टि है। परन्तु प्ररूपणा खोटी करता है कि ये दया, दान, व्रत करते-करते कल्याण होगा। यह प्ररूपणा ही झूठी है। समझ में आया? उपदेश ही झूठा है। आहाहा! उसको जो व्रत, तप है, वे तो मिथ्यादृष्टि को बन्ध के कारण हैं ही। आहाहा! जिसके—सम्यग्दृष्टि के उपदेश में ऐसा आया कि जितने व्रतादि के विकल्प हैं, वे बन्ध के कारण हैं ही। भगवान! आहाहा! वह मोक्ष का एक अंश भी कारण नहीं। कहो, ऐ सेठिया दान-वान दें अर्थात् इन्हें दानवीर ठहरा दो। बाद में हो जाये दानवीर बड़े। ऐ... सेठ!

अरे! दानवीर तो किसको कहते हैं, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! अपने निर्मलानन्द आनन्द का जिसने अपनी पर्याय में दान लिया और दिया, वे दानवीर है। आज सेठ पर उतारा। ये दोनों भाई बैठे हैं। बुन्देलखण्ड के बादशाह कहलाते हैं। परन्तु ऐसे नरम व्यक्ति हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, राग का स्वामी होना, वह भी मिथ्यादृष्टि है। व्रत, तप के विकल्प उठते हैं, उनका स्वामी होना, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! फिर भी सम्यग्दृष्टि को राग का स्वामित्व नहीं। फिर भी राग आये बिना रहता नहीं। स्वामीपना नहीं। आहाहा! हेयबुद्धि से व्रत के, पूजा के, भक्ति के भाव ज्ञानी को आते हैं। फिर भी हेयबुद्धि से बन्ध के कारण हैं। उसमें थोड़ा भी आत्मा को अंश लाभदायक है, ऐसा नहीं। आहाहा! अब इस जाति का

उपदेश ही विपरीत हो गया है। समझ में आया? अब तो समाज को धमाधम करना है। आहाहा!

'तावत्कर्मज्ञानसमुच्चयः अपि विहितः' तब तक क्रियारूप परिणाम आत्मद्रव्य का शुद्धत्वरूप परिणमन, उनका एक जीव में एक ही काल अस्तित्वपना है, ऐसा भी है... 'अपि विहितः' 'विहितः' है न? **ऐसा भी है, परन्तु एक विशेष-'काचित् क्षतिः न' कोई भी हानि नहीं है।** किस अपेक्षा से हानि नहीं? कि निर्मल पर्याय और राग की पर्याय भी है। तो वह निर्मल पर्याय को नुकसान नहीं करती। विशेष प्रगट नहीं होने में नुकसान करती है, परन्तु वर्तमान निर्मल पर्याय है और मलिन पर्याय है, दोनों एक साथ हैं। समझ में आया? आहाहा! जैसे मिथ्यादृष्टिपना और सम्यग्दृष्टिपना विरुद्ध है, ऐसा इसमें विरोध नहीं। क्या कहा यह? जैसे राग मेरा है, ऐसा मिथ्यादृष्टि और राग मेरा नहीं, ऐसा सम्यग्दृष्टि, दोनों एक समय में नहीं रह सके। मिथ्यादृष्टिपना और सम्यग्दृष्टिपना एक समय में साथ नहीं रह सकें। परन्तु ये एक समय में रह सकते हैं। न्याय समझ में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : इतना अन्तर....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अन्तर है। उसमें और इसमें यह अन्तर है। जब दृष्टि मिथ्यात्व है, उसी समय सम्यग्दर्शन है, ऐसा तीन काल में होता नहीं। परन्तु जिस समय निर्मल परिणति है, उस समय मलिन परिणति है, इसमें विरोध नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वीतरागमार्ग तो देखो! ओहो! कण-कण... पुरुषार्थसिद्धि उपाय में तीन गाथा आती हैं। जितने अंश में राग, उतने अंश में बन्ध; जितने अंश में सम्यग्दर्शन, उतने अंश में अबन्ध। तीन गाथायें आती हैं। पुरुषार्थसिद्धिउपाय। आहाहा! तीन गाथायें हैं। जितने अंश में सम्यग्दर्शन ज्ञान है, उतना अबन्ध का कारण है और जितने अंश में राग है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! अब इसमें एकान्त खींचे कि सम्यग्दृष्टि को बिल्कुल बन्ध ही नहीं और व्रत, तप करनेवाले को मोक्ष का कारण है, यह सब विरुद्ध है। समझ में आया?

'काचित् क्षतिः न' कोई भी हानि नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है - एक जीव में एक ही काल ज्ञान-क्रिया दोनों कैसे होते हैं? एक ही काल में सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन

और एक ही काल में राग, ये किस प्रकार होता है ? ऐसा पूछता है। आहाहा! **समाधान ऐसा - विरुद्ध तो कुछ नहीं...** किस अपेक्षा से ? **कितने ही काल तक दोनों होते हैं,...** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, आनन्द का स्वाद भी है और राग का दुःख भी साथ है। आहाहा! समझ में आया ? जहाँ तक पूर्ण आनन्द प्रगट नहीं हुआ तो धर्मी को भी जितना आनन्द आया, उतना तो पवित्र है और जितना राग आता है, उतना दुःख है। एक समय में दो होने में विरोध नहीं। जैसे... कहा न ? सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान का साथ रहने में विरोध है। मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि को साथ रहने में विरोध है, ऐसा सम्यग्ज्ञान और राग का साथ रहने में विरोध नहीं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! विरोध तो नहीं। **विरुद्ध तो कुछ नहीं,...** देखा!

कितने ही काल तक दोनों होते हैं, ऐसा ही वस्तु का परिणाम है... भाई! आहाहा! **परन्तु विरोधी के समान दिखता है...** विकार है, वह परलक्ष्यी है, धर्म स्वलक्ष्यी है। इसलिए दोनों के लक्ष्य में फेर है, इससे विरुद्ध जैसा लगता है। समझ में आया ? **विरोधी के समान दिखता है, परन्तु अपने-अपने स्वरूप है,...** आहाहा! अपना आत्मस्वरूप शुद्ध चैतन्य भगवान का आश्रय लेकर जितना एकाग्र हुआ उतना तो निर्मल (परिणमन) है और उस समय जितना परलक्ष्यी भाव है, परावलम्बी देव, गुरु, शास्त्र आदि के अवलम्बन का भाव होता है, वह सब विकार है, बन्ध का कारण है। विरोधी जैसा लगता है, परन्तु एक साथ रह सकता है।

मुमुक्षु : इसके प्रचार की जरूरत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रचार की जरूरत है, ऐसा कहकर हमारे सागर में आओ, ऐसा कहते हैं। सरोवर में पानी पीने जाये, सरोवर कहीं घर-घर जाता है ? आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

अपने-अपने स्वरूप है,... क्या कहते हैं ? **विरोधी के समान दिखता है, परन्तु अपने-अपने स्वरूप है,...** वस्तु भगवान पूर्णानन्द के नाथ के आश्रय जो निर्मल परिणति हुई, वह अपने स्वरूप में है और पर के आश्रय जो पूजा, दान, भक्ति, व्रत, तप के विकल्प आये, वे अपना स्वरूप है। कोई एक-दूसरा स्वरूप होकर एक हो जाते हैं, ऐसा नहीं।

आहाहा! **विरोध तो नहीं करता है।** यह क्या कहते हैं? कि शुभभाव आता है, इसलिए शुद्धभाव का नाश हो जाता है, ऐसा नहीं। जितना शुद्धभाव उत्पन्न हुआ तो शुभभाव आया तो शुद्धभाव उत्पन्न हुआ है, उसका नाश करता है — ऐसा विरोध तो है नहीं। आहाहा! आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। मार्ग ऐसा है, भाई!

अपना द्रव्यस्वभाव, उसके अवलम्बन से जो परिणति निर्मल हुई, वह अपने स्वरूप रहती है और जितनी कमजोरी है अर्थात् परद्रव्य का अवलम्बन देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति का भाव, व्रत का भाव, तप का भाव, दया, दान का भाव आता है, वह अपने स्वरूप विकार है। विकार, विकारस्वरूप है, अविकार अविकारस्वरूप है। समझ में आया? एक समय में दोनों हो सकते हैं। आहाहा! **विरोध तो नहीं करता है।**

उतने काल तक जिस प्रकार है, उस प्रकार कहते हैं - 'यावत् ज्ञानस्य सा कर्मविरतिः सम्यक् पाकं न उपैति' आहाहा! **जितने काल आत्मा का मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम मिटा है,...** आत्मा के मिथ्यात्वरूप विभाव परिणाम मिटे हैं। **आत्मद्रव्य शुद्ध हुआ है,...** परिणति शुद्ध तो हुई है। **उसकी पूर्वोक्त क्रिया, उसका त्याग बराबर परिपक्वता को नहीं पाता है...** आहाहा! जहाँ तक यह शुभराग की क्रिया का त्याग परिपूर्ण न हो, वहाँ तक हो सकता है। पुण्य के परिणाम कर्म की विरति, उससे जहाँ तक पूर्ण निवृत्ति न हो, वहाँ तक शुभराग का भाव आता है और होता है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

आत्मद्रव्य शुद्ध हुआ है, उसकी पूर्वोक्त क्रिया,... शुभभाव, उसका **त्याग... 'सम्यक् पाकं न उपैति' बराबर परिपक्वता को नहीं पाता है...** जब तक राग का पूर्ण त्याग नहीं है, तब तक राग आता है, उसमें कोई विरोध नहीं। आहाहा! समझ में आया? जहाँ तक राग का त्याग परिपूर्ण नहीं, वहाँ तक राग और निर्मलता को एक साथ रहने में कोई विरोध नहीं। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि के व्रत और तप और भक्ति और पूजा, ये (सब) बन्ध का कारण (कहते हैं)। यहाँ तो सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं। सम्यग्दर्शन कैसे होता है, इसकी प्ररूपणा उल्टी। ये व्रत करो और उपवास करो और त्याग करो और क्रियाकाण्ड महाव्रत पालो तो तुम्हें धर्म होगा। दृष्टि ही मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में

आया ? अरे ! अनादिकाल से अपना बिगाड़ किया है। स्वच्छन्द होकर बिगाड़ किया है और मानता है कि मुझे लाभ होगा। समझ में आया ?

एक मनुष्य था। सिंह का छोटा बच्चा था। तो मनुष्य ने शेर के बच्चे को गोद में ले लिया। पेट में (छुपा लिया)। चोर, चोर था। शेर का बच्चा छोटा था। शेर के धनी को ऐसा हुआ... अरे ! सिंह का बच्चा कहाँ ? यहाँ तो है नहीं। पहले मनुष्य ने लेकर पेट में छिपा लिया। सिंह का छोटा बच्चा। अब उसकी (कोर्ट में) पेशी चली। ये यहाँ बैठा था और गया कहाँ सिंह का बच्चा ? तो कोर्ट में ले गये। कोर्ट में खड़ा रखा। खड़ा रखा तो सिंह का बच्चा अन्दर से पेट में खाने लगा। गिर गया, एकदम से। सिंह का बच्चा छिपाया था, उसने पेट खाया। ऐसे पुण्य-पाप की क्रिया मेरी, ये मिथ्यात्व का सिंह रखा है, आहाहा ! वह तुझे खा जाता है। यह बना है, हों ! यह बनाव बना है। कोर्ट में ले गया था। क्योंकि ये छोटा बच्चा हमारा था। अब ये इसने पेट में छिपा लिया है ये इसको कैसे शंका पड़े ? छोटा गलुरिया जैसा। गलुरिया समझे ? कुत्ती का बच्चा। ऐसा छोटा पिल्ला। वह तो अन्दर से पेट खाने लगा। अब इसको छुपाकर कबूल करना पड़ा। नहीं दे अर्थात्। कोई में पड़ गया, एकदम से। आहाहा ! ऐसे जिसने मिथ्यात्व भाव को ग्रहण किया है, पुण्य-पाप मेरी चीज़ है, पुण्य से मुझे लाभ है, वह मिथ्यात्व—सिंह का बच्चा है, तेरी आत्मा की शान्ति खा जायेगा। समझ में आया ? आहाहा !

सम्यक् राग की निवृत्ति पूर्ण न हो, वहाँ तक इसको राग आता है, वह बन्ध का कारण है। इसमें विरोध नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र शुक्ल १४, सोमवार, दिनांक २६-०९-१९७७
कलश-११०, प्रवचन-१०६

दसलक्षणी पर्व का अन्तिम ब्रह्मचर्य का दिन है।

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पस्सदे रूवं।
कामकहादिणियत्तो णवहा बंभं हवे तस्स॥४०३॥

निश्चय से तो यथार्थ ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप है, उस आनन्द में चरना-रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह तो एक शुभभाव है। धर्मभाव तो उसे कहते हैं कि ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप। चर्य— उस आनन्द में — अतीन्द्रिय आनन्द में रमना। आहाहा! इसका नाम यथार्थ दसवाँ धर्म ब्रह्मचर्य कहा जाता है। यह लिया है।

अर्थ :- जो मुनि... मुनि की प्रधानता से कथन है न। **स्त्रियों की संगति न करे...** ब्रह्मचारी सन्तों को स्त्री का परिचय नहीं होता। आहाहा! स्त्री के संग का जिन्हें त्याग है। **उनके रूप को नहीं निरखे,...** अपने आनन्दस्वरूप की संगति करते हैं, वे स्त्री का संग कैसे करे? अपने आनन्दस्वरूप का रूप निहारते हैं... आहाहा! वे स्त्री का रूप किसलिए देखें? आहाहा! समझ में आया? **काम की कथा तथा 'आदि' शब्द से उसके स्मरणादि से रहित हों...** विषय की कथा से रहित और पूर्व में कोई विषय लिया हो, उसके स्मरण से रहित (हों)। आहाहा! उसे याद नहीं करना। है? **इस प्रकार नौ प्रकार से ब्रह्मचर्य मन-वचन-काया, कृत-कारित-अनुमोदना, ऐसे नौ प्रकार से... 'णवहा'** पाठ में ऐसा है। **'णवहा'** ब्रह्मचर्य पालते हैं। **उस मुनि को उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म होता है।** आहाहा!

भावार्थ :- यहा ऐसा जानना कि ब्रह्म नाम आत्मा है... उसमें भावार्थ है। स्वामी कार्तिकेय। **उसमें लीन हो वह ब्रह्मचर्य है।** आहाहा! परद्रव्य की लीनता में स्त्री मुख्य है। उसमें लीन होना, वह अब्रह्म और अज्ञान है। समझ में आया? यह कहा। **परद्रव्य में आत्मा**

लीन हो, उसमें स्त्री में लीन होना प्रधान है। तो उसका तो उन्हें त्याग नौ-नौ कोटि से होना चाहिए। आहाहा! ब्रह्मचारी किसे कहे!

पद्मनन्दि पंचविंशति मेमं २६वाँ अधिकार है। नाम पच्चीस (पच्चीसी) रखा है, परन्तु २६ अधिकार हैं। २६वें अधिकार में ब्रह्मचर्य का वर्णन है। बहुत ब्रह्मचर्य! वे तो मुनि हैं न! आहाहा! तो ब्रह्मचर्य का वर्णन ऐसे कड़क शब्दों में किया। प्रभु! तेरे आनन्द के नाथ को भूलकर तू राग के साथ एकत्वबुद्धि (करता है), वह मैथुन है। आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। फिर आचार्य पद्मनन्दि जरा बोले, हे युवकों! आहाहा! हे युवकों! मेरी ब्रह्मचर्य की व्याख्या सुनकर तुमको कदाचित् न रुचे तो माफ करना। ऐसा कहा है। जिनेश्वरदासजी! आहाहा! मुनिराज पद्मनन्दि महा भावलिंगी सन्त! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में-ब्रह्म में झूलनेवाले! आहाहा! वे ब्रह्मचर्य की व्याख्या करते हुए २६वाँ अधिकार लिया। बहुत स्पष्ट अधिकार किया। करने के बाद बोले, प्रभु! हे युवकों! तुम्हारा शरीर फाटफाट (हष्ट-पुष्ट) हो और तुमको मेरी यह ब्रह्मचर्य की बात न रुचे तो प्रभु! माफ करना, हम तो मुनि हैं। आहाहा! शान्तिभाई! आहाहा! गजब है न!

मुनिराज भावलिंगी पंच परमेष्ठी में सम्मिलित हैं। वे कहते हैं कि ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा, उसमें लीन होना, उसमें लपेट हो जाना, आनन्द में गुप्त अन्दर चले जाना, ऐसी ब्रह्मचर्य की व्याख्या सुनकर, हे युवकों! कदाचित् तुमको न रुचे, युवा अवस्था २०-२०-२५ वर्ष की, सांढ़ जैसा शरीर हो, दो-दो लड्डू, तीन-तीन लड्डू चढ़ाते हों, आहाहा! और पाँच-पच्चीस लाख की पूँजी हो और स्त्री रूपवान हो, अब उसे यह बात कहने पर, प्रभु! तुझे न रुचे तो मैं तो मुनि हूँ न, मुझसे क्या आशा रखोगे? समझ में आया? तुमको न रुचे तो हमको मुनि जानकर क्षमा करना। आहाहा! मेरे पास क्या आशा रखोगे? प्रभु! मैं तो मुनि ब्रह्मचारी आनन्द में लीन होनेवाला, उसके पास तुम—हमारी कौनसी बात पसन्द करोगे? हम तो यह कहेंगे। आहाहा! समझ में आया?

यह कहा, आत्मा ब्रह्म, उसमें लीन होना वह ब्रह्मचर्य है। आहाहा! भावार्थ में है, हों! स्वद्रव्य में लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है और परद्रव्य में लीन होना, वह व्यभिचार है।

आहाहा! शुभराग में भी लीन होना व्यभिचार है। पद्मनंदि शास्त्र में तो यहाँ तक कहा है न, प्रभु! यदि तेरी बुद्धि शास्त्र में जायेगी तो व्यभिचारिणी होगी। आहाहा! शान्तिभाई! क्या कहा? बुद्धि तेरी (वहाँ जायेगी) तो वह शास्त्र परद्रव्य है। आहाहा! यहाँ परद्रव्य कहा न? **परद्रव्य में आत्मा लीन हो, उसमें स्त्री में लीन होना प्रधान है,...** परन्तु शास्त्र की ओर यदि तेरी बुद्धि जायेगी... आहाहा!

एक बार कहा था, झांझरीजी! तुम्हारा वह पण्डित—सत्येन्द्र, सत्येन्द्र यहाँ आये थे तो यह बताया था। कहा, शास्त्र में तो ऐसा है। शास्त्र में बुद्धि जाती है तो व्यभिचारिणी है, ऐसा पद्मनन्दि पंचविंशति में कहा है। क्योंकि शास्त्र परद्रव्य है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! भगवान तीन काल का नाथ आनन्द का सागर, उसमें से हटकर राग में और पर में जाना... आहाहा! परमात्मा की पुकार है कि वह व्यभिचार है। वह इस ब्रह्मचर्य अधिकार का यह अन्तिम अधिकार। आज दसवाँ दिन है न। आहाहा! दसवाँ दिन-चौदस। बड़ा दिन है। तो बड़े में यह ब्रह्मचर्य (बड़ा है)।

कलश - ११० पर प्रवचन

चलता अधिकार। चलता यहाँ आया है न? नीचे है। '**कर्मविरतिः सम्यक् पाकं न उपैति**' यह है। नीचे से है। नीचे से सातवीं लाईन। नीचे, नीचे है। ऊपर नहीं नीचे है। सातवीं पंक्ति। है? क्या कहते हैं? आहाहा! '**यावत् ज्ञानस्य सा कर्मविरतिः सम्यक् पाकं न उपैति**' आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भी आत्मा के आनन्द का स्वाद आया, आनन्द का भान हुआ। आहाहा! उसे भी क्रिया का कर्म अर्थात् राग... आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का राग, उसे कर्म कहा। राग को यहाँ कर्म कहा। रागरूप क्रिया को कार्य कहकर कर्म कहा। जब तक कर्म से सम्यक् प्रकार से विरति न हो...

आत्मा के मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम मिटे हैं,... आहाहा! आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु की दृष्टि अनुभूति होकर मिथ्यात्व तो ज्ञानी को मिटा है। आहाहा! समझ में आया? है? **आत्मद्रव्य शुद्ध हुआ है,...** दृष्टि में आत्मद्रव्य की शुद्धता हुई है। आहाहा! द्रव्य शुद्ध

है, ऐसी पर्याय में भी शुद्धता तो हुई है। सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में शुद्धता की शक्ति है, उसमें शुद्धता की व्यक्ति प्रगट हुई है। आहाहा! भगवान भण्डार में जो शुद्धता की शक्ति पड़ी है, वह सम्यग्दृष्टि को शक्ति में से व्यक्तता प्रगट हुई है। समझ में आया? आहाहा! यह बात...! है?

आत्मद्रव्य शुद्ध हुआ है, उसे पूर्वोक्त क्रिया... आहाहा! अभी पूर्वोक्त क्रिया अर्थात् राग की क्रिया अभी बाकी रही है। व्रत और तप, भक्ति और पूजा के विकल्प आते हैं। आहाहा! उस **क्रिया का त्याग...** है न? '**कर्मविरतिः**' '**कर्मविरतिः**'। वह शुभरागरूपी क्रिया, उसकी विरति पूरी नहीं हुई। समकिती को अभी राग की विरति पूर्ण हुई नहीं। राग से हटकर अपनी दृष्टि का भान हुआ। आनन्दस्वरूप का, ज्ञाता-दृष्टा का परिणमन हुआ, परन्तु जो क्रियाकाण्ड का राग है, उसकी पूर्ण निवृत्ति नहीं हुई। आहाहा! समझ में आया? यह राग **क्रिया का त्याग...** अर्थात् उसकी पूर्ण निवृत्ति '**सम्यक् पाकं न उपैति**' सम्यक् प्रकार से वह प्राप्त हुई नहीं। राग का अभाव करना, उसका अभी इतना अभाव हुआ नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व का अभाव हुआ। समझ में आया?

आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति के ऊपर आरूढ़ होकर जो अनुभूति—अनुभवदृष्टि—सम्यक् आदि हुए, उसमें मिथ्यात्व का तो नाश हुआ और आत्मद्रव्य शुद्ध शक्तिरूप से था, वह पर्याय में थोड़ी शुद्धता प्रगट हुई परन्तु अभी राग की निवृत्ति पूर्ण हुई नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भी—ज्ञानी को भी जब तक वह राग की क्रिया है, तब तक उसका बन्ध है। आहाहा! समझ में आया? उसे मिथ्यात्व का बन्ध नहीं परन्तु चारित्रमोह का बन्ध पड़ेगा। आहाहा! जितना लक्ष्य राग में, क्रियाकाण्ड में जाता है, ज्ञानी को भी राग तो आता है न, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, यह सब राग है। वह रागरूपी कर्म; कर्म अर्थात कार्य, उसकी समकिती को पूर्ण निवृत्ति नहीं हुई। आहाहा! समझ में आया?

बराबर परिपक्वता को प्राप्त नहीं होता... भाषा देखो! आहाहा! वास्तव में तो भगवान आत्मा निज शुद्ध स्वरूप के अनुभव में मिथ्यात्व का त्याग किया, परन्तु शुद्ध स्वरूप में जो स्थिरता होनी चाहिए, वह नहीं और रागादि की क्रिया में परिणाम जाते हैं तो सम्यक् प्रकार से उसकी निवृत्ति पाक होना चाहिए, वह निवृत्ति नहीं। आहाहा! संसार की

बात तो कहाँ रह गयी परन्तु अभी दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम समकिती को आते हैं, उनका सम्यक् प्रकार, सम्यक् का अर्थ बराबर किया है। **'सम्यक् पाकं न उपैति' बराबर परिपक्वता को पाता नहीं,...** आहाहा! **अर्थात् क्रिया का मूल से विनाश हुआ नहीं।** आहाहा! अभी सम्यग्दृष्टि को —आत्मज्ञानी को मिथ्यात्व का नाश हुआ होने पर भी राग की क्रिया का पूर्ण पाक अभाव हुआ नहीं। आहाहा! वहाँ तक वीतरागता पूर्ण नहीं। आहाहा! समझ में आया? है?

क्रिया का मूल से विनाश हुआ नहीं। आहाहा! यह राग के भावरूपी क्रिया का मूल में से अभी विनाश नहीं हुआ। आहाहा! यहाँ लोग तो ऐसा कहते हैं, क्रियाकाण्ड करते-करते समकित, ज्ञान आदि होंगे। आहाहा! प्रभु! मार्ग अलग है, नाथ! तेरा स्वरूप अन्दर है न! आहाहा! वह राग से तो निवृत्ति स्वरूप है। राग में प्रवृत्त स्वरूप वह तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? उस राग का, क्रियाकाण्ड के राग का परिपक्व अर्थात् पूर्णता का त्याग। पूर्णरूप से समकिती को त्याग हुआ नहीं। तब तक उस राग का बन्धन होता है। चाहे तो वह राग शुभ क्रियाकाण्ड का हो, शुभयोग, समकिती को भी उसका बन्धन है। आहाहा!

मुमुक्षु : छोड़ देने से सब हो जायेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह छोड़ देने से स्थिरता हो जायेगी। उसे छोड़कर अशुभ में जाने का प्रश्न नहीं। वह छूट जाने से स्वरूप में स्थिरता हो जायेगी। सेठ! यहाँ तो उसका स्वरूप क्या है, इतना बतलाना है। आता है, परन्तु उसका फल क्या? उसका फल तो बन्धन है। आहाहा! ऐसा मार्ग है प्रभु का। वीतराग कहते हैं। सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ समवसरण में परमात्मा की वाणी में यह आया है। आहाहा! इन्द्र झूलते थे।

एक भवतारी इन्द्र और इन्द्राणी भी समवसरण में 'सीमन्धर' भगवान के पास सुनने आते हैं। क्या कहा? सौधर्म देवलोक है। बत्तीस लाख विमान हैं। एक-एक विमान में असंख्य देव हैं। किसी विमान में थोड़े-थोड़े हैं। उनका स्वामी शकेन्द्र है। सिद्धान्त में उसका लेख है कि वह एक भवतारी है। आहाहा! करोड़ों अप्सरायें, असंख्य देवों का साहेबा कहलाता है। अन्दर में ऐसा मानता है कि बाहर में कोई मेरी चीज़ नहीं। परन्तु उसे

भी राग आता है, भगवान को श्रवण करने को व्याख्यान में आता है। एक भवतारी है। उसे भी खबर है कि मुझे एक ही भव है। मैं अन्त में मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला हूँ। आहाहा! उसकी पत्नी मुख्य इन्द्राणी है, वह भी एक भवतारी है। वह उत्पन्न हुई तब मिथ्यादृष्टि थी। क्योंकि स्त्रीरूप से उपजना तो मिथ्यादृष्टि स्त्रीरूप से उपजता है। समझ में आया? आहाहा! माया के रोप रोपे हों, वह स्त्री होता है। स्त्री देवी हुई, तब तो मिथ्यादृष्टि थी, परन्तु इन्द्र के साथ भगवान के समवसरण में, जन्म कल्याणक, गर्भ कल्याणक आदि में जाती थी, उसमें उसे आत्मज्ञान हो गया, सम्यग्दर्शन हो गया। यह भी सिद्धान्त में-परमागम में लेख है कि वह भी एक भवतारी है। एक भव करके मोक्ष में जायेगी। आहाहा!

मुझे तो दूसरा कहना है, ऐसे एक भवतारी मोक्ष में जानेवाले, अवधिज्ञानी, मति-श्रुतज्ञानी, समकिती, वे जब भगवान की वाणी सुनते हैं तो सुनने में भगवान ने ऐसा कहा। प्रभु! तुझे जब तक राग की पूर्ण निवृत्ति न हो, तब तक तुझे राग से बन्ध होता है। आहाहा! इसलिए तुझे अवतार है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ पाण्डव देखो! पाँच पाण्डव। यह शत्रुंजय (पर) ध्यान में अन्दर आनन्द में मस्त थे। दुर्योधन के भानेज ने आकर लोहे के (गहने) पहनाये। लोहे के धगधगते मुकुट, कड़ा (पहनाये)। धर्मराजा, भीम और अर्जुन अपने स्वरूप में लीन होकर केवलज्ञान पाकर मोक्ष में गये। शत्रुंजय में ऊपर (समश्रेणी में सिद्धालय में) विराजते हैं। यात्रा करने का हेतु यह है कि जहाँ से मोक्ष पधारे हैं, वहाँ नीचे ऊपर विराजते हैं। तो याद आते हैं कि ओहो! भगवान यहाँ ऊपर विराजते हैं। यहाँ से मोक्ष गये तो ऊपर वहाँ विराजते हैं। यह स्मरण के लिये शुभभाव है। समझ में आया? आहाहा!

तीन तो मोक्ष में गये। दो मुनियों को जरा एक विकल्प आया, हों! आहाहा! यह कर्म की निवृत्ति नहीं, (इसकी बात है)। अभी राग की निवृत्ति (बाकी है)। ऐसा विकल्प आया, अरे! तीन मुनियों को क्या होता होगा? क्योंकि एक तो सहोदर हैं—एक उदर से जन्मे हुए हैं और साधर्मी हैं तथा बड़े हैं। तीनों बड़े हैं—सहदेव, नकुल से। इतना विकल्प अन्दर आ गया। अरे! मुनियों को कैसे होगा? ऐसा एक शुभ विकल्प आया, हों!

मुमुक्षु : अपना नहीं आया, दूसरे का आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना नहीं आया। अपने को तो है, परन्तु इतने अन्दर स्थिर नहीं रहे न! उनको क्या होगा? इतना। केवलज्ञान रुक गया। केवलज्ञान नहीं हुआ। विकल्प आया उसमें केवलज्ञान रुक गया। सर्वार्थसिद्धि में चले गये। ३३ सागर केवलज्ञान दूर हो गया। यह तो क्रिया-राग, उससे निवृत्ति नहीं। समकिती को भी, मुनि को भी राग की निवृत्ति जब तक पूर्ण नहीं तो उन्हें इतना बन्ध हो जाता है। आहाहा! मार्ग तो देखो प्रभु का! आहाहा! प्रभु शब्द से तू परमात्मा वीतरागस्वरूप। तेरा मार्ग वीतरागभाव का है। आहाहा! इतना राग आया—बन्धु का, मुनिपने का, साधर्मी का। कोई संसारी का नहीं। (उसमें) ३३ सागर का आयुष्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। आहाहा! एक सागर में दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम। एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष। इतना केवलज्ञान दूर हो गया।

मुमुक्षु : इतने राग में इतनी शिक्षा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस राग का इतना फल है। यह बतलाना है। समझ में आया? आहाहा! तीन तो मोक्ष पधारे, दो सर्वार्थसिद्धि में गये। ३३ सागर रहेंगे। मनुष्य होंगे तब भी एकदम तो केवलज्ञान होता नहीं। आठ वर्ष पहले तो (होता नहीं)। आहाहा! इतने राग में बन्धन हुआ, निवृत्ति नहीं हुई तो राग में प्रवृत्ति हो गयी। आहाहा! दो भव हो गये।

मुमुक्षु : राग का फल।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का फल। दो भव (बढ़ गये)। यह शुभराग, यह शुभराग। तुम्हारे तम्बाकू के और बीड़ी के नहीं। सेठिया को याद कराया। मुनि छठवें गुणस्थान में झूलनेवाले, सहोदर, साधर्मी, बड़े। इतना थोड़ा लक्ष्य गया। दो भव बढ़ गये। स्वर्ग और मनुष्य। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, **बराबर परिपक्वता को पाता नहीं अर्थात् क्रिया का मूल से विनाश हुआ नहीं।** यह राग का भाव रह गया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त कहाँ है? वीतराग ऐसा कहे, प्रभु! तुझे आत्मज्ञान हुआ होने पर भी मेरे स्मरण में तुझे राग आयेगा, वह क्रिया राग बन्ध का कारण है। आहाहा! प्रभु! तुझे राग से तो भव होंगे। अरे! भव होना तो कलंक है। भगवानस्वरूप भवरहित, उसमें भव

का भाव और भव तो कलंक है। योगीन्द्रदेव कहते हैं, भव धारण करना, वह कलंक है। भगवान आनन्द की मूर्ति नाथ... आहाहा! उसे यह भव कलंक है।

यहाँ कहते हैं कि जब तक ज्ञानी को भी... आहाहा! राग की क्रिया का पूर्ण परिपक्व त्याग नहीं, तब तक उसे बन्ध है। आहाहा! तो अशुभराग का तो क्या कहना? आहाहा! और यह भी पर की दया पालने का भाव नहीं था। मात्र मुनि ध्यान में थे। स्वयं ध्यान में थे, उसमें वृत्ति जरा हट गयी। आहाहा! तो कहते हैं, **जब तक अशुद्ध परिणमन है, तब तक जीव का विभावपरिणमन है।** यह राग, यह अशुद्ध परिणमन है। समकिती को और मुनि को भी। भावलिंगी सन्त जो, आहाहा! तीन कषाय (चौकड़ी) के अभावरूप वीतरागता तो प्रगट हुई है। वीतराग के झूले में झूलते हैं, परन्तु पूर्ण वीतरागता नहीं, इसलिए राग का विकल्प आया तो वह अशुद्ध परिणमन है। आहाहा! समझ में आया? अरे! संसार के लिये राग, वह तो समकिती को काला नाग दिखता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अन्तर की बातें हैं, प्रभु! भगवान का पुकार है, जब तक राग की क्रिया से पूर्ण निवृत्ति न हो, तब तक बन्धन में अवतार लेना पड़ेंगे। समझ में आया?

श्रीमद् भी कहते हैं, श्रीमद् राजचन्द्र। 'अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे' अरेरे! अभी कुछ राग बाकी दिखता है। अशेष कर्म का भोग—राग का भोग अभी अन्दर दिखता है। 'अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे... इससे देह एक धारकर, जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे...' अरे! राग दिखता है इसलिए भव धारण करना पड़ेगा और एक भव धारण करके हम हमारे स्वरूप स्वदेश में चले जायेंगे। 'हम परदेशी पंखी साधु, इस देश के रे नाहि रे' राग के देश के हम नहीं। आहाहा! 'हम परदेशी पंखी साधु, इस रे देश के नाहि रे... निज स्वरूप का स्मरण करके जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे' राग के देश में हम आते हैं। कर्म की विरति पूर्ण नहीं हुई, परन्तु फिर हम इस राग का त्याग करके एकाध भव में मोक्ष जायेंगे। समझ में आया?

जिसने भव का छेद कर दिया है... आहाहा! उसे भी इस रागभाव में भव दिखते हैं कि अरेरे! अभी भव करना पड़ेगा। एकाध देह (धारण करनी पड़ेगी)। यह देह कौनसी? यह मनुष्य की बात है। स्वर्ग तो बीच में धर्मशाला है। अभी एकाध देह मनुष्य की धारण

करके मोक्ष में जायेंगे। वह इस राग के कारण भव धारण करना पड़ेगा। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, **जब तक अशुद्ध परिणमन है, तब तक जीव का विभावपरिणमन है।** तब तक विकार का परिणमन समकिती, मुनि को भी है। आहाहा! भाई ने कहा न? तीसरे श्लोक में अमृतचन्द्राचार्य (ने कहा न) — अरे ! हमारे अभी अनादि की अशुद्धता '**कल्माषितायाः**' (बाकी है)। आहाहा! मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं। तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव (हुआ है)। वीतरागता के झूले में झूलते हैं। परन्तु कहते हैं कि हमको अनादि का कलुषित राग आता है। आहाहा! वह शुभराग। आहाहा! अरे! कहाँ दुनिया को पड़ी है अन्दर। आहाहा! मैं कहाँ जाऊँगा? कहाँ रहूँगा? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, आहा! उसमें से एकाध राग बाकी रह जाये तो भी भवभ्रमण है। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं, **जीव का विभावपरिणमन है।** वह विकार है। आहाहा! मिथ्यात्व है, उसकी तो बात क्या करना? परन्तु मिथ्यात्व जाने के बाद भी जितना राग का परिणमन है, उतना विभाव है। आहाहा! मेरे नाथ को छोड़कर मैं राग में आ जाता हूँ। बोझा है, बोझा। आहाहा! **उस विभावपरिणमन का अन्तरंग निमित्त है,...** यह क्या कहते हैं? कि ज्ञानी को भी जो राग-विभाव आता है, वह कोई अकेले कर्म के कारण से आता है, ऐसा नहीं। कर्म से विभाव हुआ, ऐसा नहीं — ऐसा कहते हैं। **अन्तरंग निमित्त है, बहिरंग निमित्त है।** दो बात है।

विवरण-अन्तरंग निमित्त जीव की विभावरूप परिणमनशक्ति... आहाहा! मुझमें जो राग आता है, वह मेरी विभाव परिणमन की शक्ति का कार्य है। आहाहा! ऐसा समकिती जानता है। ऐसा यहाँ मुनिराज कहते हैं। आहाहा! है नीचे? **अन्तरंग निमित्त जीव की विभावरूप परिणमनशक्ति...** यह क्या कहते हैं? आत्मा में विभाव नाम का एक गुण-शक्ति है। जैसे ज्ञानशक्ति, आनन्दशक्ति है, वैसे विभाव नाम की अपनी शक्ति है। तो विभावशक्ति अर्थात् विभावरूप परिणमना, ऐसा नहीं। परन्तु विभावशक्ति चार द्रव्यों में नहीं और जीव तथा पुद्गल में है, इसलिए विभाव को विशेष शक्ति कहा गया है। परन्तु वह विभावशक्ति.... **जीव की विभावरूप परिणमनशक्ति...** वह अपनी पर्याय में विभावरूप

से होने की योग्यता है। विभावशक्ति के परिणमन में राग होने की, मेरे कारण से राग होने की योग्यता मुझमें है।

मुमुक्षु : विभावशक्ति ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विभावशक्ति तो त्रिकाली है। वर्तमान परिणमन में मेरी राग की योग्यता के परिणमन में मेरी योग्यता है। विभावशक्ति है। शक्ति विभावरूप परिणमन नहीं करती। यहाँ तो यह कहा न?

अन्तरंग निमित्त है,... परिणमन में राग के परिणमन में विभाविक शक्ति निमित्त है। अर्थात् मूल कारण तो वह है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भाई! हमारे राग हुआ तो कर्म के कारण से हुआ, ऐसा नहीं। अभी यह बहुत बड़ी झंझट है कि विकार होता है, वह कर्म के कारण से होता है। बस। समझ में आया? आहाहा! यहाँ यह सिद्ध करते हैं कि समकिती को भी आत्मज्ञान में आत्मा के भानपूर्वक में जो राग होता है, वह विभाविक शक्ति की अपनी उल्टी परिणमन दशा है। विभाविक शक्ति का परिणमन विकार होना, ऐसा नहीं। क्योंकि विभाविक शक्ति तो सिद्ध में भी है। क्या कहा? सिद्ध में भी विभाविक शक्ति है। (वहाँ) उसका स्वभाव परिणमन है। यह विभाविक शक्ति है, इसलिए विभावरूप से परिणमता है, ऐसा नहीं। विभावशक्ति निमित्त के आधीन होता है तो विभावरूप परिणमता है। कर्म से विभावरूप परिणमता है, उसका निषेध करने के लिये यह स्पष्टीकरण किया है।

कथन में आता है कि ज्ञानी को भी ऐसे कर्म... आहाहा! समझ में आया? ऐसा कि, कर्म बलवान है, इसलिए ज्ञानी को भी राग हो जाता है। ऐसा अर्थ में आता है। पण्डित जयचन्द्रजी में। वह तो एक निमित्त का कथन बतलाया। बाकी विकार का विभावरूप परिणमन है, वह अपने कारण से अपनी योग्यता से हुआ है। समझ में आया? आहाहा!

प्रवचनसार में ४७ नय लिये हैं। उसमें ईश्वरनय लिया है, ईश्वरनय। उसका अर्थ यह किया है कि, जैसे धायमाता को... धायमाता के पास बालक को दूध पिलाते हैं, पराधीन (होकर)। उसी प्रकार आत्मा पराधीन, स्वयं से पराधीन होकर राग करता है। ईश्वरनय। कर्म पराधीन कराते हैं, ऐसा नहीं। बात-बात में अन्तर। इसका निर्णय का

ठिकाना कहाँ है ? आहाहा ! सत्य का स्वरूप क्या है ? और परमात्मा क्या कहते हैं ? आहाहा ! क्या कहते हैं ?

विभाविक शक्ति है परन्तु मुझमें मेरी योग्यता से निमित्त के आधीन होकर मेरा विकार होना, वह मेरी स्वतन्त्र दशा है। वह विकार कर्म कराता है (ऐसा नहीं)। समकिती को भी विकार (होता है)। आहाहा ! समझ में आया ? भाई ! चारित्रमोह का उदय है वहाँ तक विकार होता है। ऐसा नहीं — ऐसा कहते हैं। अन्तरंग निमित्त तो विभाविक परिणमन है, अपनी योग्यता है, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई ! आहाहा ! एक-एक बोल में क्या पृथक्पना यहाँ तो बताते हैं। आहाहा !

धर्मी जीव को, ज्ञानी को और सन्तों को जो राग आता है, उसमें विभाविक परिणमन शक्ति की योग्यता से होता है। कर्म से नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? यह भक्ति में भी आता है न ? वहाँ उस दिन कहा था। 'कर्म बिचारे कौन ? भूल मेरी अधिकाई।' चन्द्रप्रभ भगवान की स्तुति में आता है। बीस वर्ष पहले वहाँ ईसरी में कहा था, 'कर्म बिचारे कौन ? भूल मेरी अधिकोई', तो वहाँ पण्डित और वे सब लोग ऐसा कहते थे कि ऐसी खोज खोजकर बात निकालते हैं। परन्तु कर्म से होता है, यह बात तो कहते नहीं। ऐसा कहते थे, खबर है। और एक बात उस समय ऐसी की थी, बीस वर्ष पहले, यदि जिनाज्ञा माने तो कर्म से राग होता है, ऐसी अनीति संभवे नाहि। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। समझ में आया ? जिनाज्ञा माने तो कर्म से विकार होता है, ऐसी अनीति संभवे नाहि। यह तेरी अनीति है। अनीति। मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे है। वे लोग एकान्त में उड़ा देते थे। सामने बोल सके नहीं। यह तो खोज-खोजकर विकार की स्वतन्त्रता सिद्ध करते हैं। यह क्या कहते हैं ? देखो न !

धर्मी को विकार होता है। आहाहा ! अन्तरंग निमित्त अर्थात् अन्तरंग कारण। अन्तरंग कारण **जीव की विभावरूप परिणमनशक्ति...** यह अन्तरंग कारण है। विभावरूप। आहाहा ! आत्मज्ञान हुआ, राग का स्वामीत्व छूट गया तो भी जो राग रहता है, वह अपनी योग्यता से ज्ञानी को राग होता है। आहाहा ! समझ में आया ? और **बहिरंग निमित्त है मोहनीयकर्मरूप परिणमित पुद्गलपिण्ड का उदय...** वह कर्म तो बहिरंग निमित्त है।

कर्म तो बहिरंग निमित्त है, विकार अपना अन्तरंग निमित्त है। आहाहा! समझ में आया? क्या करें? हमारे कर्म का ऐसा जोर है। तू खोटा बोलता है। समझ में आया? तेरा विकार करने में तेरी स्वतन्त्र योग्यता है। विकार का कर्ता स्वतन्त्ररूप से होता है। कर्म कराते हैं, यह बात तीन काल में नहीं। उसमें बड़ी विचित्रता है। आहाहा! तीनों सम्प्रदाय में गड़बड़ है। नहीं, कर्म से होता है, कर्म से होता है।

यहाँ कहते हैं कि अन्तरंग कारण तो अपना ही है। समकिती को भी राग आता है... आहाहा! यह बलभद्र, श्रीकृष्ण को लेकर छह महीने तक मुर्दा उठाया। आहाहा! रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को छह महीने तक लिया। वह राग था। वह राग अपना दोष था। अपने कारण से राग था, कर्म के कारण से नहीं। समझ में आया? अन्दर भान था कि यह राग मेरी चीज़ नहीं। मेरी निर्बलता से मुझमें उत्पन्न होता है। उसमें भी ऐसा लगाते हैं कि छह महीने तक उठाया, फिर कर्म का उदय बन्द हो गया तो छोड़ दिया। ऐसा नहीं है। छह महीने तक राग अपने अपराध के कारण से रहा है। आहाहा! शान्तिभाई! सब सुना नहीं? ऐसा सब सुना है या नहीं? आहाहा! यह स्पष्टीकरण करते हैं।

अन्तरंग (कारण है) निमित्त जीव की विभावरूप परिणमनशक्ति, बहिरंग (कारण है) निमित्त है, मोहनीयकर्मरूप परिणमित पुद्गलपिण्ड का उदय। वह मोहनीयकर्म दो प्रकार का है : एक मिथ्यात्वरूप है, दूसरा चारित्रमोहरूप है। जीव का विभावपरिणाम भी दो प्रकार का है :.... कर्म दो प्रकार के हैं— दर्शनमोह और चारित्रमोह और **जीव का विभावपरिणाम भी दो प्रकार का है : जीव का एक सम्यक्त्व गुण है, वही विभावरूप होकर मिथ्यात्वरूप परिणमता है,...** आहाहा! आत्मा में श्रद्धा नाम का अनादि का गुण है। उसकी सम्यक् परिणति होना चाहिए, उसे छोड़कर मिथ्यात्वरूप परिणमता है। अज्ञानी अपने कारण से मिथ्यात्वरूप परिणमता है, कर्म के कारण से नहीं। आहाहा! है?

उसके प्रति बहिरंग निमित्त है मिथ्यात्वरूप परिणमित पुद्गलपिण्ड का उदय... दर्शनमोह बाह्य निमित्त है। दर्शनमोह का तो बाह्य निमित्त है। मिथ्यात्व का तो अपना अन्तरंग कारण है। आहाहा! यह तो कहे कि हमारे दर्शनमोहनीय कर्म का जोर है तो

मिथ्यात्व होता है, क्या करें ? कर्म का उदय आवे तो जुड़ना ही पड़ता है। कर्म का उदय आवे इसलिए वह निमित्त बनकर ही आता है तो हमारे विकार करना ही पड़ता है। सब खोटा है।

मुमुक्षु : किसी समय कर्म बलवान, किसी समय जीव बलवान।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकार बलवान वह। किसी समय विकार बलवान और किसी समय जीव स्वभाव बलवान, ऐसा। आहाहा! समझ में आया ? यह शब्द आता है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा की टीका में आता है।... कम्मो बळियो। वहाँ डाले, देखो! कर्म बळियो। परन्तु कर्म बळिया का अर्थ क्या ? कर्म के निमित्त के ऊपर जोर देते हैं तो कर्म बलवान, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया ? अरे! एक भी बात का ठिकाना नहीं होता और धर्म करते हैं, धर्म करते हैं। कहाँ धर्म था ? भाई! आहाहा!

धर्म का एक समय संसार के अभाव का कारण है। आहाहा! मिथ्यात्व परिणाम भी अपने उल्टे परिणाम से अज्ञानी करता है। कर्म के कारण से नहीं। कर्म तो बहिरंग निमित्त है। आहाहा! वह भी वहाँ चर्चा चली थी न ? ऐसा कि ज्ञानावरणीय कर्म के कारण से ज्ञान में बढ़-घट होती है। कानजीस्वामी कहते हैं कि ज्ञानावरणीय से नहीं। ज्ञान की हीनाधिकता स्वयं से होती है। बीस वर्ष पहले ये रिकॉर्डिंग हो गया है। रिकॉर्डिंग हुआ है न ? (लोगों ने वर्णीजी से पूछा) महाराज! यह ठीक है ? कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की हीनाधिकता स्वयं से होती है। ज्ञानावरणीय कुछ नहीं करता। नहीं, ग्यारह अंगधारी कहे तो भी वह खोटा है। ज्ञानावरणीय के कारण से ज्ञान में हीनाधिकता होती है। यह प्रथा थी। यह प्रथा पूरे हिन्दुस्तान में थी। सब पण्डित और त्यागी और सबमें यह प्रथा थी। इसलिए लोगों को जरा...

यहाँ तो कहते हैं, आहा! ज्ञान में हीनदशा होना, वह स्वयं के कारण से है। वह अपना अन्तरंग कारण है। और ज्ञानावरणीय तो निमित्त बाह्य कारण है। समझ में आया ? आहाहा! हमारे कर्म का जोर है। क्या करें ? व्यापार छोड़ सकते नहीं। अरे! झूठे! झूठा... झूठा। एक झूठा था। एक झूठा नाम का व्यक्ति था। विसाश्रीमाली। पालियाद में। फिर उसके पिता के पिता, उसके पिता के पिता झूठा थे। उसके दादा। तो वह रखी... क्या

कहलाती है ? प्रतिमा। प्रतिमा नहीं उर्धन, उर्धन। एक झूठा नाम का व्यक्ति था। प्रोषध करते, प्रतिक्रमण करते। पालियाद में चातुर्मास था। तो उसके पिता के पिता झूठा थे। वह भुवा थे, भुवा। भुवा घुणता। घुणता-घुणता... (मैंने) कहा, यह सामायिक, प्रोषध करनेवाले तुम यह झूठा (करते हो)। तो कहे, महाराज! मैं तो वहाँ बोलता हूँ कि मैं झूठा हूँ। परन्तु तू झूठा है अर्थात् यह झूठा है वह तू है, ऐसा वहाँ चलता है। यह बात हो गयी, हों!

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो। यह तो साधारण भाषा में (कहा)। इसके पिता के पिता आदि उर्धन। उर्धन नहीं समझते ? तुम्हारे हिन्दी में क्या कहते हैं ? पिता के पिता। बाबा (दादा)। उसका रखते हैं न ? लकड़ी और ... वह झूठा के थे। भुवो था वह घुणता था। घुणता था तो मैंने एक बार कहा, अरे! परन्तु तुम यह सामायिक करते हो। नहीं, नहीं। महाराज! मैं तो वहाँ घुणता, झूठा हूँ ऐसा कहता हूँ। परन्तु तुम झूठा हो, झूठा तो तेरे पिताजी हैं, ऐसा लोग मानते हैं। मैं झूठा हूँ। परन्तु... आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, मिथ्यात्वरूप परिणमा, वह अपना कारण है। है ? **वही विभावरूप होकर मिथ्यात्वरूप परिणमता है,...** वह अपना कारण है। **उसके प्रति बहिरंग निमित्त है मिथ्यात्वरूप परिणमित पुद्गलपिण्ड का उदय...** है। वह तो निमित्त है। निमित्त कुछ कराता नहीं। यह बात अभी बाहर आ गयी। कैलाशचन्दजी ने (प्रसिद्ध) की है। पहले दोनों गुप्त थी, वर्णीजी के समय में। क्रमबद्ध नहीं मानते थे और निमित्त से कुछ होता है, ऐसा मानते थे। इस बार कैलाशचन्दजी ने स्पष्टीकरण किया है, क्रमबद्ध है और निमित्त है, परन्तु निमित्त पर को करता नहीं। पर में कुछ करता नहीं, इसका नाम निमित्त है। यहाँ कहते हैं, जीव मिथ्यात्वरूप परिणमता है तब दर्शनमोह का बहिरंग निमित्त है। परन्तु निमित्त कुछ करता नहीं, मिथ्यात्व कराता नहीं। आहाहा! बड़ी झंझट अभी चलती है। आहाहा! एक तो ऐसा कहता था कि कर्म तो निमित्त होकर आते ही हैं, इसलिए मिथ्यात्व और विकार करना ही पड़ता है। और नोकर्म है, वह तो तुम करो तो निमित्त कहलाये, वरना निमित्त नहीं कहलाये। सब मिथ्यात्व है। समझ में आया ? मीठालालजी! आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, राजमलजी स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं। विभावरूप परिणमा मिथ्यात्व और उसके निमित्तरूप दर्शनमोहनीय कर्म है। **जीव का एक चारित्रगुण है....** अब दूसरा लिया। **विभावरूप परिणमता हुआ विषय-कषायलक्षण चारित्रमोहरूप परिणमता है...** विषय-कषाय के परिणामरूप परिणमता है, वह अपने कारण से परिणमता है। अन्तरंग कारण अपना है। समझ में आया? आहाहा! **उसके प्रति बहिरंग निमित्त है चारित्रमोहरूप परिणमित पुद्गलपिण्ड का उदय।** वह तो बाह्य निमित्त है। बाह्य निमित्त है, यह अन्तरंग कारण है। आहाहा! उसका भी निर्णय करने का कहाँ ठिकाना है। समकित तो कहीं रह गया, परन्तु अभी इस कर्म के कारण से विकार होता है और उसके कारण से यह होता है (ऐसा माने)। आहाहा! यह इन्द्रिय है तो यहाँ ज्ञान होता है। यह इन्द्रियाँ है तो ज्ञान होता है, यह बात खोटी है। ज्ञान तो अपनी पर्याय से होता है। इन्द्रिय तो निमित्त है। निमित्त क्या कुछ कराता है अन्दर? समझ में आया? आहाहा!

विशेष ऐसा है कि उपशम का, क्षपण का क्रम ऐसा है : पहले मिथ्यात्वकर्म का उपशम होता है... देखो! पहले तो मिथ्यात्वभाव का नाश होता है, तब मिथ्यात्व कर्म का उपशम होता है अथवा क्षपण होता है। मिथ्यात्व का नाश होता है, तब दर्शनमोह का नाश होता है। **उसके बाद चारित्रमोहकर्म का उपशम होता है...** पहले मिथ्यात्व का नाश होता है, पश्चात् चारित्रमोह का उपशम होता है अथवा चारित्रमोह का नाश होता है। पहले यह नहीं होता — मिथ्यात्व का नाश न हो और चारित्रमोह का नाश हो जाये (ऐसा नहीं होता)। आहाहा!

मुमुक्षु : त्याग और तप, वह चारित्र नहीं? महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चारित्र कहाँ थे? अचारित्र है। यहाँ तो राग का त्याग और मिथ्यात्व का त्याग, वह त्याग है। यह तो सिद्ध करते हैं। जितना समकिती को, क्षायिक समकिती श्रेणिक राजा तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। चारित्रमोह का राग उनको था, अपने कारण से। चारित्रमोह कर्म तो निमित्त है। और नरक में गये वहाँ भी राग है, वह स्वयं के कारण से है। समझ में आया? क्षायिक समकिती। आगामी तीर्थंकर होंगे। श्रेणिक राजा पहले तीर्थंकर होंगे। आहाहा! वह राग का पुण्यबन्ध हुआ, उसके फल में तीर्थंकर होंगे। जिस

भाव से बन्ध हुआ, वह भाव राग है। षोडशकारण भावना वह राग है, वह कोई धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग से बन्ध है। आगामी काल में... आहाहा! राग के कारण से पुण्यबन्ध हो गया। तीर्थंकरपना (बँध गया)। जब यहाँ माता के गर्भ में आयेंगे, तब तो इन्द्र आकर माता का गर्भ साफ करेंगे। वह पुण्य के कारण से। समझ में आया? और जन्म लेंगे। नरक में से आकर जन्म लेंगे। परन्तु पुण्य प्रकृति बँधी है, तीर्थंकर प्रकृति, तो इन्द्र भी आकर नमस्कार करते हैं। नमो रत्न कूखधारिणी माता! ऐसे तीर्थंकर के आत्मा को गर्भ में रखा तो माता! तुझे मेरा पहला नमस्कार! आहाहा! रत्नकूखधारिणी—जिसके गर्भ में रतन रहा। आहाहा! माता! 'माता जतन करीने राखजो अेने' इन्द्र कहता है, 'माता जतन करीने राखजो अेने, तम पुत्र अम आधार रे...' आहाहा! 'माता, जनेता जतन करके रखना' फिर तो देव रखते हैं। इन्द्र देव भी रखते हैं। माता को कहा, यह तो महा मणिरतन। तीर्थंकर के आत्मा ने जन्म लिया। आहाहा! माता! जतन करके रखना। तुम पुत्र हम आधार रे। इन्द्र एकावतारी ऐसा कहता है। वे सब पुण्य के निमित्त के कारण से सब फल हैं। समझ में आया? वह पुण्य का कारण ऐसा विकार भी स्वयं से हुआ है, कर्म के कारण से हुआ है, ऐसा नहीं। कर्म निमित्त है। निमित्त का अर्थ एक चीज़ है। परन्तु उससे होता है, ऐसा कभी नहीं होता। इसलिए राजमलजी को स्पष्टीकरण करना पड़ा। समझ में आया? चारित्रमोह का... आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १, बुधवार, दिनांक २८-०९-१९७७
कलश-११०, प्रवचन-१०७

११० कलश चलता है। कलशटीका है न? हिन्दी चलता है, हिन्दी, यहाँ तक आया है। **इसलिए किसी काल में जीव को शुद्धपना-अशुद्धपना एक ही समय में घटित होता है...** वहाँ लेना। क्या कहते हैं? कि आत्मा... बीच में है। इसलिए... है न? **इसलिए किसी काल में जीव को शुद्धपना-अशुद्धपना एक ही समय में घटित होता है, विरुद्ध नहीं।** क्या कहते हैं? आत्मा अपना शुद्धस्वरूप चैतन्य का अनुभव, दृष्टि होने पर भी जितना अशुद्धभाव रहता है, वह विरुद्ध नहीं। विरुद्ध नहीं, इसका अर्थ? जैसे मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन विरुद्ध है, वैसे शुद्धपना और अशुद्धपना (साथ में रहने में) विरुद्धता नहीं। क्या कहा?

निज स्वभाव चैतन्य... पहले तो कल की बात रह गयी। रात्रि की। जिनेश्वरदास देरी से आये न! चन्दुभाई! कल रात्रि में वचनामृत में से एक शब्द निकाला था। ८४ पृष्ठ पर है। **द्रव्य उसे कहा जाता है कि जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े।** (वचनामृत २५१)। आहाहा! क्या कहते हैं? बहिन के वचनामृत में ८४ पृष्ठ पर बोल है। द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसके कार्य के लिये अन्य साधन की राह देखनी पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या कहते हैं उसमें?

यह शुद्धपना प्रगट हुआ न? तो द्रव्य जब आत्मा शुद्ध चैतन्य द्रव्य है, ऐसा जब अनुभव में सम्यग्दर्शन में आया... आहाहा! तो वह शुद्ध द्रव्य जो है उसके कार्य के लिये निर्मल परिणति—वीतराग दशा, मोक्षमार्ग की परिणति के लिये, स्वद्रव्य के कार्य के लिये अन्य साधन की राह देखनी पड़े, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसका अर्थ चलता है। जब द्रव्यस्वभाव भगवान पूर्णानन्द अनन्त रत्नाकर समुद्र परमात्मा आत्मा अन्दर है, अनन्त गुण का गोदाम ऐसा द्रव्य जो है, उसकी जब दृष्टि हुई, तब द्रव्य है ऐसा

कहलाया। द्रव्य तो है, परन्तु किसे ? समझ में आया ? आहाहा ! जिसे दृष्टि में द्रव्यस्वभाव का अनुभव हुआ, उसे द्रव्य है और उसे द्रव्य है वह उसे कहते हैं कि जिसके कार्य के लिये वीतरागता के लिये, चारित्र के लिये, केवलज्ञान के लिये, द्रव्य के कार्य के लिये पर साधन की अपेक्षा की राह देखनी पड़े, ऐसा है नहीं। आहाहा ! उसमें ऐसा कहा कि, व्यवहार की अपेक्षा लेनी पड़े, ऐसी वह वस्तु नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! भाषा सादी है परन्तु अन्दर मर्म बहुत है। यह तो जरा दो-तीन बोल, एक बोल रात्रि में कहा था।

वचनामृत में बहुत सादी भाषा और अन्दर मर्म बहुत ऊँचा है और एक साथ ब्रह्मचारी लड़कियों ने लिख लिया है, वे भी धन्य के पात्र हैं। क्योंकि ऐसा कुछ वे स्वयं तो कुछ लिखे नहीं और करे नहीं। परन्तु जब कुछ सार-सार (बात आयी होगी) वह ले लिया। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा द्रव्य जो है, अनन्त गुण का सागर, अनन्त शक्तियों का संग्रहालय, अनन्त शक्ति के संग्रह का स्थान वह है। वह द्रव्य ऐसा नहीं होता कि द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसके कार्य के लिये... आहाहा ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, केवलज्ञान आदि कार्य के लिये अन्य साधन की राह देखनी पड़े, ऐसा द्रव्य नहीं है। आहाहा ! हिम्मतभाई ! रात्रि में कहा था, भाई नहीं थे। और यह सबको याद है कि इसमें कुछ है। वचनामृत अब हो रहे हैं, वचनामृत नहीं। छह हजार प्रकाशित होंगे तब गुजराती प्रकाशित होंगे। यह तीन टुकड़े (वाक्यांश) अभी लक्ष्य में है। एक यह। आहाहा !

वस्तु भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप वह द्रव्य और उस द्रव्य की जिसे प्रतीति हुई कि यह द्रव्य परमात्मस्वरूप है, ऐसी प्रतीतिकार को अपने चारित्र या आनन्द या केवलज्ञान के कार्य के लिये द्रव्य दृष्टि में कब्जे में हुआ... आहाहा ! तो पर साधन की वहाँ अपेक्षा है नहीं। शान्तिभाई ! समझ में आया ? यह पर्याय में कार्य होना, पर्याय कहो या कार्य कहो, कि जो द्रव्य है, उसे द्रव्य कहते हैं कि जिसके कार्य के लिये अर्थात् कि निर्मल पर्याय के लिये अन्य साधन की राह देखनी पड़े, ऐसा वह द्रव्य है ही नहीं। आहाहा ! प्रवीणभाई !

वाँच गये या नहीं ? यह आया है या नहीं ? ८४ पृष्ठ पर। समझ में आया ? उस द्रव्य की यह व्याख्या चलती है।

ऐसा जो भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द का नाथ, वह द्रव्य है—ऐसा जिसकी प्रतीति में आया, उसके लिये बात है। समझ में आया ? द्रव्य है, उसकी जिसे प्रतीति नहीं तो उसे राग की और पर्याय की प्रतीति है, उसके लिये यह सवाल नहीं। समझ में आया ? परन्तु जिसे, यह द्रव्य पूर्णानन्द परमात्मस्वरूप है, ऐसी जिसे द्रव्य की प्रतीति हुई, उसके निर्मल कार्य के लिये दूसरे साधन की राह देखनी पड़े... जोवी पड़े को क्या कहते हैं ? देखनी पड़े, ऐसा है नहीं। आहाहा! उसमें तो व्यवहार की अपेक्षा उड़ा दी और द्रव्य के कार्य के लिये द्रव्य ही बस है। समझ में आया ? आहाहा! है तो डेढ़ लाईन। डेढ़ लीटी, समझे ? पंक्ति, डेढ़ पंक्ति। उसमें है, ८४ पृष्ठ पर है। भाषा ऐसी है, देखो! डेढ़ पंक्ति है। लाये हो ?

द्रव्य तेने कहेवाय... यह गुजराती भाषा। द्रव्य उसे कहते हैं, यह तुम्हारी हिन्दी भाषा। **कि जिसके कार्य के लिये...** अर्थात् जिसकी पर्याय के लिये। देरी-देरी से आवे और बात चली गयी हो। यहाँ आवे तो देरी से आवे, पाँच-दस मिनिट देरी से आवे। यह भाई भी रात्रि में देरी से आवे, यह भी देरी से आवे। व्याख्यान में साथ में आवे। बात बहुत दूसरी चली गयी। मात्र रात्रि की अकेली नहीं। यह तो बापू! मार्ग... ऐसा मनुष्यपने का इसका क्षण जाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, द्रव्य-पर्याय आत्मा, द्रव्य अर्थात् आत्मा। बाह्य से कहें तो लक्ष्मी उसे कहते हैं कि लक्ष्मी का व्यापार करने के लिये, लक्ष्मी के कार्य के लिये दूसरी लक्ष्मी की आवश्यकता पड़े नहीं। समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा द्रव्य उसे कहते हैं... आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु! शुद्ध चैतन्यघन, वह पदार्थ-द्रव्य उसे कहते हैं कि उसके सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और केवलज्ञान के कार्य के लिये **दूसरे साधनों की राह देखनी न पड़े।** साधन, भगवान स्वयं ही साधन है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें द्रव्य की प्रतीति हुई तो द्रव्य है, ऐसा कार्य हुआ। उस कार्य में ऐसी प्रतीति हुई कि यह द्रव्य है, इसमें कार्य जो चारित्र या आनन्द, केवलज्ञान आदि का कार्य लेना है, उसमें

परद्रव्य की राह की आवश्यकता नहीं। समझ में आया? आहाहा! जो स्वयं द्रव्य ही परिपूर्ण भगवान आत्मा है। समझ में आया? आहाहा!

पहले एक बार दूसरा शब्द कहा था। १०० वें पृष्ठ पर कि ऐसा कुछ है। १०० पृष्ठ न? कोई-कोई अभी वाँचा है, बाकी सबका बाकी है। **जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये?** (वचनामृत-३०६)। क्या कहते हैं? देखो! ग्यारहवीं गाथा में 'ज्ञायकभाव' जो शब्द है, वह यह है। यह गुजराती सादी (भाषा है)। ज्ञायकभाव ध्रुवभाव जागती चीज़, वह ध्रुव है अर्थात् टिकता तत्त्व है। जागता-जागृतस्वरूपी टिकता तत्त्व है। ऊभो है अर्थात् टिकता। जागता जीव। आहाहा! बहुत सादी भाषा। चार कक्षा पढ़ा हुआ हो तो भी समझे, ऐसा यह है। समझ में आया? वस्तु तो शास्त्रभाषा से तो बहुत... परन्तु यह तो सादी— एकदम सादी भाषा में है।

जागता जीव... अर्थात् ज्ञायकभावरूप जीव ध्रुव है न। ऊभो है न—ध्रुव है न। आहाहा! समझ में आया? ज्ञायकभाव जागता जीव है न। ध्रुव है न, पड़ा है न, अनादि-अनन्त पड़ा है। वह जीव कहाँ जाये? वह जागती चीज़ जाये कहाँ? जागती चीज़ ध्रुव है, वह जाये कहाँ? वह पर्याय में आ जाये? राग में आ जाये? बाहर आ जाये? आहाहा! समझ में आया? जागता जीव है न! टिकता तत्त्व है न! ग्यारहवीं गाथा का साधारण गुजराती है। ज्ञायकभाव है, वह कहाँ जाये? समझ में आया? **अवश्य प्राप्त हो ही।** है, उस चीज़ की प्राप्ति होती, होती और होती ही है। समझ में आया? वह चीज़ है या नहीं? आहाहा!

तीसरा एक बोल याद आया था। अन्तिम है। है उसमें? अग्नि को दीमक है, यह आया, लो। यह आया। परन्तु मुझे तो दूसरा निकालना है। **जैसे सोने को जंग नहीं लगती, अग्नि को दीमक नहीं लगती।** १३७ पृष्ठ। है? (वचनामृत-३८०)। सोने को जंग नहीं लगती, ऐसा नहीं, कक्का लगाया। कंचन (सोना) को जंग नहीं लगती। नहीं लगती, उसे क्या कहते हैं? कंचन को काई नहीं लगती अर्थात् क्या? लगता नहीं। यहाँ कंचन को जंग नहीं लगता, ऐसी भाषा है। **अग्नि को दीमक नहीं लगती।** दीमक होती है न? आहाहा! **उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव में आवरण, हीनता या अशुद्धि नहीं आती।** भगवान ज्ञायकमूर्ति

प्रभु में आवरण नहीं, हीनता नहीं (अर्थात्) न्यूनता (नहीं), अशुद्ध नहीं। कमी नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान है।

अग्नि को दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव में आवरण, न्यूनता या अशुद्धि... भाषा कैसी है? अग्नि को दीमक, कंचन को जंग। ज्ञायकभाव में आवरण। उ और अ। सब अ, आ। आवरण, उणप (न्यूनता) और अशुद्धि नहीं होती। आहाहा! उसे देखे, उसे जान, उसे अनुभव कर। तेरा कल्याण होगा। समझ में आया? एक दूसरा शब्द कहीं है अवश्य। कितने में है? लो, यह आया, पृष्ठ ९३। है? (वचनामृत-२८६)।

बाहर के सभी कार्यों में सीमा-मर्यादा होती है... है? कहाँ? क्या कहा यह? शुभ-अशुभभाव या विकारी भाव को मर्यादा है। वह अमर्यादित चीज़ नहीं। आत्मा में शुभ-अशुभभाव या मिथ्यात्वभाव है, उसकी हद है, मर्यादा है। मर्यादा-सीमा है। सीम। **अमर्यादित तो अनन्त ज्ञान और आनन्द है।** अन्दर भगवान आत्मा अमर्यादित अनन्त ज्ञान और आनन्द (स्वरूप है)। आहाहा! तो मर्यादित चीज़ है, उससे वापस हट सकता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

वहाँ सीमा-मर्यादा नहीं। अन्दर में-स्वभाव में मर्यादा होती नहीं। जीव को अनादि काल से जो बाह्य वृत्ति है, उसकी यदि मर्यादा न हो तब तो जीव कभी विमुख ही न हो। क्या कहा? रागादि, मिथ्यात्वादि की सीमा है-मर्यादा है। एक समय की और साधारण है। जिससे आत्मा उस ओर से हटकर अमर्यादित चीज़ में आ सकता है। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया? मर्यादा न हो या हद न हो तो जीव कभी विमुख ही न हो। बेहद पर्याय हो तो विमुख कहाँ से हो? आहाहा! मिथ्यात्व और राग-द्वेष की विकृत अवस्था की मर्यादा है। आहाहा! उसकी हद है। उसका काल और उसके भाव की हद है। काल एक समय और हद-मर्यादा उसकी संक्षिप्त है। आहाहा! कल्पकाल रहे, ऐसा विकार है। भगवान आत्मा त्रिकाल है और जिसका स्वभाव अमर्यादित है। समझ में आया? पोपटभाई! आया या नहीं? पढ़ा? ठीक। यह तो रात्रि में एक बोल उतारा था न। आहाहा! अभी तो अब हो रहे हैं, हों! अब तो छह हजार प्रकाशित हो तब। ३१०० समाप्त

हो गये हैं। थोड़े-बहुत यहाँ हमको दिये हैं, उसमें से देंगे। कोई ले जाये बिक्री में। ऑफिस में से मिलेगा। थोड़े होंगे वे यहाँ से देंगे।

मुमुक्षु : २०० आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : २०० आये हैं ? ठीक! ओहो! ठीक। ऑफिस में से बिक्री में मिलेंगे। बाकी तो छह हजार गुजराती प्रकाशित हो तब। दूसरे दस हजार हिन्दी प्रकाशित होते हैं। सोलह हजार प्रकाशित होने का रामजीभाई ने निर्णय किया है। आहाहा!

एक ही वाक्य बस है। अरे! प्रभु! तू पदार्थ है या नहीं ? वस्तु है या नहीं ? तो वस्तु के कार्य के लिये तेरी वस्तु के कार्य के लिये पर की आवश्यकता पड़े ? प्रवीणभाई! आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु विराजता है, यह बात अन्यत्र कहीं है नहीं। जैन के अतिरिक्त और वह भी दिगम्बर के अतिरिक्त। आहाहा! समझ में आया ? सनातन जैनदर्शन, वह दिगम्बर दर्शन है। उसमें भी अभी तो खबर नहीं। वाडा बाँधकर बैठे हैं। यहाँ तो भगवान आत्मा अमर्यादित शक्ति का भण्डार प्रभु वस्तु है। आहाहा! उस वस्तु के कार्य को—पर्याय के लिये द्रव्य की आवश्यकता है। तो द्रव्य तो दृष्टि में आया, ऐसा कहते हैं। उसके कार्य के लिये तो द्रव्य की आवश्यकता है, तो द्रव्य तो दृष्टि में आया। अब उसके कार्य के लिये दूसरे कारण की आवश्यकता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह लोग चिल्लाहट मचाते हैं, व्यवहार से निश्चय होता है,... व्यवहार से निश्चय होता है। अरे! सुन न प्रभु! तुझे खबर नहीं, बापू! विकार से निर्विकारी हो ? निर्विकारी वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है। है, उसका कार्य तो उसके वीतरागभाव के कारण से वीतरागता होती है। बहुत बात तो है सत् और सहज, परन्तु ऐसी विकृत कर डाली है न! आहाहा! कनुभाई! आहाहा!

यह पदार्थ प्रभु ज्ञायकभाव का भान हुआ तो शुद्धता हुई। उस शुद्धता के कार्य के लिये पर की कोई अपेक्षा है नहीं। क्योंकि शुद्धता के कार्य के लिये शुद्ध द्रव्य कारण है। उस शुद्धता के कार्य के लिये पर के कारण की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! चेतनजी! ऐसी बात है। आहाहा! प्रभु! तू कौन है ? कहाँ है ? कितना है ? अपरिमित अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र की एक-एक शक्ति अपरिमित से भरपूर है। आहाहा! एक-एक शक्ति गुण का गोदाम। एक-एक शक्ति में भी अनन्त सामर्थ्य है।

एक-एक शक्ति प्रभुता के गुण से भरपूर है। एक-एक शक्ति प्रभुता के गुण से भरी हुई है। प्रभुत्व नाम का गुण है परन्तु प्रभुत्व नाम का गुण अनन्त गुण के स्वरूप में है। प्रभुत्व गुण उसमें नहीं, परन्तु प्रभुत्व का जो स्वरूप है, वह एक-एक शक्ति में अन्दर प्रभुत्व का स्वरूप पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी अनन्त शक्तियाँ संख्या से है। एक-एक शक्ति में अनन्त प्रभुत्व का स्वरूप पड़ा है। ऐसा अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु द्रव्य है। आहाहा! उस द्रव्य की अस्ति का जिसे स्वीकार हुआ, उस स्वीकार के लिये दूसरे की अपेक्षा की आवश्यकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? कि द्रव्य का तब स्वीकार होता है कि जब राग की किंचित् मन्दता हो या यह हो। समझ में आया? या देव-गुरु-शास्त्र की अन्दर सहायता—मदद हो, (ऐसा नहीं)। द्रव्य-वस्तु ही ऐसी है। चन्दुभाई! ऐसी बात है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : साहेब! आप तो कहते हो कि पर्याय को द्रव्य की आवश्यकता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में। यह बाद में। यहाँ तो अभी कार्य लेना है न! द्रव्य में से कार्य करना है, उसमें पर की अपेक्षा नहीं, इतना सिद्ध करना है। बाकी तो कार्य जो है, उसे द्रव्य की भी अपेक्षा नहीं। यह और बाद में। समझ में आया? यह बाद में।

यहाँ तो द्रव्य जो है, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, शुद्ध चैतन्यघन अनन्त रत्नाकर प्रभु, वह द्रव्य है। वह है का स्वीकार तो पर्याय में आता है। द्रव्य का स्वीकार द्रव्य में नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का है। वह पर्याय में जब द्रव्य है, ऐसा (स्वीकार हुआ)... है तो है। यह तो कहा था न? यह तो प्रश्न (हुआ था)। तुम्हारा त्रिभुवनदास, त्रिभुवनभाई। कारणपरमात्मा है न? कारणपरमात्मा है तो कारण का कार्य तो आना चाहिए। आप तो कहते हो, कारणपरमात्मा है, अनादि का कारणपरमात्मा है। कारणपरमात्मा कहो या द्रव्यस्वभाव कहो या त्रिकाली ज्ञायकभाव कहो। त्रिकाली ध्रुव जीव कहो, कारणजीव कहो। आहाहा! वह कारणजीव है तो कार्य तो आना चाहिए। ऐसा प्रश्न था।

उसे जवाब दिया कि सुन! भाई! कारणआत्मा है, कारणपरमात्मा है। है किसे? जिसकी प्रतीति में आया उसे। जिसे प्रतीति में आया नहीं, उसे है ऐसा कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत अलग, बापू! जगत से कोई अलग जाति है।

इसलिए लोग जरा चिल्लाहट मचाते हैं। ऐ... सोनगढ़ का एकान्त है, व्यवहार का लोप करते हैं। उनकी बात सच्ची है। आहाहा!

जिस द्रव्य के स्वभाव का लक्ष्य और आश्रय हुआ, उसे पर के लक्ष्य से कार्य हो, यह बात रहती नहीं, उसमें है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? और वह चीज़ तो अनन्त शक्तियों का संग्रहस्वरूप भगवान है। वह उत्पाद-व्यय अनित्य है। अनित्य में नित्य की प्रतीति होती है। नित्य की प्रतीति नित्य में नहीं होती। यह है, महाप्रभु कारणपरमात्मा है, ऐसी प्रतीति हुई, उसे कारणपरमात्मा है। तो उसे कार्य-सम्यग्दर्शन हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! और कारणपरमात्मा जिसकी दृष्टि में आया, उसे चारित्र और केवलज्ञान हुए बिना रहता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वह द्रव्य अनन्त शक्तियों का महा भण्डार है। आहा! उस भण्डार में राग की एकता का ताला तोड़ डाला। राग और त्रिकाली स्वभाव एक है, यह मिथ्यात्व का ताला था। आहाहा! उस राग की एकता टूटी और विभक्त हुआ। विभक्त कहा न? एकत्व-विभक्त। राग से विभक्त हुआ और अपने स्वभाव में एकत्व हुआ। आहाहा! समझ में आया? बस। वीतरागता शुरु हो गयी। और वीतरागता पूर्ण होने में कारण वह द्रव्य ही है। पर की अपेक्षा है नहीं या मनुष्यपना हो और व्रजनाराचसंहनन हो। समझ में आया? आहाहा! या शास्त्र का ज्ञान बहुत हो, धारणा बहुत हो... आहाहा! और देव, गुरु की श्रद्धा हो और पंच महाव्रत आदि के परिणाम हो तो उसके कारण से यह लाभ होगा (ऐसा है नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : काललब्धि आवे तब समझ में आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बारम्बार कहते हैं। परन्तु काललब्धि कहना किसे? यह तो बहुत बार कहा है। काललब्धि का ज्ञान किसे होता है? काललब्धि की धारणा करनी है? वह तो मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है। काललब्धि का ज्ञान किसे होता है? कि जिसने पुरुषार्थ से द्रव्य का आश्रय लिया और पर्याय में ज्ञानानन्द आदि दशा हुई, तब काललब्धि का ज्ञान हुआ। समझ में आया?

यह तो हमारे प्रश्न (संवत्) १९७२ के वर्ष से है। ७२... ७२। ६१ वर्ष हुए। समझ

में आया ? आहाहा ! पर्याय में सर्वज्ञपने की प्रतीति हो, जब प्रतीति हो, तब अपने ज्ञान के अन्दर घुस जाता है। त्रिकाली सर्वज्ञस्वभावी ही भगवान आत्मा है। आहाहा ! सर्वज्ञप्रभु को एक ओर रखो। भगवान आत्मा सर्वज्ञ... सर्वज्ञस्वभावी वस्तु है। प्रभु स्वयं सर्वज्ञस्वरूपी ही है। आहाहा ! वह अल्पज्ञानी नहीं, विपरीत ज्ञानी नहीं। आहाहा !

सर्वज्ञस्वभावी चैतन्यसूर्य सर्वज्ञस्वभाव। ऐसी जिसे प्रतीति हुई, तब सर्वज्ञस्वभाव है, ऐसा उसकी प्रतीति में आया। प्रतीति हुए बिना सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है, ऐसा कहाँ से आया ? उसके लिये तो नहीं, अन्धेरा है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! वह सर्वज्ञ परमात्मा हैं, यह बात एक ओर रखो। यह तो प्रभु स्वयं आत्मा सर्वज्ञ है। जागता स्वभाव अथवा सर्वज्ञ स्वभाव, ज्ञ स्वभाव। ज्ञ के साथ सर्व लगा दो तो सर्वज्ञ स्वभाव। वह सर्वज्ञस्वरूपी ही प्रभु आत्मा अनादि से है। आहाहा ! समझ में आया ? शान्तिभाई ! थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा ! वीतरागमार्ग बहुत अलौकिक है, भाई ! आहाहा !

जिनेश्वरदेव परमात्मा तो ऐसा कहते हैं, सर्व जीव सर्व काल में सर्व क्षेत्र में, सर्व परिपूर्ण भाव से भरपूर प्रभु है। सर्व जीव, हों ! अभव्य जीव भी पूर्ण भाव से भरपूर पड़े हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द से भरपूर पड़े हुए अभव्य जीव हैं। वस्तु से। पर्याय में न हो, वह दूसरी बात है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो जिसे अपना कार्य करना हो, उसके लिये बात है, भाई ! समझ में आया ?

कहते हैं, वह सर्वज्ञस्वरूपी वस्तु की स्थिति की प्रतीति हुई तो उसके कार्य में– प्रतीति के कार्य में भी द्रव्य के अतिरिक्त कोई पर कारण नहीं आया। फिर चारित्र की पर्याय में कार्य प्रगट हो, उसमें भी द्रव्य के आश्रय के अतिरिक्त दूसरा किसी का आश्रय नहीं। आहाहा ! पश्चात केवलज्ञान की पर्याय प्रगटी तो केवलज्ञान में कोई व्रजनाराचसंहनन हो, मनुष्यपना हो और पर्याप्तिपना हो और ऐसा हो और वैसा हो तो उसे केवलज्ञान हो, ऐसा है नहीं। आहाहा !

एक पण्डित आये थे। बहुत वर्ष पहले स्वाध्याय मन्दिर में (आये)। देखो ! केवलज्ञान में मनुष्यपना, व्रचनाराचसंहनन चाहिए। अरे ! सुन तो सही, प्रभु ! वह तो निमित्त हो, परन्तु निमित्त से उसमें कुछ होता है, ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

बहुत सूक्ष्म, बापू! अरे! तिरने का उपाय, तिरने के उपाय से भरपूर भण्डार भगवान है। आहाहा!

मुमुक्षु : पराधीन दृष्टि।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि ही विपरीत। आहाहा! जहाँ है वहाँ खोजता नहीं, जिसमें नहीं वहाँ खोजता है। आहाहा! राग में सर्वज्ञस्वभावी भगवान पड़ा है? एक समय की पर्याय में भगवान सर्वज्ञस्वभावी रहा है? आहाहा!

ऐसा सर्वज्ञस्वभावी द्रव्यस्वरूप, उसकी जिसे स्वसन्मुख होकर प्रतीति, अनुभव हुआ, उस कार्य के लिये भी किसी पर की अपेक्षा नहीं रही। आहाहा! कि अब चारित्र के लिय भी... बन्ध अधिकार में तो ऐसा आता है, कि दर्शन, ज्ञान कारण है और चारित्र कार्य है। दर्शन, ज्ञान नहीं, इसलिए चारित्रकार्य नहीं, ऐसा वहाँ (कहा है)। वह तो अपेक्षित बात की है। समझ में आया? बाकी तो चारित्रगुण का कारण जो है, वह तो चारित्रशक्ति है और शक्तिवान आत्मा, वह चारित्र का कारण है। समझ में आया? यह तो पूर्व में सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुए हों तो चारित्र होता है, इतना सिद्ध करना है। परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय के कारण से चारित्र की पर्याय प्रगट होती है, ऐसा नहीं। वह चारित्र का कार्य सम्यग्दर्शन के कारण से होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! वह चारित्र का कार्य द्रव्यस्वभाव की जहाँ प्रतीति हुई, वह कार्य द्रव्य के कारण से होता है। समझ में आया? शान्तिभाई! जैन का ऐसा मार्ग है। आहाहा! लो, इतना चला।

अब यहाँ, **एक जीव में शुद्धपना-अशुद्धपना एक ही काल में होता है,...** क्या कहते हैं? कि जितना द्रव्य का आश्रय लिया उतना शुद्धपना प्रगट हुआ और पूर्ण आश्रय नहीं तो पर के लक्ष्य से जो पुण्य-पाप के भाव उत्पन्न होते हैं, वह अशुद्धपना है। तो मोक्षमार्ग भी होता है और अशुद्धता भी होती है, दोनों एक समय में रह सकते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा का पूर्ण आश्रय नहीं, वहाँ आगे पर का आश्रय अन्दर में लक्ष्य में आये बिना रहता नहीं। आहाहा! स्व का आश्रय लिया... अरे! ऐसी भाषा और यह बात!

भगवान पूर्णानन्द प्रभु, वह दृष्टि में आया अर्थात् ज्ञान की एक समय की पर्याय में पूर्ण का ज्ञान हुआ, पूर्ण वस्तु नहीं आयी, पर्याय में पूर्ण वस्तु नहीं आयी। समझ में आया?

यह तो समयसार १७-१८ गाथा में आया न? कि ज्ञान की पर्याय अज्ञानी की भी है। आहाहा! गजब बात करते हैं न! अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय में स्व-परप्रकाशकपना है। तो उस पर्याय में द्रव्य भी ज्ञात होता है। आहाहा! अज्ञानी की पर्याय, ज्ञान का जो क्षयोपशमभाव का अंश है, उसका स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से पर्याय में स्वद्रव्य का ही ज्ञान होता है। आहाहा! ऐसा है। तथापि उसकी दृष्टि उस ओर नहीं। पर्याय में पूरा द्रव्य ज्ञान में आता है। अनादि, हों! अज्ञानी को भी। आहाहा! उसका वर्तमान जो ज्ञान के क्षयोपशम के विकास का अंश है, वह परसन्मुख झुका हुआ है, तथापि उस पर्याय में स्वद्रव्य का ज्ञान होता ही है। परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं, अन्तर में नहीं, ऐसी दृष्टि है। इसलिए ज्ञान में ज्ञात होने पर भी जानने में नहीं आता। अज्ञानी को ऐसा भासित होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

ज्ञान भले अल्प हो, परन्तु उस अल्प ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य कितना है! 'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचनभेद भ्रम भारी, ज्ञेयशक्ति द्विविधा प्रकाशी, निजरूपा पररूपा भासी।' 'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी' पर्याय में स्व और पर को प्रकाशित करनेवाली हमारी शक्ति है। आहाहा! स्व-पर में दोनों ज्ञेय आये। स्वज्ञेय स्व में, पर में परज्ञेय। तो पहले स्वज्ञेय ही पर्याय में ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़े। लोगों को अभ्यास नहीं।

एक समय की पर्याय द्रव्य का भी ज्ञान करती है और छह द्रव्य का भी ज्ञान करती है। समझ में आया? एक समय की पर्याय भले अल्प हो, भले श्रुतज्ञान की पर्याय अल्प हो, आहाहा! तथापि स्वद्रव्य का भी ज्ञान है। स्वद्रव्य (पर्याय में) आया नहीं। छह द्रव्य का ज्ञान है (परन्तु) छह द्रव्य (पर्याय में) नहीं आये। एक ही समय में छह द्रव्य और स्वद्रव्य, स्वद्रव्य और छह द्रव्य, एक समय की पर्याय में—ज्ञानगुण की एक पर्याय में इतनी सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उस प्रतीति का आश्रय द्रव्य चाहिए, वह आश्रय करता नहीं। आहाहा! उसमें भासित होता है तथापि भासित होनेवाली चीज़ के ऊपर लक्ष्य नहीं करता। आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं, शुद्धपना और अशुद्धपना... जितना स्वभाव भगवान आत्मा, वस्तु

की प्रतीति द्रव्य के आश्रय से हुई, सम्यग्ज्ञान हुआ और शुद्धता भी थोड़ी हुई, उस समय में दूसरी अशुद्धता भी है। दो आये न ? **जीव को एक ही काल में शुद्धपना-अशुद्धपना एक ही समय में घटित होता है, विरुद्ध नहीं।** वह विरुद्ध नहीं। जैसे मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन को रहने में विरोध है। वैसे शुद्धपना और अशुद्धपना साथ में रहने में विरोध नहीं। भले वह अशुद्धपना शुद्धता से विरुद्ध है, परन्तु रहने में विरोध नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

कोई विशेष है, वह विशेष जैसा है, वैसा कहते हैं — एक ही जीव को एक एक ही काल में शुद्धपना-अशुद्धपना यद्यपि होता है, तो भी अपना-अपना कार्य करता है। भाषा देखो! शुद्ध संवर-निर्जरा का कार्य करता है और अशुद्धता बन्ध का कार्य करती है। आहाहा! समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को भी, हों! कोई ऐसा कहते हैं न कि सम्यग्दृष्टि का... शास्त्र में तो ऐसा आया है कि ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। यहाँ कहते हैं कि जितनी समकिती को भी अशुद्धता है, वह बन्ध का कारण है। बिल्कुल बन्ध का कारण है। और जितनी शुद्धता है, वह बिल्कुल शुद्ध संवर-निर्जरा का कारण है। आहाहा! समझ में आया ? कठिन मार्ग, भाई! आहाहा! अरेरे! मार्ग का आश्रय लिया नहीं। अनन्त काल से चौरासी के अवतार में भटक मरता है। बाहर में कोई मान ले कि यह जानपनेवाला है और चतुर है और दुनिया में महिमा हुई। उसमें उसके आत्मा में क्या हुआ ? आहाहा! वहाँ फँस गया वापस। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अपना अपना कार्य करते हैं। 'यत् कर्म अवशतः बन्धाय समुल्लसति'** आहाहा! **जितनी द्रव्यरूप-भावरूप (क्रिया) अन्तर्जल्प-बहिर्जल्प-** (भाव) विकल्प। **सूक्ष्म-स्थूलरूप क्रिया,...** राग। **सम्यग्दृष्टि पुरुष सर्वथा क्रिया से विरक्त...** है। वह क्रिया से दृष्टि में विरक्त है। वह क्रिया मेरी है, ऐसा सम्यग्दृष्टि मानता नहीं। आहाहा! जितना अशुद्धपना है, उससे तो समकिती विरक्त है। परन्तु विरक्त होने पर भी अशुद्धपना है। दृष्टि की अपेक्षा से, आश्रय की अपेक्षा से उससे विरक्त है, परन्तु निर्बलता की अपेक्षा से अशुद्धता है, वह स्वयं के कारण से है, कोई कर्म के कारण से है - ऐसा नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : अशुद्धता है इसलिए तो विरक्तपना हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : है इसलिए नहीं। विरक्तपना दृष्टि से पाये हैं। यह बात खोटी है। अशुद्धपना है, इसलिए विरक्त है, ऐसा नहीं। अन्दर से द्रव्य का आश्रय है, इसलिए विरक्त है। बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! कठिन काम है। आहाहा! समझ में आया? विरक्त है, इसका अर्थ—अशुद्धपना है, इसलिए विरक्त है, ऐसा नहीं। अशुद्धपना है परन्तु स्वद्रव्य का आश्रय है, इसलिए विरक्तपना है। आहाहा! ऐसा मार्ग सूक्ष्म पड़े, लो! सेठ! यह निश्चित करने के लिये कभी निवृत्ति ही ली नहीं। ऐसा का ऐसा बीड़ी और तम्बाकू और....

मुमुक्षु : निवृत्ति लेकर आये हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, तुम्हारा पक्ष करते हैं। यह आवे, देरी-देरी से आवे। छोटा सेठ पहले आवे। अरेरे! यह काम, बापू! आहाहा!

सम्यग्दृष्टि पुरुष सर्वथा क्रिया से विरक्त होने पर भी चारित्रमोह के उदय से बलात्कार से होती है... देखो! आहाहा! **वह जितनी क्रिया है, उतनी—ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध करती है,...** आहाहा! उसका स्वामीपना नहीं। सम्यग्दृष्टि को अशुद्धपने का स्वामीत्व नहीं। आहाहा! तथापि पर्याय में अशुद्धपना है, उसका बन्ध है। आहाहा! एक ओर ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु (कहे), एक ओर ज्ञानी को अशुद्धता का अंश है, उसे बन्ध का कारण (कहे)। शुभक्रिया, हों! दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! स्वामीत्व छूट गया। आहाहा! विरक्त का अर्थ उसमें रक्त नहीं। उससे अभी कुछ विरक्ति हुई नहीं। सर्वथा विरक्ति हो तब तो मुनिपना (हो), अशुद्धपना हो नहीं। आहाहा!

जितनी शुभक्रिया—दया, दान, व्रत, भक्ति... आहाहा! **ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध करती है, संवर-निर्जरा अंशमात्र भी नहीं करती।** यह सब वर्तमान में गड़बड़ है। सम्यग्दृष्टि का शुभयोग भी सर्वथा बन्ध का कारण नहीं, ऐसा (वे) कहते हैं। कथंचित् उसे शुद्धता का भी कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बड़ा अन्तर। मूल चीज़ में पूरा अन्तर। व्रत और तप तो कहीं रह गये। **संवर-निर्जरा अंशमात्र भी नहीं करती।** सम्यग्दृष्टि को जितने व्रत, भक्ति, पूजा, दान, दया का विकल्प उठता है, उसमें बिलकुल संवर, निर्जरा

नहीं। अकेले बन्ध का कारण है। आहाहा!

एक ओर कहना कि शुभयोग में शुद्धता का अंश है। चन्दुभाई! आता है न? वह दूसरी चीज़ है। वह तो एक ज्ञान की पर्याय के अंश का विकास है, वह विकास निर्मल है। वह निर्मल है तो ऐसा करते-करते पूर्ण निर्मल होता है। ऐसे यहाँ चारित्रगुण की अशुद्धता हो, वह बढ़ते-बढ़ते शुद्धता होती है, ऐसा नहीं। यह बताने को शुभयोग में एक अंश चारित्र का अंश निर्मल है, वह निर्मल... निर्मल... निर्मल बढ़कर यथाख्यातचारित्र होगा। परन्तु कब इसका शुद्धता का अंश काम करेगा? ग्रन्थीभेद करेगा तब। आहाहा! यह वहाँ भी कितने ही डालते हैं, देखो! इसमें शुद्ध का अंश है। अरे! परन्तु किसके लिये? सुन तो सही! आहाहा! वह तो एक गुण की पर्याय की पूर्णता, दूसरे गुण के कारण से पूर्णता होती नहीं, यह सिद्ध करना है। समझ में आया? सम्यग्ज्ञान की निर्मल पर्याय अंश पूर्ण होता है, तो निर्मल पूर्ण, पूर्ण (होता है) तो उसके कारण से चारित्रगुण की निर्मल पर्याय पूर्ण होती है, ऐसा नहीं है। वहाँ एक अंश-चारित्र का निर्मल एक अंश है, वह बढ़कर आगे पूर्ण यथाख्यातचारित्र होगा, इतना सिद्ध करना है। आहाहा! है न वह? मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे है। अध्यात्म सन्देश में उसके व्याख्यान आ गये हैं।

यहाँ कहते हैं, **सम्यग्दृष्टि पुरुष सर्वथा क्रिया से विरक्त होने पर भी चारित्रमोह के उदय से बलात्कार से होते हैं...** भाषा ऐसी है। बलात्कार अर्थात् रुचि नहीं। आहाहा! परन्तु ऐसा आकुलता का शुभभाव आता है। बलात्कार का अर्थ ऐसा नहीं कि चारित्रमोह का उदय है तो वहाँ अशुद्धता होती है। ऐसा नहीं। यहाँ बलात्कार का अर्थ कि रुचि नहीं। तथापि निर्बलता के कारण से अशुद्धता होती है। समझ में आया? **जितनी क्रिया है, उतनी ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध करती है, संवर-निर्जरा अंशमात्र भी नहीं करती।**

'तत् एकम् ज्ञानं मोक्षाय स्थितम्' पूर्वोक्त एक ज्ञान अर्थात् एक शुद्ध चैतन्यप्रकाश... आहाहा! शुद्ध भगवान आत्मा का निर्मल प्रकाश जो पर्याय में हुआ। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निर्मल पर्याय हुई, वह ज्ञानपर्याय है। वह **एक शुद्ध चैतन्यप्रकाश...** वह चैतन्यप्रकाश है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह चैतन्य का प्रकाश है। **ज्ञानावरणादि कर्मक्षय का निमित्त है।** वह तो कर्मक्षय का निमित्त है। कर्म क्षय नहीं

करता। कर्म का क्षय तो कर्म से होता है। आहा! समझ में आया? उसमें निमित्त है। आहाहा! निमित्त का अर्थ कर्मक्षय आत्मा करता नहीं। कर्मक्षय तो कर्म की पर्याय बदलकर अकर्मरूप हो, वह उसका स्वभाव है। यह तो उसका निमित्त है। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि —एक जीव में शुद्धपना-अशुद्धपना एक ही काल में होता है, परन्तु जितने अंश में शुद्धपना है, उतने अंश में कर्म-क्षपण है,... आहाहा! **जितने अंश में अशुद्धपना है, उतने अंश में कर्मबन्ध होता है। एक ही काल में दोनों कार्य होते हैं। ऐसा ही है, सन्देह करना नहीं।** आहाहा! समझ में आया? सब कहते थे, पश्चात् दीपचन्दजी सेठिया भी उसमें आ गये थे न? समकिती को दुःख नहीं होता, कषाय नहीं होती। किस अपेक्षा से बात है?

यहाँ तो कहते हैं, मुनि को भी जितने अंश में महाव्रतादि के विकल्प हैं, उतने अंश में दुःख है, दुःख का वेदन है। आहाहा! समझ में आया? वह तो आनन्द की मुख्यता से कहो, तब दुःख नहीं—ऐसा कहा जाता है। परन्तु ज्ञान की पर्याय से जानने में आता है, यह कहो तो जितने अंश में आत्मा के आश्रय से सुख उत्पन्न हुआ, वह सुख है। जितने अंश में पर के आश्रय से अशुद्धता उत्पन्न हो, वह दुःख है। एक समय में सुख और दुःख दोनों का वेदन है। समझ में आया? आहाहा! दीपचन्दजी को यह हुआ था न? सेठिया को। लड़के जरा अनुकूल पड़ गये हैं। परन्तु पैर भारी हो गया है। आना मुश्किल पड़ जाता है अब। क्योंकि भूल हो गयी और अब छूटना किस प्रकार? पाँच-छह वर्ष से आये नहीं। ज्ञानचन्दजी गये थे। मीठा व्यक्ति है। ज्ञानचन्दजी है न? सहारनपुर गये थे। कैसा कहलाये? सरदारशहर, वहाँ गये थे, वाँचन किया था। यहाँ आये थे। सम्मेदशिखर वहाँ वे लोग आये थे। व्यक्ति को पकड़ हो जाये, फिर कठिनाई पड़े। आहाहा! पूरी जिन्दगी पलट डालना... अरर्र! पूरा मान तोड़ डालना भारी कठिन पड़े। भाई! छोड़ न अब मान। मर गया मान में। आहाहा!

ज्ञानी को भी... भाई! आहाहा! जितनी अशुद्धता है उतना दुःख है, उतना बन्ध का कारण है। आहाहा! वहाँ ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु (कहा), यहाँ (कहते हैं), जितनी

अशुद्धता उतना बन्ध का कारण। किस अपेक्षा से कहा? यह तो दृष्टि का जोर देने को (कहा)। स्वभाव के ऊपर दृष्टि का जोर है, अकेला आश्रय भगवान का है, इस कारण से भोग के परिणाम आते हैं, उनका स्वामित्व नहीं और उनकी बन्ध स्थिति अल्परस है। इसलिए बन्ध नहीं, ऐसा कहा। परन्तु सर्वथा बन्ध नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया?

सन्देह करना नहीं। कैसा है शुद्ध ज्ञान? सर्वोत्कृष्ट है - पूज्य है। आहाहा! वर्तमान शुद्ध परिणति पूज्य है, सर्वोत्कृष्ट है। राग से भिन्न—अधिक है। आहाहा! आत्मा के आश्रय से जितनी शुद्धता प्रगट हुई, वह पूज्य है। **और कैसा है? 'स्वतः विमुक्तं' तीनों काल में समस्त परद्रव्यों से भिन्न है।** शुद्ध परिणति तो परद्रव्य और राग से तो भिन्न ही है। आहाहा! उसके कारण से मोक्ष होता है और राग से बन्ध होता है। (विशेष कहेंगे....)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१११

(शार्दूलविक्रीडित)

मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्तियन्
मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः।
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च।।12-111।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'कर्मनयावलम्बनपरा मग्नाः' [कर्म] अनेक प्रकार की क्रिया, ऐसा है [नय] पक्षपात, उसका [अवलम्बन] क्रिया मोक्षमार्ग है ऐसा जानकर क्रिया का प्रतिपाल, उसमें [पराः] तत्पर हैं जो कोई अज्ञानी जीव वे भी [मग्नाः] धार में डूबे हैं। भावार्थ इस प्रकार है-संसार में रुलेगा, मोक्ष का अधिकारी नहीं है। किस कारण से डूबे हैं? 'यत् ज्ञानं न जानन्ति' [यत्] जिस कारण [ज्ञानं] शुद्ध चैतन्यवस्तु का [न जानन्ति] प्रत्यक्षरूप से आस्वाद करने को समर्थ नहीं हैं, क्रियामात्र मोक्षमार्ग ऐसा जानकर क्रिया करने को तत्पर हैं। 'ज्ञाननयैषिणः अपि मग्नाः' [ज्ञान] शुद्ध चैतन्यप्रकाश, उसका [नय] पक्षपात, उसके [एषिणः] अभिलाषी हैं। भावार्थ इस प्रकार है-शुद्ध स्वरूप का अनुभव तो नहीं है, परन्तु पक्षमात्र बोलते हैं। [अपि] ऐसे भी जीव [मग्नाः] संसार में डूबे ही हैं। कैसे होकर डूबे ही हैं? 'यत् अतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः' [यत्] जिस कारण [अतिस्वच्छन्द] अति ही स्वेच्छाचारपना, ऐसा है [मन्दोद्यमाः] शुद्ध चैतन्यस्वरूप का विचारमात्र भी नहीं करते हैं। ऐसे जो कोई हैं उन्हें मिथ्यादृष्टि जानना। यहाँ कोई आशंका करता है कि शुद्ध स्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग ऐसी प्रतीति करने पर मिथ्यादृष्टिपना क्यों होता है? समाधान इस प्रकार है-वस्तु का स्वरूप इस प्रकार है कि जिस काल शुद्ध स्वरूप का अनुभव है उस काल अशुद्धतारूप है जितनी भाव द्रव्यरूप क्रिया उतनी सहज ही मिटती है। मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि जितनी क्रिया जैसी है वैसी ही रहती है, शुद्धस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है; सो वस्तु का स्वरूप ऐसा तो नहीं है। इससे जो ऐसा मानता है, वह जीव मिथ्यादृष्टि है, वचनमात्र से कहता है कि 'शुद्धस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है;'ऐसा कहने से कार्यसिद्धि तो कुछ नहीं है। 'ते विश्वस्य उपरि तरन्ति' [ते] ऐसे जीव सम्यग्दृष्टि हैं जो कोई, वे [विश्वस्य उपरि] कहे हैं जो दोनों जाति

के जीव उन दोनों के ऊपर होकर, [तरन्ति] सकल कर्मों का क्षय कर मोक्षपद को प्राप्त होते हैं। कैसे हैं वे? 'ये सततं स्वयं ज्ञानं भवन्तः कर्म न कुर्वन्ति प्रमादस्य वशं जातु न यान्ति' [ये] जो कोई निकट संसारी सम्यग्दृष्टि जीव [सततं] निरन्तर [स्वयं ज्ञानं] शुद्ध ज्ञानस्वरूप [भवन्तः] परिणमते हैं, [कर्म न कुर्वन्ति] अनेक प्रकार की क्रिया को मोक्षमार्ग जानकर नहीं करते हैं; भावार्थ इस प्रकार है–जिस प्रकार कर्म के उदय में शरीर विद्यमान है पर हेयरूप जानते हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकार की क्रियायें विद्यमान हैं पर हेयरूप जानते हैं। [प्रमादस्य वशं जातु न यान्ति] 'क्रिया तो कुछ नहीं'–ऐसा जानकर विषयी असंयमी भी कदाचित् नहीं होते, क्योंकि असंयम का कारण तीव्र संक्लेश परिणाम है सो तो संक्लेश मूल ही से गया है। ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव वे जीव तत्काल मात्र मोक्षपद को पाते हैं।।12–111।।

भाद्र कृष्ण २, गुरुवार, दिनांक २९-०९-१९७७
कलश-१११-११२, प्रवचन-१०८

कलशटीका, १११ कलश।

मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्तियन्
मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः।
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च।।12–111।।

'कर्मनयावलम्बनपरा मग्नाः' अनेक प्रकार की क्रिया,... व्रत और नियम और क्रियाकाण्ड भक्ति और पूजा के भाव, ऐसी क्रिया। **ऐसा है पक्षपात,...** उस क्रिया से हमको मुक्ति मिलेगी। क्रिया करते-करते कल्याण होगा, ऐसा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि का पक्ष है। समझ में आया? **पक्षपात, उसका क्रिया मोक्षमार्ग है ऐसा जानकर क्रिया का प्रतिपाल, उसमें तत्पर है,...** आहाहा! बराबर व्रत, तप, भक्ति, पूजा में सावधान रहता है। वह क्रियानय से मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! क्योंकि आत्मा वह कहीं रागस्वरूप नहीं। भगवान तो ज्ञानस्वरूप है। उस ज्ञानस्वरूप में वास्तव में यह ज्ञात होता है। वह सब वस्तु

को जानता है न ? वह तो ज्ञान की सत्ता में ज्ञात होता है। वह राग है, उसका भी ज्ञान, ज्ञान की सत्ता में राग का ज्ञान होता है। समझ में आया ? चैतन्यसत्ता, उसमें यह... यह... यह... ऐसा जो ज्ञात होता है, वह जाननेवाला जानता है। उस क्रिया में, राग में आत्मा आता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा, उसकी चैतन्यसत्ता स्थल में चैतन्यसत्ता के स्थल में यह सब ज्ञात होता है, वह जाननेवाला जानता है। उसे आत्मा के भान बिना उस क्रिया का राग है, वह भी ज्ञान में ज्ञात होता है। ज्ञान की सत्ता के स्थल में राग है, वह ज्ञात होता है। वह राग भिन्न ज्ञेयरूप से ज्ञात होता है। और वास्तव में तो उस राग का ज्ञान वह ज्ञान का ज्ञान है। समझ में आया ? आहाहा ! उसे ऐसा न जानकर मात्र क्रियाकाण्ड जो व्रत, नियम, भक्ति और पूजा, उसके पक्षपाती उसमें मग्न हैं। वे क्रिया के प्रतिपालन में तत्पर हैं। '**पराः**' उसमें वे तत्पर हैं। आहाहा ! भगवान ज्ञानस्वरूपी चैतन्य, जिसके स्थल में ज्ञान भरा है, आनन्द भरा है, उस राग की क्रिया का भी ज्ञान यहाँ है। उसे न जानकर राग की क्रिया में धर्म मानकर मिथ्यादृष्टि पर में तत्पर है। आहाहा ! ऐसी बात है।

जो कोई अज्ञानी जीव वे भी धार में डूबे हैं। धार को हिन्दी में क्या कहते हैं ? पानी ? पानी की धार ? प्रवाह। **धार में डूबे हैं।** आहाहा ! उसमें—धार में डूबे हुए हैं, ऐसा है। गुजराती में क्या किया है ? (पानी के पूर में डूबे हुए हैं) । बराबर है, बराबर। धार अर्थात् पानी के पूर में डूब जाते हैं। धार में मग्न। क्रियाकाण्ड में मग्न हैं, वे ज्ञान वे संसार में डूबे हुए पड़े हैं, ऐसा कहते हैं। वह क्रिया का राग है, वही संसार है, ऐसा कहना है। वे संसार में डूबे हैं, इसका अर्थ यह। जितना क्रियाकाण्ड दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का शुभभाव है, वह संसार है। वे संसार में डूबे हैं, ऐसा कहना है। समझ में आया ? आहाहा !

अशुभभाववाले वे जैसे संसार में डूबे हैं, वैसे शुभभाव, वह संसार है। आहाहा ! वे भी संसार में डूबे हैं, ऐसा कहना है। संसार से तिरने का उपाय क्या है, उसे जानते नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। अभी पूरा विवाद यह उठाते हैं। क्रियाकाण्ड है, वह निश्चय का कारण है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं, यह व्यवहार है, वह संसार में डूबनेवाला है। क्योंकि वह राग स्वयं संसार है। भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप

है। उससे भिन्न चीज़ राग है। तो जब यह मुक्तस्वरूप है तो राग संसारस्वरूप है। समझ में आया? ऐसी यह सूक्ष्म बात है। पुण्य-पाप अधिकार के अन्तिम कलश हैं न! आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है - संसार में रुलेगा,... वह क्रियाकाण्डी धर्म माननेवाला और उसमें मग्न है, वह मोक्ष से दूर है। **मोक्ष का अधिकारी नहीं है।** आहाहा! व्रत पाले, आजीवन ब्रह्मचर्य पाले, सत्य बोले, चोरी न करे, परिग्रह न रखे, वस्त्र का टुकड़ा भी न रखे। समझ में आया? ऐसी जिसकी रागमन्दता की शुभ की क्रिया, वह शुभ (करनेवाले) स्वयं संसार में डूबे हैं। आहाहा! संसार के पार अन्दर मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा है। जिसमें वह राग है, उसमें वह राग है, ऐसा राग जानता है? संसार राग है, वह राग नहीं जानता। आहाहा! जिसकी सत्ता-स्थल में राग का भी ज्ञान अपना ज्ञान है, उसे जानता है। आहाहा! बहुत जगह अकेले राग में मग्न होकर पड़े हैं। आहाहा! वे संसार के प्रवाह में डूबे हैं।

किस कारण से डूबे हैं? 'यत् ज्ञानं न जानन्ति' जिस कारण शुद्ध चैतन्यवस्तु... भगवान शुद्ध चैतन्यवस्तु राग से भिन्न है। आहाहा! ज्ञान का अर्थ किया। ज्ञान का अर्थ यह-शुद्ध चैतन्यवस्तु। आहाहा! शुद्ध चैतन्यवस्तु को जानते नहीं और मात्र क्रियाकाण्ड में लवलीन हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसे लेख तो इसमें स्पष्ट पड़े हैं। **शुद्ध चैतन्यवस्तु का प्रत्यक्षरूप से आस्वाद करने को समर्थ नहीं हैं...** आहाहा! इस राग की क्रिया में मग्न और इस राग की क्रिया में तत्पर हैं, वे शुद्ध चैतन्यवस्तु का आस्वाद लेने में असमर्थ हैं। वे राग का आस्वाद लेते हैं। आहाहा! वे संसार का आस्वाद लेते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

प्रत्यक्षरूप से आस्वाद... ज्ञान की व्याख्या शुद्ध चैतन्यवस्तु (की)। '**न जानान्ति**' का अर्थ **प्रत्यक्षरूप से आस्वाद करने को समर्थ नहीं हैं...** भाषा देखो! अकेला '**न जानन्ति**' ऐसा नहीं। यह '**न जानन्ति**' का अर्थ और ज्ञान का अर्थ। ज्ञान अर्थात् शुद्ध चैतन्य पदार्थ वस्तु। '**न जानन्ति**' का अर्थ—निज आनन्दस्वरूप का स्वाद लेने में असमर्थ है। ऐसी बात है। अभी कोई कहता था, यह बडोदरा में कुछ अखबार में आया है। एक ४५ वर्ष का सिन्धी... सिन्धी है। बहुत बड़ा... क्या कहलाये? इंजीनियर। इंजीनियर न? बड़ा

इंजीनियर था। विदा करने के लिये सबने भाषण दिया और बहुत विदाई के लिये मान (दिया)। वह स्वयं खड़ा हुआ। एक शब्द जहाँ बोला, हार्टफेल। ४५ वर्ष का सिन्धी। उसमें आया है, कहते हैं। मुम्बई समाचार में (आया है)। यह लड़के कहते थे। हम कहाँ वाँचने जाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... समाचार सब आ जाते।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ आ जाये। लड़के सवेरे कहते थे कि ऐसा एक लड़का २५ वर्ष का। ४५ वर्ष की उम्र, सिन्धी को मान दिया, बड़ा इंजीनियर। वहाँ से विदाई करके कहीं जाता होगा। यह मरण की विदाई हो गयी। आहाहा! पक्की विदाई हो गयी। आहाहा! अरे प्रभु! अन्दर चैतन्य का नाथ है। उसकी तो खबर नहीं होती और बाहर के क्रियाकाण्ड में लवलीन। आहाहा! यह तो वहाँ सब अशुभ क्रिया थी। मान और सन्मान में प्रसन्न-प्रसन्न हो। आहाहा! वह तो अशुभ-पाप के परिणाम में मग्न। वह तो गहरे संसार में डूबे हुए हैं। सेठ को अभिनन्दन दिया, सेठ ने इनकार किया।

मुमुक्षु : बाहर में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में जहर है। बाहर में कहाँ है? आहाहा! एक यहाँ बहिन में है। १४९ पृष्ठ पर (वचनामृत ४०१)। **ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप सन्मुख ढल रहा है।** आहाहा! अज्ञानी शुभाशुभराग में ढल रहा है। धर्मी का परिणमन विभाव से विमुख होकर... यह भी कल कहा था, विभाव सीमावाली चीज़ है, मर्यादित है। भाई! इसलिए विमुख हुआ जा सकता है। आहाहा! **ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है।** अन्दर में स्थिर हो जाने को तरसता है। आहाहा! पुस्तक सेठ न रखी लगती है। यहाँ अभी ॐ किया था। १४९ (पृष्ठ) है न?

यह विभावभाव हमारा देश नहीं... यह पुण्य के क्रियाकाण्ड में बाहर आना, वह भी आत्मा का देश नहीं। आहाहा! **परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे?** आहाहा! शान्तिभाई! यह तो अभी तो... अरर्र! सागर छोड़कर परदेश में गये। आत्मसागर। सेठ! आत्मा गुण का सागर, उसे छोड़कर परदेश में गया। यह तुम्हारे सागर का आया। **हम कहाँ आ**

पहुँचे ? हमको यहाँ अच्छा नहीं लगता। आहाहा! इस राग में अच्छा नहीं लगता, प्रभु! राग तो दु:खरूप है। आहाहा! **यहाँ हमारा कोई नहीं है।** इस राग में, बाह्य क्रियाकाण्ड में आत्मा—हमारा कोई नहीं। आहाहा!

जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादिरूप अनन्त गुणरूप हमारा परिवार है... लो, यह परिवार, सेठ! तुम्हारे सब परिवार—भगवानदास बड़े भाई और फलाना, वह परिवार यहाँ नहीं, कहते हैं। आहाहा! **ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादिरूप अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है।** है ? आहाहा! **अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।** आहाहा! **अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर...** हमें त्वरा से हमारा मूल वतन। वतन अर्थात् देश। वतन समझे ? देश घर। हमारे मूल घर में **जाकर आराम से बसना है जहाँ सब हमारे हैं।** आहाहा! आनन्द, ज्ञान आदि हमारे हैं, वहाँ बसना है। राग, वह हमारा नहीं। आहाहा! यह १४९ पृष्ठ पर है।

मुमुक्षु : कहाँ रहता है यह जीव ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परदेश में मुफ्त में भटकता है। राग में रहे वह परदेश में भटकता है। आहाहा! अपना भगवान, अनन्त गुण का सागर भगवान, वह देश में बसता नहीं और यहाँ बसकर मानता है कि हम सुखी हैं। आहाहा! क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : यह आत्मा में कहाँ बसता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न। आहाहा! श्रीमद् में नहीं आता ? 'हम परदेसी पंखी साधु, आ रे देशना नाहि रे। हम परदेसी पंखी साधु...' रागादि देश के हम नहीं। आहाहा! तो फिर काठियावाड़, सागर और सोनगढ़ और राजकोट (तो कहीं रह गये)। आहाहा! स्वदेश-चिदानन्द भगवान आत्मा, आहाहा! है, जिसमें बसने से आनन्द आवे और अपना परिवार वहाँ मिले। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, क्रियानयवाले तो परदेश में भटकते भ्रम रहे हैं। आहाहा! एक बात। **क्रियामात्र मोक्षमार्ग ऐसा जानकर क्रिया करने को तत्पर है।** आहाहा! व्रत और नियम, संयम और तप, प्रायश्चित और बाहर का क्रियाकाण्ड। आहाहा! लोगों को कठिन

काम पड़ता है। **क्रियामात्र मोक्षमार्ग ऐसा जानकर क्रिया करने को तत्पर है।** एक बात यह। अब दूसरी बात।

'ज्ञाननयैषिणः अपि मग्नाः' शुद्ध चैतन्यप्रकाश, उसका पक्षपात... मात्र बात में लेते हैं कि मैं शुद्ध चैतन्य हूँ और शुद्ध हूँ। ऐसा भाषा में है, परन्तु अन्दर में सन्मुख जाना, वह नहीं। अकेली ज्ञान की बातें करनेवाले। आहाहा! समझ में आया? **'ज्ञाननयैषिणः'** ज्ञान के पक्षपाती। अनुभव नहीं, दृष्टि नहीं, वेदन नहीं। मात्र ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान करे। स्वच्छन्दी होकर विषय-कषाय को सेवन करे वह **'ज्ञाननयैषिणः'** भी डूबे हुए हैं। आहाहा!

देखो न! छोटी-छोटी उम्र के चले जाते हैं। क्षण में कब देह छूटेगी, उसकी इसे खबर नहीं। इस स्थिति में मनुष्य खड़ा होगा। लोगों ने महिमा की होगी। बड़ा इंजीनियर। उसे खबर होगी कि अभी देह छूट जायेगी? आहाहा! जाओ! मनुष्यपना हार गया। आहाहा! कब अब मनुष्यपना मिले? भाई! बापू!

यहाँ कहते हैं, क्रियानय में डूबे हुए हैं, वे संसार की धार में, (पानी में) जाल में डूबे हैं और अकेली ज्ञान की बातें करके ज्ञान की रुचि और अनुभव नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? और **'ज्ञाननयैषिणः'** कहा न? शुद्ध चैतन्यमात्र का पक्षपात। नय का अर्थ ऐसा किया। **उसके अभिलाषी हैं। भावार्थ इस प्रकार है - शुद्ध स्वरूप का अनुभव तो नहीं है,...** आहाहा! **परन्तु पक्षमात्र बोलते हैं।** आहाहा! **ऐसे भी जीव... 'मग्नाः' संसार में डूबे ही हैं।** आहाहा!

कैसे होकर डूबे ही हैं? 'यत् अतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः' जिस कारण अति ही स्वेच्छाचारपना है... स्वेच्छाचारी। मान और सन्मान को लेने के लिये स्वेच्छाचारी (हुए हैं)। आहाहा! ज्ञान की बातें करके दुनिया से, हम ज्ञानी हैं — ऐसा मान लेने को स्वेच्छाचारी जीव है। समझ में आया? **अति ही स्वेच्छाचारपना है, ऐसा है...** स्व इच्छा प्रमाण वर्ते, बस। खाना-पीना, लहर करना। आहाहा! हम ज्ञानस्वरूप हैं, हमारे क्या है? हमको बन्धन नहीं। मर जायेगा, भाई! यह कहीं पोपाबाई का राज नहीं। आहाहा! ज्ञानमात्र का नाम लेकर स्वेच्छाचारीरूप से वर्ते और हम ज्ञानी हैं, ऐसा नाम धरावे। आहाहा! वे डूबे हुए हैं। आहाहा! बहुत अच्छा कलश है। आहाहा!

शुद्ध चैतन्यस्वरूप का विचारमात्र भी नहीं करते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य, उस ओर के झुकाव का विचार भी नहीं और बाहर के झुकाव में स्वेच्छाचारीरूप से वर्तते हैं। सामने में हमको दूसरे मान कैसे दे? हम ज्ञानी हैं, हम बहुत पढ़े हैं। आहाहा! और स्वेच्छाचारी मान में पोषित होते हैं, वे मरते हैं, कहते हैं। श्रीमद् में आता है न?

कोई क्रियाजड़ हो रहे शुष्क ज्ञान में कोई,
माने मारग मोक्ष का, करुणा उपजे जोई।

'कोई क्रियाजड़ हो रहे...' शुभपरिणाम की क्रिया में जड़ जैसे हुए। आहाहा! 'शुष्क ज्ञान..' ज्ञान की रूखी बातें करे। अन्तर में रुचि नहीं, परिणमन नहीं, ज्ञान के आनन्द का स्वाद नहीं और उस ओर के झुकाव की दशा नहीं। आहाहा! और मान के लिये सब ज्ञान की (बातें करे), आहाहा! वे भी धार में डूबे हैं। पानी के प्रवाह में डूबे हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई!

मन्द उद्यम की व्याख्या की। पहले अति स्वच्छन्द की व्याख्या (की)। अति स्वच्छन्दी स्वेच्छाचारी। जैसे अपने को रुचे वैसा काम करे। आहाहा! अति स्वच्छन्द और मन्द उद्यम। स्वरूप सन्मुख का जो पुरुषार्थ चाहिए, आनन्द की ओर का झुकाव छोड़कर अति स्वच्छन्दी हो रहे हैं। **ऐसा जो कोई है उन्हें मिथ्यादृष्टि जानना।** वे भी मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! ज्ञानी नाम धराकर विषय सेवन करना, कषाय सेवन करना, मान सेवन करना... आहाहा! वह भी संसार के प्रवाह में डूबे हैं। प्रवाह में डूबे अर्थात् अब उसे एक के बाद एक भव होंगे। आहाहा!

यहाँ कोई आशंका करता है... आशंका, हों! शंका नहीं। आप क्या कहते हो, वह मैं समझ सकता नहीं। तुम्हारा झूठा है, ऐसा नहीं। आशंका है। **शुद्ध स्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग ऐसी प्रतीति करने पर मिथ्यादृष्टिपना क्यों होता है?** शुद्ध स्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग, ऐसी प्रतीति करने से मिथ्यादृष्टिपना कैसे होता है? आशंका है।

समाधान। **वस्तु का स्वरूप इस प्रकार है...** देखो! न्याय देंगे। **वस्तु का स्वरूप इस प्रकार है कि जिस काल शुद्ध स्वरूप का अनुभव है उस काल...** अशुद्धता नहीं। **अशुद्धतारूप है जितनी भाव-द्रव्यरूप क्रिया उतनी सहज ही मिटती है।** आहाहा!

अशुद्धपने की क्रिया—मान, सम्मान, खाना-पीना आदि का भाव... आहाहा! वह स्वरूप के अनुभव में वह क्रिया मिट जाती है। आहाहा! समझ में आया? उस काल में अशुद्धपना रहता ही नहीं। भाव और द्रव्य क्रिया, दोनों, हों! आहाहा! परिणाम विकल्प और जड़ की क्रिया दोनों रुक जाते हैं। आहाहा! **उतनी सहज ही मिटती है।** सहज ही मिटते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि जितनी क्रिया जैसी है वैसी ही रहती है,... अशुद्धपना तो जितना है, वह भले रहो। हम तो ज्ञानस्वरूपी हैं, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया? **जितनी क्रिया जैसी है वैसी ही रहती है, शुद्धस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है...** हमारा तो शुद्ध का अनुभव, वह मोक्षमार्ग है, अशुभ भले जितना है, उतना रहे। परन्तु ऐसा रह सकता ही नहीं। शुद्ध स्वरूप के अनुभव में अशुद्धता का भाव रह सकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग।

सो वस्तु का स्वरूप ऐसा तो नहीं है। इससे जो ऐसा मानता है, वह जीव मिथ्यादृष्टि है, वचनमात्र से कहता है कि शुद्धस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है... वचनमात्र से कहे कि शुद्ध स्वरूप अनुभव (मोक्षमार्ग है)। ज्ञायकभाव, आत्मा ज्ञायक है, आत्मा ज्ञायक है, आत्मा ज्ञायक है। परन्तु ज्ञायक है वह क्या? ज्ञायक की ओर का झुकाव नहीं, वेदन नहीं और ज्ञायक... ज्ञायक करता है, ज्ञायक तुझे आया कहाँ से? समझ में आया? **वचनमात्र से कहता है कि शुद्धस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है; ऐसा कहने से कार्यसिद्धि तो कुछ नहीं है।** आहाहा! शुद्धस्वरूप अनुभव—ऐसा बोले परन्तु शुद्धस्वरूप के अनुभव की ओर का झुकाव तो नहीं। आहाहा! और पर में स्वच्छन्दीरूप से पुण्य-पाप के परिणाम में मग्न रहता है और मानता है कि हमारा मोक्ष होगा। आहाहा! समझ में आया?

शास्त्र में ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु कहा है। इसलिए हमारे भोग होता है। अरे! मर जायेगा, सुन न! वह तो किस अपेक्षा से कहा है? आहाहा! शुद्ध चैतन्यस्वरूप के दृष्टि के जोर से जिसे राग की एक समय की पर्याय की गिनती नहीं और उसका बन्ध भी अल्प स्थिति, रसवाला है। ऐसा गिनकर भोग निर्जरा का हेतु कहा है। भोग निर्जरा का हेतु है? तो भोग छोड़कर चारित्र ले क्यों? आहाहा! समझ में आया? शास्त्र को पकड़कर अपना

स्वच्छन्द पोषे। ऐसा नहीं चलता, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! आहाहा! वचनमात्र से कहते हैं। **ऐसा कहने से कार्यसिद्धि तो कुछ नहीं है।** आहाहा! यह दो बातें आयी। क्रियानय और ज्ञाननय के पक्षवाले। दोनों डुबनेवाले हैं। आहाहा!

अब तीसरा सम्यग्ज्ञानी। **'ते विश्वस्य उपरि तरन्ति' ऐसे जीव सम्यग्दृष्टि हैं जो कोई, वे कहे हैं जो दोनों जाति के जीव उन दोनों के ऊपर होकर,...** आहाहा! समझ में आया? राग को भी धर्म माने नहीं और ज्ञान में स्वेच्छाचारीरूप से रहे नहीं। आहाहा! **'ते विश्वस्य उपरि तरन्ति' दोनों जाति के जीव उन दोनों के ऊपर होकर,...** आहाहा! अर्थात् उससे रहित। **सकल कर्मों का क्षय कर मोक्षपद को प्राप्त होते हैं।** आहाहा! **कैसे हैं वे? 'ये सततं स्वयं ज्ञानं भवन्तः कर्म न कुर्वन्ति प्रमादस्य वशं जातु न यान्ति'** दोनों बातें ली, देखो! आहाहा! **जो कोई निकट संसारी सम्यग्दृष्टि जीव...** आहाहा! **निरन्तर (स्वयं) शुद्धज्ञानस्वरूप परिणमते हैं,...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव **'सततं'** निरन्तर **'स्वयं ज्ञानं'।** स्वयं का अर्थ—व्यवहार के राग की अपेक्षा बिना। **'स्वयं ज्ञानं भवन्तः'** आहाहा! शुद्धस्वरूप परिणमते हैं। **'भवन्तः'** का अर्थ किया। ज्ञान का अर्थ शुद्ध स्वरूप। ज्ञान शुद्धस्वरूप।

'कर्म न कुर्वन्ति' अनेक प्रकार की क्रिया को मोक्षमार्ग जानकर नहीं करते हैं.... अनेक प्रकार की क्रिया को मोक्षमार्ग जानकर करते नहीं। राग आता है, परन्तु मोक्षमार्ग जानकर उसे करते नहीं। आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है - जिस प्रकार कर्म के उदय में शरीर विद्यमान है...** देखो! शरीर विद्यमान है, उसका किस प्रकार से ज्ञानी निषेध कर सकता है? शरीर है, हो, मुझमें नहीं। विद्यमान है तो है, हेयबुद्धि है। आहाहा! **पर हेयरूप जानते हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकार की क्रियायें विद्यमान हैं...** आहाहा! धर्मी को भी ऐसे शुभभाव आते हैं। समझ में आया? जैसे शरीर विद्यमान है, वह हेय है, वैसे शुभ की क्रिया आती है, विद्यमान है परन्तु हेय है। आहाहा! ऐसी बात है।

अनेक प्रकार की क्रियायें विद्यमान हैं... हो। भक्ति, पूजा, दान, दया के विकल्प आते हैं, हो। जैसे शरीर विद्यमान है तथापि वह हेय है। उसी प्रकार अनेक प्रकार की क्रिया विद्यमान है, तथापि हेय है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत (सूक्ष्म)। ज्ञानक्रियाभ्याम

मोक्ष, यह। अन्तर की ज्ञानदशा और उसमें अशुद्धता का अभाव, वह ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष है। अकेली राग की क्रिया मोक्ष नहीं। अकेले ज्ञान के जानपने से मोक्ष नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानानन्द प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा जो सत् शाश्वत ज्ञानस्वरूप, त्रिकाल रहनेवाला है तो त्रिकाली दृष्टि करे तो वर्तमान दृष्टि करे, उसमें त्रिकाली आ जाता है। वस्तु है न त्रिकाली? तो त्रिकाली लम्बी दृष्टि करे तो वह त्रिकाली दृष्टि में ऐसा है? आहाहा! वह तो वर्तमान में ही ध्रुव है, उसके ऊपर दृष्टि करने से त्रिकाली तत्त्व दृष्टि में आ गया। समझ में आया? तीन काल में टिकता तत्त्व है इसलिए त्रिकाली लम्बी दृष्टि करे तो त्रिकाली को पकड़ सके, ऐसा है? आहाहा!

भगवान पूर्णानन्द का नाथ तो एक समय में वर्तमान है। उसे अनुभव करते हुए, पकड़ते हुए... आहाहा! अशुद्ध क्रिया का वहाँ भाव हो, परन्तु हेय है। समझ में आया? आहाहा! **उसी प्रकार अनेक प्रकार की....** उसी प्रकार अर्थात्? शरीर की भाँति। **जिस प्रकार कर्म के उदय में शरीर विद्यमान है, पर हेयरूप जानते हैं, उसी प्रकार...** उसी प्रकार। आहाहा! शरीर है, उसका करना क्या? वह तो जड़ है, हो। आहाहा! देखो न! दृष्टान्त देकर सिद्ध (करते हैं)। जैसे शरीर है, वह हेय है, उसी प्रकार पर्याय में अनेक प्रकार का शुभराग आदि होता है, तथापि हेय है। उसमें मिठास नहीं। आहाहा! वह तो दुःख का स्वाद है, हेय है। आहाहा! समझ में आया? **विद्यमान हैं पर हेयरूप जानते हैं।** देखो! राग आता है परन्तु हेयरूप जानते हैं। आहाहा! अपना आनन्दस्वरूप प्रभु, वह एक ही उपादेय है। बाकी शुभक्रिया मात्र आती है, होती तो है, जब तक (पूर्ण) वीतराग न हो तब तक। परन्तु धर्मी उन्हें हेय मानता है। अज्ञानी उन्हें उपादेय मानता है तो आत्मा को हेय मानता है। आहाहा! अभी इस बात की गड़बड़ी बहुत हो गयी। कोई कुछ माने, कोई कुछ माने, कोई कुछ माने। आहाहा!

वे तो गुजर गये बेचारे। भिण्ड के एक थे न? नन्दलाल ब्रह्मचारी थे। भिण्ड... भिण्ड। सात प्रतिमा थी। यहाँ आये थे। समयसार की बातें करे। एकबार रात्रि में पानी पीते थे। सात प्रतिमा नाम धरावे। यह तो नहीं इसलिए, हों! वरना हो उसे नहीं कहा जाता।

कमरा है न उस ओर ? उस कमरे में रात्रि में (पानी पीते थे)। सात प्रतिमा नाम धरावे और समयसार वाँचे। लोग इतने अधिक इकट्ठे नहीं होते, ऐसा कहते थे। हम वाँचें तो तीन-चार लोग इकट्ठे हों। और आप वाँचते हो तो इतने अधिक लोग समयसार को (सुनते हैं ?) वह रात्रि में पानी की जरा खखडाट करते थे। कुंजा में पानी हो न, कुंजा में। यह और हमारे शान्तिभाई साथ में थे न ? शान्तिभाई वनमाली। उन्हें खबर पड़ी तो कहा खड़खड़ाना नहीं। देख लिया कि यह पानी पीते हैं। अरे ! रात्रि में पानी ! सात प्रतिमा नाम धारे। वे सब शुष्क बातें करनेवाले।

रात्रि में आहार-भोजन का वास्तव में तो मेरे हिसाब से तो नामधारी जैन को भी रात्रिभोजन नहीं हो सकता। क्योंकि उसमें जीवांत, छोटे-छोटे कढ़ी में, खिचड़ी में, दूध में बारीक जीवांत पड़ती है। समझ में आया ? प्रतिमाधारी नाम धराकर रात्रि में पानी पीना... अरर ! नाम धरावे वापस ज्ञानी, समयसार के जाननेवाले। वापस भजन ऐसे बनावे। गुजर गये बेचारे। (संवत्) १९९९ के वर्ष में आठ दिन रहे थे। तब शान्तिलाल ने देख लिया कि यह तो पानी पीते हैं। कुंजा उघाड़ा तो खड़खड़ाहट हो न। महाराज सो रहे हैं तो खड़खड़ाहट करना नहीं, ऐसा करके (कहा)। अभी क्या करते हो ? ऐसा कुछ नहीं बोले। परन्तु खड़खड़ाहट करना नहीं। आहाहा ! लोगों को ज्ञान के नाम से वापस स्वच्छन्द सेवन करना, रात्रि में आहार-पानी करना, अनेक प्रकार की विषयवासना सेवन करना और मानो कि हम ज्ञानी हैं। ऐसा होगा ? मार्ग यह नहीं होता। समझ में आया ?

सम्यग्ज्ञान दीपिका न ? उसमें से उन लोगों ने तकरार ली है न ? धर्मदास क्षुल्लक, यह सोगनढ़वालों ने छपाया है, देखो ! परस्त्री परपुरुष को भोगे तो भी पाप नहीं, ऐसा ये कहते हैं। अरे प्रभु ! क्या कहता है तू यह ? यह तो क्षुल्लक का लिखा हुआ है, हमारा सोनगढ़ का नहीं। तथापि क्षुल्लक का कहने का आशय दूसरा है। आहाहा ! यह आशय न लेकर स्वच्छन्द से उनकी बातें ले। अरेरे ! वह यहाँ के सिर पर डाला। सोनगढ़वालों ने छपाया इसलिए सोनगढ़वाले व्यभिचार में पाप नहीं मानते। अरर ! यहाँ तो गुण-गुणी के भेद का विकल्प, वह भी पाप है। शुभभाव है, वह निश्चय से तो पाप है। आहाहा ! अरेरे ! स्वस्त्री का भोग पाप, उसके बदले परपुरुष और परस्त्री की बात क्या करना ? वह तो

अनीति के पाप में (जाता है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : लौकिक नीति ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक नीति नहीं। अरे! बापू! भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **क्रियायें विद्यमान हैं पर हेयरूप जानते हैं। 'प्रमादस्य वशं जातु न यान्ति' क्रिया तो कुछ नहीं - ऐसा जानकर...** देखो! शुभभाव क्या है, ऐसा जानकर **विषयी-असंयमी भी कदाचित् नहीं होते,...** वापस विषय लेकर असंयमी भी नहीं होते। विषय सेवो चाहे जो। क्योंकि पुण्य के परिणाम हों तो भी वे हैं और पाप के परिणाम हों तो भी वे हैं। ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! शास्त्र में ऐसा आता है न? कि पुण्य और पाप में विशेषता जाने, वह घोर संसार में भटकता है। तो फिर पुण्य हो या पाप हो, ऐसा नहीं। आहाहा! वह तो किस अपेक्षा से कहा? आहाहा! व्यवहार से शुभ में, पाप से अशुभभाव से बचता है। यह तो बन्ध की अपेक्षा से दोनों समान हैं। परन्तु ऐसा नहीं मानकर फिर शुभ छोड़कर अशुभ सेवन करना, (ऐसा नहीं है)। मर जायेगा तू, भाई! ज्ञान के नाम से। आहाहा!

यहाँ तो दोनों बातें ली हैं। कियानयवाले और अकेले ज्ञान के पक्षवाले। आहाहा! और तीसरा यह। तीन... तीन। **'विश्वस्य उपरि तरन्ति'।** राग की क्रिया का स्वामित्व नहीं रहता। राग को हेय मानता है और स्वरूप का उद्यम-प्रयत्न है। आहाहा! तथा स्वच्छन्दी होकर अशुभ सेवन करे, ऐसा तो नहीं। आहाहा! समझ में आया? **असंयमी भी कदाचित् नहीं होते,...** विषयी सेवनवाले (होते नहीं)। **क्योंकि असंयम का कारण तीव्र संक्लेशपरिणाम है,...** लो! विषय कषाय के परिणाम, असंयम के परिणाम तीव्र संक्लेश परिणाम हैं। **सो तो संक्लेश मूल ही से गया है।** मूल में से अशुभ तो गया ही है। ऐसा कहते हैं। मुनि की मुख्य बात है।

ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव वे जीव तत्काल मात्र मोक्षपद को पाते हैं। आहाहा! निजस्वरूप का आश्रय लेकर आनन्द का स्वाद लेते हैं और राग का भाव होने पर भी उसे हेय जानते हैं। और स्वच्छन्दीपना करते नहीं। वे तत्काल अल्पकाल में केवलज्ञान लेकर मोक्ष पायेंगे। आहाहा! समझ में आया? **मूल ही से गया है। ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव...**

विशेष मुनिपना का (कहते हैं)। चौथे गुणस्थान में संक्लेश परिणाम अशुभ होते हैं, परन्तु हेय मानता है। दु:खरूप मानता है। विषय सेवन में मजा है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा! आसक्ति का भाव समकिती को भी आता है, परन्तु वह मानता है कि यह दु:खरूप है। काला नाग देखे, वैसे अशुभ परिणाम को काला नाग देखता है। आहाहा! अज्ञानी अशुभ परिणाम में मजा मानता है। विषयभोग, इज्जत, कीर्ति, मान-सन्मान में मिठास। मिठास... मिठास (लगती है)। आहाहा! ज्ञानी को उस शुभपरिणाम का तो त्याग है, अशुभ परिणाम भी उसे स्वच्छन्द से करने का त्याग है। समझ में आया? आहाहा! १११ (कलश पूरा) हुआ। अब पुण्य-पाप का अन्तिम श्लोक है।

कलश-११२

(मन्दाक्रान्ता)

भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्धमारब्धकेलि।
ज्ञानज्योति:कवलिततम: प्रोज्जजृम्भे भरेण।।13-112।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'ज्ञानज्योति: भरेण प्रोज्जजृम्भे' [ज्ञानज्योति:] शुद्धस्वरूप का प्रकाश [भरेण] अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य के द्वारा [प्रोज्जजृम्भे] प्रगट हुआ। कैसा है? 'हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धं आरब्धकेलि' [हेला] सहजरूप से [उन्मीलत्] प्रगट हुए [परमकलया] निरन्तरपने अतीन्द्रिय सुखप्रवाह के [सार्द्धं] साथ [आरब्धकेलि] प्राप्त किया है परिणमन जिसने, ऐसा है। और कैसा है? 'कवलिततम:' [कवलित] दूर किया है [तम:] मिथ्यात्व-अन्धकार जिसने, ऐसा है। ऐसा जिस प्रकार हुआ है, उस प्रकार कहते हैं — 'तत्कर्म सकलमपि बलेन मूलोन्मूलं कृत्वा' [तत्] कही है अनेक प्रकार [कर्म] भावरूप अथवा द्रव्यरूप क्रिया — [सकलं अपि] पापरूप अथवा पुण्यरूप — (उसे) [बलेन] बलजोरी से [मूलोन्मूलं कृत्वा] जितनी क्रिया है, वह सब मोक्षमार्ग नहीं है — ऐसा जान, समस्त क्रिया में ममत्व का त्याग कर, शुद्धज्ञान मोक्षमार्ग है, ऐसा सिद्धान्त सिद्ध

हुआ। कैसा है कर्म? 'भेदोन्मादं' [भेद] शुभक्रिया मोक्षमार्ग, ऐसा पक्षपातरूप भेद, (अन्तर) उससे [उन्मादं] हुआ है गहिलपना (पागलपना) जिसमें, ऐसा है। और कैसा है? 'पीतमोहं' [पीत] निगला है [मोहं] विपरीतपना जिसने, ऐसा है। जैसे—कोई धतूरा का पान कर गहिल होता है, ऐसा है पुण्यकर्म को भला मानता है। और कैसा है? 'भ्रमरसभरात् नाटयत्' [भ्रम] धोखा, उसका [रस] अमल, उसका [भरात्] अत्यन्त चढ़ना, उससे [नाटयत्] नाचता है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार कोई धतूरा पीकर, सुध जाने पर नाचता है; उसी प्रकार मिथ्यात्वकर्म के उदय में शुद्धस्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट है। शुभकर्म के उदय से जो देव आदि पदवी, उसमें रंजायमान होता है कि मैं देव, मेरे ऐसी विभूति, सो तो पुण्यकर्म के उदय से ऐसा मानकर, बार-बार रंजायमान होता है।।13-112।।

कलश - ११२ पर प्रवचन

भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्धमारब्धकेलि।
ज्ञानज्योति:कवलिततम: प्रोज्जजृम्भे भरेण।।13-112।।

इसमें क्या कहा है? अन्तिम है न? अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि अंश, जो 'सर्व गुणांश समकित' है न? इसलिए सब जो व्यक्त सम्यग्दर्शन में अनन्त गुण का अंश आया है, उसके साथ केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा करता है। इसमें शब्द डाला है। दर्शनादि अंश है न? अंश। सर्व गुणांश वह समकित। अर्थात् ज्ञानादि एकदेश व्यक्त हुए हैं, उनसे केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा करता है। ऐसा शब्द इसमें से निकलता है। संस्कृत है। क्या कहा यह?

आत्मा में जब सम्यग्दर्शन होता है, तब अनन्त गुण का एक अंश व्यक्तरूप से वेदन में आता है। जितने गुण संख्या से हैं... समझ में आया? मुझे तो एकदेश और सर्व गुणांश, वह समकित के साथ (मिलाना है)। संस्कृत टीका में है। इस कलश की संस्कृत टीका में है। क्या कहते हैं? कि अन्तर में जब आत्मा सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुआ तो उसी समय जितनी संख्या में गुण हैं, उनका एक अंश—सर्व गुणों का एक अंश व्यक्त अनुभव में आता

है। सर्व गुण का एक अंश व्यक्त—प्रगट है। और धर्मी, वे सर्व गुण जो व्यक्त हैं, उस कला के कारण केवलज्ञान की कला प्रगट करने में उसका उद्यम है। समझ में आया? शुभराग से होता है, यह प्रश्न तो छूट गया। आहाहा!

निज स्वभाव... आहाहा! जितनी संख्या में गुण हैं, उतनी संख्या में उस गुण की व्यक्तता का एक अंश सम्यग्दर्शन में प्रगट होता है। श्रीमद् ने ऐसा कहा, सर्व गुणांश वह समकित। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में यह लिया, ज्ञानादि एकदेश चौथे गुणस्थान में होते हैं। केवलज्ञान में ज्ञानादि सम्पूर्ण देश होते हैं। यहाँ क्या कहना है? यहाँ, केली करता है, ऐसा लिया है न? **'परमकलया'।** केवलज्ञान के साथ वह क्रीड़ा करता है। अर्थात् आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य का अनुभव दृष्टि में हुआ तो जितनी संख्या में गुण हैं, वे अंश में व्यक्त हो गये। वह अंश कला जो है, वह पूर्ण कला के साथ क्रीड़ा करती है। पूर्ण कला को प्राप्त करने के प्रयत्न में है। समझ में आया? यह वाँचा था उसमें एक बार तब लिखा था। यह अभी नहीं लिखा। उस दिन वाँचा तब लिखा था। परन्तु आज तो बराबर यह आया। यह दर्शनादि अंश उसमें कहते हैं। आहाहा!

खण्डान्वयसहित अर्थ - 'ज्ञानज्योतिः भरेण प्रोज्जजृम्भे' शुद्धस्वरूप का प्रकाश... 'ज्ञानज्योतिः' का अर्थ। भगवान शुद्ध स्वरूपी ज्ञानप्रकाश। **'भरेण' अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य के द्वारा...** आहाहा! **प्रगट हुआ। कैसा है? 'हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धं आरब्धकेलि'** आहाहा! **'हेला' सहजरूप से... 'उन्मीलत्' प्रगट हुए... 'परमकलया' निरन्तरपने अतीन्द्रिय सुखप्रवाह के साथ प्राप्त किया है परिणमन जिसने, ऐसा है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव **'परमकलया'** केवलज्ञान, अनन्त आनन्द आदि जो कला, उसके साथ जिसने क्रीड़ा की है। अपने स्वरूप का एक अंश प्रगट हुआ, उससे केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा की है। आहाहा! राग के साथ क्रीड़ा छूट गयी, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जैसे दूज उगी है तो पूनम होगी ही न। उसी प्रकार एक अंश प्रगट हुआ, उससे सर्वांश प्रगट होगा ही। आहाहा! वह व्यवहार के कारण से नहीं। अन्दर निर्मल परिणति के कारण से निर्मल परिणति पूर्ण होगी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ३, शुक्रवार, दिनांक ३०-०९-१९७७
कलश-११२-११३, प्रवचन-१०९

कलशटीका, ११२ कलश है न? पुण्य-पाप का यह अन्तिम अधिकार (कलश) है।

खण्डान्वय सहित अर्थ - '**ज्ञानज्योतिः भरेण प्रोज्जृम्भे**' '**ज्ञानज्योतिः**' शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा, शुद्धस्वरूप का प्रकाश आत्मा। '**भरेण**' **अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य के द्वारा...** पूर्णता बताना है न अभी। अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य-आत्मबल-वीर्य, इसकी सामर्थ्य द्वारा **प्रगट हुआ।** आहाहा! अपनी सामर्थ्य द्वारा प्रगट हुआ। किसी की सहायता और किसी की मदद नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यरसकन्द, वह अपने पुरुषार्थ द्वारा परिपूर्ण पर्याय में प्रगट हुआ।

कैसा है? '**हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धं आरब्धकेलि**' **सहजरूप से...** लीलामात्र से। आहाहा! कहीं इसके परमात्मपद प्राप्त होने में आत्मा के प्रकाश में कोई हठ नहीं, बलात्कार नहीं, कोई पर का जोर नहीं। आहाहा! लीलामात्र अर्थात् भगवान शुद्धचैतन्य प्रकाश का अनुभव, यह लीलामात्र अनुभव। आहाहा! पुण्य-पाप का भाव तो यह जहरीला स्वाद है, उसको तो छोड़ दिया। आहाहा! अपने चैतन्यप्रकाश के सामर्थ्य द्वारा लीलामात्र से प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। आनन्द की केलि करते-करते केवलज्ञान हो गया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पुण्य-पाप का अन्तिम अधिकार है न, अन्तिम कलश।

'**हेला**' **सहजरूप से...** आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, अपने आश्रय से लीलामात्र में सहजभाव से पूर्ण दशा को प्राप्त होता है। आहाहा! **कैसा है? सहजरूप से प्रगट हुए...** ऐसा। आहाहा! कोई राग की क्रिया की सहायता से प्रगट हुआ, ऐसा है नहीं। अपने चैतन्यप्रकाश का पूर अपनी सामर्थ्य से लीला करते-करते—आनन्द का अनुभव करते-करते। आहाहा!

मुमुक्षु : ....गुरु अनुभव करावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करावे ? शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहते हैं। क्या कहा ? कि शास्त्र या गुरु दिशा दिखाकर अलग रहते हैं। ये कहीं अन्दर प्रवेश करे नहीं। आहाहा! दिशा दिखाकर अलग रहे। ये दिशा है, वहाँ जाना, बस। आहाहा! अन्तिम श्लोक। ये श्लोक तो अकेले आनन्द के अमृत का कलश है।

शुभ-अशुभभाव, यह जहरीला स्वाद है। विषकुम्भ है। इनकी सहायता बिना भगवान अपने शान्तरस के स्वाद से पुण्य-पाप रहित आनन्द के शान्तरस के अद्भुतस्वाद से प्रगट हुआ। आहाहा! **'परमकलया' निरन्तरपने अतीन्द्रिय सुखप्रवाह के साथ...** केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा की है। आहाहा! अन्तर आत्मा का अनुभव ज्ञान का हुआ, उस ज्ञान के अनुभव में पुण्य-पाप का अभाव है। ऐसी ज्ञानकला ने केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा की है। केवलज्ञान अल्पकाल में आओ। आहाहा! कहा था न एक बार ? सम्यग्ज्ञान हुआ। पुण्य-पाप से रहित आत्मा (का अनुभव) तो यह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। आओ, आओ, आओ। आहाहा! अल्पकाल में केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा करते-करते केवलज्ञान को बुलाते हैं। अरे! ये तेरी कैसी बात है, भाई! और ऐसा कहते हैं कि पुण्य की क्रिया की तो कोई गन्ध भी नहीं, उसके साधन में। अपने आनन्द की स्वभाव की कला में एकाग्र होकर केवलज्ञान के साथ कला करते हैं—क्रीड़ा करते हैं। आहाहा!

निरन्तरपने अतीन्द्रिय सुखप्रवाह के साथ प्राप्त किया है परिणमन जिसने,... आहाहा! आया न ? समयसार नाटक में आया था। 'सद्गुरु कहें सहज का धन्धा, वाद विवाद करे सो अन्धा।' अरे! सहज का धन्धा है, सहज का सौदा है ये। आहाहा! सहजानन्द प्रभु ने अपने आनन्द के रस के साथ क्रीड़ा करते-करते, चारित्रदशा लेनी है न! चारित्र ये आनन्द की दशा है। चारित्र कोई दुःखदायक है कि परीषह सहन करना पड़ता है, ऐसे ये कोई चीज़ नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा के आनन्द में लीन, आनन्द की लहर करते-करते लीलामात्र में केवलज्ञान को प्रगट करते हैं। आहाहा! **'परमकलया'**

और कैसा है ? 'कवलिततमः' दूर किया है मिथ्यात्व-अन्धकार जिसने, आहाहा! राग की एकताबुद्धि का नाश हुआ, अल्पज्ञ पर्याय के साथ एकता का भी नाश हुआ।

आहाहा! समझ में आया? **'कवलिततमः' दूर किया है मिथ्यात्व-अन्धकार जिसने, ऐसा है। ऐसा जिस प्रकार हुआ है, उस प्रकार कहते हैं—'तत्कर्म सकलमपि बलेन मूलोन्मूलं कृत्वा' 'मूलोन्मूलं कृत्वा' कही है अनेक प्रकार भावरूप तथा द्रव्यरूप क्रिया...** आहाहा! जड़ की क्रिया और अन्दर भावरूप विकल्प की क्रिया। ये **पापरूप अथवा पुण्यरूप...** भाव। आहाहा! **बलजोरी से... 'मूलोन्मूलं'** अपनी बलजोरी से **'मूलोन्मूलं कृत्वा' जितनी क्रिया है, वह सब मोक्षमार्ग नहीं है...** आहाहा! करना क्रिया, इसके बिना चले नहीं, ऐसा माने। परन्तु ये क्रिया तो है राग। आहाहा! ये समस्त राग की क्रिया का **'मूलोन्मूलं'** मूल में से **'उन्मूलं'** उखाड़ फेंकी है। आहाहा! समझ में आया? कोई क्रिया का अंश उसकी सहायता करे, ये तो मूल में से **'उन्मूलं'** कर दिया है। **'उन्मूलं'** मूल से उखाड़ दिया है। आहाहा! ऐसा मार्ग सूक्ष्म बहुत, बापू! अपने पुरुषार्थ से ये होता है, हों! काललब्धि आये तो हो। काललब्धि पुरुषार्थ से काललब्धि आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अभी सहजरूप आया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहज कहा न। लीलामात्र। सहज अर्थात् लीला। लहर करते-करते, आनन्द की लहर करते-करते केवलज्ञान पायेगा। मूल तो **'हेला'** है। **'हेला'** अर्थात् लहर, लीलामात्र है। सहजरूप स्वाभाविक दशा। रागरहित दशा। अपनी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति की दशा, उससे प्रगट हुआ। आहाहा! **'तत्कर्म सकलमपि बलेन मूलोन्मूलं कृत्वा'** आहाहा! **अनेक प्रकार... 'कर्म'** देखो! **'कर्म'** शब्द से भावरूप और द्रव्यरूप क्रिया। **'कर्म'** शब्द का (अर्थ) किया। कर्म अर्थात् कोई पहले जड़कर्म ले ऐसा नहीं। शरीर की क्रिया भी ऐसे चलती है और भावक्रिया राग। वह सब द्रव्य और भावक्रिया को **मूल में से बलजोरी से उखाड़कर...** आहाहा! ये मोक्षमार्ग नहीं, सब मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा!

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव, वह मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा! ऐसी बात। तब लोग कहते हैं कि देखो! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को मिथ्यात्व कहते हैं। यह मिथ्यात्व नहीं, यह राग है। राग से धर्म माने तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानना, जानना, यह शुभभाव है, यह मिथ्यात्व नहीं। यह शुभभाव धर्म का कारण है

और धर्म है, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। मक्खनलालजी बड़ा झगड़ा करते हैं। खानिया चर्चा में ये चर्चा आ गयी है। आहा! जितनी क्रिया—दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वांचन, श्रवण, मनन, चिन्तवन... आहाहा! इन सब क्रिया को मूल में उखाड़ दिया है। भगवान को मूल से पकड़ा, अखण्डानन्द चैतन्य ज्ञायक ज्योति को परिणति में लिया। आहाहा! पंचम पारिणामिकभाव परिणति में लिया। आहाहा! उसमें पंचम गति की प्राप्ति होती है। आहाहा! अरे!

मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा जान समस्त क्रिया में ममत्व का त्याग कर... चाहे तो भगवान के स्मरण का राग हो, यह राग की क्रिया। आहाहा! जाप करना — णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... इन समस्त विकल्प के ममत्व का त्याग—ये मेरी चीज़ नहीं, मुझमें नहीं, मुझे लाभदायक नहीं। आहाहा! **क्रिया में ममत्व का त्याग कर, शुद्धज्ञान मोक्षमार्ग है...** आहाहा! भगवान, शुद्धज्ञान मोक्षमार्ग है। यह क्या? ज्ञान तो त्रिकाल है, वह तो शुद्धज्ञान की परिणति, मोक्षमार्ग है। ज्ञान त्रिकाल है, वह तो द्रव्य है। परन्तु त्रिकाली ज्ञायक की परिणति शुद्ध है, यहाँ तो पुण्य-पाप की क्रिया से रहित निर्मल परिणति लेना है न? आहाहा! समझ में आया?

शुद्धज्ञान मोक्षमार्ग है... शुद्धज्ञान का अर्थ त्रिकाली शुद्ध प्रकाशस्वरूप, यह तो द्रव्य है, यह कोई मोक्षमार्ग नहीं। उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की परिणति निर्मल प्रगट हुई, यह शुद्धज्ञान। शुद्धज्ञान क्यों कहा? क्योंकि जो राग की क्रिया थी, वह अशुद्ध थी। उसके साथ जो शुद्धज्ञान की परिणति, वह मोक्षमार्ग है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ।** भगवान चैतन्यस्वभावी प्रभु, यह चैतन्य स्वभाव का परिणमन शुद्ध, वह मोक्षमार्ग है, ऐसा सिद्धा सिद्ध हुआ। बीच में क्रियाकाण्ड का भाव मोक्षमार्ग है, इसका निषेध हुआ। आहाहा! पहले साधन तो हो या नहीं यह?— ऐसा कहते हैं। भाई! यह साधन बाधक है, यह साधन कहाँ से आया? आहाहा! शुद्ध चैतन्यप्रकाश का पूर, नूर आत्मा, उसका आश्रय लेकर जो शुद्ध परिणति हुई। यह पर का आश्रय लेकर जो शुभ, दया, दान का भाव था, उसका अभाव किया। आहाहा! ऐसा मार्ग अर्थात् मनुष्य को (एकान्त लगता है)। यहाँ तो यह कहा, **शुद्धज्ञान मोक्षमार्ग है, ऐसा**

सिद्धान्त सिद्ध हुआ। यह निर्णय यथार्थ, यह सिद्ध हुआ। व्यवहाररत्नत्रय की क्रिया मोक्ष का मार्ग है, इसका निषेध हुआ। आहाहा!

कैसा है कर्म अर्थात् क्रिया ? भाषा कर्म शब्द प्रयोग किया है। देखा! क्रियानय '**भेदोन्मादं**' आहाहा! भेद का गहलपना। **शुभक्रिया मोक्षमार्ग, ऐसा पक्षपातरूप भेद...** (पाड़ना)। आहाहा! **शुभक्रिया मोक्षमार्ग, ऐसा पक्षपातरूप भेद (अन्तर) पाड़ना उससे हुआ है गहिलपना...** पागलपना। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, उपवास आदि, यह भी मोक्षमार्ग हैं—ऐसा माननेवाले को पागलपन है, कहते हैं। समझ में आया? **शुभक्रिया मोक्षमार्ग, ऐसा पक्षपातरूप भेद (अन्तर) उससे हुआ है गहलपना (पागलपना) जिसमें, ऐसा है।** आहाहा! **और कैसा है ? 'पीतमोहं'** आहाहा! जिसने मोह पिया है। पुण्य की क्रिया से धर्म-मोक्ष माने, उसने मिथ्यात्व पिया है। '**पीतमोहं**' **निगला है-पिया है विपरीतपना जिसने,...** आहाहा! शुभक्रिया से मोक्षमार्ग है, ऐसा मिथ्यात्व जिसने पिया है। आहाहा! इतना तो स्पष्ट करते हैं और यह सब चिल्लाहट करते हैं। आहाहा! जिसने मोह पिया, मोह की शराब पी। आहाहा! देखो! कहते हैं न वे? टोडरमल और बनारसीदास अध्यात्म की भांग पीकर नाचे हैं। यहाँ कहते हैं कि, अज्ञानी मिथ्यात्व का मोह पीकर नाचे हैं। समझ में आया? है या नहीं अन्दर? दृष्टान्त देते हैं।

दृष्टान्त देते हैं। **जैसे कोई धतूरा का पान कर गहल होता है...** पागल होता है। **ऐसा है जो पुण्यकर्म को भला मानते है।** आहाहा! इतना तो स्पष्ट है। वह कहता है शुभयोग मोक्ष का मार्ग है। अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! धतूरा पिया है। वो भांग पीकर नाचे, ये धूतरा पीकर नाचा। टोडरमल और बनारसीदास सम्यग्ज्ञान पीके नाचे हैं। यह शुभभाव से मोक्षमार्ग है, वह धतूरा मिथ्यात्व पीके नाचे हैं। देखो! आते हैं, देखो! '**भ्रमरसभरात् नाटयत्**' देखो! '**भ्रमरसभरात् नाटयत्**' '**भ्रम**' **अर्थात् धोखा...** विपरीतभाव। **उसका अमल...** चढ़ गया। विपरीतभाव मिथ्यात्व का अमल चढ़ गया-पावर चढ़ गया। आहाहा! शुभक्रिया से धर्म और मोक्षमार्ग, (ऐसा माननेवाले ने) मोह का प्याला पिया है, कहते हैं। आहाहा!

पुण्यकर्म को भला मानता है। आहाहा! ऐसा भ्रम, अज्ञानी, उसका अमल।

मिथ्यात्व का अमल चढ़ गया है। आहाहा! **उसका अत्यन्त चढ़ना। 'भरात्'** है न? **'भ्रमरसभरात्'** और **'नाटयत्' उसका अत्यन्त चढ़ना।** मिथ्यात्व का पावर एकदम चढ़ गया। आहाहा! मिथ्यात्व मोह का पागलपन चढ़ गया। आहाहा! इस कारण से **'नाटयत्' नाचता है।** आहाहा! शुभक्रिया धर्म की है, ऐसा मिथ्यात्व पीकर नाचते हैं। समझ में आया? कठिन काम है, भाई! आहाहा! अटकने के साधन अनेक, छूटने का साधन एक। भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसका आश्रय लेना, यह छूटने का साधन है। ये सब बन्धन के साधन तो अनेक हैं। आहाहा! समझ में आया? **'नाटयत्'** शब्द लिया है, हों! नाचा है, ये कहते हैं कि अध्यात्म की भांग पीकर नाचे हैं। यह कहते हैं कि पुण्य से धर्म माननेवाले मिथ्यात्व पीकर नाचते हैं। आहाहा!

अरे! भाई! टोडरमल और बनारसीदास कौन है, इसकी उन्हें खबर नहीं। जिसको हाथी के पैर के नीचे कुचलाया तो भी कुछ बोले नहीं। ब्राह्मणों ने शिव की मूर्ति कोने में रख दी और राजा को भड़काया कि देखो! इस प्रकार विरोध करते हैं। हाथी। हाथी इनके ऊपर पैर रखने में संकोच करता है। संकोच करता है। अरे! हाथी! राजा जब ऐसा कहता है तो तू क्यों संकोच करता है? टोडरमल कहते हैं, आहाहा! रख, रख, पैर रख। आहाहा! हाथी पैर रखता है, तब फिर देह छूट जाता है। आहाहा! ऐसी स्थिति में भी जिसने अपनी दृढ़ता सत्य की छोड़ी नहीं। आहाहा! छोटी उम्र। उम्र तो दूसरी जगह कुछ विशेष लिखी है। दूसरी जगह २८ और दूसरी जगह थोड़ी ज्यादा लिखी है। परन्तु इतनी उम्र ये कहीं साठ के अन्दर होगी। उस समय पीछे। २०० वर्ष पहले की बात। आहाहा! हाथी आता है। अरे! कोई जैन नहीं? जैन के श्रावक कहाँ गये सब? हो तो भी क्या करें वहाँ? आहाहा! जो बननेवाला काल (होता है) बनता है। आहाहा! धर्मात्मा को ये स्थिति दिखती है। आहाहा! समझ में आया? शरीर तो अलग है, ये अलग होता है। छूटा है, वह छूटेगा, उसमें मुझे क्या? आहाहा!

श्रीमद् में आता है न? 'एकाकी विचरुँगा कब श्मशान में, अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब' आहाहा! सिंह आकर मृत्यु करे, क्या भाषा है ये? 'अडोल आसन अरु मन में नहिं क्षोभता, मानो पाया मित्र का जोग जोग', मित्र का योग। आहाहा! शरीर मुझे चाहिए

नहीं और इसको चाहिए है, तो ये मेरा मित्र है। आहाहा! आहाहा!

अत्यन्त चढ़ना, 'भरात्' शब्द है, पावर चढ़ गया, मिथ्यात्व का। ओहोहो! अमल। वह आता है न? 'जिनराज सुजस सुन्यो में, काहू के कहे अब कबहूं न छूटे प्यारे, जैसे अमली अमल करत समय लाग रही जु खुमारी, जिनराज सुजस सुन्यो मैं...' प्रभु! वीतरागी स्वभाव का मुझे भान हुआ, यह सुजस सुना मैं। काहू के कहे अब कबहूं न छूटे प्यारे... आहाहा! 'लोकलाज सब डारी' लोकलाज-क्या कहेंगे लोग? दुनिया जाने। 'काहू के कहे अब कबहूं न छूटे, लोकलाज सब डारी, जैसे अमली अमल करत समय...' अफीम का अमल पीता है। आहाहा!

एक बार हम वहाँ बैठे थे। वरसडा? वरसडा नहीं। गोंडल और राजकोट के बीच गाँव, नहीं? भाई! रीबडा... रीबडा। रीबडा में बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९७७ की बात है। रीबडा में उतरे थे। स्कूल के पीछे उतरे थे। पहले जब उतरे थे तब ठाकरद्वार में उतरे थे। पहले १९७१ की बात है। ठाकरद्वार में। पीछे तुम जब थे, तब आपके स्कूल में। ठाकरद्वार में उतरा था, उसका बाबा था। ठाकरद्वार का बाबा। ये तो विचारो प्रेम से (बोलो)... ओहो! महाराज हमारे यहाँ (पधारे)। हम ठाकरद्वार में बाहर उतरे। पर उसको जब अफीम पीना था। पिया तब कहे। चडयो, चडयो, चडयो अफीम —ऐसा कहे तो चढ़े और उतर जाये तो ये कहे पिया हो तो उतर जाये। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मिथ्यात्व का पावर चढ़ा, ये चढ़ा अज्ञानी को। ये शुभभाव में धर्म मानने की बात, प्याला चढ़ गया है इसको। आहाहा! **अत्यन्त चढ़ना,...** (हुआ) है, वापस देखो! मिथ्यात्व **धोखा, उसका अमल, उसका अत्यन्त चढ़ना...** धोखा का अर्थ यह है। भ्रम हुआ अर्थात् मिथ्यात्व चढ़ा। आहाहा! **उससे नाचता है...** आहाहा! अरे! प्रभु! ऐसा मार्ग है न, प्रभु! तू इस स्वरूप है न। आहाहा! इसका स्वरूप ही शुद्धचैतन्यघन है न। एक समय की विकृत दशा की रुचि छोड़कर परमात्मस्वरूप की दृष्टि हुई (तो) मिथ्यात्व के पावर का नाश हो गया। आहाहा! और एक समय की भूल, ये शुभभाव भी भूल है। त्रिकाल स्वभाव के साथ मिलान करना (ये भ्रान्ति है)। आहाहा! कहाँ त्रिकाली स्वभाव शुद्ध चैतन्य अनहद। आहाहा!

विभाव की सीमा है। ऐसा नहीं कहा? बहिन ने नहीं कहा? कल कहा था, विकार है, उसमें सीमा है, उसकी हद है। बहुत सादी भाषा है। गुजराती सादी। साधारण बालक के समझ में आये ऐसी। विभाव की सीमा है, विकृत है, उसकी हद है, उसकी मर्यादा है। भगवान स्वभाव में मर्यादा नहीं, बेहद है। समझ में आया? आहाहा! हदवाली चीज़-मर्यादित चीज है तो उससे पीछे हट सकते हैं। अमर्यादित से नहीं। मर्यादित से तो हट सकते हैं। आहाहा! और अपना स्वभाव तो अमर्यादित है। आहाहा! जहाँ अनुभव आया, अब वहाँ से हट सकते नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जो पुण्य की क्रिया को धर्म मनाये, मोक्षमार्ग मनावे... आहाहा! उसे मिथ्यात्व का अमल चढ़ गया है, पावर चढ़ गया है, जहर का पावर चढ़ गया है। आहाहा! ये दान दो और पाँच-पचास लाख का दान खर्चो, मन्दिर बनाओ, जाओ तुम्हारा कल्याण। मिथ्यात्व का पावर चढ़ गया है। आहाहा! कहा था न? नानालालभाई से। २००६ के वर्ष में। मन्दिर बनवाया बड़ा। राजकोट बड़ा मन्दिर। सोने का कलश शिखर पर। भाई था। कौन? वह इन्दौरवाला। पण्डित का नाम मुन्नालालजी! मुन्नालालजी आये थे। ये सेठ से कहे... मकान बड़ा और लोग कितन बाहर से आये। दिगम्बरों के अपने जैनों के स्थानकवासी। बड़ी सभा। २००६ के वर्ष, हों! २७ वर्ष हुए। मुन्नालाल ने कहा, ओहो सेठ! ये मन्दिर के शिखर पर सोने का कलश, तुम्हारा मोक्ष हो जायेगा। सेठ कहता है, परन्तु हम ऐसा नहीं मानते, भाई! आहाहा! नानालालभाई। नानालाल कालीदास ऐसा कहे, उन पण्डित से! पण्डित ने ऐसा कहे कि तुम्हारा... आहाहा! ये कहे, हम ऐसा मानते नहीं, हमारे महाराज ऐसा कहते नहीं। ये तो शुभभाव है। भले ही दस लाख के बीस लाख का (बनाया हो)।

यह बारह लाख का मन्दिर बनाया न! बैंगलोर बारह लाख का मन्दिर। भभूतमल ने आठ लाख दिया और चार लाख भाई ने दिया। जुगराजजी। एक स्थानकवासी और एक मन्दिरमार्गी। दोनों ने दिगम्बर मन्दिर, बारह लाख का दिगम्बर मन्दिर (बनाय)। उस दिन तो प्रतिष्ठा थी इसलिए कच्चा काम था, अभी हो गया, अब अभी ऐसा कहते हैं, लोग ऐसा देखने आते हैं। परन्तु बात तो उस दिन उससे कही, तुमने आठ लाख खर्चे, इसलिए तुम्हें

धर्म होगा, (ऐसा बिल्कुल नहीं)। अर्थात् इसने तो आठ लाख खर्चे तो चालीस लाख आये। सहज ही। आहाहा! दो करोड़ का स्टील पड़ा था और सोलह दिन हमारे यहाँ रहा तो वहाँ (स्टील) ऐसा का ऐसा पड़ा रहा। बेचा नहीं और पीछे भाव बढ़ गया। आठ लाख खर्चे और चालीस लाख आये। पीछे ये लोग तो (ऐसा कहें), ओहोहो! महाराज की लकड़ी फिरी। ऐसी लोग बातें करें। कहीं धूल भी नहीं, सुन न! यह तो पूर्व का पुण्य योग, योग हो तो दिखता है। इसमें आत्मा का क्या? यह जो भाव किया था पुण्य, वह पुण्य जहर है। आहाहा! लो, पोपटभाई को दो करोड़ रुपये का जहर फला, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बात तो ऐसी ही है। अमृत का सागर जहाँ उछला, वहाँ जहर की कीमत क्या है? आहाहा!

अमृत के स्वभाव से, अपरिमित स्वभाव से भरा प्रभु! उसकी जहाँ दृष्टि और अनुभव हुआ... आहाहा! उसके आगे ये पुण्य और पुण्य के फल की कीमत क्या है? अज्ञानी ऐसे मोह को पीकर नाच रहे हैं (कि) यह शुभक्रिया धर्म, मोक्ष का कारण है। आहाहा! ऐसी बात यह। समझ में आया?

धतूरा पीकर सुध जाने पर नाचता है,... सुध-बुध कहीं रही नहीं। धूतरा पिया इसलिए नाचता है। **उसी प्रकार मिथ्यात्व कर्म के उदय में शुद्ध स्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट है...** आहाहा! ये पुण्य को धर्म माननेवाला, मोक्ष माननेवाला मिथ्यात्व से घिर गया है। आहाहा! **मिथ्यात्व कर्म के उदय में शुद्ध स्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट है...** राग में रुक गया है, भ्रष्ट स्वरूप से। आहाहा! राग के पीछे पूरा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द है, उससे तो भ्रष्ट हुआ। राग में मोक्ष माननेवाला शुद्धस्वरूप भगवान विराजे आनन्द का नाथ, उसका अनादर किया। राग का आदर किया तो भ्रष्ट हुआ अनुभव से। आहाहा!

शुभकर्म के उदय से जो देव आदि पदवी... देखो! अब यह फल लिया। पोपटभाई! यह जहर का फल लिया। **शुभकर्म के उदय से जो देव...** आदि अर्थात् सेठ, राजा। पाँच-पाँच करोड़ की उपज महीने की। ऐसा बड़ा अभी है न? एक घण्टे की डेढ़ करोड़ की उपज। ईरान एक घण्टे की डेढ़ करोड़ की आमदनी अभी है। देश छोटा है। परन्तु पेट्रोल बहुत निकलता है। पेट्रोल के कुंआ के कुंआ सारे देश में। देश बहुत छोटा। परन्तु पेट्रोल के कुंआ इतने निकले कि एक घण्टे के डेढ़ करोड़! एक दिन के आधे अरब।

आमदनी हो! पूँजी नहीं। आहाहा! ये कहे मैं पैसावाला, हम देव हैं और पैसेवाले हैं। **आदि पदवी...** आहाहा! राजा। **उसमें रंजायमान होता है...** पुण्य के प्रेमी उसके फल में रंजायमान होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पुण्य-शुभभाव के रसीले प्रेमी, उसके फलरूप से पदवी मिले, उसमें रंजायमान हो गया। क्योंकि जिसके कारण में जिसके रस चढ़ गया है, उसके कार्य में रंग चढ़ गया है। आहाहा! हम देव हैं, हम बनिया, सेठिया हैं, हम पैसेवाले हैं, हमारा कुटुम्ब बड़ा खानदान, इसमें करोड़पतियों की कन्या समाने देने आते हैं, ऐसा हमारा (खानदान है)। परन्तु क्या है इसमें? आहाहा!

जो देव आदि पदवी... अर्थात् राजा, सेठिया आदि। दो-पाँच लाख का महीने का वेतन आवे ऐसे बड़े होते हैं न। **उसमें रंजायमान होता है कि मैं देव, मेरे ऐसी विभूति...** आहाहा! अरबोंपति लोग, अरबोंपति। पाँच-पाँच करोड़ की उपज, दस-दस करोड़ की उपज। ये मेरी विभूति, मर गया परन्तु। आहाहा! ये विभूति जड़ है, तेरी कहाँ से हो गयी? शुभभाव के प्रेमी जीव, उसके फल में रंजायमान हो जाएँगे। आहाहा! समझ में आया? **मैं देव, मेरे ऐसी विभूति, सो तो पुण्यकर्म के उदय से...** आहाहा! मेरा पुण्य इतना, इसके कारण देखो ये सब सामग्रियाँ! मैं एक को हुक्म करूँ तो इक्कीस लोग तैयार होते हैं। साहेब! क्या चाहिए? मुँह से क्या माँगता है? अर्थात् क्या खाना है, ऐसा। मुँह माँगे अर्थात् आपको क्या खाने की इच्छा है? श्रीखण्ड-पूरी, हलुवा-पूरी। बड़े राजाओं को ऐसा होता है। बड़े राजा होते हैं न? इनके छपा हुआ कागज होता है। इसमें श्रीखण्ड, पूरी, अमुक.. अमुक... दाल-भात सब नाम लिखे होते हैं। ये इनको देते हैं। साहब! इसमें से आपको क्या खाना है? ये वहाँ चिह्न करते हैं। वह बनाते हैं। राजा से इतना सब पूछते नहीं। इसमें सब नाम लिखे होते हैं। श्रीखण्ड, पूरी, हलुवा, मैसूर, अमुक, अमुक, दाल, मौसम्बी का रस सबके नाम इसके पास देते हैं। साहब! आप कहो। वहाँ दो-चार-पाँच चिह्न कर देते हैं। आहाहा! बड़े राजाओं का ऐसा है। वह जाने ऐसा है। आहाहा! कितना मेरा वैभव! ऐसा है, राजा... ऐसा है। बड़े-बड़े राजाओं को समय नहीं होता। इनको कागज देते हैं। आज के दिन के लिये क्या? मेहमान आये है, दूसरे राजा (आये हैं)। तो अपनी रसोई में क्या (बनाना है)। सूची में सब नाम लिखे होते हैं। पानी, रस, मौसम्बी, जामुन, आम, अमुक,

अमुक... सब नाम लिखे होते हैं। इसमें से पसन्द पड़े, ये कह दो। प्रसन्न, प्रसन्न हो जाता है। ऐई..! मर गया है, सुन तो! आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा है तो उसका उपयोग करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा कहाँ इसके बाप का था? पैसा तो जड़ है। जड़ इसका है नहीं, इसका उपयोग कर कैसे करे? आहाहा!

सो तो पुण्यकर्म के उदय से; ऐसा मानकर बार-बार रंजायमान होता है। आहाहा! हमारी तो अभी बादशाही है। लड़के कहने में चलनेवाले, चलाऊ दुकान, मुनीम बुद्धिवाला। थोड़े वेतन में बड़ा काम करनेवाला। पाँच हजार वेतन देते हैं परन्तु दो-पाँच-दस लाख कमाकर देता है। ये मेरे पुण्य का फल है। पोपटभाई!

मुमुक्षु : पोपटभाई की मुम्बई में लहर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ धूल में ही लहर नहीं। ये तो कहते हैं। आहाहा! वहाँ सेठ को इसके गाँव में लहर है। दोनों सेठिया बड़े। बँगला-बँगला, गाँव में नाम बुलाये वहाँ मुँह आगे सेठ को बुलाओ। अन्यमति तो भी बाबा पास बुलाये। सेठ के साथ हों तो इज्जत बढ़ती है और ये (बाद में) यहाँ वहाँ जाता है। भटकता है। शंकर का हो, बाबा का हो तो भी। ऐसा सुना है, हों! नहीं? सेठ! पहला कहता है, साहेब! पधारो। महाराज आये हैं। जरा उस समय आप खड़े रहोगे। यह तो एक बात। आहाहा! ये सब पुण्य का फल है, बापू! थोथा है, इसमें कुछ है नहीं। आहाहा! आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है। उसमें से आनन्द का झरना झरता है, वहाँ जा न! ये तुझे दुःख का झरना झरता है, भाई! आहाहा! लो, ये पुण्य-पाप अधिकार पूरा हुआ। अन्तिम कलश था न?

— ५ —
आस्रव अधिकार

(द्रुतविलम्बित)

अथ महामदनिर्भरमन्थरं
समररंगपरागतमास्रवम्।
अयमुदारगंभीरमहोदयो
जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः।।1-113।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'अथ अयं दुर्जयबोधधनुर्धरः आस्रवं जयति' [अथ] यहाँ से लेकर, [अयं दुर्जय] यह अखण्डित प्रताप, ऐसा [बोध] शुद्धस्वरूप अनुभव, ऐसा है [धनुर्धरः] महायोधा, वह, [आस्रवं] अशुद्धरागादि परिणामलक्षण आस्रव, उसको [जयति] मेटता है। भावार्थ इस प्रकार है—यहाँ से लेकर आस्रव का स्वरूप कहते हैं। कैसा है ज्ञानयोद्धा? 'उदार-गम्भीरमहोदयः' [उदार] शाश्वत, ऐसा है [गम्भीर] अनन्त शक्ति विराजमान, ऐसा है [महोदयः] स्वरूप जिसका, ऐसा है। कैसा है आस्रव? 'महामदनिर्भरमन्थरं' [महामद] समस्त संसारी जीवराशि, आस्रव के आधीन है, उससे हुआ है गर्व-अभिमान, उससे [निर्भर] मग्न हुआ है [मन्थरं] मतवाला की भाँति, ऐसा है। 'समररंगपरागतं' [समर] संग्राम ऐसी ही [रंग] भूमि, उसमें [परागतं] सन्मुख आया है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार प्रकाश, अन्धकार का परस्पर विरोध है; उसी प्रकार शुद्धज्ञान और आस्रव को परस्पर विरोध है।।1-113।।

कलश - ११३ पर प्रवचन

आस्रव अधिकार, पाँचवाँ आस्रव अधिकार।

अथ महामदनिर्भरमन्थरं
समररंगपरागतमास्रवम्।
अयमुदारगंभीरमहोदयो
जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः।।1-113।।

खण्डान्वय सहित अर्थ – '**अथ**' **यहाँ से लेकर...** ऐसा। पहला '**अथ**' में मांगलिक शब्द प्रयोग किया है, नहीं ? '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**'। '**वंदित्तु**' में पहला '**अथ**' शब्द संस्कृत में है। मांगलिक किया अब शुरुआत की, साधकस्वभाव की शुरुआत करते हैं। इसका वर्णन करते हैं। आहाहा! साधकपना अनादि का नहीं न। नया शुरु हुआ है न। अर्थात् '**अथ**' अब मांगलिक करने के लिये साधकपना प्रगट करते हैं। आहाहा!

यहाँ से लेकर... 'अयं दुर्जय' यह अखण्डित प्रताप, ऐसा शुद्धस्वरूप अनुभव,... आहाहा! यह शुभभाव तो खण्डित है। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप एकरूप अखण्डरूप... आहाहा! इसकी पर्याय में अखण्डित प्रताप है। अब यह पर्याय की बात है, हों! संवर की। **यह अखण्डित प्रताप, ऐसा शुद्धस्वरूप अनुभव,...** आहाहा! पवित्रता का पिण्ड प्रभु, उसका अनुभव। अनु—स्वभाव शुद्ध का अनुसरण करके भववुं, होना, होना। ऐसा शुद्धस्वरूप का अनुभव, जिसका अखण्ड प्रताप है। आहाहा! जिसके प्रताप को कोई खण्डित कर सकता नहीं। आहाहा!

यह तो अपने आया है न ? प्रभुत्वशक्ति ? आत्मा में एक प्रभुत्व नाम की शक्ति है। जिसका अखण्ड प्रताप स्वतन्त्रता से शोभायमान है। आहाहा! भगवान आत्मा का प्रभुत्वगुण से भरा प्रभु, और उसका एक प्रभुत्व नहीं, परन्तु अनन्त शक्ति में प्रभुत्व से भरा है तो ये अनन्त शक्ति में प्रभुत्व से भरारूप है और प्रभुत्वशक्ति अखण्ड प्रताप से शोभित, स्वतन्त्रता से शोभित है। आहाहा! जिसमें कोई व्यवहार, राग का आश्रय भी नहीं है। आहाहा! जिसमें शरीर संग्रहण मजबूत हो तो यह काम हो, मनुष्यपना हो तो यह हो, ऐसा भी जिसमें नहीं, कहते हैं। आहाहा! जिसका प्रताप अखण्ड है। आहाहा! इसमें तो एक शक्ति का अखण्डपना कहा है और यह अखण्ड शक्ति का प्रताप स्वतन्त्रता से शोभायमान कहा है। तो भगवान आत्मा, अनन्त गुण का रूप जिसका है, तो एक-एक गुण में अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्र शोभायमान शक्ति पड़ी है। उसके आश्रय में अनुभव होता है। आहाहा! यह अनुभव का अखण्ड प्रताप है, कहते हैं। आहाहा! संवर लेना है न। शुभभाव और शुभभाव के आश्रव से रहित शुद्धस्वरूप का अनुभव अर्थात् संवर। आहाहा! ये संवर।

जिसका अखण्ड प्रताप ऐसा **शुद्धस्वरूप अनुभव...** कैसा है ? '**धनुर्धरः**' **महायोधा,...**

आहाहा! जिसने आस्रव को तो बातों-बातों में तोड़ दिया, ऐसा महायोद्धा है, कहते हैं। आहाहा! यह तो वर्तमान शूरवीरता बताना है न! शान्तरस में अद्भुतरस का वीररस बताते हैं। है तो अन्दर शान्तरस। शुद्ध अनुभव, यह शान्तरस है, आनन्दरस है। इसमें वीररस की व्याख्या का वर्णन करते है। शान्तरस में वीरता ऐसी पड़ी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! मांगलिक करते हैं। आस्रव अधिकार की शुरुआत करते मांगलिक करते हैं।

यह अखण्डित प्रताप, ऐसा शुद्धस्वरूप अनुभव, ऐसा है महायोधा,... 'धनुर्धरः' 'अर्जुन' का बाण जैसे फिरे नहीं... आहाहा! 'राम' का बाण फिरे नहीं, ऐसे अनुभव की दशा फिरे नहीं, कहते हैं। आहाहा! ऐसा **अशुद्ध रागादि परिणामलक्षण आस्रव,...** महायोद्धा क्या करता है? आहाहा! शुद्धस्वरूप का अनुभव, पुण्य और पाप के भाव से रहित, ऐसा जो अनुभव-महायोद्धा, ये **अशुद्ध रागादि परिणामलक्षण आस्रव,...** इसमें पुण्य और पाप दो आये। अशुद्ध हैं न? अशुद्ध रागादि, द्वेषादि परिणामलक्षण आस्रव। **अशुद्ध रागादि परिणामलक्षण आस्रव,...** आहाहा! उसको **मेटता है। 'जयति'** जय करता है, अपनी ध्वजा चढ़ाता है। विजयध्वज लहराता है अपना। स्वरूप के अनुभवरूप संवर दशा का विजयध्वज लहराता है। आहाहा! अशुद्ध रागादि को मेटता है। **'जयति'** जय करता है अर्थात् पीछे मेटता है, ऐसी भाषा की।

भावार्थ इस प्रकार है—यहाँ से लेकर आस्रव का स्वरूप कहते हैं। कैसा है ज्ञान योद्धा? अब ज्ञानयोद्धा (कैसा है?) आहाहा! **'उदार'** है। **'गम्भीर'**। **'उदार'** अर्थात् **शाश्वत्...** है। आहाहा! ये योद्धा शाश्वत् है। शाश्वत् के आश्रय से प्रगटा, इसलिए शाश्वत् है। ये दशा प्रगटी, वह प्रगटी। पूर्ण केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। आहाहा! **शाश्वत् ऐसा है... 'गंभीर' अनन्त शक्ति विराजमान...** है। आहाहा! वस्तु तो शाश्वत् अनन्त शक्ति से विराजमान है ही, परन्तु जो संवर योद्धा है, वह भी मर्यादारहित है। आहाहा! क्या कहा? धवल में नहीं आया? अष्टपाहुड़ में चारित्र (कहा है)। अष्टपाहुड़ में चारित्र। अक्षय अमेय। अष्टपाहुड़ में। आहाहा!

जिसकी अन्तर दशा स्वभाव का आश्रय होकर चारित्रदशा हुई या सम्यग्दर्शन, ज्ञान

हुआ। वह दशा अक्षय और अमेय है। वह दशा, हों! आहाहा! क्षय न हो और अमेय अर्थात् मर्यादा नहीं। आहाहा! चारित्र अधिकार में पहली गाथा अष्टपाहुड़। अक्षय, अमेय। यह अक्षय अमेय पर्याय को कहते हैं। वस्तु तो अक्षय अमेय है, वह तो है। आहाहा! परन्तु जिसका सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र परिणमन हुआ, यह परिणमन अक्षय और अमेय हैं। आहाहा! आहाहा! अरे! भगवान! परन्तु तुम तो कहते हो न कि कोई तो चारित्र पाकर गिर जाता है। अरे! गिर जाने की ये बात यहाँ नहीं। दिवाला निकलने की बात साहूकार के यहाँ कहाँ से लाया? आहाहा! यह तो अन्दर में... आहाहा! शुद्ध चैतन्य की परिणति अक्षय और अमेय ही है। अमेय है। आहाहा! वस्तु तो अक्षय और अमेय है, परन्तु उसकी परिणति में अक्षय और अमेयपना आ गया है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा महा योद्धा-शुद्धज्ञान संवररूपी योद्धा। आहाहा!

अनन्त शक्ति से विराजमान... 'महोदयः' स्वरूप जिसका... महा उदय जिसका स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। महा उदय, महा प्रगट हुआ। आहाहा! **'महोदयः'** आहाहा! यहाँ कुछ प्रयुक्त होता है न? महोदय, महोदय लोगों में कहीं प्रयुक्त होता है। अमुक महोदय। ऐसा शब्द है। यहाँ कहते हैं, **'महोदयः'** जिसका स्वरूप। महा उदय। राग का उदय था। नाश होकर महा उदय (हुआ)। शुद्ध चैतन्यस्वरूप की दृष्टि और ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, ये महा उदय हुआ। आहाहा! ये उदय का अस्तपना अब होगा नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ४, शनिवार, दिनांक ०१-१०-१९७७
कलश-११३-११४, प्रवचन-११०

कलशटीका, आस्रव अधिकार। आस्रव को जीतनेवाला ज्ञान कैसा है, ये बात चली। सेठ देरी से आते हैं, चाहे जो कारण हो। प्रतिदिन पाँच-दस मिनिट लेट होते हैं। शुरुआत की बात रह जाती है। ज्ञान योद्धा धनुर्धर कहा था न? आहाहा! अपने स्वरूप का ज्ञान रागरहित, जो मिथ्यात्व, राग, अज्ञान सबसे रहित ऐसी चीज़ जो वस्तु है, उसका ज्ञान करने से राग का जीतना होता है। यह ज्ञान महा योद्धा है। आहाहा! और यह धनुर्धर है। जैसे एक के बाद एक जैसे अर्जुन बाणावली, बाण मारता था, ऐसे एक के बाद एक संवर की आस्रव रोकने की पर्याय-आत्मा आनन्दस्वरूप के तरफ की उन्मुखतावाली-झुकाववाली दशा एक के बाद एक निर्मल धारा द्वारा राग आस्रव को जीतती है। आहाहा!

शान्तरस का वर्णन है, उसमें वीररस डाला है। है तो शान्तरस का वर्णन। आहाहा! शुभ-अशुभभाव... पुण्य-पाप का अधिकार पूरा हो गया। तो पुण्य-पाप दोनों अशान्त हैं। उससे रहित अपना चैतन्यस्वभाव का आश्रय लेकर जो दशा संवर की उत्पन्न हुई। उसे ज्ञानयोद्धा कहने में आता है। और धुनर्धर-ज्ञानरूपी धनुष धार रखा है। आहाहा! समझ में आया? और वो उदार और गम्भीर है, शाश्वत् है, अनन्त शक्ति से विराजमान है। ऐसा वहाँ तक आया है। यह मूल चीज़ आई पहली। अब, यह आस्रव ज्ञानयोद्धा जिसको जीतते हैं, वह आस्रव क्या है। आहाहा! समझ में आया? पहली मूल रकम आयी।

अब कहते हैं कि यह ज्ञानयोद्धा अपने स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुई अनुभूति से ज्ञान की दशा ये महायोद्धा आस्रव को जीतते हैं। आहाहा! है तो शान्तरस का वर्णन, परन्तु वीररस इसमें डालकर योद्धा जीतता है, ऐसा वीररस डाला। आहाहा! **अनन्त शक्ति से विराजमान...** ऐसा '**महोदयः**' जिसका प्रगट होना महा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग, शुभाशुभभाव आस्रव, उससे रहित निजस्वरूप के बोध जो निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि

की दशा प्रगट हुई, वह महोदय है-महा उदय है। महा प्रगट हुई। समझ में आया? वह किसको जीतते हैं? कैसा है आस्रव? अब आस्रव की बात चली।

'महामदनिर्भरमन्थरं' समस्त संसारी जीवराशि आस्रव के आधीन है... महामद। आहाहा! सब संसारी जीव राग के आधीन हैं। आस्रव के आधीन है। चाहे तो अशुभभाव हो या चाहे तो शुभ हो। सारा संसार आस्रव के आधीन है। इस कारण से **उससे हुआ है गर्व-अभिमान,...** आहाहा! महामद आया न? **'महामदनिर्भर'** आहाहा! आस्रव को गर्व हुआ है कि मैं मदोन्मत्त (हूँ)। दिगम्बर जैन साधु हो, उसे भी मैं आस्रव के वश करके गिराया है। दिगम्बर मुनि द्रव्यलिंगी अनन्त बार हुआ, परन्तु आस्रव के आधीन होकर। ये आस्रव के आधीन था। ऐसे आधीन से आस्रव को गर्व हुआ कि मैं ऐसे महन्त के नीचे गिराया है। आहाहा! दिगम्बर जैन साधु नौवें ग्रैवेयक गया, हजारों रानी छोड़ी, कोई बाहर में बालब्रह्मचारी (थे)। ऐसे जीव राग के आधीन (थे)। वे राग के आधीन-मेरे आधीन हो गया है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप, उसके ओर का तो, उसका आश्रय लिया ही नहीं मैंने। ऐसा मैं आस्रव हूँ। अशुभ से छूटकर शुभ में आया तो शुभ में लपेट गया। आहाहा! आस्रव के आधीन हो गया। आहाहा! मैं व्रत करता हूँ, तपस्या करता हूँ, पूजा, भक्ति करता हूँ। आस्रव कहता है कि मैं तो बहुत बड़े मानधाता को दबा दिया है। आहाहा! ऐसे आस्रव को गर्व हुआ है, अभिमान। महामद है न? महामद, महामद—बड़ा गर्व हुआ है उसको। आहाहा! साधारण प्राणी तो ठीक परन्तु बड़े-बड़े बादशाह संसार को छोड़े, बादशाही छोड़े, परन्तु मैंने उसको भी राग के आधीन कर दिया है। शुभ से धर्म होगा, ऐसी मान्यता भी उसमें रख दी है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : उसे भी छिटकने न दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भी छिटकने नहीं दिया। आहाहा!

महामद हुआ है। **उससे मग्न हुआ है...** वापस। आस्रव मद में मग्न हुआ है। आहाहा! शास्त्र का पठनवाला, ग्यारह अंग का पड़नेवाले को मैंने गिरा दिया है। वह भी परज्ञान, पर का, धारणाज्ञान का, वह आस्रव का कारण है। इसको मैंने वश कर दिया।

आहाहा! समझ में आया? वह कहीं ज्ञान नहीं था। परन्तु उस परावलम्बी धारणा ज्ञान में मैंने उसे वश कर डाला — ऐसा राग कहता है। वहाँ से छूटकर ज्ञान में जाने की शक्ति रही नहीं उसकी। आहाहा! समझ में आया? '**महामदनिर्भर**' आहाहा!

मुमुक्षु : राग की ताकत....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये राग की ऊंधाई की ताकात। ऊंधाई की। राग तो उसने किया है न? उसकी अज्ञान की ताकत है। ताकत तो स्वयं आधीन हुआ है। यहाँ तो शान्तरस में वीररस का वर्णन है न।

मुमुक्षु : अपनी कमजोरी से।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमजोरी नहीं, विपरीत दशा। कमजोरी नहीं, उलटी दशावाली परिणति में आस्रव कहता है, मैंने उसे आधीन कर दिया है। आहाहा! मैंने शुभभाव किया, मैंने दया पाली, मैंने व्रत पाले, मैंने उपवास किया, मैंने वर्षीतप किया... आहाहा! श्वेताम्बर में चलता है न? एक दिन खाना, एक दिन उपवास। ऐसे-ऐसे क्रियाकाण्ड में राग के वश मैंने कर दिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : राग स्वयं...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग के वश हुआ है, परन्तु राग कहता है, मैंने वश किया। वश तो स्वयं हुआ है। परन्तु वश का ज्ञान हुआ न? राग मेरा है, ऐसे वश तो आत्मा हुआ, परन्तु ये आस्रव को अभिमान हुआ न? मैंने उसको आधीन बनाया। (आत्मा) तो स्वतत्त्व चिदानन्द भगवान है, परन्तु उसका भान न रखकर, राग का गुलाम मैंने बना दिया, उसको। ये तो राग का स्वयं आधीन हुआ, तो आधीन किया, ऐसा कहा। आहाहा! राग के आधीन हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! यह जानपने क्षयोपशम में भी जहाँ-तहाँ रुक गया। आहाहा! मेरी चीज़ उससे भिन्न है, ऐसा आस्रव कहते हैं कि मैंने करने नहीं दिया। अज्ञानभाव के आधीन होकर। आहाहा! उसके ज्ञानस्वभाव का पत्ता लेने नहीं दिया मैंने। दोष तो अपना आत्मा का है, परन्तु आत्मा का दोष आस्रव के दोषरूप में बतलाते हैं। आहाहा!

मग्न हुआ है, मतवाला की भाँति, ऐसा है। भाषा देखी! मतवाला-गहल—जैसे पागल-पागल हो। ऐसे पागल कर दिया उसको। आहाहा! इतने विशेषण दिये। महामद, निर्भर, मन्थर। आहाहा! पुण्य के, दया, दान के, बाह्य विकल्प या शास्त्र का धारण ज्ञान... आहाहा! या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग... आहाहा! यह सब मैंने निर्भर निमग्न कर दिया। अपने स्वरूप में मग्न होना था, तो ये कहे, उसको मैंने मेरे में मग्न कर दिया। ऐसा मन्थर। है न? मतवाला। आहाहा! किसी की माने नहीं। सत्य बात कहे कि ये आस्रव है, दुःखदायक है। नहीं...नहीं। आहाहा! मतवाला-मत का अभिमान हो गया उसको। आहाहा! आचार्य अमृतचन्द्राचार्य वर्णन तो शान्तरस का (करते हैं)। उसमें वीररस का वर्णन करके वीररस के अद्भुतरस का वर्णन करते हैं।

महायोद्धा उसको—आस्रव को जीत लेता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा आस्रव है, उसको भी ज्ञानयोद्धा... आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, उसके आधीन हुआ, वह ज्ञानयोद्धा प्रगट हुआ। उस ज्ञानयोद्धा ने ऐसे आस्रव को जीत लिया। गर्व में अभिमानी था, उसको भी नाश कर दिया, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : भावास्रव, द्रव्यास्रव...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों, दोनों। यहाँ तो भावास्रव की बात मुख्य है। द्रव्यास्रव तो उसके कारण से नाश होता है। परन्तु ये तो दोनों साथ लेना है। आगे आयेगा।

'समररंगपरागतं' संग्राम ऐसी ही भूमि,... आहाहा! भगवान आत्मा अपना ज्ञानस्वभाव का आस्रव लिया तो ज्ञानयोद्धा, श्रद्धा-ज्ञान की परिणति प्रगट हुई, उस महायोद्धा के समक्ष आस्रव महासंग्राम में आकर खड़ा रहा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात ली न। समरंग **संग्राम ऐसी ही भूमि, उसमें सन्मुख आया है।** कौन? आस्रव। ज्ञानयोद्धा के सामने संग्राम में आस्रव सामने आया। आहाहा! **जिस प्रकार प्रकाश-अन्धकार का परस्पर विरोध है...** जैसे प्रकाश और अन्धकार का परस्पर विरोध है, **उसी प्रकार शुद्धज्ञान और आस्रव को परस्पर विरोध है।** आहाहा! क्या कहते हैं? आस्रवरूपी अन्धकार था, परन्तु ज्ञानरूपी प्रकाश जहाँ हुआ, वहाँ अन्धकार का नाश हो गया। आहाहा! जहाँ प्रभु आत्मा चैतन्यस्वरूप जागती ज्योति जलहल... आहाहा! उस ज्ञान का जहाँ वेदन हुआ तो

उस ज्ञान वेदन ने आस्रव को उत्पन्न होने न दिया, उसका अर्थ जीता। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धज्ञान और आस्रव को परस्पर विरोध है। क्या कहते हैं? कि जब शुद्ध चैतन्यज्ञान, जब सम्यग्ज्ञान, अन्तर का ज्ञान, ज्ञान का स्पर्श करके ज्ञान, ज्ञान हुआ, ज्ञानस्वरूपी भगवान को स्पर्श करके ज्ञान हुआ, यह ज्ञानप्रकाश हुआ, वहाँ आस्रवरूपी अन्धकार नहीं रहता। पहला जीता, ऐसा कहा, परन्तु वहाँ अन्धकार रहता ही नहीं। वह जीता। आहाहा! समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य ने मांगलिक किया। आस्रव अधिकार शुरु करते हुए मांगलिक किया। आहाहा!

मैं दो-दो महीने के उपवास करनेवाला, दो-दो महीने के संथारा करनेवाले, ये सब राग की क्रिया का अभिमान हो गया। आहाहा! कहते हैं कि हम ज्ञानी हैं। खाते-पीते हैं और मजा करते हैं और कहते हैं कि हम ज्ञानी हैं। ऐसे आस्रव मजाक करता है। समझ में आया? इस ज्ञानयोद्धा ने इसका नाश कर दिया। ज्ञानी आत्मा घर में हो या जंगल में हो, वह तो राग से भिन्न ही है। चाहे तो जंगल में हो। अरे! हजारों रानी, छियानवें हजार रानियों का समूह हो, धर्मी तो राग से भिन्न ही है। आहाहा! धर्मी तो राग से विरक्त है और ज्ञानस्वभाव में रक्त है। आहाहा! यह बात कहाँ बैठे? समझ में आया? यह शुद्धज्ञान और आस्रव का परस्पर विरोध है। आहाहा! वहाँ राग की एकताबुद्धि राग को गर्व हुआ, वहाँ ज्ञान की एकताबुद्धि का नाश हो गया। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! परसन्मुख था तो आस्रव था और परसन्मुख तो अज्ञानी अनादि से अज्ञानी को मैंने कर दिया है, ऐसा कहता है। स्वसन्मुख किया, उसने यह राग के गर्व का नाश कर दिया है, उत्पन्न ही होने न दिया। प्रकाश के आगे अन्धकार उत्पन्न होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! पहले मांगलिक किया।

ज्ञानस्वभावी बादशाह भगवान आत्मा अपने में जहाँ लीन हुआ... आहाहा! वहाँ प्रकाश के भाव में राग तो अन्धकार है। अशुचि है, जड़ है, दुःखरूप है, अजीव है। आहाहा! जीव के चैतन्यस्वभाव का जहाँ भान हुआ, वहाँ इस अजीव की उत्पत्ति होने का नाश हुआ। आहाहा! मांगलिक किया। ऐसा मार्ग है।

कलश-११४

(शालिनी)

भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो
जीवस्य स्याद् ज्ञाननिर्वृत्त एव।
रुन्धन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान्
एषोऽभावःसर्वभावास्रवाणाम्।।2-114।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'जीवस्य यः भावः ज्ञाननिर्वृत्त एव स्यात्' [जीवस्य] काललब्धि प्राप्त होने से प्रगट हुआ है, सम्यक्त्वगुण जिसका, ऐसा है जो कोई जीव, उसका [यः भावः] जो कोई सम्यक्त्वपूर्वक शुद्धस्वरूप अनुभवरूप परिणाम। ऐसा परिणाम कैसा होता है? [ज्ञाननिर्वृत्त एव स्यात्] शुद्धज्ञानचेतनामात्र है। उस कारण से 'एषः' ऐसा है जो शुद्धचेतनामात्र परिणाम, वह 'सर्वभावास्रवाणां अभावः' [सर्व] असंख्यात लोकमात्र जितने [भाव] अशुद्ध-चेतनारूप राग, द्वेष, मोह आदि जीव के विभावपरिणाम होते हैं, जो [आस्रवाणां] ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म के आगमन को निमित्तमात्र हैं, उनके [अभावः] मूलोन्मूल विनाश है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस काल, शुद्धचैतन्यवस्तु की प्राप्ति होती है, उस काल, मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप जीव का विभावपरिणाम मिटता है; इसलिए एक ही काल है; समय का अन्तर नहीं है। कैसा है शुद्धभाव? 'राग-द्वेष-मोहैः विना' रागादि परिणामरहित है। शुद्धचेतनामात्र भाव है। और कैसा है? 'द्रव्यकर्मास्रवौघान् सर्वान् रुन्धन्' [द्रव्यकर्म] ज्ञानावरणादि कर्मपर्यायरूप परिणमा है पुद्गलपिण्ड, उसका [आस्रव] होता है धाराप्रवाहरूप समय-समय आत्मप्रदेशों के साथ एकक्षेत्रावगाह, उसका [ओघ] समूह। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञानावरणादिरूप कर्मवर्गणा परिणमती है, उसके भेद असंख्यात लोकमात्र हैं। उसके [सर्वान्] जितने धारारूप आते हैं कर्म, उन सबको [रुन्धन्] रोकता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई ऐसा मानेगा कि जीव का शुद्धभाव होता हुआ, रागादि अशुद्धपरिणाम का नाश करता है; आस्रव, जैसा ही होता है, वैसा ही होता है, सो ऐसा तो नहीं; जैसा कहते हैं, वैसा है—जीव के शुद्धभावरूप परिणमने पर, अवश्य ही अशुद्धभाव मिटता है। अशुद्धभाव के मिटनेपर, अवश्य ही द्रव्यकर्मरूप आस्रव मिटता है; इसलिए शुद्धभाव उपादेय है; अन्य समस्त विकल्प, हेय हैं।।2-114।।

कलश - ११४ पर प्रवचन

११४ श्लोक (आस्रव अधिकार का) दूसरा श्लोक।

भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो
जीवस्य स्याद् ज्ञाननिर्वृत्त एव।
रुन्धन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान्
एषोऽभावःसर्वभावास्रवाणाम्।।2-114।।

खण्डान्वय सहित अर्थ - आया, देखो! द्रव्य और भाव, दोनों। जीव को **काललब्धि प्राप्त होने से प्रगट हुआ है, सम्यक्त्वगुण जिसका...** आहाहा! अपने शुद्ध स्वभाव सन्मुख की दृष्टि की (तो) काललब्धि प्रगट हो गयी। तब काललब्धि। आहाहा! पुरुषार्थ से काललब्धि प्राप्त हुई है। आहाहा! **काललब्धि प्राप्त होने से प्रगट हुआ है, सम्यक्त्वगुण जिसका ऐसा है, जो कोई जीव...** आहाहा! **उसका जो कोई भाव सम्यक्त्वपूर्वक शुद्धस्वरूप अनुभवरूप परिणाम।** आहाहा! यह शुद्ध सम्यग्दर्शन जहाँ हुआ, वहाँ ज्ञान का शुद्ध परिणमन हुआ। अशुद्ध परिणमन था, वह आस्रव छूट गया। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दर्शन में ही आस्रव नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। क्योंकि मिथ्यात्व, यह मुख्य आस्रव है। आहाहा! मिथ्यात्व, वही मुख्य संसार है। मिथ्यात्व, यही संसार का मूल है। यह जहाँ निकल गया... आहाहा!

सम्यक्त्वपूर्वक शुद्धस्वरूप अनुभवरूप परिणाम, हुआ। आहाहा! शुद्ध चैतन्यस्वरूप, यह अपना पवित्र परिणाम, पवित्र भगवान के सन्मुख होकर पवित्र परिणाम हुआ। आहाहा! '**ज्ञाननिर्वृत्तः एव स्यात्**' यह तो **शुद्ध ज्ञानचेतनामात्र है,...** देखो! ज्ञान से उत्पन्न हुआ है, ऐसा कहते हैं। ये वस्तु से निपजा है परिणाम। सम्यग्दर्शन ज्ञान शुद्ध परिणाम, आत्मा-वस्तु से उपजा है। आहाहा! ऐसे थोड़े शब्द और गभीरता बहुत, भाई! आहाहा!

'**ज्ञाननिर्वृत्त एव स्यात्**' शब्द थोड़ा कर डाला है। कहना है ऐसा कि ये तो ज्ञान से निपजा है वो, ऐसे। स्वभाव के भान से उपजा है, वह भाव। आहाहा! चैतन्य के नूर का

तेज के भाव से उपजा है भाव। सम्यग्ज्ञान, दर्शन आदि, ये परिणाम '**ज्ञाननिर्वृत्त**' है। **उस कारण से 'एषः' ऐसा है जो शुद्धचेतनामात्र परिणाम,...** ऐसा जो शुद्ध चेतनामात्र परिणाम। सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि, ये शुद्ध चेतनामात्र परिणाम। ये ज्ञानचेतनारूपी परिणाम। राग होता है, वह कर्म चेतनारूपी परिणाम था। आहाहा! यह ज्ञानचेतनरूपी (परिणाम)... ज्ञानचेतना-अपने में ज्ञानचेतना प्रगट हुई। आहाहा! अपना स्वरूपज्ञान है, उसका ज्ञान किया, यह ज्ञानचेतना प्रगट हुई। समझ में आया? शास्त्र सुनना, आदि, यह ज्ञानचेतना नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, बापू! बहुत कठिन काम है।

ज्ञानस्वरूपी भगवान चैतन्यरसकन्द, उसके सन्मुख से हुई जो पर्याय, यह ज्ञानचेतना प्रगट हुई, यह शुद्धचेतना प्रगट हुई। आहाहा! **वह 'सर्वभावास्त्रवाणां अभावः'** यह शुद्ध चेतनामात्र परिणाम, भावास्त्रव का अभाव। सर्व, हों! आहाहा! असंख्यात लोकप्रमाण जितने अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष मोहादि जीव के विभावपरिणाम होते हैं। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दर्शन हुआ और मिथ्यात्व का नाश हुआ। बस, इतनी बात करते हैं। वहाँ सर्व आस्त्रव रुक गये। मिथ्यात्व, मूल तो आस्त्रव यही है न! ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'सर्वभावास्त्रवाणां अभावः' पहले यह लिया, देखो **असंख्यात लोकमात्र जितने अशुद्ध चेतनारूप...** दया, दान, वत, भक्ति, काम, क्रोध, मोह, मिथ्यात्व आदि जीव के विभाव परिणाम होते हैं, सो **'आस्त्रवाणां' ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म के आगमन (आस्त्रव) को निमित्तमात्र हैं...** नये कर्म को ये मिथ्यात्व भावादि निमित्तमात्र हैं। नया कर्म तो अपने उपादान से होता है। तो ये विकार परिणाम उसको निमित्तमात्र हैं। आहाहा! **उनके मूलोन्मूल विनाश है।** आहाहा! किसका? भावास्त्रव का। मूलोन्मूल-मूलादि उन्मूलमं। मूल में से उन्मूल कर दिया। आहाहा! बहुत जोर है। मिथ्यात्व के परिणाम को तो सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ मूल से उन्मूल कर दिया, कहते हैं। मूल में से उन्मूल कर दिया—नाश कर दिया। जिसका अंश भी रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? मूलोन्मूल। किसका? जिस भाव से आठ कर्म आनेवाले थे निमित्त—इस भाव का अभाव। **'अभावः'** की व्याख्या की। बिल्कुल अभाव कर दिया है, ऐसा। ऐसा शब्द है न मूल? सर्व शब्द था न? **'सर्वभावास्त्रवाणां अभावः'** ऐसा आया न? **'सर्वभावास्त्रवाणां अभावः'** सम्यग्दर्शन

हुआ तो सर्व आस्रवों का अभाव हो गया, कहते हैं। आहाहा!

मिथ्यात्व और अविरति, जो मिथ्यात्व का प्रधानपने जो पाप था, वही संसार है। आहाहा! तो आत्मा आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु, उसके सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन का परिणाम हुआ, उसने सर्व भावास्रव, सर्व भावास्रव, मूल उन्मूल कर दिया, मूल में से नाश कर दिया। आहाहा! बस, सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ सब आस्रव का नाश? मिथ्यात्व, वही संसार है न, इस अपेक्षा से बात है। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा-मिथ्यादृष्टिपना, ये ही मुख्य पूरा संसार है। ये मिथ्यात्व, वही आस्रव है। बाद का आस्रव तो थोथा गिना है, सादा है ये। आहाहा! यहाँ तो ये कहा कि जिसको सम्यग्दर्शन परिणाम हुआ, उसका सर्व आस्रव निरोध हो गया। जो मिथ्यात्व सम्बन्धी जो आस्रव था, वह आस्रव गिनने में आया। समझ में आया? तो यह सर्व आस्रव का निरोध हो गया। आहाहा!

मूलोन्मूल '**अभावः**' की इतनी व्याख्या की। आहाहा! '**सर्वभावास्त्रवाणां अभावः**' सर्व **असंख्यात लोकमात्र जितने अशुद्ध चेतनारूप...** परिणाम। ये '**आस्त्रवाणां**' नये कर्म का निमित्त। उसका अभाव किया। आहाहा! मुख्यता तो मिथ्यात्व-रागादि की एकता और पर्यायबुद्धि, ये ही मिथ्यात्व, ये ही संसार है। और सारे संसार की जड़, निगोद में जाने की (मूल) यह चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं कि जहाँ शुद्ध चैतन्य परिणाम स्वभाव के अवलम्बन से उत्पन्न हुआ, सम्यग्दर्शन परिणाम। आहाहा! उसने सर्व आस्रव को मूल में से नाश कर दिया। ऐसा कोई कहता है कि ये तो तुम्हारा एकान्त है, ऐसा कहे, लो। मिथ्यात्व गया तो समाप्त हो गया? संसार गया? अब आस्रव है ही नहीं? सुन तो सही। किस अपेक्षा से बात की है? आचार्य स्वयं पुकार करते हैं। आचार्य स्वयं कहते हैं न? आहाहा! '**सर्वान् द्रव्यकर्मास्त्रवौधान् एषोऽभावः**' लो। आहाहा! जो करनेयोग्य था कर लिया। स्वभाव की अनुभवदृष्टि हुई... आहाहा! तो उसको सर्व आस्रव रुक गया। मिथ्यात्व सम्बन्धी आस्रव को ही यहाँ आस्रव गिनने में आया है। समझ में आया? आहाहा! मूल जिसका निकल गया, पश्चात् उसके पत्ते की डाली कितने काल हरा रहेगी। पन्द्रह दिन, महीने में सूख जायेंगे। उसकी यहाँ गिनती की ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'**सर्वभावास्त्रवाणां अभावः**', '**सर्वभावास्त्रवाणां अभावः**' बस, सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ सर्व भावास्त्रवों का अभाव हो गया? यह क्या कहते हैं? उसमें लिया है। मिथ्यात्व ही आस्त्रव है, ऐसा लिया है, हों! मिथ्यात्व, वही आस्त्रव है, मूल में लिया है।

मुमुक्षु : जयचन्दजी छाबड़ा ने लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह एक ही बात। आहाहा!

सर्व की व्याख्या की—असंख्यात लोकमात्र परिणाम। आहाहा! भाव अर्थात् अशुद्ध चेतनारूप। '**आस्त्रवाणां**' अर्थात् नये कर्म के निमिततरूप ये आस्त्रव। नये कर्म के आने के निमित्त, वे आस्त्रव, उनका अभाव। आहाहा! जहाँ नये आस्त्रवों का जहाँ अभाव (हुआ) तो पुराना कर्म जो है, उसका तो अभाव हुआ ही, जड़कर्म का अभाव तो हुआ ही। क्योंकि उसका निमित्त वह था। उसका अभाव हुआ तो इसका तो है ही। आहाहा! ज्ञानी को कर्मबन्धन होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। कर्मबन्धन का कारण भाव आस्त्रव मिथ्यात्व, उसका नाश हुआ। आहाहा! तो ये आस्त्रव ज्ञानावरणी का निमित्त था, उसका नाश किया, तो बन्ध ही है नहीं। तो ज्ञानावरणी का बन्धन भी उसको नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो! सम्यग्दर्शन का माहात्म्य! अरे, सम्यग्दर्शन जिसके आश्रय हुआ, उसका माहात्म्य!! आहाहा! उसकी तो कहीं दरकार नहीं, फिर यह व्रत करो और उपवास करो, ऐसा करते-करते तुम्हें निश्चय हो जायेगा। बहुत बात, फेरफार बहुत, भाई! आस्त्रवों का पहला पुकार ये है आचार्यों की। आहाहा! '**सर्वान् द्रव्यकर्मास्त्रवौधान्**' द्रव्यकर्म के आस्त्रवों का कारण जो था, ये '**सर्वान् अभावः**' आहाहा! '**सर्वभावास्त्रवाणाम् अभावः**'।

भावार्थ इस प्रकार है - जिस काल शुद्ध चैतन्यवस्तु की प्राप्ति होती है... आहाहा! जिस काल अर्थात् काललब्धि का अर्थ जिस काल। **शुद्ध चैतन्यवस्तु की प्राप्ति होती है, उस काल मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप जीव का विभावपरिणाम मिटता है,...** मिथ्यात्व और राग, द्वेषरूप जीव का परिणाम मिटता है। मिथ्यात्व सम्बन्धी साथ में ये। ऐसा कोई कहे कि जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ मिथ्यात्व का नाश हुआ, परन्तु राग-द्वेष का (नाश हो गया)? ये मिथ्यात्व सम्बन्धी जो राग, द्वेष था, उसका नाश हुआ। अनन्तानुबन्धी। मिथ्यात्व और राग-द्वेष। मिथ्यात्व अर्थात् दर्शनमोह अथवा विपरीत

मान्यता और राग, द्वेष, ये अनन्तानुबन्धी के परिणाम। बस, इतनी बात लेना है यहाँ तो। आहाहा! जिसको आत्मा भगवान परमानन्द की कीमत हुई, उसका माहात्म्य अन्दर आकर सम्यग्दर्शन हुआ, उसके नये कर्म के कारण भावास्रव सर्वथा प्रकार से रुक जाते हैं। मिथ्यात्व और राग, द्वेष का सर्वथा प्रकार से नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य, कीमत और मिथ्यात्व की हीनता, नीचता, यह बतायी यहाँ। मिथ्यात्व जैसा नीच कर्म नहीं और सम्यग्दर्शन जैसा ऊँचा धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म मार्ग, बापू! **इसलिए एक ही काल है, समय का अन्तर नहीं है।** क्या कहते हैं कि अपने शुद्धस्वरूप की जहाँ प्रतीति, सम्यक् अनुभूति हुई, उसी समय मिथ्यात्व और राग, द्वेष का नाश.. समय एक ही है। प्रकाश के काल में ही अन्धकार का नाश है। अन्धकार के नाश का काल दूसरा और प्रकाश का काल दूसरा, ऐसा है नहीं। आहाहा! पीछे थोड़ा अव्रत, प्रमाद आदि रहा, ये तो तोड़ डाले ऐसा है। नाश हो जायेंगे ये। इस अपेक्षा से यहाँ तो मिथ्यात्व और राग, द्वेष का नाश हुआ तो सर्व आस्रव का नाश हो गया, जाओ। आहाहा! इनकी कीमत नहीं और बाहर के व्रत और तप और उपवास ये। आहाहा! यह क्रियाकाण्ड की महिमा और माहात्म्य, यह मिथ्यात्व है। समझ में आया? **इसलिए एक ही काल है, समय का अन्तर नहीं है।**

कैसा है शुद्धभाव? 'रागद्वेष-मोहैः बिना' रागादि परिणामरहित है। आहाहा! मिथ्यात्व सम्बन्धी अनन्तानुबन्धी के राग, द्वेष मुख्यतः संसार। इन **रागादि परिणामरहित है।** आहाहा! आत्मा की प्रतीति, सम्यक् अनुभूति हुई। आहाहा! उसी समय रागादि परिणाम रहित है ये। आहाहा! **शुद्ध चेतनामात्र भाव है।** अकेला पवित्र भगवान ज्ञान, आनन्दस्वरूप भाव है, बस। आहाहा! क्योंकि आत्मा पवित्र शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। उसके आश्रय से—अवलम्बन से शुद्ध चेतनामात्र परिणाम है। उसमें रागादि का परिणाम बिल्कुल नहीं है। आहाहा!

इसमें भी कोई एकान्त करने जाये... वह कहे, बस! हो गया? मिथ्यात्व गया, तब सब गया, ऐसा कोई मान ले एकान्त। आहाहा! तो किस अपेक्षा से कथन है? संसार का

मूल मिथ्यात्व और मिथ्यात्व के साथ उस सम्बन्धी राग-द्वेष का नाश, ये संसार का नाश यहाँ कहने में आया है। बाकी पीछे अव्रत, प्रमाद, कषाय का राग है। और वह है, परन्तु उसका तो वास्तव में तो सम्यग्दर्शन, चैतन्य परिणाम जहाँ हुआ, वहाँ तो मिथ्यात्व, राग, द्वेष गया, परन्तु अव्रत का अंश भी गया, प्रमाद का अंश गया, कषाय का अंश गया और कम्पन का योग (अंश) भी गया। आहाहा! समझ में आया? स्वरूप की प्रतीति और अनुभव जहाँ हुआ, तो कहते हैं कि उस समय योग कम्पन है न, उसका एक अंश ना हो गया। आहाहा! इस अपेक्षा से सर्व आस्रव का नाश कहने में आया है। ऐसी बातें हैं। ये आता है न पीछे?

आस्रव अधिकार में आता है। मिथ्यात्व के जाते अव्रत का अंश भी जाता है, प्रमाद, कषाय और योग का अंश भी जाता है। क्यों? कि सम्यग्दर्शन अर्थात् सर्व गुणांश, वह समकित। तो सर्व गुणांश, वह समकित का अर्थ क्या? कि आत्मा में जितने गुण हैं, अयोग हैं, चारित्र है, स्थिर है, वीतरागता है आदि सब गुणों का एक समय में सब गुण की व्यक्तता अंश प्रगट होती है निर्मल। आहाहा! निश्चय से तो ये प्रतिजीवी गुण जो चार अघाति के हैं। आहाहा! उसका भी एक अंश प्रगट होता ही है साथ में। ऐसी बातें है यह तो। आहाहा! इस अपेक्षा से सम्यक् शुद्ध चैतन्य का अनुभव हुआ, वहाँ सर्व आस्रवों का, नया कर्म का कारण, सर्व आस्रव, वह सब रुक गया। आहाहा! गम्भीर बात है, गम्भीर बात।

गम्भीर का अर्थ किया था न? अनन्त शक्ति से विराजमान किया। गहरा... गहरा... ऊपर किया था पहले। गम्भीर अलब्ध मध्य। ऐसा किया। गम्भीर अर्थात् अलब्ध मध्य इसका मध्यपना प्राप्त न हो। आहाहा! संस्कृत में ऐसा है। गम्भीर का अर्थ संस्कृत में ऐसा है। अलब्ध मध्य जिसका मूल मध्य प्राप्त न हो, इतना गम्भीर। आहाहा! भगवान स्वभाव गम्भीर। आहाहा! समझ में आया? यह उसका परिणमन हुआ, वह गम्भीर है — ऐसा कहते हैं। यह कहते हैं न? परिणमन की बात है न? योद्धा की। अनन्त शक्ति विराजमान गम्भीर है। आहाहा! अलब्ध मध्य। अथवा ये परिणाम जो सम्यग्दर्शन का हुआ, अलब्ध मध्य उसका मध्यपना प्राप्त न कर सके, ऐसी गम्भीर चीज़ है। आहाहा! मूल बात का वर्णन है ये। आहाहा!

शुद्ध चेतनामात्र भाव है। और कैसा है? 'द्रव्यकर्मास्रवौधान् सर्वान् रुन्धन्' ज्ञानावरणादि कर्मपर्यायरूप परिणमा है पुद्गलपिण्ड... जड़, **उसका होता है धाराप्रवाहरूप समय-समय आत्मप्रदेशों के साथ एकक्षेत्रावगाह, उसका समूह।** धाराप्रवाहरूप समय-समय आत्मप्रदेशों की एक क्षेत्रावगाह पिण्ड है। **भावार्थ इस प्रकार है - ज्ञानावरणादिरूप कर्मवर्गणा परिणमती है, उसके भेद असंख्यात लोकमात्र हैं। उसके जितने धारारूप आते हैं, कर्म उन सबको रोकता हुआ।** सबको रोकता है। भावास्रव रुक गया तो द्रव्यास्रव भी रुक जाता है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! भावास्रव भी सर्वथा रुक गया और कर्म सर्वथा रुक गया। ऐसा तो दसवें गुणस्थान के छह कर्म बँधते हैं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ जड़कर्म भी सब रुक गये। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के कारण जो कर्म आते थे, वह कर्म रुक गये। मूल तो ये थे। आहाहा! भारी काम, बापू! यह तो ऊपर से देखे, एक-दो शब्द कहीं से पकड़ ले तो यह कहीं समझा, ऐसा नहीं है। आहाहा! गम्भीर चीज़ है। आहा!

उसके भेद असंख्यात लोकमात्र हैं। उसके जितने धारारूप आते हैं, कर्म उन सबको रोकता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई ऐसा मानेगा कि जीव का शुद्ध भाव होता हुआ रागादि अशुद्ध परिणाम का नाश करता है, आस्रव जैसा ही होता है, वैसा ही होता है... नया कर्म तो आनेवाला है, इतना आयेगा ही, ऐसा कोई अज्ञानी कहे। क्या कहते हैं? अशुद्ध परिणाम मिटे, परन्तु कर्म जो आनेवाले हैं, वे तो आयेंगे ही इतना। आहाहा! झूठ बात है तेरी, सुन! आहाहा! **कोई ऐसा मानेगा कि जीव का शुद्धभाव होता हुआ रागादि अशुद्ध परिणाम का नाश करता है,...** यह सर्वथा, हों! **आस्रव जैसा ही होता है, वैसा ही होता है...** कर्म का आवरण जैसा आनेवाला हो, वैसा ही आता है।

सो ऐसा तो नहीं... कर्म भी आता है, वह एकदम रुक जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो! सम्यग्दर्शन का माहात्म्य! आहाहा! देखो! ये स्वभाव का अनुभव हुआ, उसका माहात्म्य! बाकी सब थोथा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या कहा? कि आत्मा का शुद्धचेतना परिणाम सम्यग्दर्शन का हुआ तो अशुद्धचेतना, अशुद्ध का भाव तो रुक गया। परन्तु कर्म तो जैसा है आनेवाला आयेगा ही, ऐसा अज्ञानी कहते हैं। तो

उसको कहते हैं कि तेरी बात झूठी है। कर्म भी रुक गया और आस्रव भी रुक गया। आहाहा!

जीव के शुद्धभावरूप परिणमने पर अवश्य ही अशुद्धभाव मिटता है। आहाहा! जीव के शुद्धभावरूप परिणमने पर, शुद्धस्वरूप तो है। परन्तु शुद्धस्वभाव परिणमने पर, पर्याय में शुद्धभाव परिणमने पर। आहाहा! देखो! यहाँ यह कहा, कल ऐसा आया था कि अशुद्ध का आस्वाद आता है। आया था? ये ज्ञान की पूर्ण दशा सर्व प्रकार से बताने को बात की। यहाँ तो मिथ्यात्व का नाश हुआ, वहाँ समकित प्रगट हुआ तो आस्रव भाव आस्रव रुक गया तो कर्म भी रुक गया, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! वहाँ ऐसा लिया है। मुनि को भी जितनी अशुद्धता है, उसका—अशुद्धता का आस्वाद है। यहाँ कहा कि सम्यग्दर्शन जहाँ है, वहाँ अशुद्धभाव है ही नहीं। तो कर्म आनेवाला है, वे नहीं आते। आहाहा! किस अपेक्षा से कहना है। यहाँ पकड़े देखो यहाँ कहा है। अशुद्धता उसको है ही नहीं थोड़ी। तो अशुद्धता नहीं तो दुःख भी नहीं। तो कर्म भी उसको बिल्कुल आते नहीं, ऐसा यहाँ कहा है न? किस अपेक्षा से? भाई! समझना है।

मुमुक्षु : सेठयाजी यहाँ रुक गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो बहुत जगह है। हो बेचारा। कहते हैं, पीछे से कहे यहाँ आने का भाव है। सुना है, ऐसा सुना है, पीछे से यहाँ आना है, वहाँ हमारा समाधान होगा। ऐसा कहीं सुना है। कहे या नहीं। उसका लड़का, लड़का यहाँ आया था कहीं? शुभकरण, सुना है। हो वह सही। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसे ही पकड़ ले...

सोगानी ने ऐसा कहा, ज्ञानी को भी जितना राग है, उतना दुःख का वेदन है। आहाहा! अस्थिरता का राग आया है, यह भी दुःख है। ज्ञानी को भी दुःख का वेदन है। यहाँ इनकार करते हैं। ज्ञानी को अशुद्धभाव है नहीं और कर्म नहीं। यह तो किस अपेक्षा से? मिथ्यात्व सम्बन्धी के राग-द्वेष और मिथ्यात्व, वह भाव नहीं। अस्थिरता का भाव है, उसे यहाँ गौण करके 'नहीं' — ऐसा कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' आहाहा! जिस अपेक्षा से जहाँ कहा हो, उस अपेक्षा से समझना चाहिए न। एकान्त पकड़ ले कि देखो! ज्ञानी को-समकिती को पीछे

बिल्कुल कर्मबन्ध ही नहीं और अशुद्ध परिणाम भी बिल्कुल नहीं। मीठालालजी! यहाँ बापू! भाई! यहाँ तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी (गयी, इसकी बात है)। राग-द्वेष में अनन्तानुबन्धी का और मिथ्यात्व में विपरीत मान्यता के आस्रव का अभाव है। तो इतना कर्म का भी अभाव है। मूल चीज़ तो ये थी, वह रुक गयी। पीछे थोड़ा (आस्रव) है, उसको गौण करके मना किया है। बिल्कुल नहीं है अशुद्धता, कर्म बिल्कुल समकिती को आता ही नहीं—ऐसा है नहीं। आहाहा!

मुनि को छठवें गुणस्थान को जितना पंच महाव्रत के परिणाम उतपन्न होता है, यह अशुद्ध है। यहाँ तो कहते हैं, अशुद्ध परिणाम रुक गया। समकित हुआ, वहाँ अशुद्ध परिणाम रुक गया। वहाँ छठवें गुणस्थान को पंच महाव्रत के परिणाम अशुद्ध है और आठ कर्म का बन्धन है। छठवें भी आयुष्य सहित बँधे तो आठ बँधे। आयुष्य न हो तो सात तो बँधते हैं। दसवें गुणस्थान छह कर्म बँधते हैं। यहाँ कहते हैं, कर्म बिल्कुल बँधता नहीं। कई अपेक्षा से बात है? शान्तिभाई! आहाहा!

आस्रव अधिकार में मिथ्यात्व की प्रधानता का भाव बताकर सम्यक् की प्रधानता में बन्ध और आस्रव है नहीं, ऐसा कहने में आया है। क्योंकि सम्यग्दर्शन में सारा आत्मा अनुभव में आया तो सारा आत्मा आनन्द का पवित्रता का नाथ परमात्मा अनुभव में आया तो उसमें आस्रव-फास्रव है नहीं, ऐसा बताया। अस्थिरता की बात यहाँ गौण करके बताया है। आहाहा! यह तो पकड़ ले कि देखो यहाँ लिखा है। तो कल आया था कि अशुद्धता का आस्वाद आता है ज्ञानी को। आया था न? अशुद्ध है तो आस्वाद आता है या हुए बिना (आता है)। आहाहा! चारित्र का दोष अंश भी है, तब तक आस्रव है और तब तक नया कर्म भी आता है। इसको यहाँ मिथ्यात्व का अनन्तानुबन्धी का मुख्य लेकर, यह गौण करके बात की है। परन्तु एकान्त खींचे की यहाँ हाँ, समकिती को है ही नहीं कुछ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! जैनदर्शन गम्भीर बहुत। इस श्लोक में तो समकिती को बिल्कुल आस्रव और नया आवरण है ही नहीं (- ऐसा कहा है)। यह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का मूल कारण है, ये बताना है। है?

अवश्य ही अशुद्धभाव मिटता है। देखो! **जीव के शुद्ध भावरूप परिणमने पर**

अवश्य ही अशुद्धभाव मिटता है। अशुद्ध भाव के मिटने पर अवश्य ही द्रव्यकर्मरूप आस्त्रव मिटता है... आहाहा! **इसलिए शुद्धभाव उपादेय है...** आहाहा! देखो! परिणति है, वह उपादेय है, ऐसा लिया। उपादेय तो द्रव्य त्रिकाली है, परन्तु शुद्ध परिणति प्रगट हुई, वह उपादेय है और **अन्य समस्त विकल्प हेय है।** यह बताना है। समझ में आया? शुद्धस्वरूप परमानन्दमूर्ति भगवान का शुद्धरूप से परिणमन हुआ, वह परिणमन उपादेय है। प्रगट करनेयोग्य है तो उपादेय कहने में आया और राग हेय है, इसलिए राग नहीं, बन्धन नहीं, ऐसा कहने में आया। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-११५

(उपजाति)

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो
द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो
निरास्रवो ज्ञायक एक एव।।3-115।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अयं ज्ञानी निरास्रव एव' [अयं] द्रव्यरूप विद्यमान है, वह [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव, [निरास्रवः एव] आस्रव से रहित है। भावार्थ इस प्रकार है — सम्यग्दृष्टि जीवों को नौंध कर (समझपूर्वक) विचारने पर, आस्रव घटता नहीं। कैसा है ज्ञानी? 'एकः' रागादि अशुद्धपरिणाम से रहित है, शुद्धस्वरूप परिणमा है। और कैसा है? 'ज्ञायकः' स्वद्रव्यस्वरूप-परद्रव्यस्वरूप समस्त ज्ञेयवस्तु के जानने के लिए समर्थ है। भावार्थ इस प्रकार है — ज्ञायकमात्र है; रागादि अशुद्धरूप नहीं है। और कैसा है? 'सदा ज्ञानमयैकभावः' [सदा] सर्व काल धाराप्रवाहरूप [ज्ञानमय] चेतनरूप, ऐसा है [एकभावः] एक परिणाम जिसका, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है — जितने विकल्प हैं, वे सब मिथ्या। ज्ञानमात्र वस्तु का स्वरूप था, सो अविनश्वर रहा। निरास्रवपना, सम्यग्दृष्टि जीव को जिस प्रकार घटता है, उस प्रकार कहते हैं — 'भावास्रवाभावं प्रपन्नः' [भावास्रव] मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्धचेतनापरिणाम, उसका [अभावं] विनाश, उसको [प्रपन्नः] प्राप्त हुआ है। भावार्थ इस प्रकार है — अनन्त काल से लेकर जीव, मिथ्यादृष्टि होता हुआ मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप परिणमता था, उसका नाम आस्रव है। सो तो काललब्धि प्राप्त होने पर वही जीव, सम्यक्त्वपर्यायरूप परिणमा, शुद्धतारूप परिणमा, अशुद्धपरिणाम मिटा; इसलिए भावास्रव से तो इस प्रकार रहित हुआ। 'द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः' [द्रव्यास्रवेभ्यः] ज्ञानावरणादि कर्म पर्यायरूप, जीव के प्रदेशों में बैठे हैं पुद्गलपिण्ड, उनसे, [स्वतः] स्वभाव से [भिन्नः एव] सर्व काल निराला ही है। भावार्थ इस प्रकार है — आस्रव दो प्रकार का है। विवरण — एक द्रव्यास्रव है, एक भावास्रव है। द्रव्यास्रव कहनेपर, कर्मरूप बैठे हैं, आत्मा के प्रदेशों में पुद्गलपिण्ड, ऐसे द्रव्यास्रव से जीव, स्वभाव ही से रहित है। यद्यपि जीव के प्रदेश, कर्म

पुद्गलपिण्ड के प्रदेश एक ही क्षेत्र में रहते हैं, तथापि परस्पर एक द्रव्यरूप नहीं होते हैं; अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप रहते हैं। इसलिए पुद्गलपिण्ड से, जीव भिन्न है। भावास्रव कहनेपर, मोह-राग-द्वेषरूप विभाव अशुद्धचेतनपरिणाम, सो ऐसा परिणाम यद्यपि जीव के मिथ्यादृष्टि अवस्था में विद्यमान ही था तथापि सम्यक्त्वरूप परिणमने पर, अशुद्धपरिणाम मिटा। इस कारण सम्यग्दृष्टि जीव, भावास्रव से रहित है। इससे ऐसा अर्थ निपजा कि सम्यग्दृष्टि जीव, निरास्रव है।।3-115।।

नोट - १९७७-७८ के वर्ष में यह प्रवचन उपलब्ध नहीं होने से १९६७ के वर्ष का प्रवचन लिया है।

मगसिर कृष्ण ४, बुधवार, दिनांक २०-१२-१९६७
कलश-११५, प्रवचन-१००

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो
द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो
निरास्रवों ज्ञायक एक एव॥३-११५॥

खण्डान्वयसहित अर्थ :- '**अयं ज्ञानी निरास्रवः एव**' यह '**अयं**' शब्द वहाँ रखा है। नहीं पश्चात् नहीं आता, इसलिए कहा, वहाँ उसे ज्ञानी के ऊपर डाला है न। अन्वयार्थ बराबर ठीक किया। '**अयं ज्ञानी निरास्रवः एव**' अर्थात् की धर्मी जीव चैतन्यद्रव्यस्वरूप अखण्ड पूर्ण शुद्ध पवित्र है, ऐसी दृष्टि हुई है, इसलिए ज्ञानी वह द्रव्यरूप है। **द्रव्यरूप विद्यमान है, वह....** दृष्टि हुई है। समझ में आया? '**अयं ज्ञानी निरास्रवः एव**' **द्रव्यरूप विद्यमान है, वह ज्ञानी....** ऐसा। वस्तु जो है पदार्थ चैतन्य द्रव्यरूप वस्तु। शुद्ध ध्रुव एकरूप त्रिकाल, वह जिसकी दृष्टि हुई है तो ज्ञानी द्रव्यरूप ही है। धर्मी को पर्यायदृष्टि नहीं है। कहो, समझ में आया?

'**अयं ज्ञानी निरास्रवः एव**' ऐसा शुरु किया है न पहले से? यह द्रव्यरूप विद्यमान

है पदार्थ, वह ज्ञानी द्रव्यरूप ही विद्यमान है। वस्तु की अस्ति पूर्ण है, वही ज्ञानी। उस ज्ञानी की दृष्टि में द्रव्यस्वभाव है, वही ज्ञानी, ऐसा कहते हैं। पूर्ण शुद्ध ध्रुव चैतन्य पदार्थ, वह द्रव्य है, वही विद्यमान है। ऐसी जो दृष्टि है, ऐसा जो ज्ञानी। ज्ञानी ही द्रव्यरूप है, ऐसा यहाँ कहते हैं। **सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव से रहित है।** द्रव्यरूप विद्यमान है, ऐसा जो भान और वह ज्ञानी द्रव्यरूप ही है, इसलिए उसे आस्रव नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पर्यायदृष्टि में, अवस्थादृष्टि में, अवस्था के अंश में प्रतीतिवाला जो मिथ्यादृष्टि है, उसे ही मिथ्यात्व का आस्रव है और उसे ही यहाँ आस्रव गिनने में आया है। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध द्रव्यस्वरूप है, ऐसी जहाँ दृष्टि नहीं और पर्यायदृष्टि है, अंश पर राग और पुण्य आदि या उघाड़ विकास अंश के ऊपर दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है, पर्यायदृष्टि है। इसलिए वह मिथ्यादृष्टि, वह आस्रववाला है। उसे ही आस्रव है और उसे ही आस्रव के कारण बन्धन होता है। समझ में आया? **द्रव्यरूप विद्यमान है वह ज्ञानी अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव....** तो वस्तु है जो ध्रुव चैतन्य, वह जहाँ दृष्टि में आया है, इसलिए ज्ञानी स्वयं द्रव्यरूप ही विद्यमान है। समझ में आया? इसलिए आस्रव से रहित है। इसलिए उसे, मिथ्यात्व का आस्रव है, उससे रहित है। उसे ही यहाँ आस्रव गिनने में आया है। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवों को नोंध कर.... नोंध आया था न पहले? केवलज्ञान में नोंध है। वहाँ तीसरे पृष्ठ पर आया था और आज भी आया। केवलज्ञान में नोंध है कि यह जीव कितने काल में मोक्ष जायेगा, ऐसा पहले आया था। नोंध है अर्थात् ज्ञान है ऐसा। देखो! यहाँ नोंध है न? **(समझपूर्वक) विचारने पर...** सम्यग्दृष्टि जीव को समझपूर्वक, यथार्थ ज्ञानपूर्वक देखने पर, **विचारने पर आस्रव घटता नहीं।** कहो, समझ में आया? वस्तु है, वह शुद्ध चैतन्यघन है। द्रव्यरूप वस्तु, और उसी वस्तुपने की दृष्टि हुई, इसलिए अभेद वस्तु स्वयं है, वह सम्यग्दृष्टि है, ऐसा कहते हैं। वस्तु है, वही सम्यग्दृष्टि है। जिसे पर्यायदृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसके कारण उसे आस्रव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा द्रव्य—वस्तु त्रिकाल शुद्ध सत्त्व महाचैतन्य प्रभु ऐसा जो द्रव्य, वही

विद्यमान है समकिती को तो। अथवा समकिती द्रव्यरूप ही है। समझ में आया? गजब बात! इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव से रहित है। **सम्यग्दृष्टि जीवों को नोंध कर (समझपूर्वक) विचारने पर आस्रव घटता नहीं।** क्योंकि वस्तु दृष्टि है और वस्तु स्वयं है। दृष्टि हुई है वस्तु की, इसलिए वस्तु स्वयं ही यह सम्यग्दृष्टि है। वस्तु स्वरूप स्वयं हुआ तो वस्तु स्वयं द्रव्य विद्यमान समकित दृष्टि में है। इसलिए वस्तु की दृष्टि में और वस्तु में आस्रव घटित नहीं होता। कहो, समझ में आया? देखो! द्रव्य की महिमा जहाँ दृष्टि में आयी और अनुभव हुआ (तो) कहते हैं कि वह तो द्रव्यदृष्टिवन्त ही है समकिती। चाहे चौथे (गुणस्थान) में हो, पाँचवें में हो या छठवें में हो। समझ में आया? **(समझपूर्वक) विचारने पर आस्रव घटता नहीं।**

कैसा है ज्ञानी? 'एकः' रागादि अशुद्ध परिणाम से रहित है,.... यह तो नास्ति से बात की। एक का अर्थ तो शुद्धस्वरूप परिणमा है, वह है। क्या कहा? कि धर्मी जीव की दृष्टि द्रव्य के ऊपर, वस्तु के ऊपर, इसलिए वह स्वयं वस्तु ही है। इससे वह एक है। एक है अर्थात्? शुद्धस्वरूप परिणमित हुआ है। **रागादि अशुद्ध परिणाम से रहित....** अर्थात् अनेकरूप परिणमा नहीं। यह तो नास्ति से बात की। समझ में आया? वस्तु ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्यबिम्ब अकेला सत्त्व तत्त्व, ऐसी दृष्टि होने से वह द्रव्यरूप है, वह एकरूप है। वह एकरूप है। पर्यायदृष्टि में, अंश दृष्टि में पुण्य-पाप आदि अनेकरूप अनेकदृष्टि है, वह अनेक है। समझ में आया?

'एकः' रागादि अशुद्ध परिणाम से रहित है,.... रागादि अर्थात्? विकल्प जो है, उससे सम्यग्दृष्टि रहित है। कहो, यह व्यवहार-विकल्प है न, उससे सम्यग्दृष्टि रहित है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार जितने कहलाते हैं न? शास्त्र में व्यवहार कहे हों, वे सब विकल्प हैं, उनसे सम्यग्दृष्टि (भिन्न) एकरूप है। विकल्प तो अनेकरूप है। आहाहा! समझ में आया? '**अयं ज्ञानी निरास्रवः एव**' '**एकः**' ऐसा उसके साथ मिलाया। '**अयं ज्ञानी निरास्रवः एव**' '**एकः**' श्लोक ऐसे और टीका भी करनेवाले ऐसे निकले हैं न! ऐसा डाला है। '**एकः**' अर्थात् शुद्धस्वरूप। वे अशुद्ध हैं, उसमें तो अनेक भिन्न भिन्नता-भिन्नता है। यह तो शुद्ध भगवान द्रव्यस्वभाव, ऐसी दृष्टि के कारण द्रव्यरूप होने से उसका परिणमन

शुद्धरूप एक ही है, शुद्धरूप एक ही है। शुद्धता के अंश बढ़ें, यह अपेक्षा यहाँ नहीं लेनी है। यहाँ शुद्धरूप एक है। अशुद्ध के अनेक प्रकार, वे मिथ्यादृष्टि को होते हैं, सम्यग्दृष्टि को नहीं होते—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

शुद्धस्वरूप परिणमा है। वह द्रव्य लिया था। द्रव्यरूप विद्यमान है ज्ञानी। तब यहाँ '**एकः**' की व्याख्या की। वह शुद्धरूप परिणमा है। शुद्ध द्रव्यरूप है, वस्तुरूप है, इसलिए शुद्धरूप वस्तु शुद्ध है, इसलिए शुद्धरूप पर्याय हुई है। पर्याय में-अवस्था में सम्यग्दृष्टि को शुद्धरूप दशा हुई है। सम्यग्दृष्टि को अशुद्ध पर्याय है ही नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? **शुद्धस्वरूप परिणमा है।** धर्मी की दृष्टि द्रव्य-वस्तु होने से दृष्टि में द्रव्य है और द्रव्यरूप हो गया है, इसलिए एकरूप उसका परिणमन है। शुद्ध स्वभाव का ही वीतरागी परिणमन, वह एक ही परिणमन है। उस शुद्धस्वरूप का अर्थ ही वीतरागी परिणमन है। समझ में आया?

और कैसा है? '**ज्ञायकः**' देखो! है न? अन्त में है चौथी लाईन में। '**ज्ञायकः**' एक '**एकः**' '**ज्ञायकः**' ऐसा लिया। '**एकः**' '**ज्ञायकः**' '**एकः**' '**ज्ञायकः**' ज्ञायक अर्थात् **स्वद्रव्यस्वरूप परद्रव्यस्वरूप समस्त ज्ञेय वस्तु को जानने के लिये समर्थ है।** यह देखो, यह दो डाला। धर्मी। देखो! यहाँ न्याय डाला। क्या कहा? कि एक शुद्ध स्वरूप परिणमन है, ऐसा जो ज्ञायक एकरूप ज्ञायक है, इसलिए जो स्वस्वरूप है, उसे जानता है और पुण्य-पाप का विकल्प आदि परद्रव्यस्वरूप है, उसे जानने का, जानना उसका स्वभाव है। समझ में आया? लो! चौथा पद आया था न छठी गाथा में? '**णादो जो सो दु सो चेव**' ज्ञायक लिया था न? शुद्ध वह ज्ञायक। जो ज्ञायक शुद्ध है, वह परिणमता है तो ज्ञायकरूप ही परिणमता है। एकरूप परिणमता है। जाननेवाला, वह जाननेवाला ही है। रागादि को जाननेवाला परन्तु जाननेवाला, वह जाननेवालेरूप रहता है, रागरूप नहीं।

इसी प्रकार यहाँ कहा, ज्ञायक वस्तुस्वरूप चैतन्यद्रव्य ऐसी जो दृष्टि अर्थात् द्रव्य स्वरूप, ऐसा जो आत्मा आस्रवरहित है, वह एक ज्ञायक है। एकरूप शुद्ध स्वरूप का परिणमन स्व-पर को जानना एकरूप है। मात्र स्वयं अपने को जानता है और राग, विकल्प जो व्यवहार आदि जो कहे जाते हैं, वह सब परद्रव्य है। स्वद्रव्य में नहीं, स्वगुण

में नहीं और और उसकी पर्याय में वह नहीं। व्यवहार जितना कहलाये दया, दान, विकल्प, परन्तु वह द्रव्य की पर्याय में नहीं। सम्यग्दृष्टि का द्रव्य शुद्धरूप परिणमा है। इसलिए उसकी पर्याय में नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? भारी कठिन बातें! जगत को कहाँ खड़े रहकर.... कहो, भगवानजीभाई! ऐसा भगवान है, कहते हैं। सब जाने। उसे जानना एक ज्ञायक है। एक ज्ञायक है। एक अर्थात् शुद्धरूप परिणमन है, वह ज्ञायकरूप है, ऐसा कहते हैं। वह स्व को जाने और रागादि है, उन्हें भी जानता है। राग उसका नहीं, राग उसमें नहीं, राग है पर, उसे यहाँ ज्ञायक होकर स्व को जानते हुए पर है, ऐसा जानता है। स्वद्रव्य-परद्रव्य को जानने का एक ही उसका कार्य है। ऐसा कहते हैं। अरे! कहो, समझ में आया?

पहला एक शब्द था, उस अन्तिम लाईन का, नहीं? अन्तिम लाईन का। अब आयेगा तीसरी लाईन का, अब आयेगा तीसरी का एक। एक (शब्द) है न, दो (बार)? एक पद में दो शब्द है। इसलिए पहला जो आया, वह अन्तिम आया। '**निरास्त्रवो ज्ञायक एक**' गजब! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु, वह ज्ञायक है। ज्ञायक है अर्थात् जाननेवाला है। स्व और पर को जानना, वही उसका कार्य है। भीखाभाई! समझ में आया? एक।

और कैसा है? स्वद्रव्यस्वरूप-परद्रव्यस्वरूप समस्त ज्ञेय वस्तु को जानने के लिये समर्थ है। यहाँ तो दो ही बातें ली हैं। स्वद्रव्यस्वरूप उसका जो द्रव्यरूप है, उसका परिणमन शुद्धरूप है, वह स्वद्रव्यस्वरूप है और इसके अतिरिक्त रागादि सब परद्रव्यस्वरूप है। एकरूप परिणमनता हुआ स्व को-पर को जानता है। कहो, राग का विकल्प उसका कर्तव्य नहीं परन्तु उसमें नहीं। व्यवहार का कर्तव्य तो समकिती को नहीं परन्तु समकिती को व्यवहार नहीं। वह समकिती का व्यवहार नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। कहो, नेमिदासभाई! गजब बातें! यह तो कहीं....

वस्तु है न? यहाँ तो वस्तु सिद्ध करनी है न! भगवान आत्मा महाचैतन्य प्रभु। महा चैतन्यप्रभु। ऐसा नहीं गीता में वे लोग कहते? चैतन्य महाप्रभु। ऐसा आता है। ऐसा आता है। कुछ हो गया। चैतन्य महाप्रभु। यह चैतन्य महाप्रभु। दूसरा चैतन्य महाप्रभु कौन? समझ में आया? महाप्रभु अनन्त-अनन्त प्रभु गुण है उसका? प्रभु अर्थात् सामर्थ्य। महा

सामर्थ्य जिसका। एक-एक गुण का अनन्त सामर्थ्य, पूरे द्रव्य का महासामर्थ्य है। ऐसा महाप्रभु, ऐसा जो दृष्टि में आया, वह स्वयं द्रव्यरूप ही हो गया। धर्मी द्रव्यरूप है। धर्मी पर्यायरूप, रागरूप है, ऐसा नहीं है। फिर पर्याय अर्थात् रागादि नहीं परन्तु द्रव्यरूप होने पर, द्रव्य का परिणमन जो हुआ, एकरूप परिणमन है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि द्रव्यस्वभाव शुद्ध है, उसके आश्रय से परिणमन होता है तो एकरूप ही होता है। निमित्त के आश्रय से हो, तब तो विविध प्रकार के हों। निमित्त के आधीन समकिती है नहीं। कहो, समझ में आया? है न पुस्तक सामने? सूक्ष्म बातें हैं, भाई! यह तो आत्मा की। इसने कभी की नहीं। क्या है और कैसे है, यह जानने का प्रयत्न किया नहीं। भगवान आत्मा चैतन्य महाप्रभु ज्ञायक एक। बस, वह तो एक स्व को-पर को समस्त ज्ञेयों को जानने को समर्थ है। कहो, समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञायकमात्र है, रागादि अशुद्धरूप नहीं है। देखो! एक तो वह शुद्ध स्वरूप कहा था न? **रागादि अशुद्ध परिणाम से रहित है, शुद्धस्वरूप परिणमा है। 'एकः'** में, ऐसा कहा था। वह यहाँ वापस लिया। वह तो ज्ञायकमात्र है। जाननहार-जाननहार, स्व-पर को जानना, स्व-पर का जानना। स्व-पर का जानना, वह अपने में अपना अपने में रहकर है। समझ में आया? **रागादि अशुद्धरूप नहीं है।** धर्मी को अशुद्धता नहीं। क्योंकि द्रव्यरूप है, इसलिए अशुद्धता वहाँ है ही नहीं। व्यवहार है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। चिल्लाहट मचाये कि अर...र...र..! निरपेक्षा नया मिथ्या। अरे! सुन न। निश्चय की अपेक्षा से तो पर की अपेक्षा है नहीं। फिर एक व्यवहार है, भिन्न है-भिन्न है। ऐसा भिन्न रागादि है, वह स्वद्रव्य में नहीं, उसके परिणमन में नहीं। द्रव्य में नहीं, परिणमन में नहीं। भिन्न है। वह तो जानता है। भिन्न है, यह जानता है। कहो, समझ में आया?

रागादि अशुद्धरूप नहीं है। आहाहा! भगवान चैतन्य महाज्ञानरूपी विशाल पर्वत। लो! ऐसा आया है न? समयसार। समयसार महापर्वत उठाया और भव्यों को अर्पित किया। भव्यों को अर्पण किया। अन्त में कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसाररूपी महापर्वत उठाया। यह तो पर्याय। वह तो द्रव्य बड़ा। भव्य जीवों को अर्पित किया। देखो! भाई! यह तू है। आहाहा! भगवान आत्मा महा अनन्त गुणराशि एकरूप प्रभु, ऐसी जो वस्तु, उसका

जो शुद्ध परिणमन, उसमें अशुद्ध परिणमन नहीं है। सम्यग्दृष्टि शुद्ध द्रव्यदृष्टि है, इसलिए उसका शुद्ध परिणमन है। उसकी पर्यायदृष्टि नहीं, इसलिए उसे अशुद्ध परिणमन नहीं है। आहाहा! वे तो कहें, व्यवहार पहले चौथे, पाँचवें, छठवें में। फिर निश्चय। अरे! भगवान! यह तू क्या कहता है? कहाँ बातें करता है? तुझे वस्तु की खबर ही नहीं है। वस्तु कैसी है? वस्तु में क्या है? वस्तुदृष्टि होने पर क्या होता है और क्या नहीं उसमें? समझ में आया? यह तो कहे व्यवहार पहला। निश्चय आठवें में। यह व्यवहार यह शुभ उपयोग।

यहाँ तो कहते हैं, शुभ उपयोग ज्ञानी को है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। सुन न! कहो, समझ में आया इसमें? जिसका फल सादि-अनन्त केवलज्ञान और आनन्द। समझ में आया? ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उसका जो ध्येय द्रव्य, उस द्रव्य में दृष्टि होने पर धर्मी को अशुद्धता है ही नहीं। वास्तव में धर्मी को संसार नहीं, ऐसा कहते हैं, लो! ऐई...! आहाहा! गजब बात, भाई! दिखता है न यह सब बाहर? बाहर तो दुनिया पूरी पड़ी है, उससे क्या है? समझ में आया? ऐई! हीराभाई! कहाँ ऐसी, उसमें पर्याय कहाँ आयी? दृष्टि में पर्याय यहाँ इनकार करते हैं, देखो न! पहले द्रव्य लिया, पश्चात् द्रव्य ही है दृष्टि में। वस्तु स्वयं सम्यग्दृष्टि द्रव्यस्वरूप ही है। कहो, समझ में आया इसमें? अब उसमें वापस विवाद। लोगों को शास्त्र पढ़ने में विवाद। अटकने के साधन वे कितने, देखो न! छूटने का साधन एक। ध्रुव द्रव्य स्वरूप का अनुभव होना, वह। कहो, समझ में आया इसमें?

यह तो वीतराग शान्तरस का कथन है, भाई! भगवान आत्मा शान्तरस से भरपूर है। उस शान्तरस का कन्द, वह द्रव्य है। अकेला वीतरागरस अकषायस्वभाव, उस स्वभाव स्वरूप, वह द्रव्य है और वह द्रव्य, वैसा द्रव्य समकिती को विद्यमान है, कहते हैं। उसे दूसरा विद्यमान है नहीं। इसलिए उसका शुद्ध शान्तरस का ही परिणमन है, ऐसा कहते हैं। अर्थात् कि अकषाय का ही परिणमन है, ऐसा कहते हैं। उसे कषाय का परिणमन, व्यवहार-विकल्प का परिणमन है ही नहीं। हाँ, उसे और इसे जानने का परिणमन उसके ज्ञायकभाव में है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? सूक्ष्म पड़े ऐसा है न? कानातलाव! है? पुस्तक रखी है? पुस्तक रखी है न? सूक्ष्म वस्तु ऐसी है आत्मा की। इसके बिना कहीं सुख हो, ऐसा नहीं है। सब हैरान होकर दुःखी पड़े हैं बेचारे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहाँ

गये ? मूलपचन्दभाई ! यह सब दुःखी हुए हैं।

मुमुक्षु : सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य है। देखा ! ऐसा है। कृषिकार है, लो कानातलाव का। वहाँ इन्हें किसान कहते हैं। तुम तो बनिया कितने वर्ष के इसमें हो। वहाँ तब गये थे। बहुत लोग, हजारों लोग, हों ! बहुत लोग। बहुत लोगों को प्रेम है। कुण्डला के पास है। कहो, समझ में आया इसमें ?

परम सत्य ही यह है और यह सत्य इसे निर्णय करके अनुभव में लेना पड़ेगा। सुखी होना हो तो। नहीं तो दुःखी हो रहा है। कहो, भीखाभाई ! आहाहा ! अब इसमें हीराभाई नहीं आवे, कहते हैं। उनके प्रति का विकल्प है वह, कहते हैं, द्रव्य में नहीं आता। द्रव्य में तो द्रव्य का परिणमन होना, वह आयेगा। राग का परिणमन वह द्रव्य का परिणमन कब है ? ऐसा कहते हैं। भगवान पूरा पर्वत प्रस्फुटित हुआ। समझ में आया ? चैतन्य भगवान ज्ञानरस का कन्द। क्या तुम्हारे कहलाता है वह ? लावा-लावा। पर्वत में से लावा (ज्वालामुखी) निकलता है न ? लावा नहीं निकलता ? यह शान्तरस का लावा का पर्वत आत्मा है। वह लावा अग्नि जैसा निकलता है उस पत्थर में से निकलता है न कहीं विदेश में ? ज्वालामुखी। यह (आत्मा) तो शान्तरस का मुखी। अकेला अकषायस्वभाव। स्वभाव वह... स्वभाव वह... स्वभाव वह, उसका माप और हद और परिमितता क्या ? अपरिमित स्वभाव। ऐसा द्रव्य। सम्यग्दृष्टि को वह द्रव्यरूप है। उसका परिणमन शुद्ध है, उसे अशुद्ध नहीं। समझ में आया ?

और कैसा है ? 'सदा ज्ञानमयैकभावः' समझ में आया ? **सर्व काल धाराप्रवाहरूप...** देखो ! यहाँ तो सर्व काल (कहा)। किसी समय भी उसे राग परिणाम है और उसमें व्यवहार है, ऐसा नहीं है। सदा काल, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! द्रव्य जैसे सदा काल वस्तु है, वैसे सदा काल उसका परिणमन जो निर्मल है, वह सदाकाल। समझ में आया ? **सर्व काल धाराप्रवाहरूप चेतनरूप ऐसा है, एक परिणाम जिसका,...** सर्व काल धाराप्रवाहरूप चेतनरूप ऐसा है एक परिणाम जिसका। ऐसा है वह। आहाहा ! कहते हैं, सम्यग्दृष्टि को तो सदा एकरूप धाराप्रवाह ज्ञान ही परिणाम है, ऐसा कहते हैं। धाराप्रवाह। वस्तु द्रव्य जो

कायम ध्रुव है, उसका परिणमन ज्ञायकमय, उस ज्ञानमय के परिणाम धारावाही एक ही है परिणाम। उसमें राग के परिणाम और किसी समय ज्ञान के परिणाम और किसी समय राग परिणाम, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

सत्य का स्वरूप है, वह लोगों को बेचारों को ख्याल में नहीं आता। उसे महावस्तु प्रभु महा। ओहोहो! महासत्त्व कहा था न कल, भाई! नहीं? महासत्त्व कहा था, हों! अष्टपाहुड़ में है। महासत्त्व है। चेतन का महासत्त्व। समझ में आया? यह सत्... सत्... सत्त्ववाला नहीं लोग कहते? कसवाला है। ऐसा आत्मा चेतन का महात्त्ववाला है। चेतन के महासत्त्ववाला है। ऐसे अनन्त गुण का ध्रुव ऐसा महासत्त्ववाला वह आत्मा है। यह पैसेवाले को पहले कुछ नहीं कहते थे? क्या कुछ भाषा करते। कसवाला। कस कहते थे। नहीं कहते? गाँव में दस-पन्द्रह हजार की पूँजी हो तो कसवाला कहते थे। पहले तो बहुत कहते न? भाई कसवाले हैं। कस अर्थात् समझ में आया? धारावाही आयी न। माल तो ठीक परन्तु कस उसे कहते हैं वास्तव में तो। वह पानी निकलता है। उसे लोग कस कहते हैं। ऐसे पानी नीचे चलता हो न और ऊपर से खबर पड़े कि यहाँ कस है इसमें पानी की शीर है। यह लोग खोज करते हैं। कस देखते हैं। वह कस। यह देखे कि इस जगह शीर चलती लगती है। जमीन के ऊपर से निर्णय कर लेते हैं। यहाँ कस है इसमें। ...प्रवाह। यहाँ धारावाह आया न इसलिए जरा। समझ में आया? यह बहुत होशियार लोग होते हैं न, किसान और यूरोपियन आदि भी बहुत गहरे-गहरे पानी का प्रवाह कहाँ जाता है, ऐसा कान रखकर उस प्रवाह को पकड़ते हैं। एक मील दूर पानी का प्रवाह धोधमार जाता है ऐसा। ऐसा कहे। समझ में आया?

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा **सर्व काल धाराप्रवाहरूप चेतनरूप ऐसा है एक परिणाम जिसका,...** समझ में आया? आहाहा! उसे कस कहते हैं, कस। हमने सब सुना है। सब सुना है। रास्ते में ऐसे जायें न... तो वे लोग, कोई पुराने लोग (ऐसा कहे), यह कस है। अर्थात् क्या परन्तु तुम कहते हो कस है? यहाँ धूल है। नीचे पानी का प्रवाह चला जा रहा लगता है। पानी का प्रवाह जा रहा लगता है नीचे। हाथ, दो हाथ, चार हाथ दूर प्रवाह जाता है। उसी प्रकार आत्मा का प्रवाह। इस विकल्प के पीछे चैतन्य भगवान का प्रवाह

चैतन्यप्रवाह बहता है, कहते हैं। अकेले चैतन्य के प्रवाह के परिणाम वे आत्मा के हैं। समझ में आया? लो, गजब परन्तु... आचार्यों ने भी जंगल में रहकर किस प्रकार करुणा का प्रपात बहाया है न! अरे! भगवान! तू ऐसा है न, प्रभु! तू भी ऐसा है न। तेरे पास कहाँ कमी है कि कहीं पर में से लेना है तुझे, राग में से। यहाँ भगवान है न बड़ा। उसे जहाँ दृष्टि में लिया तो उसका परिणमन धारावाही चेतन ही परिणमेगा, कहते हैं। जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... वह प्रवाह बहता है, बस। दूसरा प्रवाह है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

'**सदा ज्ञानमयैकभावः**' सदा ज्ञानमय। ज्ञानमय इतनी भाषा ली है न? वह राग नहीं, ऐसा कहना है। राग जो है न? विकल्प नहीं। ज्ञानमय। चेतनरूप ऐसा है एक भाव, एक परिणाम जिसका। ऐसा है। **भावार्थ इस प्रकार है—जितने विकल्प हैं, वे सब मिथ्या।** मिथ्या का अर्थ कि उसमें नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं लोगों को कि यह क्या है? ऐसे के ऐसे हाँके ही रखते हैं बाहर से गाड़ी। कुछ भक्ति की, पूजा की, यह क्रिया की, व्रत किये फिर आवे। धूल भी नहीं आवे वहाँ, सुन न! यात्रा करें तो आ जायेगा। विकल्प है। वहाँ कहाँ था भगवान उसमें? भगवानजीभाई! बहुत रूखा लगे, रूखा यह। राग के भाव बिना का रूखा। वीतरागभाव का चिकना, वीतरागभाव का रसवाला है। अकेला वीतरागभाव... वीतरागभाव।

कहते हैं कि जिसे एक परिणाम। चेतनपरिणाम जानना... जानना... जानना... जानना... बहता है। उसमें **जितने विकल्प हैं, वे सब मिथ्या** है। मिथ्या अर्थात् कि उसकी पर्याय में नहीं। यह अस्ति है और यह नहीं, ऐसा कहते हैं मूल तो। क्या कहा? वस्तु भगवान आत्मा चैतन्य प्रभु, पूरा वस्तुस्वभाव, ऐसी जहाँ द्रव्यरूप दृष्टि हुई होने पर, वह ज्ञायकमय होने पर, अशुद्ध परिणाम रहित होने से, शुद्ध परिणामसहित होने से एकरूप ज्ञानप्रवाह बहता है। उसमें विकल्प मिथ्या है। उसमें विकल्प है नहीं। उनके घर में भले वहाँ रहे, यहाँ नहीं है। कहो, समझ में आया?

ज्ञानमात्र वस्तु का स्वरूप था, सो अविनश्वर रहा। वह नाशवान था, वह छूट गया। अविनश्वर भगवान आत्मा चैतन्यप्रभु की दृष्टि होने पर अविनश्वरपना रह गया। वह

पर्याय भी अविनाशी की अविनाशरूप से ज्ञानरूप रह गयी। रागरूप रही नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसी धर्मकथा कैसी? धर्मकथा उसमें कुछ ऐसा करना, अपवास करना, यह करना... यह करना... कितने वर्ष से न्यालभाई रस नहीं खाते, लो। यह रस तो उड़ गया उसमें से। रस भी उड़ गया। भगवान आत्मा के रस के आगे, कहते हैं रस खाता नहीं था और छोड़ा, यह उसमें नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। भगवानजीभाई! ऐई! भगवानजीभाई! देखो, यह। आहाहा!

भाई! तू एक बार नजर तो कर। जो निधान है, उसमें नजर करे तो वह निधान ऐसा है कि जैसा निधान में पड़ा है, वैसा परिणमन होगा। समझ में आया? उसमें फिर विकल्पों की नास्ति है, उसमें है नहीं। वास्तव में वस्तु और वस्तु के परिणमन में विकल्प द्रव्य में भी नहीं थे, तो द्रव्य में नहीं थे तो पर्याय में भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, द्रव्यरूप हुआ तो द्रव्य में नहीं, इसलिए पर्याय में भी नहीं। कैसी शैली है परन्तु गजब है न! चिल्लाहट मचाते हैं कि सम्यग्दृष्टि निरास्रव, लो! युद्ध करने बैठा है न? सुन न अब। यहाँ चैतन्य के स्व-पर के जानने के परिणामरूप वह है। युद्ध के समय ऐसा है और भोग के समय भी ऐसा है और ध्यान के समय भी ऐसा है। ऐसा यहाँ कहते हैं। सदा कहा न? समझ में आया? आहाहा!

जिसकी खान में से ज्ञान प्रवाहित होता है, बहता है ऐसा भगवान आत्मा जहाँ दृष्टि में आया। धर्मी तो ज्ञान के परिणाम से परिणमे, वही उसका स्वरूप है। समझ में आया? वह राग और विकल्प वे तो पर में गये। उसे स्व-पर के ज्ञायक के एकरूप परिणमन में उसका जानना रह गया। एकरूप परिणमन में स्व-पर का एकरूप वापस। यह स्व और यह पर का, ऐसे दो भाग वहाँ नहीं। एकरूप स्व-पर का ज्ञान, उसका प्रवाह रह गया अकेला, बस। कहो, समझ में आया?

ज्ञानमात्र वस्तु का स्वरूप था, सो अविनश्वर रहा। निरास्रवपना सम्यग्दृष्टि जीव को जिस प्रकार घटता है, उस प्रकार कहते हैं—अब निरास्रवपना कहा न पहले से कि आस्रव नहीं है, आस्रव से रहित है, ऐसा पहले कहा था। '**अयं ज्ञानी**' सम्यग्दृष्टि '**निरास्रवः**' आस्रवरहित है, ऐसा कहा था। पहले से दो लाईन में। अब क्यों नहीं, इसका

स्पष्टीकरण करते हैं। भीखाभाई कहते हैं कि घर में समझ में आये ऐसा नहीं है। यहाँ हो तो समझ में आये ऐसा है - ऐसा कहते हैं। उसका समय आवे तो यह कहे या नहीं? हीराभाई! समय आवे तब बराबर रखते हैं ये। आहाहा! भगवान तो स्वयं से ज्ञात होता है ऐसा है - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अपने से जाने। जाननेवाला भी उस राग को भी जाननेवाला स्वयं से जाननेवाला है। समझे न? ज्ञान का स्वरूप स्वयं परिणमते राग को और उसको जानना ऐसा परिणमन का स्वभाव ही इसका स्वतन्त्र है। यह वस्तु है धर्मी की। बाकी कोई चीज़ उसकी है नहीं। उसका राग नहीं, और स्त्री, पुत्र, तथा राजपाट कहाँ से घुस गये अन्दर? आठ कर्म हैं। आठ कर्म हैं और चार टले हैं और चार बाकी हैं। कुछ नहीं, ले न। अरे... अरे...! गजब बात, भाई! यह और केवली को चार टले हैं और चार बाकी। यह तो पर्याय में समझाने के लिये (कहते हैं)। वस्तु धर्मी को कर्म ही नहीं न। अशुद्ध परिणमन ही नहीं, वहाँ और कर्म कहाँ से आये? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

देखो! और कहे, मुनि को आहारकशरीर होता है, देव को वैक्रियिकशरीर होता है, इसको औदारिक और तैजस, कार्मण होता है। लो! सीखे, उसमें यह सीखे। सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है या नहीं? ऐसी व्यंजनपर्याय होती है, ऐसी अर्थपर्याय होती है। आता है? वजुभाई! जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। यहाँ कहते हैं कि धर्मी को शरीर नहीं होता, धर्मी को विकल्प नहीं होता। समझ में आया? धर्मी को राग नहीं होता। नहीं होता उसे व्यवहारवाले कहते हैं कि यह है, यह व्यवहारनय का विषय हो गया। नहीं है, उसे कहना।

अकेला भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब शुद्ध चिदानन्द मूर्ति, वह स्वयं निरास्रव है। उसे आस्रव है ही नहीं। **जिस प्रकार घटता है, उस प्रकार कहते हैं—'भावास्रवाभावं प्रपन्नः'** लो! पहला शब्द है न यह? '**भावास्रवाभावं प्रपन्नः**' वह '**अयं**' गया उसमें। '**अयं**' उसमें गया। ज्ञानी निरास्रव में। '**भावास्रवाभावं प्रपन्नः**' लो! '**भावास्रवाभावं प्रपन्नः**' क्योंकि **मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्ध चेतनापरिणाम,...** मिथ्या अर्थात् भ्रान्ति कि मैं एक अंश में हूँ, पुण्य में हूँ, पुण्य से ठीक है, पाप में मजा है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव

और उसके साथ का रहा हुआ राग-द्वेषभाव, वह अशुद्ध चेतनापरिणाम है। वह तो चेतना की अशुद्ध पर्याय है, अशुद्ध। **उसका विनाश....** है। धर्मी को उस अशुद्ध परिणाम का अभाव है और शुद्ध परिणाम की विद्यमानता है। क्योंकि शुद्ध वस्तु विद्यमान है, इसलिए उसे शुद्ध परिणाम ही विद्यमान है। अशुद्ध परिणाम विद्यमान है नहीं। समझ में आया?

'**भावास्रव**' अर्थात् **मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्ध चेतनापरिणाम, उसका विनाश,...** है। कहो, सम्यग्दृष्टि को भावास्रव का नाश है, ऐसा कहते हैं। भावास्रव की अस्ति ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐई! समकिती को आस्रव नहीं। दसवें गुणस्थान तक आस्रव है। अब सुन न, भाई! किस अपेक्षा से कहा है? वह तो जानने की अपेक्षा से थोड़ा बाकी है तो कहते हैं। यहाँ तो वस्तु और वस्तु की दृष्टि में और उसकी परिणति में है नहीं, ऐसी वस्तु पहले यह निश्चित किये बिना फिर ज्ञान सच्चा कहाँ से होगा तेरा? दसवें तक है और सब है। कहो, समझ में आया इसमें? केवली को भी अभी अशुद्ध परिणमन है। कर्ता-कर्म के परिणाम कितने ही गुणों का, अभी उदयभाव है, असिद्धभाव है। केवली को भी अभी असिद्धभाव है। यहाँ कहते हैं कि समकिती को अशुद्ध भाव है नहीं। गजब बातें, भाई! यह तो पर्याय पर्याय की व्याख्या जब करनी हो, तब बतलाते हैं कि ऐसा है, ऐसा ज्ञान कराते हैं। यहाँ तो अकेली वस्तु है, उसमें तो अशुद्ध परिणमन ही नहीं है न, उदयभाव तथा असिद्धभाव ही नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु है न? वस्तु में कहाँ है यह? वस्तु है, ऐसी वस्तु का परिणमन है। परिणमन में यह कहाँ है? कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा महा चैतन्यप्रभु अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण की खानरूप वस्तु। ऐसी एकरूप वस्तु विद्यमान द्रव्य। अस्तिवाला पदार्थ है। आहाहा! आयेगा न इसमें वह जीवन्त? इसमें ही आयेगा न? जीवन्त नहीं कहा एक बार? जीवन्त। श्लोक में है न कहीं? आस्रव में। विद्यमान है तो यह जीवन। देखो १६-१७ में है। '**सर्वस्यामेव जीवन्त्यां**' यह विद्यमान है। वह भगवान का जीवन याद आया था न? '**जीवन्त्यां**' इतनी है वह विद्यमान है। **बहुत कालपर्यन्त जीव के प्रदेशों में रहना वह जितनी होती, जैसी होती,**

उतनी ही है, विद्यमान है, वैसी ही है निश्चय से; फिर भी सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा सर्व काल आस्रव से रहित है। '**जीवन्त्यां**' है न? ११७ (कलश)। विद्यमान। ११७ श्लोक। यह '**जीवन्त्यां**' का अर्थ किया है १०७ पृष्ठ। तीसरी लाईन।

'**जीवन्त्यां**' **पुद्गलपिण्डरूप अनेक प्रकार का मोहनीयकर्म, उसकी संततिस्थितिबन्धरूप बहुत कालपर्यन्त जीव के प्रदेशों में रहती है, वह जितनी होती, जैसी होती, उतनी ही है, विद्यमान है, ऐसी ही है निश्चय से; फिर भी....** आत्मा निरास्रव है, ऐसा कहना है वहाँ। वहाँ विद्यमान हो तो निरास्रव है। यह विद्यमान आया, इसलिए वह विद्यमान हो तो भी निरास्रव है। यह भगवान का याद नहीं आया था? ऐई! वजुभाई! क्या? यह जीवन्त भगवान। जीवन्तस्वामी। बयाना में लिखा है न 'भगवान जीवन्तस्वामी'। महाविदेहक्षेत्र में धर्मकर्ता जीवन्तस्वामी सीमन्धर भगवावन। समझ में आया? उसी प्रकार यह जीवन्तस्वामी है। वह आस्रव जीवन्त कहा था। यह जीवन्त स्वरूप है। विद्यमान आया न पहले? विद्यमान वस्तु त्रिकाल है। विद्यमान भगवान, ऐसा कहते हैं न? विद्यमान तीर्थंकर, ऐसा कहते हैं न? जीवन्त तीर्थंकर, विद्यमान तीर्थंकर। उसी प्रकार यह विद्यमान भगवान आत्मा वस्तु, उसका भान होने पर जो दृष्टि हुई, वहाँ अशुद्ध परिणमन है ही नहीं। उदयभाव का अभाव है। आहाहा! पारिणामिकभाव एक त्रिकाल और कुछ क्षयोपशम, क्षायिक आदि पर्याय, बस, वह निर्मल परिणमती है। वह है ही नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, '**भावास्रवाभावं प्रपन्नः**' '**भावास्रवाभावं प्रपन्नः**' लो! ओहोहो! अस्तिरूप से ऐसा परिणमन है, ऐसा पहले कहा। अब नास्तिरूप से ऐसा है, ऐसा कहते हैं। वाह! दिगम्बर मुनियों की स्थिति का वर्णन अलौकिक है! केवली के धर्म को स्तम्भ रोप रखे हैं। ओहोहो! उस पद्धति के वाच्य को बताते हैं, वह कोई अलौकिक है। भगवान आत्मा अपने विद्यमान प्रभु को पहुँचा, विद्यमान वस्तु उसमें शुद्ध परिणमन है, अस्तिरूप है, धाराप्रवाहीरूप ज्ञायक स्व-पर जाननेवाला ऐसा रह गया है। ऐसा कहते हैं। अब यह नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा है, यह नहीं। समझ में आया? अर्थ में कहते आये थे भले परन्तु उस पाठ में से यहाँ आता है।

कहते हैं कि '**भावास्रवाभावं प्रपन्नः**' **मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्ध**

चेतनापरिणाम, उसका विनाश, उसको प्राप्त हुआ है। उसका अभाव प्राप्त हुआ है। ज्ञान की परिणति का एकरूप भाव प्राप्त हुआ है और इसका अभाव प्राप्त हुआ है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य पर्वत, उसका जहाँ प्रवाह आया तो चैतन्य परिणाम ज्ञायक वह स्व-पर द्रव्य को जानने का प्रवाह रहा, बस। और यह भावास्रव है, उसके अभाव को प्राप्त हुए हैं। नास्तिरूप परिणमन। समझ में आया? यह ध्यान रखे तो धीरे-धीरे समझ में आये, हों! न समझ में आये, ऐसा नहीं है। जाधवजीभाई जैसे भी कहते हैं कि अब धीरे-धीरे समझ में आता है थोड़ा। हाँ, हाँ, समझ में आता है, न समझ आये ऐसा नहीं है। यह तो इसके घर की बातें हैं। समझे हुए की बातें समझाते हैं कि तू समझ सकता है, ऐसा तो है। ऐसा तू है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है—अनन्त काल से लेकर जीव मिथ्यादृष्टि होता हुआ.... देखा! **मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप परिणमता था, उसका नाम आस्रव है।** जब तक भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप को न जानकर, मात्र पुण्य-पाप और विकल्प और अंशबुद्धि में पड़ा था, मिथ्यात्व और राग-द्वेष (रूप से) परिणमता था, तब तक उसे आस्रव था, तब तक उसे अशुद्धपना ही था, ऐसा कहते हैं। तब तक उसे अशुद्धपना ही था। भान होने पर उसे शुद्धपना ही है, अशुद्धपना है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है— अर्थ किया और वापस भावार्थ (कहते हैं)। **अनन्त काल से लेकर जीव मिथ्यादृष्टि होता हुआ....** मिथ्यादृष्टि होता हुआ। स्वयं होकर। वापस कर्म ने मिथ्यादृष्टि कराया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वयं ही अपने स्वरूप की दृष्टि से विपरीत पुण्य और पाप, विकल्प और अंश में माहात्म्य मानता हुआ, अंश के विकास के अंश में, उघाड़ के अंश में और राग-द्वेष के अंश में माहात्म्य करके मिथ्यादृष्टिरूप से राग-द्वेष करता था, तब तक उसे मात्र अशुद्धपना ही था। उसे ही आस्रव था। समझ में आया? **उसका नाम आस्रव है।** उसका नाम आस्रव है। अर्थात् कि जहाँ तक मिथ्यादृष्टि होता हुआ, मिथ्यात्व और राग-द्वेष (रूप) परिणमता था, उसका नाम आस्रव है। वाह!

काललब्धि प्राप्त होने पर वही जीव सम्यक्त्व पर्यायरूप परिणमा, शुद्धतारूप परिणमा, अशुद्ध परिणाम मिटा.... समझ में आया? 'दादु कहे दुनिया दुंद फाटी सवळी

चाली सेर, भटकवुं तो मटी गयुं अने वस्तु जडी घेर।' अन्यमति में यह दादु हुआ न? दादुभगत-दादुभगत कहते हैं। दादु का शिष्य हुआ है कोई वह। 'दादु कहे दुंद फाटी'। दुंद समझ में आता है। पेट मोटा दुंद। ऐई! तुम्हारा अर्थ पूछना है।....और यह याद आया। दुंद में से दुणा। कल का, परसों वह दुणा का अर्थात् कहा क्या होगा यह? दूध दुळाणुं, खींचड़ी दूळाणी... अर्थात् क्या तुम्हारे शब्द हैं संस्कृत में? क्यों अपने कहते हैं या नहीं अभी दूध दुळाई गई, खींचड़ी दुळाई गई ऐसा कहते हैं। दूधपाक दुणाई गया। नहीं कहते? दुणाई गया अर्थात् क्या कहा भाई इसमें? दुणाई गया का अर्थ समझे बिना दुणाई गयुं-दुणाई गयो दिये रखे तो क्या है यह? न्यालभाई कहे, वह दोणी होती है न दोणी उसमें दुणाई गयुं। परन्तु यह हमारे संस्कृतवाले को पूछना चाहिए। ऐसा हम तो अध्धर से दिये रखें दुणाई गयुं-दुणाई गयुं। अर्थात् दोगुना हो गया होगा? वह पक्का करते हुए अधिक हो गया? अर्थात् दुणाई गया होगा? भाई ने प्रश्न किया था कि दु अर्थात् क्या? दुणाई गयुं।

इसी प्रकार यह आत्मा दुणाई गया मिथ्यात्वभाव में। दुणाई उसमें ऐसा आता है न? ...ऐसा कुछ है। निकालना और निर्णय करना शब्द का अर्थ। या यह रूढ़िगत शब्द है? रूढ़िगत भी हो, ऐसा कुछ नहीं। धर्मास्तिकाय की तरह नाम है। धर्मास्तिकाय का कोई अर्थ है? यह रूढ़िगत शब्द है। धर्मास्तिकाय द्रव्य है और भगवान ने कहा, उसका कोई शब्दार्थ करने जाये तो निकले, ऐसा नहीं है। उसी प्रकार कुछ हो, उसका कुछ नहीं। आता है शास्त्र में, हों! अष्टपाहुड़ में। गन्ध। उसे गन्ध बैठ गयी है। भाई, ऐसा आता है अष्टपाहुड़ में। भावपाहुड़ में। गन्ध। ऐसा मूल पाठ कुन्दकुन्दाचार्य का है। मिथ्यात्व की गन्ध प्रविष्ट है, वासना प्रविष्ट है। भगवान आत्मा की गन्ध प्रविष्ट होने पर सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-भान होने पर गन्ध प्रविष्ट हो गयी परमात्मा की। वह परमात्मा की गन्ध प्रविष्ट हुई। वासना परमात्मा की हो गयी। वह परमात्मा हो जानेवाला है। आहाहा! समझ में आया? और यह पुण्य और पाप तथा विकल्प की गन्ध बैठी है न मिथ्यात्व में? अकेला आस्रव है, कहते हैं। और दूसरा है नहीं। आत्मा नहीं, संवर नहीं, निर्जरा भी नहीं और मोक्ष भी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वही जीव सम्यक्त्व पर्यायरूप परिणमा,.... देखो! समकित पर्यायरूप परिणमा,

ऐसा है। वह कहे समकित गुण है। तुम विचारकर डालो पर्याय-पर्याय। यह और एक श्लोक था। अनेक प्रकार के लोग। विविधता है न ?! उसमें एकता न ही हो। समकितरूप पर्याय से परिणमा है, ऐसा कहा है यहाँ तो। तो वह समकित गुण है। सिद्ध में भी आठ गुण हैं। तुम पर्याय-पर्याय क्या करते हो ? दिये रखो आत्मधर्म। ठीक, भाई! यहाँ तो कहते हैं कि सिद्ध स्वयं पर्याय है। सुन न! वह पर्यायनय का विषय सिद्ध है। संसारी और सिद्ध तो दोनों पर्याय है। द्रव्य तो द्रव्यरूप ध्रुव एकरूप है। उसमें पर्याय कहाँ से आयी ? सिद्ध पर्याय उसमें कहाँ है ? और द्रव्य में वह पर्याय कहाँ है ? पर्याय तो ऊपर-ऊपर तैरती है, दूर ध्रुव से भिन्न। समझ में आया ? वाह! स्वाध्याय तो देखो! यह स्वाध्याय। यह बाहर निकले, वहाँ ऐसा कुछ चले ?

कहते हैं कि **सम्यक्त्व पर्यायरूप परिणमा,...** भगवान आत्मा अपने वस्तुस्वभाव की प्राप्ति पर्याय में हुई, परिणमा। **शुद्धतारूप परिणमा,....** ऐसा कहते हैं। परिणमा अर्थात् शुद्धतारूप परिणमा। वह मिथ्यात्वरूप परिणमा था, वह अशुद्धता आस्रव थी। समकितरूप परिणमा तो शुद्धता से परिणमा। **अशुद्ध परिणाम मिटा, इसलिए भावास्रव से तो इस प्रकार रहित हुआ।** इसलिए भावास्रव से तो इस प्रकार से कहा न ? अशुद्धतारूप परिणमा नहीं, शुद्धरूप परिणमा; इसलिए अशुद्ध परिणमन रहा नहीं। समझ में आया ?

यह मीठी अमृत जैसी बात है। ऐसी कान में पड़ने पर वह विकल्प होता है, वह अलग प्रकार का है सुनने का। बात तो यह है, बापू! आहाहा! समझ में आया ? भगवान आत्मा अमृत का कुण्ड बड़ा। देखो न! यह रोग मिटाने जाते हैं न पानी में नहाने। धरा में। राजगृही में नहीं ? राजगृही है न ? देखा था। दूर खड़े-खड़े देखते थे। लोग पानी से नहाते थे अन्दर राजगृही के कुण्ड में। बहुत खस हो न। ऐसा कहते हैं, मिथ्यात्व का फोड़ा लगा हो उसे चैतन्य प्रवाह में अन्दर नहाना। तेरा कुण्ड बड़ा है। उसमें से कभी पार ही नहीं आवे। अब हो गया ऐसा है ही नहीं। हो क्या रहे ? द्रव्य है, उसमें क्या हो रहे ? ऐसा जिसमें आनन्द का, शान्ति का प्रवाह है, वह जिसे शुद्धता परिणमन हुआ, अशुद्ध परिणाम नहीं। **इसलिए भावास्रव से तो इस प्रकार रहित हुआ।** कौन ? समकिती जीव।

'**द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः**' वह तो यहाँ शुद्ध परिणमा, इसलिए अशुद्धता

टल गयी, ऐसा कहा। और यह द्रव्यास्रव तो सहज भिन्न ही है, उसे और टालना-फालना है नहीं, उससे तो रहती ही है, ऐसा कहते हैं। वह जो बात थी, जहाँ तक मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिणमन था, वह अशुद्ध था, वह आस्रव था, बस। स्वभाव की दृष्टि होने पर शुद्ध परिणमन हुआ, वह आस्रव नहीं। इसलिए इस प्रकार उसे आस्रव, भावास्रव नहीं, इस प्रकार से। और द्रव्यास्रव तो द्रव्यास्रव तो रहित ही है, वह तो भिन्न है। वह तो रजकण ही भिन्न पड़े हैं। यहाँ तो शुद्धरूप परिणमा, इसलिए अशुद्धपना नहीं है, भावास्रव नहीं है। और द्रव्यास्रव तो वहाँ है ही नहीं। क्योंकि रजकण कर्म के पड़े हैं, वे तो भिन्नरूप से हैं। आत्मा में है नहीं। एक समय की अवस्थारूप आस्रव था, वह द्रव्यदृष्टि होने पर, शुद्ध परिणमन होने पर वह अशुद्ध परिणमन रहा नहीं। पर्याय में था, वह रहा नहीं। यह तो पर्याय में भी नहीं। कौन? - द्रव्यास्रव।

ज्ञानावरणादि कर्मपर्यायरूप जीव के प्रदेशों में बैठे हैं। लो! भगवान जहाँ असंख्य प्रदेशी प्रभु है, वहाँ वे कर्म बैठे हैं। आठ कर्म के रजकण अन्दर बैठे हैं। यह है न? ऐसे रजकण। **पुद्गलपिण्ड, उनसे तो स्वभाव से सर्व काल निराला ही है।** उससे- स्वभाव से, स्वभाव से। उसका परिणमन बदला, इसलिए ऐसा नहीं। वह परिणमन बदला तो अशुद्ध रहा नहीं। वह तो स्वभाव से भिन्न ही है। **सर्व काल निराला ही है।** इस प्रकार, ज्ञानी भावास्रव और द्रव्यास्रव से रहित है। भावार्थ कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ६, सोमवार, दिनांक ०३-१०-१९७७
कलश-११५-११६, प्रवचन-११२

कलशटीका। ११५। जब तक शुभाशुभ भाव में लीन होकर रुका है, वहाँ तक संसार में परिभ्रमण में भटकना है। आहाहा! जब सम्यक्रूप पर्याय परिणमती है, शुद्धतारूप परिणमता है। ऐसे। पुण्य-पापरूप होना ये तो अशुद्ध है। शुभ-अशुभभाव को यहाँ आस्रव कहा है न। चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, काम, क्रोधादि के परिणाम हो कि चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव हों, दोनों भाव आस्रव—नये आवरण का कारण है। उस आस्रव को रोकने के लिये जो चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्ण पवित्र, यह अन्तर्मुख दृष्टि करता है, तब शुद्ध परिणमन होता है। यह शुद्ध परिणमन, यह सम्यग्दर्शन की दशा... आहाहा! ऐसी बात है। अभी शुद्ध क्या और परिणमन क्या, इसकी खबर नहीं हो वहाँ।

चैतन्य वस्तु ये शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द अनाकुल शान्ति और आनन्द का रसकन्द प्रभु है। छे कहो या है कहो। उसमें दृष्टि देकर बाहर से सर्वथा समेटकर अन्तर में दृष्टि देकर शुद्ध परिणमन जब होता है, तब उसे सम्यग्दर्शन हुआ और तब शुद्धता का परिणमन हुआ, तब संवर-निर्जरादशा हुई। आहाहा! **अशुद्ध परिणाम मिटा...** पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव, ये शुद्धस्वभाव के आश्रय अवलम्बन से परिणमता अशुद्ध पुण्य-पाप के भाव मिट गये। आहाहा! इस सम्बन्धी-मिथ्यात्व सम्बन्धी और राग-द्वेषादि मिथ्यात्व के साथ के, उन सम्बन्धी अशुद्ध परिणाम मिट गये। इसकी मुख्यता से यहाँ बात ली है।

इसलिए भावास्रव से तो इस प्रकार रहित हुआ। आहाहा! इस प्रकार से तो भावास्रव जो पुण्य-पाप और मिथ्यात्व के भाव, उनसे तो रहित हुआ। आहाहा! यह संवर, निर्जरा। यह बाहर में कहते हैं न, पाँचों आस्रव सेवन का प्रत्याख्यान.. वैसे तो संवर हो

गया। इस प्रकार **अशुद्ध परिणाम मिटा इसलिए भावास्त्रव से तो इस प्रकार रहित हुआ। इसलिए भावास्त्रव से तो इस प्रकार रहित हुआ।** जितना मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव था मिथ्यात्व सम्बन्धी, उतना अशुद्ध परिणाम मिटा और भगवान परमानन्दस्वरूप की प्रतीति अनुभव दृष्टि हुई तो इतना संवर और निर्जरा उत्पन्न हुई। आहाहा! इसको संवर और निर्जरा कहते हैं।

अब, '**द्रव्यास्त्रवेभ्यः स्वतः एव भिन्नः**' भावास्त्रव से तो भिन्न हो गया, अब द्रव्य परमाणु जो कर्म के जो जड़ रजकण पड़े थे, उनसे तो स्व भिन्न ही है। क्योंकि रजकण जड़ पदार्थ भिन्न हैं, आत्मा भिन्न है। आहाहा! '**द्रव्यास्त्रवेभ्यः स्वतः एव भिन्नः' ज्ञानावरणादिकर्म पर्याय...** आहाहा! अनन्त गुण रत्नों का सागर प्रभु है। आहाहा! वह अपने आनन्द को भूलकर अपने आनन्द को भूलकर पुण्य-परिणाम दया, दान, शुभ परिणाम में ठीक है। (ऐसा मानता है, वह) भिखारी है। भीख माँगता है भिखारी। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन पैसा इसका था, तो दे? आहाहा! पहले बात नहीं हुई थी इसलिए फिर आज मैंने पूछा था। बीस तोला सोना उसे सोनी का गया न? बीस तोला बारह हजार का होता है, कहते हैं। ६०० रुपये का तोला। ऐसा कोई कहता था। सवेरे पूछा, अपन को कहीं खबर नहीं थी। लड़कों को पूछा, ये तोला कि कितने रुपये? क्योंकि हमारे समय चौबीस रुपये तोला, चौबीस रुपया का तोला, बारह रुपया का आधा तोला। तब किसी ने कहा, ६०० रुपये तोला। बीस तोला था। बारह हजार रुपया होता है। सुनार के लड़के बेचारे को कोई ले गया था। जहर पिला दिया। वीरजीभाई, पर पत्र आया है। एक तो मर गया। उज्जैन... उज्जैन। और एक को कहते हैं, अस्पताल में ले गये हैं। आहाहा! बीस तोला सोना कोई ले गया। सोनी का लड़का था। इसका पिताजी नहीं है, बाहर गया है। इसमें ये दो व्यक्ति थे और कोई ले गया। हाय... हाय..! पिताजी आयेंगे, क्या करेगा? जहर पी लिया, जहर तो होता है न। सोने को साथ साफ करने में होता है। जहर। एक तो वहीं का वहीं मर गया। दोनों, दोनों लड़कों ने जहर पी लिया। आहाहा!

अरे..! ये तो मिथ्यात्व का जहर पीता है। यह ले न। आहाहा! क्षण-क्षण पुण्य और पाप का भाव जो शुभ-अशुभ होता है, वह मेरा है। वह जहर पीता है, वह मिथ्यात्व का

जहर पीता है। आहाहा! चैतन्य के जीवन के जोखिम में डाला। आहाहा! जैसे शरीर के ऊपर घाव लगता है छुरा का और खून... खून... खून (निकलता है)। आहाहा! (ऐसे) तीन लोक का नाथ सच्चिदाननद प्रभु आनन्दकन्द है, इसको पुण्य और पाप का भाव मेरा है, ऐसा घाव लगता है मिथ्यात्व का चैतन्य के ऊपर। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। तेरे जीव में जीवन कैसा है, इसकी तुझे खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ परमात्मा जिनेन्द्रदेव जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा जिनवर फरमाते हैं, प्रभु! वे तो प्रभुरूप से ही बुलाते हैं। आहाहा! तू प्रभु है न, नाथ! अन्दर अनन्त आनन्द का नाथ। तेरी प्रभुता पर तेरी दृष्टि गई तो राग और पुण्य-पाप की दृष्टि गयी। वहाँ गयी तो यहाँ से गयी। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन की दशा कहा जाता है। आहाहा! धर्म की पहली शुरुआत। ये पुण्य और पाप दो भाव आस्रव, दुःखरूप, उसकी रुचि छोड़कर, भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, अनाकुल ज्ञान और आनन्द का रसकन्द है, ऐसी अन्तर्दृष्टि होकर शुद्ध परिणमन हुआ, उसका नाम सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी (कहलाती है)। आहाहा! उसमें भावास्रव का तो अभाव है। समझ में आया? भाव ये—मिथ्यात्व। पुण्य मेरा, यह मान्यता थी, यह मान्यता नाश हो गयी। आहाहा! अरे! ऐसा मार्ग लोगों को हाथ में आता नहीं। सुनने को मिलता नहीं। जैन के नाम पर अभी तो अजैनपना चला है सब। ये व्रत करो और ये उपवास करो, और भक्ति करो, और यात्रा करो और पूजा करो, ये तो सब राग की क्रिया हैं। आहाहा! और राग मेरा माना मुझे लाभदायक, महा मिथ्यात्व का पाप है, बड़ा पाप मिथ्यात्व का। लोगों को सुनने मिला नहीं। आहाहा!

भगवान यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। तेरी ऋद्धि, सिद्धि, सम्पदा तेरे में परिपूर्ण पड़ी है, नाथ! आहाहा! तुझे बाहर गर्दन करने की जरूरत नहीं। आहाहा! अन्तर ऋद्धि है, वहाँ गर्दन कर न—नजर कर न। ये नजर का निधान तुझे नजर में जानने में आयेगा। आहाहा! तब तुझे शुद्ध परिणमन होगा। तब तुझे अशुद्ध परिणाम मिथ्यात्व का नाश होगा। आहाहा! ये भावास्रव का नाश तो इस प्रकार कहा। इसकी पर्याय था ये। शुद्ध परिणमन हुआ तो पर्याय में था, उसका नाश हुआ। और ये कर्म के परमाणु जो हैं, ज्ञानावरणादि भगवान ने आठ कर्म जो कहे, वे जड़ हैं, मिट्टी हैं, पुद्गल हैं, अजीव हैं, रूपी हैं, मूर्त हैं। वे तेरे आत्मप्रदेश के ऊपर पड़े हैं, परन्तु अत्यन्त निराले हैं। आहाहा! अरूपी

भगवान के प्रदेश क्षेत्र में परमाणु कर्म, आठ कर्म जड़ जो हैं, मिट्टी-धूल हैं, वे एक प्रदेश में रहे हैं परन्तु वस्तु निराली है। भगवान आत्मा के प्रदेश से परमाणु अत्यन्त तीनों काल निराला है। आहाहा!

ये **जीव के प्रदेशों में बैठे हैं पुद्गलपिण्ड...** है। वह **स्वभाव से...** वे स्वभाव से निराला है। आहाहा! **सर्व काल निराला ही है। भावार्थ इस प्रकार है—आस्रव दो प्रकार का है।** एक पुण्य-पाप का भावास्रव। एक-कर्म आये रजकण, वे आस्रव-द्रव्यास्रव। **विवरण—एक द्रव्यास्रव है, एक भावास्रव है। द्रव्यास्रव कहने पर कर्मरूप बैठे हैं, आत्मा के प्रदेशों में पुद्गलपिण्ड, ऐसे द्रव्यास्रव से जीव स्वभाव ही से रहित है।** आहाहा! अरे! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग कोई अलौकिक है। परन्तु वर्तमान में तो गड़बड़ी बहुत हो गयी। आहाहा! मूल मार्ग छोड़कर दूसरे रास्ते चढ़ा दिया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कर्म के रजकण... अब यह ऐसा कहते हैं, लो। कर्म हमें भ्रमण कराता है। परन्तु वह कर्म भिन्न चीज़ है, ये तुझे कैसे भ्रमण कराये? समझ में आया? सर्व काल कर्म के पुद्गल तेरे प्रदेशों में होने पर भी सर्व काल निराला है। निराली चीज़ तुझे कैसे नुकसान करे? तुझे कर्म हैरान करते हैं? ये जैन में विपरीतता बड़ी। जैन नाम धरावे। बस, कर्म से हैरान है, कर्म से हैरान है। यहाँ तो कहते हैं, कर्म सर्व काल निराला पड़ा है न। आहाहा! नुकसान तू तेरे स्वरूप के भान बिना तू नुकसान तेरे को करता है। 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' कर्म के कारण से नहीं। देखो न! कितने शब्द लिये हैं।

स्वभाव से सर्व काल निराला ही है। इसका स्वभाव ही है कि ये भिन्न है। तो भिन्न चीज तेरी पर्याय में है, ऐसा कहना ये व्यवहार है। वे उसके क्षेत्र में है। आहाहा! भारी बातें, भाई! **यद्यपि जीव के प्रदेश कर्म पुद्गलपिण्ड के प्रदेश एक ही क्षेत्र में रहते हैं...** क्षेत्र एक दिखता है। **तथापि परस्पर एक द्रव्यरूप नहीं होते हैं,...** पुद्गल परमाणु जीवरूप नहीं होते और जीवद्रव्य ये पुद्गलरूप नहीं होता। आहाहा! पुद्गलद्रव्य अजीवद्रव्य है; भगवान आत्मा तो जीवद्रव्य है। तो जीवद्रव्य कोई अजीवद्रव्यरूप हो जाये और अजीवद्रव्य जीवद्रव्यरूप हो जाये, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **तथापि परस्पर एक द्रव्यरूप नहीं होते हैं, अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप रहते हैं।** देखो!

क्या कहा ? पुद्गल जो जड़ आठ कर्म, ये रजकण, वह द्रव्य और इसका वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, वे गुण और इसकी कर्मरूप पर्याय, वह अवस्था। ये द्रव्य, गुण और पर्याय उसमें उनको लेकर है। तुझे लेकर इसमें है नहीं। आहाहा! कहाँ फुरसत मिले ? धन्धे के सामने फुरसत न मिले। ऐ... हसमुखभाई! जल्दी-जल्दी क्या करना, यहाँ लड़को को बुलाये कि आओ आओ यहाँ जल्दी आओ।

मुमुक्षु : वह तो यहीं रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अमुक समय के लिये। रहने के लिये। आहाहा! अरर! प्रभु! वहाँ कहाँ हो ? कहाँ हो ? अरे! तेरे में कर्म के परमाणु भी तेरी चीज में नहीं। अर्थात् कर्म के परमाणु में तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! तो कर्म तुझे हैरान करें, पर चीज़ हैरान करे, (ये) बिल्कुल भ्रम है। आहाहा!

मुमुक्षु : असातावेदनीय का उदय हो तब...

पूज्य गुरुदेवश्री : असातावेदनीय का उदय हो तो इसमें क्या ? शरीर के परमाणु... असातावेदनीय से शरीर में रोग नहीं हुआ। आहाहा! शरीर के परमाणु इसरूप परिणमे हैं, अपने उपादान से। असातावेदनीय निमित्त है। तो ये तो रोग की पर्याय जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से भिन्न है। शरीर में रोग आया, उसका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भिन्न है। सर्व काल भिन्न है। ये आत्मा के प्रदेश के ऊपर रहे कर्म के परमाणु परस्पर सर्व काल भिन्न है, वे तो मिट्टी स्थूल है, आहाहा! जड़ है। यह रोग की दशा अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से इसकी दशा परकाल में जाती है, परक्षेत्र और परद्रव्य में जाती है। आहाहा! भगवान आत्मा तो रोग को छूता भी नहीं। अज्ञानी भी रोग को छूता नहीं। परद्रव्य तो कैसे छूए ? आहाहा! मात्र पर ऊपर लक्ष्य करके, मुझे रोग हुआ, मैं दुःखी हुआ ऐसी कल्पना की, यह रोग है। आहाहा!

अपने अपने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप रहते हैं। क्या कहते हैं ? परमाणु जो पुद्गल जड़कर्म, ये द्रव्य, इसकी शक्ति रंग, गन्ध, स्पर्शादि और पर्याय कर्मरूप अवस्था। ये तो अपने में द्रव्य, गुण, पर्याय में है। आत्मा में ये द्रव्य, गुण, पर्याय में नहीं। जड़ के द्रव्य, गुण, पर्याय आत्मा में है नहीं। आहाहा! **इसलिए पुद्गलपिण्ड से जीव भिन्न है।** अत्यन्त भिन्न

है। आहाहा! यह पुद्गल पिण्ड अजीवतत्त्व कर्म, भगवान आत्मा अरूपी जीवतत्त्व। दो तो अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! कब? तीनों काल। इसने माना है कि ये कर्म मुझे हैरान (करते हैं)। यह तो इसकी मान्यता भ्रम है। समझ में आया? आहाहा! **अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप रहते हैं। इसलिए पुद्गलपिण्ड से जीव भिन्न है।**

भावास्त्रव कहने पर मोह-राग-द्वेषरूप विभाव अशुद्धचेतन परिणाम, सो ऐसा परिणाम यद्यपि... क्या कहते हैं? जो मिथ्यात्वभाव, पुण्य-पाप के भाव भावास्त्रव कहते मोह, राग-द्वेष। मिथ्यात्व और राग-द्वेष। ये **विभाव अशुद्धचेतन परिणाम, सो ऐसा परिणाम यद्यपि जीव के मिथ्यादृष्टि अवस्था में विद्यमान ही था...** विद्यमान ही था। कर्म तो विद्यमान है ही नहीं अपने में। परन्तु विपरीत मान्यता थी कि पुण्य मेरा है और पाप मैंने किया और पाप मेरी चीज़ है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव आत्मा की पर्याय में तिष्टे हैं। इसकी पर्याय में है—इसकी अवस्था में हैं। आहाहा! **जीव के मिथ्यादृष्टि अवस्था में विद्यमान ही था...** आहाहा! जहाँ स्वरूप की दृष्टि का भान नहीं, सम्यग्दर्शन का जहाँ ख्याल नहीं कि सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है। आहाहा! यह तो लोग (मानते हैं कि) देव-शास्त्र-गुरु को मानें, यह सम्यग्दर्शन। ऐसा करके बेचारे मूढ़ता से अनादि काल से परिभ्रमण में भ्रमते हैं। आहाहा! यह मिथ्यात्वभाव जीव की पर्याय में विद्यमान है। परमाणु जैसे पर्याय में विद्यमान नहीं, ऐसे नहीं। समझ में आया? आहाहा!

तथापि सम्यक्त्वरूप परिणमने पर... है न? **विद्यमान ही था, तथापि सम्यक्त्वरूप परिणमने पर...** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा ऊपर दृष्टि करने से, सम्यक्त्वरूप परिणमन करता है तो **अशुद्ध परिणाम मिटा।** उसकी पर्याय में विद्यमान था, वह शुद्ध परिणमन के कारण मिट गया। आहाहा! **इस कारण सम्यग्दृष्टि जीव भावास्त्रव से रहित है।** इस कारण धर्मी जीव शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा अनन्त गुण की खान, भण्डार, अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का भण्डार भगवान है। आहाहा! अरे रे! ऐसे भण्डार को जहाँ खोला... आहाहा! राग और स्वभाव की एकताबुद्धि का ताला लगा था। आहाहा! ये दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव ये शुभराग और राग और आत्मा एक माने थे, वहाँ तक मिथ्यात्व का ताला लगा था। आहाहा! खजाना खुलना बन्द था। यह जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, राग की एकता टूटकर स्वभाव की एकता हुई तो खजाने का ताला खुल गया।

आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। जगत से निराली।

तुम्हारे मुम्बई में कहीं सुनने मिले, ऐसा नहीं। मुम्बई तो मोहनगरी है बड़ी। दो-दो मंजिल के तो... क्या कहते हैं तुम्हारे बस? बस। दो-दो मंजिल की। ओहोहो! यहाँ से ऐसे जाये और यहाँ से यहाँ जाये। पाँच कोस तक जाना हो तो गाँव में और गाँव के पाँच गाँव के आखिर तक जाये। ऐसे की ऐसे। खचाखच भरी हो। आहाहा! मोहनगरी। बस नहीं आती, बस? मुम्बई में दो मंजिल की बस। एक मंजिल की नहीं दो मंजिल। हम तो बहुत बार गये हैं। आहाहा! हैरान... हैरान। इसमें प्रत्येक दिन दो-चार मनुष्य तो पूरी मुम्बई में मर ही जायें। पाँच-सात हों। एक बार हम निकले थे। एक कुचल गया था। हम खड़े रहे। देखा था। कुचल गया और बन्द रखनी पड़ी। पुलिस इकट्ठी हो गयी। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मिथ्यात्व में तेरा कच्चरघाण था। सम्यग्दर्शन में ये कच्चरघाण का नाश हो गया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भाषा थोड़ी, भाव बहुत। बापू! ये तो वीतरागमार्ग है। जिनेन्द्र जिनवरदेव सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनको एक समय में तीन काल-तीन लोक जानने में आता है। आहाहा! भगवान महावीर आदि अनन्त तीर्थंकर गये। वे तो सिद्ध हो गये। अभी अरिहन्त नहीं। वे तो णमो सिद्धाणं में गये। भगवान विराजते हैं महाविदेह में। सीमन्धर परमात्मा आदि बीस तीर्थंकर, वे णमो अरिहंताणं में हैं। अभी णमो सिद्धाणं में (जाने में) देर है। णमो अरिहंताणं। उनकी दिव्यध्वनि निकलती है। ॐ ध्वनि, यह ॐ ध्वनि आयी। आहाहा! समझ में आया? भगवान की ॐ ध्वनि। आता है न बनारसीदासजी में? 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, मुख ॐकार ध्वनि सुनि...' भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। उनके मुख में से ॐध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारें। सन्त दिगम्बर मुनि बैठे हों। आहाहा! वे 'रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।' उसमें से आगम की रचना करें। 'भविक जीव संशय निवारे।' आहाहा! समझ में आया? वह यह वाणी है। आहाहा!

अभी तो स्त्री, पुत्र और मकान और घर (को) पर मानने में पसीना उतरे। ये हमारा है न। अर्धांगिनी है। ये स्त्री हमारी अर्धांगिनी है। आधा अंग इसका और आधा अंग मेरा। दो होकर एक। मूर्ख है, सुन तो सही। आहाहा! कहाँ से अर्धांगिनी हो गयी तेरी? यहाँ तो

आत्मा के प्रदेश के ऊपर रहे परमाणु, कर्मरूपी पिण्ड, वे भी अत्यन्त त्रिकाल निराला है। समझ में आया?

इस कारण सम्यग्दृष्टि जीव भावास्त्र से रहित है। इससे ऐसा अर्थ निपजा कि सम्यग्दृष्टि जीव निरास्त्रव है। इस अपेक्षा से। सम्यग्दृष्टि हुआ तो आस्त्रव रहित हो गया। क्योंकि वह मिथ्यात्व सम्बन्धी आस्त्रव न रहा, कर्म तो भिन्न ही हैं। इसलिए उससे रहित हुआ। रहित तो था और रहित हुआ। और यह तो सहित था, उससे रहित हुआ। मिथ्यात्व के परिणाम पर्याय में सहित थे, तो उससे रहित हुआ। आहाहा! अरे! ऐसी बातें। इसमें समझना क्या? आहाहा! यह समझना कि चैतन्यस्वरूप है द्रव्यस्वभाव। उसका आश्रय ले, उसका अवलम्बन ले और पुण्य-पाप का आश्रय-अवलम्बन छोड़ दे। तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। तब भावास्त्रव रुक जायेगा। समझ में आया? द्रव्यास्त्रव तो भिन्न ही है।

कलश-११६

और सम्यग्दृष्टि जीव, जिस प्रकार निरास्त्रव है, उस प्रकार कहते हैं —

(शार्दूलविक्रीडित)

सन्न्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं।
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन्।
उच्छिन्दन्परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भवन्
आत्मा नित्यनिरास्त्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा।।4-116।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'आत्मा यदा ज्ञानी स्यात् तदा नित्यनिरास्त्रवः भवति' [आत्मा] जीवद्रव्य [यदा] जिसी काल, [ज्ञानी स्यात्] अनन्त काल से विभाव मिथ्यात्वभावरूप परिणमा था, सो निकट सामग्री पाकर सहज ही विभावपरिणाम छूट जाता है, स्वभाव सम्यक्त्वरूप परिणमता है। ऐसा कोई जीव होता है। [तदा] उस काल से लेकर, पूरे आगामी काल में [नित्यनिरास्त्रवः] सर्वथा सर्व काल सम्यग्दृष्टि जीव, आस्त्रव से रहित [भवति] होता है। भावार्थ इस प्रकार है — कोई सन्देह करेगा कि

सम्यग्दृष्टि, आस्रवसहित है कि आस्रवरहित है? समाधान ऐसा कि आस्रव से रहित है। क्या करता हुआ निरास्रव है? 'निजबुद्धिपूर्वं रागं समग्रं अनिशं स्वयं सन्न्यस्यन्' [निज] अपने [बुद्धि] मन को [पूर्वं] आलम्बन कर होता है, जितना मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्धपरिणाम, ऐसा जो [रागं] परद्रव्य के साथ रंजितपरिणाम, जो [समग्रं] असंख्यात लोकमात्र भेदरूप है, उसे [अनिशं] सम्यक्त्व की उत्पत्ति के काल से लेकर, आगामी सर्व काल में [स्वयं] सहज ही [सन्न्यस्यन्] छोड़ता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—नाना प्रकार के कर्म के उदय में, नाना प्रकार की संसार-शरीर-भोग सामग्री होती है। इस समस्त सामग्री को भोगता हुआ मैं देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, इत्यादिरूप रंजायमान नहीं होता। जानता है—मैं चेतनामात्र शुद्धस्वरूप हूँ, यह समस्त कर्म की रचना है। ऐसा अनुभवते हुए मन का व्यापाररूप राग मिटता है। 'अबुद्धिपूर्वं अपि तं जेतुं वारंवारं स्वशक्तिं स्पृशन्' [अबुद्धिपूर्वं] मन के आलम्बन बिना, मोहकर्म के उदयरूप निमित्तकारण से परिणमे हैं, अशुद्धतारूप जीव के प्रदेश, [तं अपि] उसको भी [जेतुं] जीतने के लिए [बारंबारं] अखण्डितधाराप्रवाहरूप [स्वशक्तिं] शुद्धचैतन्यवस्तु, उसको [स्पृशन्] स्वानुभवप्रत्यक्षरूप से आस्वादता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप हैं जो जीव के अशुद्धचेतनारूप विभावपरिणाम, वे दो प्रकार के हैं—एक परिणाम, बुद्धिपूर्वक हैं; एक परिणाम, अबुद्धिपूर्वक हैं। विवरण—बुद्धिपूर्वक कहनेपर जो सब परिणाम, मन के द्वारा प्रवर्तते हैं, बाह्यविषय के आधार से प्रवर्तते हैं। प्रवर्तते हुए वह जीव, आप भी जानता है कि मेरा परिणाम इस रूप है। तथा अन्य जीव भी अनुमान करके जानता है जो इस जीव के ऐसा परिणाम है। ऐसा परिणाम, बुद्धिपूर्वक कहा जाता है। सो ऐसे परिणाम को सम्यग्दृष्टि जीव, मेट सकता है क्योंकि ऐसा परिणाम, जीव की जानकारी में है। शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर, जीव के सहारा का भी है; इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव पहले ही ऐसा परिणाम मेटता है। अबुद्धिपूर्वकपरिणाम कहनेपर, पाँच इन्द्रिय और मन के व्यापार के बिना ही, मोहकर्म के उदय का निमित्त कर, मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्धविभावपरिणामरूप आप स्वयं जीवद्रव्य, असंख्यात प्रदेशों में परिणमता है सो ऐसा परिणमन, जीव की जानकारी में नहीं है और जीव के सहारा का भी नहीं है; इसलिए जिस किसी प्रकार मेटा जाता नहीं। अतएव ऐसे परिणाम को मेटने के लिये निरन्तरपने शुद्धस्वरूप को अनुभवता है; शुद्धस्वरूप का अनुभव करनेपर,

सहज ही मिटेगा। दूसरा उपाय तो कोई नहीं; इसलिए एक शुद्धस्वरूप का अनुभव (ही) उपाय है। और क्या करता हुआ निरास्रव होता है? 'एव परवृत्तिं सकलां उच्छिन्दन्' [एव] अवश्य ही [पर] जितनी ज्ञेयवस्तु हैं, उनमें [वृत्तिं] रंजकपना — ऐसी परिणामक्रिया, जो [सकलां] जितनी है शुभरूप अथवा अशुभरूप, उसको [उच्छिन्दन्] मूल से ही उखारता हुआ सम्यग्दृष्टि, निरास्रव होता है। भावार्थ इस प्रकार है — ज्ञेय-ज्ञायक का सम्बन्ध दो प्रकार है — एक तो जानपनामात्र है; राग-द्वेषरूप नहीं है। यथा — केवली, सकल ज्ञेयवस्तु को देखते-जानते हैं परन्तु किसी वस्तु में राग-द्वेष नहीं करते। उसका नाम शुद्धज्ञानचेतना कहा जाता है। सो सम्यग्दृष्टि जीव के शुद्धज्ञानचेतनारूप जानपना है; इसलिए मोक्ष का कारण है; बन्ध का कारण नहीं है। दूसरा जानपना ऐसा, जो कितनी ही विषयरूप वस्तु का जानपना भी है और मोहकर्म के उदय का निमित्त पाकर इष्ट में राग करता है, भोग की अभिलाषा करता है तथा अनिष्ट में द्वेष करता है, अरुचि करता है, सो ऐसे राग-द्वेष से मिला हुआ है जो ज्ञान, उसका नाम अशुद्ध- चेतनालक्षण कर्मचेतना-कर्मफलचेतनारूप कहा जाता है; इसलिए बन्ध का कारण है। ऐसा परिणमन, सम्यग्दृष्टि के नहीं है क्योंकि मिथ्यात्वरूप परिणाम गया होने से, ऐसा परिणमन नहीं होता है। ऐसा अशुद्धज्ञानचेतनारूप परिणाम, मिथ्यादृष्टि के होता है। और कैसा होता हुआ निरास्रव होता है? 'ज्ञानस्य पूर्णः भवन्' पूर्ण ज्ञानरूप होता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है — ज्ञान का खण्डितपना यह कि वह राग-द्वेष से मिला हुआ है। राग-द्वेष गये होने से, ज्ञान का पूर्णपना कहा जाता है। ऐसा होता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव, निरास्रव है।।4-116।।

कलश - ११६ पर प्रवचन

और सम्यग्दृष्टि जीव जिस प्रकार निरास्रव है, उस प्रकार कहते हैं—अब जघन्य के बाद की गाथा है। जघन्य ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप परिणमता है, वहाँ तक ज्ञानी को भी उस भाव के कारण बन्ध है। आहाहा! पहले इसे बन्ध रहित बताया, परन्तु यहाँ तो बन्धसहित बताते हैं। बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक दोनों बतायेंगे। समझ में आया? पहले तो मिथ्याश्रद्धा का नाश किया, यह बताया, वह आस्रव नहीं। परन्तु मिथ्यात्व गया तो

सर्वथा आस्रव रहित हुआ, ऐसा नहीं। जहाँ तक आत्मा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र... ये अन्तर चारित्र अर्थात् स्वरूप की रमणता। ये चारित्र अर्थात् खोखा वस्त्र पहनकर बाहर निकल गया और चारित्र है, ये चारित्र-फारित्र है नहीं। अभी सम्यग्दर्शन की खबर नहीं इसको। चारित्र कहाँ से आया? समझ में आया?

अन्तर में आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु पूर्णानन्द की जहाँ शुद्ध परिणमन दशा सम्यक्त्व की हुई, पीछे आनन्द में लीन होना, आनन्द में लीन होना, प्रचुर वेदन करना उसका नाम चारित्र है। अरे! ऐसी बातें सब। फेरफार... फेरफार। आहाहा! जगत से फेरफार वीतराग की वाणी है, बापू! अरे! इसको वीतराग की वाणी मिली नहीं, हों! जिसे इन्द्र सुनता, इन्द्र एकावतारी सुनते हैं वाणी, आहाहा! वह वाणी कैसी हो? बापू! आहाहा!

यह वीतराग ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि हुआ, आत्मा का भान—अनुभव (हुआ), तब से उसको मिथ्यात्व और मिथ्यात्व सम्बन्धी के राग-द्वेष के आस्रवों का अभाव हो गया। इस अपेक्षा से उसको निरास्रव कहा था। अब फिर कहते हैं, अभी उसको आस्रव है। यह तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के आस्रव का अभाव किया। दूसरा आस्रव है। यह कहते हैं।

सन्न्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं।
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन्।
उच्छिन्दन्परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भवन्
आत्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा।।4-116।।

देखो! बात पीछे बदली। पहला एकान्त तानता है कि समकिती निरास्रव है। अब इसको आस्रव नहीं। क्या अपेक्षा है? भाई! इसके अधिकार में कहा, इस अधिकार के बाद।

खण्डान्वय सहित अर्थ - '**आत्मा यदा ज्ञानी स्यात् तदा नित्यनिरास्रवः भवति**' '**आत्मा**' अर्थात् भगवान **जीवद्रव्य...** वस्तु। जीव पदार्थ अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु **जिसी काल, अनन्त काल से विभाव मिथ्यात्वभावरूप परिणमा था, सो निकट सामग्री पाकर...** अपनी योग्यता पाकर। निकट सामग्री में अन्दर पर्याय भी निकट सामग्री

है न? **निकट सामग्री पाकर सहज ही विभाव परिणाम छूट जाता है...** आहाहा! और **स्वभाव सम्यक्त्वरूप परिणमता है। ऐसा कोई जीव होता है। उस काल से लेकर पूरे आगामी काल में सर्वथा सर्व काल सम्यग्दृष्टि जीव आस्त्रव से रहित होता है।** तब से वह सर्व काल निरास्त्रव है। आहाहा! सर्वथा सर्व काल, देखा! नित्य निरास्त्रव, ऐसा कहा न? **सर्वथा सर्व काल सम्यग्दृष्टि जीव आस्त्रव से रहित होता है।**

कोई सन्देह करेगा कि सम्यग्दृष्टि आस्त्रवसहित है कि आस्त्रवरहित है? समाधान ऐसा है कि आस्त्रव से रहित है। क्या करता हुआ निरास्त्रव है? 'भवति निजबुद्धिपूर्वं रागं समग्रं अनिशं स्वयं सन्न्यस्यन्' 'भवति निजबुद्धिपूर्वं रागं समग्रं अनिशं स्वयं सन्न्यस्यन्' अपने मन को **आलम्बन कर होता है, जितना मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणाम, ऐसा जो परद्रव्य के साथ रंजित परिणाम, जो असंख्यात लोकमात्र भेदरूप है, उसे सम्यक्त्व की उत्पत्ति के काल से लेकर आगामी सर्व काल में सहज ही छोड़ता हुआ।** मिथ्यात्व आदि तो सब छूट गये, परन्तु अभी दूसरे बाकी हैं। आहाहा! समझ में आया? रुचिपूर्वक जो राग था, वह राग छूट गया। परन्तु दूसरा अस्थिरता का परिणाम सम्यग्दृष्टि को भी है। अबुद्धिपूर्वक है, रुचिपूर्व नहीं। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—नाना प्रकार के कर्म के उदय में नाना प्रकार की संसार-शरीर-भोग सामग्री होती है। बाहर। **इस समस्त सामग्री को भोगता हुआ मैं देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, इत्यादिरूप रंजायमान नहीं होता।** अब सम्यग्दृष्टि पर में रंजायमान नहीं होता। मैं देव हूँ, मैं पैसेवाला हूँ, मैं पत्नी का पति हूँ-धनी हूँ, नरेन्द्र हूँ, यह बुद्धि समकिती की छूट गयी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **जानता है—मैं चेतनामात्र शुद्धस्वरूप हूँ,...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि हुआ तो चैतन्यवस्तु भगवान आत्मा चेतन की चेतनास्वरूप मैं हूँ। आहाहा! यह पुण्य-पाप आदि मेरी चीज़ नहीं। यह तो सम्यग्दृष्टि को सम्यग्दर्शन हुआ, तब से भान हो गया। आहाहा! वह पर में रंजायमान नहीं होता। किसमें? मैं देव हूँ-पुण्य का फल। मैं मनुष्य हूँ, मैं पैसे से सुखी हूँ, कुटुम्ब-कबीला से सुखी हूँ, ऐसा अज्ञानी मानता है मिथ्यात्वी; समकिती नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया?

इत्यादिरूप रंजायमान नहीं होता। मैं दुःखी हूँ, अरे! निर्धन हूँ। आहाहा! एक

आया था न अभी ? सुना नहीं ? पोपटभाई ने नहीं सुना होगा। एक तीर्थंकर होकर आया था यहाँ। यहाँ। सुना न ? पहले एक पत्र आया था। महीने पहले पत्र आया था कि मैं केवली हुआ हूँ, तीर्थंकर हूँ, चार कर्म का मेरे नाश हुआ है और मैं वहाँ आता हूँ। मैं वहाँ आऊँ तो मुझे सब साधन देना सब। यहाँ आया था। तुम्हें खबर नहीं ? सेठ ! नहीं हो तुम। एक महीने पहले पालीताना रहा, पालीताना रहा और यहाँ पत्र आया कि मैं तीर्थंकर हूँ और मेरे साथ श्लाका पुरुष जो होना चाहिए, ये सब उत्पन्न हो गये हैं। मैं केवली हूँ तीर्थंकर की शुरुआत हो गयी है। मैं वहाँ आऊँ तो मेरे लिये अनुकूलता करना। आहाहा ! बाद में यहाँ मेरे पास आया। वहाँ बैठा, रामजीभाई और सब थे। मेरे चार कर्म का नाश हुआ है। केवली हूँ, सच्ची बात कहता हूँ, हों ! ऐसे बोले। आहाहा ! क्योंकि भगवान को चार कर्म का नाश हुआ था परन्तु चार कर्म... सेठ ! नहीं सुना ? सेठ नहीं, सुना ! यहाँ आया था। तीर्थंकर होकर आया था। कपड़ा-बपड़ा पहने था गरीब मनुष्य था। गरीब मनुष्य। कपड़ा साधारण। गरीब मनुष्य था। किस गाँव का था ? मन्दसौर ? मन्दसौर ? प्रतापगढ़ ? प्रतापगढ़ का था। कहीं दिमाग में ठिकाना न मिले बेचारे को।

यहाँ कहा, मैं केवली हूँ, चार कर्म का नाश हुआ है। चार कर्म बाकी हैं। भगवान को चार कर्म बाकी हैं तो पैसा नहीं था। मेरे पास चार कर्म बाकी है तो पैसा नहीं। आहाहा ! पोपटभाई ! बाकी हमारे जैसे के लिये आश्रम रखो, रोटी मिले। अरे ! भाई ! क्या हुआ तुझे ? बापू ! यह क्या ? हमारे जैसे को आश्रम रखो। भाई ! यह क्या हुआ ? मैंने कहा, यह तो मिथ्यादृष्टि है, भाई ! तो भी सुने। बाद में दाँत निकाले। बाद में खड़ा होकर पैर छुए बराबर। मैंने कहा, यह तो मिथ्यादृष्टि है, बापू ! यह तू क्या कहता है ? तीर्थंकर और केवली किसको कहना, बापू ! अभी तो साधु किसको कहना इसकी खबर न मिले। समकिती किसको कहना, इसकी खबर न मिले और हो गया तीर्थंकर और केवली ? इसको तो दिमाग में ऐसा ही पावर चढ़ गया है। पागल नहीं था, हों ! पागल नहीं परन्तु दिमाग ऐसा। पीछे कहे, यहाँ तो हमारी कीमत होती नहीं। अब अगास जाऊँ। वहाँ भक्त है श्रीमद् को माननेवाले वहाँ कीमत होगी। यह कहीं ऐसे पागल नहीं वहाँ सब। अरे ! ऐसे भी जीव हैं अभी, इतना बाहर आया है... आहाहा ! और वह दिगम्बर था बाद में। ऐसा नहीं कि श्वेताम्बर। दिगम्बर था।

अरे! बापू मिथ्यादृष्टि हो, भाई! आया... कहाँ से... बाद में खड़ा होकर पैर लगा। आहाहा! अरे! बापू! अभी सम्यग्दर्शन किसको कहना? भाई! अभी इसकी खबर न मिले और साधु हो गया और केवली, तीर्थंकर हो गया? आहाहा!

यहाँ बात कहते हैं, **मैं चेतनामात्र शुद्धस्वरूप हूँ, यह समस्त, कर्म की रचना है।** ऐसा जाने। यह बाहर का है, वह कर्म की रचना है, मेरी नहीं। ऐसा सम्यग्दृष्टि जानता है। समझे? आहाहा! बाद में अबुद्धिपूर्वक की व्याख्या है, यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ७, मंगलवार, दिनांक ०४-१०-१९७७
कलश-११६, प्रवचन-११३

२७६ कलश चलता है।

मुमुक्षु : ११६, साहेब! सवेरे का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सवेरे का है। यह बराबर है। कितने में आया? अन्य जीव भी अवलम्बन करके जानता है। सभी जीव के ऐसा परिणाम बुद्धिपूर्वक कहा जाता है, यह। आहाहा! पूरा फिर से लेते हैं। भावार्थ है न? भावार्थ। भावार्थ फिर से। है बीच में? भावार्थ।

भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यात्व... अर्थात् पुण्य के, पाप के भाव में धर्म है और मैं पर का कर सकता हूँ, पर से मेरे में कुछ होता है, ऐसा मिथ्यात्वभाव। यह स्वरूप से विपरीत भाव है। आया नहीं भावार्थ? भावार्थ है न? **मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप हैं जो जीव के अशुद्धचेतनारूप विभाव परिणाम...** क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल से... यह आत्मा में जो मिथ्यात्वभाव होता है, वह क्या है? मिथ्यात्व, जो ये अठारह पाप से बड़ा पाप। यह आत्मा पर का कुछ कर सकता है और पर का भला-बुरा कर सकता है — ऐसी मान्यता, वह मिथ्यात्व है, महापाप है और अपने में जो पाप के परिणाम होते हैं—हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, उसमें सुखबुद्धि रहे, यह मिथ्यात्व है और अपने में दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा के भाव होते हैं, उसमें भी सुखबुद्धि, धर्मबुद्धि रहे, वह मिथ्यात्व है। आहाहा!

वीतराग जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं कि तेरी चीज़ अन्दर शुद्ध चेतनस्वरूप है। इसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ को अपनी मानना और अपने में शुभभाव जो दया, दान, व्रत, तप के भाव, (इनको धर्म मानना, ये मिथ्यात्व है)। लोगों को कठिन पड़ता है। व्रत को लोग धर्म मानते हैं, व्रत को संवर माने और तप को निर्जरा माने। अरे! ये चीज़ भिन्न है, प्रभु! व्रत है, ये तो पंच महाव्रत के विकल्प हों, बारह व्रत के, वह तो शुभराग है,

चैतन्यस्वरूप नहीं। और अपवासादि करने के भाव हैं, वह भी विकल्प, राग हैं। उस शुभराग में धर्म मानना मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! कहते हैं, यह करते हैं, इसमें तुम धर्म तो कहते नहीं, ऐसा कहते हैं। सेठ!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! यह तो बापू! अनन्त काल गया, भाई! चौरासी के अवतार में जैन का साधु भी अनन्त बार हुआ। दिगम्बर साधु, हों! वापस। पर अन्दर में जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव को धर्म है, ऐसा माना है। और शरीर की जो क्रिया होती है, यह मुझसे होती है, ऐसी मान्यता थी। इस मान्यता के कारण मिथ्यात्व का सेवन था। आहाहा! गजब बात! बापू! यह मिथ्यात्व और मिथ्यात्व के साथ रहा राग-द्वेष। है? भावार्थ राग और द्वेष। अनुकूल चीज़ मानकर प्रेम होना और प्रतिकूल चीज़ को देखकर द्वेष होना, यह राग और द्वेष है। आहाहा!

ये **जीव के जो अशुद्धचेतनारूप विभाव परिणाम...** जीव के अशुद्धचेतनारूप (परिणाम हैं), धर्म नहीं। आहाहा! मूल बात बहुत कठिन। अनन्त काल से इसने (किया नहीं)। अशुद्धचेतनारूप। हैं? **विभाव परिणाम...** ये तो विकारी परिणाम है। आहाहा! **वे दो प्रकार के हैं—एक परिणाम बुद्धिपूर्वक हैं, एक परिणाम अबुद्धिपूर्वक हैं। विवरण—बुद्धिपूर्वक कहने पर जो सब परिणाम मन द्वारा प्रवर्ते,...** आहाहा! मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव बुद्धिपूर्वक अर्थात् **जो सब परिणाम मन द्वारा प्रवर्ते,...** आहाहा! चेतन द्वारा नहीं। चेतन तो आनन्दकन्द प्रभु है। आत्मा तो शुद्ध चेतन है। मन द्वारा जो मिथ्यात्वभाव... आहाहा! और राग और द्वेष के भाव, मन द्वारा प्रवर्ते हैं, बाह्य विषय के आधार से प्रवर्तते हैं बाहर इसका लक्ष्य है। मिथ्यात्व का लक्ष्य कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र आदि अथवा मिथ्यात्व का लक्ष्य परद्रव्य, उनको अपने मानना, यह मिथ्यात्व का विषय पर है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग...

बाह्य विषय के आधार से प्रवर्ते... अर्थात् निमित्त के लक्ष्य से मिथ्यात्व और राग-द्वेष प्रवर्तते हैं, ये बुद्धिपूर्वक है। है? **प्रवर्तते हुए वह जीव आप भी जानता है कि...** ख्याल में इसे आता है कि यह विकार है, ऐसे। उसका खबर नहीं, परन्तु ख्याल में ऐसा आता है कि ये विकार है अथवा स्वभाव से विरुद्ध भाव है। वह **जानता है कि मेरा परिणाम इस रूप है।** ऐसा जानता है। **तथा अन्य जीव भी अनुमान करके जानता है...**

है कि इसको राग और मिथ्यात्व—देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा विपरीत है और व्रत और तप की क्रिया से धर्म मानता है तो यह मिथ्यात्व है। दूसरे द्वारा अनुमान से भी जान सकता है। आहाहा! अब ऐसी बातें। कहो, पोपटभाई!

इस जीव के ऐसे परिणाम हैं। ऐसा परिणाम बुद्धिपूर्वक कहा जाता है। इसको बुद्धिपूर्वक (कहते हैं)। मन द्वारा प्रवर्तते हैं और जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष के विषय निमित्त हैं पर और अपने में भी ख्याल आते हैं और दूसरे द्वारा भी ख्याल आता है कि यह जीव के मिथ्यात्व है और यह राग-द्वेष है। उसका नाम बुद्धिपूर्वक कहने में आता है। **सो ऐसे परिणाम को सम्यग्दृष्टि जीव मेट सकता है,...** आहाहा! धर्मी जीव अपने शुद्ध चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा पूर्णानन्द और अनन्त चेतन रत्नाकर से भरा हुआ भगवान आत्मा है, ऐसी सम्यग्दृष्टि की दृष्टि होने से, ज्ञायकभाव परिपूर्ण परमात्मस्वरूप में ऐसे सम्यग्दृष्टि की दृष्टि का विषय ध्रुव और ज्ञायक होने से **सम्यग्दृष्टि जीव मेट सकता है,...** ख्याल में आनेवाला मिथ्यात्व, राग, द्वेष था, उसे तो सम्यग्दृष्टि छोड़ देता है। शान्तिभाई! भारी कठिन काम। अभी तो सम्यग्दृष्टि अर्थात् चौथा गुणस्थान। श्रावक का पाँचवाँ गुणस्थान तो अभी कहाँ रहा। यह किसको कहना ये तो बाद में और मुनि के छठवें गुणस्थान की दशा, वह तो बापू! कोई अलौकिक बात है।

यहाँ तो चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि जीव अविरति हैं, वह भी ऐसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम बुद्धिपूर्वक के जानने में आते हैं, उसको छोड़ देते हैं। समझ में आया? आहाहा! **क्योंकि ऐसा परिणाम जीव की जानकारी में है।** आहाहा! ज्ञानी को ख्याल में आता है। आहाहा! लोग कहते हैं न, सम्यग्दर्शन है तो केवलीगम्य है। तो मिथ्यात्व है, इसको खबर न पड़े? परन्तु ये पुण्य से धर्म मानता है, ये पाप से भाव बुद्धि में सुख मानते हैं, ये प्रत्यक्ष मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसी बातें सुनने मिले नहीं, वहाँ क्या करे? हसमुखभाई! ऐसे के ऐसे मजदूरी में निकाले। पैसा कमाये और ये कार्य और ये कार्य। मजदूरी है या क्या है?

मुमुक्षु : बड़ा मजदूर।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, बापू तो ऐसा कहते हैं। है तो बड़ा मजदूर। आहाहा!

राग और द्वेष की बड़ी मजदूरी करता है ये तो। पर का कुछ नहीं, हों! इस मशीन का पैसा का कुछ कर सकता नहीं। करे तो वहाँ राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव। पुण्य तो कहाँ है वहाँ?

मुमुक्षु : परन्तु उसके बिना पैसा आये किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में नहीं आता, यह तो पुण्य के कारण (आये)। बुद्धि के बारदान के पास करोड़ों रुपया दिखते हैं। नहीं खबर पड़ती? बुद्धि का बारदान समझे? खाली थैला। ऐसा अरबपति देखा है।

मुमुक्षु : सौ में से एक जन बुद्धि का बारदान, परन्तु निन्यानवें तो बुद्धिवाले होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धिवाला-बुद्धि का खां हो, इसको महीने के दो हजार पैदा करने में पसीना उतरता है ऐसा भी देखा है। नहीं देखा? ऐई..! ये तो बहुत देखे, बापू! बहुत यहाँ तो ८८ वर्ष हुए। यहाँ तो १७ वर्ष की उम्र से तो ये सब परिचय है। ७०-७१ वर्ष से तो ये पूरी दुनिया की सब रीति, दुकान का भान और शास्त्र का वांचन ७१ वर्ष से है। आहाहा! हमारे कुँवरजीभाई थे न? साधारण बुद्धि थी, लो। मेरा भाई ही था। बुआ का लड़का भागीदार। दो-दो लाख पैदा करता था। इसमें क्या है? वहाँ बुद्धि का काम है? ये तो पूर्व के पुण्य के परमाणु पड़े हों, इनका पाक आवे तो यह दिखे... यह बाहर की धूल। इसमें पुरुषार्थ और होशियारी की कहाँ जरूरत है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह मिथ्यात्व का भाव—मैं पैसा पैदा कर सकता हूँ, पैसा प्राप्त कर सकता हूँ, पैसा काम में ला सकता हूँ, वह जड़ है। यह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! सूक्ष्म बात, प्रभु! ये मिथ्यात्व के भाव और राग-द्वेष के भाव ज्ञानी को ख्याल में, ज्ञान में मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु हूँ, मैं तो ज्ञायक चैतन्य रस आनन्दकन्द हूँ — ऐसी दृष्टि में ये सब परिणाम बुद्धिपूर्वक होते हैं, उनको छोड़ देता है। आहाहा! समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! बुद्धि के कारण पैसा पैदा हो? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : काम तो पैसे से ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं होता पैसे से।

मुमुक्षु : यह २६ लाख का मकान (परमागम मन्दिर)...

पूज्य गुरुदेवश्री : ये इसको लेकर हुआ है, पैसे से हुआ है ? भगवान कहते हैं, ये परमाणु जगत का तत्त्व है। अजीवतत्त्व है। ये परमाणु अनन्त हैं। ये अनन्त परमाणुओं की पर्याय उसके काल में वहाँ होती है, पैसे के कारण नहीं। लोगों को कहीं चीज़ की खबर है ?

मुमुक्षु : इसका निमित्त तो पैसा है न, उपादान...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निमित्त क्या ? निमित्त कर्ता नहीं, इसका अर्थ निमित्त कहलाये। आहाहा! कठिन बात, बापू! एक अँगुली को हिलाना, यह भी आत्मा कर सकता नहीं। क्योंकि वह तो जड़ मिट्टी धूल है। परद्रव्य जड़ अजीव है। उस अजीव को ऐसा कर सके, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की है, उसको जैनधर्म की खबर नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जिसने ये बात सुनी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनी नहीं तो अज्ञान बचाव हो क्या ? पोस्टमेन होता है। पोस्टमेन होता है न ? इसका कागज... क्या कहलाये तुम्हारा ? रसीद तुम्हारी। मनीऑर्डर होता है ये मास्टर को खड़ा रहना पड़े। उस थैली से सील लगाता है न ? तब खड़ा रहना पड़े। न खड़ा रहे और फरेब हो तो कैद में डाले। मुझे खबर नहीं थी। खबर नहीं थी ये अज्ञान बचाव है ? पाँच-पाँच हजार की रसीद अन्दर थी इसमें, सब निकल गयी। तुम वहाँ उपस्थित नहीं थे ? ये नौकर ने काम किया। पोस्टमास्टर ने ऐसा है। अज्ञान ये बचाव है ? तुम्हें खबर नहीं थी, ये बचाव तेरा है ? सेठ! मार्ग तो ऐसा है, भाई!

यहाँ परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की आज्ञा हुकम है कि जो सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! जिसने पुण्य और पाप के भाव से धर्म नहीं, ऐसा जाना है। मेरा आत्मा चैतन्यमूर्ति भगवान आनन्दस्वरूप (है, इसको जाना है)। ये दोपहर आया था। अपने ये ही लिया था। शुद्ध आत्मनि आत्मा में। आहाहा! यह भगवान चैतन्य शुद्ध है। परन्तु ये शुद्ध क्या है यह सुना नहीं। एक पर्याय जो अवस्था है, ये पर्याय, इसमें जितने मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम दिखते हैं, वे मलिन हैं। इसके सिवाय पूरी चीज़ है, वह निर्मल है। समझ में आया ?

जैसे स्फटिक है, स्फटिक। जैसे स्फटिक में लाल, पीला फूल हो तो लाल, पीली झांईं दिखती है इसमें। परन्तु वह स्फटिक की चीज़ नहीं। स्फटिक तो सफेद-श्वेत है। ऐसे भगवान आत्मा चैतन्य स्फटिक जैसा निर्मलानन्द प्रभु है। उसमें जो यह पुण्य और पाप के मिथ्यात्वभाव है, दर्शनमोह कर्म जड़ है, ये मिथ्यात्वादि करता है, ये इसकी झांईं है। परन्तु यह झांईं पर्याय में है, वस्तु में नहीं। वस्तु तो निर्मलानन्द प्रभु अनादि-अनन्त है। किसको खबर क्या है यह वस्तु?

मुमुक्षु : कुछ करना रहा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही करना रहा। निर्मलाननद को जानना, अनुभवना ये करना है। क्या करना था? कूदना है कहीं बाहर? सेठ! आाहाहा! ये दोपहर आयेगा। ये दोपहर का अधिकार, दोपहर का अधिकार। नहीं? आत्मनि आत्मा है न? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने ये आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सत्... सत्... सत् है। चिद्—ज्ञान और आनन्द। ज्ञान और आनन्द का होनापना, यह भगवान आत्मा है। आहाहा! अरे! कभी खबर नहीं होती। जिसमें अनन्त आनन्द की खान पड़ी है। अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र प्रभु है। आहाहा! ये अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर भगवान का जिसको अनुभव और दृष्टि हुई। आहाहा! वह सम्यग्दृष्टि बुद्धिपूर्वक के मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणामों को होने देता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह बात चलती है।

ऐसे परिणाम को सम्यगदृष्टि जीव मेट सकता है, क्योंकि ऐसे परिणाम जीव की जानकारी में हैं। शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर जीव का सहारा का भी है,... आहाहा! जीव का सहारा का भी है। जीव के सहारा का भी है। **शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर जीव का सहारा का भी है,...** आहाहा! शुद्धस्वरूप का अनुभव... सम्यग्दर्शन में भगवान चैतन्य शुद्धस्वरूप अनादि-अनन्त पवित्र पिण्ड है। उसका पर्याय में अनुभव होता है, वह जीव का कार्य है। आहाहा! जीव का सहारा है। इसमें कोई दया, दान और व्रत के परिणाम का सहारा उस सम्यग्दर्शन में नहीं है। आहाहा! अरे! ऐसा मार्ग, आहाहा! शान्तिभाई! जैन में जन्मा जैन में, पचास-पचास साठ-साठ सत्तर वर्ष जायें तो भी सुना न

हो। अरे! प्रभु! वीतराग त्रिलोकनाथ परमेश्वर की तो यह वाणी है। आहाहा!

प्रभु! तू पवित्र आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु है न! सच्चिदानन्द अन्यमति कहें, ऐसा नहीं, हों! यह तो परमेश्वर ने आत्मा को (ऐसा देखा है)। 'प्रभु तुम जाणग रीत, सौ जग देखता...' हे नाथ! सर्वज्ञ परमेश्वर का भक्त कहता है, 'प्रभु तुम जाणग रीत, सौ जग देखता हो लाल, निज सत्ताये शुद्ध अमने पेखता हो लाल...' हम जिन सत्ता को शुद्ध आनन्दकन्द चैतन्यघन पुण्य-पाप के विकल्प से रहित चीज हूँ, उसको तुम आत्मा कहते हो और उसे तुम आत्मा देखते हो। आहाहा! आहाहा! बात तो बहुत मीठी है, परन्तु परिचय नहीं। आहाहा! उल्टे रास्ते चढ़ा दिया है अनादि से। इसको खबर नहीं अन्तर के मार्ग की। भाई! आहाहा!

शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर जीव का सहारा का भी है,... क्या कहते हैं? ये जीव की सहायता से मिलते हैं शुद्ध परिणाम। आहाहा! यह कोई दया, दान, व्रत के परिणाम से सम्यग्दर्शन का परिणाम होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का परिणाम अपने शुद्धचैतन्य भगवान का सहारा अर्थात् आश्रय से होता है। आहाहा! क्या भाषा? और कहीं बापू! मार्ग बहुत अलग, भाई! **इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव पहले ही ऐसा परिणाम मेटता है।** देखो! आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी—पहला पगथिया ये सम्यग्दर्शन। तो सम्यग्दर्शन में जीव शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का अनुभव होने पर सम्यग्दृष्टि को पहले से मिथ्यात्व और राग-द्वेष जो हैं, इनका नाश कर देते हैं। समझ में आया? ऐसी बातें अब। इसमें क्या कहते हैं, यह पकड़ना कठिन। पहले तो सहेलुसट्ट-सरल था। दया पालना, व्रत करना, अपवास कर लेना, छह-छह दिन के पारना (निराहार) करना, कन्दमूल नहीं खाना, प्रत्येक वनस्पति की मर्यादा करना। ऐसा सरल था अज्ञान। धूल में ही नहीं। सब सुन न। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं, प्रभु! यह सब विकल्प और राग की क्रिया हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा, निर्मल जैसे स्फटिक... आता है न? 'जैसे निर्मलता रे स्फटिक की, वैसा ही जीव स्वभाव रे... जैसे निर्मलता रे स्फटिक की...' स्फटिक, स्फटिक पत्थर एक बार देखा है। कहाँ? जामनगर। यहाँ अपने स्फटिक है। ये तो पहले वहाँ देखा था—

जामनगर। छह लाख का सोलेरियम है न? वहाँ छह लाख का एक बड़ी मशीन है। बड़ी मशीन। यह तो उस दिन की बात है। (संवत्) १९९१ की बात है। वहाँ बड़ा डॉक्टर था। प्राणजीवन डॉक्टर, प्राणजीवन डॉक्टर... ढाई हजार का वेतन था। उस समय व्याख्यान में आता। १९९१ में व्याख्यान वांचा न। वहाँ राजकोट। जामनगर आता। एक बार वहाँ देखने गये थे। उसके पास इतना बड़ा स्फटिक था। ये बताया था। ऐसा स्फटिक सफेद। वह स्फटिक एकदम स्वच्छ और निर्मल होता है। इसमें डांक दिखे लाल, पीला, फूल रखो तो, वह उसका स्वरूप नहीं।

ऐसे भगवान आत्मा चैतन्य स्फटिक रत्न, 'जैसे निर्मलता रे स्फटिक की, ऐसा जीव स्वभाव, श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशियो, श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव रे...' ये पुण्य और पाप के भाव कषाय हैं, उनके अभाव स्वरूप भगवान ने धर्म कहा है। आहाहा! कहो, हसमुखभाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **सम्यग्दृष्टि जीव पहले ही ऐसा परिणाम मेटता है।** क्या? जो ख्याल में आता है कि ये मिथ्यात्व और राग-द्वेष, ये तो पहले से ही छोड़ देता है। आहाहा! क्योंकि आत्मा चैतन्य भगवान पवित्रता का पिण्ड है। इसमें—आत्मा में तो एक-एक शक्ति, ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त शक्ति हैं और एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्य है। अरे रे! भगवान आत्मा अन्दर यह शरीररहित, पुण्य-पाप के राग से रहित, जो चीज़ अन्दर है, उस चीज़ में तो अनन्त शक्तियाँ है। शक्ति अर्थात् गुण। अनन्त गुण। जैसे ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, कर्ता, कर्म, जीवत्व शक्ति आदि। सैंतालीस तो बतायी हैं, ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्य है और एक-एक शक्ति की अनन्त पर्यायें हैं। आहाहा! ऐसा अन्दर भगवान विराजता है, इसका पता न चले और धर्म करे। कहाँ धर्म करेगा? धर्मी जो धर्म, गुण का धरनेवाला परमात्मा स्वयं, उसका तो पता न चले और धर्म हो कहाँ से? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव, यह शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी दृष्टि करते हैं, उसका आश्रय करते हैं। जीव के सहारे ये सम्यग्दर्शन आदि भाव हैं। तो जितने बुद्धि में ख्याल में आते हैं, इतने विकार के परिणाम को छोड़ देता है। समझ में आया? अब आया अबुद्धिपूर्वक। **अबुद्धिपूर्वक परिणाम कहने पर पाँच इन्द्रिय और मन के व्यापार**

के बिना ही... इन्द्रिय और मन का सहारा जिसमें नहीं। **मोहकर्म के उदय का निमित्त कर मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध विभावपरिणामरूप आप स्वयं जीवद्रव्य...** आहाहा! सूक्ष्म बातें, भाई! जैसे कि स्फटिक में काला, लाल फूल अथवा कोई कपड़ा रखें तो इसकी झाँईं दिखती है। ऐसे भगवान आत्मा तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, परन्तु कर्म जड़ है अन्दर, आठ कर्म ज्ञानावरणीय आदि मिट्टी धूल हैं, जैसी ये धूल है धूल, स्थूल है और कर्म के रजकण सूक्ष्म हैं। रूपी, मूर्त, जड़ अजीव हैं। इनके निमित्त के सम्बन्ध में, इनके लक्ष्य से यहाँ जितने राग और द्वेष होते हैं, मोह को साथ में लिया (अर्थात्) परसन्मुख की सावधानी।

मोहकर्म के उदय का निमित्त कर... निमित्त, हों! **मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध विभावपरिणामरूप आप स्वयं जीवद्रव्य...** स्वयं जीवद्रव्य अपने से **असंख्यात प्रदेशों में परिणमता है...** आहाहा! फिर यह क्या कहा? जीव में असंख्य प्रदेश हैं। जैसे साँकल है न, साँकल? हजार मकोड़ा की। यह सोने की। सोने की साँकल हजार मकोड़ा की साँकल। सांकर ये आत्मा। ऐसे असंख्य प्रदेशी आत्मा। ये मकोड़ा हजार हैं, यहाँ असंख्य प्रदेश हैं। एक परमाणु सूक्ष्म पॉईन्ट है, वह जितनी जगह रोके, उसको प्रदेश कहते हैं। भगवान ने आत्मा को असंख्य प्रदेशी कहा है। ये असंख्य प्रदेशी (अर्थात्) मकोड़ा। आत्मा (अर्थात्) साँकल, मकोड़ा में जैसे सोना पड़ा होता है, ऐसे एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण पड़े होते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

सर्वज्ञ परमेश्वर... श्रीमद् में भी आता है, 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहें कर विचार तो पाम।' भगवान आत्मा शुद्ध-पवित्र, बुद्ध-ज्ञान का कन्द, चैतन्यघन अर्थात् असंख्यप्रदेशी। शुद्धबुद्ध चैतन्यघन। स्वयं ज्योति—अपने से ज्योति चैतन्य है। उसका कोई कर्ता-फर्ता, ईश्वर-फिश्वर है नहीं। स्वयं ज्योति सुखधाम। अतीन्द्रिय आनन्द का धाम—स्थल है। अतीन्द्रिय आनन्द का धाम—स्थल है। वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का पाक पकता है इसमें से तो। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ऐसा जो आत्मा शुद्ध परिणाम शुद्धस्वरूप, उसके असंख्यप्रदेशों में मोह, राग और द्वेष आदि से अथवा पर में सावधानी से परिणमता है तो **ऐसा परिणमन जीव की जानकारी में नहीं है...** ख्याल में न आये। उपयोग स्थूल है न। ज्ञानी को भी

जितना ख्याल में आता है, ऐसा विकार तो छोड़ देते हैं। परन्तु ख्याल में ना आवे ऐसा परिणाम है, वे जानकारी में नहीं। ख्याल में नहीं आता। बहुत सूक्ष्म परिणमन अन्दर (होता है)। आहाहा! **और जीव के सहारा का भी नहीं है,...** अर्थात् वहाँ जीव की मदद नहीं। विकार तो कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुआ भाव है। आहाहा! धर्म की जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय—अवस्था, उसको सहारा जीव का है, उसे जीव का आश्रय है और पुण्य-पाप के भाव पीछे जो अबुद्धिपूर्वक हैं, इनको सहारा जीव का नहीं। इनको सहारा निमित्त के आश्रय से विकार उत्पन्न होता है। होता है अपने से, परन्तु इसका लक्ष्य कर्म के ऊपर जाता है। आहाहा! ऐसा है। शान्तिभाई! शान्तिभाई कहते थे कि जिन्दगी चली गयी सब। वहाँ सब भाषण बड़े-बड़े करते थे स्थानकवासी में तो। क्या कहा?

मुमुक्षु : गुरु का उपदेश मिले तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश भी पात्र हो तो बिना मिले रहे नहीं। भगवान कहा नहीं? भगवान विराजते हैं, क्यों जन्म नहीं लिया वहाँ? परमात्मा विराजते हैं, साक्षात् केवली महाविदेह में परमात्मा पाँच सौ धनुष, पाँच सौ धनुष का देह, करोड़ पूर्व की आयुष्य है, करोड़ पूर्व। एक पूर्व में सत्तर लाख और छप्पन हजार करोड़ वर्ष जायें। यह एक पूर्व। ऐसे करोड़ पूर्व की आयुष्य से भगवान विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में अभी जीवन्त हैं। महाविदेहक्षेत्र। सिद्ध में नहीं, हों! आहाहा! समझ में आया? वहाँ क्यों नहीं जन्मा? श्रवण करने की योग्यता होती तो वहाँ जन्म होता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में जितना बुद्धिपूर्वक ख्याल में आता है विकार, इतना तो धर्मीजीव अपने शुद्धस्वभाव का अनुभव करके उसको तो छोड़ देता है। चैतन्य भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञानस्वरूप, निर्मल प्रभु की श्रद्धा-ज्ञान की परिणति से, वह मिथ्यात्व आदि जानने में आता है, उसको छोड़ देते हैं। परन्तु जो अबुद्धिपूर्वक अभी सूक्ष्म (राग) रहता है, वह जानकारी में आता नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं, **जीव के सहारा का भी नहीं है, इसलिए जिस किसी प्रकार मेटा जाता नहीं।** ख्याल में आता नहीं, इससे मेटा जाता नहीं।

अतएव ऐसे परिणाम को मेटने के लिये निरन्तरपने शुद्ध स्वरूप को अनुभवता

है,... आहाहा! क्या कहते हैं? ये ख्याल में आनेवाला विकार को तो धर्मी जीव छोड़ देते हैं। क्योंकि आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव है, भान है सम्यग्दृष्टि को। परन्तु अबुद्धिपूर्वक जानकारी के बाहर रहा, उसको मिटाने का दूसरा उपाय तो है नहीं। ख्याल में नहीं। तो उसको मेटने का उपाय क्या? **शुद्धस्वरूप का अनुभव...** अपनी चैतन्य शक्ति का जितना भान हुआ, इससे विशेष अनुभव करने से अबुद्धिपूर्वक जो रागादि है, उसका भी नाश होता है। आहाहा! ऐसी बातें अब। बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक और... प्रभु! मार्ग भिन्न, भाई! वीतराग के शास्त्र कोई अलग प्रकार के हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : बुद्धिपूर्वक हो या अबुद्धिपूर्वक हो स्वरूप के अनुभव से मिटा सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिटा सकता है। बुद्धिपूर्वक तो सीधे मिटा सकते हैं। अबुद्धिपूर्वक के मिटाने के लिये शुद्ध अनुभव करने से मिट जाता है। ख्याल में तो है नहीं। परन्तु अन्दर शुद्धचैतन्यमूर्ति की ओर झुकने से वह अबुद्धिपूर्वक है, उसका नाश होता है। बात तो भाषा तो सादी है, भाव तो है, वह है, भाई! ये तो तीन लोक के नाथ वीतराग जिनेश्वर की वाणी, बापू! ये कोई साधारण मनुष्य को ऐरे-गैरे को बैठे, कठिन है। आहाहा!

निरन्तरपने शुद्ध स्वरूप को अनुभवता है,... आहाहा! धर्मीजीव तो निरन्तर जिस सुख का स्वाद आया है, अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दृष्टि (को स्वाद आया है)। तो ये आनन्द को कायम अनुभवता है निरन्तर। आहाहा! ज्ञानधारा, आनन्दधारा में कायम अनुभवता है। जानकारी के बाहर जो अन्दर रागादि रह गये, वे छूट जाता है। आहाहा! आता है न? **शुद्धस्वरूप का अनुभव करने पर सहज ही मिटेगा।** अन्तर आनन्द का नाथ परमात्मा अपना सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा कहा यह, हों! अज्ञानी लोग आत्मा आत्मा करते हैं, बहुत बातें, वह आत्मा नहीं। परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी उसने जो आत्मा कहा ये अनन्त आत्मा जगत में हैं। अनन्त आत्मा हैं। प्रत्येक आत्मा निर्मलानन्द सच्चिदानन्द प्रभु है। सत् सत् है, ज्ञान और आनन्द का कन्द है। आहाहा!

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान तक...

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे गुणस्थान में भी अनुभव आगे बढ़ते-बढ़ते राग का नाश करेगा। पीछे बढ़ते-बढ़ते। चौथे गुणस्थान में सबका नाश नहीं होता। परन्तु अनुभव करने

से क्रम-क्रम से नाश होता है। इस ओर झुका है न। आहाहा! इसका प्रश्न ये है कि चौथे गुणस्थान में अबुद्धिपूर्व का सब राग-द्वेष का नाश हुआ है? ऐसा कहता है। सबका न हो। जितना इस ओर अनुभव करता है, इतना नाश होता है।

मुमुक्षु : ये क्रम जहाँ तक कषाय रहती है, वहाँ तक...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तक अनुभव इस ओर ढलता है। आहाहा!

मुमुक्षु : साधकदशा यहाँ से शुरु हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरु हुई। सम्यग्दृष्टि के साधक धर्म की शुरुआत यहाँ से होती है। इस बिना अज्ञानी को धर्म नहीं। आहाहा!

यह तो अनुभव करने पर, शुद्धस्वरूप का अनुभव करने पर सहज ही मिटेगा। अबुद्धिपूर्वक राग है, यह तो सहज मिलेगा और नाश करूँ — ऐसा तो ख्याल में है नहीं। इस ओर अनुभव करने से सहज मिटेगा। आहाहा! **दूसरा उपाय तो कोई नहीं,...** आहाहा! क्या कहते हैं, समझना कठिन। **इसलिए एक शुद्धस्वरूप का अनुभव उपाय है।** लो, भगवान सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध सिद्धस्वरूप। आत्मा सिद्धस्वरूपी अन्दर है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूप को सिद्धसमान त्रिकाल जानता है। एक शुद्धस्वरूप का अनुभव, उसका अनुसरण करके होना, निर्मल परिणति होना, यह एक ही अबुद्धिपूर्वक के राग को नाश करने का उपाय है। शान्तिभाई! यह ख्याल में आता है या नहीं? भाषा तो सादी है। भाषा बहुत कठिन नहीं। भाव तो जो है, वह है। आहाहा! अरेरे! चौरासी में भ्रमता... रुलता, इसको भगवान की वाणी मिली नहीं। आहाहा! वाणी मिली तो क्या स्वरूप कहते हैं, यह समझा नहीं। मिला, न मिला जैसा किया इसने। अनन्त बार भगवान के पास जन्मा है। महाविदेहक्षेत्र में आत्मा अनन्त बार जन्मा है। ढाई द्वीप है, मनुष्य क्षेत्र ढाई द्वीप—४५ लाख योजन है। एक कण भी अनन्त भव किये बिना नहीं रहा। ४५ लाख योजन में... मनुष्य क्षेत्र ४५ लाख योजन है। इसके पीछे मनुष्य नहीं। बाद में असंख्य द्वीप समुद्र में अकेले तिर्यंच पशु हैं। आहाहा! ४५ लाख योजन में एक कण भी बाकी नहीं कि जिसने अनन्त भव न किये हों। तो महाविदेहक्षेत्र में भी अनन्त भव किये हैं। आहाहा! और वहाँ तो साक्षात् तीर्थंकर त्रिकाल विराजमान ही होते हैं। बीस जाते हैं तो

दूसरे बीस होते हैं। दूसरे बीस (होते हैं)। वहाँ तो तीर्थंकर अनादि से महाविदेह में विराजमान ही हैं। उनके पास समवसरण में भी गया। आहाहा! परन्तु धोए हुई मूली के समान रहा। क्या कहते हैं और क्या समझना है, यह दरकार की नहीं। भगवान को समवसरण में सुना। उनकी आरती उतारी। हीरा के थाल मणिरत्न के दीपक और कल्पवृक्ष के फूल, उससे भगवान की आरती उतारी, इसमें क्या हुआ? वह तो शुभभाव राग हैं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो शुद्धस्वरूप का अनुभव एक ही उपाय है, मोक्ष का मार्ग। अन्तर भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धस्वरूप का अनुभव करना, उसका वेदन करना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का परिणाम प्रगट करके वेदन करना, यह एक ही उपाय है। आहाहा! यह सब अन्तर की बातें। बाहर में कहीं न मिलता। एक शुद्धस्वरूप अनुभव उपाय है। **और क्या करता हुआ निरास्रव होता है?** विशेष कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव-धर्मीजीव, जिसको आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप का अनुभव हुआ है। पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न निर्विकल्प चैतन्यप्रभु। आहाहा! सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाले भले गृहस्थाश्रम में हों, भरत चक्रवर्ती थे। ऋषभदेव भगवान के पुत्र। छह खण्ड, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ गाँव, छियानवें करोड़ सैनिक। अन्दर में भान था कि ये चीज़ मेरी नहीं। ये स्त्रियाँ मेरी नहीं, राग होता है, यह मेरी नहीं। मेरी चीज़ तो आनन्दकन्द है। ऐसा गृहस्थाश्रम में भी भान होता है।

यहाँ कहते हैं, **एक शुद्धस्वरूप का अनुभव उपाय है। और क्या करता हुआ निरास्रव होता है? 'एव परवृत्तिं सकलां उच्छिन्दन्' अवश्य ही जितनी ज्ञेयवस्तु है, उसमें रंजकपना...** अपने अतिरिक्त जितनी जाननेयोग्य वस्तु है, उसमें रंजितपने, राग, उस सब छोड़ देता है। समझ में आया? इसलिए निरास्रव होता है। आस्रव रहित।

मुमुक्षु : छूट ही जाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : छूट जाता है। निरास्रव तब कहलाता है, ऐसा कहते हैं। पहले तो कह दिया, चौथे गुणस्थान में निरास्रव है। पहले ऐसा कहा था। अब यहाँ तो ऐसा कहते हैं, निरास्रव तो सर्वथा परज्ञेय में रंजितपना जितना, राग है, वह सब छोड़ेगा, तब निरास्रव होगा। समझ में आया? पहले तो ऐसा कहा था, सम्यग्दृष्टि तो निरास्रव ही है। परन्तु यह

मिथ्यात्व के साथ के राग-द्वेष की अपेक्षा से निरास्रव कहा था। यहाँ तो अब सर्वथा निरास्रव (कब होता है, इसकी बात करते हैं)। आहाहा! अन्दर सम्यग्दर्शन हुआ है, आत्मभान हुआ है, राग मेरी चीज़ नहीं, ऐसा भान है, फिर भी राग होता है तो ये राग का कण भी स्वरूप की दृष्टि अनुभव करते-करते उसका नाश हो जायेगा, तब ये निरास्रव होगा। तब आस्रव रहित होगा। आहाहा! है न?

क्या करता हुआ निरास्रव होता है? 'एव परवृत्तिं सकलां उच्छिन्दन्' 'एव' अर्थात् निश्चय से। ऐसा **'एव'** है न? **अवश्य ही जितनी ज्ञेयवस्तु है,...** आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, धूल तो पर है, परन्तु देव, गुरु और शास्त्र भी परचीज़ है, तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं कि हमारे प्रति लक्ष्य से जो तुझे राग होगा। आहाहा! इस राग का भी अनुभव द्वारा नाश कर। दूसरा कोई उपाय नहीं। परज्ञेय रंजित आया था न? रंजित। पर को जानते राग होता था। तो देव, गुरु और शास्त्र को जानते भी राग होता था। आहाहा! वह परज्ञेय है। स्वज्ञेय तो यहाँ अन्दर है। इसमें राग होता था, वह भी शुद्धस्वरूप का अनुभव करते-करते राग का नाश होगा। तब यह आस्रव रहित होगा। आस्रव समझे? पुण्य-पाप के भाव आस्रव। आस्रव से नये कर्म आते हैं। जैसे वाहन (गाड़ी) होता है न? वाहन। इसमें छिद्र हो न, छिद्र? तो पानी अन्दर आता है। ऐसे आत्मा में जितने पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे छिद्र हैं। इस कारण नये कर्म आते हैं, इसलिए इन्हें आस्रव कहने में आता है। आहाहा! अरे! एक-एक तत्त्व की खबर न मिले और जिन्दगी ऐसी की ऐसी जा रही है। आहाहा!

परमात्मा तो ऐसा फरमाते हैं, मैंने पहला कहा था कि सम्यग्दृष्टि निरास्रव है। वह तो मिथ्यात्व सम्बन्धी राग-द्वेष और मिथ्यात्व के अभाव की अपेक्षा से कहा था। परन्तु सर्वथा निरास्रव तो तब होगा कि परज्ञेय में जितनी आसक्ति का, आसक्ति का, अपनेरूप मानना नहीं, परज्ञेय में आसक्ति समकिती को भी होती है न? परन्तु यह आसक्ति का रंजक (मलिन) परिणाम है, इस स्वरूप का अनुभव करते-करते उसका नाश करेगा। आहाहा! ऐसी बातें अब। घर से बाई-स्त्री आयी न हो और (पूछे कि) तुम क्या सुनकर आये हो? कौन जाने, ऐसा और वैसा, ऐसी बातें करते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं। आत्मा निर्मल है। कौन जाने क्या कहते हैं? ऐ... है न, बापू! सारी दुनिया की सब खबर है। दुनिया की सब

नाड़ी हमने बहुत देखी हैं। लाखों लोगों का परिचय है। दस-दस हजार मील तो तीन बार हिन्दुस्तान में घूमे हैं। पूरे हिन्दुस्तान में। दस-दस हजार मील, हों! मोटर द्वारा। तीर्थ (यात्रायें की हैं)। सब देखा, बापू! मार्ग अलग है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : इतना प्रवास किया तो कितना...

पूज्य गुरुदेवश्री : अब शरीर काम करे देखो न! ८८ वर्ष हुए। ८८ वर्ष किसे कहें? आंकड़ा ८८ का सुने। शरीर कोमल दिखाय अर्थात् (लगे नहीं)। ८८ वर्ष का (दूसरा हो तो) खाट पर पड़ा होता। आहाहा! बहुत लम्बा कहाँ... कल ही माँग आयी है। मध्यप्रदेश में जयन्ती करो। सेठ के ऊपर लिखा है। परम आदरणीय जैनरत्न भगवानदास शोभालाल। ऐसा नाम आया है... तुम दो के नाम थे। परम आदरणीय जैनरत्न। सेठ की प्रसिद्धि बड़ी है न! भगवानदास शोभालाल से हमारी प्रार्थना है कि महाराज की जयन्ती मध्यप्रदेश में मनाने का निश्चित करो। ८९वीं बैठेगी न? वैशाख सुदी दोज। इनकी माँग है। पहले तो घाटकोपर की माँग है। पहले (गत वर्ष) घाटकोपर जाना था न। पैर में मोच आ गयी थी। पैर मुड़ गया था। चल नहीं सकता था।

मुमुक्षु : एक बार तो मध्यप्रदेश की मंजूरी दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब कहीं बाहर जाना नहीं। एक ये मद्रास है। पाँच लाख का मन्दिर हुआ है न। इन लोगों की गत वर्ष की माँग है। जाया जाए। और ये मुम्बई की माँग है। हो वह सही। होने के समय हो।

यहाँ कहते हैं। आहाहा! क्या कहा? **'एव परवृत्तिं सकलां उच्छिन्दन्' अवश्य ही जितनी ज्ञेयवस्तु है, उसमें रंजकपना...** देखा? ज्ञेयवस्तु में आसक्ति। मिथ्यात्व तो है नहीं सम्यग्दृष्टि को। उसका नाश करके तो अनुभव किया है। अब मलिनता कितनी है, ऐसी **परिणामक्रिया, जो जितनी है शुभरूप अथवा अशुभरूप,...** देखो! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय के आसक्ति के परिणाम हों या दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के परिणाम हों, दोनों क्रिया राग है। आहाहा! है? **शुभरूप अथवा अशुभरूप,...** दोनों क्रिया। आहाहा! कठिन काम। यहाँ तो अकेली शुभक्रिया में धर्म मानकर, हमें धर्म हुआ, धर्म करते हैं। व्रत किया अर्थात् संवर हुआ और तप किया अर्थात् निर्जरा हुई। आहाहा! अरे! प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! पीछे इससे मोक्ष हो जायेगा। पहला भाई नहीं था कहता? वहाँ है न, सर्वोदय, मुम्बई।

कान्तिभाई लींबडीवाला। करोड़पति। कान्तिभाई सर्वोदय है न? बड़ा क्या कहलाये? अस्पताल। सर्वोदय हॉस्पिटल। वहाँ व्याख्यान देता और बहुत बार तो। इस बार विनती करने आये थे। परन्तु वहाँ मुम्बई आया था। कान्तिभाई के यहाँ हम रहे थे। लाठीवाले के यहाँ। वहाँ आया था। महाराज! कारण कि इसकी बुद्धि स्थूल, पैसा करोड़ों रुपये, एक लड़का नहीं। एक लड़की थी, इसकी शादी में तीसेक लाख रुपया दिया। अभी सत्तर लाख रुपया है और उम्र हो गयी बहुत। ५५ के ऊपर हुई। महाराज आपकी बात तो चार हजार भव बाद समझ में आयेगी। अरे! चार हजार भव कहाँ करेगा? बापू! तुम। आहाहा! ऐसे व्यक्ति को कहीं आत्मा की दरकार नहीं। अरे.. भाई! इस भव में नहीं करे, पीछे दूसरे भव में कहाँ जायेगा, तुझे खबर नहीं। चार हजार भव बाद में तुम्हारी बात समझेगा, कहे। लो, ठीक। कान्तिभाई है, लींबड़ी का है। बड़ा है। दशाश्रीमाली करोड़पति। सब आते तो हैं, सुने सहीं।

मुमुक्षु : एक दिन में चार हजार भव हो सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चार हजार भव पीछे समझेगा तुम्हारी बात, ऐसा कहता था। चार हजार। अरे... भाई! भव की खबर कहाँ है? बापू! कहाँ जायेगा? यह निगोद का घर बड़ा है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आलू, शक्करकन्द, प्याज, लहसुन के एक टुकड़े में अनन्त जीव हैं। एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव। भाई! तुझे खबर नहीं। परमात्मा त्रिलोकनाथ... लहसुन के एक राई जितने टुकड़े में असंख्य तो औदारिकशरीर हैं। एक शरीर में अनन्त जीव हैं। आहाहा! भगवान ने कहा है। अब यहाँ यदि गया तो मनुष्य होना मुश्किल है। बापू! आहाहा! समझ में आया? और जिसको रुचि हुई, उसको वायदा होय? इसका अर्थ (यह कि) रुचि नहीं। जिसको जिसकी रुचि, जिसकी जरूरत जानी, उसका पुरुषार्थ किये बिना रहे ही नहीं। ऐ... आहाहा! पहिचानते हो, न कान्तिभाई को? मुम्बई नहीं? अपने व्याख्यान वहाँ देता है न। बड़ा हॉल है न? देवदर्शन। श्वेताम्बरों ने हॉल बनाया है बड़ा। श्वेताम्बर साधु मिल गया था। इसने पैसा खर्च कराया था। लाखों। प्रतिमा बहुत स्थापित कीं, बड़ी। चारों तरफ। हॉल बड़ा। दस-दस हजार आदमी। व्याख्यान में दस-दस हजार आदमी। सब आयें वहाँ। सथानकवासी लोग आयें, श्वेताम्बर आयें। प्रेम तो हमारे ऊपर लोगों को है न। दस-दस हजार लोग सभा में—व्याख्यान में।

परन्तु तत्त्व को समझने की जरूरत जीवों को बहुत थोड़ी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आत्मा को जो राग शुभ-अशुभभाव होता है, **उसको मूल से ही उखाड़ता हुआ सम्यग्दृष्टि निरास्रव होता है।** तब निरास्रव होता है। आहाहा! देखा! पहले मिथ्यात्व सम्बन्धी राग-द्वेष के अभाव को निरास्रव कहा था। पीछे यह बात ली। वहाँ पकड़कर रखे (तो एकान्त हो जाये)। जितने अंश अबुद्धिपूर्वक का राग है, सम्यग्दृष्टि को, अरे! मुनि भी छठवें-सातवें गुणस्थान में विराजते हैं, नग्न दिगम्बर सन्त जंगल में रहते हैं, ये मुनिपने में अन्दर आत्मा के आनन्द का झूला झूलते हों, इन्हें भी राग का भाग है, अभी पंच महाव्रतादि का विकल्प है। इसका नाश, अनुभव करते-करते होगा, दूसरा कोई उपाय नहीं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ९, गुरुवार, दिनांक ०६-१०-१९७७
कलश-११६, प्रवचन-११४

कलशटीका, ११६ कलश में भावार्थ आया। **भावार्थ इस प्रकार है...** ऊपर से थोड़ा लेते हैं। **एक शुद्धस्वरूप का अनुभव उपाय है।** यहाँ से। आत्मा का चैतन्यस्वभाव त्रिकाल ध्रुव आनन्द, उसका अनुभव, यह एक उपाय संसार के नाश करने का है। है? **एक शुद्धस्वरूप का अनुभव...** जितनी क्रियाकाण्ड है दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, उसका फल तो संसार है। मोक्ष का उपाय तो एक शुद्धचैतन्य ज्ञानस्वभावी अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ऐसी जो ध्रुव चीज़, उसका पर्याय में अनुभव (होना)। पर्याय अर्थात् उसके सन्मुख की दशा, यह अनुभव एक ही मोक्ष का उपाय है। समझ में आया? क्योंकि आत्मा का स्वरूप उसका मुक्तस्वरूप है। आत्म पदार्थ, वह मुक्तस्वरूप है। अबद्धस्पृष्ट कहो, मुक्तस्वरूप कहो (एकार्थ है)। मुक्तस्वरूप है, उसका उपाय, पर्याय में मुक्ति का उपाय उस मुक्तस्वरूप का अनुभव, यह उपाय है।

और क्या करता हुआ निरास्त्रव होता है? आस्त्रव अर्थात् बन्ध के कारण भाव शुभ-अशुभभाव, वह बन्ध के कारण हैं। इनसे रहित निरास्त्रव कैसे होता है? '**एव परवृत्तिं सकलां उच्छिन्दन्' अवश्य ही... 'एव'** अर्थात् जरूर निश्चय। **जितनी ज्ञेय वस्तु है, उसमें रंजकपना ऐसी परिणाम...** अपने अतिरिक्त परवस्तु जितनी ज्ञेय है, उसमें राग का रंजकपना, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी **परिणाम क्रिया, जो जितनी है शुभरूप अथवा अशुभरूप,...** आहाहा! चाहे तो शुभक्रिया, शुभराग हो या अशुभ हो, **उसको मूल से ही उखाड़ता हुआ...** मूल से नाश करता हुआ **सम्यग्दृष्टि निरास्त्रव होता है।** क्योंकि... बहुत सूक्ष्म बात। चैतन्यस्वभाव सूक्ष्म अनन्त आनन्द प्रभु है। यह अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करने से जितनी शुभ-अशुभ क्रिया है, उसका नाश होता है। शुभक्रिया से अनुभव होता है, ऐसा तो है ही नहीं। परन्तु अनुभव से शुभ-अशुभक्रिया का नाश होता है। आहाहा!

शुभक्रिया से आत्मा की अनुभवदशा सम्यग्दृष्टि की उत्पत्ति होती नहीं। आहाहा! अब तो कहीं लड़के हैं नहीं। गुजराती कर दिया। कोई लड़का है नहीं, कोई लड़का आता नहीं। पीछे होगा, एक-दो होंगे। आज तो हिन्दी करो। आज। (अब पीछे गुजराती)। बहुत समय से हिन्दी चलता है। आज तो हिन्दी करते हैं।

जितनी है शुभरूप अथवा अशुभरूप,... आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! शुभभाव गुणी भगवान आत्मा और उसका आनन्दादि गुण, ये गुण-गुणी के भेद से जो विकल्प, उत्पन्न होता है राग, वह भी शुभक्रिया है। आहाहा! उसका भी जिसमें (अभाव है)। अपना आत्मा शुद्धस्वरूप पूर्ण आनन्द वीतरागमूर्ति आत्मा है। उसमें अन्तर में लिपट जाना। आनन्दकन्द में लिपट अर्थात् लीन हो जाना। आहाहा! यह शुभाशुभ क्रिया मिटाने का उपाय है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : सभी काम में एक ही उपाय...

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाय तो एक ही है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ। समझ में आया?

मुमुक्षु : चतुर्थ गुणस्थान में...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यहाँ सम्यग्दर्शन और अनुभव की प्रधानता से आस्रव रुक गया, ऐसा कहने में आता है। थोड़ा आस्रव है तो सही। वह छूटनेवाला है, इस अपेक्षा से कहा है। है नहीं, ऐसा नहीं। है तो अभी दसवें गुणस्थान तक राग है। ऐसे एकान्त खींच जाये कि इसे बिल्कुल आस्रव ही नहीं, यह अपेक्षा है नहीं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन... आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध चिदानन्दस्वरूप है, ऐसा अनुभव अन्तर में स्वसन्मुख होकर हुआ (तो) पूरा निधान प्राप्त हुआ। अनन्त आनन्द की खान, अनन्त ज्ञान का निधान, अनन्त शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति का सागर। आहाहा! बहुत बापू! यह आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ तो उससे शुभ-अशुभक्रिया का भाव होता है, उसका इससे नाश करता है। समझ में आया? बाकी रहता है, उसका आस्रव, बन्ध है परन्तु उसकी स्थिति रस अल्प है, उससे गिनने में आयी नहीं। परन्तु एकान्त खींचे कि सम्यग्दृष्टि को बिल्कुल आस्रव और बन्ध है ही नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : साधकदशा का प्रारम्भ हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधक की शुरुआत में आनन्द का... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ सम्यग्दर्शन में वेदन हुआ, तो अतीन्द्रिय आनन्द के आगे राग की गिनती क्या? राग है, परन्तु उसका आदर नहीं। वह कर्मधारा में जाता है। अपनी ज्ञानधारा में वह है नहीं। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! जन्म-मरण कर करके थोथा निकल गया लोगों का। दु:खी प्राणी दु:खी है। उसकी दृष्टि में जहाँ तक पुण्य और पाप का भाव है, तब तक महापापी दु:खी है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु परमात्मस्वरूप (विराजता है)। 'अप्पा सो परमअप्पा' आता है न? सेठ! तारणस्वामी में बहुत आते हैं। आत्मा वह परमात्मा ही है अन्दर। आहाहा! यह कैसे बैठे? 'अप्पा' आत्मा, वह परमात्मा ही है अन्दर। परमात्मा है तो पर्याय में परमात्मा शक्ति में से व्यक्ति होगी। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अपरिमित ज्ञान, दर्शन, आनन्द का घर—निधान, अनन्त-अनन्त गुण का गोदाम... आहाहा! उसके सन्मुख होकर जहाँ अनुभव हुआ... आहाहा! और निमित्त, राग और पर्याय की भी विमुखता हुई, मुख मोड़ दिया... आहाहा! निमित्त चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो या स्त्री, कुटुम्ब हो, ये सब निमित्त से मुख मोड़ लिया। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! और पुण्य और पाप के भाव जो हैं, उनका भी लक्ष्य छोड़ दिया। और पर्याय जो है एक समय की, उससे भी विमुख हो गया। आहाहा! समकिती लिया है। चौथे गुणस्थान की बात चलती है। समझ में आया? अभी तो गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि कैसा होता, उसकी बात चलती है। आहाहा! वर्तमान में मार्ग का ऐसा विरोध हो गया। सत्य बात को भी मिथ्या ठहराये और मिथ्या बात को सत्य ठहराया है। भगवान... भगवान! चौरासी का अवतार, भाई! तेरा दु:ख...

ये चाहे तो दिगम्बर मुनि सन्त हो, बाहर से, परन्तु अन्दर में दया, दान, व्रत और विकल्प जो महाव्रत के हैं, इनके ऊपर जिसकी दृष्टि है, वह पापी, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह बात कठिन लगती है जगत को। समझ में आया? और जिसकी दृष्टि अन्दर से राग और पुण्य से हटकर पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनन्त गुण रत्न से भरा रत्न की राशि। कहो,

कहाँ गये, शान्तिभाई ? ये तुम्हारे रत्न तो कितने होंगे ? थोड़े-बहुत हों वहाँ ? यह तो रत्न की राशि। अनन्त रत्न की राशि पड़ी है अन्दर में। आहाहा!

अरूपी आनन्द आदि अनन्त रत्न का गंज प्रभु आत्मा, इस ओर का अनुभव करता है तो शुभ-अशुभभाव का उसके नाश होता है। **'उच्छिन्दन्' 'उच्छिन्दन्'** आया न ? **'सकलां उच्छिन्दन्' मूल से ही उखाड़ता हुआ सम्यग्दृष्टि निरास्त्रव होता है।** आहाहा! वहाँ तक तो आया था परसों। **भावार्थ इस प्रकार है...** भाई! ये तो मार्ग अलग, नाथ! ये संसार के भाव में घुसकर पड़ा है। वहाँ से छूटकर कदाचित् धर्म के नाम से व्रत और तप और भक्ति में घुस गया है। आहाहा! उसको वहाँ से हटकर भगवान के सन्मुख जाना, यह महा पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ की गति क्या, परिणाम क्या, इसका उसने ख्याल किया नहीं।

यहाँ कहते हैं, **ज्ञेय-ज्ञायक का सम्बन्ध दो प्रकार है...** पहला वहाँ आया था न ? कि ज्ञेय का रंजितपना। अब है, ज्ञेय के दो प्रकार, ज्ञेय-ज्ञायक के दो प्रकार। **एक तो जानपनामात्र है...** जानपनामात्र—ज्ञेय को जाननेमात्र सम्बन्ध, बस। और **राग-द्वेषरूप नहीं है।** क्या कहते हैं ? कि ज्ञेय एक ऐसा है कि जाननेमात्र है। चाहे तो देव-शास्त्र-गुरु हों, चाहे तो स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत हो, सम्यग्दृष्टि को ये ज्ञान में जाननेमात्र हैं। मेरा है, यह दृष्टि तो धर्मी की छूट गयी है। आहाहा! ज्ञानमात्र ज्ञानचेतना। आत्मा जो ज्ञानस्वरूप है, उसकी ज्ञानचेतना पर्याय में प्रगट हुई तो ज्ञेय जितने हैं। यह ज्ञान में जाननेयोग्य रहे। मेरे माननेयोग्य भी नहीं और ज्ञेय देखकर राग करना या द्वेष करना, यह रहा नहीं। समझ में आया ? आहाहा! **जानपनामात्र है, राग-द्वेषरूप नहीं है।**

यथा... दृष्टान्त देते हैं। **केवली सकल ज्ञेय वस्तु को देखते-जानते हैं...** सर्वज्ञ भगवान केवलज्ञानी परमात्मा सकल ज्ञेय को—तीन काल-तीन लोक को देखते-जानते हैं। **परन्तु किसी वस्तु में राग-द्वेष नहीं करते।** आहाहा! **उसका नाम शुद्ध ज्ञानचेतना कहा जाता है।** उसका नाम शुद्धज्ञान चेतना। जानना... जानना... जानना... जानना... रह गया। यह शुद्धज्ञान चेतना। आहाहा! भाषा दूसरी जाति की। मार्ग अभी बहुत फेरफार हो गया। आहाहा! अब ये समकिती में उतारते हैं। **उसका नाम शुद्ध ज्ञानचेतना कहा जाता है।** क्या ? कि जगत के सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय अपने सिवाय जितने हैं, उस

सबको ज्ञान जानता है। यह ज्ञानचेतना कहने में आती है, यह धर्मचेतना कहने में आती है। आहाहा!

सो सम्यग्दृष्टि जीव के शुद्ध ज्ञानचेतनारूप जानपना है,... आहाहा! यह ज्ञानचेतना ली है। राग-द्वेष होते हैं, परन्तु उनको जानता है, ऐसा लिया यहाँ। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह यहाँ लिया है। आहाहा! इसमें एकान्त लगाकर कहे कि समकिती को अकेली ज्ञानचेतना ही है और व्यवहार से रागादि हैं ही नहीं, ऐसा है नहीं। आत्मा चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा, वह ज्ञानचेतना द्वारा ज्ञेय को जाने। चाहे तो अरिहन्त हो, देव हो, गुरु हो, शास्त्र हो। आहाहा! भगवान आत्मा का चेतना स्वभाव। आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु। आहाहा! यह ज्ञानरत्न से भरा, अतीन्द्रिय आनन्द से भरा पड़ा प्रभु आत्मा, उसका जहाँ भान हुआ अनुभव सम्यग्दृष्टि को तो परज्ञेय को यह जाननेवाला रह गया। परज्ञेय में कोई ज्ञेय मेरा है, यह दृष्टि तो छूट गयी। आहाहा! समझ में आया?

चाहे तो गृहस्थाश्रम में समकिती हो, आठ वर्ष की बालिका हो... आहाहा! अपने शुद्धस्वरूप की दृष्टि से अनुभव हो तो कहते हैं कि उसके पास तो ज्ञानचेतना है। आहाहा! पति है, पुत्र आदि है, उन सब कुछ ज्ञेय को वह जानती है। आहाहा! गजब बात है, भाई! समझ में आया? चाहे तो पति हो, चाहे तो पति से लड़का हो, पेट में गर्भ हो, आहाहा! परन्तु धर्मी जीव को जो ज्ञानचेतना, आत्मा का भान हुआ है तो वह ज्ञानचेतना में परज्ञेय को अपना नहीं मानता, ज्ञेय को जानता है कि यह है, बस इतना। आहाहा! ऐसा मार्ग।

अपने भाव में रहकर धर्मी ज्ञानचेतना में रहकर परज्ञेय को जानता है। आहाहा! यह अपेक्षा यहाँ ली है। किसी चीज़ को अपनी मानते नहीं, यह अपेक्षा ली है। समझ में आया? आहाहा! होता है राग, द्वेष होता है, राग होता है, परन्तु ये ज्ञान में ज्ञेयरूप से जानने में आया है, बस। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान का स्वभाव भगवान आत्मा स्व-परप्रकाशक स्वभाव जहाँ प्रगट हुआ तो पर को अपने में जानने में रहा, परन्तु पर को अपना मानने में रहा नहीं। आहाहा! ऐसी बात। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि जीव के शुद्ध ज्ञानचेतनारूप जानपना है,... आहाहा! अब इसमें झगड़ा करता है कि देखो! उसको ज्ञानचेतना ही है, उसको राग और दुःख है ही नहीं? यह

क्या अपेक्षा है ? बापू ! समझ में आया ? यहाँ तो ये दु:ख है, परन्तु उसको परज्ञेय रूप से जानता है। यह अपेक्षा यहाँ लेना है। समझ में आया ? और ऐसा ही कहे कि ज्ञानी को दु:ख का वेदन है ही नहीं (तो) ये मिथ्यात्व एकान्त दृष्टि है। समझ में आया ? यहाँ तो चेतना ज्ञानस्वरूप प्रभु प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप चेतन का जहाँ अनुभव हुआ स्वसन्मुख होकर, तो वहाँ ज्ञानचेतना, ज्ञानपना, जानपना स्वपरप्रकाशकपना प्रगट हुआ। तो ये रागादि हैं, उसको परज्ञेयरूप से जानता है। आहाहा ! ऐसा मार्ग ! आहाहा !

इसलिए मोक्ष का कारण है... सम्यग्दृष्टि को जो राग आता है कि परचीज़ है, उसको जानता है। अपने में रहकर परप्रकाश का स्वभाव अपना है, इस कारण से अपने को और पर को जानता है। यह जाननेवाली पर्याय है, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा ! यह धर्म है। आहाहा ! समझ में आया ? शुद्ध ज्ञानचेतना, यह मोक्ष का कारण है, **बन्ध का कारण नहीं है।** यह ज्ञानधारा जो हुई, वह बन्ध का कारण नहीं। बन्ध का कारण है, उसका तो यहाँ ज्ञान करते हैं। इतना यहाँ लेना है। आहाहा !

अरे ! इसने भगवान को भूलकर भूल की है। इस भूल को यहाँ कर्मचेतना और कर्मफलचेतना कहते हैं। विकारी में एकाकार और विकारी फल के वेदन में एकाकार। आहाहा ! यह मिथ्यादृष्टि अनादि से शुभ-अशुभभाव का कर्ता और शुभ-अशुभभाव के फल का वेदक है। आहाहा ! समझ में आया ? धर्मी जब से हुआ। आहाहा ! अपना चैतन्य धर्म जो आनन्द और ज्ञानस्वभाव, उसकी पर्याय में जब धर्म की परिणति हुई। आहाहा ! द्रव्य-गुण में तो अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रभुता पड़ी है। परन्तु पर्याय में प्रभुता की परिणति जहाँ सम्यग्दृष्टि की हुई। आहाहा ! तब ये ज्ञानचेतना—बस, जाननेवाला रह गया। जैसे केवली जानते हैं, ऐसे सम्यग्दृष्टि ज्ञानचेतना से जानता है। आहाहा !

मोक्ष का कारण है—बन्ध का कारण नहीं है। दूसरा जानपना ऐसा जो... पहले जानपना यह कहा। क्या ? कि ज्ञेय को जानना, यह ज्ञानचेतना रही, बस। और दूसरे ज्ञेय को जानकर ये मेरा है, इससे राग-द्वेष करता है, ये दूसरी कर्मचेतना है। है ? **दूसरा जानपना ऐसा जो कितनी ही विषयरूप वस्तु का जानपना भी है...** आहाहा ! अपने ज्ञान में उसका विषयरूप दूसरी चीज़ का जानपना भी है और **मोहकर्म के उदय का निमित्त**

पाकर इष्ट में राग करता है... आहाहा! ज्ञानी को इष्ट में राग और अनिष्ट में द्वेष है नहीं। क्योंकि सब चीज़ ज्ञेय है। ज्ञेय में दो भाग पाड़ते नहीं कि ये इष्ट है और ये अनिष्ट है। अज्ञानी ज्ञेय में दो भाग पाड़ता है। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी अनादि से जाननेयोग्य ज्ञेय है, ज्ञानचेतना जाननेवाली है, ऐसा न करके ज्ञेयरूप जो चीज़ है, उसमें दो भाग करते हैं कि ये इष्ट है, ये अनिष्ट है। आहाहा! इष्ट मानकर राग करता है, अनिष्ट मानकर द्वेष करता है। समझ में आया? ध्यान रखे तो पकड़ में आये, ऐसा है। अरे! यह भाषा तो सादी है। भाव तो बहुत ऊँचा है। आहाहा! मेहमान गये लगते हैं।

मुमुक्षु : दो दिन के लिये भावनगर गये हैं। फिर आनेवाले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावनगर? रमणीकभाई के यहाँ? ठीक। आहाहा!

इष्ट में राग करता है,... आहाहा! **भोग की अभिलाषा करता है...** इष्ट वस्तु जानकर राग करता है। करता है। आहाहा! जानता तो हे नहीं। राग करता है और **भोग की अभिलाषा करता है...** राग और भोग की अभिलाषा करता है। आहाहा! परचीज़ को तो कहीं भोगने में आती नहीं। परन्तु परचीज़ के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ जो राग, उस राग को भोगने की अभिलाषा करता है। आहाहा! गजब मार्ग, बापू! **तथा अनिष्ट में द्वेष करता है।** अज्ञानी जीव मोहकर्म के निमित्त से उत्पन्न हुआ अपने में मिथ्यात्वभाव, निमित्त यह तो है, मिथ्यात्व अपने से हुआ है। उसके विषयरूप वस्तु का जानपना भी है और मोह का राग भी है और भोग की अभिलाषा भी है। आहाहा! अनिष्ट में द्वेष करता है। बापू! वीतरागमार्ग बहुत शान्त है। आहाहा!

अरुचि करता है... बिच्छू का डंक, सर्प का काटना, निन्दा सुनना, वह हैं तो ज्ञेय, परन्तु मिथ्यात्व के कारण इनमें अरुचि करता है। ज्ञेय तो इस ज्ञान में, लोकालोक ज्ञेय है। इसमें, ज्ञेय में कोई दो भाग नहीं कि ये ठीक है और ये अठीक है। आहाहा! परन्तु अज्ञानी मिथ्यादृष्टि के कारण इष्ट के प्रति प्रेम करके और अनिष्ट के प्रति द्वेष करके दो भाग कर देता है। आहाहा! पानी का पूर चलता हो। बीच में जो पुल आवे पुल। तो पानी के दो भाग पड़ जाते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानरूपी प्रवाहरूप आत्मा, सर्व चीज़ तो ज्ञेयमात्र है ऐसा न जानकर, ठीक है और अठीक है, ऐसा भाग पाड़ता है ज्ञेय में। आत्मा भंग हो

जाता है—मिथ्यात्व हो जाता है। आहाहा! क्या कहते हैं।

मुमुक्षु : भाव से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ भाव की बात है न। पर के साथ क्या सम्बन्ध है? वह तो मिट्टी-जड़ है। भाव में इष्ट-अनिष्टपना मानता है। आहाहा! वह मिथ्यात्व भाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : रुचि करे, इसे अच्छा माने न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ज्ञेय हैं वहाँ अच्छा-बुरे का प्रश्न कहाँ है? ज्ञान में ज्ञेय हैं। बिच्छू का काटना और स्त्री का भोग, या लड्डू खाने की क्रिया, वह तो ज्ञान में ज्ञेय हैं। इसमें ठीक है, अठीक है आया कहाँ से? आहाहा! परन्तु इसमें भेद करते हैं कि इस विषय में मजा है और बिच्छू के काटने में मजा नहीं, ऐसे दो भाग कर देता है अज्ञानी राग-द्वेष में। आहाहा! कठिन बात, भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

ऐसे राग-द्वेष से मिला हुआ है जो ज्ञान... देखो! पहले ज्ञान ऐसा कहा था कि अपने ज्ञान में जहाँ यथार्थ हुआ ज्ञान, भान तो सब ज्ञेय वस्तु जाननेयोग्य रह गयी। कोई चीज़ ठीक है या अठीक है, ऐसा रहा नहीं। तो रहा नहीं तो राग-द्वेष भी रहे नहीं। आहाहा! इस अपेक्षा से बात है और यहाँ जब आत्मा में परज्ञेय का जानना तो रहा, परन्तु जानने के उपरान्त ये इष्ट है, मजा है राग में, ऐसा मानकर राग का कर्ता होता है और राग को भोगने की अभिलाषा करके भोक्ता है। राग का ज्ञाता-दृष्टा धर्मी है, यह (अज्ञानी) राग का कर्ता और भोक्ता होता है। आहाहा! अब ऐसी बातें। पीछे व्यक्ति को लगे ऐसा धर्म? ये पकड़ने में न आये। समझ में नहीं आये, ऐसा सूक्ष्म धर्म? बापू! धर्म तो ये है। पकड़ में आये ऐसा है, समझ में आये ऐसा है। भाई! आहाहा! जाननेवाला भगवान किसको न जाने? न जान सके, ऐसा प्रश्न ही वहाँ कहाँ है? आहाहा! जाननेवाला किसको न जाने? अग्नि की उष्णता किसको न जलाये? ऐसे भगवान का ज्ञान किसे न जाने? सबको जाने। परन्तु इष्ट अनिष्ट करे नहीं। आहाहा!

अज्ञानी मिथ्यादृष्टि को स्वरूप का भान नहीं, वह ज्ञेय को जानता तो है परन्तु जानने के समय इष्ट-अनिष्ट से राग-द्वेश करता है। और राग करके राग को भोगने की अभिलाषा

करता है। आहाहा! यह शरीर का भोगना, यह लड्डू को भोगना और दाल, भात को (भोगना), ऐसे भोगने की अभिलाषा अज्ञानी करता है। पर को भोगता नहीं, भोगता तो है अपने विकार को। समझ में आया? आहाहा! गजब बात! एक-एक कलश में बात बहुत भर देते हैं, बहुत भर देते हैं।

राग-द्वेष से मिला हुआ है जो ज्ञान, उसका नाम अशुद्ध चेतनालक्षण... उसका नाम अशुद्ध चेतना। पहले ज्ञानचेतना कही थी। सब ज्ञेय को जाने, यह ज्ञानचेतना। उसमें—ज्ञेय में इष्ट-अनिष्ट भाग नहीं पाड़ता। इष्ट-अनिष्ट भाग नहीं पाड़ता तो राग-द्वेष नहीं करता। आहाहा! यह अशुद्धचेतना। **कर्मचेतना, कर्मफलचेतनारूप कहा जाता है,...** लो। आहाहा! अपना ज्ञानस्वरूप है तो यह जानता तो है। जानने के उपरान्त, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है — ऐसा राग-द्वेष करता है। आहाहा! उसका नाम कर्मचेतना और भोगने का नाम कर्मफलचेतना (कहते हैं)। यह विकार को करता है और विकार को भोगता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! उसे जैन की खबर नहीं कि जैनपना क्या है? आहाहा! समझ में आया?

यह कर्मचेतना और कर्मफलचेतनारूप कहा जाता है, **इसलिए बन्ध का कारण है।** ये दोनों बन्ध के कारण हैं। बन्ध के कारण अर्थात् कि मिथ्यात्व और दर्शनमोह के बन्ध के कारण हैं। समझ में आया? आहाहा! **ऐसा परिणमन सम्यग्दृष्टि के नहीं है,...** है? ये ज्ञेय अनन्त ज्ञेयों में यह ठीक है या अठीक है, ऐसा ज्ञानी समकिती को होता नहीं। आहाहा! चाहे तो साक्षात् तीर्थंकर हो तो भी मुझे इष्ट है और ठीक है, ऐसा ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! बहुत बड़ी बात! राग आता है भक्ति के प्रेम का, परन्तु राग का जाननेवाला रहता है। समझ में आया? आहाहा! अज्ञानी राग का कर्ता होता है और राग का भोक्ता होता है। आहाहा! जहर का प्याला पीता है, कहते हैं। समकिती आनन्द का प्याला पीता है। ज्ञानचेतना। कितनेक तो ऐसा कहते हैं, ये तो सब निश्चय की बातें हैं। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य। आहाहा! व्यवहार की बातें आरोपित हो, परन्तु उसका जानना आत्मा का स्वभाव है।

मुमुक्षु : अज्ञानी को व्यवहार होता कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो लोग मानते हैं न। व्यवहार व्रत किया और तप किया और...

यहाँ तो कहते हैं, **ऐसा परिणमन सम्यग्दृष्टि के नहीं है,...** कैसा ? कि यह इष्ट है — ऐसा मानकर राग और अनिष्ट मानकर द्वेष, ऐसी अशुद्ध परिणति धर्मी को होती नहीं। आहाहा! अस्थिरता का भाव है, उसका भी जानने-देखनेवाला रहता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ? आसक्ति का भाव होता है। इष्ट-अनिष्टपने की मान्यता का भाव नहीं। परन्तु समकिती को आसक्ति का भाव है। परन्तु उस आसक्ति का भी जाननेवाला है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आसक्ति का कर्ता और भोक्ता है नहीं। आहाहा! ऐसी बात। इसमें कहाँ मुम्बई में मिले ऐसा है ? पूरे दिन पींजन-(धुनाई) पाप की।

मुमुक्षु : पैसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में पैसा तो पुण्य हो तो मिले, यहाँ कहाँ मिले, यहाँ कहाँ इसकी होशियारी से मिलता है। बहुत बड़ा होशियार व्यापार-धन्धा करनेवाला हो और सट्टा में नुकसान पड़े। भिखारी हो जाये, लो। आहाहा!

मुमुक्षु : .... होना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको ये लागू पड़ता है। पाप का उदय आता है तो सब पलट जाये तो खबर ही नहीं पड़ती। कहाँ गया ये ? सेठाई जाये, पैसा जाये, इज्जत जाये, सब जाय एक साथ। ऐसे उदाहरण बहुत देखे हैं न। नगर सेठ था उमराला में हमारे यहाँ। नगरसेठ। ऐसा पुण्य कम तो नगरसेठ, स्थानकवासी का सेठ, गाँव का सेठ। तेल दो सेर लेने जाना हो तो रुपया न मिले। ऐसी स्थिति थी। खानदान, हों! खानदानी मनुष्य। बहुत खानदानी मनुष्य। तेली के पास जाये तेल लेने। दो सेर तेल दो। तेली समझे कि पैसा आदमी के पास नहीं। ये कहे, बड़े भाई देंगे तो दूँगा, वह, हों! परन्तु ये तो समझे, ले जाओ, ले जाओ। ऐसी स्थिति थी। अब तो लड़कों का ठीक है। लड़के मुम्बई में हैं। ये तो पहली स्थिति ऐसी ठीक थी। बड़ा नगरसेठ। बीच में ऐसी स्थिति हो गयी। फिर पीछे फेरफार (हो गया)।

हमारे दूसरा कहना था, जयपुर का... क्या कहते हैं तुम्हारे मोटर का ? ड्राईवर। ये

कहता था कि चलती-फिरती। छाया... छाया... छाया आती है। चलती-फिरती छाया है, बापू! छाया आती है और धूप हो जाता है, तड़का होता है न छाया हो जाती है। ये वहाँ जयपुर में कहता था, हों! महेन्द्रभाई का था। महेन्द्रभाई सेठी का ड्राईवर था। ऐसा क्यों कहा? हम इसके दीवान तरफ उतरे-ठहरे बाहार में वहाँ उतरे। इससे नीचे उतरकर व्याख्यान करने जायें। वहाँ एक मनुष्य निकला ७५-८० वर्ष का। फटे कपड़े सिर गंजा। ये.. माँ-बाप! पैसा दो। मेरी उसके ऊपर नजर गयी। ड्राईवर से कहा, ये मनुष्य कोई गरीब नहीं, चाहे वह हो। इसका मुख, गंजी है और ये कोई दूसरा मनुष्य है। कहे, साहेब! ये जबेरी का लड़का था। वांकानेर का जवेरी। क्या नाम कहा? मावजी त्रिकम। इसकी जबेरी की दुकान थी बाजार में। इसकी शादी के समय बड़ी धूमधाम की। महेन्द्रभाई कहता था, पास में बैठे थे। महेन्द्रभाई कहे, मैंने भी इसे पैसे से मदद की है। अभी नितान्त गरीब भिखारी। जीर्ण कपड़ा, ७५-८० वर्ष की उम्र, माँगे। आहाहा! बापू! पुण्य बदले, तब क्या हो, ये किसी के रखने से रहे, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यापार में भूल हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो पुण्य को लेकर सब होता है अन्दर। आहाहा! भाई कहता था हमारे जेठालाल संघवी। पहले था, क्या कहलाये ये? भाटिया... भाटिया। भाटिया बड़ा गृहस्थ बड़ा। लड़के की शादी में, लड़के लगन में उसकी विरादरी—समाज में घड़े बाँटे। बेड़ा समझते हो? ये तांबे के। पानी (भरने के)। हंड़ा अर्थात् घड़े, दो। बेड़ा-पूरी समाज को (दिये)। ये लड़के की बहू के प्रसव का प्रसंग आया तब जेठालाल कहे, मेरे पास माँगने आया। बापू! मेरे पास कुछ नहीं। इस बहू को अस्पताल में ले जाना है। कुछ खर्चा दो। आहाहा! बापू! कब फिरे इसकी (खबर नहीं) ये किसी के रखे रहे, ऐसा है? आहाहा! चढ़ती-गिरती छाया है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि आनन्द का नाथ जहाँ जगता है, आहाहा! तब तो इसके रागादिक होने पर भी उनको ज्ञेयरूप जानता है। उनका कर्ता और भोक्ता होता नहीं। आहाहा! और द्रव्यलिंगी साधु होकर भी, हजारों रानी छोड़ने पर भी, यह राग की क्रिया का कर्ता हूँ और मैं भोक्ता, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसा बड़ा अन्तर।

ये दृष्टि से सृष्टि है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि द्रव्य पर है तो उसकी दृष्टि ज्ञाता-दृष्टा की उत्पन्न होती है। आहाहा! अज्ञानी की दृष्टि पुण्य और पाप के विकार पर है तो वहाँ मिथ्यात्वादि विकार की उत्पत्ति होती है। आहाहा! बाहर में बादशाही दिखाये, अन्दर में भिखारी हो। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

यह कहते हैं, **अशुद्ध चेतना लक्षण कर्मचेतना, कर्मफलचेतनारूप कहा जाता है, इसलिए बन्ध का कारण है। ऐसा परिणमन सम्यग्दृष्टि के नहीं है,...** यहाँ तो एकदम राग का जाननेवाला रहा है, यह सिद्ध करना है। परन्तु ऐसा कोई कहे कि राग बिल्कुल है ही नहीं। ऐसा नहीं। यहाँ तो ज्ञानचेतना में राग है, उसको जानता है, यह सिद्ध करना है। इसकी ज्ञान चेतना में राग का अभाव है और ज्ञानचेतना का राग में अभाव है। इतना यहाँ सिद्ध करना है। इसमें कोई एकान्त ले जाये कोई कि बस सम्यग्दृष्टि हुआ तो बिल्कुल उसको राग का आस्रव है ही नहीं। एकान्त बात है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। शास्त्र के शास्त्र भरे हैं। दसवें गुणस्थान तक राग आस्रव है और छह कर्म आते हैं। दसवें गुणस्थान तक में। यहाँ चौथे तो बिल्कुल राग है ही नहीं? है परन्तु यहाँ ज्ञानचेतना में जाननेयोग्य है, ऐसा गिनकर उसमें है नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा! ये संसार बढ़े, ऐसा भाव है नहीं। आहाहा! और सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव भी आते हैं परन्तु वे तो ज्ञान में ज्ञेयरूप जानता है और उसको भविष्य का भी बन्ध पड़ता है, परन्तु अशुभभाव के काल में भव का बन्ध नहीं पड़ता। अपने शुद्धस्वभाव की दृष्टि के जोर से, अशुभभाव आता है तो उस समय भविष्य का बन्ध नहीं बँधे। जब शुभभाव आयेगा, तभी भविष्य का बन्ध बँधेगा। क्योंकि सम्यग्दृष्टि को तो वैमानिक में जाना है, मनुष्य और तिर्यंच हो तो। देव हो तो मनुष्य में आता है। यह दूसरी बात। समझ में आया? आहाहा!

धर्मी को भी अशुभभाव आता है। फिर भी उस समय उसका कर्ता-भोक्ता तो नहीं, परन्तु उस समय भविष्य का भव नहीं बँधेगा। जब शुभभाव आयेगा, तब भविष्य का बन्ध बँधेगा। आहाहा! इतना तो जोर है। समझ में आया? क्योंकि भव तो है अभी। केवलज्ञान न हो वहाँ तक भव तो है। आहाहा! तो यह भव का बन्ध कब होगा? जब शुभभाव आयेगा, तब वैमानिक का बन्ध होगा। आहाहा! अशुभभाव हो, तब बन्ध होगा दूसरी चीज़ का,

आयुष्य का (बन्ध) नहीं होगा। ज्ञानी को राग आता है, उसके बन्ध होता है। परन्तु यहाँ तो राग और बन्ध दोनों ज्ञेय में डालकर, ज्ञाता है — ऐसा बताना है। आहाहा! ऐसी बातें अब लम्बी कितनी।

मुमुक्षु : अभिप्राय में से निकल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिप्राय में से निकल गया। आहाहा! और कहा न? अशुभ भाव आया तो भी कर्ता-भोक्ता नहीं और उस कारण अशुभभाव के समय मनुष्य का आयुष्य देव का नहीं बँधेगा। क्योंकि समकिती को तो स्वर्ग में ही जाना है। दूसरा कहीं जाये नहीं। पहले आयुष्य बँध गया हो तो नरक में जाना पड़े, ये दूसरी बात है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन आत्मा का भान हुआ, वहाँ शुभभाव आता है। उस समय वैमानिक का आयुष्य बँध जायेगा। आहाहा! समझ में आया? कोई कहते हैं या नहीं श्रीमद् राजचन्द्र के लिये कहता है कि ये तो सीधे महाविदेह में गये हैं, वहाँ आठ वर्ष में केवल (ज्ञान) पाया है। झूठ बात है। मनुष्य मरकर मनुष्य हो तो मिथ्यादृष्टि होता है। परन्तु ये खबर ही न मिले। ये तो स्वर्ग में गये हैं। वैमानिक देव में गये हैं। समझ में आया? आहाहा! वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे। परन्तु यहाँ मनुष्य हैं तो सीधे (महाविदेह में न जायें)। भक्तों को भान न मिले, इसलिए इतना सब इनकी महिमा करते हैं। अमुक ऐसा कहता था, पहले नहीं था एक था न? क्षुल्लक। कहाँ मिला अपन को भोपाल में नहीं मिला? कौन? भद्रमुनि? भद्रमुनि वे उस समय मिला था। भोपाल में था न मौन था। पीछे इसने निकाला है न कहीं? सूरत के पास। देवलाली नहीं, हम्पी। हम्पी। हम्पी। एक हम्पी में है। वहाँ ये कहता है कि श्रीमद् तो महाविदेह में गये हैं। महाविदेह में वहाँ केवलज्ञानपने विचरते हैं। लोग, भक्त जानते हैं कि आहाहा! गजब बात की इसने! परन्तु सब सिद्धान्त विरुद्ध हो जाता है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को आयुष्य का बन्ध पड़ता है मनुष्य में, परन्तु वैमानिक का बंध पड़ता है। भवनपति, व्यन्तर, ज्योति में न जाये, नरक में न जाये, तिर्यंच में न जाये, मनुष्य मरकर मनुष्य न हो। आहाहा! परन्तु यहाँ ये बन्ध और बन्ध का भाव ज्ञान में ज्ञेयरूप से गिनने में आया है और अज्ञानी को मेरा है, ऐसा मानकर। आहाहा! राग-द्वेष को करता है और उसे ही भोगता है। आहाहा!

ऐसा परिणमन नहीं होता है। ऐसा अशुद्ध ज्ञानचेतनारूप परिणाम मिथ्यादृष्टि के होता है। देखो! आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव मेरे हैं, मेरा कर्तव्य है और मुझे करनेयोग्य है, भोगनेयोग्य है, ऐसा भाव मिथ्यादृष्टि को होता है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, धन्धा का तो कर्ता आत्मा है नहीं अज्ञानभाव से भी। आहाहा! अज्ञानभाव से शुभ-अशुभराग का कर्ता और राग का भोक्ता अज्ञानभाव से होता है। ऐसी बात है, भाई! अरे! भ्रमते रुलते मनुष्यपना मुश्किल से मिला, इसमें जिनवर, जिनवर का सम्प्रदाय मिला, परन्तु जिनवर का कहा हुआ यह धर्म न समझा। आहाहा! तो इसकी ये दशा है अनन्त काल से। आहाहा!

और कैसा होता हुआ निरास्त्रव होता है? धर्मी। **'ज्ञानस्य पूर्णः भवत्' पूर्ण ज्ञानरूप होता हुआ।** देखो! ये ज्ञानस्वरूप में ज्ञाता-दृष्टा होकर, ज्ञाता-दृष्टा, ज्ञाता-दृष्टा का अनुभव परिणमन करते... करते... करते... पूर्णज्ञान हो जायेगा। समझ में आया? आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञान का खण्डितपना यह कि वह राग-द्वेष से मिला हुआ है।** ज्ञान में खण्ड-खण्ड होता है, ये तो राग-द्वेष के कारण है। **राग-द्वेष से मिला हुआ है।** है न? **राग-द्वेष गये होने से ज्ञान का पूर्णपना कहा जाता है।** पीछे तो ये ज्ञान यहाँ पूर्ण प्रगट हुआ पर राग-द्वेष का नाश होने के बाद पूर्णज्ञान ही प्रगट हो जायेगा। आहाहा! पूर्ण ज्ञान है तो ये राग के कारण खण्ड-खण्ड है। परन्तु फिर भी ज्ञानी को राग का ज्ञान है तो खण्ड नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञान में खण्ड न आया। और ये ज्ञान के अखण्ड का अनुभव करते... करते... करते... पूर्ण ज्ञान हो जायेगा। आहाहा! केवलज्ञान हो जायेगा। **ज्ञान का पूर्णपना कहा जाता है। ऐसा होता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव निरास्त्रव है।** इस कारण वहाँ पूर्ण निरास्त्रव हो जायेगा। समझ में आया? आस्त्रव अधिकार है न। तो बिल्कुल आस्त्रव रहित तो जहाँ पूर्ण ज्ञानदशा पूर्ण होगी, तब निरास्त्रव हो जायेगा। जहाँ तक आस्त्रव है तो आस्त्रव का ज्ञाता है, जाननेवाला है, करनार और भोगनार नहीं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)